

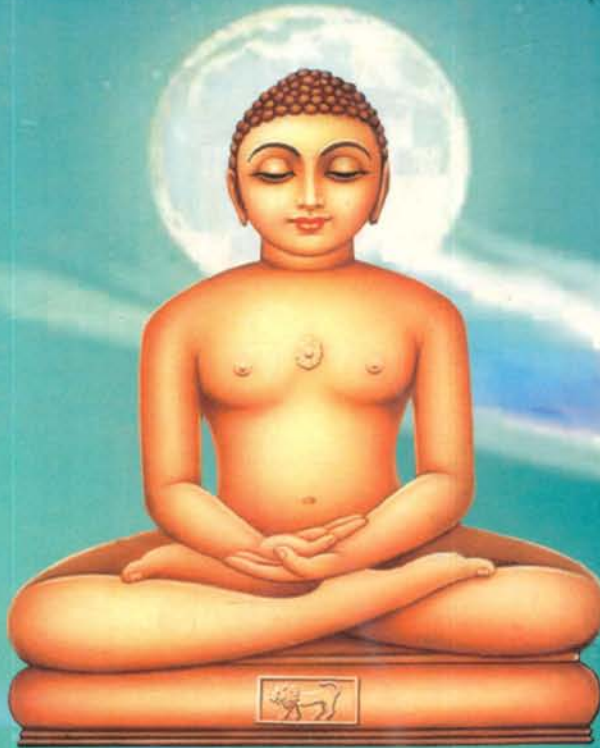
महावीर-शासन-जैनागम-ग्रंथमाला

गणधर-सुधर्मा-प्रणीत-पंचम-अंग-आगम

भगवती सूत्र

(व्याख्याप्रज्ञप्ति)

(हिन्दी अनुवाद)
(भाग-१ : शतक १ से ११)



भगवान-महावीर

(ई.पू. ५९९-ई.पू. ५२७)

वाचना-प्रमुख

प्राचीन - देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण

अर्वाचीन - आचार्य तुलसी

प्रधान सम्पादक

आचार्य महाप्रज्ञ

आचार्य महाश्रमण

वाचना-प्रमुख : आचार्य तुलसी

संपादक-भाष्यकार : आचार्य महाप्रज्ञ

युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी (१९१४-१९९७)

युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी (१९१४-१९९७) के वाचना-प्रमुखत्व में सन् १९५५ में आगम-वाचना का कार्य प्रारंभ हुआ, जो सन् ४५३ में देवर्धिगणी क्षमाश्रमण के सान्निध्य में हुई संगति के पश्चात् होनेवाली प्रथम वाचना थी। सन् २००७ तक ३२ आगमों के अनुसंधानपूर्ण मूलपाठ संस्करण और ११ आगम संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद एवं टिप्पण सहित प्रकाशित हो चुके हैं। आचार्य (आचारांग का प्रथम श्रुतस्कंध) मूल पाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी-संस्कृत भाष्य एवं भाष्य के हिन्दी अनुवाद से युक्त प्रकाशित हो चुका है। आचारांग-भाष्य तथा भगवई खंड-१, २ के अग्रेजी संस्करण भी प्रकाशित हो गये हैं।

इस वाचना के मुख्य संपादक एवं विवेचक (भाष्यकार) हैं—आचार्यश्री महाप्रज्ञ (मुनि नथमल/युवाचार्य महाप्रज्ञ) (जन्म १९२०) जिन्होंने अपने सम्पादन-कौशल से जैन आगम-वाङ्मय को आधुनिक भाषा में समीक्षात्मक भाष्य के साथ प्रस्तुति देने का गुरुतर कार्य किया है। भाष्य में वैदिक, बौद्ध और जैन साहित्य, आयुर्वेद, पाश्चात्य दर्शन एवं आधुनिक विज्ञान के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर समीक्षात्मक टिप्पण लिखे गए हैं।

आचार्यश्री तुलसी ११ वर्ष की आयु में जैन श्वेताम्बर तेरापंथ के अष्टमाचार्य श्री कालूगणी के पास दीक्षित होकर २२ वर्ष की आयु में नवमाचार्य बने।

महावीर-शासन-जैनागम-ग्रंथमाला

वाचना-प्रमुख

प्राचीन - देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण

अर्वाचीन - आचार्य तुलसी

प्रधान सम्पादक

आचार्य महाप्रज्ञ

आचार्य महाश्रमण

गणधर-सुधर्मा-प्रणीत-पंचम-अंग-आगम

भगवती सूत्र

(व्याख्याप्रज्ञप्ति)

(हिन्दी अनुवाद)

भाग-१ : शतक १ से ११

अनुवाद-सहभागिता

संघ-महानिदेशिका साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

आगम-मनीषी प्रो. मुनि महेन्द्रकुमार

शासनगौरव मुनि धनञ्जयकुमार

सम्पादन :

आगम-मनीषी प्रो. मुनि महेन्द्रकुमार



जैन विश्व भारती लाडनं (राज.)

प्रकाशक : जैन विश्व भारती

पोस्ट : लाडनू-३४१३०६

जिला : नागौर (राज.)

फोन नं. : (०९५८९) २२६०८०/२२४६७९

ई-मेल : jainvishvabharati@yahoo.com

© जैन विश्व भारती, लाडनू

ISBN - 81-7195-237-2

प्रथम संस्करण : २०१३

पृष्ठ संख्या : ६८+४४२=५१०

मूल्य : ₹ ४५० (चार सौ पचास रुपये मात्र)

मुद्रक : पायोराईट प्रिन्ट मीडिया प्रा. लि., उदयपुर फोन : ०२९४-२४१८४८२

समर्पण

॥१॥

पुट्टो वि पण्णा-पुरिसो सुदक्खो,
आणा-पहाणो जणि जस्स निच्चं ।
सच्चप्पओगे पवरासयस्स,
भिक्खुस्स तस्स प्पणिहाणपुव्वं ॥

जिसका प्रज्ञा-पुरुष पुष्ट पटु,
होकर भी आगम-प्रधान था ।
सत्य-योग में प्रवर चित्त था,
उसी भिक्षु को विमल भाव से ॥

॥२॥

विलोडियं आगमदुद्धमेव,
लब्धं सुलब्धं णवणीयमच्छं ।
सज्झायसज्झाणयस्स निच्चं,
जयस्स तस्स प्पणिहाणपुव्वं ॥

जिसने आगम-दोहन कर कर,
पाया प्रवर प्रचुर नवनीत ।
श्रुत-सद्धान लीन चिर चिंतन,
जयाचार्य को विमल भाव से ॥

॥३॥

पवाहिया जेण सुयस्स धारा,
गणे समत्थे मम माणसे वि ।
जो हेउभूओ स्स पवायणस्स,
कालुस्स तस्स प्पणिहाणपुव्वं ॥

जिसने श्रुत की धार बहाई,
सकल संघ में, मेरे मन में ।
हेतुभूत श्रुत-सम्पादन में,
कालुगणी को विमल भाव से ॥

विनयावनत
आचार्य तुलसी

अन्तस्तोष

परम पूज्य गुरुदेव आचार्य तुलसी ने आगम-सम्पादन के गुरुतर कार्य का प्रकल्प और संकल्प किया। उनके वाचना-प्रमुखत्व में कार्य का शुभारम्भ हुआ। परम पूज्य गुरुदेव आचार्य महाप्रज्ञ ने प्रज्ञा-परिश्रम से आगमों के सम्पादन, अनुवाद और विवेचन के कार्य को आगे बढ़ाया। उसकी धारा अविच्छिन्न रूप से चल रही है। आलोचनात्मक और तुलनात्मक भाष्य के साथ आगम-सम्पादन हो रहा है इसलिए यह कार्य समय-सापेक्ष है। मैं आत्मतोष का अनुभव कर रहा हूँ कि हमारे धर्मसंघ के अनेक साधु-साधवियां इस पुनीत कार्य में प्रवृत्त हैं।

संविभाग हमारा धर्म है। जिन-जिन ने इस गुरुतर प्रवृत्ति में उन्मुक्त भाव से अपना संविभाग समर्पित किया है, उन सबके प्रति मैं मंगल भावना करता हूँ कि उनका भविष्य इस महान् कार्य का भविष्य बने।

भगवती सूत्र के प्रस्तुत हिन्दी अनुवाद के संस्करण की परिसम्पन्नता में परम पूज्य गुरुदेव महाप्रज्ञजी का मूल्यवान समय और प्रज्ञा-परिश्रम लगा है। पूज्यप्रवर के प्रति पुनः-पुनः प्रणमन।

प्रस्तुत संस्करण की परिसंपन्नता में परम पूज्य गुरुदेव के अतिरिक्त जिनका संविभाग रहा है, वह इस प्रकार है—

अनुवाद-सहभागिता	:	साध्वीप्रमुखाश्री कनकप्रभा मुनिश्री महेन्द्रकुमार मुनि धनज्जयकुमार
सम्पादन	:	मुनिश्री महेन्द्रकुमार
सम्पादन-सहयोगी	:	मुनि धनज्जयकुमार मुनि दिनेशकुमार मुनि योगेशकुमार

—आचार्य महाश्रमण

प्रकाशकीय

वाचना-प्रमुख गणाधिपति गुरुदेव श्री तुलसी एवं संपादक, अनुवादक, विवेचक मुनिश्री नथमलजी (आचार्यश्री महाप्रज्ञ) के निदेशन में आगम-वाङ्मय का कार्य सन् १९५५ में प्रारम्भ हुआ था। प्रकाशन की योजना इस प्रकार बनाई गई—

१. आगम-सुत्त ग्रन्थमाला—मूलपाठ, पाठान्तर, शब्दानुक्रम आदि सहित आगमों का प्रस्तुतीकरण।
२. आगम-अनुसंधान ग्रन्थमाला—मूलपाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद, पद्यानुक्रम, सूत्रानुक्रम तथा मौलिक टिप्पणियों सहित आगमों का प्रस्तुतीकरण।
३. आगम-अनुशीलन ग्रन्थमाला—आगमों के समीक्षात्मक अध्ययनों का प्रस्तुतीकरण।
४. आगम-कथा ग्रन्थमाला—आगमों से संबंधित कथाओं का संकलन और हिन्दी अनुवाद।
५. वर्गीकृत-आगम ग्रन्थमाला—आगमों का संक्षिप्त वर्गीकृत रूप में प्रस्तुतीकरण।
६. आगमों के केवल हिन्दी अनुवाद के संस्करण।

प्रारम्भ में श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा तथा बाद में जैन विश्व भारती को प्रकाशन का दायित्व दिया गया। क्वचित् जैन विश्व भारती इंस्टीट्यूट (मान्य विश्वविद्यालय) के अंतर्गत भी कुछ आगम प्रकाशित हुए हैं।

पहली ग्रन्थमाला

समग्र ३२ आगमों का प्रकाशन हो चुका है। आगम शब्दकोश (अंगसुत्ताणि शब्दसूची) में समग्र ११ अंगों की शब्दसूची तथा उवंगसुत्ताणि एवं नवसुत्ताणि के परिशिष्ट में क्रमशः १२ उपांगों तथा ४ मूल, ४ छेद एवं आवश्यक की समग्र शब्दसूची भी प्रकाशित हो चुकी है।

दूसरी ग्रन्थमाला

अब तक १. दसवेआलियं २. उत्तरज्झयणाणि ३. सूयगडो (भाग १, २) ४. ठाणं ५. समवाओ ६. भगवई (भाष्य-सहित) खण्ड १ से ४ (शतक १-१६) ७. नायाधम्मकहाआ ८. उवासगदसाओ ९. नन्दी १०. अणुओगदाराइं—ये दश आगम

प्रकाशित हो चुके हैं। प्रथम अंग का प्रथम श्रुतस्कन्ध आचार्य संस्कृत-भाष्य तथा हिन्दी अनुवाद-सहित प्रकाशित हो चुका है, पर द्वितीय श्रुतस्कन्ध आचार-चूला का कार्य अभी शेष है।

तीसरी ग्रन्थमाला

दो आगमों दशवैकालिक एवं उत्तराध्ययन के समीक्षात्मक अध्ययन का प्रकाशन हो चुका है।

चौथी ग्रन्थमाला

इसके अंतर्गत होने वाले कार्य के स्वरूप का निर्धारण होना शेष है।

पांचवीं ग्रन्थमाला

इसके अंतर्गत दशवैकालिक एवं उत्तराध्ययन के वर्गीकृत संस्करण—धर्म प्रज्ञप्ति १, २ के रूप में प्रकाशित हो चुके हैं।

छठी ग्रन्थमाला

‘आगम हिन्दी अनुवाद ग्रन्थमाला’ में अब तक दो आगमों का केवल हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हो चुका है—

१. दशवैकालिक

२. उत्तराध्ययन।

इन्हें एक ही ग्रंथ में प्रकाशित किया गया है—‘दशवैकालिक और उत्तराध्ययन’ (वि.सं. २०३१, जैन विश्व भारती, लाडनू)

आगम हिन्दी अनुवाद ग्रंथमाला के अंतर्गत यह दूसरा पुष्प—भगवती सूत्र (व्याख्या-प्रज्ञप्ति) प्रकाशित किया जा रहा है।

जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा (कोलकाता) द्वारा आगम प्रकाशन का कार्य आरम्भ हुआ, तभी से श्रीचंदजी रामपुरिया का यह सुझाव रहा कि अंग्रेजी के ‘Sacred Books of the East Series’ की तरह आगम-ग्रन्थों के हिन्दी-अनुवाद मात्र की एक ग्रंथमाला आरम्भ की जाए। तदनुसार दशवैकालिक-उत्तराध्ययन का प्रकाशन जैन विश्व भारती द्वारा हुआ था। उसके पश्चात् काफी समय का अन्तराल हो गया। अब भगवती सूत्र जैसे महत्त्वपूर्ण और विशालकाय आगम के हिन्दी अनुवाद का प्रकाशन संभव हुआ है।

गुरुदेव श्री तुलसी की विद्यमानता में ही भगवई (भाष्य) का प्रथम खण्ड प्रकाशित हो चुका था। तत्पश्चात् आचार्यश्री महाप्रज्ञजी की विद्यमानता में तीन खण्ड और प्रकाशित हो गए थे। पांचवां खण्ड अभी तक प्रेस में चल रहा है। छठे खण्ड का लेखन आचार्यश्री महाश्रमणजी के निर्देशन में चालू है। इसी बीच भगवती सूत्र का यह ग्रन्थ प्रकाशनार्थ तैयार हो गया। दो खण्डों में इस आगम को पाठकों के हाथों में समर्पित करते हुए हम अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हैं। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के महाप्रयाण के पश्चात् समग्र आगम-कार्य का निदेशन आचार्यश्री महाश्रमणजी कर रहे हैं। यद्यपि प्रस्तुत संस्करण का

कार्यारम्भ आचार्यश्री महाप्रज्ञजी की विद्यमानता में ही हो गया था, पर उसका समापन अब आचार्यश्री महाश्रमणजी के निदेशन में हुआ है।

प्रस्तुत सम्पादकीय के सम्पादन-कार्य का श्रेय तेरापंथ धर्मसंघ की बहुश्रुत-परिषद् के सम्माननीय सदस्य आगम-मनीषी प्रो. मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी को है। इनके सहयोगी के रूप में इस संस्करण को तैयार करने में शासनगौरव मुनिश्री धनंजयकुमारजी, मुनिश्री अजितकुमारजी, मुनिश्री दिनेशकुमारजी तथा मुनिश्री योगेशकुमारजी का श्रम भी मुखर हो रहा है। एतदर्थ हम इनके चिरऋणी रहेंगे।

प्रस्तुत ग्रन्थ के कम्प्यूटरीकरण में श्री प्रमोद कुमार कुर्मी की निष्ठा, लगन एवं दक्षता उल्लेखनीय है।

आशा है केवल हिन्दी अनुवाद वाला यह संस्करण व्यापक रूप में सर्व साधारण जन के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकेगा। इसको तैयार करने में जिनका भी श्रम लगा है, उन सबके प्रति हम हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं।

ताराचंद रामपुरिया
अध्यक्ष, जैन विश्व भारती, लाडनूं

पुरोवाक्

जैन आगम-वाङ्मय अध्यात्म- और विज्ञान-विषयक ज्ञान का एक अनुपमेय स्रोत है। यह आध्यात्मिक साधकों एवं तत्त्व-जिज्ञासुओं के लिए उपयोगी है क्योंकि उसमें उस आप्त-वाणी के शाश्वत स्वर मुखर होकर सत्यानुभूति तक उन्हें पहुंचाने की क्षमता रखते हैं। एक आध्यात्मिक साधक किसी ऐसे आध्यात्मिक-अनुभव-प्राप्त आप्त की अनुभव-वाणी की तलाश में रहता है जिसके पद-चिह्न उसे अध्यात्म के मार्ग पर अग्रसर करने में पथ-दर्शक बनते हैं तथा अमार्ग/कुमार्ग में भटक जाने से बचाते हैं। एक तत्त्व-जिज्ञासु को तत्त्व की जिज्ञासा को शांत करने वाली उस सत्यानुभूतिपरक अभिव्यक्ति की अपेक्षा रहती है जिससे तत्त्व-ज्ञान के अथाह महासागर का अवगाहन करने में उसे अचूक आलम्बन प्राप्त हो। जैन आगमों के रूप में जो ज्ञान-राशि संकलित है, वह इन दोनों दृष्टियों से अपने आपमें महत्त्वपूर्ण प्रतीत हो रही है।

“जैन धर्म, दर्शन व संस्कृति का मूल आधार तीर्थंकर की वाणी है। तीर्थंकर वीतराग और सर्वज्ञ होते हैं। सर्वज्ञ का एक अर्थ है—आत्मद्रष्टा। सम्पूर्ण रूप से आत्मदर्शन करने वाले ही सम्पूर्ण विश्व का समग्र दर्शन कर सकते हैं और जो समग्र को जानते हैं वे ही तत्त्वज्ञान का यथार्थ निरूपण कर सकते हैं, परम हितकर निःश्रेयस् का यथार्थ उपदेश कर सकते हैं। सर्वज्ञों द्वारा निरूपित तत्त्वज्ञान तथा आचार-व्यवहार का सम्यक् परिबोध ‘आगम’ हैं। तीर्थंकरों की वाणी मुक्त सुमनों की वृष्टि के समान होती है, महान् प्रज्ञावान् गणधर उसे सूत्ररूप में ग्रथित करके व्यवस्थित आगम का रूप देते हैं।”^१

जैन दर्शन का अध्ययन करना प्रत्येक जैन धर्मानुयायी के लिए बहुत जरूरी है, भले वह साधु-साध्वी हो या श्रावक-श्राविका। आगम का अध्ययन न केवल इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, अपितु सम्यक्त्व को परिपुष्ट करने का यह एक सशक्त साधन है। सम्यक्त्व की प्राप्ति से लेकर उसकी परिपुष्टि तक आगम का अनुशीलन बहुत ही उपयोगी है। ‘तमेव सच्चं णीसंकं जं जिणेहिं पवेइयं’—‘जो जिनेश्वरों द्वारा प्रवेदित है, वह सत्य ही है, निःशंक ही है’^२—यह

१. अर्थ भासइ अरहा, सुत्तं गंथंति गणहरा निउणा। (द्रष्टव्य आचारांग सूत्र, द्वितीय श्रुतस्कन्ध, आचारचूला, आमुख, पृष्ठ १) युवाचार्यश्री मिश्रीमलजी महाराज

‘मधुकर’ द्वारा संपादित, आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर द्वारा प्रकाशित।

२. भगवई (भाष्य), खण्ड १, १/१३१, १३२ का भाष्य, पृष्ठ ७६।

आर्ष वचन आगम के गंभीर अनुशीलन से परिपुष्ट होता है। शंका, कांक्षा, विचिकित्सा आदि रूप विष का शोधन एवं प्रतिकार करने में आगम से प्राप्त तत्त्वज्ञान रामबाण औषध के तुल्य कार्य करता है। शम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा और आस्तिक्य (सत्यनिष्ठा)—सम्यक्त्व के इन पांच लक्षणों की पुष्टि में भी आगम का स्वाध्याय सशक्त निमित्त बनता है। आध्यन्तर तप के रूप में स्वाध्याय की गणना इसीलिए की गई है कि वाचना, प्रच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षा और धर्मकथा के रूप में पञ्चविध स्वाध्याय का निरूपण मुख्यतः आगम को लक्षित कर किया गया है। सूत्र-आगम, अर्थ-आगम और तदुभय आगम—इन तीनों का स्वाध्याय ही असली स्वाध्याय है। 'स्वाध्याय से जीव क्या प्राप्त करता है?'—इस प्रश्न के उत्तर में आगम बताता है—'स्वाध्याय से ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय होता है।'^१

जैन दर्शन का मौलिक, गम्भीर एवं तलस्पर्शी अध्ययन करने के लिए जैन आगमों का अनुशीलन अपेक्षित है। समस्या यह है कि अनेक विद्वान एवं जिज्ञासु पाठक ऐसे हैं जिनके लिए जैन आगमों का अनुशीलन कुछ दुरूह है। इसका एक कारण यह है कि जैन आगम मूलतः प्राकृत भाषा में हैं। इस दृष्टि से जैन आगमों का हिन्दी संस्करण इन सबके लिए जैन दर्शन के अनुशीलन का सुगम माध्यम बन सकता है। इस प्रकार जैन आगमों के हिन्दी संस्करणों का जैन दर्शन के व्यापक प्रसार के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण योगदान हो सकता है।

जैन धर्म के श्वेताम्बर तेरापंथ सम्प्रदाय के नवम अधिशास्ता गणाधिपति आचार्यश्री तुलसी के वाचना-प्रमुखत्व में जैन आगमों की वाचना का महायज्ञ सन् १९५५ में प्रारम्भ हुआ। इनके मूल पाठ के संस्करण के सम्पादक दशम अधिशास्ता आचार्यश्री महाप्रज्ञ रहे। विस्तृत विवेचन के साथ आगमों के मूल प्राकृत पाठ, संस्कृत छायानुवाद तथा हिन्दी भावानुवाद के संस्करणों का कार्य प्रधान सम्पादक एवं विवेचक आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के निदेशन में हुआ तथा वर्तमान में आचार्यश्री महाश्रमणजी के निदेशन में चल रहा है। आगम-कार्य के विषय पर प्रकाश डालते हुए मुनि नथमल (आचार्यश्री महाप्रज्ञ) लिखते हैं—

“जैन परम्परा में वाचना का इतिहास बहुत प्राचीन है। आज से १५०० वर्ष पूर्व तक आगम की चार वाचनाएं हो चुकी हैं। देवर्द्धिगणी के बाद कोई सुनियोजित आगम-वाचना नहीं हुई। उनके वाचना-काल में जो आगम लिखे गए थे, वे इस लम्बी अवधि में बहुत ही अव्यवस्थित हो गए हैं। उनकी पुनर्व्यवस्था के लिए आज फिर एक सुनियोजित वाचना की अपेक्षा थी। आचार्यश्री तुलसी ने सुनियोजित सामूहिक वाचना के लिए प्रयत्न भी किया था, परन्तु वह पूर्ण नहीं हो सका। अन्ततः हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचे कि हमारी वाचना अनुसन्धानपूर्ण, गवेषणापूर्ण, तटस्थदृष्टि-समन्वित तथा सपरिश्रम होगी तो वह अपने आप सामूहिक हो जाएगी। इसी निर्णय के आधार पर हमारा यह आगम-वाचना का कार्य प्रारम्भ हुआ।”^२

१. उत्तरज्झयणाणि, २९/१९।

२. अंगसुत्ताणि, भाग-१, मुनि नथमल

(आचार्य महाप्रज्ञ) द्वारा लिखित
सम्पादकीय, पृ. २८।

इस समग्र योजना के इतिहास पर प्रकाश डालते हुए युवाचार्य महाप्रज्ञ (आचार्यश्री महाप्रज्ञ) ने लिखा है—

“आगम-संपादन की प्रेरणा

विक्रम संवत् २०११ का वर्ष और चैत्र मास। आचार्यश्री तुलसी महाराष्ट्र की यात्रा कर रहे थे। पुना से नारायणगांव की ओर जाते-जाते मध्यावधि में एक दिन का प्रवास मंचर (नामक गांव) में हुआ। आचार्यश्री एक जैन परिवार के भवन में ठहरे थे। वहां मासिक पत्रों की फाइलें पड़ी थीं। गृहस्वामी की अनुमति ले, हम लोग उन्हें पढ़ रहे थे। सांझ की बेला, लगभग छह बजे होंगे। मैं एक पत्र के किसी अंश का निवेदन करने के लिए आचार्यश्री के पास गया। आचार्यश्री पत्रों को देख रहे थे। जैसे ही मैं पहुंचा, आचार्यश्री ने धर्मदूत के सद्यःक अंक की ओर संकेत करते हुए पूछा—‘यह देखा कि नहीं?’ मैंने उत्तर में निवेदन किया—‘नहीं, अभी नहीं देखा।’ आचार्यश्री बहुत गंभीर हो गए। एक क्षण रुक कर बोले—‘इसमें बौद्ध-पिटकों के सम्पादन की बहुत बड़ी योजना है। बौद्धों ने इस दिशा में पहले ही बहुत कार्य किया है और अब भी बहुत कर रहे हैं। जैन-आगमों का संपादन वैज्ञानिक पद्धति से अभी नहीं हुआ है और इस ओर अभी ध्यान भी नहीं दिया जा रहा है।’ आचार्यश्री की वाणी में अन्तर्-वेदना टपक रही थी, पर उसे पकड़ने में समय की अपेक्षा थी।

“आगम-संपादन का संकल्प

‘रात्रिकालीन प्रार्थना के पश्चात् आचार्यश्री ने साधुओं को आमंत्रित किया। वे आए और वंदना कर पंक्तिबद्ध बैठ गए। आचार्यश्री ने सायं-कालीन चर्चा का स्पर्श करते हुए कहा—‘जैन-आगमों का कायाकल्प किया जाए, ऐसा संकल्प उठा है। उसकी पूर्ति के लिए कार्य करना होगा, पूर्ण श्रम करना होगा। बोलो, कौन तैयार हैं?’

‘सारे हृदय एक साथ बोल उठे—‘सब तैयार हैं।’

‘आचार्यश्री ने कहा—‘महान् कार्य के लिए महान् साधना चाहिए। कल ही पूर्व तैयारी में लग जाओ, अपनी-अपनी रुचि का विषय चुनो और उसमें गति करो।’

‘मंचर से विहार कर आचार्यश्री संगमनेर पहुंचे। पहले दिन वैयक्तिक बातचीत होती रही। दूसरे दिन साधु-साध्वियों की परिषद् बुलाई गई। आचार्यश्री ने परिषद् के सम्मुख आगम-संपादन के संकल्प की चर्चा की। सारी परिषद् प्रफुल्ल हो उठी। आचार्यश्री ने पूछा—‘क्या इस संकल्प को अब निर्णय का रूप देना चाहिए?’

‘समलय से प्रार्थना का स्वर निकला—‘अवश्य, अवश्य।’ आचार्यश्री औरंगाबाद पधारे। सुराणा-भवन, चैत्र शुक्ला त्रयोदशी (वि. सं. २०११)^१, महावीर-जयन्ती का

१. उस समय विक्रम संवत् का प्रारम्भ हमारे धर्म-संघ में श्रावण कृष्ण प्रतिपदा से होता था। अब चैत्र शुक्ला प्रतिपदा से

किया जाता है। तदनुसार यह वि.सं. २०१२ है।

पुण्य-पर्व। आचार्यश्री ने साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका—इस चतुर्विध-संघ की परिषद् में आगम-संपादन की विधिवत् घोषणा की।

“आगम-संपादन का कार्यारंभ

वि. सं. २०१२ श्रावण मास (उज्जैन चातुर्मास) से आगम-संपादन का कार्यारंभ हो गया। न तो संपादन का कोई अनुभव और न कोई पूर्व तैयारी। अकस्मात् धर्मदूत का निमित्त पा आचार्यश्री के मन में संकल्प उठा और उसे सबने शिरोधार्य कर लिया। चिंतन की भूमिका से इसे निरी भावुकता ही कहा जाएगा, किन्तु भावुकता का मूल्य चिंतन से कम नहीं है। हम अनुभव-विहीन थे, किन्तु आत्म-विश्वास से शून्य नहीं थे। अनुभव आत्म-विश्वास का अनुगमन करता है, किन्तु आत्म-विश्वास अनुभव का अनुगमन नहीं करता।

“प्रथम दो-तीन वर्षों में हम अज्ञात दिशा में यात्रा करते रहे। फिर हमारी सारी दिशाएं और कार्य-पद्धतियां निश्चित व सुस्थिर हो गईं। आगम-संपादन की दिशा में हमारा कार्य सर्वाधिक विशाल व गुरुतर कठिनाइयों से परिपूर्ण रहा है, यह कह कर मैं किंचित् भी अतिशयोक्ति नहीं कर रहा हूं। आचार्यश्री के अदम्य उत्साह व समर्थ प्रयत्न से हमारा कार्य निरंतर गतिशील हो रहा है। इस कार्य में हमें अन्य अनेक विद्वानों की सद्भावना, समर्थन और प्रोत्साहन मिल रहा है। मुझे विश्वास है कि आचार्यश्री की यह वाचना पूर्ववर्ती वाचनाओं से कम अर्थवान् नहीं होगी।”

आगम-कार्य के प्रति गुरुदेव तुलसी अत्यधिक समर्पित थे। उन्हीं के शब्दों में “विहार चाहे कितना ही लम्बा क्यों न हो, आगम-कार्य में कोई अवरोध नहीं होना चाहिए। आगम-कार्य करते समय मेरा मानसिक तोष इतना बढ़ जाता है कि समस्त शारीरिक क्लान्ति मिट जाती है। आगम-कार्य हमारे लिए खुराक है। मेरा अनुमान है कि इस कार्य के परिपार्श्व में अनेक-अनेक साहित्यिक प्रवृत्तियां प्रारम्भ होंगी, जिनसे हमारे शासन की बहुत प्रभावना होगी।”

एक विहंगावलोकन

पिछले छह दशकों में आगम-कार्य के अंतर्गत जो विशाल कार्य संपन्न हुआ है उसका एक विहंगावलोकन करने पर ज्ञात होगा कि किस प्रकार वाचना-प्रमुख गणाधिपति गुरुदेव श्री तुलसी एवं सम्पादक-विवेचक महान् श्रुतधर आचार्यश्री महाप्रज्ञ के द्वारा अनेक साधु-साध्वियों के सहयोग से जैन साहित्य के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण कार्य किया है, जो कार्य आज भी आगे बढ़ रहा है।

मूल पाठ

इस अर्वाचीन वाचना का सर्वाधिक दुरूह कार्य था—मूल पाठ के सम्पादन का और वह

१. उत्तरज्ज्ञयणाणि, युवाचार्य महाप्रज्ञ द्वारा २. व्यवहार-भाष्य, सम्पादकीय, पृ. २५
लिखित सम्पादकीय, पृ. १३। (सम्पादिका—डॉ. समणी कुसुमप्रज्ञा)

भी आधुनिक समीक्षात्मक पद्धति से। ३२ आगमों का समीक्षात्मक-सम्पादन-सहित प्रकाशन सन् १९८५ तक संपन्न हुआ।

इस संस्करण में संशोधित मूल पाठ के साथ पाद-टिप्पण में पाठान्तरों को भी दे दिया गया है। इसके साथ ही प्रत्येक आगम का संक्षिप्त परिचय, कार्य में प्रयुक्त प्रतियों का परिचय तथा परिशिष्ट में 'जाव' की पूर्ति करने वाले पाठों के संकेत उपलब्ध करवा दिए हैं।

सभी ३२ आगमों की अकारादि शब्द-सूची भी प्रकाशित हो गई है। ११ अंगों की शब्द-सूची "अंगसुत्ताणि शब्द-सूची" (आगम शब्दकोश के नाम से) प्रकाशित है तथा शेष आगमों की शब्द-सूचियां आगमों के उन खण्डों के परिशिष्ट में ही समाहित कर दी गई हैं।

सभी आगमों का ग्रन्थाग्र-परिमाण भी प्रत्येक आगम के साथ निर्दिष्ट है।

मूल पाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद, टिप्पण

३२ आगमों में अब तक १० आगमों के वे संस्करण भी प्रकाशित हो गए हैं, जिनमें तीन कालमों में एक साथ मूल पाठ, संस्कृत छाया अनुवाद और हिन्दी अनुवाद दे दिए गए हैं। (इसकी सूची प्रकाशकीय में दे दी गई है—देखें पृष्ठ ६)। प्रत्येक अध्ययन के अन्त में (भगवई में आवश्यकतानुसार सूत्रों के अन्त में) पारिभाषिक शब्दों, दुरूह विषयों आदि पर विस्तृत व्याख्यात्मक टिप्पण (अथवा भाष्य) भी विपुल मात्रा में दे दिए गए हैं। आवश्यकतानुसार आगमों में उपलब्ध इन्हीं विषयों के संदर्भ आदि भी दिए गए हैं। आगम-वाङ्मय की व्याख्या में तुलनात्मक रूप में वैदिक, बौद्ध आदि साहित्य तथा आयुर्वेद, अर्थशास्त्र एवं अन्य प्राचीन संस्कृत, प्राकृत आदि वाङ्मय का भी उपयोग किया गया है। कोई भी तटस्थ विद्वान् यह अनुभव किये बिना नहीं रह सकता कि इतनी गहन एवं समीक्षात्मक व्याख्याएं जैन आगम-वाङ्मय पर अन्यत्र दुर्लभ हैं। इस रूप में सम्पादक-विवेचक (भाष्यकार) आचार्यश्री महाप्रज्ञजी का यह महान अवदान न केवल जैन वाङ्मय के क्षेत्र में अपितु समग्र रूप से प्राचीन भारतीय वाङ्मय के क्षेत्र में भी अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है, ऐसा कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी।

जैन आगम पञ्चम अंग भगवई (व्याख्याप्रज्ञप्ति) का सभाष्य विस्तृत संस्करण का कार्य चल रहा है। इसके प्रथम चार खण्डों में शतक १-१६ तक प्रकाशित हो चुके हैं। आगे के प्रकाशन में अभी कुछ समय लगेगा ऐसा अनुमान है। इसी बीच मैंने (मुनि महेन्द्रकुमार ने) तेरापंथ सम्प्रदाय के ग्यारहवें (वर्तमान) अधिशास्ता आचार्यश्री महाश्रमणजी से अनुनय किया कि भगवती के भाष्य का कार्य अभी पूर्ण करने

१. आगमों में यत्र-तत्र पाठों को संक्षेप में 'जाव' द्वारा व्यक्त किया गया है, जिसका तात्पर्य है 'यावत्' यानी 'प्रथम

शब्द से लेकर अंतिम शब्द तक।' बीच में रहे हुए पाठ कहां से लेना है, उसको पूर्ण करना जाव-पूर्ति कहलाता है।

में कुछ समय लगेगा। यदि आपकी अनुज्ञा हो तो भगवती सूत्र के केवल हिन्दी अनुवाद का संस्करण शीघ्र तैयार हो सकता है। उन्होंने कृपा कर के इसके लिए अनुज्ञा प्रदान कर दी। तदनुसार यह ग्रन्थ पाठकों की ज्ञान-पिपासा को शान्त करने की दृष्टि से तैयार किया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ भगवती सूत्र (व्याख्याप्रज्ञप्ति) के केवल हिन्दी अनुवाद के संस्करण के रूप में संरचित है। इस ग्रंथ में भगवती-सूत्र (सम्पूर्ण) के शतक १-४१ का केवल हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया गया है।

इसके मूल पाठ का आधार है—अंगसुत्ताणि भाग-२ जो भगवई (विआहपण्णत्ति) के समीक्षात्मक संपादन के साथ प्रकाशित संस्करण के रूप में है।^१ यह संस्करण अनेक प्राचीन पाण्डुलिपियों के समीक्षात्मक अनुसंधान पर आधारित है।

प्रस्तुत संपूर्ण भगवती सूत्र दो खण्डों में है—

प्रथम खण्ड में शतक १-११

द्वितीय खण्ड में शतक १२-४१

आचार्यश्री महाश्रमण के निदेशन में वर्तमान संस्करण के सम्पादन का कार्य मैंने किया है। हिन्दी अनुवाद, जो भाष्य वाले संस्करण में उपलब्ध है, उसीको अपेक्षा अनुसार सम्पादित कर वर्तमान संस्करण के रूप में तैयार किया गया है।

सम्पादन करते समय कुछ बातों पर विशेष ध्यान दिया गया है—

१. समास-युक्त शब्दों का पदच्छेद कर बीच में (हाइफन -) लगा दिए हैं। जहां लम्बे समास हैं, उनमें अनेक शब्दों का समास होने से प्रत्येक शब्द के साथ हाइफन का चिह्न लगा कर फिर नौमा (,) का चिह्न दिया है तथा अन्त में जो शब्द हैं उनके बीच (हाइफन -) चिह्न लगा दिया है। इससे अर्थबोध में स्पष्टता होती है। उदाहरणार्थ—

“गौतम! जीव-द्रव्य अजीव-द्रव्यों का पर्यादान (ग्रहण) करते हैं, पर्यादान कर उन्हें औदारिक-, वैक्रिय-, आहारक-, तेजस्-, और कर्मण-(शरीर), श्रोत्रेन्द्रिय यावत् स्पर्शेन्द्रिय, मन-योग, वचन-योग, काय-योग और आनापान के रूप में निष्पन्न करते हैं।”-भ. २५/१८ (पृष्ठ ७८४)

२. कहीं-कहीं पारिभाषिक शब्दों के साथ (कोष्ठक-चिह्न) में उनके सरल शब्दार्थ भी दे दिए हैं। उदाहरणार्थ—‘पृथक्त्व’ जिसका अर्थ है—दो से नौ। जैसे—‘पृथक्त्व वर्ष’ की जगह ‘पृथक्त्व (दो से नौ)-वर्ष’ इस प्रकार स्पष्ट कर दिया है।

३. जहां कहीं आगमों के नामोल्लेख हैं वहां उन्हें ‘बोल्ड’ कर दिया है।

१. अंगसुत्ताणि भाग-२, वाचना-प्रमुख भारती लाडनू, सन् १९७४ (प्रथम आचार्य तुलसी, सम्पादक मुनि नथमल संस्करण), १९८७ (द्वितीय संस्करण)।
(आचार्य महाप्रज्ञ), प्रकाशक जैन विश्व

जैसे-पणवणा । भगवती के संदर्भ में भ. के साथ सूत्रांक दिए हैं । जैसे-भ. २५/४३० (पृष्ठ ८३७)

४. आवश्यकतानुसार अन्तःशीर्षक दिए हैं, जैसे—

नैरयिक आदि में उपपात आदि के गमक का पद, नरक-अधिकार (भ. २४/१, पृष्ठ ७०९),

प्रथम आलापक : नैरयिक में असंज्ञी-तिर्यच-पंचेन्द्रिय का उपपात आदि (भ. २४/३, पृष्ठ ७०९),

प्रथम नरक में असंज्ञी-तिर्यच-पंचेन्द्रिय का उपपात आदि (भ. २४/६, पृष्ठ ७१०) ।

पहला गमक : औधिक और औधिक

१. उपपात-द्वार (भ. २४/७, पृष्ठ ७१०)

५. जहां मूल में 'जाव' का प्रयोग है वहां अनुवाद में 'यावत्' का प्रयोग कर जो अंतिम शब्द दिया है, वहां 'तक' उसे समझना चाहिए ।

जैसे—'गौतम ! संख्येय नहीं हैं, असंख्येय नहीं हैं, अनन्त हैं । इसी प्रकार वृत्त-संस्थान अनन्त हैं । इसी प्रकार यावत् आयत-संस्थान । इसी प्रकार पुनरपि एक-एक संस्थान के साथ पांचों संस्थानों की चारणा करणीय है, जैसे अधस्तन संस्थान यावत् आयत-संस्थान के साथ । इसी प्रकार यावत् अधःसप्तमी । इसी प्रकार कल्पों में भी यावत् ईषत्-प्राग्भारा-पृथ्वी ।' (पृ. ७८८)

भाष्य लिखते समय मुझे अनुवाद में कुछ परिवर्तन करना आवश्यक लगा ।

इस प्रकार का परिवर्तन आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के सान्निध्य में जब २५वें शतक के भाष्य का कार्य चल रहा था तब भी करना पड़ा था । उदाहरणार्थ—

'भन्ते ! जहां एक परिमण्डल-संस्थान यवमध्य (परिमाण वाला) है वहां क्या परिमण्डल-संस्थान संख्येय हैं ? असंख्येय हैं ? अथवा अनन्त हैं ?

गौतम ! संख्येय नहीं हैं, असंख्येय नहीं हैं, अनन्त हैं ।' भ. २५/४५ (पृष्ठ ७८७)

इस सूत्र में यव-मध्य का अर्थ पहले 'यव-मध्य आकार वाला' किया था । बाद में भाष्य लिखते समय पता चला कि यह 'यव-मध्य' परिमाण वाचक है । इसलिए अनुवाद में भी यह परिवर्तन किया तथा उसके भाष्य में इसे स्पष्ट किया गया ।

बाद में भी जब मैंने भाष्य लिखना प्रारम्भ किया, तो कहीं-कहीं परिवर्तन की अपेक्षा लगी । जैसे—

"भन्ते ! (एक) परिमण्डल-संस्थान द्रव्य की अपेक्षा क्या कृतयुग्म है ? त्र्योज है ? द्वापरयुग्म है ? कल्योज है ?

गौतम ! (एक) परिमण्डल-संस्थान द्रव्य की अपेक्षा न कृतयुग्म है, न त्र्योज है, न

द्वापरयुग है, कल्योज है।” भ. २५/५६ (पृष्ठ ७९१)

पहले अनुवाद में हमने “भते! परिमण्डल संस्थान द्रव्य की अपेक्षा क्या कृतयुग—चार द्रव्य हैं? त्र्योज—तीन द्रव्य हैं? द्वापरयुग—दो द्रव्य हैं? कल्योज—एक द्रव्य है?” इस प्रकार किया था किन्तु भाष्य लिखते समय पता चला कि कृतयुग का अर्थ ‘चार’ करने की अपेक्षा कृतयुग ही करना चाहिए, क्योंकि कृतयुग में चार, आठ, बारह आदि अनेक संख्याएं हैं। इस दृष्टि से यह परिवर्तन मैंने किया है। पहले अनुवाद करते समय मैंने अर्थ पर पूरा ध्यान नहीं दिया था। यह अर्थ २५/५६ से २५/६३ तक ऐसे ही किया था। हालांकि आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने इसे देख भी लिया था तथा आवश्यकतानुसार कई जगह परिवर्तन भी करवाया था जो पाण्डुलिपि में अभी भी अंकित हैं। पर उक्त गलती पर संभवतः उनका ध्यान नहीं गया होगा।

एकाध स्थान पर मुझे मूल पाठ में भी पाठान्तर के आधार पर अनुवाद करना पड़ा है। उस पर भाष्य में मैंने स्पष्टीकरण कर दिया है, क्योंकि स्वीकृत पाठ में अर्थ की विसंगति होती है। जैसे—भगवती २५/६८ में अंगसुत्ताणि भाग-२ में मूल पाठ इस प्रकार दिया गया है—“तंसा णं भते! संठाणा किं कडजुम्मपदेसोगाढा—पुच्छा।

गोयमा! ओघादेसेणं कडजुम्मपदेसोगाढा, नो तेयोगपदेसोगाढा, नो दावरजुम्मपदेसोगाढा, नो कलियोगपदेसोगाढा।।

विधानादेसेणं कडजुम्मपदेसोगाढा वि, तेयोगपदेसोगाढा वि, नो दावरजुम्मपदेसोगाढा, कलियोगपदेसोगाढा वि। चउरंसा जहा वट्ठा।”

श्रीमज्जयाचार्य ने भगवती-जोड़ में इस सूत्र के अनुवाद में दिये गए पाठ के अनुसार अनुवाद नहीं किया है, किन्तु ‘हेम भगवती’ में जो पाठ मिलता है उसके अनुसार अनुवाद किया है। भगवती-जोड़ की गाथाएं इस प्रकार हैं—

बहु वच तंस अहो जिनराया!, स्यूं कडजुम्म प्रदेश ओगाह्या?

इत्यादिक वर प्रश्न उदारं, श्री जिन उत्तर भाखै सारं॥३६॥

ओघ समुच्चय करि अवलोय, कडजुम्म नभ अवगाहक होय।

त्र्योज दावर कलियोग प्रदेश, अवगाहक नहिं छै त्रिहुं एस॥३७॥

विधान एक-इक आश्री सोय, कडजुम्म नभ अवगाहक होय।

त्र्योज दावरजुम्म नभ अवगाही, कल्योज नभ अवगाहक नांही^१॥३८॥

बहु वच चउरंसा संठाण, जिम बहु वच वृत्त आखयो जाण।

तिण हिज विध कहिवो छै ऐह, ओघ विधान आश्रयी जेह॥३९॥

भ. जो. खण्ड ७, पृ. ३४, ३५, दा. ४३७, गा. ३६-३९

इस प्रकाशित भगवती-जोड़ के प्रवाचक आचार्यश्री तुलसी हैं, प्रधान सम्पादक १. भगवती-जोड़, दा. ४३७, गा. ३८।

आचार्यश्री महाप्रज्ञजी हैं तथा सम्पादक साध्वीप्रमुखाश्री कनकप्रभाजी हैं। उन्होंने अड़तीसवीं गाथा पर जो पाद-टिप्पण दिया है उसमें स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है—“प्रस्तुत गाथा के सामने भगवती का जो पाठ उद्धृत किया गया है, उसकी जोड़ के साथ संवादिता नहीं है। मुद्रित और हस्तलिखित अनेक प्रतियों में ऐसा ही पाठ है। किन्तु जयाचार्य द्वारा लिखित ‘हेम भगवती’ में जो पाठ है, वह इस गाथा का संवादी है।”

उपर्युक्त विवेचन का सार यह है कि जहां भगवती के स्वीकृत पाठ में विधानादेश के संदर्भ में ‘नो दावरजुम्पपदेसोगाढा, कलियोगपदेसोगाढा वि’ पाठ है, वहां ‘हेम भगवती’ में ‘दावरजुम्पपदेसोगाढा वि, नो कलियोगपदेसोगाढा’ पाठ है। हमने भगवती भाष्य में इस समग्र प्रसंग की मीमांसा की है, जो इस प्रकार है—‘त्रिकोण’—भगवती २५/५२ में बताए अनुसार ‘एक युग्म-प्रदेशिक घनत्र्यस संस्थान जघन्यतः चार-प्रदेशिक है, वह जघन्यतः आकाश के चार प्रदेशों का अवगाहन करता है। अतः वह कृतयुग्म प्रदेशावगाढ होता है। जो एक प्रतरत्र्यस संस्थान ओजस्-प्रदेशिक होता है वह जघन्यतः तीन-प्रदेशिक होता है तथा जघन्यतः आकाश के तीन प्रदेशों का अवगाहन करता है। इसी प्रकार एक घनत्र्यस संस्थान जो ओजस्-प्रदेशिक है वह जघन्यतः पैंतीस-प्रदेशिक होता है तथा जघन्यतः आकाश के पैंतीस प्रदेशों का अवगाहन करता है। तीन और पैंतीस में चार-चार का अपहार करने पर तीन शेष रहते हैं, अतः वह त्र्योज-प्रदेशावगाढ होता है। जो एक प्रतरत्र्यस संस्थान युग्म-प्रदेशिक होता है वह जघन्यतः छह-प्रदेशिक होता है तथा जघन्यतः आकाश के छह प्रदेशों का अवगाहन करता है। छह में चार का अपहार करने पर दो शेष रहते हैं, अतः वह द्वापर-युग्म-प्रदेशावगाढ होता है, किन्तु त्र्यस संस्थान में कल्योज-प्रदेशावगाढ नहीं होता।’

बहुवचन में पृच्छा होने पर जब ओघादेश से मीमांसा करते हैं तब समुच्चय त्र्यस-संस्थानों का एक साथ विचार किया जाता है। इन सबके सभी प्रदेशों का योग रूप में करने से स्वभावतः कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ ही होते हैं क्योंकि चार-चार का अपहार करने पर चार शेष रहते हैं। इसलिए ओघादेश से बहुवचन में त्र्यस-संस्थान केवल कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ ही होते हैं। शेष तीन भंग नहीं होते।

बहुवचन में विधानादेश से एक-एक संस्थान पर पृथक्-पृथक् विचार किया जाता है। यहां पर भगवती के मूल पाठ में कृतयुग्म-प्रदेशावगाढ, त्र्योज-प्रदेशावगाढ तथा कल्योज-प्रदेशावगाढ का विधान है किन्तु द्वापरयुग्म-प्रदेशावगाढ का निषेध है। भगवती-जोड़ में कृतयुग्म, त्र्योज और द्वापरयुग्म का विधान है किन्तु कल्योज का निषेध है। (इस विषय में ‘हेम भगवती’ के सन्दर्भ में हमने ऊपर चर्चा की है।)

यह विमर्शनीय है, क्योंकि भगवती २५/६३ में द्वापरयुग्म का विधान है, कल्योज का निषेध है। फिर विधानादेश में द्वापरयुग्म का निषेध और कल्योज का विधान कैसे किया

गया? यह तो स्पष्ट है कि त्र्यस संस्थान चार, तीन, पैंतीस और छह प्रदेशों का अवगाहन कर सकता है। फिर कल्योज-प्रदेश के अवगाहन की शक्यता ही नहीं है। इस आधार पर ऐसा लगता है कि भगवती-जोड़ में उपलब्ध 'हेम भगवती' का पाठ सही है। यह अन्वेषण का विषय है कि 'हेम भगवती' में जो पाठ उपलब्ध है उसका मूल आधार क्या है? शेष प्रतियों में जो पाठ मिलता है तथा हमारे द्वारा स्वीकृत पाठ जो अंगसुत्ताणि में छापा है उसकी संगति कैसे होगी? भगवती-वृत्ति में इस पाठ की कोई व्याख्या नहीं की गई, ऐसा क्यों? वहां पर केवल 'एवं त्र्यसादिसंस्थानसूत्राण्यपि भावनीयानि' इतना ही मिलता है। इस प्रकार यद्यपि मूल वृत्ति में इसकी कोई सीमांसा नहीं है फिर भी वृत्ति में ही २५/७० के अन्त में वृद्धोक्त संग्रह-गाथा दी गई है। उसमें समग्र आलापक का संग्रह किया गया है। उसकी अन्तिम गाथा में त्र्यस में कल्योज का वर्जन किया गया है। वह गाथा इस प्रकार है—

सर्व्वेवि आययम्मि गेण्हसु परिमंडलंमि कडजुम्मं।

वज्जेज्ज कलिं तंसे दावरजुम्मं च सेसेसु ॥५॥

इस आधार पर यह असंदिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि त्र्यस के बहुवचन में विधानादेश में द्वापरयुग का निषेध करने वाला पाठ जो 'हेम भगवती' में तथा भगवती जोड़ में मान्य किया गया है, वह संगत है। इस निष्कर्ष का समर्थन जोसेफ डेल्यू द्वारा अंग्रेजी में व्याख्यायित भगवती के संस्करण में प्राप्त होता है। डेल्यू ने भी अभयदेवसूरि द्वारा उद्धृत वृद्धोक्त गाथाओं के आधार पर जो यंत्र दिया है उसमें त्र्यस के विधानादेश में कल्योज का निषेध किया है।^१

अस्तु, युक्तिसंगतता के आधार पर तथा उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर हमने प्रस्तुत सूत्र (२५/६८) का अनुवाद '.... विधान की अपेक्षा से कृतयुग-प्रदेशों का अवगाहन करने वाले भी हैं, त्र्योज-प्रदेशों का अवगाहन करने वाले भी हैं, द्वापर युग-प्रदेशों का अवगाहन करने वाले भी हैं, कल्योज-प्रदेशों का अवगाहन नहीं करते.....।' इस प्रकार किया है। (पृष्ठ ७९२)

शतक २५ से ४१ तक के अनुवाद को भी एक बार फिर देख लिया है ताकि कोई विसंगति या गलती न रहे। अनुवाद करते समय भी भगवती-जोड़, अभयदेवसूरि कृत वृत्ति तथा कहीं-कहीं भगवती चूर्णि आदि का सहयोग लिया गया है।

हिन्दी अनुवाद वाले संस्करण का कार्य आचार्य श्री महाप्रज्ञजी के निर्देशन में ही प्रारम्भ हो गया था। उनका पूरा आशीर्वाद एवं मार्गदर्शन प्राप्त होता रहा। उनके महाप्रयाण के पश्चात् समग्र आगम-कार्य के निर्देशन का दायित्व आचार्यश्री महाश्रमण जी ने संभाला। उनका भी अत्यधिक आत्मीय प्रोत्साहन मिलता रहा है। उन्होंने आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के महाप्रयाण के पश्चात् सरदारशहर में ही कृपा कर मुझे निर्देश दे दिया था कि 'आपको

भगवती भाष्य का आगे का कार्य पूर्ण करना है।' तदनुसार पिछले लगभग डेढ़ वर्ष से मैं इस कार्य में संलग्न हूँ। इस बीच भगवती के हिन्दी अनुवाद के प्रस्तुत संस्करण का कार्य संपन्न हुआ है।

आचार्यश्री महाश्रमणजी आगम-कार्य में बहुत वर्षों से संलग्न रहे हैं। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के अन्तिम वर्षों में जो आगम-कार्य-विषयक संगोष्ठियाँ हुई थी, उनमें आगम-कार्य का विशिष्ट दायित्व युवाचार्यश्री महाश्रमणजी (आचार्यश्री महाश्रमणजी) को दिया गया था। आगम-कार्य में उनकी सक्रिय संभागिता का उल्लेख पूर्व आचार्य-द्वय द्वारा आगम-प्रकाशन में उल्लिखित 'अन्तस्तोष', सम्पादकीय और भूमिका में तथा प्रकाशक द्वारा लिखित प्रकाशकीय में किया गया है।

आगम-कार्य में आचार्यश्री महाश्रमणजी का योगदान

१. भगवई (विआहपण्णत्ती) (मूलपाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद, भाष्य आदि सहित)

खण्ड-१—सहयोगी भाष्य-लेखन, सम्पादन

खण्ड-२—सहयोगी, श्रुतलेखन एवं सम्पादन

खण्ड-३

खण्ड-४

खण्ड-५

संस्कृत छाया के निरीक्षण का दायित्व।

२. आचारांगभाष्यम् (मूलपाठ, संस्कृत छाया, संस्कृत भाष्य, हिन्दी अनुवाद सहित)

भाष्य—सहयोगी

३. अणुओगदाराई (मूलपाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद, टिप्पण सहित)

संस्कृत छाया के निरीक्षण का दायित्व।

४. जैन पारिभाषिक शब्द कोश

मुख्य सम्पादक

वर्तमान में चालू कार्य

१. वर्गीकृत आगम—आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के सान्निध्य में कार्यारम्भ। आचार्यश्री महाश्रमणजी द्वारा वर्गीकरण का निदेशन कार्य चालू है।

२. अंतगडदसाओ (मूलपाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद, टिप्पण आदि सहित)

प्रधान सम्पादक

३. कप्पो (मूलपाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद, टिप्पण आदि सहित)

आचार्यश्री महाप्रज्ञजी द्वारा आरम्भ

प्रधान सम्पादक—आचार्यश्री महाप्रज्ञ क साथ

४. ववहारो (मूलपाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद, टिप्पण आदि सहित)
आचार्यश्री महाप्रज्ञजी द्वारा आरब्ध
प्रधान सम्पादक—आचार्यश्री महाप्रज्ञ क साथ
५. निसीहज्झयणं (मूलपाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद, टिप्पण आदि सहित)
आचार्यश्री महाप्रज्ञजी द्वारा आरब्ध।
प्रधान सम्पादक—आचार्यश्री महाप्रज्ञ क साथ
६. दसाओ (मूलपाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद, टिप्पण आदि सहित)
आचार्यश्री महाप्रज्ञजी द्वारा आरब्ध।
प्रधान सम्पादक—आचार्यश्री महाप्रज्ञ क साथ
७. रायपसेणइयं (मूलपाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद, टिप्पण आदि सहित)
प्रधान सम्पादक
८. अणुत्तरोववाइयदसाओ (मूलपाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद, आदि सहित)
प्रधान सम्पादक

गुरुदेव तुलसी और मुनिश्री नथमलजी (आचार्यश्री महाप्रज्ञजी) ने जो कार्य वि.सं. २०१२ (ईस्वी सन् १९५५) में प्रारम्भ किया था, वह ईस्वी सन् २०१२ में भी चल रहा है। आचार्यश्री महाश्रमणजी का कुशल नेतृत्व हमें प्राप्त है। तेरापंथ धर्मसंघ की विलक्षण विनय-परिपाटी एवं अनुपम अनुशासन-परम्परा हमारे आधार-स्तम्भ हैं। इसलिए आशा है कि आचार्यश्री महाश्रमणजी के नेतृत्व एवं निदेशन में आगम-कार्य का अवशिष्ट भाग सम्पन्न होगा जिसमें हमारे संघ के साधु-साध्वियों का योगदान प्राप्त हो रहा है। श्रद्धेय आचार्यश्री महाश्रमणजी के प्रति मैं विनम्र भाव से अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं।

प्रस्तुत संस्करण के मेरे सम्पादन-कार्य में मुझे मेरे सहगामी मुनि अजितकुमारजी का सराहनीय सहयोग प्राप्त हुआ है। उन्होंने प्रूफ-रीडिंग आदि कार्यों में निष्ठा के साथ श्रम किया है। उनके प्रति मेरी मंगलकामना।

अन्त में मैं अपनी ओर से उन सभी व्यक्तियों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करना चाहूंगा जिन्होंने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में मेरे कार्य में सहयोग किया है।

आशा है, भगवती सूत्र का यह हिन्दी संस्करण जिज्ञासु पाठकों की ज्ञान-पिपासा को शांत करने में सहायक बनेगा।

—मुनि महेन्द्रकुमार

भूमिका

जैन ज्ञान-मीमांसा में श्रुतज्ञान के अंतर्गत उस समग्र वाङ्मय का समावेश किया जाता है जो आगम कहलाता है। श्रुत शब्द का एक अर्थ है—शास्त्र। वैदिक शास्त्रों को जैसे 'वेद' और बौद्ध शास्त्रों को जैसे 'पिटक' कहा जाता है, वैसे ही जैन शास्त्रों को 'आगम' कहा जाता है।

आगमों के अनुशीलन से जैन दर्शन और धर्म के मौलिक मन्तव्यों का ज्ञान हो सकता है। जैसे—जैन दर्शन ने ज्ञान और आचरण के युगपत् महत्त्व का निरूपण किया है, पर प्राथमिकता ज्ञान को दी है। उत्तराध्ययन आगम में इस विषय में बताया गया है—

नादंसणिस्स नाणं नाणेण विणा न हुंति चरणगुणा।

अगुणिस्स नत्थि मोक्खो, नत्थि अमोक्खस्स निव्वाणं॥^१

अर्थात् "अदर्शनी (असम्यक्त्वी) के ज्ञान (सम्यग् ज्ञान) नहीं होता, ज्ञान के बिना चारित्र-गुण नहीं होते। अगुणी व्यक्ति की मुक्ति नहीं होती। अमुक्त का निर्वाण नहीं होता।"

इसी प्रकार आगम के इस निरूपण पर भी ध्यान दें—

पढमं नाणं, तओ दया, एवं चिदुइ सव्वसंजए।

अन्नाणी किं काही? किं वा नाहिइ छेय-पावगं?^२

"पहले ज्ञान फिर दया—इस प्रकार सब मुनि स्थित होते हैं। अज्ञानी क्या करेगा? वह क्या जानेगा—क्या श्रेय है और क्या पाप?" आचार से पूर्व ज्ञान का महत्त्व इससे उजागर हो रहा है।

आगमों का अनुशीलन करने से अनेकानेक विषयों की जानकारी प्राप्त होती है। कुछ विषय ऐसे हैं, जिन्हें पुनः-पुनः पढ़ने से साधक अभिप्रेरित होता रहता है। उसे जैसे कोई जगा देता है, उसके प्रमाद आदि को पलायन करवा देता है। उदाहरणार्थ—

दुमपत्तए पंडुयए जहा निवडइ राइगणाण अच्चए।

एवं मणुयाण जीवियं समयं गोयम! मा पमायए॥^३

१. उत्तरज्झयणाणि, २८/३०।

३. उत्तरज्झयणाणि, १०/१।

२. दसवेअलियं, ४/गाथा १०।

—“रात्रियां बीतने पर वृक्ष का पका हुआ पत्ता जिस प्रकार गिर जाता है, उसी प्रकार मनुष्य का जीवन एक दिन समाप्त हो जाता है, इसलिए हे गौतम! तू क्षण भर भी प्रमाद मत कर।”

इस आगम-सूक्त का भावपूर्ण स्वाध्याय जीवन की क्षणभंगुरता के प्रति साधक को सावधान करता है तथा क्षण भर भी प्रमाद न करने के लिए उत्प्रेरित करता है। आगमों में अनेक स्थानों पर आलम्बन-सूत्रों का प्रणयन हुआ है, जो साधक को आध्यात्मिक पथदर्शन देने में सक्षम हैं। जैसे—

बहिया उड्डमादाय, नावकंखे कयाइ वि।

पुव्वकम्मखयद्वाए, इमं देहं समुद्धरे॥^१

—“बाह्य-शरीर से भिन्न ऊर्ध्व-आत्मा है इसे स्वीकार कर किसी प्रकार की आकांक्षा न करे। पूर्व कर्मों के क्षय के लिए ही इस शरीर को धारण करे।”

इसी प्रकार, आचार्य का यह सूक्त एक सशक्त आलंबन है—एगगप्पमुहे विदिसप्पङ्गणे, निव्विन्नचारी अरए पयासु।^२

—“मुनि अपने लक्ष्य की ओर मुख किए चले, वह विरोधी दिशाओं का पार पा जाए, विरक्त रहे, स्त्रियों में रत न बने।”

आगम-वाङ्मय तत्त्व-विषयक सूक्ष्म विवेचन से भरा हुआ है। सत्य-सन्धित्सु के लिए ऐसा विवेचन बहुत उपयोगी हो जाता है, क्योंकि वहां जो रहस्योद्घाटन हुए हैं, वे बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। आगम-ग्रन्थ अपने आप में विश्वस्त, मौलिक, तलस्पर्शी और प्रेरक हैं। उदाहरणार्थ—पृथ्वीकायिक आदि सूक्ष्म जीवों की वेदना पर प्रकाश डालते हुए भगवती में बताया गया है—

“भंते! पृथ्वीकायिक जीव आक्रांत होने पर किस प्रकार की वेदना का प्रत्यनुभव करता हुआ विहरण करता है?

गौतम! जैसे कोई पुरुष तरुण, बलवान्, युगवान्, युवा, स्वस्थ और सधे हुए हाथों वाला है। उसके हाथ, पांव, पार्श्व, पृष्ठान्तर और उरु दृढ़ और विकसित हैं। सम-श्रेणी में स्थित दो ताल वृक्ष और परिघा के समान जिसकी भुजाएं हैं, चर्मपेष्टक, पाषाण, मुद्गर और मुट्ठी के प्रयोगों से जिसके शरीर के पुट्टे आदि सुदृढ़ हैं, जो आंतरिक उत्साह-बल से युक्त है; लंघन, प्लवन, धावन और व्यायाम करने में समर्थ है; छेक, दक्ष, प्राप्तार्थ, कुशल, मेधावी, निपुण और सूक्ष्म शिल्प से समन्वित है। वह वृद्धावस्था से जीर्ण, जरा से जर्जरित देह वाला, आतुर, बुभुक्षित, पिपासित, दुर्बल, क्लृप्त पुरुष के मस्तक को दोनों हाथों से अभिहत करता है। गौतम! उस पुरुष के दोनों हाथों से मस्तक के अभिहत होने पर वह पुरुष कैसी वेदना का प्रत्यनुभव करता हुआ विहरण करता है?

आयुष्मन् श्रमण! वह अनिष्ट वेदना का प्रत्यनुभव करता हुआ विहरण करता है।

गौतम! पृथ्वीकायिक जीव आक्रांत होने पर उस पुरुष की वेदना से अधिक अनिष्टतर, अक्रांततर, अप्रियतर, अशुभतर, अमनोशतर और अमनोरमतर वेदना का प्रत्यनुभव करता हुआ विहरण करता है।”

जैन आगमों में ऐसी सामग्री भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती है, जिन्हें जानना वैज्ञानिक दृष्टि से भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। वैज्ञानिकों द्वारा प्रस्तुत अवधारणाओं और सिद्धान्तों के साथ इन दार्शनिक सिद्धान्तों का सह-सम्बन्ध (corelation) अथवा तुलनात्मक समीक्षा विषय को हृदयंगम करने में सहायक होती है तथा उससे विज्ञान के क्षेत्र में भी अनुसन्धान के अभिनव आयाम की ओर संकेत उपलब्ध हो सकते हैं। जैसे—स्थावरकायिक एवं अन्य अमनस्क (असंज्ञी) जीवों द्वारा अनुभव की जाने वाला वेदना के संदर्भ में भगवई (७/१५०-१५४) के ये सूत्र मननीय हैं—

“भन्ते! जो ये अमनस्क प्राणी, जैसे—पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक (पांच स्थावर), छठे वर्ग के कुछ त्रस जीव हैं—ये अन्ध हैं, मूढ़ हैं, अन्धकार में प्रविष्ट हैं, तमपटल और मोहजाल से आच्छादित हैं, अकाम-निकरण—अज्ञानहेतुक वेदना का वेदन करते हैं, क्या यह कहा जा सकता है?

हां, गौतम! जो ये अमनस्क प्राणी यावत् अकाम-निकरण वेदना का वेदन करते हैं—यह कहा जा सकता है।

भन्ते! क्या प्रभु—समनस्क भी अकाम-निकरण वेदना का वेदन करते हैं?

हां, करते हैं।

भन्ते! प्रभु भी अकाम-निकरण वेदना का वेदन कैसे करते हैं?

गौतम! जो दीप के बिना अन्धकार में रूपों को देखने में समर्थ नहीं हैं, जो अपने सामने के रूपों को भी चक्षु का व्यापार किए बिना देखने में समर्थ नहीं हैं, जो अपने पृष्ठवर्ती रूपों को पीछे की ओर मुड़े बिना देखने में समर्थ नहीं हैं, जो अपने पार्श्ववर्ती रूपों का अवलोकन किए बिना देखने में समर्थ नहीं हैं, जो अपने ऊर्ध्ववर्ती रूपों का अवलोकन किए बिना देखने में समर्थ नहीं हैं, जो अपने अधोवर्ती रूपों का अवलोकन किए बिना देखने में समर्थ नहीं हैं, गौतम! ये प्रभु भी अकाम-निकरण वेदना का वेदन करते हैं।

भन्ते! क्या प्रभु प्रकाम-निकरण—प्रज्ञानहेतुक वेदना का वेदन करते हैं?

हां, करते हैं।

भन्ते! प्रभु भी प्रकाम-निकरण—प्रज्ञानहेतुक वेदना का वेदन कैसे करते हैं?

गौतम! जो समुद्र के उस पार जाने में समर्थ नहीं हैं, जो समुद्र के पारवर्ती रूपों को देखने में समर्थ नहीं हैं, जो देवलोक में जाने में समर्थ नहीं हैं, जो देवलोकवर्ती रूपों को देखने में समर्थ नहीं हैं, गौतम! ये प्रभु भी प्रकाम-निकरण वेदना का वेदन करते हैं।”

इस प्रसंग की व्याख्या इस प्रकार है—“प्रस्तुत आलापक में अमनस्क और समनस्क १. भगवती सूत्र (हिन्दी अनुवाद), १९/३५।

श्रेणी के जीवों की वेदना का विमर्श किया गया है। एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और समूर्च्छित पञ्चेन्द्रिय—ये सब असंज्ञी—अमनस्क होते हैं। इनकी अज्ञान-अवस्था को अंध आदि चार विशेषणों के द्वारा व्यक्त किया गया है। इन जीवों में मन का ज्ञान नहीं होता, फिर भी संवेदन होता है। संज्ञा-सिद्धान्त के अनुसार इनमें भय, क्रोध, लोभ आदि संवेगों से उत्पन्न संवेदन होता है।

गौतम ने पूछा—भंते! पृथ्वीकायिक आदि एकेन्द्रिय जीवों में 'हम इष्ट और अनिष्ट स्पर्श का संवेदन कर रहे हैं'—क्या इस प्रकार की संज्ञा, प्रज्ञा, मन और वचन होता है? भगवान्—नहीं होता, किन्तु वे इष्ट और अनिष्ट स्पर्श का संवेदन करते हैं। पृथ्वीकायिक आदि एकेन्द्रिय जीव छह स्थानों का अनुभव या संवेदन करते हैं—१. इष्ट-अनिष्ट स्पर्श, २. इष्ट-अनिष्ट गति, ३. इष्ट-अनिष्ट स्थिति, ४. इष्ट-अनिष्ट लावण्य, ५. इष्ट-अनिष्ट यशःकीर्ति, ६. इष्ट-अनिष्ट उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार-पराक्रम।

इन संदर्भों से स्पष्ट है कि मन-रहित जीवों में भी संवेदन होता है। इस प्रसंग में प्रो. मार्किल, वोगल तथा क्ली वैक्स्टर द्वारा पौधों पर किए गए प्रयोग उल्लेखनीय हैं। पेड़-पौधों के संवेदना-तंत्र की घटनाएं भी वैज्ञानिक अनुसंधान का विषय बन रही हैं।^१

भगवान् महावीर ने आगमों में जिस धर्म का प्रतिपादन किया है, वह विशुद्ध रूप में आध्यात्मिक धर्म है। उसका आरम्भ बिन्दु है—आत्मा का संज्ञान और उसका चरम बिन्दु है आत्मोपलब्धि या आत्म-साक्षात्कार।^२ अध्यात्म के साधक के लिए आगमों में कुछ ऐसे सूत्र प्राप्त होते हैं जिन्हें जीवन में अनुप्रयुक्त करने से साधना में निखार आ जाता है—एक प्रकार से वे जीवन-दर्शन के रूप में सम्पूर्ण जीवन की राह बदल सकते हैं। उदाहरणार्थ—आयारो का एक सूत्र है—“अण्णहा णं पासए परिहरेज्जा।—अध्यात्म-तत्त्वदर्शी वस्तुओं का परिभोग अन्यथा करे—जैसे अध्यात्म के तत्त्व को नहीं जानने वाला मनुष्य करता है, वैसे न करे।”^३

इसका तात्पर्य है—“अनगार आत्मा और परमतत्त्व को देखता है, इसलिए वह पश्यक—द्रष्टा होता है। ऐसा वह अनगार आहार आदि पदार्थों का परिभोग अन्य प्रकार से करे—गृहस्थ की भांति परिग्रह की बुद्धि से उनका परिभोग न करे। ‘ये पदार्थ धर्मोपकरण हैं तथा आचार्य की निश्रा में हैं’—ऐसा सोचकर उनका परिभोग करे, उनमें न मूर्च्छा करे और न ममत्व रखे।

अन्य प्रकार से परिभोग करने का यह नियम अध्यात्म-साधना में उपस्थित गृहस्थ के लिए भी अनुसरणीय है। जैसे अध्यात्म के रहस्य का अज्ञानकार गृहस्थ पदार्थों का उपभोग मूर्च्छा के अतिरेक से करता है, उस प्रकार से अध्यात्म के रहस्य को जानने वाला गृहस्थ न करे। मूर्च्छा का अतिरेक होने पर गाढ़ कर्मों का बंध होता है। मूर्च्छा की अल्पता में कर्मों का बंध भी शिथिल होता है।”

१. भगवई (भाष्य), खण्ड २, ७/१५०- २. आचारांगभाष्यम्, प्रस्तुति, पृ. ७।

१५४, पृ. ३७७-३७८।

३. वही, २/११८, पृ. १२६।

जैन दर्शन के अनुसार—मोक्ष-प्राप्ति के लिए सर्वप्रथम व्यक्ति को सम्यग् दर्शन या सम्यग् श्रद्धान प्राप्त करना अनिवार्य है। इसके बिना न चारित्र (साधुत्व) का पालन फलीभूत होगा और न ही देश-चारित्र (श्रावकत्व) का पालन। सम्यक्त्व को पुष्ट करने के लिए अनेक सूत्र आगमों में उपलब्ध होते हैं।

उत्तरज्झयणाणि के २९वें अध्ययन 'सम्यक्त्व पराक्रम' में हमें ऐसे अनेक सूत्र मिलते हैं, जिसका एक सूत्र है—

“भंते! संवेग (मोक्ष की अभिलाषा) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

संवेग से वह अनुत्तर धर्म-श्रद्धा को प्राप्त होता है। अनुत्तर धर्म-श्रद्धा से शीघ्र ही और अधिक संवेग को प्राप्त करता है। अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ क्षय करता है। नये कर्मों का संग्रह नहीं करता। कषाय के क्षीण होने से प्रकट होने वाली मिथ्यात्व-विशुद्धि कर दर्शन (सम्यक् श्रद्धान) की आराधना करता है। दर्शन-विशोधि के विशुद्ध होने पर कई एक जीव उसी जन्म से सिद्ध हो जाते हैं और कई उसके विशुद्ध होने पर तीसरे जन्म का अतिक्रमण नहीं करते—उसमें अवश्य ही सिद्ध हो जाते हैं।” इसकी व्याख्या इस प्रकार है—

“संवेग और धर्म-श्रद्धा का कार्य-कारण-भाव है। मोक्ष की अभिलाषा होती है तब धर्म में रुचि उत्पन्न होती है और जब धर्म में रुचि उत्पन्न हो जाती है तब मोक्ष की अभिलाषा विशिष्टतर हो जाती है। जब संवेग तीव्र होता है तब अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ क्षीण हो जाते हैं, दर्शन विशुद्ध हो जाता है।

“जिसका दर्शन विशुद्ध हो जाता है, उसके कर्म का बन्ध नहीं होता। वह उसी जन्म में या तीसरे जन्म में अवश्य ही मुक्त हो जाता है। ‘कम्मं न बंधई’ इस पर शान्त्याचार्य ने लिखा है कि अशुभ-कर्म का बन्ध नहीं होता। सम्यग्-दृष्टि के अशुभ कर्म का बंध नहीं होता, ऐसा नहीं कहा जा सकता। अशुभ-योग की प्रवृत्ति छठे गुणस्थान तक हो सकती है और कषाय-जनित अशुभ-कर्म का बन्ध दसवें गुणस्थान तक होता है। इसलिए इसे इस रूप में समझना चाहिए कि जिसका दर्शन विशुद्ध हो जाता है, अनन्तानुबन्धी-चतुष्क सर्वथा क्षीण हो जाता है, उसके नये सिरे से मिथ्या-दर्शन के कर्म-परमाणुओं का बन्ध नहीं होता। क्योंकि मिथ्यात्व की विशोधि हो जाती है, उसका क्षय हो जाता है। तात्पर्यार्थ में वह व्यक्ति क्षायक सम्यक्त्व प्राप्त कर लेता है। क्षायक सम्यक्त्वी दर्शन का आराधक होता है। वह उसी जन्म में या तीसरे जन्म में अवश्य ही मुक्त हो जाता है। इसका सम्बन्ध दर्शन की उत्कृष्ट आराधना से है। जघन्य और मध्यम आराधना वाले अधिक जन्मों तक संसार में रह सकते हैं। किन्तु उत्कृष्ट आराधना वाले तीसरे जन्म का अतिक्रमण नहीं करते। यह तथ्य भगवई (८/४५९) से भी समर्थित है—

“गौतम ने पूछा—“भगवन्! उत्कृष्ट दर्शनी कितने जन्म में सिद्ध होता है ?”

“भगवान् ने कहा—‘गौतम ! वह उसी जन्म में ही सिद्ध हो जाता है और यदि उस जन्म में न हो तो तीसरे जन्म में अवश्य हो जाता है।’”

“जैन साधना-पद्धति का पहला सूत्र है—‘मिथ्यात्व-विसर्जन या दर्शन-विशुद्धि । दर्शन की विशुद्धि का हेतु संवेग है, जो नैसर्गिक भी होता है और अधिगमिक भी।’”

आगम का नियमित स्वाध्याय करने वाले व्यक्ति को जीवन में वैराग्य-वृत्ति को संपुष्ट करने वाले अनेक सूत्र मिल जाते हैं। उदाहरणार्थ—दसवेआलियं (८/५८-५९) में निर्देश है—

विसएसु मणुत्रेसु, पेमं नाभिनिवेसए।

अणिच्चं तेसिं विन्नाय, परिणामं पोगलाण उ।।

“शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श—इन पुद्गलों के परिणमन को अनित्य जानकार ब्रह्मचारी मनोज्ञ विषयों में राग-भाव न करे।”

पोगलाण परीणामं, तेसिं नच्चा जहा तहा।

विणीयतण्हो विहरे, सीईभूएण अप्पणा।।

“इन्द्रियों के विषयभूत पुद्गलों के परिणमन को, जैसा है वैसा जानकर अपनी आत्मा को उपशांत कर तृष्णा-रहित हो विहार करे।”

आगमों में प्रचुर मात्रा में दृष्टान्तों एवं कथाओं का उपयोग किया गया है, जो रोचक, प्रेरक एवं ज्ञानवर्धक हैं। उदाहरणार्थ—अनासक्ति के विकास की दृष्टि से नायाधम्मकहाआ में आए ‘संघाटक’ नामक कथानक में भगवान महावीर ने स्वयं जो कथा सुनाई, वह इस प्रकार है^१—

राजगृह नगर में घन सार्थवाह नामक संपन्न सेठ था। उसकी पत्नी का नाम भद्रा था। प्रचुर धन आदि के बावजूद भी सन्तान न होने से वे बड़े दुःखी थे। बाद में देवी-देवताओं की मनीषी करने के पश्चात् उन्हें पुत्र की प्राप्ति हुई। उसका नाम देवदत्त रखा। उसे बड़े प्यार से लालन-पालन करते हुए माता-पिता बहुत आनंद से जीवन बिताने लगे। उन्होंने बच्चे की सेवा के लिए पन्थक नामक दास-पुत्र को नियुक्त किया। बालक बड़ा होने लगा। एक बार माता भद्रा ने बालक देवदत्त को बहुमूल्य आभूषणों से सजा-धजा कर पन्थक को सौंपा। पन्थक बालक को अपनी गोद में लेकर घर से बाहर घुमाने के लिए ले गया। वहां एक स्थान में बच्चे देवदत्त को एकान्त में बिठाकर पन्थक स्वयं अन्य बच्चों के साथ खेलने लग गया। उस समय एक विजय नामक तस्कर (चोर) था जो स्वभावतः क्रूर था तथा बच्चों का अपहरण करने में कुशल था। बालक देवदत्त को आभूषणों-सहित एकान्त में बैठे हुए देखकर विजय तस्कर ने उसका अपहरण कर लिया तथा नगर से बाहर भग्न-कूप (पुराने उद्यान का भयावह स्थान में स्थित सूखे/कुएं) के पास ले जाकर उसकी हत्या कर उसके सारे

१. उत्तरज्झयणाणि, अ. २९, टिप्पण १, पृष्ठ ४८७।

२. नायाधम्मकहाओ, प्रथम श्रुतस्कन्ध, अध्ययन २, पृ. ९२-१०७ के आधार पर संक्षिप्त सार।

आभूषण चुरा लिए तथा उसके शव को भग्न-कूप में डाल दिया, स्वयं जंगल में छिप गया।

इधर वह दास-पुत्र पन्थक बालक को खोजने लगा। न मिलने पर घर लौटा तथा धन सार्थवाह को सारी बात बताई। धन ने नगर-आरक्षकों की सहायता ली। नगर-आरक्षकों ने पूरी छानबीन कर भग्न-कूप से मृत बालक के शव को ढूँढ निकाला। जंगल में छिपे हुए विजय तस्कर को माल-सहित पकड़ लिया तथा उसे कारागृह में काष्ठ की बेड़ी में बंद कर दिया तथा माल पुनः धन सार्थवाह को सौंप दिया। धन और भद्रा बड़े दुःखी हुए तथा विजय तस्कर के प्रति उनके मन में बहुत रोष था।

योगानुयोग एक बार धन सार्थवाह किसी व्यावसायिक अपराध में पकड़े जाने पर कारावास भेजा गया तथा वहां उसे उसी काष्ठ की बेड़ी में रखा गया जिसमें विजय तस्कर बंदी था।

धन सार्थवाह के लिए उसके घर से भोजन आता था। भद्रा सेठानी उसके लिए सरस भोजन बनाकर पन्थक दासपुत्र के साथ कारावास भेजती थी। जब धन के लिए भोजन आया तो विजय तस्कर ने, जो भूखा था, धन सार्थवाह से भोजन में संभागी की मांग की। धन ने क्रुद्ध होकर कहा कि तुमने मेरे इकलौते पुत्र की हत्या की है, मैं तुम्हें कैसे भोजन का संभागी बना सकता हूँ? बचा हुआ भोजन भी कुत्तों-कौओं को दिलवा दूंगा, पर तुझे नहीं दूंगा।

भोजन करने के बाद धन सार्थवाह को यथासमय हाजत हुई, तब एक ही बेड़ी में बंदी होने के कारण उसने विजय तस्कर को कारावास में देह-निवृत्ति के लिए बने एकान्त स्थान में साथ चलने को कहा। उसने साथ जाने से इन्कार कर दिया। धन अकेला जाने में असमर्थ था, क्योंकि बेड़ी में दोनों एक साथ बंदी थे। काफी समय तक अनुनय-विनय करने पर विजय ने साथ जाना इस शर्त पर स्वीकार किया कि जब घर से भोजन आएगा, तब धन सार्थवाह उसे भोजन में संभागी बनाएगा। धन सार्थवाह ने इसे मंजूर कर लिया। दूसरे दिन जब पन्थक भोजन लेकर आया, तो धन ने विजय को भी आमंत्रित किया। यह बात पन्थक ने घर जा कर बढ़ा चढ़ा कर भद्रा से कही। भद्रा बहुत रुष्ट हुई कि यह क्या? धन ने अपने पुत्र के हत्यारे को भोजन का संभागी बनाया।

कुछ दिन पश्चात् धन सेठ कारावास से मुक्त होने में सफल हो गया। घर वापिस लौटने पर अन्य सभी प्रसन्न हुए और सेठ का स्वागत किया, पर भद्रा रुष्ट होकर बैठ गई। सेठ ने कारण पूछा, तो बताया कि आपने अपने पुत्र के हत्यारे को भोजन क्यों दिया? धन सेठ ने अपनी मजबूरी बताई। तब भद्रा के बात समझ में आई।

भगवान महावीर ने इस दृष्टांत का निगमन करते हुए अपने शिष्यों को बताया कि जैसे धन विजय तस्कर को जो भोजन खिलाता था, वह उसे अपना समझ कर नहीं, वरन् केवल शारीरिक विवशता के कारण खिलाता था, वैसे ही मुनि भी शरीर की विभूषा से उपरत होकर केवल शरीर-संरक्षण के लिए भोजन करे।

आगम-साहित्य

(१) वर्गीकरण

आगम जैन साहित्य का सर्वाधिक प्राचीन रूप है।^१ विभिन्न समय में किए गए आगमों के वर्गीकरण विभिन्न रूपों में मिलते हैं। अंगसुत्ताणि की भूमिका में इस विषय में बताया गया है—“समवायांग में आगम के दो रूप प्राप्त होते हैं—‘द्वादशांग गणिपिटक’^२ और ‘चतुर्दश पूर्व’।^३”

“नन्दी सूत्र” में दो वर्गीकरण प्राप्त होते हैं—

पहला वर्गीकरण—

(१) गमिक—दृष्टिवाद। (२) अगमिक—कालिकश्रुत—आचारांग आदि।

दूसरा वर्गीकरण—

(१) अंग-प्रविष्ट। (२) अंग-बाह्य।^४

“आगम-साहित्य में साधु-साध्वियों के अध्ययन-विषयक जितने उल्लेख प्राप्त होते हैं, वे सब अंगों और पूर्वों से संबंधित हैं।”^५

कालक्रम के अनुसार समवायांग में उपलब्ध वर्गीकरण सबसे प्राचीन है।^६ इसके पश्चात् नन्दी का वर्गीकरण आता है।^७ यह वर्गीकरण आगम-संकलन-कालीन है।^८ तथा विस्तृत है।^९

१. अंगसुत्ताणि, भाग १, भूमिका, पृ. ३०।

२. समवाओ, पड़णगसमवाओ, सू. ८८।

३. वही, समवाय १४, सू. २।

४. अंगसुत्ताणि, भाग १, भूमिका, पृ. ३०।

५. नन्दी, सू. ४३।

६. ठाणं, भूमिका, पृ. १५।

७. अंगसुत्ताणि, भाग १, भूमिका, पृ. ३०।

८. उत्तरज्झयणाणि, भूमिका, पृ. १२।

९. यहां यह ध्यान देने योग्य है कि ‘दसवेआलियं’ की भूमिका (पृ. XI) में बताया गया है—‘कालक्रम के अनुसार आगमों का पहला वर्गीकरण समवायांग में मिलता है। वहां केवल द्वादशांगी का निरूपण है। दूसरा वर्गीकरण अनुयोगद्वारा मिलता है। वहां केवल द्वादशांगी का नामोल्लेख मात्र है। तीसरा वर्गीकरण नन्दी का है, वह विस्तृत है।’

अंगसुत्ताणि, भाग १ की भूमिका पृ. ३१ में बताया गया है—“समवायांग और अनुयोगद्वारा में अंग-प्रविष्ट और अंग-

बाह्य का विभाग नहीं है। सर्वप्रथम यह विभाग नन्दी में मिलता है। अंग-बाह्य की रचना अर्वाचीन स्थविरों ने की है। नन्दी की रचना से पूर्व अनेक अंग-बाह्य ग्रन्थ रचे जा चुके थे और वे चतुर्दश-पूर्वी या दस-पूर्वी स्थविरों द्वारा रचे गये थे। इसलिए उन्हें आगम की कोटि में रखा गया। उसके फलस्वरूप आगम के दो विभाग किए गए—अंग-प्रविष्ट और अंग-बाह्य। यह विभाग अनुयोगद्वारा (वीर-निर्वाण छठी शताब्दी) तक नहीं हुआ था। यह सबसे पहले नन्दी (वीर-निर्माण दसवीं शताब्दी) में हुआ है।” यह बात किस आधार पर लिखी गई है, यह ज्ञात नहीं हो रहा है, क्योंकि अनुयोगद्वारा, सूत्र ३,४ में तो स्पष्टतः अंग-प्रविष्ट और अंग-बाह्य सूत्र का उल्लेख है।

१०. उत्तरज्झयणाणि, भूमिका, पृ. १२।

११. दसवेआलियं, भूमिका, पृ. XI

“एक वर्गीकरण के अनुसार आगम-साहित्य के चार वर्ग होते हैं—

(१) द्रव्यानुयोग	(३) गणितानुयोग
(२) चरणकरणानुयोग	(४) धर्मकथानुयोग

यह वर्गीकरण प्रथम दो वर्गीकरणों के मध्यवर्ती काल का है।”

“एक अन्य वर्गीकरण जो सबसे उत्तरवर्ती है, उसके अनुसार आगम चार वर्गों में विभक्त होते हैं—

(१) अंग	(३) मूल
(२) उपांग	(४) छेद

“यह वर्गीकरण बहुत प्राचीन नहीं है। विक्रम की १३-१४वीं शताब्दी से पूर्व इस वर्गीकरण का उल्लेख प्राप्त नहीं है।”

“नन्दी के वर्गीकरण में मूल और छेद का विभाग नहीं है। ‘उपांग’ शब्द भी अर्वाचीन है। नन्दी के वर्गीकरण में इस अर्थ का वाचक ‘अनंग-प्रविष्ट’ या ‘अंग-बाह्य’ शब्द है।”

(२) पूर्व

आगमों के पूर्व, अंग-प्रविष्ट, अंग-बाह्य आदि विषय में विशद मीमांसा ‘अंगसुत्ताणि’ (भाग-१) की भूमिका में की गई है। वह इस प्रकार है—

“जैन परम्परा के अनुसार श्रुत-ज्ञान (शब्द-ज्ञान) का अक्षयकोष ‘पूर्व’ है। इसके अर्थ और रचना के विषय में सब एकमत नहीं हैं। प्राचीन आचार्यों के मतानुसार ‘पूर्व’ द्वादशांगी से पहले रचे गए थे, इसलिए इनका नाम ‘पूर्व’ रखा गया।^१ आधुनिक विद्वानों का अभिमत यह है कि ‘पूर्व’ भगवान् पार्श्व की परम्परा की श्रुत-राशि है। यह भगवान् महावीर से पूर्ववर्ती है, इसलिए इसे ‘पूर्व’ कहा गया है।^२ दोनों अभिमतों में से किसी को भी मान्य किया जाए, किन्तु इस फलित में कोई अन्तर नहीं आता कि पूर्वों की रचना द्वादशांगी से पहले हुई थी या द्वादशांगी पूर्वों की उत्तरकालीन रचना है।

“वर्तमान में जो द्वादशांगी का रूप प्राप्त है, उसमें ‘पूर्व’ समाए हुए हैं। बारहवां अंग दृष्टिवाद है। उसका एक विभाग है—पूर्वगत। चौदह पूर्व इसी ‘पूर्वगत’ के अंतर्गत हैं। भगवान् महावीर ने प्रारम्भ में पूर्वगत-श्रुत की रचना की थी। पूर्वगत-श्रुत बहुत गहन था। सर्वसाधारण के लिए वह सुलभ नहीं था। अंगों की रचना अल्पमेधा व्यक्तियों के लिए की गई। जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण ने बताया है कि ‘दृष्टिवाद’ में समस्त शब्द-ज्ञान का अवतार

१. उत्तरज्झयणाणि, भूमिका, पृ. १२।

२. ठाणं, भूमिका, पृ. १५।

३. उत्तरज्झयणाणि, भूमिका, पृ. १२।

४. समवायांग वृत्ति, पत्र १०१-प्रथमं पूर्व
तस्य सर्वप्रवचनात् पूर्व क्रियमाणत्वात्।

५. नन्दी, मलयगिरि वृत्ति, पत्र २४०—

अन्ये तु व्याचक्षते पूर्व पूर्वगतसूत्रार्थमहं
भाषते, गणधरा अपि पूर्व पूर्वगतसूत्रं
विरचयन्ति, पश्चादाचारादिकम्।

हो जाता है। फिर भी ग्यारह अंगों की रचना अल्पमेधा पुरुषों तथा स्त्रियों के लिए की गई।^१ ग्यारह अंगों को वे ही साधु पढ़ते थे, जिनकी प्रतिभा प्रखर नहीं होती थी। प्रतिभा-सम्पन्न मुनि पूर्वों का अध्ययन करते थे। आगम-विच्छेद के क्रम से भी यही फलित होता है कि ग्यारह अंग दृष्टिवाद या पूर्वों से सरल या भिन्न-क्रम में रहे हैं। दिगम्बर परम्परा के अनुसार वीर-निर्वाण बासठ वर्ष बाद केवली नहीं रहे। उनके बाद सौ वर्ष तक श्रुत-केवली (चतुर्दश-पूर्वों) रहे। उनके पश्चात् एक सौ तिरासी वर्ष तक दशपूर्वों रहे। उनके पश्चात् दो सौ बीस वर्ष तक ग्यारह अंगधर रहे।^२

‘उक्त चर्चा से यह स्पष्ट है कि जब तक आचार आदि अंगों की रचना नहीं हुई थी, तब तक महावीर की श्रुत-राशि ‘चौदह पूर्व’ या ‘दृष्टिवाद’ के नाम से अभिहित होती थी और जब आचार आदि ग्यारह अंगों की रचना हो गई, तब दृष्टिवाद को बारहवें अंग के रूप में स्थापित किया गया।

‘यद्यपि बारह अंगों को पढ़ने वाले और चौदह पूर्वों को पढ़ने वाले—ये भिन्न-भिन्न उल्लेख मिलते हैं^३, फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि चौदह पूर्वों के अध्येता बारह अंगों के अध्येता नहीं थे और बारह अंगों के अध्येता चतुर्दश-पूर्वों नहीं थे। गौतम स्वामी को ‘द्वादशांगवित्’ कहा गया है।^४ वे चतुर्दश-पूर्वों और अंगधर दोनों थे। यह कहने का प्रकार-भेद रहा है कि श्रुत-केवली को कहीं ‘द्वादशांगवित्’ और कहीं ‘चतुर्दशपूर्वों’ कहा गया है।

‘ग्यारह अंग पूर्वों से उद्धृत या संकलित हैं। इसलिए जो चतुर्दशपूर्वों होता है, वह स्वाभाविक रूप से द्वादशांगवित् होता है। बारहवें अंग में चौदह पूर्व समाविष्ट हैं। इसलिए जो द्वादशांगवित् होता है, वह स्वभावतः चतुर्दशपूर्वों होता है। अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि आगम के प्राचीन वर्गीकरण दो ही हैं—चौदह पूर्व और ग्यारह अंग। द्वादशांगी का स्वतंत्र स्थान नहीं है। यह पूर्वों और अंगों का संयुक्त नाम है।

‘कुछ आधुनिक विद्वानों ने पूर्वों को भगवान् पार्श्वकालीन और अंगों को भगवान् महावीरकालीन माना है, पर यह अभिमत संगत नहीं है। पूर्वों और अंगों की परम्परा भगवान् अरिष्टनेमि और भगवान् पार्श्व के युग में भी रही है। अंग अल्पमेधा व्यक्तियों के लिए रचे गए, यह पहले बताया जा चुका है। भगवान् पार्श्व के युग में सब मुनियों का प्रतिभा-स्तर समान था, यह कैसे माना जा सकता है? प्रतिभा का तारतम्य अपने-अपने युग में सदा रहा है। मनोवैज्ञानिक और व्यावहारिक दृष्टि से विचार करने पर भी हम इसी बिन्दु पर पहुंचते हैं

१. विशेषावश्यक भाष्य, गाथा ५५४—
जइवि य भूतावाए,
सव्वस्स वओगयस्स ओचारो।
निज्जूहणा तहावि हु,
दुम्मेहे पप्प इत्थी य।।

२. जयध्वला, प्रस्तावना, पृष्ठ ४९।
३. देखिए, अंगसुत्ताणि (भाग १) की भूमिका का प्रारंभिक भाग।
४. उत्तरज्झयणाणि, २३/७।

कि अंगों की अपेक्षा भगवान् पार्श्व के शासन में भी रही है, इसलिए इस अभिमत की पुष्टि में कोई साक्ष्य प्राप्त नहीं है कि भगवान् पार्श्व के युग में केवल पूर्व ही थे, अंग नहीं। सामान्य ज्ञान से यही तथ्य निष्पन्न होता है कि भगवान् महावीर के शासन में पूर्वों और अंगों का युग की भाव, भाषा, शैली और अपेक्षा के अनुसार नवीनीकरण हुआ। 'पूर्व' पार्श्व की परम्परा से लिए गए और 'अंग' महावीर की परम्परा में रचे गए, इस अभिमत के समर्थन में संभवतः कल्पना ही प्रधान रही है।

“(३) अंग-प्रविष्ट और अंग-बाह्य

भगवान् महावीर के अस्तित्व-काल में गौतम आदि गणधरों ने पूर्वों और अंगों की रचना की, यह सर्व-विश्रुत है। क्या अन्य मुनियों ने आगम-ग्रन्थों की रचना नहीं की? यह प्रश्न सहज ही उठता है। भगवान् महावीर के चौदह हजार शिष्य थे।^१ उनमें सात सौ केवली थे, चार सौ वादी थे। उन्होंने ग्रन्थों की रचना नहीं की, ऐसा सम्भव नहीं लगता। नन्दी में बताया गया है कि भगवान् महावीर के शिष्यों ने चौदह हजार प्रकीर्णक बनाए थे।^२ ये पूर्वों और अंगों से अतिरिक्त थे। उस समय अंग-प्रविष्ट और अंग-बाह्य ऐसा वर्गीकरण हुआ, यह प्रमाणित करने के लिए कोई साक्ष्य प्राप्त नहीं है। भगवान् महावीर के निर्वाण के पश्चात् अर्वाचीन आचार्यों ने ग्रंथ रचे तब संभव है उन्हें आगम की कोटि में रखने या न रखने की चर्चा चली और उनके प्रामाण्य और अप्रामाण्य का प्रश्न भी उठा। चर्चा के बाद चतुर्दशपूर्वों और दशपूर्वों स्थविरों द्वारा रचित ग्रन्थों को आगम की कोटि में रखने का निर्णय हुआ किन्तु उन्हें स्वतःप्रमाण नहीं माना गया। उनका प्रामाण्य परतः था। वे द्वादशांगी से अविरुद्ध हैं, इस कसौटी से कसकर उन्हें आगम की संज्ञा दी गई। उनका परतःप्रामाण्य था, इसलिए उन्हें अंग-प्रविष्ट की कोटि से भिन्न रखने की आवश्यकता प्रतीत हुई। इस स्थिति के सन्दर्भ में आगम की अंग-बाह्य कोटि का उद्भव हुआ।

“जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण ने अंग-प्रविष्ट और अंग-बाह्य के भेद-निरूपण में तीन हेतु प्रस्तुत किए हैं—

१. जो गणधर कृत होता है,
२. जो गणधर द्वारा प्रश्न किए जाने पर तीर्थंकर द्वारा प्रतिपादित होता है,
३. जो ध्रुव-शाश्वत सत्त्यों से सम्बन्धित होता है, सुदीर्घकालीन होता है—वही श्रुत अंग-प्रविष्ट होता है।

“इसके विपरीत,

१. जो स्थविर-कृत होता है,
२. जो प्रश्न पूछे बिना तीर्थंकर द्वारा प्रतिपादित होता है,

१. समवाओ, समवाय १४, सूत्र ४।

२. नन्दी, सूत्र ७९—चोइस पइण्णग-सहस्साणि भगवओ वद्धमाणसामिस्स।

३. जो चल होता है, तात्कालिक या सामयिक होता है—उस श्रुत का नाम अंग-बाह्य है।^१

“अंग-प्रविष्ट और अंग-बाह्य में भेद करने का मुख्य हेतु वक्ता का भेद है।^२ जिस आगम के वक्ता भगवान् महावीर हैं और जिसके संकलयिता गणधर हैं, वह श्रुत-पुरुष के मूल अंगों के रूप में स्वीकृत होता है इसलिए उसे अंग-प्रविष्ट कहा गया है। सर्वार्थसिद्धि के अनुसार वक्ता तीन प्रकार के होते हैं—१. तीर्थंकर २. श्रुत-केवली (चतुर्दशपूर्वी) और ३. आरातीय।^३ आरातीय आचार्यों के द्वारा रचित आगम ही अंग-बाह्य माने गए हैं। आचार्य अकलंक के शब्दों में आरातीय आचार्य-कृत आगम अंग-प्रतिपादित अर्थ से प्रतिबिम्बित होते हैं, इसीलिए वे अंग-बाह्य कहलाते हैं।^४ अंग-बाह्य आगम श्रुत-पुरुष के प्रत्यंग या उपांग-स्थानीय हैं।”^५

उपलब्ध आगम

“आगमों की संख्या के विषय में अनेक मत प्रचलित हैं। उनमें तीन मुख्य हैं—

(१) ८४ आगम

(३) ३२ आगम

(२) ४५ आगम

(इन नामों की सूची के लिए दसवेआलियं, आचार्य तुलसी द्वारा लिखित भूमिका, पृ. XVI-XVII द्रष्टव्य हैं)। इनमें से ३२ आगम इस प्रकार हैं—

“अंग—

(१) आचार	(५) भगवती (व्याख्याप्रज्ञप्ति)	(९) अनुत्तरोपपातिकदशा
(२) सूत्रकृत	(६) ज्ञाताधर्मकथा	(१०) प्रश्नव्याकरण
(३) स्थान	(७) उपासकदशा	(११) विपाकश्रुत
(४) समवाय	(८) अन्तकृतदशा	

“उपांग—

(१) औपपातिक	(५) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति	(९) कल्पावतंसिका
(२) राजप्रश्नीय	(६) सूर्यप्रज्ञप्ति	(१०) पुष्पिका
(३) जीवाजीवाभिगम	(७) चन्द्रप्रज्ञप्ति	(११) पुष्पचूलिका
(४) प्रज्ञापना	(८) निरयावलिका	(१२) वृष्णिदशा

१. विशेषाश्वयक भाष्य, गाथा ५५२— गणहर-धेरकयं वा, आएसा मुक्क-वागरणाओ वा। धुव-चल विसेसओ वा, अंगाणंगेसु नाणत्तं।।	३. सर्वार्थसिद्धि, १/२०—त्रयो वक्तारः— सर्वज्ञस्तीर्थंकरः, इतरो वा श्रुतकेवली आरातीयश्चेति।
२. तत्त्वार्थभाष्य, १/२०—वक्तृ-विशेषाद् द्वैविध्यम्।	४. तत्त्वार्थराजवार्तिक, १/२०—आरातीया- चार्यकृतांगार्थं प्रत्यासन्नरूपमंगबाह्यम्। ५. अंगसुत्ताणि भाग १, भूमिका, पृ. ३१- -३४

“मूल—

(१) दशैवकालिक

(३) नन्दी

(२) उत्तराध्ययन

(४) अनुयोगद्वार ।

“छेद—

(१) निशीथ

(३) बृहत्कल्प

(२) व्यवहार

(४) दशाश्रुतस्कन्ध

(११+१२+४+४=३१)

(३२) आवश्यक ।

उपर्युक्त विभागों में स्वतः प्रमाण केवल ग्यारह अंग ही हैं। शेष सब परतः प्रमाण हैं।”^१

श्वेताम्बर-परम्परा के स्थानकवासी एवं तेरापंथ सम्प्रदाय में इन ३२ आगमों को प्रमाण के रूप में स्वीकार किया जाता है।

(४) अंग-आगम

“वर्तमान में उपलब्ध आगम-वाङ्मय में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान अंग-आगम-साहित्य का है।

“वैदिक और बौद्ध साहित्य में मुख्य ग्रन्थ वेद और पिटक हैं। उनके साथ ‘अंग’ शब्द का कोई योग नहीं है। जैन साहित्य में मुख्य ग्रन्थों का वर्गीकरण गणिपिटक है। उसके साथ ‘अंग’ शब्द का योग हुआ है। गणिपिटक के बारह अंग हैं—‘दुवालसंगे गणिपिडगे।’

“जैन-परम्परा में श्रुत-पुरुष की कल्पना भी प्राप्त होती है। आचार आदि बारह आगम श्रुत-पुरुष के अंग-स्थानीय हैं। संभवतः इसीलिए उन्हें बारह अंग कहा गया।^२ इस प्रकार द्वादशांग ‘गणिपिटक’ और ‘श्रुत-पुरुष’—दोनों का विशेषण बनता है।”^३

१. दसवेआलियं, भूमिका, पृ. XVII

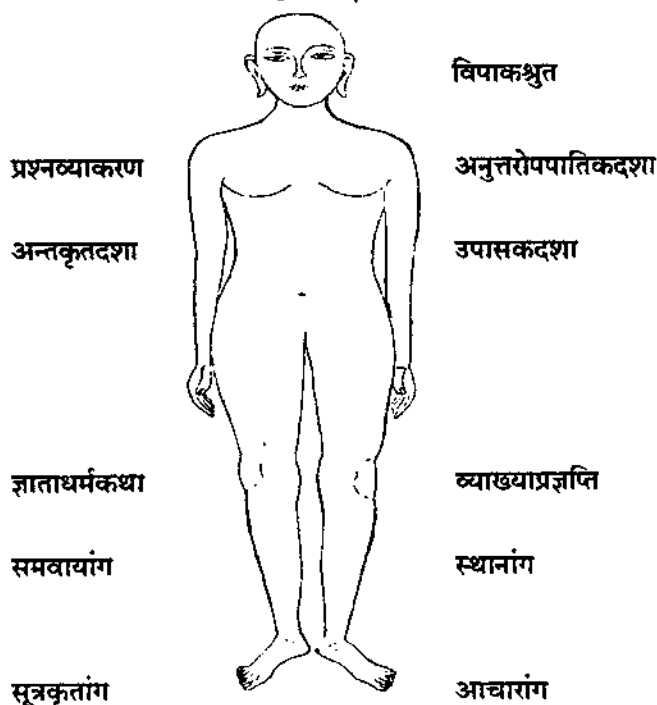
शब्देनोच्यते ।

२. मूलाराधना, ४/५९९—विजयोदया : श्रुतं पुरुषः मुखचरणाद्यङ्गस्थानीयत्वादङ्ग-

३. अंगसुत्ताणि (भाग १), पृ. ३५, ३६ ।

श्रुतपुरुष

दृष्टिवाद



“भगवान् महावीर की वाणी के आधार पर गौतम आदि गणधरों ने अंग-साहित्य की रचना की।”^१

“अंगों की रचना गणधर करते हैं। इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि स्वयं गणधरों के द्वारा जो ग्रन्थ रचे जाते हैं उनकी संज्ञा अंग है। उपलब्ध अंग सुधर्मा स्वामी की वाचना के हैं। सुधर्मा स्वामी भगवान् महावीर के अनन्तर शिष्य थे, अतः वे उनके समकालीन थे। इस आधार पर अंगों का रचना-काल सामान्य रूप से ईसा पूर्व छठी शताब्दी माना जा सकता है।”^२ इस प्रकार अंग-आगम प्राचीनता की दृष्टि से भी बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

प्रस्तुत आगम-भगवई (विआहपण्णत्ती)^३

(१) नाम-मीमांसा

प्रस्तुत आगम द्वादशांगी का पांचवां अंग है। इस आगम का मूल नाम है-विआहपण्णत्ती अर्थात् व्याख्याप्रज्ञप्ति। इस आगम का दूसरा नाम भगवई अर्थात् भगवती है। यद्यपि मूल नाम व्याख्याप्रज्ञप्ति है, फिर भी इसका अपर नाम भगवती वर्तमान

१. ठाणं, भूमिका, पृ. १५।

२. ठाणं, भूमिका, पृ. १७।

३. इस विषय पर भगवई (भाष्य) खण्ड १

की भूमिका में विस्तार से प्रकाश डाला गया है। यहाँ पर मुख्यतः उसके आधार पर संक्षेप में प्रस्तुतीकरण किया गया है।

सहस्राब्दी में अधिक प्रचलित हुआ है। व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र की अपनी विशिष्टता थी, इसलिए विशेषण के रूप में इसे 'भगवती' के रूप में समाहत किया गया है। समवायांग सूत्र में विआहपण्णत्ती के साथ भगवती विशेषण-रूप में प्रयुक्त है।^१

“प्रश्नोत्तर की शैली में लिखा जाने वाला ग्रन्थ व्याख्याप्रज्ञप्ति कहलाता है। व्याख्या का अर्थ है—विवेचन करना और प्रज्ञप्ति का अर्थ है—समझाना। जिसमें विवेचनपूर्वक तत्त्व समझाया जाता है उसे व्याख्याप्रज्ञप्ति कहा जाता है।”^२

“अभयदेवसूरि ने प्रस्तुत सूत्र के प्रारम्भ में व्याख्याप्रज्ञप्ति पद की व्याख्या की है। उनके अनुसार प्रस्तुत आगम में गौतम आदि शिष्यों द्वारा पूछे गए प्रश्नों के उत्तर में महावीर ने जो प्रतिपादन किया, उसकी प्रज्ञापना है। इसलिए इसका नाम व्याख्याप्रज्ञप्ति है।”^३

भगवती सूत्र के टीकाकार अभयदेवसूरि ने भगवती सूत्र की तुलना जयकुञ्जर के साथ की है। इसका राजस्थानी में पद्यानुवाद श्रीमज्जयाचार्य ने बहुत ही ललित भाषा में किया है।^४ इसका भावानुवाद इस प्रकार है—यह व्याख्याप्रज्ञप्ति नामक पंचम अंग-आगम जिसका दूसरा नाम भगवती है, सजे हुए जय-कुंजर नामक हाथी की भांति समुन्नत है। इसके ललित यानी मनोहर पदों की पद्धति (रचना-पंक्ति) प्रबुद्धजनों के मन का रञ्जन करने वाली है अर्थात् प्राज्ञ जनों को रिझाने वाली है। इसमें उपसर्ग, निपात और अव्यय अर्थात् प्र आदि, च आदि शब्दों का प्रयोग है। तुलना में हाथी के पक्ष में इसका तात्पर्य यह है—उपसर्ग यानी उपद्रव, उसका निपात होने पर अव्यय अर्थात् अक्षयरूप वाला यह हाथी है। यह सूत्र घन एवं उदार शब्द वाला है; हाथी के पक्ष में यह मेघ की तरह गम्भीर ध्वनि करने वाला है। यह सूत्र लिंग और विभक्ति से युक्त है; हाथी के पक्ष में पुरुष चिह्न वाला है। भगवती सूत्र सद्-आख्यात है तथा सद्-लक्षणों से युक्त है; हाथी के पक्ष में प्रसिद्ध और अच्छे-अच्छे लक्षणों वाला है। भगवती सूत्र देव-अधिष्ठित है अर्थात् गणधर श्रुतदेवता द्वारा सेवित है; हाथी के पक्ष में जय-कुञ्जर हाथी देवांशी है अर्थात् देवताओं के द्वारा उसकी सेवा होती है। भगवती सूत्र के ये उद्देशक सुवर्णमंडित हैं; जय-कुञ्जर हाथी के पक्ष में उसका शिरोभाग अति प्रशस्त है। भगवती सूत्र नाना प्रकार के अद्भुत प्रवर-चरित्र वाले छत्तीस हजार प्रश्न-प्रमाण श्रुत-देह वाला है तथा चार अनुयोग-रूपी चरण वाला है; हाथी के पक्ष में उसका देह अद्भुत है तथा उसके चार चरण अर्थात् पैर हैं। प्रथम चरण द्रव्यानुयोग अर्थात् द्वितीय अंग सूत्रकृतांग आदि, द्वितीय चरण चरणकरणानुयोग अर्थात् प्रथम अंग आचारांग आदि, तृतीय चरण गणितानुयोग अर्थात् चन्द्रप्रज्ञप्ति आदि तथा चौथा चरण धर्मकथानुयोग अर्थात् ज्ञाता सूत्र आदि। इस पंचम अंग भगवती में ये चारों अनुयोग व्याख्यात हैं; हाथी के पक्ष में उसके

१. समवाओ, ८४/११—विआहपण्णत्तीए णं भगवतीए चउरासीइं पयसहस्सा पदण्णेणं पण्णत्ता ।

२. भगवई (भाष्य), खण्ड-१, भूमिका, पृ. १५।

३. भगवती-वृत्ति, पत्र २।

४. भगवती-जोड़, खण्ड १, पृ. २५, २६

चारों पैर उत्तम रूप में शोभित हो रहे हैं। भगवती सूत्र के दो नयन-ज्ञान और चारित्र हैं; हाथी के पक्ष में उसके दो नयन आकर्षक हैं। भगवती सूत्र में दो नय हैं—द्रव्यास्तिक और पर्यायास्तिक; हाथी के दो दन्त-मूशाल हैं। भगवती सूत्र में निश्चयनय और व्यवहारनय समुन्नत हैं; जय-कुञ्जर हाथी के दो समुन्नत कुम्भस्थल हैं। भगवती सूत्र में प्रस्तावना-वचन की रचना महाशुण्डादण्ड की तरह है; हाथी के पक्ष में उसकी शुण्ड महान् दण्ड की तरह है। भगवती सूत्र के निगमन-वचन हैं, वे उपसंहार-रूप हैं; हाथी के पक्ष में उसकी जो पूंछ है वह अतुच्छ है। भगवती सूत्र में काल आदि अष्टविध ज्ञान-आचार, प्रवचन तथा उपचार-रूप परिकर है; हाथी के पक्ष में उसका परिवार है। भगवती सूत्र में दो प्रकार की आज्ञा का विचार है—उत्सर्ग-मार्ग और अपवाद-मार्ग; हाथी के पक्ष में सम्यक् प्रकार से उछलने वाले दो अतुच्छ घंटाओं का घोष है। भगवती सूत्र के यशःपटह की पटु प्रतिध्वनि दिशा-चक्रवाल में गुंजित है; हाथी के पक्ष में उसकी यशःपटह की प्रतिध्वनि भी दिशा-चक्रवाल में गुंजित हो रही है। भगवती सूत्र स्यादवाद के अंकुश से अंकुशित है; हाथी भी अंकुश द्वारा अंकुशित है। भगवती सूत्र विविध हेतु-रूपी शस्त्र से समन्वित होकर मिथ्यात्व-, अज्ञान-, अविरति-रूप शत्रु-सेना का दलन करने वाला है, जो भगवान् महावीर रूपी महाराज द्वारा नियुक्त है। सेनापति के समान गच्छनायक अपनी बुद्धि से भगवती सूत्र की व्याख्या करते हैं, जय-कुंजर हाथी को भी सज्ज किया जाता है। मुनि-रूपी योद्धा बाधा-रहित होकर भगवती सूत्र का अधिगमन कर उस (हाथी) का आरोहण करने में समर्थ हो, उसके लिए वृत्ति और चूर्णि रूप नाडिकाएं हैं, जो वांछित वस्तु के साधने में समर्थ हैं। अन्य जीवाभिगम आदि आगमों के विविध विवरण-रूप संवादी सूत्रों के अमूल्य लेशों से महा झूल के समान है; हाथी के पक्ष में यह महा-झूल है। इस प्रकार महा-उपकारी, हितकारी, हस्तिनायक (भगवान् महावीर) के आदेश से भगवती सूत्र की रचना सुधर्मा स्वामी द्वारा की गई थी।

(२) विषय-वस्तु

प्रस्तुत आगम एक वृहत्तम आकर ग्रन्थ है। आकार में यह सब आगमों से बृहत् है, उसी प्रकार इसका प्रतिपाद्य भी सर्वाधिक बहुआयामी है। विषयों की दृष्टि से भगवती एक महान् उदधि है। "समवायांग और नन्दी के अनुसार प्रस्तुत आगम में ३६ हजार प्रश्नों का व्याकरण है।^१ तत्त्वार्थराजवार्तिक, षट्खण्डागम और कसायपाहुड के अनुसार प्रस्तुत आगम में ६० हजार प्रश्नों का व्याकरण है।^२ प्रस्तुत आगम के विषय के सम्बन्ध में अनेक सूचनाएं मिलती हैं। समवायांग में बताया गया है कि अनेक देवों, राजाओं और राजर्षियों ने भगवान् से विविध प्रकार के प्रश्न पूछे और भगवान् ने विस्तार से उनका उत्तर दिया। इसमें स्वसमय, परसमय, जीव, अजीव, लोक और अलोक व्याख्यात हैं।^३ नन्दी में भी यही

१. समवाओ, षड्णगसमवाओ, सूत्र ९३; कसायपाहुड, प्रथम अधिकार, पृ. नन्दी, सूत्र ८५। १२५।

२. तत्त्वार्थराजवार्तिक, १/२०; ३. समवाओ, षड्णगसमवाओ, सू. ९३। षट्खण्डागम, भाग १, पृ. १०२;

विषयवस्तु निर्दिष्ट है^१, किन्तु उसमें समवायांग की भांति प्रश्नकर्ताओं का उल्लेख नहीं है। आश्चर्य है कि समवायांग में सबसे बड़े प्रश्नकार गौतम का उल्लेख नहीं है। आचार्य अकलंक के अनुसार प्रस्तुत आगम में जीव है या नहीं है—इस प्रकार के अनेक प्रश्न निरूपित हैं।^२ आचार्य वीरसेन के अनुसार प्रस्तुत आगम में प्रश्नोत्तरों के साथ-साथ ९६ हजार छिन्नच्छेद नयों^३, ज्ञापनीय शुभ और अशुभ का वर्णन है।^४

“उक्त सूचनाओं से प्रस्तुत आगम का महत्त्व जाना जा सकता है। वर्तमान ज्ञान की अनेक शाखाओं ने अनेक नए रहस्यों का उद्घाटन किया है। हम प्रस्तुत आगम की गहराइयों में जाते हैं तो हमें प्रतीत होता है कि इन रहस्यों का उद्घाटन अतीत में भी हो चुका था। प्रस्तुत आगम तत्त्वविद्या का आकर ग्रन्थ है। इसमें चेतन और अचेतन—इन दोनों तत्त्वों की विशद जानकारी उपलब्ध है। संभवतः विश्व विद्या की कोई भी ऐसी शाखा नहीं होगी जिसकी इसमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में चर्चा न हो। तत्त्वविद्या का इतना विशाल ग्रंथ अभी तक ज्ञात नहीं है। इसके प्रतिपाद्य विषय का आकलन करना एक जटिल कार्य है।”^५

प्रस्तुत आगम की विषय-सूची से ज्ञात होगा कि एक प्रकार से यह आगम एक विश्व-कोश की भांति है। इसमें तत्त्वविद्या (Metaphysics) से सम्बद्ध अनेक विषयों की चर्चा की गई है।

उदाहरणार्थ—‘क्रियमाण कृत’ का सिद्धान्त समझाया गया है।^६ इस चर्चा का निष्कर्ष यह है कि “उत्पत्ति और विनाश की प्रक्रिया को समझने के लिए द्रव्य और पर्याय के संयुक्त रूप का स्वीकार आवश्यक है। केवल द्रव्य या केवल पर्याय के आधार पर उत्पत्ति या विनाश की व्याख्या नहीं की जा सकती।”^७ इससे ज्ञात होता है कि “जैन दर्शन में प्रत्येक तत्त्व का प्रतिपादन अनेकान्त की दृष्टि से होता है। एकान्त दृष्टि के अनुसार चलमान और चलित—दोनों एक क्षण में नहीं हो सकते। अनेकान्त की दृष्टि के अनुसार चलमान और चलित—दोनों एक क्षण में होते हैं। समूचे आगम में अनेकान्त-दृष्टि का पूरा उपयोग किया गया है।”^८

“भगवान महावीर ने अपनी दीर्घ तपस्या से सूक्ष्म सत्यों का साक्षात्कार किया और तत्पश्चात् उनका प्रतिपादन किया। उनके द्वारा प्रणीत अनेक सिद्धान्त, जैसे—षड्जीवनिकाय,

१. नन्दी, सू. ८५।

२. तत्त्वार्थराजवर्तिक, १/२०।

३. जिस व्याख्यापद्धति में प्रत्येक श्लोक और सूत्र की स्वतंत्र, दूसरे श्लोकों और सूत्रों से निरपेक्ष व्याख्या की जाती है उस व्याख्या का नाम छिन्नच्छेद नय है।

४. कसायपाहुड, प्रथम अधिकार, पृ. १२५।

५. भगवई (भाष्य), खण्ड १, भूमिका, पृ. १६।

६. भगवई, १/११, १२।

७. भगवई (भाष्य), खण्ड १, १/११, १२ का भाष्य, पृ. २२।

८. वही, खण्ड १, भूमिका, पृ. १६।

लोक-अलोकवाद, पञ्चास्तिकायवाद, परमाणुवाद, तमस्काय और कृष्णराजि का सिद्धान्त आदि ऐसे हैं जो जैन दर्शन के सर्वथा स्वतंत्र अस्तित्व के प्रज्ञापक हैं।^१

“जैन दर्शन का वास्तविक स्वरूप आगम-सूत्रों में निहित है। मध्यकालीन ग्रन्थ खण्डन-मण्डन के ग्रन्थ हैं। हमारी दृष्टि में वे दर्शन के प्रतिनिधि ग्रन्थ नहीं हैं, जैन दर्शन के आधार-भूत और मौलिक ग्रन्थ आगम-ग्रन्थ हैं। ये दर्शन का प्रतिनिधित्व करते हैं।”^२

“भगवान महावीर ने जीवों के छह निकाय बतलाए। उनमें त्रस-निकाय के जीव प्रत्यक्ष सिद्ध हैं। वनस्पति-निकाय के जीव अब विज्ञान द्वारा भी सम्मत हैं। पृथ्वी, पानी, अग्नि और वायु—इन चार निकायों के जीव विज्ञान द्वारा स्वीकृत नहीं हुए। भगवान महावीर ने पृथ्वी आदि जीवों का केवल अस्तित्व ही नहीं बतलाया, उनका जीवन-मान, आहार, श्वास, चैतन्य-विकास, संज्ञाएं आदि पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला है। पृथ्वीकायिक जीवों का न्यूनतम जीवन-काल अन्तर्मुहूर्त का और उत्कृष्ट जीवन-काल बाईस हजार वर्ष का होता है। वे श्वास निश्चित क्रम से नहीं लेते—कभी कम समय से और कभी अधिक समय से लेते हैं। उनमें आहार की इच्छा होती है। वे प्रतिक्षण आहार लेते हैं। उनमें स्पर्शनिन्द्रिय का चैतन्य स्पष्ट होता है। चैतन्य की अन्य धाराएं अस्पष्ट होती हैं।^३ मनुष्य जैसे श्वासकाल में प्राणवायु का ग्रहण करता है वैसे पृथ्वीकाय के जीव श्वासकाल में केवल वायु को ही ग्रहण नहीं करते किन्तु पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति—इन सभी के पुद्गलों को ग्रहण करते हैं।^४

“पृथ्वी की भांति पानी आदि के जीव भी श्वास लेते हैं, आहार आदि करते हैं। वर्तमान विज्ञान ने वनस्पति-जीवों के विविध पक्षों का अध्ययन कर उनके रहस्यों को अनावृत किया है, किन्तु पृथ्वी आदि के जीवों पर पर्याप्त शोध नहीं की। वनस्पति क्रोध और प्रेम प्रदर्शित करती है। प्रेमपूर्ण व्यवहार से वह प्रफुल्लित होती है और घृणापूर्ण व्यवहार से वह मुरझा जाती है। विज्ञान के ये परीक्षण हमें महावीर के इस सिद्धान्त की ओर ले जाते हैं कि वनस्पति में दस संज्ञाएं होती हैं। वे संज्ञाएं इस प्रकार हैं—आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा, परिग्रहसंज्ञा, क्रोधसंज्ञा, मानसंज्ञा, मायासंज्ञा, लोभसंज्ञा, ओघसंज्ञा और लोकसंज्ञा। इन संज्ञाओं का अस्तित्व होने पर वनस्पति अस्पष्ट रूप में वही व्यवहार करती है जो स्पष्ट रूप में मनुष्य करता है।”^५

जैन दर्शन में प्रणीत षड्जीवनिकायवाद का जो मौलिक और सूक्ष्म प्रतिपादन भगवती आदि आगमों में उपलब्ध है, संभवतः उसी के आधार पर आचार्य सिद्धसेन ने लिखा

१. भगवई (भाष्य), खण्ड १, भूमिका, पृ. १६।	३. अंगसुत्ताणि, भाग २, भगवई, १/१/३२, पृ. ९।
२. वही, भूमिका, पृ. १६।	४. वही, १/३४/२५३, २५४, पृ. ४६४।
	५. भगवई (भाष्य), खण्ड १, पृ. ९७।

है—“भगवन्! आपकी सर्वज्ञता को सिद्ध करने के लिए मुझे बहुत प्रमाण प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं है। आपके द्वारा प्रतिपादित षड्जीवनिकायवाद आपके सर्वज्ञत्व का प्रबलतम साक्ष्य है।”^१

“प्रस्तुत विषय की चर्चा एक उदाहरण के रूप में की गई है। इसका प्रयोजन इस तथ्य की ओर इंगित करना है कि इस आगम में ऐसे सैकड़ों विषय प्रतिपादित हैं, जो सामान्य बुद्धि द्वारा ग्राह्य नहीं हैं; उनमें से कुछ विषय विज्ञान की नई शोधों द्वारा अब ग्राह्य हो चुके हैं तथा अनेक विषयों को परीक्षण के लिए पूर्व मान्यता (hypothesis) के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।”^२

“सूक्ष्म जीवों की गतिविधियों के प्रत्यक्षतः प्रमाणित होने पर केवल जीव-शास्त्रीय सिद्धांतों का ही विकास नहीं होता, किन्तु अहिंसा के सिद्धांत को समझने का अवसर मिलता है और साथ-साथ सूक्ष्म जीवों के प्रति किए जाने वाले व्यवहार की समीक्षा का भी।”^३

प्रस्तुत आगम में प्रतिपादित जीव-अजीव, पांच अस्तिकाय आदि के प्रतिपादन को मौलिक मानते हुए पाश्चात्य विद्वान् डॉ. वाल्टर शुब्रिंग ने लिखा है—

“जीव-अजीव और पञ्चास्तिकाय का सिद्धान्त महावीर की देन है। यह उत्तरकालीन विकास नहीं है।”^४

“प्रस्तुत आगम में जीव और पुद्गल का इतना विशद निरूपण है जितना अन्य प्राचीन धर्मग्रंथों या दर्शनग्रंथों में सुलभ नहीं है।”^५

“प्रस्तुत आगम का बड़ा भाग क्रियावाद के निरूपण से व्याप्त है। क्रियावाद की व्यवस्था तत्त्व-दर्शन के आधार पर हुई है, इसलिए उसमें अस्तिकायवाद और नवतत्त्ववाद दोनों परस्पर एक दूसरे के पूरक के रूप में व्याख्यात हुए हैं।

“भगवान् महावीर ने पांच अस्तिकायों का प्रतिपादन किया। वे पञ्चास्तिकाय कहलाते हैं। उनमें धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय—ये तीनों अमूर्त होने के कारण अदृश्य हैं। जीवास्तिकाय अमूर्त होने के कारण दृश्य नहीं है, फिर भी शरीर के माध्यम से प्रकट होने वाली चैतन्य-क्रिया के द्वारा वह दृश्य है। पुद्गलास्तिकाय (परमाणु और

१. द्वार्त्रिंशद्वात्रिंशिका, श्लोक १/१३—
य एष षड्जीवनिकायविस्तरः,
परैरनालीढपथस्त्वयोदितः।
अनेन सर्वज्ञपरीक्षणक्षमास्-
त्वयि प्रसादोदयसोत्सवाः स्थिताः॥

२. भगवई (भाष्य), खण्ड १, भूमिका, पृ. १७।

३. अंगसुत्ताणि (भाग २), भूमिका, पृ. २४।

४. The Doctrines of the Jainas, p. 126. (भगवई (भाष्य), खण्ड १, भूमिका, पृ. १९ पर उद्धृत।)

५. भगवई (भाष्य), खण्ड १, भूमिका, पृ. १९।

स्कन्ध) मूर्त होन के कारण दृश्य है। हमारे जगत् की विविधता जीव और पुद्गल के संयोग से निष्पन्न होती है।”^१

“प्रस्तुत आगम का पूर्ण आकार आज उपलब्ध नहीं है, किन्तु जितना उपलब्ध है, उसमें हजारों प्रश्नोत्तर चर्चित हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से आजीवक संघ के आचार्य मंखलिगोशाल, जमालि, शिवराजर्षि, स्कन्दक संन्यासी आदि प्रकरण बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। तत्त्वचर्चा की दृष्टि से जयन्ती, महुक श्रमणोपासक, रोह अनगार, सोमिल ब्राह्मण, भगवान् पार्श्व के शिष्य कालासवेसियपुत्त, तुंगिया नगरी के श्रावक आदि प्रकरण पठनीय हैं। गणित की दृष्टि से पार्श्वपत्न्यीय गांगेय अनगार के प्रश्नोत्तर बहुत मूल्यवान् हैं।”^२

“भगवान् महावीर के युग में अनेक धर्म-सम्प्रदाय थे। साम्प्रदायिक कटुता बहुत कम थी। एक धर्मसंघ के मुनि और परिव्राजक दूसरे धर्मसंघ के मुनि और परिव्राजकों के पास जाते, तत्त्वचर्चा करते और जो कुछ उपादेय लगता वह मुक्त भाव से स्वीकार करते। प्रस्तुत आगम में ऐसे अनेक प्रसंग प्राप्त होते हैं, जिनसे उस समय की धार्मिक उदारता का यथार्थ परिचय मिलता है।”^३

“प्रस्तुत आगम भगवान् महावीर के दर्शन या तत्त्व-विद्या का प्रतिनिधि सूत्र है। इसमें महावीर का व्यक्तित्व जितना प्रस्फुटित है उतना अन्यत्र नहीं है। डॉ. वाल्टर शुब्रिंग ने प्रस्तुत आगम के सन्दर्भ में महावीर को समझने के लिए मार्मिक भाषा प्रस्तुत की है। उन्होंने लिखा है—‘महावीर एक सुव्यवस्थित (निरूपण के) पुरस्कर्ता हैं। उन्होंने अपने निरूपणों में प्रकृति में पाए जाने वाले तत्त्वों को स्थान दिया, जैसा कि वियाहपण्णत्ती के कुछ अवतरणों से स्पष्टतया परिलक्षित होता है। उदाहरणार्थ—रायगिह (राजगृह) के समीपस्थ उष्ण जल-स्रोत, जहां वे स्वयं अवश्य गए होंगे, के सम्बन्ध में उनकी व्याख्या (९९४), वायु सम्बन्धी उनका सिद्धान्त (११०) तथा अग्नि एवं वायु जीवों के सामुदायिक जीवन आदि के विषय में उनकी व्याख्या। आकाश में उड़ने वाले पदार्थ की गति मन्द होती जाती है, वियाहपण्णत्ती, १७६ बी; जीवाभिगम, (३७४बी)—यह निष्कर्ष महावीर ने सम्भवतः गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव के आधार पर निकाला होगा। इसी प्रकार, एक सरपट चौकड़ी भरते हुए अश्व के हृदय और यकृत के बीच उद्भूत ‘कव्वडय’ नामक वायु के द्वारा ‘खू-खू’ की आवाज की उत्पत्ति (वियाहपण्णत्ती, ४९९बी.) को भी हम विस्मृत नहीं कर सकते। इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि प्राचीन भारत के जिन मनीषियों के विषय में हमें जानकारी है उन सब में सर्वाधिक ज्ञानवान् मनीषी महावीर थे। उनको संख्या और गणित के प्रति रुचि थी तथा उनके प्रवचनों में इन विषयों का असाधारण वैशिष्ट्य झलकता है। यद्यपि बहुत

१. भगवई (भाष्य), खण्ड १, भूमिका, पृ.

१९।

२. वही, , भूमिका, पृ. १९।

३. वही, खण्ड १, भूमिका, पृ. २०।

४. The Doctrines of the Jains, pp. 40-41.

सारे प्रसंगों में यह सिद्ध करना कठिन है कि उनमें से कितना निरूपण उनका अपना है तथा कितना दूसरों का है, फिर भी कहीं-कहीं वे स्वयं स्पष्ट रूप से अपने आपको अमुक सिद्धान्त के निरूपक के रूप में घोषित करते हैं। वे स्वयं कहते हैं—“एवं खलु, गोयमा, मए सत्त सेढीओ पणत्ताओ।” (वियाहपणत्ती, ९५४बी.)—इस प्रकार मैंने सात श्रेणियों का निरूपण किया है।—इन सबके संदर्भ में परमाणुओं और आकाश-प्रदेशों के जघन्य एवं उत्कृष्ट अंकों का विवेचन किया है, जो हमें गणनात्मक चिन्तन तक पहुंचाता है। इन सबमें एक परिवारगत रुचि दृष्टिगोचर हो रही है। जहां इसके साथ इसको प्रयोग में लाने की रुचि भी जुड़ती है, वहां संभवतः हम महावीर के मौलिक विचार से साक्षात्कार करते हैं।

“डॉ. डेल्यू ने लिखा है”—“निष्कर्ष रूप में मैं कहना चाहूंगा कि ‘अन्यतीर्थिक आगम-पाठों’ में अनेक विविधतापूर्ण विषयों की जो चर्चा की गई है, वे महावीर के व्यक्तित्व को एक चिन्तक एवं एक प्रणेता के रूप में प्ररूपित करते हैं तथा उस अद्भुत युग का चित्रण भी, जब धर्म और दर्शन का सृजनात्मक दौर चल रहा था। ऐसा प्रतीत होता है कि महावीर उस युग के अन्य किसी भी दार्शनिक की तुलना में, यहां तक कि बुद्ध की तुलना में भी अपने समय के आध्यात्मिक उत्साह एवं उत्कटता से अधिक प्रेरित थे।

“फ्राउवालनार ने अपने ग्रन्थ हिस्ट्री ऑफ इण्डियन फिलासोफी में बुद्ध की संभवतः जिन (महावीर) से तुलना करते समय बुद्ध के विषय में यह अभिमत व्यक्त किया है कि उनका (बुद्ध का) दार्शनिक विचारों के क्षेत्र में अपेक्षाकृत बहुत थोड़ा योगदान मिला है। यद्यपि यह फैसला बहुत अधिक कड़ा है, फिर भी यह एक मजबूत आधारभित्ति पर आधारित है कि बुद्ध अपने समकालीन दार्शनिकों के सामने आने वाले प्रश्नों के उत्तर देने से साफ इन्कार कर देते थे। चूंकि महावीर ने इन सभी प्रश्नों के बहुत ही व्यवस्थित रूप से उत्तर दिए; इसलिए उन्हें जो प्राचीन भारत के ज्ञानी चिन्तकों में सर्वाधिक ज्ञानी कहा गया है, वह बिलकुल उचित ही है।”^१

“प्रस्तुत आगम में गति-विज्ञान^२, भावितात्मा द्वारा नाना रूपों का निर्माण^३, भोजन और नाना रूपों के निर्माण का सम्बन्ध^४, चतुर्दशपूर्वी द्वारा एक वस्तु के हजारों प्रतिरूपों का निर्माण^५, भावितात्मा द्वारा आकाशगमन^६, पृथ्वी आदि स्थावर जीवों का श्वास-उच्छ्वास^७,

१. J. Delue's article on "Lord Mahavira and the Anyatirthikas" in "Mahavira and His Teachings", p. 193.

२. भगवई (भाष्य), खण्ड १, भूमिका, पृ. २०-२१।

३. अंगसुत्ताणि, भाग २, भगवई, ३/११७-१२६।

४. वही, ३/१८६-१९१; ३/१९४-१९६।

५. वही, ३/१९१।

६. वही, ५/११२, ११३।

७. वही, ३/१९७-२१८।

८. वही, २/२-८; ९/२५३-२५७।

सार्वभौम धर्म का प्रवचन^१, गतिप्रवाद अध्ययन की प्रज्ञापना^२, कृष्णराजि^३, तमस्काय^४, परमाणु की गति^५, दूरसंचार^६ आदि अनेक महत्त्वपूर्ण प्रकरण हैं। उनका वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन अपेक्षित है।^७

(३) प्रस्तुत आगम का परिमाण और विभाग

“समवायांग और नंदीसूत्र के अनुसार प्रस्तुत आगम के सौ से अधिक अध्ययन, दस हजार उद्देशक और दस हजार समुद्देशक हैं। इसका वर्तमान आकार उक्त विवरण से भिन्न है। वर्तमान में इसके एक सौ अड़तीस शत या शतक और उन्नीस सौ पच्चीस उद्देशक मिलते हैं। प्रथम बत्तीस शतक स्वतंत्र हैं। तेतीस से उनचालीस तक के सात शतक बारह-बारह शतकों के समवाय हैं। चालीसवां शतक इक्कीस शतकों का समवाय है। इकतालीसवां शतक स्वतंत्र है। कुल मिलाकर एक सौ अड़तीस शतक होते हैं। उनमें इकतालीस मुख्य हैं और शेष अवान्तर शतक हैं।”^८

कुल मिला कर १३८ शतक के १९२३ उद्देशक^९ तथा अक्षर-परिमाण ६१७२१४ हैं।^{१०} किन्तु ग्रन्थ का समग्र ग्रन्थाग्र-कुल गाथा १९३१९ अक्षर १६ तथा अक्षर-परिमाण ६१८२२४ बताया गया है।^{११}

ग्रन्थ-परिमाण में जो भिन्नता है, उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—“वर्तमान में प्रस्तुत आगम की मुख्य दो वाचनाएं मिलती हैं—संक्षिप्त और विस्तृत। संक्षिप्त वाचना का ग्रन्थ-परिमाण १५७५१ अनुष्टुप् श्लोक माना जाता है। विस्तृत वाचना का ग्रन्थ-परिमाण सवा लाख अनुष्टुप् श्लोक माना जाता है। अभयदेवसूरि ने संक्षिप्त वाचना को ही आधार मानकर प्रस्तुत आगम की वृत्ति लिखी है। हमने इस पाठ-संपादन में ‘जाव’ आदि पदों द्वारा समर्पित पाठों की यथावश्यक पूर्ति की है। उससे इसका ग्रन्थ-परिमाण १९३१९ अनुष्टुप् श्लोक, १६ अक्षर अधिक हो गया है।”^{१२}

प्रस्तुत आगम के अध्ययन को शत (शतक) कहा गया है। शत और अध्ययन पर्यायवाची हैं।^{१३}

१. वही, ९/९-३३।	एक उद्देशक है, दूसरी परम्परा में ये तीन
२. वही, ८/२९२-२९३।	उद्देशक हैं। इस परम्परा के अनुसार प्रस्तुत
३. वही, ६/८९-११८।	आगम के कुल उद्देशक १९२५ हैं।
४. वही, ६/७०-८८।	१०. भगवई (भाष्य), खण्ड १, भूमिका, पृ.
५. वही, १६/११६।	२१।
६. वही, ५/१०३।	११. अंगसुत्ताणि, भाग २, पृ. १०४६।
७. भगवई (भाष्य), खण्ड १, भूमिका, पृ.	
२१।	१२. अंगसुत्ताणि, भाग २, सम्पादकीय, पृ.
८. वही, खण्ड १, भूमिका, पृ. २१।	१६।
९. बीसवें शतक के छठे उद्देशक में पृथ्वी, अप और वायु इन तीनों की उत्पत्ति का	१३. भगवई (भाष्य), खण्ड १, भूमिका, पृ.
निरूपण है। एक परम्परा के अनुसार यह	२२।

(४) रचना-शैली

“प्रस्तुत आगम में ३६ हजार व्याकरणों का उल्लेख है। इससे पता चलता है कि इसकी रचना प्रश्नोत्तर की शैली में की गई थी। नंदी के चूर्णिकार ने बतलाया है कि गौतम आदि के द्वारा पूछे गए प्रश्नों तथा अपृष्ट प्रश्नों का भी भगवान् महावीर ने व्याकरण किया था।^१ वर्तमान आकार में आज भी यह प्रश्नोत्तर-शैली का आगम है। प्रश्नों की भाषा संक्षिप्त है और उनके उत्तर की भाषा भी संक्षिप्त है। ‘से नूणं भन्ते’—इस भाषा में प्रश्न का और ‘हंता गोयमा’—इस भाषा में उत्तर का आरम्भ होता है।”^२

‘कहीं-कहीं उत्तर के प्रारम्भ में केवल संबोधन का प्रयोग होता है, हंता का प्रयोग नहीं होता।’^३

“उद्देशक की पूर्ति पर भगवान् द्वारा दिए गए उत्तर की स्वीकृति और विनम्र वन्दना का उल्लेख इस प्रकार मिलता है—

‘भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है। इस प्रकार भगवान् गौतम श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करते हैं, वन्दन-नमस्कार कर वे संयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए विहरण कर रहे हैं।’^४

भगवती में जहां गंभीर तत्त्व-विषयक निरूपण है, वहां दृष्टान्त, संवाद, जीवन-चरित्र आदि के रूप में रोचक तथा सहज-सरल प्रतिपादन भी अनेक स्थानों पर मिलता है। जैसे—

“भन्ते! क्या पहले अण्डा और फिर मुर्गी पैदा हुई? क्या पहले मुर्गी और फिर अण्डा पैदा हुआ?

रोह! वह अण्डा कहां से पैदा हुआ?

भगवन्! मुर्गी से।

वह मुर्गी कहां से पैदा हुई?

भन्ते! अण्डे से।

रोह! इसी प्रकार वही अण्डा है, वही मुर्गी है। ये पहले भी थे और आगे भी होंगे। ये दोनों शाश्वत भाव हैं। रोह! यह अनानुपूर्वी है—अण्डे और मुर्गी में पूर्व-पश्चात् का क्रम नहीं है।”^५

१. नंदी चूर्णि, सूत्र ८९, पृ. ६५— ‘गौतमादिहं पुट्टे अपुट्टे वा जो पण्हो तव्वागरणं।’	४. भगवई (भाष्य), खण्ड १, १/५१, पृ. ४६।
२. अंगसुत्ताणि, भाग २, भगवई, १/ ११, १२।	५. वही, खण्ड १, भूमिका, पृ. २२।
३. वही, भगवई, १/१२, १३।	६. भगवई (भाष्य), खण्ड १, १/२९५, पृ. १३१।

“विषय को दृष्टि के अनुसार उत्तर बहुत विस्तार से दिए गए हैं।^१ कहीं-कहीं प्रश्न विस्तृत है और उत्तर संक्षिप्त है, इसलिए प्रतिप्रश्न भी मिलता है।”^२ प्रतिप्रश्न की भाषा है—“भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा गया है?” “विषय के निगमन की भाषा है—“गौतम! यह इस अपेक्षा से ऐसा कहा गया है।”^३

उदाहरणार्थ—“भन्ते! क्या जीव और पुद्गल अन्योन्य-बद्ध, अन्योन्य-स्पृष्ट, अन्योन्य-अवगाढ, अन्योन्य-स्नेहप्रतिबद्ध और अन्योन्य-एकीभूत बने हुए हैं?

हां, बने हुए हैं।

भन्ते! यह किस अपेक्षा से ऐसा कहा जा रहा है—जीव और पुद्गल अन्योन्य-बद्ध, अन्योन्य-स्पृष्ट, अन्योन्य-अवगाढ, अन्योन्य-स्नेहप्रतिबद्ध और अन्योन्य-एकीभूत बने हुए हैं?

गौतम! जैसे कोई द्रव (नद) है। वह जल से पूर्ण, परिपूर्ण प्रमाण वाला, छलकता हुआ, हिलोरें लेता हुआ चारों ओर से जलजलाकार हो रहा है।

कोई व्यक्ति उस द्रव में एक बहुत बड़ी सैकड़ों आश्रवों और सैकड़ों छिद्रों वाली नौका को उतारे। गौतम! वह नौका उन आश्रव-द्वारों के द्वारा जल से भरती हुई—भरती हुई, पूर्ण, परिपूर्ण प्रमाण वाली, छलकती हुई, हिलोरें लेती हुई, चारों ओर से जलजलाकार हो जाती है?

हां, हो जाती है।

गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—जीव और पुद्गल अन्योन्य-बद्ध, अन्योन्य-स्पृष्ट, अन्योन्य-अवगाढ, अन्योन्य-स्नेहप्रतिबद्ध और अन्योन्य-एकीभूत बने हुए हैं।”^४

“भगवती में कहीं-कहीं स्फुट प्रश्न हैं^५, तो कहीं-कहीं एक ही प्रकरण से संबंधित प्रश्नोत्तर की शृंखला बनती है।^६

“शतक के प्रारम्भ में संग्रहणी गाथा होती है। उसमें उस शतक के सभी उद्देशकों की सूची मिल जाती है। गद्य के मध्य में भी संग्रहणी गाथाएं प्रचुरता से मिलती हैं। उदाहरण के लिए चतुर्थ शतक का पांचवां और आठवां तथा छठे शतक का १३२, १३४वां सूत्र द्रष्टव्य हैं।”^७

१. अंगसुत्ताणि, भाग २, भगवई, ८/

२६-३९।

पृ. १३८।

५. वही, १२/१५९।

२. भगवई (भाष्य), खण्ड १, भूमिका, पृ.

२२।

६. वही, १०/३९, ४०।

७. भगवई (भाष्य), खण्ड १, भूमिका, पृ.

३. वही, खण्ड १, भूमिका, पृ. २२।

२३।

४. वही, खण्ड १, १/३१२, ३१३,

“प्रस्तुत आगम के दो संस्करण मिलते हैं—एक संक्षिप्त संस्करण और दूसरा विस्तृत। विस्तृत संस्करण का ग्रन्थमान सवा लाख श्लोकप्रमाण है, इसलिए उसे सवालकखी भगवती कहा जाता है। उसकी एक प्रति हमारे पुस्तक-संग्रह में है। इन दोनों संस्करणों में कोई मौलिक भेद नहीं है। लघु संस्करण में जो समर्पण-सूत्र है—पूरा विवरण देखने के लिए किसी दूसरे आगम को देखने की सूचना दी गई है, उसको पूरा लिख दिया गया है। प्रस्तुत आगम में समर्पण-सूत्रों की संख्या बहुत बड़ी है। प्रथम शतक के चौदहवें सूत्र से ही समर्पण-सूत्रों का प्रारम्भ हो जाता है और वह इकतालीसवें शतक तक चलता है।”

समर्पण-सूत्रों में अनेक आगमों का उल्लेख है—प्रज्ञापना, जीवाजीवाभिगम, राजप्रश्नीय, अनुयोगद्वार, औपपातिक, नंदी, जम्बुद्वीपप्रज्ञप्ति, आवश्यक, दशाश्रुतस्कन्ध, आचारचूला।^१

“व्याख्याप्रज्ञप्ति अंगप्रविष्ट श्रुत के अंतर्गत एक महत्वपूर्ण अंग है। उसमें अंग-बाह्य आगमों के निर्देश क्यों? यह प्रश्न सहज ही उत्पन्न होता है। इस प्रश्न को पण्डित दलसुखभाई मालवणियाजी ने बहुत व्यवस्थित ढंग से उभारा है। उन्होंने लिखा है—

“माथुरीवाचनान्तर्गत अंग-आगमों में जैसे कि भगवती-व्याख्याप्रज्ञप्ति जैसे बहुमान्य आगम में भी जहां भी विवरण की बात है—वहां अंगबाह्य उपांगों का—औपपातिक, प्रज्ञापना, जीवाजीवाभिगम आदि का आश्रय लिया गया है। यदि ये विषय मौलिक रूप से अंग के होते तो उन अंगबाह्य आगमों में ही अंग-निर्देश आवश्यक था। ऐसा न करके अंग में उपांग का निर्देश यह सूचित करता है कि तद्विषयक मौलिक विचारणा उपांगों में हुई है और उपांगों से ही अंग में जोड़ी गई है।

“यह भी कह देना आवश्यक है कि ऐसा क्यों किया गया। जैन-परम्परा में यह एक धारणा पक्की हो गयी है कि भगवान् महावीर ने जो कुछ उपदेश दिया वह गणधरों ने अंग में ग्रथित किया। अर्थात् अंग-ग्रन्थ गणधरकृत हैं। और तदितर स्थविरकृत हैं। अतएव प्रामाण्य की दृष्टि से प्रथम स्थान अंग को ही मिला है। अतएव नयी बात को भी यदि प्रामाण्य अर्पित करना हो तो उसे भी गणधरकृत बताना आवश्यक था। इसी कारण से उपांग की चर्चा को भी अंगान्तर्गत कर लिया गया है। यह तो प्रथम भूमिका की बात हुई, किन्तु इतने से संतोष नहीं हुआ तो बाद में दूसरी भूमिका में यह परम्परा भी चलाई गई कि अंग-बाह्य भी गणधरकृत हैं और उसे पुराण तक बढ़ाया गया। अर्थात् जो कुछ जैन नाम से चर्चा हो उस सबको भगवान् महावीर और उनके गणधर के साथ जोड़ने की यह प्रवृत्ति इसलिए आवश्यक थी कि यदि उसका संबंध भगवान् और गणधरों के साथ जोड़ा जाता है तो

१. भगवई (भाष्य), खण्ड १, भूमिका, पृ. २३। २. द्रष्टव्य, भगवई (भाष्य), खण्ड १, भूमिका, पृ. २३-२२।

फिर उसके प्रामाण्य के विषय में किसी को संदेह करने का अवकाश मिलता नहीं है। इस प्रकार चारों अनुयोगों का मूल भगवान् महावीर के उपदेश में ही है, यह एक मान्यता दृढ़ हुई।^१

“इस प्रश्न के कुछ पहलुओं पर विमर्श अपेक्षित है। महावीरकालीन साधुओं का अध्ययन ग्यारह अगों या द्वादशांगी तक सीमित है। उसमें अंगबाह्य श्रुत का कोई उल्लेख नहीं है। महावीर के निर्वाण के पश्चात् उत्तरवर्ती काल में अनेक आगम रचे गए। उन्हें अंगबाह्य श्रुत माना गया। यदि वे आगम स्थविरों द्वारा रचित होते तो उन्हें आगम की कोटि में स्थान नहीं मिलता। आगम के प्रामाण्य की एक निश्चित मर्यादा थी। केवलज्ञानी, मनःपर्यवज्ञानी, अवधिज्ञानी, चतुर्दशपूर्वी और दशपूर्वी द्वारा रचित ग्रन्थ ही आगम की कोटि में मान्य हो सकता था।^२ नंदी सूत्र के अनुसार चतुर्दशपूर्वी और अभिन्नदशपूर्वी नियमतः सम्यग्श्रुत होते हैं। उससे नीचे नवपूर्वी आदि के लिए वह नियम नहीं है। इसका तात्पर्य यह है कि चतुर्दशपूर्वी और दशपूर्वी नियमतः सम्यग्दृष्टि-सम्पन्न होते हैं। नवपूर्वी आदि सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि—दोनों हो सकते हैं।^३

“अंगबाह्य आगम स्थविरों द्वारा रचित हैं। सभी स्थविर चतुर्दशपूर्वी और दशपूर्वी नहीं थे। प्रामाण्य की कसौटी के आधार पर उन्हें आगम की कोटि में स्वीकार नहीं किया जा सकता। यह एक समस्या थी। इसका समाधान किया गया—जो आगमपुरुष नहीं है उसके वचन का प्रामाण्य नहीं हो सकता, किन्तु यदि वह अंग-सूत्रों के आधार पर रचना करता है तो उसका वचन प्रमाण हो सकता है। देवर्धिगणी ने आगम-वाचना के समय इसी आधार पर स्थविरकृत ग्रन्थों को आगम की कोटि में परिगणित किया। अंगबाह्य श्रुत उत्तरकालीन रचना है, इसलिए वह व्यवस्थित रूप में उपलब्ध है। उसका कोई भी हिस्सा विच्छिन्न नहीं है, विच्छिन्नता की बात अंगों के साथ जुड़ी हुई है, इसलिए वे अंगबाह्य श्रुत की भांति व्यवस्थित नहीं हैं। प्रस्तुत आगम में ‘चलमाणे चलिए’—यह पहला प्रश्न है।^४ इसके बाद ही नैरयिकों की कितनी स्थिति है और वे कितने काल से श्वासोच्छ्वास लेते हैं?—ये प्रश्न आते हैं और यहीं से प्रज्ञापना को देखने का निर्देश शुरू हो जाता है। पहले प्रश्न के साथ इन प्रश्नों का कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं होता। सम्बन्ध-स्थापना या व्यवस्था की दृष्टि से ग्यारहवें और बारहवें सूत्र के पश्चात् सोलहवां सूत्र होना चाहिए। इसमें किसी दूसरे आगम को देखने की जरूरत नहीं है और पूर्व प्रश्न के साथ इनका सम्बन्ध भी जुड़ता है। इसी प्रकार इकतीसवें सूत्र के पश्चात् तेतीसवां सूत्र होना चाहिए। बत्तीसवें सूत्र में फिर प्रज्ञापना को देखने का निर्देश है। ऐसी कल्पना की जा सकती है कि नैरयिक के प्रसंग में नैरयिक सम्बन्धी

१. जैन दर्शन का आदि काल, पृ. १३।

दशवैकालिक : एक समीक्षात्मक

२. व्यवहार-भाष्य और भगवती-वृत्ति में नवपूर्वी को भी आगम माना गया है।

अध्ययन, पृ. ५।

३. नंदी चूर्णि, सू. ६९, पृ. ४८-४९।

विशेष जानकारी के लिए देखें—

४. अंगसुत्ताणि, भाग २, भगवई, १/११।

पूरी जानकारी देने के लिए प्रज्ञापना का कुछ भाग प्रस्तुत सूत्र में साक्षात् लिखा गया और शेष भाग को देखने की सूचना की गई। इसी प्रकार प्रथम शतक के १०१ वें सूत्र में सलेश्य का निरूपण है। प्रसंगवश लेश्या का नाम-निरूपण कर उसके विस्तार के लिए प्रज्ञापना के लेश्यापद का निर्देश है। प्रथम शतक के एक सौ पचहत्तरवें सूत्र में मोहनीय कर्म के विषय में चर्चा है। इस प्रसंग में सभी कर्मों का बोध कराने के लिए प्रज्ञापना के कर्मप्रकृति पद का निर्देश है। जहां-जहां प्रज्ञापना, जीवाजीवाभिगम आदि का निर्देश है वे सब प्रस्तुत आगम में परिवर्धित विषय हैं। यह कल्पना उन प्रकरणों के अध्ययन से स्पष्ट हो जाती है। इसकी संभावना नहीं की जा सकती कि प्रस्तुत आगम में निर्देशित विषय पहले विस्तृत रूप में थे और संकलन-काल में उन्हें संक्षिप्त किया गया और उनका विस्तार जानने के लिए अंगबाह्य सूत्रों का निर्देश किया गया। अंगबाह्य सूत्रों में अंगों का निर्देश किया जा सकता था, किन्तु अंग-सूत्रों में अंगबाह्य सूत्रों का निर्देश कैसे किया जा सकता था? वह किया गया है। इससे स्पष्ट है कि उन निर्देशों से संबंधित विषय प्रस्तुत आगम में जोड़कर उसे व्यवस्थित करने का प्रयत्न किया गया है।

“अंग सूत्रों में अंगबाह्य सूत्रों का निर्देश उनका (अंगबाह्य सूत्रों का) प्रामाण्य स्थापित करने के लिए किया गया है, इस कल्पना में कोई विशेष अर्थ प्रतीत नहीं होता। दशवैकालिक, उत्तराध्ययन तथा छेदसूत्रों का प्रामाण्य स्थापित करने के लिए भी उनका निर्देश किया जाता। दूसरी बात, अंग-सूत्रों में अंगबाह्य सूत्रों का सर्वाधिक निर्देश व्याख्याप्रज्ञप्ति में ही मिलता है। यदि प्रामाण्य-स्थापना की बात होती तो उनका निर्देश प्रत्येक अंग में भी किया जा सकता था। ऐसा नहीं है। इससे वही कल्पना पुष्ट होती है कि संकलन-काल में प्रस्तुत आगम के रिक्त स्थानों की पूर्ति तथा प्रासंगिक विषय का परिवर्धन किया गया।

“उक्त स्थापना की पुष्टि के लिए एक तर्क और प्रस्तुत किया जा सकता है। आठवें शतक के सूत्र संख्या १०४ से ‘क्या जीव ज्ञानी अथवा अज्ञानी?’—यह प्रकरण शुरू होता है। इस प्रसंग में इसकी पृष्ठभूमि के रूप में सूत्र ९७ से १०० तक ज्ञान की चर्चा है। चर्चा का प्रारम्भ कर पूरा विवरण देखने के लिए ‘रायपसेणइय’ सूत्र का निर्देश किया गया है’, श्रुत-अज्ञान की विशेष जानकारी के लिए नंदी का निर्देश किया गया है।^१ इस ऐतिहासिक कालक्रम से भ्रम उत्पन्न हुए हैं। कौटिलीय अर्थशास्त्र, माठर और पुराण आदि ग्रन्थों की रचना व्याख्याप्रज्ञप्ति की रचना के बाद और नंदी की रचना से पूर्व हुई थी। इसलिए व्याख्याप्रज्ञप्ति में उनका निर्देश एक भ्रम उत्पन्न करता है। इससे स्पष्ट होता है कि इस प्रकार के सूत्र प्रसंग की स्पष्टता के लिए जोड़े गए थे।

“पांचवें शतक में प्रमाण के चार प्रकार बतलाए गए हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान, औपम्य और

आगम। इनकी विशेष जानकारी के लिए अनुयोगद्वार का निर्देश किया गया है। व्याख्याप्रज्ञप्ति की रचना के समय जैन-ज्ञान-मीमांसा में प्रमाण का विकास नहीं हुआ था। इन चार प्रमाणों का समावेश आर्यरक्षित ने अनुयोगद्वार में किया था। व्याख्याप्रज्ञप्ति में इनका संदर्भ बहुत भ्रम पैदा करता है। नंदी की श्रुत-अज्ञान की व्याख्या तथा अनुयोगद्वार का प्रमाण-चतुष्टय—ये सब उत्तरकालीन विकास हैं।”^१

“आगम-संकलन के समय कुछ मानदण्ड निश्चित किए गए। उनके अनुसार नगर, राजा, चैत्य, तपस्वी, परिव्राजक आदि का एक जैसा वर्णन किया जाता है। इससे ऐतिहासिक समस्याएं उत्पन्न होती हैं।

“भगवती के मूल पाठ और संकलन-काल में परिवर्धित पाठ का निर्णय करना यद्यपि सरल कार्य नहीं है, फिर भी सूक्ष्म अध्यवसाय के साथ यह कार्य किया जाए तो असंभव भी नहीं।

“डॉ. शुब्रिंग आदि विदेशी विद्वानों ने रचना के आधार पर मूल पाठ और परिवर्धित पाठ का निर्धारण किया है। उनका एक अभिमत यह है कि बीस शतक प्राचीन हैं और अगले शतक परिवर्धित हैं। यह विषय भाषा, वाक्यरचना आदि की दृष्टि से सूक्ष्मता के साथ अन्वेषणीय है। अन्वेषण के पश्चात् ही उत्तरवर्ती शतकों में परिवर्धित भाग अधिक है, यह स्वीकार किया जा सकता है। चौबीसवां शतक भाषा और वाक्य-रचना की दृष्टि से पूर्ववर्ती शतकों से भिन्न प्रतीत होता है। इसमें प्रस्तुत आगम की सहज सरलता नहीं है, किन्तु प्रज्ञापना जैसी जटिलता है। पच्चीसवें शतक के बारे में यह नहीं कहा जा सकता। फिर भी उसमें कुछ परिवर्धित नहीं है, यह भी नहीं कहा जा सकता। प्रतिसेवना^२, आलोचना^३, सामाचारी^४, प्रायश्चित्त^५-विषयकसूत्र छेदसूत्रों और उत्तराध्ययन से संकलित हैं।

“डॉ. डेल्यू ने इस विषय का स्पर्श इन शब्दों में किया है—“वियाहपण्णत्ती में चर्चित विषयों की विविधता और अनेक स्थलों पर इस चर्चा में आने वाले विभिन्न व्यक्तियों तथा परिस्थितियों की विविधता—यह सारा व्यवस्थित पद्धति से दिए जाने वाले विवरण जैसा नहीं है। इसी कारण से हमारे पास यहां एक ऐसा विवरण उपलब्ध है, जो कि महावीर के सिद्धान्त वस्तुतः कैसे थे, उस विषय में निरूपण करता है, न कि उन सिद्धान्तों का जिन्हें उत्तरकाल में व्यवस्थित रूप दिया गया। वस्तुतः तो ऐसा यही एक मात्र यथार्थतः महत्त्वपूर्ण आगमिक विवरण उपलब्ध है। हां, यह अवश्य है कि परम्परा ने बहुत प्रकार से महावीर की यात्रा तथा

१. भगवई (भाष्य), खण्ड १, भूमिका, पृ. ४. वही, २५/५५५।

३२-३३।

५. वही, २५/५५६।

२. अंगसुत्ताणि, भाग २, भगवई, २५/५५१।

६. Jozef Deleu, Viahapannatti (Bhagavai), Preface, pp. 34,35.

३. वही, २५/५५२-५५४।

वे जिन नगरों एवं उद्यानों में गए उनके सम्बन्ध में और वे जिन लोगों से मिले उनके सम्बन्ध में तथा उनकी उपदेश देने की पद्धति के विषय में एकरूप विवेचन प्रस्तुत कर उक्त विवरण को रूढ़-सा बना दिया है। फिर भी यहां जो महत्त्वपूर्ण बिन्दु है वह यह है कि महावीर जिन स्थानों में वस्तुतः रहे थे, जिन लोगों से वस्तुतः मिले थे, अमुक प्रश्नों के बारे में जिन विचारों को उन्होंने निरूपित किया था, जिन अन्य लोगों के अभिप्राय को उन्होंने समर्थन दिया था या असमर्थन दिया था, अपने समय के जिन व्यक्तियों, पदार्थों और घटनाओं के विषय में उन्होंने टिप्पणी की थी, उनके विषय में यहां बताया गया है; तथा संक्षेप में यह कि यहां महावीर अपने काल की स्थितियों और परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में एक सक्रिय व्यक्ति के रूप में अधिक प्रतीत हो रहे हैं। दूसरे शब्दों में—**वियाहपण्णत्ती** के केन्द्रीय शतकों में एक मात्र वे असली संवादात्मक आगम-पाठ उपलब्ध हैं (जिन्हें **पण्णत्ती** कहा जाता है) जिनका अनुसरण आगे चलकर **प्रज्ञापना** जैसे संवादात्मक आगमों में (जिन्हें गौण **पण्णत्ती** कहा जा सकता है) तथा **वियाहपण्णत्ती** में प्रक्षिप्त पाठों में किया गया है।^१ ”

(५) रचनाकार, रचनाकाल

“प्रस्तुत आगम द्वादशांगी का पांचवां अंग है। इसमें भगवान् महावीर की वाणी गणधर सुधर्मा के द्वारा संकलित है, इसलिए इसके रचनाकार गणधर सुधर्मा हैं। इसका प्रस्तुत संस्करण देवर्द्धिगणी की वाचना के समय का है। ई.पू. ५०० से ईस्वी सन् ५०० तक के सूत्र इसमें मिलते हैं। गौतम ने पूछा—भंते! पूर्वगत श्रुत कब तक चलेगा? भगवान् ने उत्तर दिया—गौतम! मेरे निर्वाण के एक हजार वर्ष तक पूर्वगत श्रुत चलेगा^२—

‘जंबुद्वीवे णं भंते! दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए देवाणुप्पियाणं केवतियं कालं पुव्वगए अणुसज्जिस्सति ?

गोयमा! जंबुद्वीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए ममं एणं वाससहस्सं पुव्वगए अणुसज्जिस्सति ।’

“यह सूत्र संकलनाकालीन रचना है। देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण ने पार्श्वनाथ की परम्परा के देवगुप्त से एक पूर्व अर्थ-सहित और दूसरे पूर्व का केवल मूल पाठ पढ़ा था।^३ अंतिम पूर्वधारी सत्यमित्र माने जाते हैं। उनके स्वर्गवास के पश्चात् पूर्वश्रुत का सर्वथा विच्छेद हो गया। धर्मसागरगणि-लिखित **तपागच्छ पट्टावलि** में इसका उल्लेख मिलता है^४—**श्रीवीरात् वर्षसहस्रे १००० गते सत्यमित्रे पूर्वव्यवच्छेदः पूर्वविच्छेदः।**

“भगवान् महावीर के प्रवचन में कहीं भी भविष्यवाणी नहीं है। यह सामयिक स्थिति का आकलन करने वाला सूत्र देवर्द्धिगणी की वाचना के समय जोड़ा गया प्रतीत होता है।

१. भगवई (भाष्य), खण्ड १, भूमिका, पृ.

३३-३४।

२. अंगसुत्ताणि, भाग २, भगवई, २०/७०।

३. आत्मप्रबोध, ३३/१।

४. पट्टावली समुच्चय, भाग १, पृ. ५१।

“समर्पण-सूत्रों या निर्देश-सूत्रों के अध्ययन से भी यह तथ्य प्रमाणित होता है कि प्रस्तुत आगम में अनेक शताब्दियों की रचना का संकलन किया गया है। गणिपिटक की जानकारी के लिए नंदी सूत्र का निर्देश किया गया है। उसमें निर्युक्ति का उल्लेख है।^१ यह उत्तरकालीन पाठ-रचना है। प्रस्तुत आगम में विभिन्न पाठों के रचनाकाल का निर्धारण करना बहुत आवश्यक कार्य है। इससे दार्शनिक विकास के कालक्रम को समझने में पर्याप्त सहायता मिल सकती है।”^२

(६) आकार और वर्तमान आकार

“प्रस्तुत आगम का ग्रन्थमान अनुष्टुप् श्लोक के अनुपात से १६ हजार श्लोक प्रमाण माना जाता है। हमने अंगसुत्ताणि भाग २ में प्रकाशित प्रस्तुत आगम के संस्करण में अनेक स्थलों पर जाव शब्द की पूर्ति की है। उससे इसका ग्रन्थमान १९२८९^१/_२ श्लोक प्रमाण हो गया है। इसका सवा लाख प्रमाण वाला भी संस्करण मिलता है, जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है।”

“जय धवला के अनुसार व्याख्याप्रज्ञप्ति में २,२८००० पद हैं।”^३

अनुवाद की दुरूहता

“भगवई विआहपण्णत्ती का प्रथम भाग पाठक के सम्मुख प्रस्तुत हो रहा है। इसके सम्पूर्ण मूलपाठ का सम्पादन अंगसुत्ताणि भाग २ में हो चुका है। हमने जो सम्पादन-शैली स्वीकृत की है, उसमें पाठ-शोधन और अर्थ-बोध दोनों समवेत हैं। अर्थ-बोध के लिए शुद्ध पाठ अपेक्षित है और पाठ-शुद्धि के लिए अर्थ-बोध अनिवार्य है।

“प्रस्तुत संस्करण अर्थ-बोध कराने वाला है। इसमें मूल पाठ के अतिरिक्त संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद और सूत्रों का हिन्दी भाष्य समवेत है। पाठ-सम्पादन का काम जटिल है। अर्थ-

१. अंगसुत्ताणि, भाग २, भगवई, २५/१६, १७-कतिविहे णं भंते! गणिपिडए पण्णत्ते? गोयमा! दुवालसंगे गणिपिडए पण्णत्ते, तं जहा-आयारो जाव दिट्ठिवाओ। से किं ते आयारो? आयारो णं समणाणं निग्गंधाणं आयार-गोयर-विणय - वेणइय - सिक्खा - भासा-अभासा - चरण - करण-जाया-माया-वित्तीओ आघविज्जंति, एवं अंगपरूवणा भाणियत्वा जहा नंदीए जाव। सुत्तत्थो खलु पढमो, बीओ निज्जुत्तिमीसओ भणिओ। तइओ य निरवसेसो, - एस विही होइ अणुओगे ॥	२. भगवई (भाष्य), खण्ड १, भूमिका, पृ. ३६। ३. वही, खण्ड १, भूमिका, पृ. ३६। समवायांग और नन्दी में जो रूप और आकार है उसके लिए द्रष्टव्य है-भगवई (भाष्य), खण्ड १, भूमिका, पृ. ३६ ४. कसायपाहुड, प्रथम अधिकार, पृ. ९३, ९४। ५. भगवई (भाष्य), खण्ड १, भूमिका, पृ. ३६।

-बोध का काम उससे कहीं अधिक जटिल है। कथा-भाग और वर्णन-भाग में तात्पर्य-बोध की जटिलता नहीं है। किन्तु तत्त्व और सिद्धांत का खण्ड बहुत गंभीर अर्थ वाला है। उसकी स्पष्टता के लिए हमारे सामने दो आधारभूत ग्रंथ रहे हैं—

“१. अभयदेव सूरिकृत वृत्ति—इसे अभयदेवसूरि ने स्वयं विवरण ही माना है और उसे पढ़ने पर वह विवरण-ग्रंथ का बोध ही कराता है, व्याख्या-ग्रंथ का बोध नहीं देता।

“२. भगवती-जोड़—इसमें श्रीमज्जयाचार्य ने अभयदेवसूरि की वृत्ति का पूरा उपयोग किया है। ‘धर्मसी का टबा’ का भी अनेक स्थलों पर उपयोग किया है। इसके अतिरिक्त आगम और अपने तत्त्वज्ञान के आधार पर अनेक समीक्षात्मक वार्तिक लिखे हैं। हमने भाष्य के लिए आगम-सूत्रों, श्वेताम्बर-दिगम्बर परम्परा का ग्रंथ-साहित्य, वैदिक और बौद्ध परंपरा के अनेक ग्रंथों का उपयोग किया है। ‘आयारो’ का भाष्य संस्कृत भाषा में लिखा गया है। भगवती का भाष्य हिन्दी में लिखा गया है।”

“उपलब्ध आगम-साहित्य में ‘भगवती सूत्र’ सबसे बड़ा ग्रंथ है। तत्त्वज्ञान का अक्षयकोष है। इसके अतिरिक्त इसमें प्राचीन इतिहास पर प्रकाश डालने वाले दुर्लभ सूत्र विद्यमान हैं। इस पर अनेक विद्वानों ने काम किया है। किन्तु जितने श्रम-बिन्दु झलकने चाहिए, उतने नहीं झलक रहे हैं, यह हमारा विनम्र अभिमत है। गुरुदेव तुलसी की भावना थी कि भगवती पर गहन अध्यवसाय के साथ कार्य होना चाहिए। हमने उस भावना को शिरोधार्य किया है और उसके अनुरूप फलश्रुति भी हुई है। इसका मूल्यांकन गहन अध्ययन करने वाले ही कर पाएंगे। हमारा यह निश्चित मत है कि सभी परम्पराओं के ग्रंथों के व्यापक अध्ययन और व्यापक दृष्टिकोण के बिना प्रस्तुत आगम के आशय को पकड़ना सरल नहीं है। उदाहरण के लिए एक शब्द को प्रस्तुत करना अभीष्ट है। प्रथम शतक के एक सूत्र (३४९) में ‘अवरा’ पाठ है। पंडित बेचरदास जी ने उसका अर्थ ‘और दूसरी भी एक नाड़ी है (तथा बीजी पण एक नाड़ी है)’ किया है।”

“‘चरक-संहिता’ के अनुसार-गर्भस्थ शिशु को रसवाहिनियों से पोषण प्राप्त होता है। गर्भ की नाभि में नाड़ी लगी रहती है, नाड़ी में अपरा (placenta) लगी रहती है और अपरा का संबंध माता के हृदय के साथ लगा रहता है। माता का हृदय उस अपरा को स्यन्दमान (जिसमें रस-रक्त आदि का वहन होता है) शिराओं द्वारा रस-रक्त से आप्लावित किए रहता है।”

हिन्दी संस्करण की उपयोगिता

यह तो स्पष्ट है कि यदि कोई भी व्यक्ति आगमों का सांगोपांग ज्ञान करना चाहता है, तो उसे आगमों की व्याख्या (भाष्य/टिप्पण) से युक्त संस्करण का ही अनुशीलन करना चाहिए, क्योंकि केवल अनुवाद में जो अभिव्यक्ति होती है, वह कथ्य को गहराई से पकड़ने के लिए

१. भगवई (भाष्य), खण्ड १, सम्पादकीय, पृ. ११।	१८२।
२. श्रीमद्भगवती सूत्र, पं. बेचरदासजी द्वारा अनुदित, संपादित, प्रथम खण्ड, पृ.	३. चरकसंहिता, शारीरस्थान, ६/२३ ४. भगवई (भाष्य), खण्ड १, सम्पादकीय, पृ. ११।

पर्याप्त नहीं है। व्याख्या में जो विस्तृत स्पष्टीकरण होता है वही आगम के गहन तत्त्व तक पाठक को पहुंचा सकता है। तब फिर प्रश्न होगा कि केवल अनुवाद वाले संस्करण का क्या लाभ ?

पहली बात तो यह है कि सामान्य पाठक का उद्देश्य ग्रन्थ की विषय-वस्तु से परिचित होना है। आगमों में निरूपित विषयों का परिचय प्राप्त करने पर यदि विशेष जिज्ञासा हो, तो वह आगे विस्तार से उसके अनुशीलन के लिए अभिप्रेरित हो सकता है। प्रथम परिचय के लिए सामान्यतः संक्षिप्त संस्करण का अध्ययन अधिक सुविधाजनक एवं सुगम रहता है।

दूसरी बात है—जिन ग्रन्थों का पुनः पुनः पारायण करना होता है, उनके केवल अनुवाद वाले संस्करण ही अधिक उपयोगी बनते हैं। विस्तृत व्याख्या वाले ग्रंथों का परिमाण मूल ग्रंथ से दुगुना-तिगुना हो जाने से सामान्य पठन-पाठन या पारायण में वे अधिक उपयोगी नहीं रहते।

देखा जाता है कि जहां वैदिक वाङ्मय—वेद, उपनिषद्, गीता, महाभारत, रामायण, पुराण आदि ग्रंथ अथवा बौद्ध वाङ्मय—त्रिपिटक आदि ग्रंथ अथवा अन्य धर्मों के धार्मिक ग्रंथ—बाइबिल, कुरान आदि विपुल मात्रा में केवल अनुवाद (हिन्दी या अंग्रेजी) के साथ व्यापक रूप में उपलब्ध हैं, वहां जैन आगम-वाङ्मय का केवल हिन्दी/अंग्रेजी अनुवाद व्यापक रूप में उपलब्ध नहीं है। इसका परिणाम संभवतः यह आया है कि आज आगम-वाङ्मय में उपलब्ध जैन धर्म, जैन दर्शन, जैन संस्कृति आदि के विषय में व्यापक रूप में लोग नहीं जानते। औरों की तो क्या बात, हमारे जैन साधु-साध्वी या श्रावक-श्राविका भी उससे व्यापक रूप में परिचित नहीं हैं। हमारा मंतव्य है कि यदि सुगम, सरल, संक्षिप्त संस्करणों को व्यापक रूप में उपलब्ध कराया जाए तो विश्व में जैन धर्म, जैन दर्शन, जैन संस्कृति आदि को हम बहुत ही शीघ्र प्रचारित-प्रसारित कर सकते हैं। हमारा यह भी विश्वास है कि जैन सिद्धान्त अन्य सिद्धान्तों की तुलना में अधिक बुद्धिगम्य, तर्कसंगत/युक्तिसंगत और वैज्ञानिक हैं। इसलिए समग्र जैन समाज के लिए यह चिन्तन अपेक्षित है कि यदि हम भगवान महावीर के सिद्धान्तों को विश्व में अधिक से अधिक प्रचारित करना चाहते हैं तो हमें उनकी वाणी (आगम) को युगीन भाषाओं—हिन्दी, अंग्रेजी आदि में उपलब्ध कराना होगा।

इसी भाव को आचार्य तुलसी ने दसवेआलियं की भूमिका में इस प्रकार व्यक्त किया है—“आजकल जन-साधारण में ठोस साहित्य पढ़ने की अभिरुचि कम है। उसका एक कारण उपयुक्त साहित्य की दुर्लभता भी है। मुझे विश्वास है कि चिरकालीन साधना के पश्चात् पठनीय सामग्री सुलभ हो रही है, उससे भी जन-जन लाभान्वित होगा।”^१

सामान्य पाठक के अतिरिक्त विभिन्न विषयों के अध्येताओं, विद्वानों आदि के लिए भी प्राथमिक रूप में हमारे ये संस्करण अधिक उपयोगी बन सकते हैं। प्रारंभिक परिचय के पश्चात् यदि वे और अधिक गहराई से आगम-वाङ्मय का अनुशीलन/शोध

करना चाहते हैं, तो फिर उनके लिए विस्तृत व्याख्या वाले संस्करण अधिक उपयोगी हो सकते हैं।

हमारी 'केवल हिन्दी अनुवाद वाली ग्रन्थमाला' के प्रथम पुष्प के रूप में दशवैकालिक और उत्तराध्ययन का प्रकाशन हुआ था। उस संदर्भ में ये विचार मननीय हैं—

“‘दशवैकालिक’ और ‘उत्तराध्ययन’ ये दोनों मूल सूत्र हैं। जैन परम्परा में इनका अध्ययन, वाचन और मनन बहुलता से होता है। भगवान् महावीर की पच्चीसवीं निर्वाण-शताब्दी के अवसर पर इनका अध्ययन और मनन अधिक मात्रा में हो, यह अपेक्षित है। इस अपेक्षा को ध्यान में रखकर केवल अनुवाद की ग्रन्थमाला पाठकों के सामने प्रस्तुत की जा रही है। इससे हिन्दी-भाषी पाठक बहुत लाभान्वित होंगे।

“भगवान् महावीर की सर्वजनहिताय जनभाषा (प्राकृत) में प्रादुर्भूत वाणी को वर्तमान जनभाषा (हिन्दी) में शृंखलाकार प्रस्तुत करते हुए हमें हर्ष का अनुभव हो रहा है।”

दशवैकालिक और उत्तराध्ययन के केवल हिन्दी अनुवाद वाले संस्करण की भूमिका के रूप में स्वकथ्य में वाचना-प्रमुख आचार्यश्री तुलसी ने स्वयं लिखा है—“प्रस्तुत ग्रन्थ दशवैकालिक और उत्तराध्ययन का हिन्दी संस्करण है। जो व्यक्ति केवल हिन्दी के माध्यम से आगमों का अनुशीलन करना चाहते हैं, उनके लिए यह संस्करण बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगा, इसी आशा के साथ।”

अस्तु, समग्र दृष्टि से लाभालाभ का चिन्तन करने पर यह समुचित ही नहीं वरन् आवश्यक भी प्रतीत हो रहा है कि केवल अनुवाद वाले (हिन्दी/अंग्रेजी) संस्करणों के निर्माण पर भी हम अपना ध्यान केन्द्रित करें।

आगमों के केवल हिन्दी अनुवाद वाले संस्करण के प्रकाशन-कार्य के इतिहास में जो उल्लेखनीय कार्य हुआ था, उसमें आज से लगभग ८० वर्ष पूर्व स्थानकवासी सम्प्रदाय के अमोलक ऋषि द्वारा किए गए ३२ आगमों का अनुवाद-कार्य उल्लेखनीय है। इस विषय में आज से लगभग २० वर्ष पूर्व प्रकाशित आगमों के आदिवचन में स्थानकवासी सम्प्रदाय के युवाचार्य मुनिश्री मधुकरजी ने बताया है—“आज से लगभग साठ वर्ष पूर्व पूज्य श्री अमोलकऋषिजी महाराज ने जैन आगमों—३२ सूत्रों का प्राकृत से खड़ी बोली में अनुवाद किया था। उन्होंने अकेले ही बत्तीस सूत्रों का अनुवाद कार्य सिर्फ ३ वर्ष व १५ दिन में पूर्ण कर एक अद्भुत कार्य किया। उनकी दृढ़ लगनशीलता, साहस एवं आगम-ज्ञान की गम्भीरता उनके कार्य से ही स्वतः परिलक्षित होती है। वे ३२ ही आगम अल्प समय में प्रकाशित भी हो गये।

“इससे आगम-पठन बहुत सुलभ व व्यापक हो गया और स्थानकवासी, तेरापंथी समाज तो विशेष उपकृत हुआ।”

१. दशवैकालिक और उत्तराध्ययन, २. वही, स्वकथ्य, पृ. 'इ'।

सम्पादकीय, पृ. ९।

३. प्रज्ञापना, आदिवचन, पृष्ठ २२-२३।

इससे आगे उन्होंने यह भी उल्लेख किया है—“वर्तमान में तेरापंथ सम्प्रदाय में आचार्यश्री तुलसी एवं युवाचार्य महाप्रज्ञजी के नेतृत्व में आगम-सम्पादन का कार्य चल रहा है और जो आगम प्रकाशित हुए हैं उन्हें देखकर विद्वानों को प्रसन्नता है। यद्यपि उनके पाठ-निर्णय में काफी मतभेद की गुंजाइश है। तथापि उनके श्रम का महत्त्व है।”^१

१५ अगस्त २०१२

जसोल

आचार्य महाप्रज्ञ
आचार्य महाश्रमण

१. प्रज्ञापना, आदिवचन, पृष्ठ २३।

अनुक्रम

पहला शतक (पृ. १-६३)		
पहला उद्देशक	१	संग्रहणी गाथा १८
मंगल-पद	१	श्रद्धा-पद १८
संग्रहणी गाथा	१	अस्ति-नास्ति-पद १८
उत्क्षेप-पद	१	भगवान् की समता का पद १९
चलमान-पद	२	कांक्षामोहनीय का बंध आदि-पद २०
नैरयिकों की स्थिति आदि का पद	२	चौथा उद्देशक २३
संग्रहणी गाथा	३	कर्म-पद २३
संग्रहणी गाथा	३	संग्रहणी गाथा २३
संग्रहणी गाथा	४	उपस्थापन-अपक्रमण-पद २३
संग्रहणी गाथा	४	कर्ममोक्ष-पद २५
आरम्भ-अनारम्भ-पद	५	पुद्गल और जीव की त्रैकालिकता का पद २५
ज्ञान आदि का भवान्तर-संक्रमण-पद	६	मोक्ष-पद २६
असंवृत-संवृत-अनगार-पद	६	पांचवां उद्देशक २८
असंयत का वानमन्तरदेव-पद	७	पृथ्वी-पद २८
दूसरा उद्देशक	८	आवास-पद २८
कर्म-वेदन-पद	८	संग्रहणी गाथा २८
नैरयिक आदि जीवों का समान आहार,		संग्रहणी गाथा २८
समान शरीर आदि-पद	९	नैरयिकों का नानादशाओं में क्रोधोपयुक्त-
मनुष्यों आदि का समान आहार,		-आदि-भंग-पद २९
समान शरीर आदि-पद	१२	संग्रहणी गाथा ३२
संग्रहणी गाथा	१५	असुरकुमार आदि का नाना दशाओं में
लेश्या-पद	१५	क्रोधोपयुक्त आदि भंग-पद ३२
जीवों का भव-परिवर्तन-पद	१५	छठा उद्देशक ३३
अन्तक्रिया-पद	१६	सूर्य-पद ३३
असंज्ञी-आयु-पद	१६	स्पर्शना-पद ३४
तीसरा उद्देशक	१७	क्रिया-पद ३५
कांक्षामोहनीय-पद	१७	रोह के प्रश्न-पद ३६
		संग्रहणी गाथा ३८

(LX)

लोकस्थिति-पद	३९	उत्क्षेप-पद	६४
जीव-पुद्गल-पद	४०	श्वासोच्छ्वास-पद	६४
स्नेहकाय-पद	४०	वायुकाय की कायस्थिति-पद	६५
सातवां उद्देशक	४१	मृतादी-निर्ग्रन्थ-पद	६६
देश-सर्व-पद	४१	स्कन्दककथा-पद	६७
विग्रहगति-पद	४२	दूसरा उद्देशक	८१
आयु-पद	४२	समुद्घात-पद	८१
गर्भ-पद	४४	तीसरा उद्देशक	८१
मात्रिक-पैत्रिक-अंग-पद	४५	पृथ्वी-पद	८१
गर्भ का नरकागमन-पद	४५	चौथा उद्देशक	८१
गर्भ का देवलोकगमन-पद	४५	इन्द्रिय-पद	८१
आठवां उद्देशक	४७	पांचवा उद्देशक	८२
बाल का आयुष्य-पद	४७	परिचाराणा-वेद-पद	८२
पण्डित का आयुष्य-पद	४७	तुंगिकानगरी-श्रमणोपासक-पद	८४
बालपण्डित का आयुष्य-पद	४७	संग्रहणी गाथा	८६
क्रिया-पद	४८	उष्णजलकुण्ड-पद	८९
जय-पराजय-पद	५०	छठा उद्देशक	९०
वीर्य-पद	५१	भाषा-पद	९०
नौवां उद्देशक	५२	सातवां उद्देशक	९०
गुरु-लघु-पद	५२	स्थान-पद	९०
प्रशस्त-पद	५४	आठवां उद्देशक	९०
कांक्षाप्रदोष-पद	५५	चमरसभा-पद	९०
कालासवैश्यपुत्र-पद	५६	नवां उद्देशक	९१
अप्रत्याख्यानक्रिया-पद	५८	समयक्षेत्र-पद	९१
आधाकर्म-पद	५८	दसवां उद्देशक	९१
प्रासु-एषणीय-पद	५९	अस्तिकाय-पद	९१
शाश्वत-अशाश्वत-पद	५९	जीवत्व-उपदर्शन-पद	९४
दसवां उद्देशक	५९	आकाश-पद	९५
परसमयवक्तव्यता-पद	५९	अस्तिकाय-पद	९६
स्वसमयवक्तव्यता-पद	६१	स्पर्शना-पद	९६
ऐर्यापथिकी-साम्प्रयायिकी-पद	६२	तीसरा शतक (पृ. ९८-१४६)	
उपपात-पद	६२	पहला उद्देशक	९८
दूसरा शतक (पृ. ६४-९७)		संग्रहणी गाथा	९८
पहला उद्देशक	६४	उत्क्षेप-पद	९८
संग्रहणी गाथा	६४	देवविक्रिया-पद	९८

(LXI)

तामलि का ईशानेन्द्र-पद	१०५	पांचवां उद्देशक	१३४
शक्रेशान-पद	१११	भावितात्म-विकुर्वणा-पद	१३४
सनत्कुमार-पद	११३	भावितात्म-अभियोजना-पद	१३६
संग्रहणी गाथा	११४	छठा उद्देशक	१३७
दूसरा उद्देशक	११४	भावितात्म-विक्रिया-पद	१३७
चमर का भगवान को वन्दन-पद	११४	आत्मरक्षक-पद	१४०
असुरकुमार-वर्णक-पद	११४	सातवां उद्देशक	१४०
चमर का ऊर्ध्व-उत्पाद-पद	११६	लोकपाल-पद	१४०
चमर का पूर्वभव में पूरण गृहपति का पद	११६	सोम-पद	१४१
पूरण की दानामा प्रब्रज्या का पद	११७	यम-पद	१४२
पूरण का प्रायोगपगमन-पद	११८	संग्रहणी गाथा	१४३
भगवान की एकरात्रिकी महाप्रतिमा		वरुण-पद	१४३
का पद	११८	वैश्रवण-पद	१४३
पूरण का चमरत्व-पद	११८	आठवां उद्देशक	१४४
चमर का कोप-पद	११९	संग्रहणी गाथा	१४५
चमर का भगवान की निश्रापूर्वक		नवां उद्देशक	१४६
शक्र की आशातना का पद	१२०	दसवां उद्देशक	१४६
शक्रेन्द्र द्वारा वज्र-प्रक्षेप-पद	१२१	चौथा शतक (पृ. १४७, १४८)	
चमर द्वारा भगवान् की शरण का पद	१२१	पहला, दूसरा, तीसरा और चौथा	
शक्र का वज्र-प्रतिसंहरण-पद	१२२	उद्देशक	१४७
शक्र, चमर और वज्र का गति-		संग्रहणी गाथा	१४७
-विषयक-पद	१२३	संग्रहणी गाथा	१४७
चमर की चिन्ता का पद	१२५	पांचवां, छठ्ठा, सातवां और आठवां	
असुरकुमारों का ऊर्ध्वलोक में जाने का		उद्देशक	१४७
हेतु-पद	१२६	नवां उद्देशक	१४८
तीसरा उद्देशक	१२६	दसवां उद्देशक	१४८
क्रिया-पद	१२६	संग्रहणी गाथा	१४८
क्रिया-वेदना-पद	१२७	पांचवा शतक (पृ. १४९-१९०)	
अन्तक्रिया-पद	१२७	पहला उद्देशक	१४९
प्रमत्त और अप्रमत्त के काल का पद	१२९	संग्रहणी गाथा	१४९
लवणसमुद्र-वृद्धि-हानि-पद	१३०	जम्बूद्वीप में सूर्य की व्यक्तव्यता का पद	१४९
चौथा उद्देशक	१३०	जम्बूद्वीप में दिवस-रात्रि की व्यक्तव्यता	
भावितात्म-पद	१३०	का पद	१४९
बलाहक-पद	१३२	जम्बूद्वीप में अयनादि की व्यक्तव्यता	
किंलेश्योपपाद-पद	१३३	का पद	१५२

लवणसमुद्रादि में सूर्यादि की वक्तव्यता का पद	१५२	धनुःप्रक्षेप में क्रिया-पद	१७१
दूसरा उद्देशक	१५३	अन्ययूथिक-पद	१७२
वायु-पद	१५३	नैरयिकविक्रिया-पद	१७२
ओदन आदि 'किसके शरीर' का पद	१५५	आधाकर्म आदि आहार के सम्बन्ध में आराधनादि-पद	१७३
लवण समुद्र-पद	१५६	आचार्य-उपाध्याय की सिद्धि का पद	१७३
तीसरा उद्देशक	१५६	अभ्याख्यानी के कर्मबन्ध-पद	१७४
आयुष्य-प्रकरण-प्रतिसंवेदन-पद	१५६	सातवां उद्देशक	१७४
सायुष्यसंक्रमण-पद	१५८	परमाणु-स्कन्धों का एजनादि-पद	१७४
चौथा उद्देशक	१५८	परमाणु-स्कन्धों का छेदन आदि-पद	१७४
छद्मस्थ और केवली द्वारा शब्द-श्रवण का पद	१५८	परमाणु-स्कन्धों का सार्द्ध समध्यादि-पद	१७६
छद्मस्थ और केवली का हास्य-पद	१६०	परमाणु-स्कन्धों का परस्पर	
छद्मस्थ और केवली की निद्रा का पद	१६१	स्पर्शना-पद	१७७
गर्भ-संहरण-पद	१६१	परमाणु-स्कन्धों की संस्थिति का पद	१७८
अतिमुक्तक-पद	१६२	परमाणु-स्कन्धों का अन्तरकाल-पद	१७९
देवों की नोसंयतवक्तव्यता का पद	१६४	परमाणु-स्कन्धों का परस्पर अल्प-बहुत्व-पद	१७९
देवभाषा-पद	१६४	संग्रहणी गाथा	१७९
छद्मस्थ और केवली का ज्ञान-भेद-पद	१६४	जीवों का सभारम्भ-सपरिग्रह-पद	१७९
केवली के प्रणीत-मन-वचन-पद	१६५	हेतु-पद	१८१
अनुत्तरोपपातिक देवों द्वारा केवली के साथ आलाप का पद	१६६	आठवां उद्देशक	१८२
केवलियों के इन्द्रिय-ज्ञान का निषेध-पद	१६६	निर्ग्रन्थीपुत्र-नारदपुत्र-पद	१८२
केवलियों की योग-चंचलता का पद	१६७	जीवों की वृद्धि-हानि-अवस्थिति-पद	१८४
चतुर्दशपूर्वियों का सामर्थ्य-पद	१६७	जीवों का सोपचय-सापचय-आदि पद	१८६
पांचवां उद्देशक	१६८	नवां उद्देशक	१८७
मोक्ष-पद	१६८	'यह कौन राजगृह' का पद	१८७
एवंभूत-अनेवंभूत-वेदना-पद	१६८	उद्द्योत-अन्धकार-पद	१८७
कुलकर आदि-पद	१६९	मनुष्य-क्षेत्र में समयदि-पद	१८८
छठा उद्देशक	१६९	पार्श्वपत्नीय-पद	१८९
अल्पायु-दीर्घायु-पद	१६९	देवलोक-पद	१९०
अशुभ-शुभ-दीर्घायु-पद	१६९	संग्रहणी गाथा	१९०
क्रय-विक्रय-क्रिया-पद	१७०	दसवां उद्देशक	१९०
अग्निकाय में महाकर्म आदि-पद	१७१	छठा शतक (पृ. १९१-२२२)	
		पहला उद्देशक	१९१

(LXIII)

संग्रहणी गाथा	१९१	औपमिक-काल-पद	२१२
प्रशस्त निर्जरा का श्रेयस्त्व-पद	१९१	सुषम-सुषमा में भरतवर्ष-पद	२१४
करण-पद	१९२	आठवां उद्देशक	२१४
महावेदना-महानिर्जरा-चतुर्भंग-पद	१९३	पृथ्वी आदि में गेह आदि की पृच्छा	
संग्रहणी गाथा	१९४	का पद	२१४
दूसरा उद्देशक	१९४	संग्रहणी गाथा	२१५
तृतीय उद्देशक	१९४	आयुष्कबन्ध-पद	२१६
संग्रहणी गाथा	१९४	लवणादि समुद्र-पद	२१६
महाकर्म वाले आदि के पुद्गल- बन्ध-पद	१९४	नवां उद्देशक	२१७
अल्पकर्म वाले आदि के पुद्गल- भेद का पद	१९५	कर्मप्रकृति-बन्ध-पद	२१७
कर्मोपचय-पद	१९५	महर्द्धिक देव की विक्रिया का पद	२१८
कर्मोपचय का सादि-अनादि-पद	१९६	अविशुद्ध लेश्या आदि वाले देव का	
कर्म-प्रकृति-बन्ध-विवेचन-पद	१९६	ज्ञान-दर्शन-पद	२१९
वेदक-अवेदक जीवों का अल्प- बहुत्व-पद	२००	दशवां उद्देशक	२१९
चौथा उद्देशक	२०१	सुख-दुःख-उपदर्शन-पद	२१९
काल की अपेक्षा सप्रदेश-अप्रदेश-पद	२०१	जीव-चेतना-पद	२२०
संग्रहणी गाथा	२०३	वेदना-पद	२२१
प्रत्याख्यान-पद	२०३	नैरयिक आदि जीवों के आहार का पद	२२१
संग्रहणी गाथा	२०३	केवली के ज्ञान का पद	२२२
पांचवां उद्देशक	२०४	सातवां शतक (पृ. २२३-२५९)	
तमस्काय-पद	२०४	पहला उद्देशक	२२३
कृष्णराजि-पद	२०५	संग्रहणी गाथा	२२३
संग्रहणी गाथा	२०६	अनाहारक-पद	२२३
लोकान्तिक देव-पद	२०८	सर्वअल्प आहार-पद	२२३
संग्रहणी गाथा	२०८	लोक-संस्थान-पद	२२३
संग्रहणी गाथा	२०९	श्रमणोपासक की क्रिया का पद	२२४
छठा उद्देशक	२०९	श्रमण-प्रतिलाभ से लाभ-पद	२२४
नैरयिक आदि के आवास-पद	२०९	अकर्म की गति का पद	२२४
मारणान्तिकसमुद्घात-पद	२१०	दुःखी के दुःखस्पर्श आदि का पद	२२५
सातवां उद्देशक	२११	ऐर्यापथिक-साम्परायिक-क्रिया-पद	२२६
धान्यों की योनि और स्थिति का पद	२११	स-अंगार आदि दोष से दूषित पान- भोजन-पद	२२६
गणना-काल-पद	२१२	दूसरा उद्देशक	२२८
		सुप्रत्याख्यान-दुष्प्रत्याख्यान-पद	२२८
		प्रत्याख्यान-पद	२२९

(LXIV)

प्रत्याख्यानी-अप्रत्याख्यानी-पद	२३०	महाशिलाकंटक संग्राम-पद	२४८
शाश्वत-अशाश्वत-पद	२३२	नागनप्तृक वरुण के मित्र का पद	२५४
तीसरा उद्देशक	२३२	दसवां उद्देशक	२५५
वनस्पति-आहार-पद	२३२	कालोदायी प्रभृति का पञ्चास्तिकाय में	
अनन्तकाय-पद	२३३	सन्देह-पद	२५५
अल्पकर्म-महाकर्म-पद	२३३	कालोदायी का समाधानपूर्वक प्रव्रज्या	
वेदना-निर्जरा-पद	२३४	का पद	२५६
शाश्वत-अशाश्वत-पद	२३६	कालोदायी का कर्म आदि के विषय में	
चौथा उद्देशक	२३६	प्रश्न का पद	२५७
संसारस्थजीव-पदम्	२३६	आठवां शतक (पृ. २६०-३३३)	
पांचवां उद्देशक	२३७	पहला उद्देशक	२६०
योनिसंग्रह-पद	२३७	संग्रहणी गाथा	२६०
छठा उद्देशक	२३७	पुद्गल-परिणति-पद	२६०
आयुष्क-प्रकरण-वेदना-पद	२३७	प्रयोग-परिणति-पद	२६०
कर्कश-अकर्कश-वेदनीय-पद	२३८	पर्याप्त-अपर्याप्त की अपेक्षा प्रयोग-	
सातासात-वेदनीय-पद	२३८	-परिणति-पद	२६२
दुःषम-दुःषमा-पद	२३९	शरीर की अपेक्षा प्रयोग-परिणति-पद	२६३
सातवां उद्देशक	२४१	इन्द्रिय की अपेक्षा प्रयोग-परिणति-पद	२६४
संवृत का क्रिया-पद	२४१	शरीर और इन्द्रिय की अपेक्षा प्रयोग-	
दुर्बल शरीर वाले का भोग-परित्याग-		-परिणति-पद	२६५
-पद	२४३	वर्ण आदि की अपेक्षा प्रयोग-परिणति-पद	२६५
अकामनिकरण-वेदना-पद	२४४	शरीर और वर्ण आदि की अपेक्षा	
प्रकामनिकरण-वेदना-पद	२४५	प्रयोग-परिणति-पद	२६५
आठवां उद्देशक	२४५	इन्द्रिय और वर्ण आदि की अपेक्षा	
मोक्ष-पद	२४५	प्रयोग-परिणति-पद	२६५
हस्ति और कुन्थु के जीव की समानता		शरीर, इन्द्रिय और वर्ण आदि की अपेक्षा	
का पद	२४५	प्रयोग-परिणति-पद	२६६
सुख-दुःख-पद	२४६	मिश्र-परिणति-पद	२६६
दशविधसंज्ञा-पद	२४७	विस्मसा-परिणति-पद	२६६
नैरयिकों की दशविध वेदना का पद	२४७	प्रयोग-परिणति-पद	२६७
हस्ती और कुन्थु की अप्रत्याख्यानक्रिया		मन-प्रयोग-परिणति-पद	२६७
का पद	२४७	वचन-प्रयोग-परिणति-पद	२६७
आधाकर्म आदि-पद	२४७	काय-प्रयोग-परिणति-पद	२६८
नवां उद्देशक	२४७	मिश्र-परिणति-पद	२७०
असंवृत अनगार की विक्रिया का पद	२४७	विस्मसा-परिणति-पद	२७१

दो द्रव्यों की अपेक्षा पुद्गल-परिणति-पद	२७१	ज्ञान-पर्यवों का अल्पबहुत्व-पद	२९०
तीन द्रव्यों की अपेक्षा पुद्गल-परिणति-पद	२७२	तीसरा उद्देशक	२९१
चार द्रव्यों की अपेक्षा पुद्गल-परिणति-पद	२७३	वनस्पति-पद	२९१
दूसरा उद्देशक	२७३	जीव-प्रदेशों का अन्तर-पद	२९२
आशीविष-पद	२७३	चरम-अचरम-पद	२९२
छद्मस्थ-केवली-पद	२७६	चौथा उद्देशक	२९३
ज्ञान-पद	२७६	क्रिया-पद	२९३
जीवों का ज्ञानि-अज्ञानित्व-पद	२७७	पांचवां उद्देशक	२९३
अन्तराल-गति की अपेक्षा	२७८	आजीवक के संदर्भ में श्रमणोपासक-पद	२९३
इन्द्रिय की अपेक्षा	२७८	छठ्ठा उद्देशक	२९६
काय की अपेक्षा	२७९	श्रमणोपासक-कृत दान का परिणाम-पद	२९६
सूक्ष्म-बादर की अपेक्षा	२७९	उपनिमंत्रित-पिण्डादि परिभोग-विधि-पद	२९७
पर्याप्त-अपर्याप्त की अपेक्षा	२७९	आलोचनाभिमुख का आराधक-पद	२९८
भवस्थ की अपेक्षा	२८०	ज्योति-ज्वलन-पद	३००
भवसिद्धिक-अभवसिद्धिक की अपेक्षा	२८०	क्रिया-पद	३००
संज्ञी-असंज्ञी की अपेक्षा	२८०	सातवां उद्देशक	३०१
लब्धि-पद	२८१	अन्ययूथिक-संवाद-पद	३०१
ज्ञान-लब्धि की अपेक्षा ज्ञानित्व-		अदत्त की अपेक्षा	३०१
-अज्ञानित्व-पद	२८१	हिंसा की अपेक्षा	३०३
दर्शन की अपेक्षा	२८३	गम्यमान-गत की अपेक्षा	३०४
चरित्र की अपेक्षा	२८३	आठवां उद्देशक	३०४
चरित्राचरित्र की अपेक्षा	२८३	प्रत्यनीक-पद	३०४
दान आदि की अपेक्षा	२८३	पांच व्यवहार-पद	३०५
बाल आदि वीर्य की अपेक्षा	२८४	बंध-पद	३०६
इन्द्रिय की अपेक्षा जीवों का ज्ञानित्व और		ईर्यापथिक-बंध-पद	३०६
अज्ञानित्व-पद	२८४	साम्प्रायिक-बंध-पद	३०७
योग की अपेक्षा	२८५	कर्म-प्रकृतियों में परीषह-समवतार-पद	३०८
लेश्या की अपेक्षा	२८५	सूर्य-पद	३१०
कषाय की अपेक्षा	२८५	ज्योतिष्कों का उपपत्ति-पद	३११
वेद की अपेक्षा	२८६	नौवां उद्देशक	३१२
आहारक की अपेक्षा	२८६	बंध-पद	३१२
ज्ञान का विषय-पद	२८६	विस्रसा-बंध-पद	३१२
ज्ञानी का संस्थिति-पद	२८८	आलापन की अपेक्षा	३१३
ज्ञानी का अल्पबहुत्व-पद	२९०	आलीनकरण-बंध की अपेक्षा	३१३
ज्ञान-पर्यव-पद	२९०	शरीर की अपेक्षा	३१४

(LXVI)

शरीर-प्रयोग की अपेक्षा	३१५	ऋषभदत्त-देवानंदा-पद	३६२
औदारिक-शरीर-प्रयोग की अपेक्षा	३१५	जमालि-पद	३६७
वैक्रिय-शरीर-प्रयोग की अपेक्षा	३१८	चौत्तीसवां उद्देशक	३८५
आहारक-शरीर-प्रयोग की अपेक्षा	३२०	एक के वध में अनेक-वध-पद	३८५
तैजस-शरीर-प्रयोग की अपेक्षा	३२१	ऋषि के बंध में अनन्त-वध-पद	३८६
कर्म-शरीर-प्रयोग की अपेक्षा	३२२	वैर-बंध-पद	३८६
दसवां उद्देशक	३२७	पृथ्वीकायिक आदि का आन-पान-पद	३८६
श्रुत-शील-पद	३२७	क्रिया-पद	३८७
आराधना-पद	३२७	दसवां शतक (पृ. ३८८-४०२)	
पुद्गल-परिणाम-पद	३२९	पहला उद्देशक	३८८
पुद्गल-प्रदेश का द्रव्यादि-भंग-पद	३२९	संग्रहणी गाथा	३८८
कर्मों का अविभाग-परिच्छेद-पद	३३०	दिशा-पद	३८८
कर्मों का परस्पर नियम-भजना-पद	३३१	शरीर-पद	३८९
पुद्गली-पुद्गल-पद	३३३	दूसरा उद्देशक	३९०
नौवां शतक (पृ. ३३४-३८७)		संवृत का क्रिया-पद	३९०
पहला उद्देशक	३३४	योनि-पद	३९१
संग्रहणी गाथा	३३४	वेदना-पद	३९१
जम्बूद्वीप-पद	३३४	अकृत्य-स्थान-प्रतिसेवन-पद	३९१
दूसरा उद्देशक	३३४	तीसरा उद्देशक	३९२
ज्योतिष-पद	३३४	आत्मर्धिक-परर्धिक-व्यतिव्रजन-पद	३९२
३-३०वां उद्देशक	३३५	देवों का विनयविधि-पद	३९२
अन्तर्द्वीप-पद	३३५	अश्व का 'खु-खु' करण-पद	३९४
इकतीसवां उद्देशक	३३५	प्रज्ञापनी भाषा-पद	३९४
अश्रुत्वा-उपलब्धि-पद	३३५	चौथा उद्देशक	३९४
श्रुत्वा-उपलब्धि-पद	३४३	तावन्निशक-देव-पद	३९४
बत्तीसवां उद्देशक	३४६	पाचवां उद्देशक	३९७
पार्श्वपत्तीय-गांगेय-प्रश्न-पद	३४६	देवों का अंतःपुर के साथ दिव्य-भोग-पद	३९७
सांतर-निरन्तर-उपपन्न-आदि-पद	३४६	छठा उद्देशक	४०२
प्रवेशन-पद	३४७	सुधर्मा सभा-पद	४०२
सांतर-निरन्तर-उपपन्न-आदि-पद	३५८	शक्र-पद	४०२
सद्-असद्-उपपन्न-आदि-पद	३५९	७-३४वां उद्देशक	४०२
स्वतः परतः ज्ञान-पद	३५९	अन्तरद्वीप-पद	४०२
स्वतः परतः उपपन्न-पद	३६०	ग्यारहवां शतक (पृ. ४०३-४४१)	
गांगेय का संबोधि-पद	३६१	पहला उद्देशक	४०३
तेतीसवां उद्देशक	३६२	संग्रहणी गाथा	४०३

(LXVII)

उत्पल-जीवों का उपपात-आदि-पद	४०३	क्षेत्र-लोक-पद	४१७
दूसरा उद्देशक	४०७	लोक-संस्थान-पद	४१७
शालु-आदि जीवों का उपपात-आदि-पद	४०७	अलोक-संस्थान-पद	४१८
तीसरा उद्देशक	४०८	लोक का परिमाण-पद	४२०
चौथा उद्देशक	४०८	अलोक का परिमाण-पद	४२१
पांचवां उद्देशक	४०८	लोकाकाश में जीव-प्रदेश-पद	४२१
छठा उद्देशक	४०८	ग्यारहवां उद्देशक	४२३
सातवां उद्देशक	४०८	सुदर्शन-श्रेष्ठी-पद	४२३
आठवां उद्देशक	४०९	बारहवां उद्देशक	४३६
नौवां उद्देशक	४०९	त्रयिभद्रपुत्र-पद	४३६
शिवराजर्षि-पद	४०९	पुद्गल-परिव्राजक-पद	४३८
दसवां उद्देशक	४१७		

पहला शतक

पहला उद्देशक

मंगल-पद

१. अर्हंतों को नमस्कार, सिद्धों को नमस्कार, आचार्यों को नमस्कार, उपाध्यायों को नमस्कार, सब साधुओं को नमस्कार।
२. ब्राह्मी लिपि को नमस्कार।

संग्रहणी गाथा

प्रथम शतक में दस उद्देशक हैं—राजगृह में प्रश्नोत्तर—१. चलमान चलित २. दुःख ३. कांक्षाप्रदोष ४. कर्म-प्रकृति ५. पृथ्वियां ६. यावान् ७. नैरयिक ८. बाल ९ गुरुक १० चलमान चलित।

३. श्रुत को नमस्कार।

उत्क्षेप-पद

४. उस काल और उस समय में राजगृह नाम का नगर था—नगर का वर्णन।
५. उस राजगृह नगर के बाहर उत्तरपूर्व दिशाभाग में गुणशिलक नाम का चैत्य था।
६. वहां श्रेणिक राजा था और उसकी पटरानी थी चिल्लणा।
७. उस काल और उस समय में प्रवचन के आदिकर्ता, तीर्थंकर, स्वयं-संबुद्ध, पुरुषोत्तम, पुरुषसिंह, पुरुषों में प्रवर पुण्डरीक, पुरुषों में प्रवर गन्धहस्ती, लोक में उत्तम, लोक के नाथ, लोक में प्रदीप, लोक में प्रद्योतकर, अभयदाता, चक्षुदाता, मार्गदाता, शरणदाता, धर्मदेशक, धर्म के सारथि, धर्म के प्रवर चतुर्दिग्जयी चक्रवर्ती, अप्रतिहत प्रवर ज्ञान-दर्शन के धारक, निरावरण, ज्ञाता, ज्ञान देने वाले, बुद्ध, बोध देने वाले, मुक्त, मुक्त करने वाले, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, शिव, अचल, अरुज, अनन्त, अक्षय, अव्याबाध, सिद्धि-गति नामक स्थान की संप्राप्ति के इच्छुक यावत् श्रमण भगवान् महावीर क्रमानुसार विचरण, ग्रामानुग्राम में परिव्रजन और सुखपूर्वक विहार करते हुए जहां राजगृह नगर और गुणशिलक चैत्य है, वहां आते हैं, वहां आकर वे प्रवास-योग्य स्थान की अनुमति लेते हैं, अनुमति लेकर संयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए रह रहे हैं।
८. परिषद् ने नगर से निर्गमन किया। भगवान् ने धर्म कहा। परिषद् वापस नगर में चली गई।
९. उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के ज्येष्ठ अन्तेवासी गौतमसंगोत्र सात हाथ की ऊंचाई वाले, रामचतुरस्र-संस्थान से संस्थित, वज्र-ऋषभ-नाराच-संहनन-युक्त,

कसौटी पर खचित स्वण-रेखा तथा पद्मकेसर की भांति पीताभ गौर वर्ण वाले, उग्र-तपस्वी, दीप्त-तपस्वी, तप्त-तपस्वी, महा-तपस्वी, महान्, घोर, घोर गुणों से युक्त, घोर-तपस्वी, घोर-ब्रह्मचर्यवासी, लघिमा-ऋद्धि-सम्पन्न, विपुल-तेजो-लेश्या को अन्तर्लीन रखने वाले, चतुर्दश-पूर्वी, चार ज्ञान से समन्वित और सर्वाक्षर-सन्निपाती-लब्धि से युक्त इन्द्रभूति नामक अनगार श्रमण भगवान् महावीर के न अति दूर और न अति निकट, ऊर्ध्वजानु अधःसिर (उकडू आसन की मुद्रा में) और ध्यान-कोष्ठ में लीन होकर संयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए रह रहे हैं।

१०. उस समय भगवान् गौतम के मन में एक श्रद्धा (इच्छा), एक संशय (जिज्ञासा) और एक कुतूहल जन्मा; एक श्रद्धा, एक संशय और एक कुतूहल उत्पन्न हुआ; एक श्रद्धा, एक संशय और एक कुतूहल बढ़ा तथा एक श्रद्धा, एक संशय और एक कुतूहल प्रबलतम बना। वे उठने की मुद्रा में उठते हैं, उठकर जहां श्रमण भगवान् महावीर हैं, वहां आते हैं, वहां आकर श्रमण भगवान् महावीर को दाई ओर से प्रारंभ कर तीन बार प्रदक्षिणा करते हैं, वन्दन-नमस्कार करते हैं, वन्दन-नमस्कार कर न अति निकट, न अति दूर शुश्रूषा और नमस्कार की मुद्रा में उनके सम्मुख सविनय बद्धाञ्जलि होकर पर्युपासना करते हुए इस प्रकार बोले—

चलमान-पद

११. भन्ते! क्या चलमान चलित, उदीर्यमाण उदीरित, वेद्यमान वेदित, प्रहीयमाण प्रहीण, छिद्यमान छिन्न, भिद्यमान भिन्न, दह्यमान दग्ध, म्रियमाण मृत, निर्जीर्यमाण निर्जीर्ण होता है? हां, गौतम! चलमान चलित, उदीर्यमाण उदीरित, वेद्यमान वेदित, प्रहीयमाण प्रहीण, छिद्यमान छिन्न, भिद्यमान भिन्न, दह्यमान दग्ध, म्रियमाण मृत, निर्जीर्यमाण निर्जीर्ण होता है।

१२. भन्ते! क्या ये नव पद एकार्थक, नानाघोष और नानाव्यञ्जन वाले हैं अथवा नाना-अर्थ, नानाघोष और नानाव्यञ्जन वाले हैं?

गौतम! चलमान चलित, उदीर्यमाण उदीरित, वेद्यमान वेदित और प्रहीयमाण प्रहीण—ये चार पद उत्पाद-पक्ष की अपेक्षा से एकार्थक, नानाघोष और नानाव्यञ्जन वाले हैं।

छिद्यमान छिन्न, भिद्यमान भिन्न, दह्यमान दग्ध, म्रियमाण मृत और निर्जीर्यमाण निर्जीर्ण—ये पांच पद व्यय-पक्ष की अपेक्षा से नाना-अर्थ, नानाघोष और नानाव्यञ्जन वाले हैं।

नैरयिकों की स्थिति आदि का पद

१३. भन्ते! नैरयिक-जीवों की स्थिति कितने काल की प्रज्ञप्त है?

गौतम! जघन्य दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की स्थिति प्रज्ञप्त है।

१४. भन्ते! नैरयिक-जीव कितने काल से आन, अपान तथा उच्छ्वास और निःश्वास करते हैं?

यह पणवणा के 'उच्छ्वास-पद' (७) की भांति वक्तव्य है।

१५. भन्ते! क्या नैरयिक-जीव आहार की इच्छा करते हैं?

हां, गौतम! वे आहार की इच्छा करते हैं। यह पणवणा के 'आहार-पद' (२८) के प्रथम उद्देशक की भांति वक्तव्य है।

संग्रहणी गाथा

नैरयिकों की स्थिति कितनी है? वे कितने काल से उच्छ्वास लेते हैं? क्या वे आहार के इच्छुक हैं? वे किस प्रकार का आहार करते हैं? वे सब आत्म-प्रदेशों से आहार करते हैं? वे कितने भाग का आहार करते हैं? वे आहार-परिणाम-योग्य सब पुद्गलों का आहार करते हैं? वे उसका किस रूप में परिणमन करते हैं?

१६. भन्ते! क्या नैरयिक जीवों के पूर्वगृहीत पुद्गल परिणत हुए हैं?

पूर्वगृहीत और गृह्यमाण पुद्गल परिणत हुए हैं?

पूर्व-अगृहीत और भविष्य में गृह्यमाण पुद्गल परिणत हुए हैं?

पूर्व-अगृहीत और भविष्य में अगृह्यमाण पुद्गल परिणत हुए हैं?

गौतम! नैरयिक जीवों के पूर्वगृहीत पुद्गल परिणत हुए हैं।

पूर्व-गृहीत और गृह्यमाण पुद्गल परिणत हुए और परिणत हो रहे हैं।

पूर्व-अगृहीत और भविष्य में गृह्यमाण पुद्गल परिणत नहीं हुए हैं, किन्तु वे परिणत होंगे।

पूर्व-अगृहीत और भविष्य में अगृह्यमाण पुद्गल परिणत नहीं हुए हैं और परिणत नहीं होंगे।

१७. भन्ते! क्या नैरयिक-जीवों के पूर्वगृहीत पुद्गल चित हुए हैं? यह प्रश्न है।

जैसे परिणत का सूत्र है, चित का सूत्र भी वैसे ही वक्तव्य है।

संग्रहणी गाथा

१८. इसी प्रकार उपचित, उदीरित, वेदित और निर्जीर्ण वक्तव्य हैं।

परिणत, चित, उपचित, उदीरित, वेदित और निर्जीर्ण—इनमें से प्रत्येक पद में पुद्गल के पूर्वोक्त चार भंग होते हैं।

१९. भन्ते! नैरयिक-जीवों के पुद्गलों का भेदन कितने प्रकार का होता है?

गौतम! कर्म-पुद्गल-वर्गणा की अपेक्षा से पुद्गलों का भेदन दो प्रकार का होता है, जैसे—अणु और बादर।

२०. भन्ते! नैरयिक-जीवों के पुद्गलों का चय कितने प्रकार का होता है?

गौतम! आहार-पुद्गल-वर्गणा की अपेक्षा से पुद्गलों का चय दो प्रकार का होता है, जैसे—अणु और बादर।

२१. इसी प्रकार उपचय वक्तव्य है।

२२. भन्ते! नैरयिक-जीव पुद्गलों की उदीरणा कितने प्रकार की करते हैं?

गौतम! कर्म-पुद्गल-वर्गणा की अपेक्षा से दो प्रकार के पुद्गलों की उदीरणा करते हैं, जैसे—अणु और बादर।

२३. शेष सूत्र भी इसी प्रकार वक्तव्य हैं—वेदन करते हैं, निर्जरा करते हैं।

२४. इसी प्रकार अपवर्तन किया था, करते हैं और करेंगे।

संक्रमण किया था, करते हैं और करेंगे।
निधत्तन किया था, करते हैं और करेंगे।
निकाचन किया था, करते हैं और करेंगे।

संग्रहणी गाथा

भेदित, चित, उपचित उदीरित, वेदित, निर्जीर्ण, अपवर्तन, संक्रमण, निधत्तन और निकाचन—इन पदों के साथ अतीत, वर्तमान और अनागत तीनों काल वक्तव्य हैं।

२५. भन्ते! नैरयिक-जीव तैजस- और कर्म-शरीर के रूप में जिन पुद्गलों को ग्रहण करते हैं, क्या उन्हें अतीत-काल-समय में ग्रहण करते हैं? वर्तमान-काल-समय में ग्रहण करते हैं? भविष्य-काल-समय में ग्रहण करते हैं?

गौतम! अतीत-काल-समय में ग्रहण नहीं करते, वर्तमान-काल-समय में ग्रहण करते हैं, भविष्य काल-समय में ग्रहण नहीं करते।

२६. भन्ते! नैरयिक-जीव तैजस- और कर्म-शरीर के रूप में गृहीत जिन पुद्गलों की उदीरणा करते हैं, क्या अतीत-काल-समय में गृहीत उन पुद्गलों की उदीरणा करते हैं? क्या वर्तमान-काल-समय में गृह्यमाण पुद्गलों की उदीरणा करते हैं? क्या ग्रहण-समय के पुरोवर्ती (ग्रहीष्यमाण) पुद्गलों की उदीरणा करते हैं?

गौतम! अतीत-काल-समय में गृहीत-पुद्गलों की उदीरणा करते हैं, वर्तमान-काल-समय में गृह्यमाण पुद्गलों की उदीरणा नहीं करते, ग्रहण-समय के पुरोवर्ती (ग्रहीष्यमाण) पुद्गलों की उदीरणा नहीं करते।

२७. इसी प्रकार वेदन और निर्जरण करते हैं।

२८. भन्ते! नैरयिक-जीव क्या जीव-प्रदेशों से चलित कर्म का बन्ध करते हैं अथवा अचलित कर्म का बन्ध करते हैं?

गौतम! वे चलित कर्म का बन्ध नहीं करते, अचलित कर्म का बन्ध करते हैं।

२९. भन्ते! नैरयिक-जीव क्या जीव-प्रदेशों से चलित कर्म की उदीरणा करते हैं अथवा अचलित कर्म की उदीरणा करते हैं?

गौतम! वे चलित कर्म की उदीरणा नहीं करते, अचलित कर्म की उदीरणा करते हैं।

३०. इसी प्रकार अचलित कर्म का वेदन, अपवर्तन, संक्रमण, निधत्तन और निकाचन करते हैं।

३१. भन्ते! नैरयिक-जीव क्या जीव-प्रदेशों से चलित कर्म की निर्जरा करते हैं अथवा अचलित कर्म की निर्जरा करते हैं?

गौतम! वे चलित कर्म की निर्जरा करते हैं, अचलित कर्म की निर्जरा नहीं करते।

संग्रहणी गाथा

बन्ध, उदय, वेदन, अपवर्तन, संक्रमण, निधत्तन और निकाचन जीव-प्रदेशों से अचलित कर्म का होता है तथा निर्जरा जीव-प्रदेशों से चलित कर्म की होती है।

३२. इसी प्रकार स्थिति और आहार वक्तव्य हैं। 'स्थिति-पद' (पण्णवणा, पद ४) में जो स्थिति निर्दिष्ट है, सब जीवों की स्थिति वैसे ही वक्तव्य है। आहार भी पण्णवणा के

‘आहार-पद’ के प्रथम उद्देशक की भांति वक्तव्य है—भन्ते! क्या नैरयिक-जीव आहार की इच्छा करते हैं? यहां से प्रारंभ कर यावत् वे गृहीत पुद्गलों को दुःख रूप में पुनः-पुनः परिणत करते हैं, यहां तक वक्तव्य है।

आरम्भ-अनारम्भ-पद

३३. भन्ते! जीव क्या आत्मारम्भक हैं? परारम्भक हैं? उभयारम्भक हैं? अनारम्भक हैं?

गौतम! कुछ जीव आत्मारम्भक भी हैं, परारम्भक भी हैं, उभयारम्भक भी हैं, अनारम्भक नहीं हैं। कुछ जीव न आत्मारम्भक हैं, न परारम्भक हैं, न उभयारम्भक हैं, अनारम्भक हैं।

३४. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—कुछ जीव आत्मारम्भक भी हैं, परारम्भक भी हैं, उभयारम्भक भी हैं, अनारम्भक नहीं हैं? कुछ जीव न आत्मारम्भक हैं, न परारम्भक हैं, न उभयारम्भक हैं, अनारम्भक हैं?

गौतम! जीव दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—संसार-समापन्न और असंसार-समापन्न। जो असंसार-समापन्न हैं, वे सिद्ध हैं। सिद्ध न आत्मारम्भक हैं, न परारम्भक हैं, न उभयारम्भक हैं, अनारम्भक हैं। जो संसार-समापन्न जीव हैं, वे दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—संयत और असंयत। जो संयत हैं, वे दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—प्रमत्त-संयत और अप्रमत्त-संयत। जो अप्रमत्त-संयत हैं, वे न आत्मारम्भक हैं, न परारम्भक हैं, न उभयारम्भक हैं, अनारम्भक हैं। जो प्रमत्त-संयत हैं, वे शुभयोग की अपेक्षा न आत्मारम्भक हैं, न परारम्भक हैं, न उभयारम्भक हैं, अनारम्भक हैं। अशुभ योग की अपेक्षा वे आत्मारम्भक भी हैं, परारम्भक भी हैं, उभयारम्भक भी हैं, अनारम्भक नहीं हैं। जो असंयत हैं, वे अविरति की अपेक्षा आत्मारम्भक भी हैं, परारम्भक भी हैं, उभयारम्भक भी हैं, अनारम्भक नहीं हैं। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—कुछ जीव आत्मारम्भक भी हैं, परारम्भक भी हैं, उभयारम्भक भी हैं, अनारम्भक नहीं हैं। कुछ जीव न आत्मारम्भक हैं, न परारम्भक हैं, न उभयारम्भक हैं, अनारम्भक हैं।

३५. भन्ते! नैरयिक-जीव क्या आत्मारम्भक हैं? परारम्भक हैं? उभयारम्भक हैं? अनारम्भक हैं?

गौतम! नैरयिक-जीव आत्मारम्भक भी हैं, परारम्भक भी हैं, उभयारम्भक भी हैं, अनारम्भक नहीं हैं।

३६. यह किस अपेक्षा से है?

गौतम! अविरति की अपेक्षा से। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—नैरयिक जीव आत्मारम्भक भी हैं, परारम्भक भी हैं, उभयारम्भक भी हैं, अनारम्भक नहीं हैं।

३७. इस प्रकार यावत् पञ्चेन्द्रिय-तिर्यग्योनिक नैरयिक की भांति वक्तव्य है। मनुष्य ‘जीव’ की भांति वक्तव्य है। केवल इतना अन्तर है कि मनुष्य के प्रकरण में सिद्ध (असंसार-समापन्न) का सूत्र वक्तव्य नहीं है। वानमंतर-, ज्योतिष्क- और वैमानिक-देव नैरयिक की भांति वक्तव्य हैं।

३८. लेश्या-युक्त जीव सामान्य जीव की भांति वक्तव्य हैं। कृष्ण-लेश्या, नील-लेश्या और कापोत-लेश्या से युक्त जीव सामान्य जीव की भांति वक्तव्य हैं। केवल इतना अन्तर

है—(कृष्ण आदि तीन लेश्याएं अप्रमत्त संयत में नहीं होतीं, इसलिए) यहां प्रमत्त और अप्रमत्त का विभाग वक्तव्य नहीं है। तेजो-लेश्या, पद्म-लेश्या और शुक्ल-लेश्या से युक्त जीव सामान्य जीव की भांति वक्तव्य हैं। केवल इतना अन्तर है—लेश्या-सूत्र में सिद्ध का सूत्र वक्तव्य नहीं है।

ज्ञान आदि का भवान्तर-संक्रमण-पद

३९. भन्ते! क्या (कोई) ज्ञान इस जन्म तक ही सीमित रहता है? क्या ज्ञान अगले जन्म में साथ जाता है? क्या ज्ञान वर्तमान जन्म और भावी जन्म दोनों में विद्यमान रहता है?

गौतम! (कोई) ज्ञान इस जन्म तक भी सीमित रहता है, अगले जन्म में भी साथ जाता है, वर्तमान जन्म और भावी जन्म दोनों में भी विद्यमान रहता है।

४०. भन्ते! क्या दर्शन (सम्यक्त्व) इस जन्म तक ही सीमित रहता है? क्या दर्शन अगले जन्म में साथ जाता है? क्या दर्शन वर्तमान जन्म और भावी जन्म दोनों में विद्यमान रहता है?

गौतम! दर्शन इस जन्म तक भी सीमित रहता है, अगले जन्म में भी साथ जाता है, वर्तमान जन्म और भावी जन्म दोनों में भी विद्यमान रहता है।

४१. भन्ते! क्या चारित्र इस जन्म तक ही सीमित रहता है? क्या चारित्र अगले जन्म में साथ जाता है? क्या चारित्र वर्तमान जन्म और भावी जन्म दोनों में विद्यमान रहता है?

गौतम! चारित्र इस जन्म तक ही सीमित रहता है, वह अगले जन्म में साथ नहीं जाता, वर्तमान जन्म और भावी जन्म दोनों में विद्यमान नहीं रहता।

४२. भन्ते! क्या तपस्या इस जन्म तक ही सीमित रहती है? क्या तपस्या अगले जन्म में साथ जाती है? क्या तपस्या वर्तमान जन्म और भावी जन्म दोनों में विद्यमान रहती है?

गौतम! तपस्या इस जन्म तक ही सीमित रहती है, अगले जन्म में साथ नहीं जाती, वर्तमान जन्म और भावी जन्म दोनों में विद्यमान नहीं रहती।

४३. भन्ते! क्या संयम इस जन्म तक ही सीमित रहता है? क्या संयम अगले जन्म में साथ जाता है? क्या संयम वर्तमान जन्म और भावी जन्म दोनों में विद्यमान रहता है?

गौतम! संयम इस जन्म तक ही सीमित रहता है, अगले जन्म में साथ नहीं जाता, वर्तमान जन्म और भावी जन्म दोनों में विद्यमान नहीं रहता।

असंवृत-संवृत-अनगर-पद

४४. भन्ते! क्या असंवृत अनगर सिद्ध, प्रशान्त, मुक्त और परिनिर्वृत होता है, सब दुःखों का अन्त करता है?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है।

४५. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—

असंवृत अनगर सिद्ध, प्रशान्त, मुक्त और परिनिर्वृत नहीं होता, सब दुःखों का अन्त नहीं करता?

गौतम! असंवृत अनगार आयुष्य-कर्म को छोड़कर शेष सात कर्मों की शिथिल बन्धन-बद्ध प्रकृतियों को गाढ़-बन्धन-बद्ध करता है, अल्पकालिक स्थिति वाली प्रकृतियों को दीर्घकालिक स्थिति वाली करता है, मन्द अनुभाव वाली प्रकृतियों को तीव्र अनुभाव वाली करता है, अल्पप्रदेश-परिमाण वाली प्रकृतियों को बहुप्रदेश-परिमाण वाली करता है; आयुष्य-कर्म का बन्ध कदाचित् करता है और कदाचित् नहीं करता, वह असातवेदनीय-कर्म का बहुत-बहुत उपचय करता है और आदि-अन्तहीन दीर्घपथवाले चतुर्गत्यात्मक संसार-कान्तार में पर्यटन करता है। गौतम! इस अपेक्षा से असंवृत अनगार सिद्ध, प्रशान्त, मुक्त और परिनिवृत नहीं होता, सब दुःखों का अन्त नहीं करता।

४६. भन्ते! क्या संवृत अनगार सिद्ध, प्रशान्त, मुक्त और परिनिवृत होता है, सब दुःखों का अन्त करता है?

हां! वह सिद्ध, प्रशान्त, मुक्त और परिनिवृत होता है, सब दुःखों का अन्त करता है।

४७. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—संवृत अनगार सिद्ध, प्रशान्त, मुक्त और परिनिवृत होता है, सब दुःखों का अन्त करता है?

गौतम! संवृत अनगार आयुष्य-कर्म को छोड़कर शेष सात कर्मों की गाढ़-बन्धन-बद्ध प्रकृतियों को शिथिल-बन्धन-बद्ध करता है, दीर्घकालिक स्थिति वाली प्रकृतियों को अल्पकालिक स्थिति वाली करता है, तीव्र अनुभाव वाली प्रकृतियों को मन्द अनुभाव वाली करता है, बहुप्रदेश-परिमाण वाली प्रकृतियों को अल्पप्रदेश-परिमाण वाली करता है; वह आयुष्य कर्म का बन्ध नहीं करता, असातवेदनीय-कर्म का बहुत-बहुत उपचय नहीं करता और आदि-अन्तहीन दीर्घपथवाले चतुर्गत्यात्मक संसार-कान्तार का व्यतिक्रमण करता है। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—संवृत अनगार सिद्ध, प्रशान्त, मुक्त और परिनिवृत होता है, सब दुःखों का अन्त करता है।

असंयत का वानमन्तरदेव-पद

४८. भन्ते! असंयत, अविरत और अतीत पाप-कर्म का प्रतिक्रमण तथा अनागत पाप-कर्म का प्रत्याख्यान न करने वाला जीव इस तिर्यच या मनुष्य जन्म से मरकर क्या अगले जन्म में देव होता है?

गौतम! कोई जीव देव होता है और कोई जीव देव नहीं होता।

४९. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—असंयत, अविरत और अतीत पाप-कर्म का प्रतिक्रमण तथा अनागत पाप-कर्म का प्रत्याख्यान न करने वाला कोई जीव इस तिर्यच या मनुष्य जन्म से मरकर अगले जन्म में देव होता है और कोई जीव देव नहीं होता?

गौतम! ग्राम, आकर, नगर, निगम, राजधानी, खेट, कर्बट, मडम्ब, द्रोणमुख, पत्तन, आश्रम और सन्निवेश में रहने वाले जो ये जीव निर्जरा की अभिलाषा के बिना प्यास और भूख सहन करते हैं, ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, सदीं, गर्मी, दंश-मशक, अस्नान, स्वेद, रज, मैल, पंक (गोला मैल) के परित्याग द्वारा थोड़े समय या अधिक समय तक अपने आपको परित्याग करते हैं, अपने आपको परित्याग कर मृत्यु-काल में मृत्यु का वरण कर किसी एक वानमन्तर-

-देवलोक में देवरूप में उपपन्न होते हैं।

५०. भन्ते! उन वानमन्तर-देवों के देवलोक किस प्रकार के प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! जैसे इस मनुष्य-लोक में सदा पुष्पित (कुसुमिय), बौराया हुआ (माइय), नए पल्लवों (लवइय) और फूलों के गुच्छों से लदा हुआ (थवइय), शाखाओं से घिरा हुआ (गुलुइय), पत्र-गुच्छों से लदा हुआ (गोच्छिय), समश्रेणि में स्थित वृक्षों वाला (जमलिय), युग्म रूप में स्थित वृक्षों वाला (जुवलिय), फूलों और फलों के भार से विनत, प्रणत, सुव्यवस्थित लुम्बी (पिण्डी) और मञ्जरी-रूप मुकुट से युक्त, अशोक-वन, सप्तपर्ण (सतौना)-वन, चम्पक-वन, आम्र-वन, तिलकवन, लकुच (वहड़ल)-वन, न्यग्रोध (वट)-वन, छत्रौघ-वन, असन (बीजक, विजयसार)-वन, शण-वन, अलसी-वन, कुसुम्भ-वन, श्वेत सर्षप का वन और बन्धुजीवक (दुपहरिया के वृक्ष) का वन कान्ति से अतीव-अतीव उपशोभित-उपशोभित रहता है।

इसी प्रकार उन वानमन्तर-देवों के देवलोक जघन्यतः दस हजार वर्ष की स्थितिवाले और उत्कर्षतः एक पल्योपम की स्थितिवाले अनेक वानमन्तर देवों और देवियों से आकीर्ण, व्यतिकीर्ण, उनके ऊपर और नीचे आने से ढके हुए, आच्छादित, स्पृष्ट (आसन, शयन आदि द्वारा परिभुक्त) और अत्यधिक अवगाढ़ अतीव-अतीव उपशोभित-उपशोभित हो रहे हैं।

गौतम! वानमन्तर-देवों के देवलोक इस प्रकार के प्रज्ञप्त हैं। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—असंयत, अविरत, अतीत पापकर्म का प्रतिक्रमण और अनागत पापकर्म का प्रत्याख्यान न करनेवाला कोई जीव इस तिर्यच या मनुष्य जन्म से मरकर अगले जन्म में देव होता है और कोई जीव देव नहीं होता।

५१. भन्ते! वह ऐसा ही है, भन्ते! वह ऐसा ही है। इस प्रकार भगवान् गौतम श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करते हैं, वन्दन-नमस्कार कर वे संयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए विहरण कर रहे हैं।

दूसरा उद्देशक

५२. राजगृह नगर में भगवान् का समवसरण। परिषद् ने नगर से निर्गमन किया। भगवान् ने धर्म कहा। परिषद् वापस नगर में चली गई, यावत् गौतम स्वामी बोले—

कर्म-वेदन-पद

५३. भन्ते! क्या जीव स्वयंकृत दुःख का वेदन करता है?

गौतम! जीव किसी दुःख का वेदन करता है, किसी दुःख का वेदन नहीं करता।

५४. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—जीव किसी दुःख का वेदन करता है, किसी दुःख का वेदन नहीं करता?

गौतम! जीव उदीर्ण (उदय-प्राप्त) दुःख का वेदन करता है, अनुदीर्ण (अनुदय-प्राप्त) दुःख का वेदन नहीं करता। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—जीव किसी दुःख का वेदन करता है, किसी दुःख का वेदन नहीं करता।

५५. (नैरयिक से लेकर) वमानिक तक इसी प्रकार वक्तव्य है।

५६. भन्ते! क्या जीव स्वयंकृत दुःख का वेदन करते हैं?

गौतम! जीव किसी दुःख का वेदन करते हैं, किसी दुःख का वेदन नहीं करते।

५७. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—जीव किसी दुःख का वेदन करते हैं, किसी दुःख का वेदन नहीं करते?

गौतम! जीव उदीर्ण दुःख का वेदन करते हैं, अनुदीर्ण दुःख का वेदन नहीं करते। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—जीव किसी दुःख का वेदन करते हैं, किसी दुःख का वेदन नहीं करते।

५८. (नैरयिकों से लेकर) वैमानिकों तक इसी प्रकार वक्तव्य है।

५९. भन्ते! क्या जीव स्वयंकृत आयुष्य का वेदन करता है?

गौतम! जीव किसी आयुष्य का वेदन करता है, किसी आयुष्य का वेदन नहीं करता। जैसे—दुःख के दो दण्डक (वाक्य-रचना-विकल्प) बतलाए गए हैं, वैसे ही आयुष्य के भी दो दण्डक वक्तव्य हैं—एकवचन वाला और बहुवचन वाला।

नैरयिक आदि जीवों का समान आहार, समान शरीर आदि-पद

६०. भन्ते! क्या सब नैरयिक समान आहार, समान शरीर और समान उच्छ्वास-निःश्वास वाले हैं?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है।

६१. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—सब नैरयिक समान आहार, समान शरीर और समान उच्छ्वास-निःश्वास वाले नहीं होते?

गौतम! नैरयिक दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—महाशरीरी और अल्पशरीरी। इनमें जो महाशरीरी हैं, वे बहुत पुद्गलों का आहार करते हैं, बहुत पुद्गलों का परिणमन करते हैं और बहुत पुद्गलों का उच्छ्वास करते हैं, बहुत पुद्गलों का निःश्वास करते हैं; बार-बार आहार करते हैं, बार-बार परिणमन करते हैं, बार-बार उच्छ्वास करते हैं, और बार-बार निःश्वास करते हैं।

इनमें जो अल्पशरीरी हैं, वे अल्पतर पुद्गलों का आहार करते हैं, अल्पतर पुद्गलों का परिणमन करते हैं, अल्पतर पुद्गलों का उच्छ्वास करते हैं और अल्पतर पुद्गलों का निःश्वास करते हैं; वे कदाचित् (नियमित समय में) आहार करते हैं, कदाचित् परिणमन करते हैं, कदाचित् उच्छ्वास करते हैं और कदाचित् निःश्वास करते हैं।

गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—सब नैरयिक समान आहार, समान शरीर और समान उच्छ्वास-निःश्वास वाले नहीं होते।

६२. भन्ते! क्या सब नैरयिक समान कर्म वाले हैं?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है।

६३. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—सब नैरयिक समान कर्म वाले नहीं हैं?

गौतम! नैरयिक दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—पूर्व उपपन्न और पश्चाद् उपपन्न। इनमें जो पूर्व उपपन्न हैं, वे अल्पतरकर्म वाले हैं। इनमें जो पश्चाद् उपपन्न हैं, वे महत्तरकर्म वाले हैं।

गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—सब नैरयिक समान कर्म वाले नहीं हैं।

६४. भन्ते! क्या सब नैरयिक समान वर्ण वाले हैं?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है।

६५. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—यह सब नैरयिक समान वर्ण वाले नहीं हैं?

गौतम! नैरयिक दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—पूर्व उपपन्न और पश्चाद् उपपन्न। इनमें जो पूर्व उपपन्न हैं, वे विशुद्धतर वर्ण वाले हैं। इनमें जो पश्चाद् उपपन्न हैं, वे अविशुद्धतर वर्ण वाले हैं। गौतम! इस अपेक्षा से कहा जा रहा है—सब नैरयिक समान वर्ण वाले नहीं हैं।

६६. भन्ते! क्या सब नैरयिक समान लेश्या वाले हैं?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है।

६७. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—सब नैरयिक समान लेश्या वाले नहीं हैं?

गौतम! नैरयिक दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—पूर्व उपपन्न और पश्चाद् उपपन्न। इनमें जो पूर्व उपपन्न हैं, वे विशुद्धतर लेश्या वाले हैं। इनमें जो पश्चाद् उपपन्न हैं, वे अविशुद्धतर लेश्या वाले हैं। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—सब नैरयिक समान लेश्या वाले नहीं हैं।

६८. भन्ते! क्या सब नैरयिक समान वेदना वाले हैं?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है।

६९. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—सब नैरयिक समान वेदना वाले नहीं हैं?

गौतम! नैरयिक दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—संज्ञिभूत और असंज्ञिभूत। इनमें जो संज्ञिभूत हैं, वे महान् वेदना वाले हैं। इनमें जो असंज्ञिभूत हैं, वे अल्पतर वेदना वाले हैं। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—सब नैरयिक समान वेदना वाले नहीं हैं।

७०. भन्ते! क्या सब नैरयिक समान क्रिया वाले हैं?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है।

७१. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—सब नैरयिक समान क्रिया वाले नहीं हैं?

गौतम! नैरयिक तीन प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—सम्यग्-दृष्टि, मिथ्या-दृष्टि और सम्यग्-मिथ्या-दृष्टि। इनमें जो सम्यग्-दृष्टि हैं, उनके चार क्रियाएं प्रज्ञप्त हैं, जैसे—आरंभिकी, पारिग्रहिकी, माया-प्रत्यया और अप्रत्याख्यान-क्रिया। इनमें जो मिथ्या-दृष्टि हैं, उनके पांच क्रियाएं होती हैं, जैसे—आरंभिकी, पारिग्रहिकी, माया-प्रत्यया, अप्रत्याख्यान-क्रिया और मिथ्या-दर्शन-प्रत्यया। इसी प्रकार सम्यग्-मिथ्यादृष्टि जीवों के भी पांच क्रियाएं होती हैं। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—सब नैरयिक समान क्रिया वाले नहीं हैं।

७२. भन्ते! क्या सब नैरयिक समान आयु वाले हैं? क्या वे एक साथ उपपन्न हैं?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है।

७३. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—सब नैरयिक समान आयु वाले नहीं हैं और एक साथ उपपन्न नहीं हैं?

गौतम! नैरयिक चार प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—१. कुछ नैरयिक समान आयु वाले और एक साथ उपपन्न हैं, २. कुछ नैरयिक समान आयु वाले और भिन्न काल में उपपन्न हैं, ३. कुछ नैरयिक विषम आयु वाले और एक साथ उपपन्न हैं, ४. कुछ नैरयिक विषम आयु वाले और भिन्न काल में उपपन्न हैं। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—सब नैरयिक समान आयु वाले नहीं हैं और एक साथ उपपन्न नहीं हैं।

७४. भन्ते! क्या सब असुरकुमार—देव समान आहार और समान शरीर वाले हैं?

यह पूरा प्रकरण नैरयिक जीवों की भांति वक्तव्य है। केवल इतना अन्तर है—कर्म, वर्ण और लेश्याओं का विषय परिवर्तनीय है—नारकीय जीवों के वर्णन से विपरीत रूप में वक्तव्य है। (पूर्व उपपन्न होने वाले असुरकुमार देव महत्तर कर्मवाले, अविशुद्धतर वर्ण और अविशुद्धतर लेश्या वाले हैं। पश्चाद् उपपन्न असुरकुमार-देव अल्पतर कर्म वाले, विशुद्धतर वर्ण और विशुद्धतर लेश्या वाले हैं। शेष नैरयिक की भांति वक्तव्य हैं।)

७५. इसी प्रकार नागकुमार से लेकर स्तनितकुमार तक के देवों के विषय में वक्तव्य हैं।

७६. पृथ्वीकायिक-जीवों के आहार, कर्म, वर्ण और लेश्या नैरयिक जीवों की भांति वक्तव्य हैं।

७७. भन्ते! क्या सब पृथ्वीकायिक-जीव समान वेदना वाले हैं?

हां, गौतम! सब पृथ्वीकायिक-जीव समान वेदना वाले हैं।

७८. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—सब पृथ्वीकायिक जीव समान वेदना वाले हैं?

गौतम! सब पृथ्वीकायिक-जीव असंज्ञी (अमनस्क) हैं। वे असंज्ञी के होने वाली वेदना को अव्यक्त रूप में (मूर्च्छित की भांति) अनुभव करते हैं। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—सब पृथ्वीकायिक-जीव समान वेदना वाले हैं।

७९. भन्ते! क्या सब पृथ्वीकायिक-जीव समान क्रिया वाले हैं?

हां, गौतम! सब पृथ्वीकायिक जीव समान क्रिया वाले हैं।

८०. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—सब पृथ्वीकायिक-जीव समान क्रिया वाले हैं?

गौतम! सब पृथ्वीकायिक-जीव मायी-मिथ्या-दृष्टि हैं। उनके निश्चित रूप से पांचों क्रियाएं होती हैं, जैसे—आरम्भिकी, पारिग्रहिकी, माया-प्रत्यया, अप्रत्याख्यान-क्रिया और मिथ्या-दर्शन-प्रत्यया। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—सब पृथ्वीकायिक-जीव समान क्रिया वाले हैं।

८१. पृथ्वीकायिक-जीवों का समान आयु और एक साथ उपपन्न होने का प्रकरण नैरयिक-जीवों की भांति वक्तव्य है।

८२. अप्कायिक-जीवों से लेकर चतुरिन्द्रिय जीवों तक पूरा प्रकरण पृथ्वीकायिक-जीवों की भांति वक्तव्य है।

८३. पञ्चेन्द्रिय-तिर्यग्योनिक-जीव नैरयिक-जीवों की भांति वक्तव्य हैं, केवल क्रिया का विषय भिन्न है।

८४. भन्ते! क्या सब पञ्चेन्द्रिय-तिर्यग्योनिक-जीव समान क्रिया वाले हैं?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं हैं।

८५. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—सब पञ्चेन्द्रिय-तिर्यग्योनिक-जीव समान क्रिया वाले नहीं हैं?

गौतम! पञ्चेन्द्रिय-तिर्यग्योनिक-जीव तीन प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—सम्यग्-दृष्टि, मिथ्या-दृष्टि और सम्यग्-मिथ्या-दृष्टि।

इनमें जो सम्यग्-दृष्टि हैं, वे दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—असंयत और संयतासंयत। इनमें जो संयतासंयत हैं, उनके तीन क्रियाएं होती हैं, जैसे—आरम्भिकी, पारिग्राहिकी, मायाप्रत्यया।

असंयत जीवों के चार, मिथ्या-दृष्टि और सम्यग्-मिथ्या-दृष्टि जीवों के पांच क्रियाएं होती हैं।

मनुष्यों आदि का समान आहार, समान शरीर आदि-पद

८६. भन्ते! क्या सब मनुष्य समान आहार, समान शरीर और समान उच्छ्वास-निःश्वास वाले हैं?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है।

८७. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—सब मनुष्य समान आहार, समान शरीर और समान उच्छ्वास-निःश्वास वाले नहीं हैं?

गौतम! मनुष्य दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे महाशरीरी और अल्पशरीरी। इनमें जो महाशरीरी हैं, वे बहुत पुद्गलों का आहार करते हैं, बहुत पुद्गलों का परिणमन करते हैं, बहुत पुद्गलों का उच्छ्वास करते हैं और बहुत पुद्गलों का निःश्वास करते हैं। वे कदाचित् आहार करते हैं, कदाचित् परिणमन करते हैं, कदाचित् उच्छ्वास करते हैं और कदाचित् निःश्वास करते हैं।

इनमें जो अल्पशरीरी हैं, वे अल्पतर पुद्गलों का आहार करते हैं, अल्पतर पुद्गलों का परिणमन करते हैं, अल्पतर पुद्गलों का उच्छ्वास करते हैं और अल्पतर पुद्गलों का निःश्वास करते हैं। वे बार-बार आहार करते हैं, बार-बार परिणमन करते हैं, बार-बार उच्छ्वास करते हैं और बार-बार निःश्वास करते हैं। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—सब मनुष्य समान आहार, समान शरीर और समान उच्छ्वास-निःश्वास वाले नहीं हैं।

८८. भन्ते! क्या सब मनुष्य समान कर्म वाले हैं?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है।

८९. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—सब मनुष्य समान कर्म वाले नहीं हैं?

गौतम! मनुष्य दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—पूर्व उपपन्न और पश्चाद् उपपन्न। इनमें जो पूर्व उपपन्न हैं, वे अल्पतर कर्म वाले हैं। जो पश्चाद् उपपन्न हैं, वे बहुतर कर्म वाले हैं। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—सब मनुष्य समान कर्म वाले नहीं हैं।

९०. भन्ते! क्या सब मनुष्य समान वर्ण वाले हैं?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है।

९१. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—सब मनुष्य समान वर्ण वाले नहीं हैं?

गौतम! मनुष्य दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—पूर्व उपपन्न और पश्चाद् उपपन्न। इनमें जो पूर्व उपपन्न हैं, वे विशुद्धतर वर्ण वाले हैं। जो पश्चाद् उपपन्न हैं, वे अविशुद्धतर वर्ण वाले हैं। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—सब मनुष्य समान वर्ण वाले नहीं हैं।

९२. भन्ते! क्या सब मनुष्य समान लेश्या वाले हैं?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है।

९३. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—सब मनुष्य समान लेश्या वाले नहीं हैं?

गौतम! मनुष्य दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—पूर्व उपपन्न और पश्चाद् उपपन्न। इनमें जो पूर्व उपपन्न हैं, वे विशुद्धतर लेश्या वाले हैं। जो पश्चाद् उपपन्न हैं, वे अविशुद्धतर लेश्या वाले हैं। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—सब मनुष्य समान लेश्या वाले नहीं हैं।

९४. भन्ते! क्या सब मनुष्य समान वेदना वाले हैं?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है।

९५. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—सब मनुष्य समान वेदना वाले नहीं हैं?

गौतम! मनुष्य दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—संज्ञिभूत और असंज्ञिभूत। इनमें जो संज्ञिभूत हैं, वे महा वेदना वाले हैं। जो असंज्ञिभूत हैं, वे अल्पतर वेदना वाले हैं। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—सब मनुष्य समान वेदना वाले नहीं हैं।

९६. भन्ते! क्या सब मनुष्य समान क्रिया वाले हैं?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है।

९७. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—सब मनुष्य समान क्रिया वाले नहीं हैं?

गौतम! मनुष्य तीन प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—सम्यग्-दृष्टि, मिथ्या-दृष्टि, सम्यग्-मिथ्या-दृष्टि।

इनमें जो सम्यग्दृष्टि हैं, वे तीन प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—संयत, असंयत और संयतासंयत।

जो संयत हैं, वे दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—सराग-संयत और वीतराग-संयत।

जो वीतराग-संयत हैं, वे अक्रिय हैं—उनके ये पांचों क्रियाएं नहीं होती।

जो सराग-संयत हैं, वे दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—प्रमत्त-संयत और अप्रमत्त-संयत।

जो अप्रमत्त-संयत हैं, उनके एक माया-प्रत्यया क्रिया होती है।

जो प्रमत्त-संयत हैं, उनके दो क्रियाएं होती हैं, जैसे—आरंभिकी और माया-प्रत्यया।

जो संयता-संयत हैं, उनके प्रथम तीन क्रियाएं होती हैं, जैसे—आरंभिकी, पारिग्रहिकी और माया-प्रत्यया।

असंयत जीवों के चार क्रियाएं होती हैं—आरंभिकी, पारिग्रहिकी, माया-प्रत्यया और अप्रत्याख्यान-क्रिया।

मिथ्यादृष्टि जीवों के पांच क्रियाएं होती हैं—आरंभिकी, पारिग्रहिकी, माया-प्रत्यया, अप्रत्याख्यान-क्रिया और मिथ्या-दर्शन-प्रत्यया। सम्यग्-मिथ्या-दृष्टि जीवों के भी पांच क्रियाएं होती हैं।

९८. भन्ते! क्या सब मनुष्य समान आयु वाले हैं? क्या वे एक साथ उपपन्न हैं?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है।

९९. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—सब मनुष्य समान आयु वाले नहीं हैं और एक साथ उपपन्न नहीं हैं?

गौतम! मनुष्य चार प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—कुछ मनुष्य समान आयु वाले और एक साथ उपपन्न हैं, कुछ मनुष्य समान आयु वाले और भिन्न काल में उपपन्न हैं, कुछ मनुष्य विषम आयु वाले और समकाल में उपपन्न हैं, कुछ मनुष्य विषम आयु वाले और भिन्न काल में उपपन्न हैं। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—सब मनुष्य समान आयु वाले और एक साथ उपपन्न नहीं हैं।

१००. वानमंतर-, ज्योतिष्क- और वैमानिक-देव असुरकुमार-देवों की तरह वक्तव्य हैं। केवल वेदना में भिन्नता है—(व्यंतर-देवों का वेदनाप्रकरण असुरकुमार की भांति ज्ञातव्य है)—ज्योतिष्क- और वैमानिक-देवों में (असंज्ञी जीव उत्पन्न नहीं होते)। जो मायी-मिथ्या-दृष्टि उपपन्न हैं, वे अल्पतर वेदना वाले और अमायी-सम्यग्-दृष्टि उपपन्न हैं, वे महत्तर वेदना वाले हैं।

१०१. भन्ते! क्या सब सलेश्य नैरयिक (आदि चौबीस दण्डक) समान आहार, शरीर, उच्छ्वास-निःश्वास, कर्म, वर्ण, लेश्या, वेदना, क्रिया और उपपात वाले हैं?

औधिक (निर्विशेषण नैरयिक सू. १।६०-७३), सलेश्य (लेश्या-विशेषण-युक्त चौबीस दण्डक) और शुक्ल-लेश्या-युक्त (बीस, इक्कीस और चौबीसवें दण्डक वाले) इन तीनों की वक्तव्यता एक समान है। (तात्पर्य की भाषा में सलेश्य औधिक के समान हैं)।

कृष्ण-लेश्या और नील-लेश्या-युक्त नैरयिक आदि दण्डक की वक्तव्यता एक समान है, केवल वेदना में भिन्नता है—मायी-मिथ्यादृष्टि उपपन्नक (नैरयिक) महत्तर वेदना वाले, अमायी सम्यग्-दृष्टि उपपन्नक (नैरयिक) अल्पतर वेदना वाले होते हैं।

क्रिया-सूत्र में मनुष्य के सराग और वीतराग, प्रमत्त और अप्रमत्त—ये भेद वक्तव्य नहीं हैं।

कापोत-लेश्या-युक्त नैरयिक आदि के लिये भी यही (कृष्ण-लेश्या के समान) वक्तव्यता है।

केवल वेदना-सूत्र में नैरयिक की वक्तव्यता औधिक-सूत्र के समान है।

जिन जीवों के तेजो-लेश्या और पद्म-लेश्या होती हैं, वे औधिक-सूत्र की भांति वक्तव्य हैं।
केवल क्रिया-सूत्र में मनुष्य के सराग और वीतराग-ये भेद वक्तव्य नहीं हैं।

संग्रहणी गाथा

(पूर्व आलापक में) उदीर्ण दुःख और आयु का वेदन, समान, कर्म, वर्ण लेश्या, वेदना, क्रिया और आयु-ये इतने विषय ज्ञातव्य हैं।

लेश्या-पद

१०२. भन्ते! लेश्याएं कितनी प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! लेश्याएं छह प्रज्ञप्त हैं, जैसे-कृष्ण-लेश्या, नील-लेश्या, कापोत-लेश्या, तेजो-लेश्या, पद्म-लेश्या और शुक्ल-लेश्या। यहां (पण्णवणा) लेश्या-पद का दूसरा उद्देशक ऋद्धि (सूत्र ३६-८९) तक वक्तव्य है।

जीवों का भव-परिवर्तन-पद

१०३. भन्ते! आदिष्ट (विशेषणों से विशिष्ट) जीव का अतीत काल में संसार में अवस्थान-काल कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?

गौतम! उसका संसार में अवस्थान-काल चार प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे-नैरयिक-संसार-अवस्थान-काल, तिर्यग्योनिक-संसार-अवस्थान-काल, मनुष्य-संसार-अवस्थान-काल और देव-संसार-अवस्थान-काल।

१०४. भन्ते! नैरयिकों का संसार-अवस्थान-काल कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?

गौतम! वह तीन प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे-शून्य-काल, अशून्य-काल और मिश्र-काल।

१०५. भन्ते! तिर्यग्योनिक-जीवों का संसार-अवस्थान-काल कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?

गौतम! वह दो प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे-अशून्य-काल और मिश्र-काल।

१०६. भन्ते! मनुष्यों का संसार-अवस्थान-काल कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?

गौतम! वह तीन प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे-शून्यकाल, अशून्यकाल और मिश्रकाल।

१०७. भन्ते! देवों का संसार-अवस्थान-काल कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?

गौतम! वह तीन प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे-शून्यकाल, अशून्यकाल और मिश्रकाल।

१०८. भन्ते! नैरयिक-जीवों के संसार-अवस्थान-काल के शून्यकाल, अशून्य-काल और मिश्रकाल में कौन किनसे अल्प, अधिक, तुल्य अथवा विशेषाधिक है?

गौतम! सबसे अल्प अशून्यकाल है, मिश्रकाल उससे अनन्त-गुणा अधिक है और शून्य-काल मिश्र-काल से अनन्त-गुणा अधिक है।

१०९. तिर्यग्योनिक-जीवों के संसार-अवस्थान-काल में सबसे अल्प अशून्य-काल है और मिश्र-काल उससे अनन्त-गुणा अधिक है।

११०. मनुष्य और देवों के संसार-अवस्थान-काल में सबसे अल्प अशून्य-काल है, मिश्र-

काल उससे अनन्त-गुणा अधिक है और शून्य-काल मिश्र-काल से अनन्त-गुणा अधिक है।
१११. भन्ते! नैरयिक, तिर्यग्योनिक, मनुष्य और देव-इनके संसार-अवस्थान-काल में कौन किनसे अल्प, अधिक, तुल्य अथवा विशेषाधिक है?

गौतम! मनुष्यों का संसार-अवस्थान-काल सबसे अल्प है, नैरयिक जीवों का संसार-अवस्थान-काल उससे असंख्येय-गुणा अधिक है, देवों का संसार-अवस्थान-काल उससे असंख्येय-गुणा अधिक है और तिर्यग्योनिक जीवों का संसार-अवस्थान-काल उससे अनन्त-गुणा अधिक है।

अन्तक्रिया-पद

११२. भन्ते! क्या जीव अन्तक्रिया करता है?

गौतम! कोई जीव करता है, कोई जीव नहीं करता। यहां पणवणा का अंतक्रियापद (पद-२०) ज्ञातव्य है।

असंज्ञी-आयु-पद

११३. भन्ते! देवत्व प्राप्त करने योग्य असंयमी संयम की आराधना करने वाले, संयम की विराधना करने वाले, संयमासंयम की आराधना करने वाले, संयमासंयम की विराधना करने वाले असंज्ञी, तापस, कान्दर्पिक, चरक-परिव्राजक, किल्बिषिक, तिर्यज्व, आजीविक, आभियोगिक और दर्शनभ्रष्ट स्वतीर्थिक-जैन मुनि-वेषधारी-ये देवलोक में उपपन्न हों तो किसका कहां उपपात प्रज्ञप्त है?

गौतम! देवत्व प्राप्त करने योग्य असंयमी जघन्यतः भवनवासी, उत्कर्षतः उपरिवर्ती ग्रैवेयकों में, संयम की आराधना करने वाले जघन्यतः सौधर्म-कल्प, उत्कर्षतः सर्वार्थसिद्ध-विमान में, संयम की विराधना करने वाले जघन्यतः भवनवासी, उत्कर्षतः सौधर्म-कल्प में, संयमासंयम की आराधना करने वाले जघन्यतः सौधर्म-कल्प, उत्कर्षतः अच्युत-कल्प में, संयमासंयम की विराधना करने वाले जघन्यतः भवनवासी, उत्कर्षतः ज्योतिष्क-देवों में, असंज्ञी जीव जघन्यतः भवनवासी, उत्कर्षतः वानमंतरों में उपपन्न होते हैं। अवशेष सब जघन्यतः भवनवासी में उपपन्न होते हैं। उनका उत्कर्षतः उपपात इस प्रकार होगा-तापस ज्योतिष्क-देवों में, कान्दर्पिक सौधर्म-कल्प में, चरक-परिव्राजक ब्रह्मलोक-कल्प में, किल्बिषिक लान्तक-कल्प में, तिर्यज्व सहस्रार-कल्प में, आजीविक अच्युत-कल्प में, आभियोगिक अच्युत-कल्प में, दर्शनभ्रष्ट स्वतीर्थिक-जैन मुनि-वेषधारी उपरिवर्ती ग्रैवेयकों में उपपन्न होते हैं।

११४. भन्ते! असंज्ञी-आयु कितने प्रकार की प्रज्ञप्त है?

गौतम! असंज्ञी-आयु चार प्रकार की प्रज्ञप्त है, जैसे-नैरयिक-असंज्ञी-आयु, तिर्यग्योनिक-असंज्ञी-आयु, मनुष्य-असंज्ञी-आयु, देव असंज्ञी-आयु।

११५. भन्ते! क्या असंज्ञी जीव नैरयिक-आयु का बन्ध करता है? तिर्यग्योनिक-आयु का बन्ध करता है? मनुष्य-आयु का बन्ध करता है? देव-आयु का बन्ध करता है?

हां, गौतम! यह नैरयिक-आयु का भी बन्ध करता है। तिर्यग्योनिक-आयु का भी बन्ध

करता है। मनुष्य-आयु का भी बन्ध करता है और देव-आयु का भी बन्ध करता है।

नैरयिक-आयु का बन्ध करने वाला जघन्यतः दस हजार वर्ष और उत्कर्षतः पल्योपम के असंख्येय भाग का बन्ध करता है।

तिर्यग्योनिक-आयु का बन्ध करने वाला जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षतः पल्योपम के असंख्येय भाग का बन्ध करता है।

मनुष्य-आयु का बन्ध करने वाला जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षतः पल्योपम के असंख्येय भाग का बन्ध करता है।

देव-आयु का बन्ध करने वाला जघन्यतः दश हजार वर्ष और उत्कर्षतः पल्योपम के असंख्येय भाग का बन्ध करता है।

११६. भन्ते! नैरयिक-असंज्ञी-आयु, तिर्यग्योनिक-असंज्ञी-आयु, मनुष्य-असंज्ञी-आयु और देव-असंज्ञी-आयु, इनमें कौन किससे अल्प, अधिक, तुल्य या विशेषाधिक है?

गौतम! देव की असंज्ञी-आयु सबसे अल्प है। मनुष्य-असंज्ञी-आयु उससे असंख्येय-गुणा है, तिर्यग्योनिक-असंज्ञी-आयु उससे असंख्येय-गुणा है और नैरयिक-असंज्ञी-आयु उससे असंख्येय-गुणा है।

११७. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है।

तीसरा उद्देशक

कांक्षामोहनीय-पद

११८. भन्ते! क्या जीवों के कांक्षामोहनीय-कर्म कृत होता है?

हां, कृत होता है।

११९. भन्ते! क्या १. देश के द्वारा देश कृत होता है? २. देश के द्वारा सर्व कृत होता है? ३. सर्व के द्वारा देश कृत होता है? ४. सर्व के द्वारा सर्व कृत होता है?

गौतम! १. देश के द्वारा देश कृत नहीं होता। २. देश के द्वारा सर्व कृत नहीं होता। ३. सर्व के द्वारा देश कृत नहीं होता। ४. सर्व के द्वारा सर्व कृत होता है।

१२०. भन्ते! क्या नैरयिक जीवों के कांक्षामोहनीय-कर्म कृत होता है?

हां, कृत होता है।

१२१. भन्ते! क्या १. देश के द्वारा देश कृत होता है? २. देश के द्वारा सर्व कृत होता है? ३. सर्व के द्वारा देश कृत होता है? ४. सर्व के द्वारा सर्व कृत होता है?

गौतम! १. देश के द्वारा देश कृत नहीं होता। २. देश के द्वारा सर्व कृत नहीं होता। ३. सर्व के द्वारा देश कृत नहीं होता। ४. सर्व के द्वारा सर्व कृत होता है।

१२२. (असुरकुमारों से लेकर) वैमानिकों तक सभी दण्डक इसी प्रकार वक्तव्य हैं।

१२३. भन्ते! क्या जीवों ने कांक्षामोहनीय-कर्म किये थे?

हां, किये थे।

१२४. भन्ते! क्या उन्होंने १. देश के द्वारा देश किया था? २. देश के द्वारा सर्व किया था?
३. सर्व के द्वारा देश किया था? ४. सर्व के द्वारा सर्व किया था?

गौतम! उन्होंने १. देश के द्वारा देश नहीं किया। २. देश के द्वारा सर्व नहीं किया। ३. सर्व के द्वारा देश नहीं किया। ४. सर्व के द्वारा सर्व किया था।

१२५. इस अभिलाप (पाठ-पद्धति) द्वारा वैमानिकों तक सभी दण्डक वक्तव्य हैं।

१२६. इसी प्रकार (वर्तमान में जीव कांक्षामोहनीय-कर्म) करते हैं। यहां भी वैमानिकों तक सभी दण्डक वक्तव्य हैं।

१२७. इसी प्रकार (भविष्य में जीव कांक्षामोहनीय-कर्म) करेंगे। यहां भी वैमानिकों तक सभी दण्डक वक्तव्य हैं।

१२८. इसी प्रकार चित है, चय किया था, चय करते हैं और चय करेंगे। उपचित है, उपचय किया था, उपचय करते हैं और उपचय करेंगे। उदीरणा की थी, उदीरणा करते हैं और उदीरणा करेंगे। वेदन किया था, वेदन करते हैं और वेदन करेंगे। निर्जरण किया था, निर्जरण करते हैं और निर्जरण करेंगे।

संग्रहणी गाथा

कृत, चित, उपचित, उदीरित, वेदित और निर्जीर्ण—ये छह प्रकार हैं। इनमें प्रथम तीन के चार-चार भेद हैं और शेष तीन के तीन-तीन भेद हैं।

१२९. भन्ते! क्या जीव कांक्षामोहनीय-कर्म का वेदन करते हैं?

हां, करते हैं।

१३०. भन्ते! जीव कांक्षामोहनीय-कर्म का वेदन कैसे करते हैं?

गौतम! उन-उन कारणों से जीव शंकित, कांक्षित, विचिकित्सित, भेद-समापन्न, कलुष-समापन्न हो जाते हैं। इस प्रकार जीव कांक्षामोहनीय-कर्म का वेदन करते हैं।

श्रद्धा-पद

१३१. भन्ते! क्या वही सत्य और निःशंक है, जो जिनों (अर्हत्तों) द्वारा प्रवेदित है?

हां, गौतम! वही सत्य और निःशंक है, जो जिनों द्वारा प्रवेदित है।

१३२. भन्ते! क्या (जिनों द्वारा प्रवेदित है, वही सत्य और निःशंक है) इस प्रकार के मन को धारण करता हुआ, उत्पन्न करता हुआ, इस प्रकार की चेष्टा करता हुआ, इस प्रकार मन का संवर करता हुआ आज्ञा का आराधक होता है?

हां, गौतम! इस प्रकार के मन को धारण करता हुआ, उत्पन्न करता हुआ, इस प्रकार का चेष्टा करता हुआ, इस प्रकार मन का संवर करता हुआ आज्ञा का आराधक होता है।

अस्ति-नास्ति-पद

१३३. भन्ते! क्या अस्तित्व अस्तित्व में (उत्पाद-पर्याय उत्पाद-पर्याय में) परिणत होता है? नास्तित्व नास्तित्व में (व्यय-पर्याय व्यय पर्याय में) परिणत होता है?

हां, गौतम! अस्तित्व अस्तित्व में परिणत होता है और नास्तित्व नास्तित्व में परिणत होता है।

१३४. भन्ते! जो अस्तित्व अस्तित्व में परिणत होता है और नास्तित्व नास्तित्व में परिणत होता है, वह किसी प्रयोग से होता है अथवा स्वभाव से?

गौतम! वह प्रयोग से भी होता है (अस्तित्व अस्तित्व में परिणत होता है और नास्तित्व नास्तित्व में परिणत होता है)।

वह स्वभाव से भी होता है (अस्तित्व अस्तित्व में परिणत होता है और नास्तित्व नास्तित्व में परिणत होता है)।

१३५. भन्ते! जैसे तुम्हारा अस्तित्व अस्तित्व में परिणत होता है, वैसे ही क्या तुम्हारा नास्तित्व नास्तित्व में परिणत होता है?

जैसे तुम्हारा नास्तित्व नास्तित्व में परिणत होता है, वैसे ही क्या तुम्हारा अस्तित्व अस्तित्व में परिणत होता है?

हां, गौतम! जैसे मेरा अस्तित्व अस्तित्व में परिणत होता है, वैसे ही मेरा नास्तित्व नास्तित्व में परिणत होता है।

जैसे मेरा नास्तित्व नास्तित्व में परिणत होता है, वैसे ही मेरा अस्तित्व अस्तित्व में परिणत होता है।

१३६. भन्ते! क्या अस्तित्व अस्तित्व में गमनीय (ज्ञेय) है? क्या नास्तित्व नास्तित्व में गमनीय है?

हां, गौतम! अस्तित्व अस्तित्व में गमनीय है। नास्तित्व नास्तित्व में गमनीय है।

१३७. भन्ते! जो अस्तित्व अस्तित्व में गमनीय है और नास्तित्व नास्तित्व में गमनीय है, वह किसी प्रयोग से गमनीय है अथवा स्वभाव से?

गौतम! वह प्रयोग से भी (अस्तित्व अस्तित्व में गमनीय है और नास्तित्व नास्तित्व में गमनीय है) वह स्वभाव से भी (अस्तित्व अस्तित्व में गमनीय है और नास्तित्व नास्तित्व में गमनीय है)।

१३८. भन्ते! जैसे तुम्हारा अस्तित्व अस्तित्व में गमनीय है, वैसे ही क्या तुम्हारा नास्तित्व नास्तित्व में गमनीय है?

जैसे तुम्हारा नास्तित्व नास्तित्व में गमनीय है, वैसे ही क्या तुम्हारा अस्तित्व अस्तित्व में गमनीय है?

हां, गौतम! जैसे मेरा अस्तित्व अस्तित्व में गमनीय है, वैसे ही मेरा नास्तित्व नास्तित्व में गमनीय है।

जैसे मेरा नास्तित्व नास्तित्व में गमनीय है, वैसे ही मेरा अस्तित्व अस्तित्व में गमनीय है।

भगवान् की समता का पद

१३९. भन्ते! जैसे तुम्हारे लिए 'अत्र' (स्मीपतरवर्ती पर्याय) गमनीय है, वैसे ही क्या तुम्हारे

लिए 'इह' (समीपवर्ती पर्याय) गमनीय है? जैसे तुम्हारे लिए 'इह' गमनीय है, वैसे ही क्या तुम्हारे लिए 'अत्र' गमनीय है?

हां गौतम! जैसे मेरे लिए 'अत्र' गमनीय है, वैसे मेरे लिए 'इह' गमनीय है। जैसे मेरे लिए 'इह' गमनीय है, वैसे मेरे लिए 'अत्र' गमनीय है।

कांक्षामोहनीय का बंध आदि-पद

१४०. भन्ते! क्या जीव कांक्षामोहनीय-कर्म का बंध करते हैं?

हां, करते हैं।

१४१. भन्ते! जीव कांक्षामोहनीय-कर्म का बंध किस हेतु से करते हैं?

गौतम! उसका प्रत्यय-हेतु (परिणामी कारण) प्रमाद और निमित्त-हेतु योग (मन, वचन और काया की प्रवृत्ति) है।

१४२. भन्ते! प्रमाद किससे उत्पन्न होता है?

गौतम! प्रमाद योग से उत्पन्न होता है।

१४३. भन्ते! योग किससे उत्पन्न होता है?

गौतम! योग वीर्य से उत्पन्न होता है।

१४४. भन्ते! वीर्य किससे उत्पन्न होता है?

गौतम! वीर्य शरीर से उत्पन्न होता है।

१४५. भन्ते! शरीर किससे उत्पन्न होता है?

गौतम! शरीर जीव से उत्पन्न होता है।

१४६. ऐसा होने पर उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, और पुरुषकार-पराक्रम का अस्तित्व सिद्ध होता है।

१४७. भन्ते! क्या जीव अपने आप ही उदीरणा करता है? अपने आप ही गर्हा करता है? अपने आप ही संवरण करता है?

हां, गौतम! जीव अपने आप ही उदीरणा करता है, अपने आप ही गर्हा करता है और अपने आप ही संवरण करता है।

१४८. भन्ते! जीव अपने आप ही जो उदीरणा करता है, अपने आप ही जो गर्हा करता है, अपने आप ही जो संवरण करता है, वह क्या—१. उदीर्ण (उदय-प्राप्त) की उदीरणा करता है? २. अनुदीर्ण की उदीरणा करता है? ३. अनुदीर्ण किन्तु उदीरणायोग्य कर्म की उदीरणा करता है? ४. अथवा उदय के अनन्तर पश्चात्कृत (भुक्त) कर्म की उदीरणा करता है?

गौतम! जीव १. उदीर्ण की उदीरणा नहीं करता। २. अनुदीर्ण की उदीरणा नहीं करता। ३. अनुदीर्ण किन्तु उदीरणायोग्य कर्म की उदीरणा करता है। ४. उदय के अनन्तर पश्चात्कृत कर्म की उदीरणा नहीं करता।

१४९. भन्ते! जीव अनुदीर्ण किन्तु उदीरणायोग्य कर्म की जो उदीरणा करता है, वह क्या

उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार-पराक्रम से करता है अथवा अनुत्थान, अकर्म, अबल, अवीर्य, अपुरुषकारपराक्रम से करता है?

गौतम! जीव अनुदीर्ण किन्तु उदीरणायोग्य कर्म की जो उदीरणा करता है, वह उत्थान से भी, कर्म से भी, बल से भी, वीर्य से भी और पुरुषकार-पराक्रम से भी करता है, किन्तु अनुत्थान, अकर्म, अबल, अवीर्य और अपुरुषकारपराक्रम से नहीं करता।

१५०. ऐसा होने पर उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम का अस्तित्व सिद्ध होता है।

१५१. भन्ते! क्या जीव अपने आप ही उपशमन करता है? अपने आप ही गर्हा करता है? अपने आप ही संवरण करता है?

हां, गौतम! जीव अपने आप ही उपशमन करता है, अपने आप ही गर्हा करता है, अपने आप ही संवरण करता है।

१५२. भन्ते! जीव अपने आप ही जो उपशमन करता है, अपने आप ही जो गर्हा करता है, अपने आप ही जो संवरण करता है, वह क्या—१. उदीर्ण का उपशमन करता है? २. अनुदीर्ण का उपशमन करता है? ३. अनुदीर्ण किन्तु उदीरणायोग्य कर्म का उपशमन करता है? ४. अथवा उदय के अनन्तर पश्चात्कृत (भुक्त) कर्म का उपशमन करता है।

गौतम! जीव १. उदीर्ण का उपशमन नहीं करता। २. अनुदीर्ण का उपशमन करता है। ३. अनुदीर्ण किन्तु उदीरणायोग्य कर्म का उपशमन नहीं करता। ४. उदय के अनन्तर पश्चात्कृत कर्म का उपशमन नहीं करता।

१५३. भन्ते! जीव अनुदीर्ण कर्म का जो उपशमन करता है, वह क्या उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम से करता है? अथवा अनुत्थान, अकर्म, अबल, अवीर्य और अपुरुषकार-पराक्रम से करता है?

गौतम! जीव अनुदीर्ण कर्म का उपशमन उत्थान से भी, कर्म से भी, बल से भी वीर्य से भी और पुरुषकार-पराक्रम से भी करता है, किन्तु अनुत्थान, अकर्म, अबल, अवीर्य और अपुरुषकार-पराक्रम से नहीं करता।

१५४. ऐसा होने पर उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम का अस्तित्व सिद्ध होता है।

१५५. भन्ते! क्या जीव अपने आप ही वेदन करता है? अपने आप ही गर्हा करता है?

हां, गौतम! जीव अपने आप ही वेदन करता है और अपने आप ही गर्हा करता है।

१५६. भन्ते! जीव अपने आप ही जो वेदन करता है और अपने आप ही जो गर्हा करता है, वह क्या—१. उदीर्ण का वेदन करता है? २. अनुदीर्ण का वेदन करता है? ३. अनुदीर्ण किन्तु उदीरणायोग्य कर्म का वेदन करता है? ४. अथवा उदय के अनन्तर पश्चात्कृत (भुक्त) कर्म का वेदन करता है?

गौतम! जीव १. उदीर्ण का वेदन करता है। २. अनुदीर्ण का वेदन नहीं करता। ३. अनुदीर्ण

किन्तु उदीरणायोग्य कर्म का वेदन नहीं करता। ४. उदय के अनन्तर पश्चात्कृत कर्म का वेदन नहीं करता।

१५७. भन्ते! जीव उदीर्ण कर्म का जो वेदन करता है, वह क्या उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम से करता है? अथवा अनुत्थान, अकर्म, अबल, अवीर्य और अपुरुषकारपराक्रम से करता है?

गौतम! जीव उदीर्ण कर्म का जो वेदन करता है, वह उत्थान से भी, कर्म से भी, बल से भी, वीर्य से भी और पुरुषकार-पराक्रम से भी करता है, किन्तु अनुत्थान, अकर्म, अबल, अवीर्य और अपुरुषकारपराक्रम से नहीं करता।

१५८. ऐसा होने पर उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम का अस्तित्व सिद्ध होता है।

१५९. भन्ते! क्या जीव अपने आप ही निर्जरा करता है? अपने आप ही गर्हा करता है?

हां, गौतम! जीव अपने आप ही निर्जरा करता है, अपने आप ही गर्हा करता है।

१६०. भन्ते! जीव अपने आप ही जो निर्जरा करता है, अपने आप ही जो गर्हा करता है, वह क्या १. उदीर्ण की निर्जरा करता है? २. अनुदीर्ण की निर्जरा करता है? ३. अनुदीर्ण किन्तु उदीरणायोग्य कर्म की निर्जरा करता है? ४. अथवा उदय के अनन्तर पश्चात्कृत (भुक्त) कर्म की निर्जरा करता है?

गौतम! १. जीव उदीर्ण की निर्जरा नहीं करता। २. अनुदीर्ण की निर्जरा नहीं करता। ३. अनुदीर्ण किन्तु उदीरणायोग्य कर्म की निर्जरा नहीं करता। ४. उदय के अनन्तर पश्चात्कृत कर्म की निर्जरा करता है।

१६१. भन्ते! जीव उदय के अनन्तर पश्चात्कृत कर्म की जो निर्जरा करता है, वह क्या उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम से करता है अथवा अनुत्थान, अकर्म, अबल, अवीर्य और अपुरुषकारपराक्रम से करता है?

गौतम! जीव उदय के अनन्तर पश्चात्कृत कर्म की जो निर्जरा करता है, वह उत्थान से भी, कर्म से भी, बल से भी, वीर्य से भी और पुरुषकारपराक्रम से भी करता है, किन्तु अनुत्थान, अकर्म, अबल, अवीर्य और अपुरुषकार-पराक्रम से नहीं करता।

१६२. ऐसा होने पर उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम का अस्तित्व सिद्ध होता है।

१६३. भन्ते! क्या नैरयिक-जीव कांक्षामोहनीय-कर्म का वेदन करते हैं।

जैसे समुच्चय में जीव की वक्तव्यता है, वैसे ही नैरयिक जीवों से स्तनितकुमार तक वक्तव्य हैं।

१६४. भन्ते! क्या पृथ्वीकायिक-जीव कांक्षामोहनीय-कर्म का वेदन करते हैं?

हां, वेदन करते हैं।

१६५. भन्ते! पृथ्वीकायिक-जीव कांक्षामोहनीय-कर्म का वेदन कैसे करते हैं?

गौतम! उन जीवों के तर्क, संज्ञा, प्रज्ञा, मन और वचन नहीं होते। हम कांक्षा-मोहनीय कर्म का वेदन करते हैं—ऐसा उन्हें बोध नहीं होता, फिर भी वे वेदन करते हैं।

१६६. भन्ते! क्या वही सत्य और निःशंक है, जो जिनों (अर्हत्तों) द्वारा प्रवेदित है?

हां, गौतम! वही सत्य और निःशंक है, जो जिनों द्वारा प्रवेदित है।

शेष आलापक—इससे उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम का अस्तित्व सिद्ध होता है—वहां तक वक्तव्य है।

१६७. अप्काय आदि एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय का आलापक पृथ्वीकायिक-जीवों की भांति वक्तव्य है।

१६८. तिर्यक्-पञ्चेन्द्रिय-जीवों से वैमानिक-देवों तक का आलापक समुच्चय जीव की भांति वक्तव्य है।

१६९. भन्ते! क्या श्रमण निर्ग्रन्थ भी कांक्षामोहनीय-कर्म का वेदन करते हैं?

हां, करते हैं।

१७०. भन्ते! श्रमण निर्ग्रन्थ कांक्षामोहनीय-कर्म का वेदन कैसे करते हैं?

गौतम! उन-उन ज्ञानान्तर, दर्शनान्तर, चारित्रान्तर, लिंगान्तर, प्रवचनान्तर, प्रवचनी-अन्तर, कल्पान्तर, मार्गान्तर, मतान्तर, भंगान्तर, नयान्तर, नियमान्तर और प्रमाणान्तर से वे शंकित, कांक्षित, विचिकित्सिक, भेद-समापन्न और कलुष-समापन्न हो जाते हैं। इस प्रकार श्रमण निर्ग्रन्थ कांक्षामोहनीय-कर्म का वेदन करते हैं।

१७१. भन्ते! क्या वही सत्य और निःशंक है, जो जिनों द्वारा प्रवेदित है?

हां, गौतम! वही सत्य और निःशंक है, जो जिनों द्वारा प्रवेदित है।

१७२. इस प्रकार यावत् उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम का अस्तित्व सिद्ध होता है।

१७३. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है।

चौथा उद्देशक

कर्म-पद

१७४. भन्ते! कर्म-प्रकृतियां कितनी प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! कर्म-प्रकृतियां आठ प्रज्ञप्त हैं। कर्मप्रकृति (पण्णवणा, २३) के प्रथम उद्देशक का अनुभाग समाप्त हुआ है—इस अंश तक यह ज्ञातव्य है।

संग्रहणी गाथा

कर्म-प्रकृतियां कितनी हैं? उनका बन्ध कैसे करता है? उनका बन्ध कितने स्थानों (कारणों) से होता है? कितनी कर्म-प्रकृतियों का वेदन होता है? किस कर्म का कितने प्रकार का अनुभाग (रस-विपाक) होता है?

उपस्थापन-अपक्रमण-पद

१७५. भन्ते! क्या पूर्वकृत मोहनीय-कर्म के उदयकाल में जीव उपस्थान (आध्यात्मिक विकास) करता है?

हां, उपस्थान करता है।

१७६. भन्ते! क्या वह वीर्य-भाव में उपस्थान करता है? अवीर्य-भाव में उपस्थान करता है?

गौतम! वह वीर्य-भाव में उपस्थान करता है, अवीर्य-भाव में उपस्थान नहीं करता।

१७७. यदि वह वीर्य-भाव में उपस्थान करता है, तो क्या-बाल-वीर्य-भाव में उपस्थान करता है? पंडित-वीर्य-भाव में उपस्थान करता है? बाल-पंडित-वीर्य-भाव में उपस्थान करता है?

गौतम! वह बाल-वीर्य-भाव में उपस्थान करता है, पंडित-वीर्य-भाव में उपस्थान नहीं करता, बाल-पंडित-वीर्य-भाव में उपस्थान नहीं करता।

१७८. भन्ते! क्या पूर्वकृत मोहनीय कर्म के उदयकाल में जीव अपक्रमण (आध्यात्मिक ह्रास) करता है?

हां, अपक्रमण करता है।

१७९. भन्ते! क्या वह वीर्य-भाव में अपक्रमण करता है? अवीर्य-भाव में अपक्रमण करता है?

गौतम! वह वीर्य-भाव में अपक्रमण करता है, अवीर्य-भाव में अपक्रमण नहीं करता।

१८०. यदि वह वीर्य-भाव में अपक्रमण करता है, तो क्या-बाल-वीर्य-भाव में अपक्रमण करता है? पंडित-वीर्य-भाव में अपक्रमण करता है? बाल-पंडित-वीर्य-भाव में अपक्रमण करता है?

गौतम! वह बाल-वीर्य-भाव में अपक्रमण करता है, पंडित-वीर्य-भाव में अपक्रमण नहीं करता, कदाचित् बाल-पंडित-वीर्य-भाव में अपक्रमण करता है।

१८१. भन्ते! क्या पूर्वकृत मोहनीय-कर्म के उपशमन-काल में जीव उपस्थान करता है?

हां, उपस्थान करता है।

१८२. भन्ते! क्या वह वीर्य-भाव में उपस्थान करता है? अवीर्य-भाव में उपस्थान करता है?

गौतम! वह वीर्य-भाव में उपस्थान करता है, अवीर्य-भाव में उपस्थान नहीं करता।

१८३. यदि वह वीर्य-भाव में उपस्थान करता है, तो क्या-बाल-वीर्य-भाव में उपस्थान करता है? पंडित-वीर्य-भाव में उपस्थान करता है? बाल-पण्डित-वीर्य-भाव में उपस्थान करता है?

गौतम! वह बाल-वीर्य-भाव में उपस्थान नहीं करता, पंडित-वीर्य-भाव में उपस्थान करता है, बाल-पंडित-वीर्य-भाव में उपस्थान नहीं करता।

१८४. भन्ते! क्या वह पूर्वकृत मोहनीय-कर्म के उपशमन-काल में अपक्रमण करता है?

हां, अपक्रमण करता है।

१८५. भन्ते! क्या वह वीर्य-भाव में अपक्रमण करता है? अवीर्य-भाव में अपक्रमण करता है?

गौतम! वह वीर्य-भाव में अपक्रमण करता है, अवीर्य-भाव में अपक्रमण नहीं करता।

१८६. यदि वह वीर्य-भाव में अपक्रमण करता है, तो क्या बाल-वीर्य-भाव में अपक्रमण करता है? पंडित-वीर्य-भाव में अपक्रमण करता है? बाल-पंडित-वीर्य-भाव में अपक्रमण करता है?

गौतम! वह बाल-वीर्य-भाव में अपक्रमण नहीं करता, पंडित-वीर्य-भाव में अपक्रमण नहीं करता, बाल-पंडित-वीर्य-भाव में अपक्रमण करता है।

१८७. भन्ते! क्या वह अपक्रमण आत्मना (अपने आप) करता है? अनात्मना (परनिमित्त से) करता है?

गौतम! वह आत्मना अपक्रमण करता है, अनात्मना अपक्रमण नहीं करता। मोहनीय कर्म का वेदन करता हुआ अपक्रमण करता है।

१८८. भन्ते! वह मोहनीय-कर्म का वेदन करता हुआ अपक्रमण कैसे करता है?

गौतम! अपक्रमण से पूर्व वह जो तत्त्व जैसा है, उस पर वैसी ही रुचि करता है। अब (मोहनीय-कर्म के उदय-काल में) वह जो तत्त्व जैसा है, उस पर वैसी रुचि नहीं करता—इस प्रकार वह मोहनीय-कर्म का वेदन करता हुआ अपक्रमण करता है।

कर्ममोक्ष-पद

१८९. भन्ते! नैरयिक, तिर्यग्योनिक, मनुष्य अथवा देव के जो किया हुआ पाप कर्म है, क्या उसका वेदन किए बिना मोक्ष (छुटकारा) नहीं होता?

हां, गौतम! नैरयिक, तिर्यग्योनिक, मनुष्य अथवा देव के जो किया हुआ पाप कर्म है, उसका वेदन किए बिना मोक्ष नहीं होता।

१९०. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—नैरयिक, तिर्यग्योनिक, मनुष्य अथवा देव के जो किया हुआ पाप कर्म है, उसका वेदन किए बिना मोक्ष नहीं होता?

गौतम! मैंने दो प्रकार के कर्म बतलाए हैं, जैसे—प्रदेश-कर्म और अनुभाग-कर्म।

जो प्रदेश-कर्म है, उसका नियमतः वेदन होता है। जो अनुभाग-कर्म है, उसमें से किसी का वेदन होता है, किसी का वेदन नहीं होता।

यह अर्हत् के द्वारा ज्ञात है, श्रुत है और विज्ञात है—यह जीव इस कर्म का आभ्युपगमिकी (स्वीकृत) वेदना द्वारा वेदन करेगा और यह जीव इस कर्म का औपक्रमिकी (प्रयत्नकृत) वेदना द्वारा वेदन करेगा।

यथाकर्म (बद्ध कर्मों के अनुसार) और यथानिकरण (विपरिणमन के नियत हेतु के अनुसार) जैसे-जैसे वह कर्म भगवान् ने देखा, वैसे-वैसे उसका विपरिणमन होगा। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—नैरयिक, तिर्यग्योनिक, मनुष्य अथवा देव के जो किया हुआ पाप-कर्म है, उसका वेदन किए बिना मोक्ष नहीं होता।

पुद्गल और जीव की त्रैकालिकता का पद

१९१. भन्ते! यह परमाणु अनन्त अतीत-काल में शाश्वत था, क्या ऐसा कहा जा सकता है?

हां, गौतम! यह परमाणु अनन्त अतीत-काल में शाश्वत था, ऐसा कहा जा सकता है।

१९२. भन्ते! यह परमाणु वर्तमान-काल में शाश्वत रहता है, क्या ऐसा कहा जा सकता है?

हां, गौतम! यह परमाणु वर्तमान-काल में शाश्वत रहता है, ऐसा कहा जा सकता है।

१९३. भन्ते! यह परमाणु अनन्त अनागत-काल में शाश्वत रहेगा, क्या ऐसा कहा जा सकता है?

हां, गौतम! यह परमाणु अनन्त अनागत-काल में शाश्वत रहेगा, ऐसा कहा जा सकता है।

१९४. भन्ते! यह स्कन्ध अनन्त अतीत-काल में शाश्वत था, क्या ऐसा कहा जा सकता है?

हां, गौतम! यह स्कन्ध अनन्त अतीत-काल में शाश्वत था, ऐसा कहा जा सकता है।

१९५. भन्ते! यह स्कन्ध वर्तमान-काल में शाश्वत रहता है, क्या ऐसा कहा जा सकता है?

हां, गौतम! यह स्कन्ध वर्तमान-काल में शाश्वत रहता है, ऐसा कहा जा सकता है।

१९६. भन्ते! यह स्कन्ध अनन्त अनागत-काल में शाश्वत रहेगा, क्या ऐसा कहा जा सकता है?

हां, गौतम! यह स्कन्ध अनन्त अनागत-काल में शाश्वत रहेगा, ऐसा कहा जा सकता है।

१९७. भन्ते! यह जीव अनन्त अतीत-काल में शाश्वत था, क्या ऐसा कहा जा सकता है?

हां, गौतम! यह जीव अनन्त अतीत-काल में शाश्वत था, ऐसा कहा जा सकता है।

१९८. भन्ते! यह जीव वर्तमान-काल में शाश्वत रहता है, क्या ऐसा कहा जा सकता है?

हां, गौतम! यह जीव वर्तमान-काल में शाश्वत रहता है, ऐसा कहा जा सकता है।

१९९. भन्ते! यह जीव अनन्त अनागत-काल में शाश्वत रहेगा, क्या ऐसा कहा जा सकता है?

हां, गौतम! यह जीव अनन्त अनागत-काल में शाश्वत रहेगा, ऐसा कहा जा सकता है।

मोक्ष-पद

२००. भन्ते! क्या छद्मस्थ मनुष्य इस अनन्त अतीत शाश्वत-काल में—केवल संयम, केवल संवर, केवल ब्रह्मचर्यवास और केवल प्रवचनमाता के द्वारा सिद्ध, प्रशान्त, मुक्त, परिनिर्वृत हुआ था, उसने सब दुःखों का अन्त किया था?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है।

२०१. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—छद्मस्थ मनुष्य अनन्त अतीत शाश्वत-काल में केवल संयम, केवल संवर, केवल ब्रह्मचर्यवास और केवल प्रवचन-माता के द्वारा सिद्ध, प्रशान्त, मुक्त, परिनिर्वृत नहीं हुआ था, उसने सब दुःखों का अन्त नहीं किया था?

गौतम! जो भी अन्तकर अथवा अन्तिमशरीरी हैं, जिन्होंने सब दुःखों का अन्त किया था, करते हैं और करेंगे—वे सब उत्पन्न-ज्ञान-दर्शन-धर अर्हत्, जिन और केवली होकर उसके

पश्चात् सिद्ध, प्रशान्त, मुक्त, परिनिर्वृत हुए, उन्होंने सब दुःखों का अन्त किया, करते हैं और करेंगे। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—छद्मस्थ मनुष्य अनन्त अतीत शाश्वत काल में—केवल संयम, केवल संवर, केवल ब्रह्मचर्यवास, केवल प्रवचन-माता के द्वारा सिद्ध, प्रशान्त, मुक्त, परिनिर्वृत नहीं हुए थे, उन्होंने सब दुःखों का अंत नहीं किया था।

२०२. वर्तमान काल में भी इसी प्रकार ज्ञातव्य है। केवल—सिद्ध होता है—यह वर्तमानकालीन क्रिया-पद वक्तव्य है।

२०३. भविष्यकाल में भी इसी प्रकार ज्ञातव्य है। केवल—सिद्ध होगा—यह भविष्यकालीन क्रिया-पद वक्तव्य है।

२०४. छद्मस्थ मनुष्य की भांति आधोवधिक (देशावधि-युक्त) और परमाधोवधिक (सर्व-अवधि-युक्त) के भी तीन-तीन आलापक वक्तव्य हैं।

२०५. भन्ते! क्या केवली मनुष्य इस अनन्त अतीत शाश्वत-काल में सिद्ध, प्रशान्त, मुक्त, परिनिर्वृत हुआ था, उसने सब दुःखों का अन्त किया था?

हां, गौतम! केवली मनुष्य अनन्त अतीत शाश्वत-काल में सिद्ध, प्रशान्त, मुक्त, परिनिर्वृत हुआ था, उसने सब दुःखों का अन्त किया था।

२०६. भन्ते! क्या केवली मनुष्य वर्तमान शाश्वत-काल में सिद्ध, प्रशान्त, मुक्त, परिनिर्वृत होता है, सब दुःखों का अन्त करता है?

हां, गौतम! केवली मनुष्य वर्तमान शाश्वत-काल में सिद्ध, प्रशान्त, मुक्त, परिनिर्वृत होता है, सब दुःखों का अन्त करता है।

२०७. भन्ते! क्या केवल मनुष्य अनन्त अनागत शाश्वत-काल में सिद्ध, प्रशान्त, मुक्त, परिनिर्वृत होगा, सब दुःखों का अन्त करेगा?

हां, गौतम! केवली मनुष्य अनन्त अनागत शाश्वत-काल में सिद्ध, प्रशान्त, मुक्त, परिनिर्वृत होगा, सब दुःखों का अन्त करेगा।

२०८. भन्ते! इस अनन्त अतीत शाश्वत-काल में, वर्तमान शाश्वत काल में और अनन्त अनागत शाश्वत काल में जो भी अन्तकर अथवा अन्तिमशरीरी हैं, जिन्होंने सब दुःखों का अन्त किया था, करते हैं अथवा करेंगे, क्या वे सब उत्पन्नज्ञानदर्शन के धारक अर्हत्, जिन और केवली होकर उसके पश्चात् सिद्ध, प्रशान्त, मुक्त, परिनिर्वृत होते हैं? उन्होंने सब दुःखों का अन्त किया था, करते हैं अथवा करेंगे?

हां, गौतम! इस अनन्त अतीत शाश्वत-काल में, वर्तमान शाश्वत काल में और अनन्त अनागत शाश्वत काल में जो भी अन्तकर अथवा अन्तिमशरीरी हैं, जिन्होंने सब दुःखों का अन्त किया था, करते हैं अथवा करेंगे, वे सब उत्पन्नज्ञान-दर्शन के धारक अर्हत्, जिन और केवली होकर उसके पश्चात् सिद्ध, प्रशान्त, मुक्त, परिनिर्वृत होते हैं, उन्होंने सब दुःखों का अन्त किया था, करते हैं अथवा करेंगे।

२०९. भन्ते! उत्पन्न-ज्ञान-दर्शन के धारक अर्हत्, जिन और केवली को 'अलमस्तु' ऐसा कहा जा सकता है?

हां, गौतम! उत्पन्न-ज्ञान-दर्शन के धारक अर्हत्, जिन और केवली को 'अलमस्तु' ऐसा कहा जा सकता है।

२१०. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है।

पांचवां उद्देशक

पृथ्वी-पद

२११. भन्ते! पृथ्वियां कितनी प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! पृथ्वियां सात प्रज्ञप्त हैं, जैसे—रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा, तमस्तमाः।

२१२. भन्ते! इस रत्नप्रभा-पृथ्वी के कितने लाख नरकावास प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! रत्नप्रभा-पृथ्वी के तीस लाख नरकावास प्रज्ञप्त हैं।

सातों पृथ्वियों के नरकावास क्रमशः इस प्रकार हैं—१. तीस लाख २. पच्चीस लाख ३. पंद्रह लाख ४. दस लाख ५. तीन लाख ६. निनानवें हजार नौ सौ पिचानवे ७. पांच अनुत्तर नरकावास।

आवास-पद

२१३. भन्ते! असुरकुमारों के कितने लाख आवास प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! असुरकुमारों के चौसठ लाख आवास प्रज्ञप्त हैं।

संग्रहणी गाथा

इस प्रकार—

असुरकुमारों के चौसठ लाख, नागकुमारों के चौरासी लाख, सुपर्णकुमारों के बहत्तर लाख, वायुकुमारों के छियानवें लाख। द्वीपकुमार, दिशाकुमार, उदधिकुमार, विद्युत्कुमार, स्तनितकुमार और अम्निकुमार—इन छहों युगलों के छिहत्तर लाख आवास हैं।

२१४. भन्ते! पृथ्वीकायिक-जीवों के कितने लाख आवास प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! पृथ्वीकायिक जीवों के असंख्येय लाख आवास प्रज्ञप्त हैं यावत् ज्योतिष्क-देवों के असंख्येय लाख विमानावास प्रज्ञप्त हैं।

२१५. भन्ते! सौधर्म-कल्प में कितने लाख विमानावास प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! उसमें बत्तीस लाख विमानावास प्रज्ञप्त हैं।

संग्रहणी गाथा

इस प्रकार—

सौधर्म में बत्तीस लाख, ईशान में अट्ठाईस लाख, सनत्कुमार में बारह लाख, माहेन्द्र में आठ लाख, ब्रह्म में चार लाख, लान्तक में पचास हजार, शुक्र में चालीस हजार, सहस्रार में छह हजार विमान हैं।

आनत- और प्राणत-कल्प में चार सौ तथा आरण- और अच्युत-कल्प में तीन सौ विमान हैं। इन चार कल्पों में सात सौ विमान हैं।

अधस्तन ग्रैवेयक-त्रिक में एक सौ ग्यारह विमान हैं, मध्यम ग्रैवेयक-त्रिक में एक सौ सात विमान हैं और ऊपर के ग्रैवेयक-त्रिक में सौ विमान हैं। अनुत्तर-विमान पांच ही हैं।

नैरयिकों का नानादशाओं में क्रोधोपयुक्त-आदि-भंग-पद

रत्नप्रभा आदि पृथ्वियों में स्थिति-स्थान, अवगाहन, शरीर, संहनन, संस्थान, लेश्या, दृष्टि, ज्ञान, योग और उपयोग—ये दश स्थान इस उद्देशक में वर्णित हैं।

२१६. भन्ते! इस रत्नप्रभा-पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से प्रत्येक नरकावास में रहने वाले नैरयिकों के कितने स्थिति-स्थान (आयु-विभाग) प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! उनके स्थिति-स्थान असंख्येय प्रज्ञप्त हैं, जैसे—जघन्य स्थिति, एक समय अधिक जघन्य स्थिति, दो समय अधिक जघन्य स्थिति यावत् असंख्येय समय अधिक जघन्य स्थिति। विवक्षित नरकावास के प्रायोग्य उत्कृष्ट स्थिति।

२१७. भन्ते! इस रत्नप्रभा-पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में प्रत्येक नरका-वास में जघन्य स्थिति में वर्तमान नैरयिक जीव क्या क्रोधोपयुक्त होते हैं? मानोपयुक्त होते हैं? मायोपयुक्त होते हैं? लोभोपयुक्त होते हैं?

गौतम! वे सब नैरयिक होते हैं १. क्रोधोपयुक्त। २. अथवा क्रोधोपयुक्त एक मानोपयुक्त। ३. अथवा क्रोधोपयुक्त, मानोपयुक्त। ४. अथवा क्रोधोपयुक्त, एक मायोपयुक्त। ५. अथवा क्रोधोपयुक्त, मायोपयुक्त। ६. अथवा क्रोधोपयुक्त, एक लोभोपयुक्त। ७. अथवा क्रोधोपयुक्त, लोभोपयुक्त। ८. अथवा क्रोधोपयुक्त, एक मानोपयुक्त, एक मायोपयुक्त। ९. क्रोधोपयुक्त, एक मानोपयुक्त, मायोपयुक्त। १०. क्रोधोपयुक्त, मानोपयुक्त, एक मायोपयुक्त। ११. क्रोधोपयुक्त, मानोपयुक्त, मायोपयुक्त। १२. क्रोधोपयुक्त एक मानोपयुक्त, एक लोभोपयुक्त। १३. क्रोधोपयुक्त, एक मानोपयुक्त, लोभोपयुक्त। १४. क्रोधोपयुक्त, मानोपयुक्त, लोभोपयुक्त। १५. क्रोधोपयुक्त, मानोपयुक्त, लोभोपयुक्त। १६. क्रोधोपयुक्त, एक मायोपयुक्त, एक लोभोपयुक्त। १७. क्रोधोपयुक्त, एक मायोपयुक्त, लोभोपयुक्त। १८. क्रोधोपयुक्त, मायोपयुक्त, एक लोभोपयुक्त। १९. क्रोधोपयुक्त, मायोपयुक्त, लोभोपयुक्त। २०. क्रोधोपयुक्त, एक मानोपयुक्त, एक मायोपयुक्त, एक लोभोपयुक्त। २१. क्रोधोपयुक्त, एक मानोपयुक्त, एक मायोपयुक्त, लोभोपयुक्त। २२. क्रोधोपयुक्त, एक मानोपयुक्त, मायोपयुक्त, एक लोभोपयुक्त। २३. क्रोधोपयुक्त, एक मानोपयुक्त, मायोपयुक्त, लोभोपयुक्त। २४. क्रोधोपयुक्त, मानोपयुक्त, एक मायोपयुक्त, एक लोभोपयुक्त। २५. क्रोधोपयुक्त, मानोपयुक्त, एक मायोपयुक्त, लोभोपयुक्त। २६. क्रोधोपयुक्त, मानोपयुक्त, मायोपयुक्त, एक लोभोपयुक्त। २७. क्रोधोपयुक्त, मानोपयुक्त, मायोपयुक्त, लोभोपयुक्त।

२१८. भन्ते! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से प्रत्येक नरकावास में 'एक समय अधिक जघन्य स्थिति' में वर्तमान नैरयिक क्या क्रोधोपयुक्त होते हैं? मानोपयुक्त होते हैं? मायोपयुक्त होते हैं? लोभोपयुक्त होते हैं?

गौतम! एक क्रोधोपयुक्त, एक मानोपयुक्त, एक मायोपयुक्त अथवा एक लोभो-पयुक्त होता है। क्रोधोपयुक्त, मानोपयुक्त, मायोपयुक्त अथवा लोभोपयुक्त होते हैं। अथवा एक क्रोधोपयुक्त, एक मानोपयुक्त। अथवा एक क्रोधोपयुक्त, मानोपयुक्त होते हैं। इस प्रकार अस्सी भंग ज्ञातव्य हैं। इस प्रकार यावत् 'संख्येय समय अधिक जघन्य स्थिति' वाले नैरयिकों के अस्सी भंग होते हैं। 'असंख्येय समय अधिक जघन्य स्थिति' वाले तथा 'विवक्षित नरकावास के प्रायोग्य उत्कृष्ट स्थिति' वाले नैरयिकों के सत्ताईस भंग वक्तव्य हैं।

२१९. भन्ते! इस रत्नप्रभा-पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से प्रत्येक नरकावास में रहने वाले नैरयिक-जीवों के कितने अवगाहना-स्थान प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! उनके असंख्येय अवगाहना-स्थान प्रज्ञप्त हैं, जैसे—जघन्य अवगाहना, एक प्रदेश अधिक जघन्य अवगाहना, दो प्रदेश अधिक जघन्य अवगाहना यावत् असंख्येय प्रदेश अधिक जघन्य अवगाहना। विवक्षित नरकावास के प्रायोग्य उत्कृष्ट अवगाहना।

२२०. भन्ते! इस रत्नप्रभा-पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से प्रत्येक नरकावास की जघन्य अवगाहना में वर्तमान नैरयिक क्या क्रोधोपयुक्त होते हैं?

इनके अस्सी भंग वक्तव्य हैं यावत् संख्येय प्रदेश अधिक जघन्य अवगाहना में वर्तमान नैरयिकों के भी अस्सी भंग वक्तव्य हैं।

असंख्येय प्रदेश अधिक जघन्य अवगाहना में वर्तमान और विवक्षित नरकावास के प्रायोग्य उत्कृष्ट अवगाहना में वर्तमान नैरयिकों के सत्ताईस भंग होते हैं।

२२१. भन्ते! इस रत्नप्रभा-पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से प्रत्येक नरकावास में रहने वाले नैरयिकों के कितने शरीर प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! उनके तीन शरीर प्रज्ञप्त हैं, जैसे—वैक्रिय, तैजस और कार्मण।

२२२. भन्ते! इस रत्नप्रभा-पृथ्वी यावत् वैक्रिय-शरीर में वर्तमान नैरयिक क्या क्रोधोपयुक्त होते हैं? सत्ताईस भंग वक्तव्य हैं।

२२३. इसी गमक (सदृश पाठ-पद्धति) के अनुसार तीनों (वैक्रिय, तैजस और कार्मण) शरीर वक्तव्य हैं।

२२४. भन्ते! इस रत्नप्रभा-पृथ्वी यावत् नैरयिकों के शरीर किस संहनन (अस्थि-संचना) वाले प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! छह संहननों में से उनके कोई संहनन नहीं होता। उनके शरीर में न अस्थियां हैं, न शिराएं हैं और न स्नायु हैं। जो पुद्गल अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अशुभ, अमनोज्ञ और अमनोरम होते हैं, वे इनके शरीर-संघात रूप में परिणत होते हैं।

२२५. भन्ते! इस रत्नप्रभा-पृथ्वी यावत् छह संहननों में से असंहनन-अवस्था में वर्तमान नैरयिक क्या क्रोधोपयुक्त होते हैं? सत्ताईस भंग वक्तव्य हैं।

२२६. भन्ते! इस रत्नप्रभा-पृथ्वी यावत् नैरयिकों के शरीर किस संस्थान वाले प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! उनके शरीर दो प्रकार वाले प्रज्ञप्त हैं, जैसे—१. भवधारणीय २. उत्तर-वैक्रिय। जो भवधारणीय-शरीर हैं, वे हुंड-संस्थान वाले प्रज्ञप्त हैं। जो उत्तर-वैक्रिय-शरीर हैं, वे भी हुंड-संस्थान वाले प्रज्ञप्त हैं।

२२७. भन्ते! इस रत्नप्रभा-पृथ्वी यावत् हुण्ड-संस्थान में वर्तमान नैरयिक क्या क्रोधोपयुक्त होते हैं? सत्ताईस भंग वक्तव्य हैं।

२२८. भन्ते! इस रत्नप्रभा-पृथ्वी यावत् नैरयिकों के कितनी लेश्याएं प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! एक कापोत-लेश्या प्रज्ञप्त है।

२२९. भन्ते! इस रत्नप्रभा-पृथ्वी यावत् कापोत लेश्या में वर्तमान नैरयिक क्या क्रोधोपयुक्त होते हैं? सत्ताईस भंग वक्तव्य हैं।

२३०. भन्ते! इस रत्नप्रभा-पृथ्वी यावत् नैरयिक क्या सम्यग्-दृष्टि होते हैं? मिथ्या-दृष्टि होते हैं? सम्यग्-मिथ्या-दृष्टि होते हैं?

वे तीनों ही होते हैं।

२३१. भन्ते! इस रत्नप्रभा-पृथ्वी यावत् सम्यग्-दर्शन में वर्तमान नैरयिक क्या क्रोधोपयुक्त होते हैं? सत्ताईस भंग वक्तव्य हैं।

२३२. इसी प्रकार मिथ्या-दर्शन में वर्तमान नैरयिकों के भी सत्ताईस भंग वक्तव्य हैं।

२३३. सम्यग्-मिथ्या-दर्शन में वर्तमान नैरयिकों के अस्सी भंग वक्तव्य हैं।

२३४. भन्ते! इस रत्नप्रभा-पृथ्वी में यावत् नैरयिक क्या ज्ञानी होते हैं अथवा अज्ञानी?

गौतम! वे ज्ञानी भी होते हैं और अज्ञानी भी होते हैं। सम्यग्-दृष्टि में तीन ज्ञान का नियम है, मिथ्या-दृष्टि में तीन अज्ञान की भजना (विकल्प) है।

२३५. भन्ते! इस रत्नप्रभा-पृथ्वी यावत् आभिनिबोधिक-ज्ञान में वर्तमान नैरयिक क्या क्रोधोपयुक्त होते हैं? सत्ताईस भंग वक्तव्य हैं।

२३६. इसी प्रकार तीन ज्ञान और तीन अज्ञान में वर्तमान नैरयिकों के भी सत्ताईस-सत्ताईस भंग वक्तव्य हैं।

२३७. भन्ते! इस रत्नप्रभा-पृथ्वी में यावत् नैरयिक क्या मन-योगी होते हैं? वचन-योगी होते हैं? काय-योगी होते हैं?

वे तीनों ही होते हैं।

२३८. भन्ते! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में यावत् मनयोग में वर्तमान नैरयिक क्या क्रोधोपयुक्त होते हैं? सत्ताईस भंग वक्तव्य हैं।

२३९. इसी प्रकार वचन-योग में वर्तमान नैरयिकों के भी सत्ताईस भंग वक्तव्य हैं।

२४०. इसी प्रकार काय-योग में वर्तमान नैरयिकों के भी सत्ताईस भंग वक्तव्य हैं।

२४१. भन्ते! इस रत्नप्रभा-पृथ्वी में यावत् नैरयिक साकारोपयुक्त होते हैं? अथवा अनाकारोपयुक्त होते हैं?

गौतम! वे साकारोपयुक्त भी होते हैं, अनाकारोपयुक्त भी होते हैं।

२४२. भन्ते! इस रत्नप्रभा-पृथ्वी में यावत् साकारोपयोग में वर्तमान नैरयिक क्या क्रोधोपयुक्त होते हैं? सत्ताईस भंग वक्तव्य हैं।

२४३. इसी प्रकार अनाकारोपयोग में वर्तमान नैरयिकों के भी सत्ताईस भंग वक्तव्य हैं।

२४४. इस प्रकार सातों ही पृथ्वियां ज्ञातव्य हैं, केवल लेश्या में नानात्व है।

संग्रहणी गाथा

प्रथम और द्वितीय पृथ्वी में कापोत-लेश्या, तीसरी पृथ्वी में मिश्र-कापोत- और नील-लेश्या, चौथी पृथ्वी में नील-लेश्या पांचवीं पृथ्वी में मिश्र-नील- और कृष्ण-लेश्या, छठी पृथ्वी में कृष्ण-लेश्या और सातवीं पृथ्वी में परम-कृष्ण-लेश्या होती है।

असुरकुमार आदि का नाना दशाओं में क्रोधापयुक्त आदि भंग-पद

२४५. भन्ते! चौसठ लाख असुरकुमार-आवासों में से प्रत्येक असुरकुमार-वास में रहने वाले असुरकुमारों के कितने स्थिति-स्थान (आयु-विभाग) प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! उनके असंख्येय स्थिति-स्थान प्रज्ञप्त हैं। उनकी जघन्य स्थिति नैरयिकों के समान हैं। विशेष ज्ञातव्य यह है कि प्रतिलोम भंग (लोभोपयुक्त आदि) वक्तव्य हैं।

वे सब असुरकुमार लोभोपयुक्त होते हैं।

अथवा लोभोपयुक्त और एक मायोपयुक्त। अथवा लोभोपयुक्त मायोपयुक्त। इस गमक (सदृश पाठ-पद्धति) के अनुसार यावत् स्तनितकुमार-देवों की वक्तव्यता, केवल इनका नानात्व ज्ञातव्य है।

२४६. भन्ते! असंख्येय लाख पृथ्वीकायिक आवासों में से प्रत्येक पृथ्वीकायिक आवास में रहने वाले पृथ्वीकायिक-जीवों के कितने स्थिति-स्थान प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! उनके असंख्येय स्थिति-स्थान प्रज्ञप्त हैं, जैसे-जघन्य स्थिति से लेकर यावत् विवक्षित पृथ्वीकायिक आवास के प्रायोग्य उत्कृष्ट स्थिति।

२४७. भन्ते! असंख्येय लाख पृथ्वीकायिक आवासों में से प्रत्येक पृथ्वीकायिक आवास में जघन्य स्थिति में वर्तमान पृथ्वीकायिक-जीव क्या क्रोधोपयुक्त होते हैं? मानोपयुक्त होते हैं? मायोपयुक्त होते हैं? लोभोपयुक्त होते हैं?

गौतम! क्रोधोपयुक्त भी होते हैं, मानोपयुक्त भी होते हैं, मायोपयुक्त भी होते हैं, लोभोपयुक्त भी होते हैं।

इस प्रकार पृथ्वीकायिक-जीवों के सभी स्थान भंग-शून्य होते हैं, केवल तेजो-लेश्या में वर्तमान पृथ्वीकायिक जीवों के अस्सी भंग वक्तव्य हैं।

२४८. इसी प्रकार अप्कायिक जीव ज्ञातव्य हैं।

२४९. तैजसकायिक और वायुकायिक जीवों के सभी स्थान भंग-शून्य होते हैं।

२५०. वनस्पतिकायिक जीवों की वक्तव्यता पृथ्वीकायिक जीवों के समान हैं।

२५१. जिन स्थानों में नैरयिकों के अस्सी भंग हैं, उन स्थानों में द्वीन्द्रिय-, त्रीन्द्रिय- और चतुरिन्द्रिय-जीवों के भी अस्सी भंग होते हैं। विशेष ज्ञातव्य है कि सम्यक्त्व, अभिनिबोधक-ज्ञान और श्रुत-ज्ञान इनमें अधिक भंग-अस्सी भंग होते हैं। जिन स्थानों में नैरयिकों के सत्ताईस भंग होते हैं, विकलेन्द्रिय जीवों के वे सब स्थान भंग-शून्य होते हैं।

२५२. पञ्चेन्द्रिय-तिर्यग्योनिक जीव नैरयिकों की भांति वक्तव्य हैं, विशेष ज्ञातव्य है कि जहां नैरयिकों के सत्ताईस भंग होते हैं, वहां वे भंग-शून्य होते हैं। इसलिए इनका कोई भंग नहीं बनता।

२५३. मनुष्य भी दस द्वार से वक्तव्य है, जिन स्थानों में नैरयिकों के अस्सी भंग होते हैं, उन स्थानों में मनुष्यों के भी अस्सी भंग वक्तव्य हैं। जिन स्थानों में नैरयिकों के सत्ताईस भंग होते हैं, उनमें मनुष्य भंग-शून्य होते हैं, विशेष ज्ञातव्य है कि मनुष्यों के जघन्य स्थिति और आहारक-शरीर में अधिक भंग-अस्सी भंग होते हैं।

२५४. वानमंत-र, ज्योतिष्क- और वैमानिक-देव भवनवासी-देवों की भांति वक्तव्य हैं, केवल जिसका जो नानात्व है वह ज्ञातव्य है यावत् अनुत्तर-विमान तक।

२५५. भन्ते! वह ऐसा ही है, भन्ते वह ऐसा ही है। इस प्रकार भगवान् गौतम यावत् संयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए विहरण कर रहे हैं।

छठा उद्देशक

सूर्य-पद

२५६. भन्ते! उगता हुआ सूर्य जितने अवकाशान्तर से दृष्टिगोचर होता है, क्या अस्त होता हुआ सूर्य भी उतने ही अवकाशान्तर से दृष्टिगोचर होता है?

हां, गौतम! उगता हुआ सूर्य जितने अवकाशान्तर से दृष्टिगोचर होता है, अस्त होता हुआ सूर्य भी उतने ही अवकाशान्तर से दृष्टिगोचर होता है।

२५७. भन्ते! उगता हुआ सूर्य अपने आतप से सब दिशाओं और विदिशाओं में जितने क्षेत्र को अवभासित, उद्द्योतित, तप्त और प्रभासित करता है, क्या अस्त होता हुआ सूर्य भी अपने आतप से सब दिशाओं और विदिशाओं में उतने ही क्षेत्र को अवभासित, उद्द्योतित, तप्त और प्रभासित करता है?

हां, गौतम! उगता हुआ सूर्य अपने आतप से सब दिशाओं और विदिशाओं में जितने क्षेत्र को अवभासित, उद्द्योतित, तप्त और प्रभासित करता है, अस्त होता हुआ सूर्य भी अपने आतप से सब दिशाओं और विदिशाओं में उतने ही क्षेत्र को अवभासित, उद्द्योतित, तप्त और प्रभासित करता है।

२५८. भन्ते! क्या सूर्य स्पृष्ट-क्षेत्र को अवभासित करता है? अथवा अस्पृष्ट-क्षेत्र को अवभासित करता है?

गौतम! वह स्पृष्ट-क्षेत्र को अवभासित करता है, अस्पृष्ट-क्षेत्र को अवभासित नहीं करता।

२५९. भन्ते! क्या सूर्य अवगाढ-क्षेत्र को अवभासित करता है? अथवा अनवगाढ-क्षेत्र को अवभासित करता है?

गौतम! वह अवगाढ-क्षेत्र को अवभासित करता है, अनवगाढ-क्षेत्र को अव-भासित नहीं करता।

२६०. भन्ते! क्या सूर्य अनन्तरावगाढ-क्षेत्र को अवभासित करता है? अथवा परम्परावगाढ-क्षेत्र को अवभासित करता है?

गौतम! वह अनन्तरावगाढ-क्षेत्र को अवभासित करता है, परम्परावगाढ-क्षेत्र को अवभासित नहीं करता।

२६१. भन्ते! क्या सूर्य अणु(सूक्ष्म)-क्षेत्र को अवभासित करता है? अथवा बादर(स्थूल)-क्षेत्र को अवभासित करता है?

गौतम! सूर्य अणु-क्षेत्र को भी अवभासित करता है और बादर-क्षेत्र को भी अवभासित करता है।

२६२. भन्ते! क्या सूर्य ऊर्ध्व-क्षेत्र को अवभासित करता है? तिरछे-क्षेत्र को अवभासित करता है? अथवा अधः-क्षेत्र को अवभासित करता है?

गौतम! वह ऊर्ध्व-क्षेत्र को भी अवभासित करता है, तिरछे-क्षेत्र को भी अव-भासित करता है और अधः-क्षेत्र को भी अवभासित करता है।

२६३. भन्ते! क्या सूर्य क्षेत्र के आदि-भाग को अवभासित करता है? मध्य-भाग को अवभासित करता है? अथवा अन्त-भाग को अवभासित करता है?

गौतम! वह क्षेत्र के आदि-भाग को भी अवभासित करता है, मध्य-भाग को भी अवभासित करता है और अन्त-भाग को भी अवभासित करता है।

२६४. भन्ते! क्या सूर्य अपने विषय को अवभासित करता है अथवा अविषय को अवभासित करता है?

गौतम! वह अपने विषय को अवभासित करता है, अविषय को अवभासित नहीं करता।

२६५. भन्ते! क्या सूर्य अपने विषय को क्रम से अवभासित करता है? अथवा अक्रम से अवभासित करता है?

गौतम! वह अपने विषय को क्रम से अवभासित करता है, अक्रम से अवभासित नहीं करता।

२६६. भन्ते! सूर्य कितनी दिशाओं को अवभासित करता है?

गौतम! वह नियमतः छहों दिशाओं को अवभासित करता है।

२६७. उद्धोतित, तप्त और प्रभासित—इन क्रियापदों के साथ अवभासित की भांति पूर्ण आलापक वक्तव्य है।

स्पर्शना-पद

२६८. भन्ते! स्पृश्यमान काल के समय में कोई स्कन्ध सब दिशाओं में सर्वात्मना जितने क्षेत्र

का स्पर्श करता है, क्या उतने स्पृश्यमान क्षेत्र को स्पृष्ट कहा जा सकता है?

हां, गौतम! स्पृश्यमान काल के समय में वह सब दिशाओं में सर्वात्मना जितने क्षेत्र का स्पर्श करता है, उतने स्पृश्यमान क्षेत्र को स्पृष्ट कहा जा सकता है।

२६९. भन्ते! क्या कोई स्कन्ध स्पृष्ट-क्षेत्र का स्पर्श करता है? अथवा अस्पृष्ट-क्षेत्र का स्पर्श करता है?

गौतम! वह स्पृष्ट-क्षेत्र का स्पर्श करता है, अस्पृष्ट-क्षेत्र का स्पर्श नहीं करता यावत् नियमतः छहों दिशाओं का स्पर्श करता है।

२७०. भन्ते! क्या लोकान्त अलोकान्त का स्पर्श करता है? अलोकान्त भी लोकान्त का स्पर्श करता है?

हां, गौतम! लोकान्त अलोकान्त का स्पर्श करता है और अलोकान्त भी लोकान्त का स्पर्श करता है।

२७१. भन्ते! क्या वह स्पृष्ट-क्षेत्र का स्पर्श करता है? अथवा अस्पृष्ट-क्षेत्र का स्पर्श करता है?

गौतम! वह स्पृष्ट-क्षेत्र का स्पर्श करता है, अस्पृष्ट-क्षेत्र का स्पर्श नहीं करता यावत् नियमतः छहों दिशाओं का स्पर्श करता है।

२७२. भन्ते! क्या द्वीप का अन्त सागर के अन्त का स्पर्श करता है? सागर का अन्त भी द्वीप के अन्त का स्पर्श करता है?

हां, गौतम! द्वीप का अन्त सागर के अन्त का स्पर्श करता है और सागर का अन्त भी द्वीप के अन्त का स्पर्श करता है यावत् नियमतः छहों दिशाओं का स्पर्श करता है।

२७३. भन्ते! क्या पानी का अन्त जलयान के अन्त का स्पर्श करता है? जलयान का अन्त भी पानी के अन्त का स्पर्श करता है?

हां, गौतम! पानी का अन्त जलयान के अन्त का स्पर्श करता है और जल-यान का अन्त भी पानी के अन्त का स्पर्श करता है यावत् नियमतः छहों दिशाओं का स्पर्श करता है।

२७४. भन्ते! क्या छिद्र का अन्त वस्त्र के अन्त का स्पर्श करता है? वस्त्र का अन्त छिद्र के अन्त का स्पर्श करता है?

हां, गौतम! छिद्र का अन्त वस्त्र के अन्त का स्पर्श करता है और वस्त्र का अन्त भी छिद्र के अन्त का स्पर्श करता है यावत् नियमतः छहों दिशाओं का स्पर्श करता है।

२७५. भन्ते! क्या छाया का अन्त आतप के अन्त का स्पर्श करता है? आतप का अन्त भी छाया के अन्त का स्पर्श करता है?

हां, गौतम! छाया का अन्त आतप के अन्त का स्पर्श करता है और आतप का अन्त भी छाया के अन्त का स्पर्श करता है यावत् नियमतः छहों दिशाओं का स्पर्श करता है।

क्रिया-पद

२७६. भन्ते! क्या जीवों के प्राणातिपात-क्रिया होती है?

हां, होती है।

२७७. भन्ते! क्या वह स्पृष्ट होती है? अथवा अस्पृष्ट होती है?

गौतम! वह स्पृष्ट होती है, अस्पृष्ट नहीं होती यावत् व्याघात न होने पर प्राणातिपात-क्रिया छहों दिशाओं में होती है, व्याघात होने पर तीन, चार, अथवा पांच दिशाओं में होती है।

२७८. भन्ते! क्या वह कृत होती है? अथवा अकृत होती है?

गौतम! वह कृत होती है, अकृत नहीं होती।

२७९. भन्ते! क्या वह आत्म-कृत होती है? पर-कृत होती है? अथवा उभय-कृत होती है?

गौतम! वह आत्म-कृत होती है, पर-कृत नहीं होती, उभय-कृत भी नहीं होती।

२८०. भन्ते! क्या वह आनुपूर्वी(क्रम)-कृत होती है? अथवा अनानुपूर्वी-कृत होती है?

गौतम! वह आनुपूर्वी-कृत होती है, अनानुपूर्वी-कृत नहीं होती। जो क्रिया की गई है, जो की जा रही है और जो की जायेगी, यह सारी आनुपूर्वी-कृत है, अनानुपूर्वी-कृत नहीं—ऐसा कहा जा सकता है।

२८१. भन्ते! क्या नैरयिक जीवों के प्राणातिपात-क्रिया होती है?

हां, होती है।

२८२. भन्ते! क्या वह स्पृष्ट होती है? अथवा अस्पृष्ट होती है?

गौतम! वह स्पृष्ट होती है, अस्पृष्ट नहीं होती यावत् नियमतः छहों दिशाओं में होती है।

२८३. भन्ते! क्या वह कृत होती है? अथवा अकृत होती है।

गौतम! वह कृत होती है, अकृत नहीं होती।

२८४. यहां पूर्व-आलापक वक्तव्य है यावत् वह अनानुपूर्वी-कृत नहीं होती—ऐसा कहा जा सकता है।

२८५. एकेन्द्रिय जीवों को छोड़कर वैमानिक तक के सभी जीव नैरयिक की भांति वक्तव्य हैं। एकेन्द्रिय सामान्य-जीव की भांति व्यक्तव्य हैं।

२८६. प्राणातिपात, मृषावाद, अदस्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रेय, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, परपरिवाद, अरतिरति, मायामृषा और मिथ्या-दर्शन-शल्य—ये अठारह क्रियाएं हैं। जैसे प्राणातिपात का आलापक चौबीस दण्डक में कहा गया, वैसे मृषावाद आदि सभी आलापक वक्तव्य हैं।

२८७. भन्ते! वह ऐसा ही है, भन्ते! वह ऐसा ही है—इस प्रकार भगवान् गौतम श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन करते हैं यावत् संयम और तप से अपने आप को भावित करते हुए विहरण कर रहे हैं।

रोह के प्रश्न-पद

२८८. उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर का एक अन्तेवासी शिष्य था। उसका नाम था अनगार रोह। वह प्रकृति से भद्र और उपशान्त था। उसके क्रोध, मान, माया

और लोभ प्रतनु (पतले) थे। वह मृदु-मादव-सम्पन्न, आलीन (संयतेन्द्रिय) और विनीत था। वह श्रमण भगवान् महावीर के न अति दूर और न अति निकट, ऊर्ध्वजानु अधःसिर-इस मुद्रा में और ध्यान-कोष्ठ में लीन होकर संयम और तप से अपने आपको भावित करता हुआ रह रहा है।

२८९. उस समय अनगर रोह के मन में एक श्रद्धा उत्पन्न हुई यावत् भगवान् महावीर की पर्युपासना करता हुआ वह इस प्रकार बोला—

२९०. भन्ते! क्या पहले लोक और फिर अलोक बना? क्या पहले अलोक और फिर लोक बना?

रोह! लोक और अलोक पहले भी थे और आगे भी होंगे। ये दोनों शाश्वत भाव हैं। रोह! यह अनानुपूर्वी है—लोक और अलोक में पूर्व-पश्चात् का क्रम नहीं है।

२९१. भन्ते! क्या पहले जीव और फिर अजीव बने? क्या पहले अजीव और फिर जीव बने?

रोह! जीव और अजीव पहले भी थे और आगे भी होंगे। ये दोनों शाश्वत भाव हैं। रोह! यह अनानुपूर्वी है—जीव और अजीव में पूर्व-पश्चात् का क्रम नहीं है।

२९२. भन्ते! क्या पहले भवसिद्धिक और फिर अभवसिद्धिक बने? क्या पहले अभवसिद्धिक और फिर भवसिद्धिक बने?

रोह! भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक पहले भी थे और आगे भी होंगे। ये दोनों शाश्वत भाव हैं। रोह! यह अनानुपूर्वी है—भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक में पूर्व-पश्चात् का क्रम नहीं है।

२९३. भन्ते! क्या पहले सिद्धि और फिर असिद्धि बनी? क्या पहले असिद्धि और फिर सिद्धि बनी?

रोह! सिद्धि और असिद्धि पहले भी थीं और आगे भी रहेंगीं। ये दोनों शाश्वत भाव हैं। रोह! यह अनानुपूर्वी है—सिद्धि और असिद्धि में पूर्व-पश्चात् का क्रम नहीं है।

२९४. भन्ते! क्या पहले सिद्ध और फिर असिद्ध बने? क्या पहले असिद्ध और फिर सिद्ध बने?

रोह! सिद्ध और असिद्ध पहले भी थे और आगे भी होंगे। ये दोनों शाश्वत भाव हैं। रोह! यह अनानुपूर्वी है—सिद्ध और असिद्ध में पूर्व-पश्चात् का क्रम नहीं है।

२९५. भन्ते! क्या पहले अण्डा और फिर मुर्गी पैदा हुई? क्या पहले मुर्गी और फिर अण्डा पैदा हुआ?

रोह! वह अण्डा कहां से पैदा हुआ?

भगवन्! मुर्गी से।

वह मुर्गी कहां से पैदा हुई?

भन्ते! अण्डे से।

रोह! इसी प्रकार वही अण्डा है, वही मुर्गी है। ये पहले भी थे और आगे भी होंगे। ये दोनों शाश्वत भाव हैं। रोह! यह अनानुपूर्वी है—अण्डे और मुर्गी में पूर्व-पश्चात् का क्रम नहीं है।
२९६. भन्ते! क्या पहले लोकान्त और फिर अलोकान्त बना? क्या पहले अलोकान्त और फिर लोकान्त बना?

रोह! लोकान्त और अलोकान्त पहले भी थे और आगे भी होंगे। ये दोनों शाश्वत भाव हैं।
रोह! यह अनानुपूर्वी है—लोकान्त और अलोकान्त में पूर्व-पश्चात् का क्रम नहीं है।
२९७. भन्ते! क्या पहले लोकान्त और फिर सातवां अवकाशान्तर बना? क्या पहले सातवां अवकाशान्तर और फिर लोकान्त बना?

रोह! लोकान्त और सातवां अवकाशान्तर पहले भी थे और आगे भी होंगे। ये दोनों शाश्वत भाव हैं। रोह! यह अनानुपूर्वी है—लोकान्त और सातवें अवकाशान्तर में पूर्व-पश्चात् का क्रम नहीं है।

२९८. इस प्रकार लोकान्त के साथ सातवें तनुवात, घनवात, घनोदधि और सातवीं पृथ्वी वक्तव्य हैं। इस प्रकार लोकान्त के साथ आगे बताए जाने वाले प्रत्येक विषय की संयोजना करणीय है, जैसे—

संग्रहणी गाथा

अवकाशान्तर, वात, (तनुवात और घनवात), घनोदधि, पृथ्वी, द्वीप, समद्र, वर्ष (क्षेत्र), नैरयिक आदि (चौबीस दण्डक) अस्तिकाय, समय (काल-विभाग), कर्म, लेश्या, दृष्टि, दर्शन, ज्ञान, संज्ञा, शरीर, योग, उपयोग, द्रव्य, प्रदेश, पर्यव और काल। 'क्या पहले लोकान्त बना'—इस वाक्य में सूत्र-रचना का निर्देश है।

२९९. भन्ते! क्या पहले लोकान्त और फिर अतीत-काल बना? क्या पहले अतीत-काल और फिर लोकान्त बना?

रोह! लोकान्त और अतीत-काल पहले भी थे और आगे भी होंगे। ये दोनों शाश्वत भाव हैं।
रोह! यह अनानुपूर्वी है—लोकान्त और अतीत-काल में पूर्व-पश्चात् का क्रम नहीं है।

३००. भन्ते! क्या पहले लोकान्त और फिर अनागत-काल बना? क्या पहले अनागत-काल और फिर लोकान्त बना?

रोह! लोकान्त और अनागत-काल पहले भी थे और आगे भी होंगे। ये दोनों शाश्वत भाव हैं।
रोह! यह अनानुपूर्वी है—लोकान्त और अनागत-काल में पूर्व-पश्चात् का क्रम नहीं है।

३०१. भन्ते! क्या पहले लोकान्त और फिर सर्व-काल बना? क्या पहले सर्व-काल और फिर लोकान्त बना?

रोह! लोकान्त और सर्व-काल पहले भी थे और आगे भी होंगे। ये दोनों शाश्वत भाव हैं।
रोह! यह अनानुपूर्वी है—लोकान्त और सर्व-काल में पूर्व-पश्चात् का क्रम नहीं है।

३०२. जिस प्रकार लोकान्त के साथ इन सब पदों की संयोजना की गई, उसी प्रकार अलोकान्त के साथ भी इन सबकी संयोजना करणीय है।

३०३. भन्ते! क्या पहले सातवां अवकाशान्तर और फिर सातवां तनुवात बना? क्या पहले सातवां तनुवात और फिर सातवां अवकाशान्तर बना?

रोह! सातवां अवकाशान्तर और सातवां तनुवात पहले भी थे और आगे भी होंगे। ये दोनों शाश्वत भाव हैं। रोह! यह अनानुपूर्वी है—सातवें अवकाशान्तर और सातवें तनुवात में पूर्व-पश्चात् का क्रम नहीं है।

३०४. इस प्रकार सातवें अवकाशान्तर की तनुवात से लेकर सर्व-काल तक के सब पदों के साथ संयोजना करणीय है।

३०५. भन्ते! क्या पहले सातवां तनुवात और फिर सातवां घनवात बना? क्या पहले सातवां घनवात और फिर सातवां तनुवात बना?

रोह! सातवां तनुवात और सातवां घनवात पहले भी थे और आगे भी होंगे। ये दोनों शाश्वत भाव हैं। रोह! यह अनानुपूर्वी है—सातवें तनुवात और सातवें घनवात में पूर्व-पश्चात् का क्रम नहीं है।

३०६. इस प्रकार तनुवात के साथ सर्वकाल तक के सब पदों की संयोजना ज्ञातव्य है।

३०७. इस प्रकार अगले प्रत्येक पद की संयोजना करते जाएं और जो-जो पहला पद है उसे छोड़ते चले जाएं यावत् अतीत- और अनागत-काल पश्चात् सर्व-काल यावत् रोह! अनागत-काल और सर्व-काल पहले भी थे और आगे भी होंगे। ये दोनों शाश्वत भाव हैं। रोह! यह अनानुपूर्वी है।

३०८. भन्ते! वह ऐसा ही है, भन्ते! वह ऐसा ही है—इस प्रकार मुनि रोह यावत् संयम और तप से अपने आप को भावित करता हुआ विहरण कर रहा है।

लोकस्थिति-पद

३०९. भगवान् गौतम श्रमण भगवान् महावीर को 'भन्ते' इस संबोधन से संबोधित कर इस प्रकार बोले—

३१०. भन्ते! लोक-स्थिति कितने प्रकार की प्रज्ञप्त है?

गौतम! लोक-स्थिति आठ प्रकार की प्रज्ञप्त है, जैसे—१. वायु आकाश पर प्रतिष्ठित है। २. समुद्र वायु पर प्रतिष्ठित है। ३. पृथ्वी समुद्र पर प्रतिष्ठित है। ४. त्रस ओर स्थावर प्राणी पृथ्वी पर प्रतिष्ठित हैं। ५. अजीव जीव पर प्रतिष्ठित हैं। ६. जीव कर्म से प्रतिष्ठित हैं। ७. अजीव जीव के द्वारा संगृहीत हैं। ८. जीव कर्म के द्वारा संगृहीत हैं।

३११. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—लोक-स्थिति आठ प्रकार की प्रज्ञप्त है यावत् जीव कर्म के द्वारा संगृहीत हैं?

गौतम! जैसे कोई पुरुष किसी मशक में हवा भरता है, उसमें हवा भरकर ऊपर (मुंह के स्थान पर) गांठ देता है। फिर मशक के मध्य भाग में गांठ लगाता है, वहां गांठ लगाकर ऊपर की गांठ को खोलता है। उसे खोलकर ऊपर के भाग की हवा को बाहर निकाल देता है। उसे निकाल कर ऊपर के भाग को जल से भरता है। उसे जल से भरकर ऊपर गांठ देता है, वहां गांठ देकर फिर

मध्य भाग की गांठ खोलता है। गौतम! क्या वह पानी उस वायु के ऊपर-ऊपर ठहरता है?
हां, ठहरता है।

गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—लोक-स्थिति आठ प्रकार की प्रज्ञप्त है यावत् जीव कर्म के द्वारा संगृहीत हैं।

जैसे कोई पुरुष मशक में हवा भरता है, उसमें हवा भरकर उसे अपने कटि-प्रदेश में बांधता है, वहां बांधकर अथाह, अतर तथा अपौरुषेय जल में अवगाहन करता है। गौतम! क्या वह पुरुष जल के ऊपर-ऊपर ठहरता है?

हां, ठहरता है।

इसी प्रकार लोक-स्थिति आठ प्रकार की प्रज्ञप्त है यावत् जीव कर्म के द्वारा संगृहीत हैं।

जीव-पुद्गल-पद

३१२. भन्ते! क्या जीव और पुद्गल अन्योन्य-बद्ध, अन्योन्य-स्पृष्ट, अन्योन्य-अवगाढ, अन्योन्य-स्नेहप्रतिबद्ध और अन्योन्य-एकीभूत बने हुए हैं?

हां, बने हुए हैं।

३१३. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—जीव और पुद्गल अन्योन्य-बद्ध, अन्योन्य-स्पृष्ट, अन्योन्य-अवगाढ, अन्योन्य-स्नेहप्रतिबद्ध और अन्योन्य-एकीभूत बने हुए हैं?

गौतम! जैसे कोई द्रव (नद) है। वह जल से पूर्ण, परिपूर्ण प्रमाण वाला, छलकता हुआ, हिलोरें लेता हुआ चारों ओर से जलजलाकार हो रहा है।

कोई व्यक्ति उस द्रव में एक बहुत बड़ी सैकड़ों आश्रवों और सैकड़ों छिद्रों वाली नौका को उतारे। गौतम! वह नौका उन आश्रव-द्वारों के द्वारा जल से भरती हुई - भरती हुई, पूर्ण, परिपूर्ण प्रमाण वाली, छलकती हुई, हिलोरें लेती हुई, चारों ओर से जलजलाकार हो जाती है?

हां, हो जाती है।

गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—जीव और पुद्गल अन्योन्य-बद्ध, अन्योन्य-स्पृष्ट, अन्योन्य-अवगाढ, अन्योन्य-स्नेहप्रतिबद्ध और अन्योन्य-एकीभूत बने हुए हैं।

स्नेहकाय-पद

३१४. भन्ते! क्या सूक्ष्म स्नेहकाय सदा संगठित रूप में गिरता है?

हां, गिरता है।

३१५. भन्ते! क्या वह ऊंचे लोक में गिरता है? नीचे लोक में गिरता है? तिरछे लोक में गिरता है?

गौतम! ऊर्ध्वलोक में भी गिरता है, नीचे लोक में भी गिरता है, तिरछे लोक में भी गिरता है।

३१६. जैसे वह बादर (स्थूल) जल परस्पर संयुक्त होकर बहुत लम्बे समय तक रहता है, क्या

वैसे ही सूक्ष्म जल भी बहुत लम्बे समय तक रहता है?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है। वह शीघ्र ही विध्वंस को प्राप्त हो जाता है।

३१७. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है।

सातवां उद्देशक

देश-सर्व-पद

३१८. भन्ते! नैरयिकों में उपपद्यमान (उपपन्न होता हुआ) नैरयिक क्या—१. देश के द्वारा देश में उपपन्न होता है? २. देश के द्वारा सर्व में उपपन्न होता है? ३. सर्व के द्वारा देश में उपपन्न होता है? ४. सर्व के द्वारा सर्व में उपपन्न होता है?

गौतम! वह १. देश के द्वारा देश में उपपन्न नहीं होता है। २. देश के द्वारा सर्व में उपपन्न नहीं होता है। ३. सर्व के द्वारा देश में उपपन्न नहीं होता। ४. सर्व के द्वारा सर्व में उपपन्न होता है।

३१९. नैरयिक की भांति ही वैमानिक तक का उपपाद ज्ञातव्य है।

३२०. भन्ते! नैरयिकों में उपपद्यमान नैरयिक क्या—१. देश के द्वारा देश का आहरण करता है? २. देश के द्वारा सर्व का आहरण करता है? ३. सर्व के द्वारा देश का आहरण करता है? ४. सर्व के द्वारा सर्व का आहरण करता है?

गौतम! वह १. देश के द्वारा देश का आहरण नहीं करता। २. देश के द्वारा सर्व का आहरण नहीं करता। ३. सर्व के द्वारा देश का आहरण करता है। ४. अथवा सर्व के द्वारा सर्व का आहरण करता है।

३२१. इसी प्रकार वैमानिक तक ज्ञातव्य है।

३२२. भन्ते! नैरयिकों से उद्वर्तन करता हुआ नैरयिक क्या—१. देश के द्वारा देश से उद्वर्तन करता है? २. देश के द्वारा सर्व से उद्वर्तन करता है? ३. सर्व के द्वारा देश से उद्वर्तन करता है? ४. सर्व के द्वारा सर्व से उद्वर्तन करता है?

गौतम! वह १. देश के द्वारा देश से उद्वर्तन नहीं करता। २. देश के द्वारा सर्व से उद्वर्तन नहीं करता। ३. सर्व के द्वारा देश से उद्वर्तन नहीं करता है। ४. सर्व के द्वारा सर्व से उद्वर्तन करता है।

३२३. इसी प्रकार वैमानिक तक ज्ञातव्य है।

३२४. भन्ते! नैरयिकों से उद्वर्तन करता हुआ नैरयिक क्या—१. देश के द्वारा देश का आहरण करता है? २. देश के द्वारा सर्व का आहरण करता है? ३. सर्व के द्वारा देश का आहरण करता है? ४. सर्व के द्वारा सर्व का आहरण करता है?

गौतम! वह १. देश के द्वारा देश का आहरण नहीं करता। २. देश के द्वारा सर्व का आहरण नहीं करता। ३. सर्व के द्वारा देश का आहरण करता है। ४. अथवा सर्व के द्वारा सर्व का आहरण करता है।

३२५. इसी प्रकार वैमानिक तक ज्ञातव्य है।

३२६. भन्ते! नैरयिकों में उपपन्न नैरयिक क्या—१. देश के द्वारा देश में उपपन्न है? २. देश के द्वारा सर्व में उपपन्न है? ३. सर्व के द्वारा देश में उपपन्न है? ४. सर्व के द्वारा सर्व में उपपन्न है?

गौतम! १. वह देश के द्वारा देश में उपपन्न नहीं है। २. देश के द्वारा सर्व में उपपन्न नहीं है। ३. सर्व के द्वारा देश में उपपन्न नहीं है। ४. सर्व के द्वारा सर्व में उपपन्न है।

३२७. इसी प्रकार वैमानिक तक ज्ञातव्य है।

३२८. भन्ते! नैरयिकों में उपपन्न नैरयिक क्या—

१. देश के द्वारा देश का आहरण करता है? २. देश के द्वारा सर्व का आहरण करता है? ३. सर्व के द्वारा देश का आहरण करता है? ४. सर्व के द्वारा सर्व का आहरण करता है।

गौतम! वह १. देश के द्वारा देश का आहरण नहीं करता। २. देश के द्वारा सर्व का आहरण नहीं करता। ३. सर्व के द्वारा देश का आहरण करता है। ४. अथवा सर्व के द्वारा सर्व का आहरण करता है।

३२९. इसी प्रकार वैमानिक तक ज्ञातव्य है।

३३०. भन्ते! नैरयिकों से उद्वृत्त (निकला) हुआ नैरयिक क्या—१. देश के द्वारा देश से उद्वृत्त है? २. देश के द्वारा सर्व से उद्वृत्त है? ३. सर्व के द्वारा देश से उद्वृत्त है? ४. सर्व के द्वारा सर्व से उद्वृत्त है?

गौतम! वह १. देश के द्वारा देश से उद्वृत्त नहीं है। २. देश के द्वारा सर्व से उद्वृत्त नहीं है। ३. सर्व के द्वारा देश से उद्वृत्त नहीं है। ४. सर्व के द्वारा सर्व से उद्वृत्त है।

३३१. इसी प्रकार वैमानिक तक ज्ञातव्य है।

३३२. भन्ते! नैरयिकों से उद्वृत्त नैरयिक क्या—१. देश के द्वारा देश का आहरण करता है? २. देश के द्वारा सर्व का आहरण करता है? ३. सर्व के द्वारा देश का आहरण करता है। ४. सर्व के द्वारा सर्व का आहरण करता है?

गौतम! वह १. देश के द्वारा देश का आहरण नहीं करता २. देश के द्वारा सर्व का आहरण नहीं करता। ३. सर्व के द्वारा देश का आहरण करता है। ४. अथवा सर्व के द्वारा सर्व का आहरण करता है।

३३३. इसी प्रकार वैमानिक तक ज्ञातव्य है।

३३४. भन्ते! नैरयिकों में उपपद्यमान नैरयिक क्या—१. अर्ध के द्वारा अर्ध में उपपन्न होता है? २. अर्ध के द्वारा सर्व में उपपन्न होता है? ३. सर्व के द्वारा अर्ध में उपपन्न होता है? ४. सर्व के द्वारा सर्व में उपपन्न होता है?

जैसे पूर्ववर्ती आलापक के आठ दण्डक बतलाए गए हैं, वैसे ही अर्ध के भी आठ दण्डक वक्तव्य हैं। विशेष इतना है—जहां देश के द्वारा देश में उपपन्न होता है, वहां अर्ध के द्वारा अर्ध में उपपन्न होता है—यह वक्तव्य है, यह नानात्व है। ये सभी सोलह दण्डक वक्तव्य हैं।

विग्रहगति-पद

३३५. भन्ते! क्या जीव विग्रह-गति(अन्तराल-गति)-समापन्न होता है? अथवा अविग्रह-गति(उत्पत्ति-स्थान को प्राप्त)-समापन्न होता है?

गौतम! वह स्यात् विग्रह-गति-समापन्न होता है और स्यात् अविग्रह-गति-समापन्न होता है।

३३६. इसी प्रकार वैमानिक तक ज्ञातव्य है।

३३७. भन्ते! क्या जीव विग्रह-गति-समापन्न होते हैं? अथवा अविग्रह-गति-समापन्न होते हैं?

गौतम! जीव विग्रह-गति-समापन्न भी होते हैं, अविग्रह-गति-समापन्न भी होते हैं।

३३८. भन्ते! क्या नैरयिक विग्रह-गति-समापन्न होते हैं? अथवा अविग्रह-गति-समापन्न होते हैं?

गौतम! सभी नैरयिक अविग्रह-गति-समापन्न होते हैं। अथवा वे अविग्रह-गति-समापन्न होते हैं, कोई एक विग्रह-गति-समापन्न होता है। अथवा कुछ अविग्रह-गति-समापन्न होते हैं, कुछ विग्रह-गति-समापन्न होते हैं। इस प्रकार जीव (निर्विशेषण जीव) और एकेन्द्रिय को छोड़कर सबके तीन भंग होते हैं।

आयु-पद

३३९. भन्ते! महान् ऋद्धि और महान् द्युति से सम्पन्न, महाबली, महान् यशस्वी, महान् ऐश्वर्यशाली के रूप में प्रख्यात, महान् सामर्थ्यवाला देव अच्युत किन्तु च्यवमान अवस्था में कुछ समय आहार नहीं लेता। उसके तीन हेतु हैं—लज्जा, जुगप्सा और परीषह। कुछ समय पश्चात् वह आहार लेता है, तब आह्वियमाण आहृत और परिणम्यमान परिणत होता है। (अंत में) उस देव का आयुष्य क्षीण हो जाता है। उसे जहां उत्पन्न होना है, उस आयुष्य का प्रतिसंवेदन प्रारम्भ हो जाता है, जैसे—तिर्यग्योनिक का आयुष्य अथवा मनुष्य का आयुष्य?

हां, गौतम! महान् ऋद्धि और महान् द्युति से सम्पन्न, महाबली, महान् ऐश्वर्यशाली, महान् सामर्थ्यवाला देव अच्युत किन्तु च्यवमान अवस्था में कुछ समय आहार नहीं लेता। उसे तीन हेतु हैं—लज्जा, जुगप्सा और परीषह। कुछ समय पश्चात् वह आहार लेता है, तब आह्वियमाण आहृत और परिणम्यमान परिणत होता है। (अन्त में) उस देव का आयुष्य क्षीण हो जाता है। उसे जहां उत्पन्न होना है, उस आयुष्य का प्रतिसंवेदन प्रारम्भ हो जाता है, जैसे—तिर्यग्योनिक का आयुष्य अथवा मनुष्य का आयुष्य।

गर्भ-पद

३४०. भन्ते! गर्भ में उत्पन्न होता हुआ जीव क्या स-इन्द्रिय उत्पन्न होता है? अथवा अनिन्द्रिय उत्पन्न होता है?

गौतम! वह स्यात् स-इन्द्रिय उत्पन्न होता है। स्यात् अनिन्द्रिय उत्पन्न होता है।

३४१. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—वह स्यात् स-इन्द्रिय उत्पन्न होता है? स्यात् अनिन्द्रिय उत्पन्न होता है?

गौतम! द्रव्येन्द्रिय की अपेक्षा से वह अनिन्द्रिय उत्पन्न होता है। भावेन्द्रिय की अपेक्षा से स-

इन्द्रिय उत्पन्न होता है, गौतम इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—जीव स्यात् स-इन्द्रिय उत्पन्न होता है, स्यात् अनिन्द्रिय उत्पन्न होता है।

३४२. भन्ते! गर्भ में उत्पन्न होता हुआ जीव क्या सशरीर उत्पन्न होता है? अथवा अशरीर उत्पन्न होता है?

गौतम! वह स्यात् सशरीर उत्पन्न होता है। स्यात् अशरीर उत्पन्न होता है।

३४३. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—वह स्यात् सशरीर उत्पन्न होता है? स्यात् अशरीर उत्पन्न होता है?

गौतम! औदारिक-, वैक्रिय- और आहारक-शरीर की अपेक्षा वह अशरीर उत्पन्न होता है। तैजस- और कार्मण-शरीर की अपेक्षा से वह सशरीर उत्पन्न होता है। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—जीव स्यात् सशरीर उत्पन्न होता है, स्यात् अशरीर उत्पन्न होता है।

३४४. भन्ते! जीव गर्भ में उत्पन्न होता हुआ सबसे पहले क्या आहार लेता है?

गौतम! जीव सबसे पहले माता का ओज और पिता का शुक्र—इन दोनों से मिश्रित आहार लेता है।

३४५. भन्ते! गर्भ-गत जीव क्या आहार लेता है?

गौतम! गर्भ-गत जीव की माता जो नाना प्रकार की रस-विकृतियों का आहार लेती है, उसके एक देश के साथ ओज का आहार लेता है।

३४६. भन्ते! क्या गर्भ-गत जीव के मल, मूत्र, श्लेष्म, सिङ्घाण (नाक का मल) वमन और पित्त होता है?

यह अर्थ संगत नहीं है।

३४७. यह किस अपेक्षा से ?

गौतम! गर्भ-गत जीव जो आहार लेता है, उसका वह श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शनेन्द्रिय, अस्थि, अस्थि-मज्जा, केश, श्मश्रु, रोम और नख के रूप में चयन करता है। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—गर्भ-गत जीव के मल, मूत्र, श्लेष्म, सिङ्घाण, वमन और पित्त नहीं होता।

३४८. भन्ते! क्या गर्भ-गत जीव मुख से कवल-आहार करने में सक्षम है?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है।

३४९. यह किस अपेक्षा से?

गौतम! गर्भ-गत जीव समग्र शरीर से आहार लेता है, समग्र शरीर से परिणत करता है, समग्र शरीर से उच्छ्वास लेता है और समग्र शरीर से निःश्वास करता है; वह बार-बार आहार लेता है, बार-बार परिणत करता है, बार-बार उच्छ्वास लेता है और बार-बार निःश्वास करता है; कदाचित् आहार लेता है, कदाचित् परिणत करता है, कदाचित् उच्छ्वास लेता है और कदाचित् निःश्वास करता है।

मातृ-जीव-रसहरणी और पुत्र-जीव-रसहरणी—ये दो नाड़ियां होती हैं। वे मातृ-जीव से प्रतिबद्ध और पुत्र-जीव से स्पृष्ट होती हैं। (गर्भ की नाभि में नाड़ी लगी रहती है, नाड़ी में 'अपरा' (जरायु) लगी रहती है।) उससे गर्भ-गत जीव आहार करता है और उसे परिणत करता है।

'अपरा' पुत्रजीव से प्रतिबद्ध और मातृजीव से स्पृष्ट होती है, उससे गर्भ-गत जीव चय और उपचय करता है। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—गर्भगत जीव मुख से कवल-आहार करने में सक्षम नहीं है।

मात्रिक-पैत्रिक-अंग-पद

३५०. भन्ते! संतान में कितने मातृ-अंग प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! तीन मातृ-अंग प्रज्ञप्त हैं, जैसे—मांस, शोणित और मस्तुलुंग (मस्तिष्कीय मज्जा)।

३५१. भन्ते! संतान में कितने पितृ-अंग प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! तीन पितृ-अंग प्रज्ञप्त हैं, जैसे—अस्थि, अस्थि-मज्जा, केश, श्मश्रु, रोम और नख।

३५२. भन्ते! मातृ-पैत्रिक शरीर (मातृ-अंग और पितृ-अंग) सन्तान के शरीर में कितने काल तक अवस्थित रहता है?

गौतम! जितने काल तक उसका भवधारणीय-शरीर अव्यापन्न (अविनष्ट) बना रहता है, उतने काल तक मातृ-पैत्रिक शरीर सन्तान के शरीर में अवस्थित रहता है। उपचय के अन्तिम समय के अनन्तर मातृ-पैत्रिक शरीर प्रतिक्षण हीयमान होता हुआ अन्तिम क्षण में व्यवच्छिन्न हो जाता है।

गर्भ का नरकागमन-पद

३५३. भन्ते! क्या गर्भ-गत जीव नैरयिकों में उपपन्न होता है?

गौतम! कोई उपपन्न होता है, कोई उपपन्न नहीं होता।

३५४. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—कोई उपपन्न होता है, कोई उपपन्न नहीं होता?

गौतम! सब पर्याप्तियों से पर्याप्त, वीर्य-लब्धि और वैक्रिय-लब्धि से सम्पन्न, संज्ञी-पंचेन्द्रिय गर्भ-गत शिशु शत्रु-सेना का आगमन सुनकर, अवधारणा कर अपने आत्म-प्रदेशों का गर्भ से बाहर प्रक्षेपण करता है, उनका प्रक्षेपण कर वैक्रिय समुद्घात से समवहत होता है, समवहत होकर चतुरङ्गिणी सेना का निर्माण करता है। निर्माण कर उस चतुरङ्गिणी सेना के द्वारा शत्रु-सेना के साथ युद्ध करता है।

वह जीव (गर्भ-गत-शिशु) अर्थ-कामी, राज्य-कामी, भोग-कामी और काम-कामी, अर्थ-कांक्षी, राज्य-कांक्षी, भोग-कांक्षी और काम-कांक्षी तथा अर्थ-पिपासु, राज्य-पिपासु, भोग-पिपासु और कामपिपासु होकर उस अर्थ आदि में ही अपने चित्त, मन, लेश्या, अध्यवसाय और तीव्र अध्यवसान का नियोजन करता है। वह उसी विषय में उपयुक्त हो जाता है। उसके लिए अपने सारे करणों (इन्द्रियों) का समर्पण कर देता है। वह उसकी भावना से भावित हो

जाता है। उस अंतर (युद्धकाल) में यदि वह मरण-काल को प्राप्त होता है, तो नैरयिकों में उपपन्न होता है। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—कोई उपपन्न होता है, कोई उपपन्न नहीं होता।

गर्भ का देवलोकगमन-पद

३५५. भन्ते! क्या गर्भ-गत जीव देवलोकों में उपपन्न होता है?

गौतम! कोई उपपन्न होता है, कोई उपपन्न नहीं होता।

३५६. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—कोई उपपन्न होता है, कोई उपपन्न नहीं होता?

गौतम! सब पर्याप्तियों से पर्याप्त, संज्ञी-पंचेन्द्रिय गर्भ-गत शिशु तथारूप श्रमण-माहन के पास एक भी आर्य धार्मिक सुवचन सुनता है, अवधारण करता है। उससे उसके मन में संवेग-जनित श्रद्धा उत्पन्न होती है। वह तीव्र धर्म-अनुराग से अनुरक्त हो जाता है।

वह जीव (गर्भ-गत शिशु) धर्म-कामी, पुण्य-कामी, स्वर्ग-कामी और मोक्ष-कामी, धर्म-कांक्षी, पुण्य-कांक्षी, स्वर्ग-कांक्षी और मोक्ष-कांक्षी तथा धर्म-पिपासु, पुण्य-पिपासु, स्वर्ग-पिपासु और मोक्ष-पिपासु होकर उस धर्म, पुण्य आदि में ही अपने चित्त, मन, लेश्या, अध्यवसाय तीव्र अध्यवसान का नियोजन करता है। वह उसी विषय में उपयुक्त हो जाता है। उसके लिए अपने सारे करणों (इन्द्रियों) का समर्पण कर देता है। वह उसकी भावना से भावित हो जाता है। उस अंतर (धर्माश्रयन-काल) में यदि वह मरण-काल को प्राप्त होता है, तो देवलोकों में उपपन्न होता है। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—कोई उपपन्न होता है, कोई उपपन्न नहीं होता।

३५७. भन्ते! क्या गर्भ-गत जीव उत्तान-शयन, पार्श्व-शयन अथवा आम्र-कुब्जक (आम्र की भांति कुब्ज) आसन की मुद्रा में रहता है? खड़ा होता है? बैठता है? सोता है? माता के सोने पर सोता है? उसके जागने पर वह जागता है? उसके सुखी होने पर वह सुखी होता है? उसके दुःखी होने पर वह दुःखी होता है?

हां, गौतम! गर्भ-गत जीव उत्तान-शयन, पार्श्व-शयन अथवा आम्र-कुब्जक आसन की मुद्रा में रहता है, खड़ा होता है, बैठता है, सोता है, माता के सोने पर सोता है, उसके जागने पर वह जागता है, उसके सुखी होने पर वह सुखी होता है, उसके दुःखी होने पर दुःखी होता है।

वह जीव प्रसव-काल के समय (यदि) सिर या पैरों के द्वारा बाहर आता है, सीधा आता है; (यदि) वह टेढ़ा होकर आता है, तो मृत्यु को प्राप्त होता है। उस नवजात शिशु के (यदि) वर्ण-बाह्य (अप्रशस्त कोटिवाले) कर्म बद्ध, स्पृष्ट, निधत्त, कृत, प्रस्थापित, अभिनिविष्ट (तीव्र अनुभाव के रूप में स्थापित), अभिसमन्वागत (उदय के अभिमुख) और उदीर्ण हैं—वे उपशान्त नहीं होते, तो वह कुत्सित रूप, वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाला होता है। वह हीन, दीन, अनिष्ट, अकांत, अप्रिय, अशुभ, अमनोज्ञ, और अमनोहर स्वरवाला तथा अनादेय वचन वाला होता है। उस नवजात शिशु के (यदि) वर्ण-बाह्य (अप्रशस्त कोटिवाले) कर्म बद्ध, स्पृष्ट, निधत्त, कृत, प्रस्थापित, अभिनिविष्ट, अभिसमन्वागत और उदीर्ण नहीं

होते-उपशांत होते हैं, तो वह श्रेष्ठ रूप, वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाला होता है, इष्ट, कान्त, प्रिय, शुभ, मनोज्ञ और मनोहर होता है; अहीन, अदीन, इष्ट, कान्त, प्रिय, शुभ, मनोज्ञ और मनोहर स्वरवाला तथा आदेय वचन वाला होता है।

३५८. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है।

आठवां उद्देशक

बाल का आयुष्य-पद

३५९. भन्ते! एकान्त बाल मनुष्य क्या नरक का आयुष्य बांधता है? तिर्यञ्च का आयुष्य बांधता है? मनुष्य का आयुष्य बांधता है? देव का आयुष्य बांधता है? नरक का आयुष्य बांधकर नैरयिकों में उपपन्न होता है? तिर्यञ्च का आयुष्य बांधकर तिर्यञ्चों में उपपन्न होता है? मनुष्य का आयुष्य बांधकर मनुष्यों में उपपन्न होता है? देव का आयुष्य बांधकर देवलोकों में उपपन्न होता है?

गौतम! एकान्त बाल मनुष्य नरक का आयुष्य भी बांधता है, तिर्यच का आयुष्य भी बांधता है, मनुष्य का आयुष्य भी बांधता है, देव का आयुष्य भी बांधता है। वह नरक का आयुष्य बांधकर नैरयिकों में उपपन्न होता है, तिर्यञ्च का आयुष्य बांधकर तिर्यञ्चों में उपपन्न होता है, मनुष्य का आयुष्य बांधकर मनुष्यों में उपपन्न होता है और देव का आयुष्य बांधकर देवलोकों में उपपन्न होता है।

पण्डित का आयुष्य-पद

३६०. भन्ते! एकान्त पण्डित मनुष्य क्या नरक का आयुष्य बांधता है? तिर्यञ्च का आयुष्य बांधता है? मनुष्य का आयुष्य बांधता है? देव का आयुष्य बांधता है? वह नरक का आयुष्य बांधकर नैरयिकों में उपपन्न होता है? तिर्यञ्च का आयुष्य बांधकर तिर्यञ्चों में उपपन्न होता है? मनुष्य का आयुष्य बांधकर मनुष्यों में उपपन्न होता है? देव का आयुष्य बांधकर देवलोकों में उपपन्न होता है?

गौतम! एकान्त पण्डित मनुष्य कदाचित् आयुष्य बांधता है, कदाचित् नहीं बांधता। यदि वह आयुष्य बांधता है, तो न नरक का आयुष्य बांधता है, न तिर्यञ्च का आयुष्य बांधता है, न मनुष्य का आयुष्य बांधता है, वह केवल देव का आयुष्य बांधता है। वह न नरक का आयुष्य बांधकर नैरयिकों में उपपन्न होता है, न तिर्यञ्च का आयुष्य बांधकर तिर्यञ्चों में उपपन्न होता है, न मनुष्य का आयुष्य बांधकर मनुष्यों में उपपन्न होता है, वह केवल देव का आयुष्य बांधकर देवों में उपपन्न होता है।

३६१. यह किसी अपेक्षा से कहा जा रहा है—एकान्त पण्डित मनुष्य यावत् देव का आयुष्य बांधकर देवों में उपपन्न होता है?

गौतम! एकांत पण्डित मनुष्य की केवल दो ही गतियां प्रज्ञप्त हैं, जैसे—अंतक्रिया और कल्पोपपत्तिका (वैमानिक देवों में उपपत्ति)। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—यावत् देव का आयुष्य बांधकर देवों में उपपन्न होता है।

बालपण्डित का आयुष्य-पद

३६२. भन्ते! बालपण्डित मनुष्य क्या नरक का आयुष्य बांधता है? तिर्यज्ज्व का आयुष्य बांधता है? मनुष्य का आयुष्य बांधता है? देव का आयुष्य बांधता है? वह नरक का आयुष्य बांधकर नैरयिकों में उपपन्न होता है? तिर्यज्ज्व का आयुष्य बांधकर तिर्यज्ज्वों में उपपन्न होता है? मनुष्य का आयुष्य बांधकर मनुष्यों में उपपन्न होता है? देव का आयुष्य बांधकर देवों में उपपन्न होता है?

गौतम! बालपण्डित मनुष्य न नरक का आयुष्य बांधता है, न तिर्यज्ज्व का आयुष्य बांधता है, न मनुष्य का आयुष्य बांधता है, वह केवल देव का आयुष्य बांधता है। वह न नरक का आयुष्य बांधकर नैरयिकों में उपपन्न होता है, न तिर्यज्ज्व का आयुष्य बांधकर तिर्यज्ज्वों में उपपन्न होता है, न मनुष्य का आयुष्य बांधकर मनुष्यों में उपपन्न होता है, वह केवल देव का आयुष्य बांधकर देवों में उपपन्न होता है।

३६३. यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है— बाल-पण्डित मनुष्य यावत् देव का आयुष्य बांधकर देवों में उपपन्न होता है?

गौतम! बाल-पण्डित मनुष्य तथारूप श्रमण अथवा माहन के पास एक भी आर्य धार्मिक सुवचन सुन कर, अवधारण कर आंशिक रूप से उपरत होता है और आंशिक रूप से उपरत नहीं होता। आंशिक रूप से प्रत्याख्यान करता है और आंशिक रूप से प्रत्याख्यान नहीं करता।

वह उस आंशिक उपरम और आंशिक प्रत्याख्यान से नरक का आयुष्य नहीं बांधता यावत् देव का आयुष्य बांधकर देवों में उपपन्न होता है। इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—बाल-पण्डित मनुष्य यावत् देव का आयुष्य बांधकर देवों में उपपन्न होता है।

क्रिया-पद

३६४. भन्ते! कोई मृगाजीवी, मृग-वध के संकल्प वाला, मृग-वध में एकाग्र-चित्त पुरुष मृग-वध के लिए कच्छ (नदी-तटीय प्रदेश), द्रह, उदग (जलाशय), 'दविय' (घास के जंगल अथवा गोचर भूमि), वलय (वृत्ताकार नदी-प्रदेश), 'नूम' (प्रच्छन्न प्रदेश), अरण्य, दुर्गम अरण्य, पर्वत, दुर्गम पर्वत, वन, दुर्गम वन में जाकर 'ये मृग हैं'—यह सोच किसी एक मृग के वधके लिए कूटपाश बांधता है। भन्ते! उससे वह पुरुष कितनी क्रियाओं से युक्त होता है?

गौतम! वह स्यात् (कदाचित्) तीन, स्यात् चार और स्यात् पांच क्रियाओं से युक्त होता है।

३६५. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—यह वह पुरुष स्यात् तीन, स्यात् चार और स्यात् पांच क्रियाओं से युक्त होता है?

गौतम! जो भव्य (व्यक्ति) कूटपाश की रचना करता है, पर न मृगको बांधता है और न उसे मारता है, उस समय वह पुरुष कायिकी, आधिकरणिकी और प्रादोषिकी—इन तीन क्रियाओं से स्पृष्ट होता है।

जो भव्य कूटपाश की व्यवस्था कर जो (बंधन आदि करेगा) कूटपाश को बांधता है और मृग को भी बांधता है, पर उसे मारता नहीं, उस समय वह पुरुष कायिकी, आधिकरणिकी,

प्रादोषिकी और पारितापनिकी—इन चार क्रियाओं से स्पृष्ट होता है।

जो भव्य कूटपाश को बांधता भी है, मृग को बांधता है और उसे मारता भी है, उस समय वह पुरुष कायिकी, आधिकरणिकी, प्रादोषिकी, पारितापनिकी और प्राणातिपात-क्रिया—इन पांच क्रियाओं से स्पृष्ट होता है। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—वह स्यात् तीन, स्यात् चार और स्यात् पांच क्रियाओं से युक्त होता है।

३६६. भन्ते! कोई व्यक्ति कच्छ यावत् दुर्गम वन में घास का ढेर लगा उसमें अग्नि का प्रक्षेप करता है। उस समय वह पुरुष कितनी क्रियाओं से युक्त होता है?

गौतम! स्यात् तीन, स्यात् चार और स्यात् पांच क्रियाओं से युक्त होता है।

३६७. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—वह पुरुष स्यात् तीन, स्यात् चार और स्यात् पांच क्रियाओं से युक्त होता है?

गौतम! जो भव्य घास का ढेर लगाता है, पर न तो उसमें अग्नि का प्रक्षेप करता है और न उसे जलाता है, उस समय वह पुरुष कायिकी, आधिकरणिकी और प्रादोषिकी—इन तीन क्रियाओं से स्पृष्ट होता है।

जो भव्य घास का ढेर भी लगाता है, उसमें अग्नि का प्रक्षेप भी करता है, पर उसे जलाता नहीं है, उस समय वह पुरुष कायिकी, आधिकरणिकी, प्रादोषिकी और पारितापनिकी—इन चार क्रियाओं से स्पृष्ट होता है।

जो भव्य घास का ढेर भी लगाता है, उसमें अग्नि का प्रक्षेप भी करता है और उसे जलाता भी है, उस समय वह पुरुष कायिकी, आधिकरणिकी, प्रादोषिकी, पारितापनिकी और प्राणातिपात-क्रिया—इन पांच क्रियाओं से स्पृष्ट होता है।

गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—वह स्यात् तीन, स्यात् चार और स्यात् पांच क्रियाओं से युक्त होता है।

३६८. भन्ते! कोई मृगाजीवी, मृग-वध के संकल्प वाला, मृग-वध में एकाग्र-चित्त पुरुष मृग-वध के लिए कच्छ यावत् दुर्गम वन में जाकर 'ये मृग हैं'—यह सोच किसी एक मृग के वध के लिए बाण फेंकता है। भन्ते! उससे वह पुरुष कितनी क्रियाओं से युक्त होता है?

गौतम! वह स्यात् तीन, स्यात् चार और स्यात् पांच क्रियाओं से युक्त होता है।

३६९. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—वह पुरुष स्यात् तीन, स्यात् चार और स्यात् पांच क्रियाओं से युक्त होता है?

गौतम! जो भव्य बाण फेंकता है, पर न तो मृग को आहत करता है और न उसका प्राण-हरण करता है, उस समय वह पुरुष कायिकी, आधिकरणिकी और प्रादोषिकी—इन तीन क्रियाओं से स्पृष्ट होता है।

जो भव्य बाण भी फेंकता है, मृग को आहत भी करता है, पर उसका प्राण-हरण नहीं करता, उस समय वह पुरुष कायिकी, आधिकरणिकी, प्रादोषिकी और पारितापनिकी—इन चार क्रियाओं से स्पृष्ट होता है।

जो भव्य बाण भी फेंकता है, मृग को आहत भी करता है और उसका प्राण-हरण भी करता है, उस समय वह पुरुष कायिकी, आधिकरणिकी, प्रादोषिकी, पारितापनिकी और प्राणातिपात-क्रिया—इन पांच क्रियाओं से स्पृष्ट होता है। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—वह स्यात् तीन, स्यात् चार और स्यात् पांच क्रियाओं से युक्त होता है।

३७०. भन्ते! कोई मृगाजीवी, मृग-वध के संकल्प वाला, मृग-वध में एकाग्र-चित्त पुरुष मृग-वध के लिए कच्छ यावत् दुर्गम वन में जाकर 'ये मृग हैं'—यह सोच किसी एक मृग के वध के लिए बाण को आयत कर्णायत—कान तक खींचकर खड़ा हो, उसी समय कोई अन्य व्यक्ति पीछे से आकर अपने हाथ से तलवार द्वारा उसका सिर काट ले और वह बाण पहले से ही खिंचा हुआ होने के कारण उस मृग को वेध डाले, तो भन्ते! वह व्यक्ति क्या मृग-वैर से स्पृष्ट होता है अथवा पुरुष-वैर से स्पृष्ट होता है?

गौतम! जो मृग को मारता है, वह मृग-वैर से स्पृष्ट होता है और जो पुरुष को मारता है, वह पुरुष-वैर से स्पृष्ट होता है।

३७१. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—जो मृग को मारता है, वह मृग-वैर से स्पृष्ट होता है? जो पुरुष को मारता है, वह पुरुष-वैर से स्पृष्ट होता है?

गौतम! क्रियमाण को कृत, संधीयमान (धनुष की प्रत्यज्वा पर बाण चढ़ाया जा रहा है) को संधित, निर्वृत्यमान (प्रत्यज्वा खींचने से धनुष को वर्तुल किया जा रहा है) को निर्वृत्त और निसृज्यमान को निसृष्ट कहा जा सकता है?

हां, भगवन्! क्रियमाण को कृत, संधीयमान को संधित, निर्वृत्यमान को निर्वृत्त और निसृज्यमान को निसृष्ट कहा जा सकता है।

गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—जो मृग को मारता है, वह मृग-वैर से स्पृष्ट होता है और जो पुरुष को मारता है, वह पुरुष-वैर से स्पृष्ट होता है।

वह मृग छह मास के भीतर मरता है, तो कायिकी, आधिकरणिकी, प्रादोषिकी, पारितापनिकी और प्राणातिपात-क्रिया—इन पांच क्रियाओं से स्पृष्ट होता है। यदि वह छह मास के बाद मरता है तो कायिकी, आधिकरणिकी, प्रादोषिकी और पारितानिकी की—इन चार क्रियाओं से स्पृष्ट होता है।

३७२. भन्ते! कोई पुरुष किसी पुरुष को शक्ति नामक प्रहरण से मारे या अपने हाथ से तलवार द्वारा उसका सिर काटे, तो उससे वह पुरुष कितनी क्रियाओं से युक्त होता है?

गौतम! जब वह पुरुष उस पुरुष को शक्ति—बरछा से मारता है या अपने हाथ से तलवार द्वारा उसका सिर काट देता है, उस समय वह पुरुष कायिकी, आधिकरणिकी, प्रादोषिकी, पारितापनिकी और प्राणातिपात-क्रिया—इन पांच क्रियाओं से स्पृष्ट होता है।

वह पुरुष आसन्न-वधक होने तथा पर-प्राणों के प्रति निरपेक्ष वृत्तिके कारण पुरुष-वैर से स्पृष्ट होता है।

जय-पराजय-पद

३७३. भन्ते! समान त्वचा वाले, समान वय वाले, समान युद्धोपयोगी साधन-सामग्री वाले

दो समान व्यक्ति परस्पर एक दूसरे के साथ युद्ध करते हैं। वहां एक व्यक्ति जीतता है और एक पराजित होता है। भन्ते! यह ऐसा क्यों होता है?

गौतम! सवीर्य जीतता है, अवीर्य पराजित होता है।

३७४. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—सवीर्य जीतता है और अवीर्य पराजित होता है?

गौतम! जिसके वीर्यबाह्य कर्म बद्ध, स्पृष्ट, निधत्त, कृत, प्रस्थापित, अभिनिविष्ट, अभिसमन्वागत और उदीर्ण नहीं होते—उपशान्त होते हैं, वह जीतता है। जिसके वीर्यबाह्य-कर्म बद्ध, स्पृष्ट, निधत्त, कृत, प्रस्थापित, अभिनिविष्ट, अभिसमन्वागत और उदीर्ण होते हैं—उपशान्त नहीं होते, वह पुरुष पराजित होता है। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—सवीर्य जीतता है और अवीर्य पराजित होता है।

वीर्य-पद

३७५. भन्ते! क्या जीव सवीर्य हैं? अवीर्य हैं?

गौतम! जीव सवीर्य भी हैं और अवीर्य भी हैं।

३७६. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—जीव सवीर्य भी हैं और अवीर्य भी हैं?

गौतम! जीव दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—संसार-समापन्न और असंसार-समापन्न।

इनमें जो असंसार-समापन्न हैं, वे सिद्ध हैं। सिद्ध अवीर्य होते हैं। इनमें जो संसार-समापन्न हैं, वे दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—शैलेशी-प्रतिपन्न और अशैलेशी-प्रतिपन्न। इनमें जो शैलेशी-प्रतिपन्न हैं, वे लब्धि-वीर्य से सवीर्य और करण-वीर्य से अवीर्य होते हैं। इनमें जो अशैलेशी-प्रतिपन्न हैं, वे लब्धि-वीर्य से सवीर्य और करणवीर्य से सवीर्य भी हैं और अवीर्य भी हैं। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—जीव दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—सवीर्य भी और अवीर्य भी।

३७७. भन्ते! क्या नैरयिक सवीर्य हैं? अथवा अवीर्य हैं?

गौतम! नैरयिक लब्धि-वीर्य से सवीर्य हैं तथा करण-वीर्य से सवीर्य और अवीर्य दोनों हैं।

३७८. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—नैरयिक लब्धि-वीर्य से सवीर्य तथा करण-वीर्य से सवीर्य और अवीर्य दोनों हैं?

गौतम! जो नैरयिक उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम से युक्त हैं, वे लब्धि-वीर्य से भी सवीर्य हैं और करण-वीर्य से भी सवीर्य हैं।

जो नैरयिक उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम से हीन हैं, वे लब्धि-वीर्य से सवीर्य और करण-वीर्य से अवीर्य हैं। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—नैरयिक लब्धि-वीर्य से सवीर्य हैं तथा करण-वीर्य से सवीर्य और अवीर्य दोनों हैं।

३७९. पञ्चेन्द्रिय-तिर्यग्यानिक्त तक नैरयिक की भांति ज्ञातव्य हैं।

३८०. भन्ते! क्या मनुष्य सवीर्य हैं? अथवा अवीर्य हैं?

गौतम! मनुष्य सवीर्य भी हैं और अवीर्य भी हैं।

३८१. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—मनुष्य सवीर्य भी हैं और अवीर्य भी हैं?

गौतम! मनुष्य दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं—शैलेशी-प्रतिपन्न और अशैलेशी-प्रतिपन्न।

इनमें जो शैलेशी-प्रतिपन्न हैं, वे लब्धि-वीर्य से सवीर्य और करण-वीर्य से अवीर्य हैं। इनमें जो अशैलेशी-प्रतिपन्न हैं, वे लब्धि-वीर्य से सवीर्य और करण-वीर्य से सवीर्य भी हैं और अवीर्य भी हैं। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—मनुष्य सवीर्य भी हैं और अवीर्य भी हैं।

३८२. वानमन्तर-, ज्योतिष्क- और वैमानिक-देव नैरयिक-जीवों की भांति ज्ञातव्य हैं।

३८३. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है—इस प्रकार भगवान् गौतम यावत् संयम और तप से अपने आप को भावित करते हुए विहरण कर रहे हैं।

नौवां उद्देशक

गुरु-लघु-पद

३८४. भन्ते! जीव गुरुता को कैसे प्राप्त होते हैं?

गौतम! प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रेय, दोष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, परपरिवाद, अरति-रति, माया-मृषा और मिथ्या-दर्शन-शल्य के द्वारा जीव गुरुता को प्राप्त होते हैं।

३८५. भन्ते! जीव लघुता को कैसे प्राप्त होते हैं?

गौतम! प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रेय, दोष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, परपरिवाद, अरति-रति, माया-मृषा और मिथ्या-दर्शन-शल्य—इनके विरमण से जीव लघुता को प्राप्त होते हैं।

३८६. भन्ते! जीव संसार को अपरिमित कैसे करते हैं?

गौतम! प्राणातिपात यावत् मिथ्या-दर्शन-शल्य के द्वारा जीव संसार को अपरिमित करते हैं।

३८७. भन्ते! जीव संसार को परिमित कैसे करते हैं?

गौतम! प्राणातिपात यावत् मिथ्या-दर्शन-शल्य के विरमण से जीव संसार को परिमित करते हैं।

३८८. भन्ते! जीव संसार को दीर्घकालिक कैसे करते हैं?

गौतम! प्राणातिपात यावत् मिथ्या-दर्शन-शल्य के द्वारा जीव संसार को दीर्घकालिक करते हैं।

३८९. भन्ते! जीव संसार को अल्पकालिक कैसे करते हैं?

गौतम! प्राणातिपात यावत् मिथ्या-दर्शन-शल्य के विरमण से जीव संसार को अल्पकालिक करते हैं।

३९०. भन्ते! जीव संसार में अनुपरिवर्तन कैसे करते हैं?

गौतम! प्राणातिपात यावत् मिथ्या-दर्शन-शल्य के द्वारा जीव संसार में अनुपरिवर्तन करते हैं।

३९१. भन्ते! जीव संसार का व्यतिक्रमण कैसे करते हैं?

गौतम! प्राणातिपात यावत् मिथ्या-दर्शन-शल्य के विरमण से जीव संसार का व्यतिक्रमण करते हैं।

इनमें चार प्रशस्त और चार अप्रशस्त हैं।

३९२. भन्ते! सातवां अवकाशान्तर क्या गुरु है? लघु है? गुरुलघु है? अगुरुलघु है?

गौतम! वह न गुरु है, न लघु है, न गुरुलघु है, अगुरुलघु है?

३९३. भन्ते! सातवां तनुवात क्या गुरु है? लघु है? गुरुलघु है? अगुरुलघु है?

गौतम! वह न गुरु है, न लघु है, न अगुरुलघु है, गुरुलघु है?

३९४. इसी प्रकार सातवां घनवात, सातवां घनोदधि और सातवीं पृथ्वी ज्ञातव्य हैं।

३९५. सभी अवकाशान्तर सातवें अवकाशान्तर की भांति ज्ञातव्य हैं।

३९६. जैसे तनुवात का निरूपण हुआ है, उसी प्रकार—अवकाश, घनवात, घनोदधि, पृथ्वी, द्वीप, सागर और वर्ष निरूपणीय हैं।

३९७. भन्ते! नैरयिक क्या गुरु हैं? लघु है? गुरुलघु हैं? अगुरुलघु हैं?

गौतम! वे न गुरु हैं, न लघु है, गुरुलघु भी हैं और अगुरुलघु भी हैं?

३९८. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—नैरयिक न गुरु हैं, न लघु है, गुरुलघु भी हैं, अगुरुलघु भी हैं?

गौतम! वैक्रिय- और तैजस-शरीर की अपेक्षा से वे न गुरु हैं, न लघु है, न अगुरुलघु है, गुरुलघु है। जीव और कार्मण-शरीर की अपेक्षा से वे न गुरु हैं, न लघु है, न गुरुलघु है, अगुरुलघु हैं।

गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—नैरयिक न गुरु हैं, न लघु है, गुरुलघु भी हैं, अगुरुलघु भी हैं।

३९९. इसी प्रकार वैमानिक-देवों तक की वक्तव्यता, केवल शरीर-विषयक नानात्व ज्ञातव्य है।

४००. भन्ते! धर्मास्तिकाय क्या गुरु है? लघु है? गुरुलघु है? अगुरुलघु है?

गौतम! वह न गुरु है, न लघु है, न गुरुलघु है, अगुरुलघु है।

४०१. भन्ते! अधर्मास्तिकाय क्या गुरु है? लघु है? गुरुलघु है? अगुरुलघु है?

गौतम! वह न गुरु है, न लघु है, न गुरुलघु है, अगुरुलघु है।

४०२. भन्ते! आकाशास्तिकाय क्या गुरु है? लघु है? गुरुलघु है? अगुरुलघु है?

गौतम! वह न गुरु है, न लघु है, न गुरुलघु है, अगुरुलघु है।

४०३. भन्ते! जीवास्तिकाय क्या गुरु है? लघु है? गुरुलघु है? अगुरुलघु है?

गौतम! वह न गुरु है, न लघु है, न गुरुलघु है, अगुरुलघु है।

४०४. भन्ते! पुद्गलास्तिकाय क्या गुरु है? लघु है? गुरुलघु है, अगुरुलघु है?

गौतम! वह न गुरु है, न लघु है, गुरुलघु भी है, अगुरुलघु भी है।

४०५. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—पुद्गलास्तिकाय न गुरु है, न लघु है, गुरुलघु भी है, अगुरुलघु भी है?

गौतम! गुरुलघु द्रव्यों की अपेक्षा से वह न गुरु है, न लघु है, न अगुरुलघु है, गुरुलघु है। अगुरुलघु द्रव्यों की अपेक्षा से वह न गुरु है, न लघु है, न गुरुलघु है, अगुरुलघु है।

४०६. भन्ते! समय क्या गुरु है? लघु है? गुरुलघु है? अगुरुलघु है?

गौतम! वे न गुरु हैं, न लघु हैं, न गुरुलघु हैं, अगुरुलघु हैं।

४०७. भन्ते! कर्म क्या गुरु है? लघु है? गुरुलघु है? अगुरुलघु है?

गौतम! वे न गुरु हैं, न लघु हैं, न गुरुलघु हैं, अगुरुलघु हैं।

४०८. भन्ते! कृष्ण-लेश्या क्या गुरु है? लघु है? गुरुलघु है? अगुरुलघु है?

गौतम! वह न गुरु है न लघु है, गुरुलघु भी है, अगुरुलघु भी है।

४०९. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—कृष्ण-लेश्या न गुरु है? न लघु है? गुरुलघु भी है? अगुरुलघु भी है?

गौतम! द्रव्यलेश्या की अपेक्षा से वह गुरुलघु भी है, भाव-लेश्या की अपेक्षा से अगुरुलघु है।

४१०. शुक्ल लेश्या तक इसी प्रकार ज्ञातव्य है।

४११. दृष्टि, दर्शन, ज्ञान, अज्ञान और संज्ञा अगुरुलघु हैं।

४१२. प्रथम चार शरीर गुरुलघु और कर्मण शरीर अगुरुलघु हैं।

४१३. मन-योग और वचन-योग अगुरुलघु हैं, काय-योग गुरुलघु है।

४१४. साकार-उपयोग और अनाकार-उपयोग अगुरुलघु हैं।

४१५. सब द्रव्य, सब प्रदेश और सब पर्याय पुद्गलास्तिकाय की भांति वक्तव्य हैं।

४१६. अतीत-काल, अनागत-काल और सर्व-काल अगुरुलघु हैं।

प्रशस्त-पद

४१७. भन्ते! क्या श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए लाघव, अल्पेच्छा, अमूर्च्छा, अगृद्धि, अप्रतिबद्धता प्रशस्त हैं?

हां, गौतम! श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए लाघव, अल्पेच्छा, अमूर्च्छा, अगृद्धि, अप्रतिबद्धता प्रशस्त हैं।

४१८. भन्ते! क्या श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए अक्रोध, अमान, अमाया और अलोभ का भाव प्रशस्त है?

हां, गौतम! श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए अक्रोध, अमान, अमाया और अलोभ का भाव प्रशस्त है।

कांक्षाप्रदोष-पद

४१९. भन्ते! क्या कांक्षा-प्रदोष क्षीण होने पर श्रमण-निर्ग्रन्थ अन्तकर या अन्तिम-शरीरी होता है?

कोई श्रमण पहले मोह-बहुल रहकर भी इसके पश्चात् संवृत होकर मृत्यु को प्राप्त होता है, तो क्या वह मृत्यु के अनन्तर सिद्ध, प्रशान्त, मुक्त और परिनिवृत होता है, सब दुःखों का अन्त करता है?

हां, गौतम! कांक्षा-प्रदोष क्षीण होने पर श्रमण-निर्ग्रन्थ अन्तकर या अन्तिम-शरीरी होता है। पहले मोह-बहुल रहकर भी वह उसके पश्चात् संवृत होकर मृत्यु को प्राप्त होता है, तो मृत्यु के अनन्तर सिद्ध, प्रशान्त, मुक्त और परिनिवृत होता है, सब दुःखों का अन्त करता है।

४२०. भन्ते! अन्ययूथिक ऐसा आख्यान, भाषण, प्रज्ञापन और प्ररूपण करते हैं—एक जीव एक समय में दो आयुष्य का बन्धन करता है, जैसे—इस भव के आयुष्य का और परभव के आयुष्य का।

जिस समय वह इस भव के आयुष्य का बन्धन करता है, उसी समय पर-भव के आयुष्य का बन्धन करता है, जिस समय पर-भव के आयुष्य का बन्धन करता है उसी समय इस भव के आयुष्य का बन्धन करता है।

इस भव के आयुष्य का बन्धन करने से पर-भव के आयुष्य का बन्धन करता है। पर-भव के आयुष्य का बन्धन करने से इस भव के आयुष्य का बन्धन करता है।

इस प्रकार एक जीव एक समय में दो आयुष्य का बन्धन करता है—इस भव के आयुष्य का और पर-भव के आयुष्य का।

४२१. भन्ते! वह यह इस प्रकार कैसे होता है?

गौतम! वे अन्ययूथिक जो ऐसा आख्यान करते हैं यावत् एक जीव एक समय में दो आयुष्य का बन्धन करता है, जैसे—इस भव के आयुष्य का, पर-भव के आयुष्य का।

ऐसा जिन्होंने कहा है, उन्होंने मिथ्या कहा है।

गौतम! मैं इस प्रकार आख्यान, भाषण, प्रज्ञापन और प्ररूपण करता हूं—एक जीव एक समय में एक ही आयु का बन्धन करता है, जैसे—इस भव के आयुष्य का अथवा पर-भव के आयुष्य का।

जिस समय वह इस भव के आयुष्य का बन्धन करता है, उसी समय पर-भव के आयुष्य का बन्धन नहीं करता।

जिस समय पर-भव के आयुष्य का बन्धन करता है उसी समय इस भव के आयुष्य का बन्धन नहीं करता।

इस भव के आयुष्य का बन्धन करने से पर-भव के आयुष्य का बन्धन नहीं करता।

पर-भव के आयुष्य का बन्धन करने से इस भव के आयुष्य का बन्धन नहीं करता।

इस प्रकार एक जीव एक समय में एक ही आयुष्य का बन्धन करता है, जैसे—इस भव के आयुष्य का अथवा पर-भव के आयुष्य का।

४२२. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है। इस प्रकार भगवान् गौतम यावत् संयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए विहरण कर रहे हैं।

कालासवैश्यपुत्र-पद

४२३. उस काल और उस समय में भगवान् पार्श्वपितृतीय का परम्परित शिष्य वैश्यपुत्र कालास नामक अनगर जहां भगवान् स्थविर रहते थे, वहां आया। वहां आकर भगवान् स्थविरों से उसने इस प्रकार कहा—स्थविर सामायिक को नहीं जानते, स्थविर सामायिक का अर्थ नहीं जानते।

स्थविर प्रत्याख्यान को नहीं जानते, स्थविर प्रत्याख्यान का अर्थ नहीं जानते।

स्थविर संयम को नहीं जानते, स्थविर संयम का अर्थ नहीं जानते।

स्थविर संवर को नहीं जानते, स्थविर संवर का अर्थ नहीं जानते।

स्थविर विवेक को नहीं जानते, स्थविर विवेक का अर्थ नहीं जानते।

स्थविर व्युत्सर्ग को नहीं जानते, स्थविर व्युत्सर्ग का अर्थ नहीं जानते।

४२४. उस समय भगवान् स्थविरों ने वैश्यपुत्र कालास अनगर से इस प्रकार कहा—

आर्य! हम सामायिक को जानते हैं, आर्य! हम सामायिक का अर्थ जानते हैं।

आर्य! हम प्रत्याख्यान को जानते हैं, आर्य! हम प्रत्याख्यान का अर्थ जानते हैं।

आर्य! हम संयम को जानते हैं, आर्य! हम संयम का अर्थ जानते हैं।

आर्य! हम संवर को जानते हैं, आर्य! हम संवर का अर्थ जानते हैं।

आर्य! हम विवेक को जानते हैं, आर्य! हम विवेक का अर्थ जानते हैं।

आर्य! हम व्युत्सर्ग को जानते हैं, आर्य! हम व्युत्सर्ग का अर्थ जानते हैं।

४२५. तब वैश्यपुत्र कालास अनगर ने उन भगवान् स्थविरों से इस प्रकार कहा—आर्य! यदि आप सामायिक को जानते हैं, सामायिक का अर्थ जानते हैं यावत् आर्य! यदि आप व्युत्सर्ग को जानते हैं, व्युत्सर्ग का अर्थ जानते हैं, तो आर्य! आपका सामायिक क्या है? आर्य! आपके सामायिक का अर्थ क्या है? यावत् आर्य! आपका व्युत्सर्ग क्या है? आर्य! आपके व्युत्सर्ग का अर्थ क्या है?

४२६. तब भगवान् स्थविरों ने वैश्यपुत्र कालास अनगर से इस प्रकार कहा—

आर्य! आत्मा हमारा सामायिक है, आर्य! आत्मा हमारे सामायिक का अर्थ है।

आर्य! आत्मा हमारा प्रत्याख्यान है, आर्य! आत्मा हमारे प्रत्याख्यान का अर्थ है।

आर्य! आत्मा हमारा संयम है, आत्मा हमारे संयम का अर्थ है।

आर्य! आत्मा हमारा संवर है, आर्य! आत्मा हमारे संवर का अर्थ है।

आर्य! आत्मा हमारा विवेक है, आर्य! आत्मा हमारे विवेक का अर्थ है।

आर्य! आत्मा हमारा व्युत्सर्ग है, आर्य! आत्मा हमारे व्युत्सर्ग का अर्थ है।

४२७. तब वैश्यपुत्र कालास अनगार ने भगवान् स्थविरो से इस प्रकार कहा— आर्य! यदि आत्मा सामायिक है, आत्मा आपके सामायिक का अर्थ है यावत् आर्य! आत्मा आपका व्युत्सर्ग है, आत्मा आपके व्युत्सर्ग का अर्थ है, तो क्रोध, मान, माया और लोभ का परित्याग कर आर्य! आप किसलिए गर्हा (पाप के प्रति कुत्सा का भाव) करते हैं?

कालास! हम संयम के लिए गर्हा करते हैं।

४२८. भन्ते! क्या गर्हा संयम है? अगर्हा संयम है?

कालास! गर्हा संयम है, अगर्हा संयम नहीं है। गर्हा सर्व बाल-भाव का परिज्ञा के द्वारा प्रत्याख्यान कर सब दोषों का अपनयन करती है। इस प्रकार हमारा आत्मा संयम में उपहित होता है, इस प्रकार हमारा आत्मा संयम में उपचित होता है, इस प्रकार हमारा आत्मा संयम में उपस्थित होता है।

४२९. इस बिन्दु पर वह वैश्यपुत्र कालास अनगार संबुद्ध होकर भगवान् स्थविरो को वन्दन-नमस्कार करता है, वन्दन-नमस्कार कर उसने इस प्रकार कहा—भन्ते! पहले मैंने अज्ञान, अश्रवण, अबोधि और अनभिगम के कारण अदृष्ट, अश्रुत, अस्मृति, अविज्ञात, अव्याकृत, अव्यवच्छिन्न, अनिर्यूढ और अनुपधारित इन पदों के इस अर्थ पर श्रद्धा नहीं की, प्रतीति नहीं की, रुचि नहीं की।

भन्ते! अब ज्ञान, श्रवण, बोधि और अभिगम के द्वारा दृष्ट, श्रुत, स्मृत, विज्ञात, व्याकृत, व्यवच्छिन्न, निर्यूढ और उपधारित—इन पदों के इस अर्थ पर मैं श्रद्धा करता हूं, प्रतीति करता हूं, रुचि करता हूं। यह वैसा ही है जैसा आप कह रहे हैं।

४३०. भगवान् स्थविरो ने वैश्यपुत्र कालास अनगार से इस प्रकार कहा—हम जिस प्रकार यह कह रहे हैं उस पर आर्य! श्रद्धा करो, आर्य! प्रतीति करो, आर्य! रुचि करो।

४३१. अब वह वैश्यपुत्र कालास अनगार भगवान् स्थविरो को वन्दन-नमस्कार करता है, वन्दन-नमस्कार कर उसने इस प्रकार कहा—भन्ते! मैं आपके पास चतुर्याम धर्म से (मुक्त होकर) सप्रतिक्रमण-पञ्चमहाव्रतात्मक धर्म को स्वीकार कर विहार करना चाहता हूं।

देवानुप्रिय! जैसे तुम्हें सुख हो। प्रतिबंध मत करो।

४३२. वैश्यपुत्र कालास अनगार भगवान् स्थविरो को वन्दन-नमस्कार करता है, वन्दन-नमस्कार कर चतुर्याम धर्म से (मुक्त होकर) सप्रतिक्रमण पञ्चमहाव्रतात्मक धर्म को स्वीकार कर विहार करता है।

४३३. वह वैश्यपुत्र कालास अनगार बहुत वर्षों तक श्रामण्य-पर्याय का पालन करता है, पालन कर जिस प्रयोजन से नग्न-भाव, मुण्ड-भाव, स्नान न करना, दतौन न करना, छत्र धारण न करना, पादुका न पहनना, भूमि-शय्या, फलक-शय्या, काष्ठ-शय्या, केश-लोच,

ब्रह्मचर्यवास, भिक्षा के लिए गृहस्थों के घर प्रवेश करना, लाभ-अलाभ, उच्चावच, ग्राम-कण्टक, बाईस परीषहों और उपसर्गों को सहन किया जाता है, उस प्रयोजन की आराधना करता है, उसकी आराधना कर चरम उच्छ्वास-निःश्वास से सिद्ध, प्रशान्त, मुक्त, परिनिर्वृत और सब दुःखों को क्षीण करने वाला हो जाता है।

अप्रत्याख्यानक्रिया-पद

४३४. भन्ते! इस सम्बोधन के साथ भगवान् गौतम श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करते हैं। वन्दन-नमस्कार कर उन्होंने इस प्रकार कहा—भन्ते! श्रेष्ठी, निर्धन, रंक और राजा के क्या अप्रत्याख्यान-क्रिया समान होती है?

हां, गौतम! श्रेष्ठी, निर्धन, रंक और राजा के अप्रत्याख्यान-क्रिया समान होती है।

४३५. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—श्रेष्ठी, निर्धन, रंक और राजा के अप्रत्याख्यानक्रिया समान होती है?

गौतम! अविरति की अपेक्षा से। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—श्रेष्ठी, निर्धन, रंक और राजा के अप्रत्याख्यान-क्रिया समान होती है।

आधाकर्म-पद

४३६. आधाकर्म भोजन करता हुआ श्रमण निर्ग्रन्थ क्या बांधता है? क्या करता है? क्या चय करता है? क्या उपचय करता है?

गौतम! आधाकर्म भोजन करता हुआ श्रमण-निर्ग्रन्थ आयुष्य कर्म को छोड़कर शेष सात कर्मों की शिथिल-बन्धन-बद्ध प्रकृतियों को गाढ़-बंधन-बद्ध करता है, अल्पकालिक स्थिति वाली प्रकृतियों को दीर्घकालिक स्थिति वाली करता है, मन्द अनुभाव वाली प्रकृतियों को तीव्र अनुभाव वाली करता है, अल्पप्रदेश-परिमाण वाली प्रकृतियों को बहुप्रदेश-परिमाण वाली करता है, आयुष्य-कर्म का बन्ध कदाचित् करता है और कदाचित् नहीं करता, वह असातवेदनीय-कर्म का बहुत-बहुत उपचय करता है और आदि-अन्तहीन दीर्घ पथ वाले चतुर्गत्यात्मक संसार-कान्तार में अनुपरिवर्तन करता है।

४३७. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—आधाकर्म भोजन करता हुआ श्रमण-निर्ग्रन्थ आयुष्य-कर्म को छोड़कर शेष सात कर्मों की शिथिल-बन्धन-बद्ध प्रकृतियों को गाढ़-बंधन-बद्ध करता है यावत् चतुर्गत्यात्मक संसार-कान्तार में अनुपरिवर्तन करता है?

गौतम! आधाकर्म भोजन करता हुआ श्रमण निर्ग्रन्थ आत्मा से धर्म का अतिक्रमण करता है। आत्मा से धर्म का अतिक्रमण करता हुआ वह पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक जीवों के प्रति निरपेक्ष हो जाता है। वह जिन जीवों के शरीरों का भोजन करता है, उन जीवों के प्रति भी निरपेक्ष हो जाता है। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—आधाकर्म भोजन करता हुआ श्रमण निर्ग्रन्थ आयुष्य-कर्म को छोड़कर शेष सात कर्मों की शिथिल-बन्धन-बद्ध प्रकृतियों को गाढ़-बन्धन-बद्ध करता है यावत् चतुर्गत्यात्मक संसार-कान्तार में अनुपरिवर्तन करता है।

प्रासु-एषणीय-पद

४३८. भन्ते! प्रासुक और एषणीय भोजन करता हुआ श्रमण-निर्ग्रन्थ क्या बांधता है? क्या करता है? क्या चय करता है? क्या उपचय करता है?

गौतम! प्रासुक और एषणीय भोजन करता हुआ श्रमण निर्ग्रन्थ आयुष्य-कर्म को छोड़कर शेष सात कर्मों की गाढ़-बन्धन-बद्ध प्रकृतियों को शिथिल बन्धन-बद्ध करता है, दीर्घकालिक स्थिति वाली प्रकृतियों को अल्पकालिक स्थिति वाली करता है, तीव्र अनुभाव वाली प्रकृतियों को मन्द अनुभाव वाली करता है, बहुप्रदेश-परिमाण वाली प्रकृतियों को अल्प-प्रदेश-परिमाण वाली करता है; आयुष्य-कर्म का बन्ध कदाचित् करता है और कदाचित् नहीं करता, वह असातवेदनीय-कर्म का बहुत-बहुत उपचय नहीं करता और आदि-अन्तहीन दीर्घ पथ वाले चतुर्गत्यात्मक संसार-कान्तार का व्यतिक्रमण करता है।

४३९. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—प्रासुक और एषणीय भोजन करता हुआ श्रमण-निर्ग्रन्थ आयुष्य-कर्म को छोड़कर शेष सात कर्मों की गाढ़-बन्धन-बद्ध प्रकृतियों को शिथिल-बन्धन-बद्ध करता है यावत् चतुर्गत्यात्मक संसारकान्तार का व्यतिक्रमण करता है?

गौतम! प्रासुक और एषणीय भोजन करता हुआ श्रमण-निर्ग्रन्थ आत्मा से धर्म का अतिक्रमण नहीं करता, आत्मा से धर्म का अतिक्रमण नहीं करता हुआ वह पृथ्वीकायिक यावत् त्रसकायिक जीवों के प्रति अपेक्षावान् होता है (निरपेक्ष नहीं होता)। वह जिन जीवों के शरीरों का भोजन करता है, उन जीवों के प्रति भी अपेक्षावान् होता है। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—प्रासुक और एषणीय भोजन करता हुआ श्रमण-निर्ग्रन्थ आयुष्य-कर्म को छोड़कर शेष सात कर्मों की गाढ़-बन्धन-बद्ध प्रकृतियों को शिथिल-बन्धन-बद्ध करता है यावत् चतुर्गत्यात्मक संसार-कान्तार का व्यतिक्रमण करता है।

शाश्वत-अशाश्वत-पद

४४०. भन्ते! क्या अस्थिर द्रव्य परिवर्तित होता है, स्थिर द्रव्य परिवर्तित नहीं होता? क्या अस्थिर द्रव्य भग्न होता है, स्थिर द्रव्य भग्न नहीं होता? क्या बालक शाश्वत है, बालकत्व अशाश्वत है? क्या पण्डित शाश्वत है, पण्डितत्व अशाश्वत है?

हां, गौतम! अस्थिर द्रव्य परिवर्तित होता है, स्थिर द्रव्य परिवर्तित नहीं होता। अस्थिर द्रव्य भग्न होता है, स्थिर द्रव्य भग्न नहीं होता। बालक शाश्वत है, बालकत्व अशाश्वत है। पण्डित शाश्वत है, पण्डितत्व अशाश्वत है।

४४१. भन्ते! वह ऐसा ही है, भन्ते! वह ऐसा ही है। इस प्रकार भगवान् गौतम यावत् संयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए विहरण कर रहे हैं।

दसवां उद्देशक

परसमयवक्तव्यता-पद

४४२. भन्ते! अन्ययूथिक ऐसा आख्यान, भाषण, प्रज्ञापन और प्ररूपण करते हैं—

चलमान अचलित, उदीर्यमाण अनुदीरित, वेद्यमान अवेदित, प्रहीयमाण अप्रहीण, छिद्यमान

अछिन्न, भिद्यमान अभिन्न, दह्यमान अदग्ध, प्रियमाण अमृत, निर्जीर्यमाण अनिर्जीर्ण है।

दो परमाणु-पुद्गलों की एक संहति नहीं होती,

दो परमाणु-पुद्गलों की एक संहति किस कारण से नहीं होती?

दो परमाणु-पुद्गलों में स्नेहकाय नहीं होता; इसलिए दो परमाणु-पुद्गलों की एक संहति नहीं होती।

तीन परमाणु-पुद्गलों की एक संहति होती है,

तीन परमाणु-पुद्गलों की एक संहति किस कारण से होती है?

तीन परमाणु-पुद्गलों में स्नेहकाय होता है, इसलिए तीन परमाणु-पुद्गलों की एक संहति नहीं होती।

वे टूटने पर दो या तीन भागों में विभक्त होते हैं।

दो भागों में विभक्त होने पर एक ओर डेढ़ परमाणु-पुद्गल होता है, दूसरी ओर भी डेढ़ परमाणु-पुद्गल होता है।

तीन भागों में विभक्त होने पर वे तीन परमाणु-पुद्गल हो जाते हैं। चार परमाणु-पुद्गल भी इसी प्रकार वक्तव्य हैं।

पांच परमाणु-पुद्गलों में एक संहति होती है—वे एकरूप में संहत होकर दुःख-रूप में परिणत होते हैं। वह दुःख भी शाश्वत है और सदा संगठित रूप में उपचित तथा अपचित होता है।

बोलने से पहले भाषा भाषा होती है, बोलते समय भाषा अभाषा होती है और बोलने का समय व्यतिक्रान्त होने पर बोली गई भाषा भाषा है।

बोलने से पहले जो भाषा भाषा है, बोलते समय भाषा अभाषा है और बोलने का समय व्यतिक्रान्त हो जाने पर बोली गई भाषा भाषा है। क्या वह जो बोल रहा है, उसके भाषा है? जो नहीं बोल रहा है, उसके भाषा है?

वह जो नहीं बोल रहा है, उसके भाषा है। जो बोल रहा है, उसके भाषा नहीं है।

क्रिया करने से पहले क्रिया दुःखकर होती है, क्रियमाण क्रिया दुःखकर नहीं होती, क्रिया का समय व्यतिक्रान्त होने पर कृत क्रिया दुःखकर होती है।

जो यह क्रिया करने से पहले दुःखकर होती है, क्रियमाण क्रिया दुःखकर नहीं होती, क्रिया का समय व्यतिक्रान्त होने पर कृत क्रिया दुःखकर होती है। क्या वह करने से दुःखकर होती है? न करने से दुःखकर होती है?

न करने से वह दुःखकर होती है। करने से वह दुःखकर नहीं होती—ऐसा कहा जा सकता है। दुःख कृत्य नहीं है, दुःख स्पृश्य नहीं है, दुःख अक्रियमाण कृत है, प्राण, भूत, जीव और सत्त्व बिना किए-बिना किए भी वेदना का अनुभव करते हैं—ऐसा कहा जा सकता है।

स्वसमयवक्तव्यता-पद

४४३. भन्ते! यह इस प्रकार कैसे होता है?

गौतम! वे अन्ययूथिक जो ऐसा आख्यान करते हैं यावत् वेदना का अनुभव करते हैं—ऐसा कहा जा सकता है।

जो ऐसा कहते हैं, वे मिथ्या कहते हैं। गौतम!

मैं इस प्रकार आख्यान, भाषण, प्रज्ञापन और प्ररूपण करता हूँ—चलमान चलित, उदीर्यमाण उदीरित, वेद्यमान वेदित, प्रहीयमाण प्रहीण, छिद्यमान छिन्न, भिद्यमान भिन्न, दद्यमान दद्य, प्रियमाण भृत, निर्जीर्यमाण निर्जीर्ण होता है।

दो परमाणु-पुद्गलों की एक संहति होती है,

दो परमाणु-पुद्गलों की एक संहति किस कारण से होती है?

दो परमाणु-पुद्गलों में स्नेहकाय होता है; इसलिए उन दो परमाणु-पुद्गलों की एक संहति होती है।

वे टूटने पर दो भागों में विभक्त होते हैं। दो भागों में विभक्त होने पर एक ओर एक ओर एक परमाणु-पुद्गल होता है, दूसरी ओर भी एक परमाणु-पुद्गल होता है।

तीन परमाणु-पुद्गलों की एक संहति होती है,

तीन परमाणु-पुद्गलों की एक संहति किस कारण से होती है?

तीन परमाणु-पुद्गलों में स्नेहकाय होता है; इसलिए उन तीन परमाणु-पुद्गलों की एक संहति होती है।

वे टूटने पर दो या तीन भागों में विभक्त होते हैं। दो भागों में विभक्त होने पर एक ओर परमाणु-पुद्गल होता है, दूसरी ओर द्वि-प्रदेशी स्कन्ध होता है। तीन भागों में विभक्त होने पर तीन परमाणु-पुद्गल हो जाते हैं।

चार परमाणु-पुद्गल भी इसी प्रकार वक्तव्य हैं।

पांच परमाणु-पुद्गलों की एक संहति होती है। वे एकरूप में संहत होकर स्कन्ध के रूप में परिणत होते हैं। वह स्कन्ध भी अशाश्वत है और सदा संगठित रूप में उपचित तथा अपचित होता है।

बोलने से पहले भाषा अभाषा है। बोलते समय भाषा भाषा है। बोलने का समय व्यतिक्रान्त होने पर बोली गई भाषा अभाषा है।

बोलने से पहले जो भाषा अभाषा है, बोलते समय भाषा भाषा है, बोलने का समय व्यतिक्रान्त होने पर बोली गई भाषा अभाषा है। क्या वह जो बोल रहा है, उसके भाषा है? जो नहीं बोल रहा है, उसके भाषा है?

वह जो बोल रहा है, उसके भाषा है; जो नहीं बोल रहा है, उसके भाषा नहीं है।

क्रिया करने से पहले क्रिया दुःखकर नहीं होती; क्रियमाण क्रिया दुःखकर होती है; क्रिया का समय व्यतिक्रान्त होने पर कृत क्रिया दुःखकर नहीं होती।

जो यह क्रिया करने से पहले दुःखकर नहीं होती; क्रियमाण क्रिया दुःखकर होती है; क्रिया का समय व्यतिक्रान्त होने पर कृत क्रिया दुःखकर नहीं होती; क्या वह करने से दुःखकर होती है? न करने से दुःखकर होती है?

क्रिया करने से दुःखकर होती है। न करने से वह दुःखकर नहीं होती—ऐसा कहा जा सकता है। दुःख कृत्य है, दुःख स्पृश्य है, दुःख क्रियमाण कृत है, प्राण, भूत, जीव और सत्त्व क्रिया कर-करके वेदना का अनुभव करते हैं—ऐसा कहा जा सकता है।

ऐर्यापथिकी-साम्परायिकी-पद

४४४. भन्ते! अन्ययूथिक ऐसा आख्यान, भाषण, प्रज्ञापन और प्ररूपण करते हैं—एक जीव एक समय में दो क्रियाएं करता है, जैसे—ऐर्यापथिकी और साम्परायिकी।

जिस समय ऐर्यापथिकी करता है, उसी समय साम्परायिकी करता है।

जिस समय साम्परायिकी करता है, उसी समय ऐर्यापथिकी करता है।

ऐर्यापथिकी करने से साम्परायिकी करता है।

साम्परायिकी करने से ऐर्यापथिकी करता है।

इस प्रकार एक जीव एक समय में दो क्रियाएं करता है, जैसे—ऐर्यापथिकी और साम्परायिकी।

४४५. भन्ते! यह इस प्रकार कैसे होता है?

गौतम! वे अन्ययूथिक जो इस प्रकार आख्यान, भाषण, प्रज्ञापन और प्ररूपण करते हैं—एक जीव एक समय में दो क्रियाएं करता है यावत् ऐर्यापथिकी और साम्परायिकी।

जो ऐसा कहते हैं, वे मिथ्या कहते हैं। गौतम! मैं इस प्रकार आख्यान, भाषण, प्रज्ञापन और प्ररूपण करता हूं—एक जीव एक समय में एक क्रिया करता है, जैसे—ऐर्यापथिकी अथवा साम्परायिकी।

जिस समय ऐर्यापथिकी करता है, उस समय साम्परायिकी नहीं करता।

जिस समय साम्परायिकी करता है, उस समय ऐर्यापथिकी नहीं करता।

ऐर्यापथिकी करने से साम्परायिकी नहीं करता।

साम्परायिकी करने से ऐर्यापथिकी नहीं करता।

इस प्रकार एक जीव एक समय में एक क्रिया करता है, जैसे—ऐर्यापथिकी अथवा साम्परायिकी।

उपपात-पद

४४६. भन्ते! नरक गति कितने समय तक उपपात से विरहित प्रज्ञप्त है?

गौतम! जधन्यतः एक समय, उत्कर्षतः बारह मुहूर्त।

४४७. इस प्रकार अवक्रान्ति-पद (पणवणा, पद ६) अविकल रूप से वक्तव्य है।

४४८. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है। इस प्रकार भगवान् गौतम यावत् संयम और तप से अपने आप को भावित करते हुए विहरण कर रहे हैं।

• • •

दूसरा शतक

पहला उद्देशक

संग्रहणी गाथा

दूसरे शतक में दस उद्देशक हैं—१. उच्छ्वास-निःश्वास और स्कन्ध २. समुद्रघात ३. पृथ्वी ४. इन्द्रियां ५. अन्ययूधिक ६. भाषा ७. देव ८. चमरचज्वा ९. समयक्षेत्र १०. अस्तिकाय ।

उत्क्षेप-पद

१. उस काल और उस समय में राजगृह नामक नगर था—नगर-वर्णन । वहां भगवान् महावीर आए । परिषद् ने नगर से निगमन किया । भगवान् ने धर्म कहा । परिषद् वापिस नगर में चली गई ।

श्वासोच्छ्वास-पद

२. उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के ज्येष्ठ अन्तेवासी इन्द्रभूति अनगर यावत् भगवान् की पर्युपासना करते हुए इस प्रकार बोले—

भन्ते ! ये जो द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय जीव हैं, इनके आन, अपान तथा उच्छ्वास और निःश्वास को हम जानते हैं, देखते हैं ।

ये जो पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय जीव हैं, इनके आन, अपान तथा उच्छ्वास और निःश्वास को हम न जानते हैं और न देखते हैं ।

भन्ते ! क्या ये जीव आन, अपान तथा उच्छ्वास और निःश्वास करते हैं ?

हां, गौतम ! ये जीव भी आन, अपान तथा उच्छ्वास और निःश्वास करते हैं ।

३. भन्ते ! ये जीव किसका आन, अपान तथा उच्छ्वास और निःश्वास करते हैं ?

गौतम ! ये जीव द्रव्य की अपेक्षा से अनन्त-प्रदेशी, क्षेत्र की अपेक्षा से असंख्येय-प्रदेशावगाढ, काल की अपेक्षा से किसी भी स्थिति वाले और भाव की अपेक्षा से वर्ण-गन्ध-रस- तथा स्पर्श-युक्त पुद्गल-द्रव्यों का आन, अपान तथा उच्छ्वास और निःश्वास करते हैं ।

४. वे भाव की अपेक्षा से जिन वर्ण-युक्त पुद्गल-द्रव्यों का आन, अपान तथा उच्छ्वास और निःश्वास करते हैं, क्या उन एक वर्ण यावत् पांच वर्ण-युक्त पुद्गल-द्रव्यों का आन, अपान तथा उच्छ्वास और निःश्वास करते हैं ?

गौतम! स्थान-मार्गणा को अपेक्षा से वे एक-वर्ण-यावत् पांच-वर्ण-युक्त पुद्गल-द्रव्यों का आन, अपान तथा उच्छ्वास और निःश्वास करते हैं। विधान-मार्गणा की अपेक्षा से वे कृष्ण-वर्ण-यावत् शुक्ल-वर्ण-युक्त पुद्गल द्रव्यों का आन, अपान तथा उच्छ्वास और निःश्वास करते हैं। यहां आहार का गमक (पणवणा, २८।७-१८) वक्तव्य है यावत्—

५. भन्ते! ये जीव कितनी दिशाओं में आन, अपान तथा उच्छ्वास और निःश्वास करते हैं?

गौतम! व्याघात न हो तो छहों दिशाओं में और व्याघात की अपेक्षा से कदाचित् तीन दिशाओं, कदाचित् चार दिशाओं और कदाचित् पांच दिशाओं में आन, अपान तथा उच्छ्वास और निःश्वास करते हैं।

६. भन्ते! नैरयिक जीव किसका आन, अपान तथा उच्छ्वास और निःश्वास करते हैं?

यह एकेन्द्रिय-जीवों की भांति (सू. ३,४) वक्तव्य है, यावत् नैरयिक नियमतः छहों दिशाओं में आन, अपान तथा उच्छ्वास और निःश्वास करते हैं।

७. सामान्य जीव और एकेन्द्रिय जीवों के व्याघात और निर्व्याघात का विकल्प वक्तव्य है। शेष सब जीव नियमतः छहों दिशाओं में आन, अपान तथा उच्छ्वास और निःश्वास करते हैं।

८. भन्ते! वायुकायिक-जीव क्या वायुकाय का ही आन, अपान तथा उच्छ्वास और निःश्वास करते हैं?

हां, गौतम! वायुकायिक-जीव वायुकाय का ही आन, अपान तथा उच्छ्वास और निःश्वास करते हैं।

वायुकाय की कायस्थिति-पद

९. भन्ते! क्या वायुकायिक-जीव वायुकाय में ही अनेक लाख बार मर-मर कर वहीं पुनः-पुनः उत्पन्न होता है?

हां, गौतम! वायुकायिक-जीव वायुकाय में ही अनेक लाख बार मर-मर कर वहीं पुनः-पुनः उत्पन्न होता है।

१०. भन्ते! क्या वायुकायिक-जीव स्पृष्ट होकर मरता है? अथवा अस्पृष्ट रहकर मरता है?

गौतम! वह स्पृष्ट होकर मरता है, अस्पृष्ट रहकर नहीं मरता।

११. भन्ते! क्या वायुकायिक-जीव सशरीर निष्क्रमण करता है? अथवा अशरीर निष्क्रमण करता है।

गौतम! वह स्यात् सशरीर निष्क्रमण करता है, स्यात् अशरीर निष्क्रमण करता है।

१२. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—वायुकायिक-जीव स्यात् सशरीर निष्क्रमण करता है, स्यात् अशरीर निष्क्रमण करता है?

गौतम! वायुकायिक-जीव के चार शरीर प्रज्ञप्त हैं, जैसे—औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मण। वह औदारिक- और वैक्रिय-शरीर को छोड़कर तैजस- और कार्मण-शरीर के साथ निष्क्रमण करता है। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—वह स्यात् सशरीर निष्क्रमण

करता है, स्यात् अशरीर निष्क्रमण करता है।

मृतादी-निर्ग्रन्थ-पद

१३. भन्ते! याचितभोजी निर्ग्रन्थ, जिसने भव का निरोध नहीं किया है और भव के विस्तार का निरोध नहीं किया है, जिसने संसार को प्रहीण नहीं किया है और संसार-वेदनीय-कर्म को भी प्रहीण नहीं किया है, जिसने संसार को व्युच्छिन्न नहीं किया है और संसार-वेदनीय-कर्म को भी व्युच्छिन्न नहीं किया है, जिसने अपना प्रयोजन सिद्ध नहीं किया है और प्रयोजन-पूर्ति के लिए करणीय कार्यों को भी सिद्ध नहीं किया है, क्या फिर से इत्थंस्थ (तिर्यज्च आदि के रूपों) को प्राप्त होता है?

हां, गौतम! याचितभोजी निर्ग्रन्थ, जिसने भव का निरोध नहीं किया है और भव के विस्तार का निरोध नहीं किया है, जिसने संसार को प्रहीण नहीं किया है और संसार-वेदनीय-कर्म को भी प्रहीण नहीं किया है, जिसने संसार को व्युच्छिन्न नहीं किया है और संसार-वेदनीय-कर्म को भी व्युच्छिन्न नहीं किया है, जिसने अपना प्रयोजन सिद्ध नहीं किया है और प्रयोजन-पूर्ति के लिए करणीय कार्यों को भी सिद्ध नहीं किया है, फिर से इत्थंस्थ (तिर्यज्च आदि के रूपों) को प्राप्त होता है।

१४. भन्ते! वह किस शब्द के द्वारा वाच्य होता है?

गौतम! वह प्राण शब्द के द्वारा वाच्य होता है। वह भूत शब्द के द्वारा वाच्य होता है। वह जीव शब्द के द्वारा वाच्य होता है। वह सत्त्व शब्द के द्वारा वाच्य होता है। वह विज्ञ शब्द के द्वारा वाच्य होता है। वह वेद शब्द के द्वारा वाच्य होता है। वह प्राण, भूत, जीव, सत्त्व, विज्ञ और वेद इस रूप में वाच्य होता है।

१५. भन्ते! वह किस अपेक्षा से प्राण शब्द के द्वारा वाच्य होता है यावत् 'वेद' शब्द के द्वारा वाच्य होता है?

गौतम! क्योंकि वह आन, अपान तथा उच्छ्वास और निःश्वास करता है, इसलिए वह 'प्राण' शब्द के द्वारा वाच्य होता है।

क्योंकि वह था, है और होगा, इसलिए वह 'भूत' शब्द के द्वारा वाच्य होता है।

क्योंकि जीव जीता है—प्राण धारण करता है, जीवत्व और आयुष्य-कर्म का अनुभव करता है, इसलिए वह 'जीव' शब्द के द्वारा वाच्य होता है।

क्योंकि वह शुभ- और अशुभ-कर्मों के द्वारा विषादयुक्त बनता है, इसलिए वह 'सत्त्व' शब्द के द्वारा वाच्य होता है।

क्योंकि वह तिक्त, कटु, कसैले, अम्ल और मधुर रसों को जानता है, इसलिए वह 'विज्ञ' शब्द के द्वारा वाच्य होता है।

क्योंकि वह सुख-दुःख का वेदन करता है, इसलिए वह 'वेद' शब्द के द्वारा वाच्य होता है। इस अपेक्षा से वह 'प्राण' शब्द के द्वारा वाच्य होता है यावत् 'वेद' शब्द के द्वारा वाच्य होता है।

१६. भंते! याचितभोजी निर्ग्रन्थ, जिसने भव का निरोध किया है और भव के विस्तार का निरोध किया है, जिसने संसार को प्रहीण किया है और संसार-वेदनीय-कर्म को भी प्रहीण किया है, जिसने संसार को व्युच्छिन्न किया है और संसार-वेदनीय-कर्म को भी व्युच्छिन्न किया है, जिसने अपना प्रयोजन सिद्ध किया है और प्रयोजन-पूर्ति के लिए करणीय कार्यों को भी सिद्ध किया है, क्या फिर से इत्थंस्थ (तिर्यज्व आदि के रूपों) को प्राप्त नहीं होता ?

हां, गौतम! याचितभोजी निर्ग्रन्थ, जिसने भव का निरोध किया है और भव के विस्तार का निरोध किया है, जिसने संसार को प्रहीण किया है और संसार-वेदनीय-कर्म को भी प्रहीण किया है, जिसने संसार को व्युच्छिन्न किया है और संसार-वेदनीय-कर्म को भी व्युच्छिन्न किया है, जिसने अपना प्रयोजन सिद्ध किया है और प्रयोजन-पूर्ति के लिए करणीय कार्यों को भी सिद्ध किया है, फिर से इत्थंस्थ (तिर्यज्व-आदि के रूपों) को प्राप्त नहीं होता।

१७. भंते! वह किस शब्द के द्वारा वाच्य होता है ?

गौतम! वह 'सिद्ध' शब्द के द्वारा वाच्य होता है। वह 'बुद्ध' शब्द के द्वारा वाच्य होता है। वह 'मुक्त' शब्द के द्वारा वाच्य होता है। वह 'पारगत' शब्द के द्वारा वाच्य होता है। वह 'परंपरगत' शब्द के द्वारा वाच्य होता है। वह सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिर्वृत, अन्तकृत, सर्व-दुख-प्रहीण—इस रूप में वाच्य होता है।

१८. भंते! वह ऐसा ही है, भंते! वह ऐसा ही है—इस प्रकार भगवान् गौतम श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करते हैं, वन्दन-नमस्कार कर संयम और तप से अपने आप को भावित करते हुए विहरण कर रहे हैं।

१९. श्रमण भगवान् महावीर राजगृह नगर और गुणशिलक चैत्य से पुनः निष्क्रमण करते हैं, पुनः निष्क्रमण कर राजगृह के आसपास जनपद में विहरण कर रहे हैं।

स्कन्दककथा-पद

२०. उस काल और उस समय में कयंजला नामक नगरी थी—नगर-वर्णन।

२१. उस कयंजला नगरी के बाहर उत्तरपूर्व दिग्भाग (ईशानकोण) में छत्र-पलाशक नामक चैत्य था—चैत्य का वर्णन।

२२. उत्पन्न-ज्ञान-दर्शन के धारक, अर्हत्, जिन, केवली, श्रमण भगवान् महावीर जहां कयंजला नगरी और छत्रपलाशक चैत्य है, वहां आते हैं, वहां आकर वे प्रवास-योग्य स्थान की अनुमति लेते हैं, अनुमति लेकर संयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए रह रहे हैं यावत् भगवान् का समवसरण। परिषद् का नगर से निष्क्रमण।

२३. उस कयंजला नगरी से कुछ दूरी पर श्रावस्ती नामक नगरी थी—नगर-वर्णन।

२४. उस श्रावस्ती नगरी में गर्दभाल का अन्तेवासी कात्यायन-सगोत्र स्कन्दक नाम का परिव्राजक रहता है। वह ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्वणवेद— ये चार वेद, पांचवां इतिहास और छठा निघण्टु—इनका सांगोपांग रहस्य-सहित सारक (प्रवर्तक), धारक और पारगामी था। वह छहों अंगों का वेत्ता, षष्टितन्त्र का विशारद, संख्यान, शिक्षा, कल्प,

व्याकरण, छन्द, निरुक्त, ज्योतिषशास्त्र, अन्य अनेक ब्राह्मण और परिव्राजक सम्बन्धी नयों में निष्णात था।

२५. उस श्रावस्ती नगरी में वैशालिकश्रावक पिंगल नाम का निर्ग्रन्थ रहता था।

२६. वह वैशालिकश्रावक पिंगल नाम का निर्ग्रन्थ किसी दिन जहां कात्यायन-सगोत्र स्कन्दक है, वहां आता है, आकर कात्यायन-सगोत्र स्कन्दक से यह प्रश्न पूछता है—मागध!

१. क्या लोक सान्त है अथवा अनन्त है? २. जीव सान्त है अथवा अनन्त है? ३. सिद्धि सान्त है अथवा अनन्त? ४. सिद्ध सान्त है अथवा अनन्त है? ५. किस मरण से मरता हुआ जीव बढ़ता है अथवा घटता है?—इस प्रकार मेरे द्वारा पूछे गए इतने प्रश्नों का तुम उत्तर दो।

२७. वैशालिकश्रावक पिंगल निर्ग्रन्थ के द्वारा ये प्रश्न पूछे जाने पर कात्यायन-सगोत्र स्कन्दक शंकित, कांक्षित, विचिकित्सित, भेदसमापन्न और कलुष-समापन्न हो जाता है। वह वैशालिकश्रावक पिंगल निर्ग्रन्थ को कुछ भी उत्तर देने में अपने आपको समर्थ नहीं पाता है, मौन हो जाता है।

२८. वैशालिकश्रावक पिंगल निर्ग्रन्थ कात्यायन-सगोत्र स्कन्दक से दूसरी बार और तीसरी बार भी यह प्रश्न पूछता है—मागध!

१. क्या लोक सान्त है अथवा अनन्त है? २. जीव सान्त है अथवा अनन्त? ३. सिद्धि सान्त है अथवा अनन्त है? ४. सिद्ध सान्त है अथवा अनन्त है? ५. किस मरण से मरता हुआ जीव बढ़ता है अथवा घटता है?—इस प्रकार मेरे द्वारा पूछे गए इतने प्रश्नों का तुम उत्तर दो।

२९. वैशालिकश्रावक पिंगल निर्ग्रन्थ के द्वारा दूसरी बार और तीसरी बार भी ये प्रश्न पूछे जाने पर कात्यायन-सगोत्र स्कन्दक शंकित, कांक्षित, विचिकित्सित, भेदसमापन्न और कलुषसमापन्न हो जाता है। वह वैशालिकश्रावक पिंगल निर्ग्रन्थ को कुछ भी उत्तर देने से अपने आपको समर्थ नहीं पाता है, मौन हो जाता है।

३०. श्रावस्ती नगरी शृंगाटकों, तिराहों, चौराहों, चौहटों, चार द्वार वाले स्थानों, राजमार्गों और मार्गों पर महान् जनसम्मर्द, जनव्यूह, जनबोल, जनकलकल, जन-ऊर्मि, जन-उत्कलिका, जनसन्निपात बहुजन परस्पर इस प्रकार आख्यान, भाषण, प्रज्ञापन और प्ररूपण करते हैं—

देवानुप्रियो! धर्मतीर्थ के आदिकर्ता यावत् सिद्धिगति नामक स्थान को प्राप्त करने के इच्छुक श्रमण भगवान् महावीर क्रमानुसार विचरण, ग्रामानुग्राम में परिव्रजन करते हुए यहां आए हैं, यहां संप्राप्त हुए हैं, यहां समवसुत हुए हैं, इसी कयंजला नगरी के बाहर छत्रपलाशक चैत्य में प्रवास-योग्य स्थान की अनुमति लेकर संयम और तप से अपने आप को भावित करते हुए रह रहे हैं।

देवानुप्रियो! ऐसे अर्हत् भगवानों के नाम-गोत्र का श्रवण भी महान् फलदायक है, फिर अभिगमन, वन्दन, नमस्कार, प्रतिपृच्छा और पर्युपासना का कहना ही क्या? एक भी आर्य धार्मिक सुवचन का श्रवण महान् फलदायक है, फिर विपुल-अर्थ-ग्रहण का कहना ही क्या? इसलिए देवानुप्रियो! हम चलें, श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करें, सत्कार-

सम्मान करें, भगवान् कल्याणकारी, मंगल, देव और प्रशस्त चित्त वाले हैं, हम उनकी पर्युपसना करें। 'यह हमारे परभव और इस भव के लिए हित, शुभ, क्षम, निःश्रेयस और आनुगामिकता के लिए होगा', ऐसा सोचकर अनेक उग्र, उग्र-पुत्र, भोज, भोज-पुत्र-इस प्रकार द्विपदावतार के रूप में राजन्य, क्षत्रिय, माहन, भट, योद्धा, प्रशासक, मल्लवि, लिच्छवि, लिच्छवि-पुत्र तथा अन्य अनेक राजे, युवराज, कोटवाल, मडम्ब-पति, कुटुम्ब-पति, इभ्य, सेठ, सेना-पति, सार्थवाह आदि हर्षध्वनि, सिंहनाद, अस्पष्ट ध्वनि और कोलाहल ध्वनि से गर्जते हुए महासमुद्र की भांति शब्द करते हुए श्रावस्ती नगरी के ठीक मध्य से निकलते हैं।

३१. अनेक लोगों के पास इस बात को सुनकर, मन में अवधारण कर उस कात्यायनसगोत्र स्कन्दक के इस प्रकार का आध्यात्मिक, स्मृत्यात्मक, अभिलाषात्मक, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—श्रमण भगवान् महावीर कयंजला नगरी के बाहर छत्रपलाशक चैत्य में संयम और तपसे आत्मा को भावित करते हुए रह रहे हैं, इसलिए मैं वहां जाऊं और श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करूं। श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार कर उनका सत्कार-सम्मान कर कल्याणकारी, मंगल, देव और प्रशस्त चित्तवाले भगवान् की पर्युपासना कर इन इस प्रकार के अर्थों, हेतुओं, प्रश्नों, कारणों और व्याकरणों को पूछना मेरे लिए श्रेयस्कर होगा, ऐसी संप्रेक्षा करता है, संप्रेक्षा कर वह जहां परिव्राजकों का मठ है, वहां आता है, आकर त्रिदण्ड, कमण्डलु, रुद्राक्ष-माला, मृत्-पात्र, आसन, केसरिका (पात्र-प्रमार्जन का वस्त्र-खण्ड) टिकठी, अंकुश, छलनी (छन्ना), कलाई पर पहने जाने वाला रुद्राक्ष-आभरण, छत्र, चर्मनिर्मित पादत्राण और गेरुआ-वस्त्र-ग्रहण करता है। ग्रहण कर वह परिव्राजक के मठ से बाहर निकलता है, बाहर निकलकर उसने त्रिदण्ड, कमण्डलु, रुद्राक्ष-माला, मृत्-पात्र, आसन, केसरिका, टिकठी, अंकुश, छलनी, कलाई पर पहने जाने वाला रुद्राक्ष-आभरण को हाथ में लिया, छत्र तथा पादत्राण धारण किए, गेरुआ वस्त्र पहन कर श्रावस्ती नगरी के मध्य से निकलता है, निकल कर जहां कयंजला नगरी है, जहां छत्रपलाशक चैत्य है, जहां श्रमण भगवान् महावीर है, वहां जाने का उसने संकल्प किया।

३२. 'हे गौतम! इस सम्बोधन से सम्बोधित कर भगवान् महावीर ने भगवान् गौतम से इस प्रकार कहा—

गौतम! तुम अपने पूर्व मित्र को देखोगे।

भन्ते! किसको?

स्कन्दक को।

कब? कैसे? और कितने समय के पश्चात् ?

३३. गौतम! उस काल और उस समय में श्रावस्ती नामक नगरी थी—नगर-वर्णन। उस श्रावस्ती नगरी में गर्दभाल का शिष्य कात्यायनसगोत्र स्कन्दक नामक परिव्राजक रहता है। भगवान् ने वह सारी बात बताई यावत् जहां मैं हूं, उसने वहां आने का संकल्प किया। (अब) वह निकट आ गया है, थोड़ी दूरी पर है, वह मार्ग में चल ही रहा है, निकट मार्ग पर है। गौतम! तुम आज ही उसको देखोगे।

३४. 'भन्ते'! इस सम्बोधन से सम्बोधित कर भगवान् गौतम श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करते हैं। वन्दन-नमस्कार कर वे इस प्रकार बोले—भन्ते! कात्यायन-सगोत्र स्कन्दक देवानुप्रिय के पास मुण्ड होकर अगर धर्म से अनगर धर्म में प्रव्रजित होने में समर्थ है?

हां, वह समर्थ है।

३५. जितने में श्रमण भगवान् महावीर भगवान् गौतम से यह बात कह रहे हैं, उतने में वह कात्यायन-सगोत्र स्कन्दक शीघ्र ही उस स्थान पर पहुंच गया।

३६. भगवान् गौतम कात्यायन-सगोत्र स्कन्दक को निकट आया हुआ जानकर शीघ्र ही खड़े होते हैं, खड़े होकर शीघ्र ही सामने जाते हैं, जहां कात्यायन-सगोत्र स्कन्दक है, वहां पहुंचते हैं, पहुंचकर उन्होंने कात्यायन-सगोत्र स्कन्दक से इस प्रकार कहा—हे स्कन्दक! स्वागत है स्कन्दक! सुस्वागत है स्कन्दक! अन्वागत है स्कन्दक! स्वागत-अन्वागत है स्कन्दक! स्कन्दक! श्रावस्ती नगरी में वैशालिकश्रावक निर्ग्रन्थ पिंगल ने तुमसे यह प्रश्न पूछा—मागध! क्या लोक सान्त है अथवा अनन्त है? इस प्रकार गौतम ने वह सारी बात कही यावत् जहां भगवान् महावीर है, वहां तुम आए हो। स्कन्दक! क्या यह अर्थ संगत है?

हां, है।

३७. उस कात्यायन-सगोत्र स्कन्दक ने भगवान् गौतम से इस प्रकार कहा—गौतम! वह ऐसा तथारूप ज्ञानी अथवा तपस्वी कौन है जिसने मेरा यह रहस्यपूर्ण अर्थ तुम्हें बताया, जिससे यह तुम जानते हो?

३८. भगवान् गौतम ने कात्यायन-सगोत्र स्कन्दक से इस प्रकार कहा—स्कन्दक! मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक श्रमण भगवान् महावीर हैं। वे उत्पन्न-ज्ञान-दर्शन के धारक, अर्हत्, जिन, केवली, अतीत, वर्तमान और भविष्य के विज्ञाता, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं। उन्होंने मुझे तुम्हारा यह रहस्यपूर्ण अर्थ बताया। स्कन्दक! जिससे यह मैं जानता हूं।

३९. कात्यायन-सगोत्र स्कन्दक ने भगवान् गौतम से इस प्रकार कहा—गौतम! हम चलें, तुम्हारे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक, श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करें, सत्कार-सम्मान करें। वे कल्याणकारी, मंगल देव और प्रशस्तचित्तवाले हैं, उनकी हम पर्युपासना करें।

देवानुप्रिय! जैसे तुम्हें सुख हो, प्रतिबंध मत करो।

४०. भगवान् गौतम ने कात्यायन-सगोत्र स्कन्दक के साथ जहां श्रमण भगवान् महावीर थे, वहां जाने का संकल्प किया।

४१. उस काल और उस समय श्रमण भगवान् महावीर प्रतिदिनभोजी थे।

४२. प्रतिदिनभोजी श्रमण भगवान् महावीर का शरीर प्रधान, शृंगारित (अतिशयशोभित), कल्याण, शिव, धन्य, मंगलमय, अलंकृत न होने पर भी विभूषित, लक्षण, व्यञ्जन, गुणों से युक्त और श्री से अतीव-अतीव उपशोभमान है।

४३. वह कात्यायन-सगोत्र स्कन्दक प्रतिदिनभोजी श्रमण भगवान् महावीर के प्रधान, शृंगारित, कल्याण, शिव, धन्य, मंगलमय, अलंकृत न होने पर भी विभूषित, लक्षण, व्यञ्जन, गुणों से

युक्त और श्री से अतीव-अतीव उपशोभमान शरीर को देखता है, देखकर हृष्ट-तुष्ट चित्त वाला, आनन्दित, नन्दित, प्रीतिपूर्ण मन वाला, परम सौमनस्य-युक्त और हर्ष से विकस्वर हृदय वाला हो गया। जहां श्रमण भगवान् महावीर हैं, वहां वह आता है, आकर श्रमण भगवान् महावीर को दाईं ओर से प्रारंभ कर तीन बार प्रदक्षिणा करता है, वन्दन-नमस्कार करता है, वन्दन-नमस्कार कर न अति निकट, न अति दूर शुश्रूषा और नमस्कार की मुद्रा में उनके सम्मुख सविनय बद्धाञ्जलि होकर पर्युपासना करता है।

४४. 'हे स्कन्दक!' इस सम्बोधन से सम्बोधित कर श्रमण भगवान् महावीर ने कात्यायन-सगोत्र स्कन्दक से इस प्रकार कहा—स्कन्दक! श्रावस्ती नगरी में वैशालिक-श्रावक पिंगल निर्ग्रन्थ ने तुमसे यह प्रश्न पूछा—मागध!

१. क्या लोक सान्त है अथवा अनन्त है? २. जीव सान्त है अथवा अनन्त है? ३. सिद्धि सान्त है अथवा अनन्त है? ४. सिद्ध सान्त है अथवा अनन्त है? ५. किस मरण से मरता हुआ जीव बढ़ता है अथवा घटता है?—इस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर ने वह सारी बातें कहीं यावत् तुम मेरे पास आ गए। स्कन्दक! क्या यह अर्थ संगत है?

हां, है।

४५. स्कन्दक! तुम्हारे मन में जो इस प्रकार का आध्यात्मिक, स्मृत्यात्मक, अभिलाषात्मक, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—क्या लोक सान्त है अथवा अनन्त है? उसका भी यह अर्थ है—स्कन्दक! मैंने लोक चार प्रकार का बतलाया है, जैसे—द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतः और भावतः।

द्रव्यतः लोक एक और सान्त है।

क्षेत्रतः लोक असंख्येय कोटाकोटि योजन लम्बा-चौड़ा और असंख्येय कोटाकोटि योजन परिधि वाला प्रज्ञप्त है और वह अन्त-सहित है।

कालतः लोक कभी नहीं था, कभी नहीं है और कभी नहीं होगा, ऐसा नहीं है—वह था, है और होगा—वह ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित, नित्य है और उसका अन्त नहीं है, वह अनन्त है।

भावतः लोक में अनन्त वर्ण-पर्यव, अनन्त गन्ध-पर्यव, अनन्त रस-पर्यव, अनन्त स्पर्श-पर्यव, अनन्त संस्थान-पर्यव, अनन्त गुरुलघु-पर्यव, अनन्त अगुरुलघु-पर्यव हैं और उसका अन्त नहीं है, वह अनन्त है।

स्कन्दक! इसलिए द्रव्यतः लोक सान्त है, क्षेत्रतः लोक सान्त है, कालतः लोक अनन्त है, भावतः लोक अनन्त है।

४६. स्कन्दक! तुम्हारे मन में जो इस प्रकार का आध्यात्मिक, स्मृत्यात्मक, अभिलाषात्मक, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—

क्या जीव सान्त है अथवा अनन्त है?

उसका भी यह अर्थ है—स्कन्दक! मैंने जीव चार प्रकार का बतलाया है, जैसे—द्रव्यतः, क्षेत्रतः,

कालतः और भावतः।

द्रव्यतः जीव एक और सान्त है।

क्षेत्रतः जीव असंख्येय-प्रदेशी है, आकाश के असंख्येय-प्रदेशों में अवगाहन किए हुए है और वह अन्तःसहित है।

कालतः जीव कभी नहीं था, कभी नहीं है और कभी नहीं होगा, ऐसा नहीं है—वह था, है और होगा—वह ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित, नित्य है और उसका अन्त नहीं है, वह अनन्त है।

भावतः जीव में अनन्त ज्ञान-पर्यव, अनन्त दर्शन-पर्यव, अनन्त चारित्र-पर्यव अनन्त गुरुलघु-पर्यव, अनन्त अगुरुलघु-पर्यव हैं और उसका अन्त नहीं है, वह अनन्त है।

स्कन्दक! इसलिए द्रव्यतः जीव सान्त है, क्षेत्रतः जीव सान्त है, कालतः जीव अनन्त है, भावतः जीव अनन्त है।

४७. स्कन्दक! तुम्हारे मन में जो इस प्रकार का आध्यात्मिक, स्मृत्यात्मक, अभिलाषात्मक, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—

क्या सिद्धि सान्त है अथवा अनन्त है?

उसका भी यह अर्थ है—स्कन्दक! मैंने सिद्धि चार प्रकार की बतलाई है, जैसे—द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतः और भावतः।

द्रव्यतः सिद्धि एक और सान्त है।

क्षेत्रतः सिद्धि पैतालीस (४५) लाख योजन लम्बी-चौड़ी है, उसकी परिधि एक करोड़ बयालीस लाख तीस हजार दो सौ उनपचास (१,४२,३०,२४९) योजन से कुछ अधिक प्रशस्त है और वह अन्तःसहित है।

कालतः सिद्धि कभी नहीं थी, कभी नहीं है और कभी नहीं होगी, ऐसा नहीं है—वह थी, है और होगी—वह ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित, नित्य है और वह सान्त नहीं है, वह अनन्त है।

भावतः सिद्धि में अनन्त वर्ण-पर्यव, अनन्त गन्ध-पर्यव, अनन्त रस-पर्यव, अनन्त स्पर्श-पर्यव, अनन्त संस्थान-पर्यव, अनन्त गुरुलघु-पर्यव, अनन्त अगुरुलघु-पर्यव हैं और वह सान्त नहीं है, वह अनन्त है।

स्कन्दक! इसलिए द्रव्यतः सिद्धि सान्त है, क्षेत्रतः सिद्धि सान्त है, कालतः सिद्धि अनन्त है, भावतः सिद्धि अनन्त है।

४८. स्कन्दक! तुम्हारे मन में जो इस प्रकार का आध्यात्मिक, स्मृत्यात्मक, अभिलाषात्मक, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—

क्या सिद्ध सान्त है अथवा अनन्त है?

उसका भी यह अर्थ है—स्कन्दक! मैंने सिद्ध चार प्रकार का बतलाया है, जैसे द्रव्यतः, क्षेत्रतः, कालतः और भावतः।

द्रव्यतः सिद्ध एक और सान्त है।

क्षेत्रतः सिद्ध असंख्येय-प्रदेशी है, आकाश के असंख्येय प्रदेशों में अवगाहन किए हुए है और वह अन्त-सहित है।

कालतः सिद्ध सादि अपर्यवसित है और उसका अन्त नहीं है।

भावतः सिद्ध में अनन्त ज्ञान-पर्यव, अनन्त दर्शन-पर्यव, अनन्त अगुरुलघु-पर्यव हैं और उसका अन्त नहीं है, वह अनन्त है।

स्कन्दक! इसलिए द्रव्यतः सिद्ध सान्त है, क्षेत्रतः सिद्ध सान्त है, कालतः सिद्ध अनन्त है, भावतः सिद्ध अनन्त है।

४९. स्कन्दक! तुम्हारे मन में जो इस प्रकार का आध्यात्मिक, स्मृत्यात्मक, अभिलाषात्मक, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—

किस मरण से मरता हुआ जीव बढ़ता है अथवा घटता है?

उसका भी यह अर्थ है—स्कन्दक! मैंने मरण दो प्रकार का बतलाया है, जैसे—बाल-मरण और पण्डित-मरण।

वह बाल-मरण क्या है?

बाल-मरण बारह प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—

१. वलय-मरण—संयम-जीवन से च्युत होकर मरना।

२. वशात्त-मरण—इन्द्रियों के वशवर्ती होकर मरना।

३. अन्तःशल्य-मरण—माया आदि आन्तरिक शल्य की दशा में मरना।

४. तद्भव-मरण—तिर्यच या मनुष्य भव में विद्यमान प्राणी पुनः तद्भवयोग्य—तिर्यच या मनुष्य भवयोग्य आयुष्य का बंध कर वर्तमान आयु के क्षय होने पर मरता है, उसका मरण तद्भवमरण है।

५. गिरि-पतन—पर्वत से गिरकर मरना।

६. तरु-पतन—वृक्ष से गिरकर मरना।

७. जलन-प्रवेश—जल में डूब कर मरना।

८. ज्वलन-प्रवेश—अग्नि में प्रवेश कर मरना।

९. विष-भक्षण—जहर खाकर मरना।

१०. शस्त्रावपाटन—छूरी आदि शस्त्रों से शरीर को विदीर्ण कर मरना।

११. वैहानश—गले में फांसी लगा वृक्ष की शाखा से लटक कर मरना।

१२. गृद्ध-स्पृष्ट—गीध द्वारा मांस नोचे जाने पर मरना। स्कन्दक! इस बारह प्रकार के बालमरण से मरता हुआ जीव नैरयिक के अनन्त भव-ग्रहण से अपने आपको संयोजित करता है, तिर्यच के अनन्त भव-ग्रहण से अपने आप को संयोजित करता है, मनुष्य के अनन्त भव-ग्रहण से अपने आपको संयोजित करता है, देव के अनन्त भव-ग्रहण से अपने आपको

संयोजित करता है और वह आदि-अन्तहीन चतुर्गत्यात्मक संसार-कान्तार में अनुपर्यटन करता है। इस बालमरण से मरता हुआ जीव बढ़ता है, बढ़ता है।

यह बाल-मरण है।

वह पण्डित-मरण क्या है?

पण्डित-मरण दो प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे-प्रायोपगमन और भक्त-प्रत्याख्यान।

वह प्रायोपगमन क्या है?

प्रायोपगमन दो प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे-निर्हारि और अनिर्हारि। यह नियमतः अपरिक्म होता है।

यह प्रायोपगमन है।

वह भक्त-प्रत्याख्यान क्या है?

भक्त-प्रत्याख्यान दो प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे निर्हारि और अनिर्हारि। यह नियतमतः सपरिक्म होता है।

यह भक्त-प्रत्याख्यान है।

स्कन्दक! इस द्विविध पण्डित-मरण से मरता हुआ जीव नैरयिक के अनन्त भव-ग्रहण से अपने आपको विसंयोजित करता है, तिर्यच के अनन्त भव-ग्रहण से अपने आपको विसंयोजित करता है, मनुष्य के अनन्त भव-ग्रहण से अपने आप को विसंयोजित करता है, देव के अनन्त भव-ग्रहण से अपने आपको विसंयोजित करता है और वह आदि-अन्तहीन चतुर्गत्यात्मक संसार-कान्तार का व्यतिक्रमण करता है। इस पण्डित-मरण से मरता हुआ जीव घटता है, घटता है।

यह पण्डित-मरण है।

स्कन्दक! इस द्विविध बाल और पण्डित-मरण से मरता हुआ जीव बढ़ता है और घटता है।

५०. इस बिन्दु पर वह कात्यायन-सगोत्र स्कन्दक संबुद्ध होकर श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करता है। वन्दन-नमस्कार कर इस प्रकार बोलता है 'भन्ते! मैं आपके पास केवलि-प्रज्ञप्त धर्म को सुनना चाहता हूँ।'

'देवानुप्रिय! जैसे तुम्हें सुख हो, प्रतिबंध मत करो।'

५१. श्रमण भगवान् महावीर कात्यायन-सगोत्र स्कन्दक को उस विशाल परिषद् में धर्म कहते हैं। धर्मकथा वक्तव्य है।

५२. वह कात्यायन-सगोत्र स्कन्दक श्रमण भगवान् महावीर के पास धर्म सुनकर अवधारण कर हृष्ट-तुष्ट चित्त वाला, आनन्दित, नन्दित, प्रीतिपूर्ण मनवाला, परम-सौमनस्य-युक्त और हर्ष से विकस्वर हृदय वाला हो गया। वह उठने की मुद्रा में उठता है, उठकर श्रमण भगवान् महावीर को दायीं ओर से प्रारम्भ कर तीन बार प्रदक्षिणा करता है, वन्दन-नमस्कार करता है, वन्दन-नमस्कार कर वह इस प्रकार बोला—

भन्ते! मैं निर्ग्रन्थ-प्रवचन में श्रद्धा करता हूँ।

भन्ते! मैं निर्ग्रन्थ-प्रवचन में प्रतीति करता हूँ।

भन्ते! मैं निर्ग्रन्थ-प्रवचन में रुचि करता हूँ।

भन्ते! मैं निर्ग्रन्थ-प्रवचन में अभ्युत्थान करता हूँ।

भन्ते! यह ऐसा ही है, भन्ते! यह तथा (संवादितापूर्ण) है, भन्ते! यह अवितथ है, भन्ते! यह असंदिग्ध है, भन्ते! यह इष्ट है, भन्ते! यह प्रतीप्सित (प्राप्त करने के लिए इष्ट) है और भन्ते! यह इष्ट-प्रतीप्सित है—

जैसा आप कह रहे हैं—ऐसा भाव प्रदर्शित कर वह श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करता है, वन्दन-नमस्कार कर उत्तर-पूर्व दिशाभाग (ईशान कोण) की ओर जाता है, जाकर त्रिदण्ड, कमण्डलु, यावत् धातुरक्त शाटक को एकान्त में डाल देता है, डालकर जहां श्रमण भगवान् महावीर हैं, वहां आता है। आकर श्रमण भगवान् महावीर को दायीं ओर से प्रारम्भ कर तीन बार प्रदक्षिणा करता है, प्रदक्षिणा कर वन्दन-नमस्कार करता है, वन्दन-नमस्कार कर वह इस प्रकार बोला—भन्ते! यह लोक बुढ़ापे और मौत से आदीप्त हो रहा है (जल रहा है), भन्ते! यह लोक बुढ़ापे और मौत से प्रदीप्त हो रहा है (प्रज्वलित हो रहा है), भन्ते! यह लोक बुढ़ापे और मौत से आदीप्त-प्रदीप्त हो रहा है।

जैसे किसी गृहपति के घर में आग लग जाने पर वह वहां जो अल्पभार वाला और बहुमूल्य आभरण होता है, उसे लेकर स्वयं एकान्त स्थान में चला जाता है। (और सोचता है—) अग्नि से निकाला हुआ यह आभरण पहले अथवा पीछे मेरे लिए हित, सुख, क्षम, निःश्रेयस और आनुगामिकता के लिए होगा।

“देवानुप्रिय! इसी प्रकार मेरा शरीर भी एक उपकरण है। यह इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मनोहर, स्थिरतर, विश्वसनीय, सम्मत, बहुमत, अनुमत और आभरण-करण्डक के समान है। इसे सर्दी न लगे, गर्मी न लगे, भूख न सताए, प्यास न सताए, चोर पीड़ा न पहुंचाए, हिंस्र पशु इस पर आक्रमण न करे, दंश और मशक इसे न काटे, वात- , पित्त- , श्लेष्म- और संनिपात-जनित विविध प्रकार के रोग और आतंक तथा परीषह और उपसर्ग इसका स्पर्श न करें, इस अभिसंधि से मैंने इसे पाला है। मेरे द्वारा इसका निस्तार होने पर यह परलोक में मेरे लिए हित, सुख, क्षम, निःश्रेयस और आनुगामिकता के लिए होगा। इसलिए देवानुप्रिय! मैं आपके द्वारा ही प्रव्रजित होना चाहता हूँ, मैं आपके द्वारा ही मुण्डित होना चाहता हूँ, मैं आपके द्वारा ही शैक्ष बनना चाहता हूँ, मैं आपके द्वारा ही शिक्षा प्राप्त करना चाहता हूँ तथा आपके द्वारा ही आचार, गोचर, विनय-वैनयिक-चरण-करण-यात्रामात्रा-मूलक धर्म का आख्यान चाहता हूँ।

५३. श्रमण भगवान् महावीर कात्यायन-सगोत्र स्कन्दक को स्वयं ही प्रव्रजित करते हैं, स्वयं ही मुण्डित करते हैं, स्वयं ही शैक्ष बनाते हैं, स्वयं ही शिक्षित करते हैं और स्वयं ही आचार-गोचर, विनय-वैनयिक-चरण-करण-यात्रामात्रा-मूलक धर्म का आख्यान करते हैं—देवानुप्रिय! इस प्रकार चलना चाहिए, इस प्रकार ठहरना चाहिए, इस प्रकार बैठना चाहिए, इस प्रकार

करवट लेनी चाहिए, इस प्रकार भोजन करना चाहिए, इस प्रकार बोलना चाहिए, इस प्रकार पूर्ण जागरूकता से प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों के प्रति संयम से संयत रहना चाहिए। इस अर्थ में किञ्चित् भी प्रमाद नहीं करना चाहिए।

५४. वह कात्यायन-सगोत्र स्कन्दक भगवान् महावीर के इस प्रकार के धार्मिक उपदेश को सम्यक् प्रकार से स्वीकार करता है—उसे भली-भांति जानकर वैसे ही (संयमपूर्वक) चलता है, वैसे ही ठहरता है, वैसे ही बैठता है, वैसे ही करवट लेता है, वैसे ही भोजन करता है, वैसे ही बोलता है, वैसे ही पूर्ण जागरूकता से प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों के प्रति संयम से संयत रहता है। इस अर्थ में वह प्रमाद नहीं करता।

५५. कात्यायन-सगोत्र स्कन्दक अनगार हो गया—वह विवेकपूर्वक चलता है, विवेकपूर्वक बोलता है, विवेकपूर्वक आहार की एषणा करता है, विवेकपूर्वक वस्त्रपात्र आदि को लेता और रखता है, विवेकपूर्वक मल, मूत्र, श्लेष्मा, नाक के मैल, शरीर के गाढ़े मैल का परिष्ठापन (विसर्जन) करता है, मन की संगत प्रवृत्ति करता है, वचन की संगत प्रवृत्ति करता है, शरीर की संगत प्रवृत्ति करता है, मन का निरोध करता है, वचन का निरोध करता है, शरीर का निरोध करता है, अपने आपको सुरक्षित रखता है, इन्द्रियों को सुरक्षित रखता है, ब्रह्मचर्य को सुरक्षित रखता है, संग (आसक्ति) का त्याग करता है, अनाचरण करने में लज्जा करता है, कृतार्थता का अनुभव करता है, समर्थ होने पर भी क्षमा करता है, इन्द्रियजयी है, अतिचार की विशुद्धि करता है, पौद्गलिक समृद्धि का संकल्प नहीं करता, उत्सुकता से मुक्त रहता है, भावधारा को आत्मोन्मुखी रखता है, सुश्रामण्य में रत है, इन्द्रिय और मन का निग्रह करता है और इस निर्ग्रन्थ-प्रवचन (जिन-शासन) को ही आगे रख कर चलता है।

५६. श्रमण भगवान् महावीर कयंजला नगरी और छत्रपलाश चैत्य से पुनः निष्क्रमण करते हैं, पुनः निष्क्रमण कर आसपास जनपद में विहार कर रहे हैं।

५७. वह स्कन्दक अनगार श्रमण भगवान् महावीर के तथारूप स्थविरों के पास सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन करता है, अध्ययन कर जहां श्रमण भगवान् महावीर हैं वहां आता है, आकर श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करता है, वन्दन-नमस्कार कर वह इस प्रकार बोला—भन्ते! मैं आपकी अनुज्ञा पाकर एकमासिकी प्रथम भिक्षु-प्रतिमा की उपसम्पदा स्वीकार कर विहार करना चाहता हूँ।

देवानुप्रिय! जैसे तुम्हें सुख हो, प्रतिबन्ध मत करो।

५८. वह स्कन्दक अनगार श्रमण भगवान् महावीर की अनुज्ञा प्राप्त कर हृष्ट चित्त वाला हुआ यावत् वह भगवान् को नमस्कार कर मासिकी भिक्षुप्रतिमा की उपसम्पदा स्वीकार कर विहार कर रहा है।

५९. वह स्कन्दक अनगार मासिकी भिक्षुप्रतिमा का यथासूत्र, यथाकल्प, यथामार्ग, यथातत्त्व, यथासाम्य, सम्यक् प्रकार से काया से स्पर्श करता है, पालन करता है, उसे शोधित करता है, पारित करता है, पूरित करता है, कीर्तित करता है, अनुपालित करता है, आज्ञा से उसकी आराधना करता है तथा सम्यक् प्रकार से काया से उसका स्पर्श कर, उसका पालन, शोधन,

पारण, पूरण, कीर्तन, अनुपालन और आज्ञा से आराधना कर जहां श्रमण भगवान् महावीर हैं वहां आता है, आकर श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करता है, वन्दन-नमस्कार कर इस प्रकार बोलता है—भन्ते! मैं आपकी अनुज्ञा पाकर द्विमासिकी भिक्षुप्रतिमा की उपसम्पदा को स्वीकार कर विहार करना चाहता हूं।

देवानुप्रिय! जैसे तुम्हें सुख हो, प्रतिबन्ध मत करो। वह द्विमासिकी प्रतिमा की उपसम्पदा को स्वीकार कर उसकी आज्ञा-पूर्वक आराधना करता है।

६०. इसी प्रकार त्रैमासिकी, चातुर्मासिकी, पांचमासिकी, षण्मासिकी, साप्तमासिकी, प्रथम सात रात-दिन की, द्वितीय सात रात-दिन की, तृतीय सात रात-दिन की, एक रात-दिन की और एक रात की प्रतिमा स्वीकार करता है, स्वीकार कर उसकी आज्ञा-पूर्वक आराधना करता है।

६१. वह स्कन्दक अनगार एक रात की भिक्षुप्रतिमा की यथासूत्र यावत् आराधना कर जहां श्रमण भगवान् महावीर हैं, वहां आता है, आकर श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करता है, वन्दन-नमस्कार कर वह इस प्रकार बोला—भन्ते! मैं आपकी अनुज्ञा पाकर गुणरत्न-संवत्सर तपःकर्म की उपसम्पदा स्वीकार कर विहार करना चाहता हूं।

देवानुप्रिय! जैसे तुम्हें सुख हो, प्रतिबन्ध मत करो।

६२. वह स्कन्दक अनगार श्रमण भगवान् महावीर की अनुज्ञा प्राप्तकर हृष्टतुष्ट चित्त वाला हुआ यावत् नमस्कार कर गुणरत्न-संवत्सर तपःकर्म की उपसम्पदा स्वीकार कर विहार करता है, जैसे—

प्रथम मास में बिना विराम (एकान्तर) चतुर्थ-चतुर्थभक्त (एक-एक दिन का उपवास) तपःकर्म करता है, दिन में स्थान-कायोत्सर्ग-मुद्रा और उकडू आसन में बैठ सूर्य के सामने मुंह कर आतापन-भूमि में आतापना लेता है और रात्रि में विरासन में बैठता है, निर्वस्त्र रहता है।

दूसरे मास में बिना विराम षष्ठ-षष्ठभक्त (दो-दो दिन का उपवास) तपःकर्म करता है। दिन में स्थान-कायोत्सर्ग-मुद्रा और उकडू आसन में बैठ सूर्य के सामने मुंह कर आतापन-भूमि में आतापना लेता है और रात्रि में विरासन में बैठता है, निर्वस्त्र रहता है।

इसी प्रकार तीसरी मास में अष्टम-अष्टमभक्त (तीन-तीन दिन का उपवास), चौथे मास में दशम-दशमभक्त (चार-चार दिन का उपवास), पांचवें मास में द्वादश-द्वादशभक्त (पांच-पांच दिन का उपवास) छठे मास में चतुर्दश-चतुर्दशभक्त (छह-छह दिन का उपवास), सातवें मास में षोडश-षोडशभक्त (सात-सात दिन का उपवास), आठवें मास में अष्टदश-अष्टदश (आठ-आठ दिन का उपवास), नवें मास में बीसवां-बीसवांभक्त (नव-नव दिन का उपवास), दसवें मास में बाईसवां-बाईसवांभक्त (दश-दश दिन का उपवास), ग्यारहवें मास में चौबीसवां-चौबीसवांभक्त (ग्यारह-ग्यारह दिन का उपवास), बारहवें मास में छबीसवां-छबीसवांभक्त (बारह-बारह दिन का उपवास), तेरहवें मास में अठाईसवां-अठाईसवांभक्त (तेरह-तेरह दिन का उपवास), चौदहवें मास में तीसवां-तीसवांभक्त (चौदह-चौदह दिन का उपवास), पन्द्रहवें मास में बत्तीसवां-बत्तीसवांभक्त (पन्द्रह-पन्द्रह दिन का उपवास) और

सोलहवें मास में बिना विराम चौतीसवां-चौतीसवांभक्त (सोलह-सोलह दिन का उपवास) तपः कर्म करता है। दिन में स्थान-कायोत्सर्ग-मुद्रा और उकड़ू आसन में बैठ सूर्य के सामने मुंहकर आतापनभूमि में आतापना लेता है और रात्रि में विरासन में बैठता है, निर्वस्त्र रहता है।

६३. वह स्कन्दक अनगार गुणरत्न-संवत्सर तपःकर्म की यथासूत्र, यथाकल्प यावत् आराधना कर जहां श्रमण भगवान् महावीर हैं वहां आता है, आकर श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करता है, वन्दन-नमस्कार कर अनेक चतुर्थभक्त, षष्ठभक्त, दशमभक्त, द्वादशभक्त, अर्धमास और मास-क्षपण-इस प्रकार विचित्र तपःकर्म के द्वारा आत्मा को भावित करता हुआ विहरण कर रहा है।

६४. वह स्कन्दक अनगार उस प्रधान, विपुल, अनुज्ञात, प्रगृहीत, कल्याण, शिव, धन्य, मंगलमय, शोभायित, उत्तरोत्तर वर्धमान, उदात्त, उत्तम, उदार और महान् प्रभावी तपःकर्म से सूखा, रूखा, मांस-रहित, चर्म से वेष्टित अस्थि वाला, उठते-बैठते समय किट-किट शब्द से युक्त, कृश और धमनियों का जाल-मात्र हो गया। वह प्राण-बल से चलता है और प्राण-बल से ठहरता है, वह वचन बोलने के पश्चाद् भी ग्लान होता है, वचन बोलता हुआ भी ग्लान होता है और वचन बोलूंगा यह चिन्तन करता हुआ भी ग्लान होता है। जैसे कोई इंधन से भरी हुई गाड़ी, पत्तों से भरी हुई गाड़ी, पत्र-सहित तिलों और मिट्टी के बर्तनों से भरी हुई गाड़ी, एरंड की लकड़ियों से भरी हुई गाड़ी तथा कोयलों से भरी हुई गाड़ी ताप लगने से सूखी हुई, सशब्द चलती है और सशब्द ठहरती है, इसी प्रकार स्कन्दक अनगार सशब्द (किट-किट की ध्वनि-सहित) चलता है और सशब्द ठहरता है, वह तप से उपचित और मांस-शोणित से अपचित हो गया। वह राख के ढेर से ढकी हुई अग्नि की भांति तप, तेज तथा तपस्तेज की श्री से अतीव-अतीव उपशोभित होता हुआ, उपशोभित होता हुआ रहता है।

६५. उस काल और उस समय राजगृह नगर में श्रमण भगवान् महावीर का समवसरण था यावत् परिषद् चली गई।

६६. किसी एक समय मध्यरात्रि में धर्म-जागरिका करते हुए उस स्कन्दक अनगार के मन में आध्यात्मिक, स्मृत्यात्मक, अभिलाषात्मक, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—

मैं इस विशिष्टरूप वाले प्रधान, विपुल, अनुज्ञात, प्रगृहीत, कल्याण, शिव, धन्य, मंगलमय, श्रीसम्पन्न, उत्तरोत्तर वर्धमान, उदात्त, उत्तम, उदार और महान्प्रभावी तपःकर्म से सूखा, रूखा, मांस-रहित, चर्म से वेष्टित अस्थि-वाला, उठते-बैठते समय किट-किट शब्द से युक्त, कृश और धमनियों का जाल-मात्र हो गया हूं। मैं प्राणबल से चलता हूं और प्राणबल से ठहरता हूं। मैं वचन बोलने के पश्चाद् भी ग्लान होता हूं और वचन बोलता हुआ भी ग्लान होता हूं। वचन बोलूंगा यह चिन्तन करता हुआ भी ग्लान होता हूं। जैसे कोई इंधन से भरी हुई गाड़ी, पत्तों से भरी हुई गाड़ी, पत्र-सहित तिलों और मिट्टी के बर्तनों से भरी हुई गाड़ी, एरंड की लकड़ियों से भरी हुई गाड़ी तथा कोयलों से भरी हुई गाड़ी ताप लगने से सूखी हुई सशब्द चलती है और सशब्द ठहरती है, इसी प्रकार मैं भी सशब्द (किट-किट की ध्वनि-सहित) चलता हूं और सशब्द ठहरता हूं। इस समय मुझ में उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार-

पराक्रम है; अतः जब तक मुझ में उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम है और जब तक मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक, जिन, सुहृस्ती, श्रमण भगवान् महावीर विहार कर रहे हैं, तब तक मेरे लिए यह श्रेय है कि मैं कल उषाकाल में पौ फटने पर प्रफुल्लित उत्पल और अर्ध विकसित कमल वाले तथा पीत आभा वाले प्रभात में लाल अशोक की दीप्ति, पलाश, तोते के मुख और गुञ्जार्ध के समान रंग वाले, जलाशय गत नलिनी-वन के उद्बोधक सहस्ररश्मि दिनकर सूर्य के उदित और तेज से देदीप्यमान होने पर श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार कर, न अति निकट न अति दूर सुश्रूषा और नमस्कार की मुद्रा में उनके सम्मुख सविनय बद्धाञ्जलि होकर पर्युपासन करूं, श्रमण भगवान् महावीर की अनुज्ञा प्राप्त होने पर मैं स्वयं ही पांच महाव्रतों की आरोपणा करूं, श्रमण-श्रमणियों से क्षमायाचना करूं, तथारूप कृतयोग्य स्थविरों के साथ धीमे-धीमे विपुल पर्वत पर चढ़ सघन मेघ के समान श्याम वर्ण वाले देवों के समागम-स्थल पृथ्वीशिलापट्ट का प्रतिलेखन करूं (उस पर) डाभ का बिछौना बिछाऊं, उस डाभ के बिछौने पर बैठ संलेखना की आराधना में लीन हो, भक्तपान का प्रत्याख्यान कर प्रायोपगमन अनशन की अवस्था में मृत्यु की आकांक्षा नहीं करता हुआ रहूँ—ऐसी संप्रेक्षा करता है, संप्रेक्षा कर दूसरे दिन उषाकाल में पौ फटने पर यावत् सहस्ररश्मि दिनकर सूर्य के उदित और तेज से देदीप्यमान होने पर जहां श्रमण भगवान् महावीर हैं वहां आता है, आकर श्रमण भगवान् महावीर को दायीं ओर से प्रारंभ कर तीन बार प्रदक्षिणा करता है, वन्दन-नमस्कार करता है, वन्दन-नमस्कार कर न अति निकट न अति दूर सुश्रूषा और नमस्कार की मुद्रा में उनके सम्मुख सविनय बद्धाञ्जलि होकर पर्युपासना करता है।

६७. स्कन्दक! इस सम्बोधन से संबोधित कर श्रमण भगवान् महावीर ने स्कन्दक अनगार से इस प्रकार कहा—स्कन्दक! मध्यरात्रि में धर्म-जागरिका करते हुए तुम्हारे मन में यह इस प्रकार का आध्यात्मिक, स्मृत्यात्मक, अभिलाषात्मक, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—मैं इस विशिष्ट रूपवाले प्रधान, विपुल तप से कृश हो गया हूं यावत् मृत्यु की आकांक्षा नहीं करता हुआ रहूँ—ऐसी संप्रेक्षा करते हो, संप्रेक्षा कर दूसरे दिन उषाकाल में पौ फटने पर यावत् सहस्ररश्मि दिनकर सूर्य के उदित और तेज से देदीप्यमान होने पर तुम जहां मैं हूं, वहां मेरे पास आए हो। स्कन्दक! क्या यह अर्थ संगत है?’

हां, यह संगत है।

देवानुप्रिय! जैसे तुम्हें सुख हो, प्रतिबंध मत करो।

६८. वह स्कन्दक अनगार श्रमण भगवान् महावीर की अनुज्ञा प्राप्त कर हृष्ट-तुष्ट चित्त, वाला, आनन्दित, नन्दित, प्रीतिपूर्ण मनवाला, परम सौमनस्य-युक्त और हर्ष से विकस्वर हृदय वाला हो गया। वह उठने की मुद्रा में उठता है, उठकर श्रमण भगवान् महावीर को दायीं ओर से प्रारंभ कर तीन बार प्रदक्षिणा करता है, वन्दन-नमस्कार करता है, वन्दन-नमस्कार कर वह स्वयं ही पांच महाव्रतों की आरोहणा करता है, आरोहणा कर श्रमण-श्रमणियों से क्षमायाचना करता है, क्षमायाचना कर तथारूप कृतयोग स्थविरों के साथ धीमे-धीमे विपुल पर्वत पर चढ़ता है, चढ़कर सघन मेघ के समान श्यामवर्ण वाले देवों के समागम-स्थल पृथ्वीशिलापट्ट का प्रतिलेखन करता है, प्रतिलेखन कर उच्चार-प्रश्रवण-भूमि का प्रतिलेखन करता है, प्रतिलेखन

कर डाध का बिछौना बिछाता है, बिछा कर पूर्व दिशा की ओर मुंह कर पर्यंक-आसन में बैठ दोनों हथेलियों से निष्पन्न सम्पुट वाली दसनखात्मक अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर, मस्तक पर टिकाकर इस प्रकार बोलता है—

नमस्कार हो अर्हत भगवान् को यावत् जो सिद्धिगति नामक स्थान को प्राप्त हो चुके हैं।

नमस्कार हो श्रमण भगवान् महावीर को यावत् जो सिद्धिगति नामक स्थान को प्राप्त करने के इच्छुक हैं।

‘यहां बैठा हुआ मैं वहां विराजित भगवान् को वन्दन करता हूं। वहां विराजित भगवान् यहां स्थित मुझे देखें’ ऐसा सोचकर वह वन्दन-नमस्कार करता है, वन्दन-नमस्कार कर वह इस प्रकार बोलता है—मैंने पहले भी श्रमण भगवान् महावीर के पास जीवनभर के लिए सर्व प्राणातिपात यावत् मिथ्या-दर्शन-शल्य का प्रत्याख्यान किया था। इस समय भी मैं श्रमण भगवान् महावीर के पास जीवन भर के लिए सर्व प्राणातिपात यावत् मिथ्या-दर्शन-शल्य का प्रत्याख्यान करता हूं। मैं जीवन भर के लिए सर्व अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य-इस चार प्रकार के आहार का प्रत्याख्यान करता हूं। यद्यपि मेरा यह शरीर मुझे इष्ट, कान्त, प्रिय यावत् वात- , पित्त- , श्लेष्म- और सन्निपात-जनित विविध प्रकार के रोग और आतंक तथा परीषह और उपसर्ग इसका स्पर्श न करें, इसलिए इसको भी मैं अन्तिम उच्छ्वास-निःश्वास तक छोड़ता हूं। ऐसा कर वह संलेखना की आराधना में लीन होकर भक्तपानका प्रत्याख्यान कर प्रायोपगमन अनशन की अवस्था में मृत्यु की आकांक्षा नहीं करता हुआ रह रहा है।

६९. वह स्कन्दक अनगार श्रमण भगवान् महावीर के तथारूप स्थविरो के पास सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन कर प्रायः परिपूर्ण बारह वर्ष के श्रामण्य-पर्याय का पालन कर एक मास की संलेखना से अपने आप (शरीर) को कृश बना, अनशन के द्वारा साठ भक्त (भोजन के समय) का छेदन कर आलोचना और प्रतिक्रमण कर समाधिपूर्ण दशा में क्रमशः दिवंगत हो गया।

७०. वे स्थविर भगवान् स्कन्दक अनगार को दिवंगत जानकर परिनिर्वाणहेतुक कायोत्सर्ग करते हैं, कायोत्सर्ग कर उसके पात्र और चीवरों को लेते हैं, लेकर धीमे-धीमे विपुल पर्वत से नीचे उतरते हैं, नीचे उतर कर जहां श्रमण भगवान् महावीर हैं वहां आते हैं, आकर श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करते हैं, वन्दन-नमस्कार कर वे इस प्रकार कहते हैं—देवानुप्रिय का अन्तेवासी स्कन्दक नाम का अनगार, जो प्रकृति से भद्र और प्रकृति से उपशान्त था, जिसकी प्रकृति में क्रोध, मान, माया, लोभ प्रतनु (पतले) थे, जो मृदु-मार्दव से सम्पन्न, आत्मलीन और विनीत था, उसने देवानुप्रिय की आज्ञा पाकर स्वयं ही पांच महाव्रतों की आरोहणा की, श्रमण-श्रमणियों से क्षमायाचना की, हमारे साथ धीरे-धीरे विपुल पर्वत पर चढ़ा यावत् एक मास की संलेखना से अपने आप को कृश बनाया, अनशन के द्वारा साठ भक्तों का छेदन किया, वह आलोचना और प्रतिक्रमण कर समाधिपूर्ण दशा में क्रमशः दिवंगत हो गया। ये प्रस्तुत हैं उसके साधु-जीवन के उपकरण।

७१. ‘भन्ते!’ इस सम्बोधन से संबोधित कर भगवान् गौतम श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करते हैं, वन्दन-नमस्कार कर इस प्रकार कहते हैं—देवानुप्रिय का शिष्य स्कन्दक नाम का अनगार कालमास में काल (मृत्यु) को प्राप्त कर कहां गया है? कहां उपपन्न हुआ

है? 'गौतम! इस सम्बोधन से सम्बोधित कर श्रमण भगवान् महावीर भगवान् गौतम से इस प्रकार कहते हैं—'गौतम! मेरा अन्तेवासी स्कन्दक अनगर, जो प्रकृति से भद्र और प्रकृति से उपशान्त था, जिसकी प्रकृति में क्रोध-मान-माया-लोभ प्रतनु थे, जो मृदु-मार्दव से सम्पन्न, आत्मलीन और विनीत था, उसने मेरी आज्ञा पाकर स्वयं ही पांच महाव्रतों की आरोहणा की यावत् एक महीने की संलेखना से अपने आप को कृश बनाया, अनशन के द्वारा साठ भक्तों का छेदन किया। वह आलोचना और प्रतिक्रमण कर, समाधिपूर्ण दशा में कालमास में काल को प्राप्त कर अच्युत कल्प में देवरूप में उपपन्न हुआ है।

७२. वहां कुछ देवों की स्थिति बाईस सागरोपम की प्रज्ञप्त है। वहां स्कन्दक देव की स्थिति भी बाईस सागरोपम है।

७३. भन्ते! वह स्कन्दक देव आयु-क्षय, भव-क्षय और स्थिति-क्षय के अनन्तर उस देवलोक से च्यवन कर कहां जाएगा? कहां उपपन्न होगा?

गौतम! वह महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध, प्रशान्त, मुक्त और परिनिर्वृत होगा, सब दुःखों का अन्त करेगा।

दूसरा उद्देशक

समुद्घात-पद

७४. भन्ते! समुद्घात कितने प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! समुद्घात सात प्रज्ञप्त हैं, जैसे—वेदना-समुद्घात, कषाय-समुद्घात, मारणान्तिक-समुद्घात, वैक्रिय-समुद्घात, तैजस-समुद्घात, आहारक-समुद्घात और केवलि-समुद्घात। छाद्वास्थिक समुद्घात को छोड़कर पण्णवणा का समुद्घात-पद (३६) ज्ञातव्य है।

तीसरा उद्देशक

पृथ्वी-पद

७५. भन्ते! पृथ्वियां कितनी प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! पृथ्वियां सात प्रज्ञप्त हैं, जैसे—रत्न-प्रभा, शर्करा-प्रभा, बालुका-प्रभा, पंक-प्रभा, धूम-प्रभा, तमः-प्रभा और तमस्तमा। जीवाजीवाभिगम में नैरयिकों का जो दूसरा उद्देशक है, वह ज्ञातव्य है यावत्—

७६. क्या सब प्राणी (वहां) पहले भी उपपन्न हुए हैं?

हां, गौतम! अनेक बार अथवा अनन्त बार।

चौथा उद्देशक

इन्द्रिय-पद

७७. भन्ते! इन्द्रियां कितनी प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! इन्द्रियां पांच प्रज्ञप्त हैं, जैसे श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और

स्पर्शनिन्द्रिय। प्रथम इन्द्रिय-उद्देशक (पणवणा के इन्द्रिय-पद (१५) का प्रथम उद्देशक) ज्ञातव्य है, यावत्—

७८. भन्ते! अलोक किससे स्पृष्ट है? अथवा कितने कार्यों से स्पृष्ट हैं?

गौतम! वह न धर्मास्तिकाय से स्पृष्ट है यावत् न आकाशास्तिकाय से स्पृष्ट है। वह आकाशास्तिकाय के प्रदेशों से स्पृष्ट है। वह न पृथ्वीकाय से स्पृष्ट है यावत् न अद्वा समय से स्पृष्ट है। वह एक, अजीव द्रव्य का देश, अगुरुलघु, अनन्त अगुरुलघु-गुणों से संयुक्त है और अनन्तवें भाग से न्यून परिपूर्ण आकाश है।

पांचवा उद्देशक

परिचारणा-वेद-पद

७९. भन्ते! अन्ययूथिक ऐसा आख्यान, भाषण, प्रज्ञापन और प्ररूपण करते हैं—

१. मृत्यु को प्राप्त हुआ निर्ग्रन्थ अपनी देव-रूप आत्मा के द्वारा वहां पर अन्य देवों और अन्य देवों की देवियों का आश्लेष कर-कर परिचारणा नहीं करता, वह अपनी देवियों का आश्लेष कर-कर परिचारणा नहीं करता, किन्तु वह अपने ही बनाए हुए विभिन्न रूपों से परिचारणा करता है।

२. एक जीव एक समय में दो वेदों का वेदन करता है, जैसे—स्त्री-वेद का और पुरुष-वेद का।

जिस समय वह स्त्री-वेद का वेदन करता है, उसी समय पुरुष-वेद का वेदन करता है।

जिस समय वह पुरुष-वेद का वेदन करता है, उसी समय स्त्री-वेद का वेदन करता है।

वह स्त्री-वेद के वेदन से पुरुष-वेद का वेदन करता है और पुरुष-वेद के वेदन से स्त्री-वेद का वेदन करता है।

इस प्रकार एक जीव भी एक समय में दो वेदों का वेदन करता है, जैसे—स्त्री-वेद का और पुरुष-वेद का।

८०. भन्ते! यह इस प्रकार कैसे है?

गौतम! अन्ययूथिक, जो ऐसा आख्यान करते हैं यावत् जीव एक साथ स्त्री-वेद और पुरुष-वेद दोनों का वेदन करते हैं। जो ऐसा कहते हैं, वे मिथ्या कहते हैं। गौतम! मैं इस प्रकार आख्यान, भाषण, प्रज्ञापन और प्ररूपण करता हूँ—

१. मृत्यु को प्राप्त हुआ निर्ग्रन्थ महान् ऋद्धि और महान् द्युति से सम्पन्न, महाबली, महान् यशस्वी, महान् सौख्य-युक्त, महान् सामर्थ्य वाले, ऊंची गति वाले और चिरकालिक स्थिति वाले किसी देवलोक में देव-रूप में उपपन्न होता है। वह महान् ऋद्धि से सम्पन्न यावत् दसों दिशाओं को उदद्योतित और प्रभासित करता हुआ, द्रष्टा के चित्त को प्रसन्न करने वाला, दर्शनीय, कमनीय और रमणीय देव होता है। वह अन्य देवों और देवों की देवियों का आश्लेष कर-कर परिचारणा करता है, अपनी देवियों का आश्लेष कर-कर परिचारणा करता है, किन्तु वह अपने बनाए हुए विभिन्न रूपों से परिचारणा नहीं करता।

२. एक जीव एक समय में एक ही वेद का वेदन करता है, जैसे—स्त्रीवेद का अथवा पुरुषवेद का।

जिस समय वह स्त्री-वेद का वेदन करता है, उस समय पुरुष-वेद का वेदन नहीं करता।

जिस समय वह पुरुष-वेद का वेदन करता है, उस समय स्त्री-वेद का वेदन नहीं करता।

वह स्त्री-वेद के उदय से पुरुष-वेद का वेदन नहीं करता और पुरुष-वेद के उदय से स्त्री-वेद का वेदन नहीं करता।

इस प्रकार एक जीव एक समय में एक ही वेद का वेदन करता है, जैसे—स्त्री-वेद का अथवा पुरुष-वेद का।

स्त्री उदयप्राप्त स्त्री-वेद के कारण पुरुष की इच्छा करती है और पुरुष उदय-प्राप्त पुरुष-वेद के कारण स्त्री की इच्छा करता है। वे दोनों परस्पर एक दूसरे की इच्छा करते हैं, जैसे—स्त्री पुरुष की इच्छा करती है, पुरुष स्त्री की इच्छा करता है।

८१. भन्ते! उदक-गर्भ उदक-गर्भ के रूप में काल की दृष्टि से कितने समय तक रहता है?

गौतम! जघन्यतः एक समय, उत्कर्षतः छह मास।

८२. भन्ते! तिर्यग्योनिक-गर्भ तिर्यग्योनिक-गर्भ के रूप में काल की दृष्टि से कितने समय तक रहता है?

गौतम! जघन्यतः अन्तर्मुहूर्तः, उत्कर्षतः आठ वर्ष।

८३. भन्ते! मानुषी-गर्भ मानुषी-गर्भ के रूप में काल की दृष्टि से कितने समय तक रहता है?

गौतम! जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त उत्कर्षतः बारह वर्ष।

८४. भन्ते! कायभवस्थ (माता के उदर में रहे हुए अपने गर्भ-शरीर में उत्पन्न होने वाला जीव) कायभवस्थ के रूप में काल की दृष्टि से कितने समय तक रहता है?

गौतम! जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त उत्कर्षतः चौबीस वर्ष।

८५. भन्ते! मनुष्य और पञ्चेन्द्रिय-तिर्यच का योनि-बीज (वीर्य) कितने काल तक योनिभूत (उत्पादक शक्तिवाला) रहता है?

गौतम! जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त उत्कर्षतः बारह मुहूर्त।

८६. भन्ते! एक जीव एक भव में कितने जीवों का पुत्र हो सकता है?

गौतम! जघन्यतः एक, दो या तीन और उत्कर्षतः नौ सौ तक जीवों का पुत्र हो सकता है।

८७. भन्ते! एक जीव के एक भव में कितने जीव पुत्र-रूप में उत्पन्न हो सकते हैं?

गौतम! जघन्यतः एक, दो या तीन और उत्कर्षतः नौ लाख जीव पुत्र-रूप में उत्पन्न हो सकता है।

८८. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—एक जीव के जघन्यतः एक, दो या तीन और उत्कर्षतः नौ लाख जीव पुत्र-रूप में उत्पन्न हो सकते हैं?

गौतम! स्त्री और पुरुष की कर्मकृत (कामोद्दीपक) योनि में मैथुनवृत्तिक नामक संयोग उत्पन्न

होता है। वे स्त्री और पुरुष स्नेह (वीर्य और शोणित) का संचय करते हैं। संचय करने के पश्चात् वहां जघन्यतः एक, दो या तीन और उत्कर्षतः नौ लाख जीव पुत्र-रूप में उत्पन्न हो सकते हैं। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—जघन्यतः एक, दो या तीन उत्कर्षतः नौ लाख जीव पुत्र-रूप में उत्पन्न हो सकते हैं।

८९. भन्ते! मैथुन सेवन करने वाले जीव के कैसा असंयम होता है?

गौतम! जिस प्रकार कोई पुरुष तपी हुई शलाका से रूई से भरी हुई नालिका अथवा बूर से भरी हुई नालिका को ध्वस्त कर देता है। गौतम! मैथुन सेवन करने वाले जीव के ऐसा असंयम होता है।

९०. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है, इस प्रकार भगवान् गौतम यावत् संयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए विहरण कर रहे हैं।

९१. श्रमण भगवान् महावीर राजगृह नगर और गुणशिल चैत्य से पुनः निष्क्रमण करते हैं, पुनः निष्क्रमण कर राजगृह के आसपास जनपद में विहरण कर रहे हैं।

तुंगिकानगरी-श्रमणोपासक-पद

९२. उस काल और उस समय तुंगिका नामक नगरी थी—नगर-वर्णन।

९३. उस तुंगिका नगरी के बाहर उत्तर-पूर्व दिग्भाग (ईशानकोण) में पुष्पवतिक नामक चैत्य था—चैत्य-वर्णन।

९४. उस तुंगिका नगरी में अनेक श्रमणोपासक रहते हैं। वे सम्पन्न और दीप्तिमान हैं। उनके विशाल और प्रचुर भवन शयन-आसन वाले और यान-वाहन से आकीर्ण हैं। उनके पास प्रचुर धन, सोना और चांदी हैं। वे आयोग और प्रयोग में संलग्न हैं। उनके घर में विपुलमात्रा में भोजन और पान दिया जा रहा है। उनके पास अनेक दास, दासी, गाय, भैंस और भेड़ें हैं। वे बहुजन के द्वारा अपरिभवनीय हैं। जीव-अजीव को जानने वाले, पुण्य-पाप के मर्म को समझने वाले, आसव, संवर, निर्जरा, क्रिया, अधिकरण, बंध और मोक्ष के विषय में कुशल, सत्य के प्रति स्वयं निश्चल, देव, असुर, नाग, सुवर्ण, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, गरुड़, गन्धर्व, महोरग आदि देव-गणों के द्वारा निर्ग्रन्थ-प्रवचन से अविचलनीय, इस निर्ग्रन्थ-प्रवचन में शंका-रहित, कांक्षा-रहित, विचिकित्सा-रहित, यथार्थ को सुनने वाले, ग्रहण करने वाले, उस विषय में प्रश्न करने वाले, उसे जानने वाले, उसका विनिश्चय करने वाले, (निर्ग्रन्थ प्रवचन के) प्रेमानुराग से अनुरक्त अस्थि-मज्जावाले 'आयुष्यमन्'। यह निर्ग्रन्थ-प्रवचन यथार्थ है। यह परमार्थ है, शेष अनर्थ है', (ऐसा मानने वाले), आगल को ऊंचा और दरवाजे को खुला रखने वाले, अन्तःपुर और दूसरों के घर में बिना किसी रुकावट के प्रवेश करने वाले, चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा को प्रतिपूर्णा पौषध का सम्यक् अनुपालन करने वाले, श्रमण-निर्ग्रन्थों को प्रासुक और एषणीय अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, पात्र, कंबल, पादप्रौद्य, औषध-भैषज्य, पीठ-फलक, शय्या और संस्तारक का दान देने वाले, बहुत शीलव्रत, गुण, विरमण, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास के द्वारा तथा यथापरिगृहीत तपःकर्म के द्वारा आत्मा को भावित करते हुए रह रहे हैं।

९५. उस काल और उस समय पार्श्वपत्नीय स्थविर भगवान् जो जाति-सम्पन्न, कुल-सम्पन्न, बल-सम्पन्न, रूप-सम्पन्न, विनय-सम्पन्न, ज्ञान-सम्पन्न, दर्शन-सम्पन्न, चारित्र-सम्पन्न, लज्जा-सम्पन्न, लाघव-सम्पन्न, ओजस्वी, तेजस्वी, वर्चस्वी, यशस्वी, क्रोधजयी, मानजयी, मायाजयी, लोभजयी, निद्राजयी, जितेन्द्रिय, परीषहजयी, जीने की आशांसा और मृत्यु के भय से मुक्त, तप-प्रधान, गुण-प्रधान, करण-प्रधान, चरण-प्रधान, निग्रह-प्रधान, निश्चय-प्रधान, मार्दव-प्रधान, आर्जव-प्रधान, लाघव-प्रधान, क्षमा-प्रधान, मुक्ति-प्रधान, विद्या-प्रधान, मन्त्र-प्रधान, वेद-प्रधान, ब्रह्म-प्रधान, नय-प्रधान, नियम-प्रधान, सत्य-प्रधान, शौच-प्रधान, चारुप्रज्ञ, पवित्र हृदय वाले, निदान-रहित, उत्सुकता-रहित, आत्मोन्मुखी भावधारा वाले, सुश्रामण्य में रत, प्रश्न का यथार्थ उत्तर देने वाले, कुत्रिकापण-तुल्य, बहुश्रुत और बहुत परिवार वाले हैं, वे पांच सौ अनगारों के साथ सपरिवृत होकर अनुक्रम से परिव्रजन करते हुए एक ग्राम से दूसरे ग्राम में घूमते हुए सुखपूर्वक विहरण करते हुए जहां तुंगिका नगरी है, जहां पुष्पवतिक चैत्य है, वहां आए और आकर प्रवासयोग्य स्थान की अनुमति लेकर संयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए रह रहे हैं।

९६. उस तुंगिका नगरी के शृङ्गाटकों, तिराहों, चौराहों, चौहट्टों, चार द्वार वाले स्थानों, राजमार्गों और मार्गों पर यावत् नागरिक जन एक ही दिशा के अभिमुख जा रहे हैं।

९७. वे श्रमणोपासक इस कथा को सुनकर हृष्ट-तुष्ट चित्तवाले, आनन्दित, प्रीतिपूर्ण मन वाले, परम-सौमनस्य-युक्त और हर्ष से विकस्वर हृदय वाले हो गए। वे परस्पर एक दूसरे को सम्बोधित कर इस प्रकार बोले—देवानुप्रियो! पार्श्वपत्नीय स्थविर भगवान् जो जाति-सम्पन्न हैं यावत् प्रवास-योग्य स्थान की अनुमति लेकर संयम और तप से अपने आप को भावित करते हुए रह रहे हैं।

देवानुप्रियो! तथारूप स्थविर भगवान् के नाम-गोत्र का श्रवण भी महान फलदायक है, फिर अभिगमन, वन्दन, नमस्कार, प्रतिपृच्छा और पर्युपासना का कहना ही क्या? एक भी आर्य धार्मिक सुवचन का श्रवण महान् फलदायक है फिर विपुल अर्थ-ग्रहण का कहना ही क्या? इसलिए देवानुप्रिय! हम चलें, स्थविर भगवान् को वन्दन-नमस्कार करें, सत्कार-सम्मान करें। वे कल्याणकारी हैं, मंगल, देव और प्रशस्त चित्तवाले हैं, उनकी पर्युपासना करें। यह हमारे परभव और इहभव के लिए हित, सुख, क्षम, निःश्रेयस् और आनुगमिकता के लिए होगा। ऐसा सोचकर वे परस्पर, इस विषय की प्रतिज्ञा करते हैं, प्रतिज्ञा कर जहां अपने-अपने घर हैं, वहां आते हैं, वहां आकर उन्होंने स्नान किया, बलिकर्म किया, कौतुक (तिलक आदि) मंगल (दधि, अक्षत आदि) और प्रायश्चित्त किया, शुद्ध प्रावेश्य (सभा में प्रवेशोचित) मांगलिक वस्त्रों को विधिवत् पहना। अल्पभार और बहुमूल्य वाले आभरणों से शरीर को अलंकृत किया। (इस प्रकार सज्जित होकर वे) अपने-अपने घरों से निकलकर एक साथ मिलते हैं। एक साथ मिलकर पैदल चलते हुए तुंगिका नगरी के बीचोंबीच निर्गमन करते हैं, निर्गमन कर जहां पुष्पवतिक चैत्य है, वहां आते हैं, वहां आकर पांच प्रकार के अभिगमों से स्थविर भगवान् के पास जाते हैं। (जैसे—१. सचित्त द्रव्यों को छोड़ना २. अचित्त द्रव्यों को छोड़ना, २. एक-शाटक-वाला

उत्तरासंग करना ४. दृष्टिपात होते ही बद्धाञ्जलि होना ५. मन को एकाग्र करना) जहां स्थविर भगवान् हैं वहां आते हैं। आकर दायीं ओर से प्रारम्भ कर तीन बार प्रदक्षिणा करते हैं। प्रदक्षिणा कर वन्दन-नमस्कार करते हैं। वन्दन-नमस्कार कर तीन प्रकार की पर्युपासना के द्वारा पर्युपासना करते हैं।

१८. वे स्थविर भगवान् उन श्रमणोपासकों को उस विशालतम ऐश्वर्यशाली परिषद् में चातुर्याम धर्म का उपदेश करते हैं, जैसे—

सर्व-प्राणातिपात से विरत होना, सर्व-मृषावाद से विरत होना, सर्व-अदत्तादान से विरत होना, सर्व-बाह्य-आदान (परिग्रह) से विरत होना।

१९. वे श्रमणोपासक भगवान् स्थविरों के पास धर्म सुनकर, अवधारण कर, हृष्ट-तुष्ट चित्त वाले हो गए यावत् हर्ष से उनका हृदय विकस्वर हो गया। वे दायीं ओर से प्रारम्भ कर तीन बार प्रदक्षिणा करते हैं, प्रदक्षिणा कर इस प्रकार बोले—भन्ते! संयम का फल क्या है? तपस्या का फल क्या है?

१००. वे भगवान् स्थविर उन श्रमणोपासकों से इस प्रकार बोले—आर्यो! संयम का फल है अनास्रव और तप का फल है व्यवदान—निर्जरा।

१०१. वे श्रमणोपासक भगवान् स्थविरों से इस प्रकार बोले—भन्ते! यदि संयम का फल अनास्रव है और तप का फल व्यवदान है, तो देव देवलोक में किस कारण से उपपन्न होते हैं?

१०२. कालिकपुत्र नामक स्थविर ने उन श्रमणोपासकों से इस प्रकार कहा—आर्यो! पूर्वकृत तप से देव देवलोक में उपपन्न होते हैं।

मेहिल (अथवा मैथिल) नामक स्थविर ने उन श्रमणोपासकों से इस प्रकार कहा—आर्यो! पूर्वकृत संयम से देव देवलोक में उपपन्न होते हैं।

आनन्दरक्षित नामक स्थविर ने उन श्रमणोपासकों से इस प्रकार कहा—आर्यो! कर्म की सत्ता से देव देवलोक में उपपन्न होते हैं।

काश्यप नामक स्थविर ने उन श्रमणोपासकों से इस प्रकार कहा—आर्यो! आसक्ति के कारण देव देवलोक में उपपन्न होते हैं।

आर्यो! पूर्वकृत तप, पूर्वकृत संयम, कर्म की सत्ता और आसक्ति के कारण देव देवलोक में उपपन्न होते हैं। यह अर्थ सत्य है। अहंमनिता के कारण ऐसा नहीं कहा जा रहा है।

१०३. वे श्रमणोपासक भगवान् स्थविरों से ये इस प्रकार उत्तर सुनकर हृष्ट-तुष्ट हो भगवान् स्थविरों को वन्दन-नमस्कार करते हैं, प्रश्न पूछते हैं, अर्थ ग्रहण करते हैं, ग्रहण कर जिस दिशा से आए, उसी दिशा में लौट जाते हैं।

१०४. किसी दिन वे स्थविर तुंगिका नगरी के पुष्पवतिक चैत्य से लौट जाते हैं, बाह्य जनपदों में विहार करते हैं।

१०५. उस काल और उस समय में राजगृह नामक नगर था। वहां भगवान् महावीर पधारे

यावत् परिषद् आई और लौट गई।

१०६. उस काल और उस समय श्रमण भगवान् महावीर के ज्येष्ठ अंतेवासी इन्द्रभूति नामक अनगर यावत् विपुल-तेजो-लेश्या को अन्तर्लीन रखने वाले बिना विराम षष्ठभक्त तपःकर्म तथा संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए रह रहे हैं।

१०७. भगवान् गौतम षष्ठभक्त के पारण में प्रथम प्रहर में स्वाध्याय करते हैं, द्वितीय प्रहर में ध्यान करते हैं, तृतीय प्रहर में त्वरता-चपलता-और संभ्रम-रहित होकर मुखवस्त्रिका का प्रतिलेखन करते हैं, प्रतिलेखन कर पात्र-वस्त्र का प्रतिलेखन करते हैं, प्रतिलेखन कर पात्रों का प्रमार्जन करते हैं, प्रमार्जन कर पात्रों को हाथ में लेते हैं, लेकर जहां श्रमण भगवान् महावीर हैं, वहां आते हैं, आकर श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करते हैं, वन्दन-नमस्कार कर वे इस प्रकार बोले-भन्ते! मैं आपकी अनुज्ञा पाकर षष्ठभक्त के पारण में राजगृह नगर के उच्च, नीच और मध्यम कुलों की सामुदानिक भिक्षाचर्या के लिए घूमना चाहता हूं।

देवानुप्रिय! जैसे तुम्हें सुख हो, प्रतिबन्ध मत करो।

१०८. भगवान् गौतम श्रमण भगवान् महावीर की अनुज्ञा प्राप्त कर श्रमण भगवान् महावीर के पास गुणशील चैत्य से बाहर आते हैं, बाहर आकर त्वरता-, चपलता-और संभ्रम-रहित होकर युग-प्रमाण भूमि को देखने वाली दृष्टि से ईर्या समिति का शोधन करते हुए, शोधन करते हुए जहां राजगृह नगर है वहां आते हैं, आकर राजगृह नगर के उच्च, नीच और मध्यम कुलों की सामुदानिक भिक्षाचर्या के लिए घूमते हैं।

१०९. भगवान् गौतम राजगृह नगर के उच्च, नीच और मध्यम कुलों की सामुदानिक भिक्षाचर्या के लिए घूमते हुए अनेक व्यक्तियों से ये शब्द सुनते हैं-देवानुप्रिय! तुंगिका नगरी से बाहर पुष्पवतिक चैत्य में पार्श्वपत्तीय भगवान् स्थविरों से श्रमणोपासकों ने ये इस प्रकार के प्रश्न पूछे-भन्ते! संयम का फल क्या है? तप का फल क्या है?

उन भगवान् स्थविरों ने उन श्रमणोपासकों को इस प्रकार कहा-आर्यों! संयम का फल अनास्रव है, तप का फल व्यवदान है। इसी प्रकार यावत् पूर्वकृत तप, पूर्वकृत संयम, कर्म की सत्ता और आसक्ति के कारण देव देवलोकों में उपपन्न होते हैं। यह अर्थ सत्य है, अहंमानिता के कारण ऐसा नहीं कहा जा रहा है।

तो क्या यह ऐसे ही है?

११०. यह कथा सुनकर भगवान् गौतम के मन में श्रद्धा यावत् कुतूहल उत्पन्न हुआ। वे यथापर्याप्त भिक्षा लेते हैं, लेकर राजगृह नगर से बाहर आते हैं, त्वरा-, चपलता-और संभ्रम-रहित होकर युगप्रमाण भूमि को देखले वाली दृष्टि से ईर्या-समिति का शोधन करते हुए, शोधन करते हुए जहां गुणशिलक चैत्य है, जहां श्रमण भगवान् महावीर हैं, वहां आते हैं, आकर श्रमण भगवान् महावीर के न अति दूर और न अति निकट रहकर गमनागमन का प्रतिक्रमण करते हैं, प्रतिक्रमण कर, एषणा और अनेषणा की आलोचना करते हैं, आलोचना कर भक्त-पान दिखलाते हैं, दिखलाकर श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करते हैं, वन्दन-नमस्कार कर इस प्रकार बोले-भन्ते! मैं आपकी अनुज्ञा पाकर राजगृह नगर के उच्च,

नीच और मध्यम कुलों में सामुदानिक शिक्षा के लिए घूमता हुआ अनेक व्यक्तियों से ये शब्द सुनता हूँ—देवानुप्रिय! तुंगिका नगरी के बाहर पुष्पवतिक चैत्य में पार्श्वपितृय भगवान् स्थविरों से श्रमणोपासकों ने ये इस प्रकार के प्रश्न पूछे—भन्ते! संयम का फल क्या है? तप का फल क्या है?

इस प्रकार यावत् यह अर्थ सत्य है, अहंमनिता के कारण ऐसा नहीं कहा जा रहा है।

भन्ते! क्या वे भगवान् स्थविर उन श्रमणोपासकों को ये इस प्रकार के उत्तर देने में समर्थ हैं? अथवा असमर्थ हैं? वे भगवान् स्थविर उन श्रमणोपासकों को ये इस प्रकार के उत्तर देने में योग्य हैं? अथवा अयोग्य हैं? वे भगवान् स्थविर उन श्रमणोपासकों को ये इस प्रकार के उत्तर देने में दायित्वपूर्ण हैं? अथवा दायित्वपूर्ण नहीं हैं? वे भगवान् स्थविर उन श्रमणोपासकों को ये इस प्रकार के उत्तर देने में विशिष्ट दायित्वपूर्ण हैं? अथवा विशिष्ट दायित्वपूर्ण नहीं हैं?—आर्यों! पूर्वकृत तप से देव देवलोक में उपपन्न होते हैं। आर्यों! पूर्वकृत संयम, कर्म की सत्ता और आसक्ति के कारण देव देवलोक में उपपन्न होते हैं, यह अर्थ सत्य है, अहंमनिता के कारण ऐसा नहीं कहा जा रहा है।'

गौतम! वे भगवान् स्थविर उन श्रमणोपासकों को ये इस प्रकार के उत्तर देने में समर्थ हैं, असमर्थ नहीं है। गौतम! वे भगवान् स्थविर उन श्रमणोपासकों को ये इस प्रकार के उत्तर देने में योग्य हैं, अयोग्य नहीं हैं। गौतम! वे भगवान् स्थविर उन श्रमणोपासकों को ये इस प्रकार के उत्तर देने में दायित्वपूर्ण हैं, दायित्वहीन नहीं हैं। गौतम! वे भगवान् स्थविर उन श्रमणोपासकों को ये इस प्रकार के उत्तर देने में विशिष्ट दायित्वपूर्ण हैं, विशिष्ट दायित्वहीन नहीं हैं—आर्यों! पूर्वकृत तप से देव देवलोक में उपपन्न होते हैं। आर्यों! पूर्वकृत संयम, कर्म की सत्ता और आसक्ति के कारण देव देवलोक में उपपन्न होते हैं यह अर्थ सत्य है, अहंमनिता के कारण ऐसा नहीं कहा जा रहा है।

गौतम! मैं भी इसी प्रकार आख्यान करता हूँ, भाषण करता हूँ, प्रज्ञापन करता हूँ, प्ररूपणा करता हूँ—पूर्वकृत तप से देव देवलोक में उपपन्न होते हैं। पूर्वकृत संयम से देव देवलोक में उपपन्न होते हैं। कर्म की सत्ता से देव देवलोक में उपपन्न होते हैं। आसक्ति के कारण देव देवलोक में उपपन्न होते हैं।

आर्यों! पूर्वकृत तप, पूर्वकृत संयम, कर्म की सत्ता और आसक्ति के कारण देव देवलोक में उपपन्न होते हैं। यह अर्थ सत्य है, अहंमनिता के कारण ऐसा नहीं कहा जा रहा है।

१११. भन्ते। तथारूप श्रमण-माहन की पर्युपासना करने का क्या फल है?

गौतम! पर्युपासना का फल है—श्रवण।

भन्ते! श्रवण का क्या फल है?

गौतम! श्रवण का फल ज्ञान है।

भन्ते! ज्ञान का क्या फल है?

गौतम! ज्ञान का फल विज्ञान है।

भन्ते! विज्ञान का क्या फल है?

गौतम! विज्ञान का फल प्रत्याख्यान है।

भन्ते! प्रत्याख्यान का क्या फल है?

गौतम! प्रत्याख्यान का फल संयम है।

भन्ते! संयम का क्या फल है?

गौतम! संयम का फल अनास्रव है।

भन्ते! अनास्रव का क्या फल है?

गौतम! अनास्रव का फल तप है।

भन्ते! तप का क्या फल है?

गौतम! तप का फल व्यवदान है।

भन्ते! व्यवदान का क्या फल है?

गौतम! व्यवदान का फल अक्रिया है।

भन्ते! अक्रिया का क्या फल है?

गौतम! अक्रिया का अन्तिम फल सिद्धि है।

संग्रहणी गाथा

श्रवण, ज्ञान, विज्ञान, प्रत्याख्यान, संयम, अनास्रव, तप, व्यवदान, अक्रिया और सिद्धि।

उष्णजलकुण्ड-पद

११२. भन्ते! अन्ययूथिक इस प्रकार आख्यान करते हैं, भाषण करते हैं, प्रज्ञापन करते हैं, प्ररूपणा करते हैं—राजगृह नगर के बाहर वैभार पर्वत के नीचे अघ नामक एक विशाल द्रह प्रज्ञप्त है। उसकी लंबाई-चौड़ाई अनेक योजन है। उसका तटभाग नाना द्रुम-वनों से मण्डित है। वह श्री-सम्पन्न, द्रष्टा के चित्त को प्रसन्न करने वाला, दर्शनीय, कमनीय और रमणीय है। उसमें बहुत प्रधान बलाहक (जलीय स्कन्धों को ऊपर उठाने वाला ताप) भाप बनते हैं, बादल बनते हैं और बरसते हैं। उस जलाशय के भर जाने पर वह सदा सघन रूप में गरम-गरम जल का अभिनिःस्रवण करता है।

११३. भन्ते! यह इस प्रकार कैसे है?

गौतम! जो अन्ययूथिक इस प्रकार आख्यान करते हैं यावत् जो वे ऐसा आख्यान करते हैं, वे मिथ्या आख्यान करते हैं। गौतम! मैं इस प्रकार आख्यान, भाषण, प्रज्ञापन और प्ररूपणा करता हूँ—राजगृह नगर के बाहर वैभार पर्वत के न अतिदूर न अतिनिकट महातपोपतीप्रभव नामक निर्झर है। उसकी लम्बाई-चौड़ाई पांच सौ धनुष है। उसका तटभाग नाना द्रुम-वनों से मण्डित है, वह श्रीसंपन्न, द्रष्टा के चित्त को प्रसन्न करने वाला, दर्शनीय, कमनीय और रमणीय है। वहां अनेक उष्णयोनिक जीव और पुद्गल उदक-रूप में उत्पन्न होते हैं और विनष्ट होते हैं, च्युत होते हैं और उत्पन्न होते हैं। उस जलाशय के भर जाने पर उससे सदा

सघनरूप में गरम-गरम जल का अभिनिःस्रवण होता है। गौतम! यह महातपोपतीप्रभव नामक निर्झर है। गौतम! यह महातपोपतीप्रभव निर्झर का अर्थ प्रज्ञप्त है।

११४. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है—इस प्रकार कहते हुए

भगवान् गौतम श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करते हैं।

छठा उद्देशक

भाषा-पद

११५. भन्ते! मैं मनन करता हूँ, क्या यह अवधारिणी भाषा है? यहां भाषा-पद (पण्णवणा, पद ११) वक्तव्य है।

सातवां उद्देशक

स्थान-पद

११६. भन्ते! देव कितने प्रकार के प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! देव चार प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—भवनपति, वानमन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक।

११७. भन्ते! भवनवासी-देवों के स्थान कहां प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! इस रत्नप्रभा-पृथ्वी में प्रज्ञप्त हैं। स्थान-पद (पण्णवणा, २।३०-६३) में जो देवों की वक्तव्यता है, वह कथनीय है। उनका उपपात लोक के असंख्यातवें भाग में होता है। इस प्रकार यह समूचा प्रकरण यावत् सिद्धकण्डिका की समाप्ति (पण्णवणा, २।३०-६७) तक वक्तव्य है।

सौधर्म आदि कल्प-विमानों के प्रतिष्ठान (आधार), बाहल्य (मोटाई), ऊंचाई और संस्थान (आकृति) के लिए जीवाजीवाधिगम का जो वैमानिक उद्देश (३।१०५७-११३८) है, वह समग्र यहां वक्तव्य है।

आठवां उद्देशक

चमरसभा-पद

११८. भन्ते! असुरेन्द्र असुरराज चमर की सुधर्मा सभा कहां प्रज्ञप्त है?

गौतम! जम्बूद्वीप द्वीप में मेरूपर्वत से दक्षिणभाग में तिरछे असंख्य द्वीपसमुद्रों के पार चले जाने पर अरुणवर द्वीप है। उसकी बाहरी वेदिका के आगे अरुणोदय समुद्र है। उसका बयालीस हजार योजन अवगाहन करने पर असुरेन्द्र असुरराज चमर का तिगिच्छिकूट नामक उत्पात-पर्वत प्रज्ञप्त है—उसकी ऊंचाई सतरह सौ इक्कीस योजन है। उसका उद्वेध (गहराई) चार सौ तीस योजन और एक कोश है। उसका मूल में विष्कम्भ (चौड़ाई) एक हजार बाईस योजन है, मध्य में उसका विष्कम्भ चार सौ चौबीस योजन है और ऊपर का विष्कम्भ सात सौ तेईस योजन है। उसकी मूल में परिधि तीन हजार दो सौ बत्तीस कुछ कम योजन है, मध्य में परिधि एक हजार तीन सौ इक्तालीस कुछ कम योजन है, ऊपर की परिधि दो हजार दो सौ छयासी योजन से कुछ अधिक है। वह मूल में विस्तृत, मध्य में संकड़ा और ऊपर विशाल

है। उसकी आकृति श्रेष्ठ वज्र जैसी है, वह महामुकुन्द नामक वाद्य के संस्थान से संस्थित है, सर्वरत्नमय है। वह स्वच्छ, सूक्ष्म, चिकना, स्निग्ध, घुटा हुआ, प्रमार्जित, रज-रहित, निर्मल, निष्पङ्क, निरावरण दीप्ति वाला तथा प्रभा-, मरीचि- और उद्योतयुक्त है। द्रष्टा के चित्त को प्रसन्न करने वाला, दर्शनीय, कमनीय, और रमणीय है। वह एक पद्मवरवेदिका और वृक्षनिकुंज से चारों ओर से घिरा हुआ है। पद्मवरवेदिका और वृक्ष-निकुञ्जों का वर्णन।

१२०. उस बहुसमरमणीय भूभाग के प्रायः मध्यदेशभाग में एक महान् प्रासादावतंसक प्रज्ञप्त है—उसकी ऊंचाई दो सौ पचास योजन है और चौड़ाई एक सौ पच्चीस योजन है। प्रासाद का वर्णन। चंदोवा के उपर की भूमि का वर्णन। मणिपीठिका आठ योजन की है। चमर का सिंहासन उसके परिवार के सिंहासनों सहित वक्तव्य है।

१२१. उस तिगिच्छिकूट उत्पातपर्वत के दक्षिण भाग में अरुणोदय समुद्र में छह अरब, पचपन करोड़, पैंतीस लाख और पचास हजार योजन तिरछा चले जाने पर तथा नीचे की ओर रत्नप्रभा पृथ्वी का चालीस हजार योजन अवगाहन करने पर असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर की चमरचज्वा नामक राजधानी प्रज्ञप्त है। उसकी लम्बाई-चौड़ाई एक लाख योजन है। वह जम्बूद्वीप-प्रमाण है।

उसकी पीठिका लम्बाई-चौड़ाई में सोलह हजार योजन और परिधि में पचास हजार पांच सौ सितानवे योजन से कुछ कम है। उसका सर्व प्रमाण वैमानिक-देवों की राजधानी के प्रकार आदि से आधा जानना चाहिए।

नवां उद्देशक

समयक्षेत्र-पद

१२२. भन्ते! समय-क्षेत्र किसे कहा जाता है?

गौतम! अढ़ाई द्वीप और दो समुद्र—यह इतना क्षेत्र समय-क्षेत्र कहलाता है।

१२३. इनमें जम्बूद्वीप नामक द्वीप सब द्वीपों और समुद्रों के मध्य में है। इस प्रकार आभ्यन्तर पुष्करार्थ तक जीवाजीविभिगम की वक्तव्यता ज्ञातव्य है। उसमें से केवल ज्योतिष्क देवों की वक्तव्यता छोड़ देनी है।

दसवां उद्देशक

अस्तिकाय-पद

१२४. भन्ते! अस्तिकाय कितने प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! अस्तिकाय पांच प्रज्ञप्त हैं, जैसे—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय।

१२५. भन्ते! धर्मास्तिकाय में कितने वर्ण हैं? कितने गन्ध हैं? कितने रस हैं? कितने स्पर्श हैं?

गौतम! वह अवर्ण, अगन्ध, अरस, अस्पर्श; अरूपी, अजीव, शाश्वत, अवस्थित तथा लोक का एक अंशभूत द्रव्य है।

वह संक्षेप में पांच प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—द्रव्य की अपेक्षा से, क्षेत्र की अपेक्षा से, काल

की अपेक्षा से, भाव की अपेक्षा से और गुण की अपेक्षा से।

द्रव्य की अपेक्षा से धर्मास्तिकाय एक द्रव्य है।

क्षेत्र की अपेक्षा से लोक-प्रमाण मात्र है।

काल की अपेक्षा से कभी नहीं था—ऐसा नहीं है, कभी नहीं है—ऐसा नहीं है, कभी नहीं होगा—ऐसा नहीं है—वह अतीत में था, वर्तमान में है और भविष्य में रहेगा—अतः वह ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है।

भाव की अपेक्षा से अवर्ण, अगन्ध, अरस और अस्पर्श है।

गुण की अपेक्षा से गमन-गुण-गति में उदासीन सहायक है।

१२६. भन्ते! अधर्मास्तिकाय में कितने वर्ण हैं? कितने गन्ध हैं? कितने रस हैं? कितने स्पर्श हैं?

गौतम! वह अवर्ण, अगन्ध, अरस, अस्पर्श; अरूपी, अजीव, शाश्वत, अवस्थित तथा लोक का एक अंशभूत द्रव्य है।

वह संक्षेप में पाच प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—द्रव्य की अपेक्षा से, क्षेत्र की अपेक्षा से, काल की अपेक्षा से, भाव की अपेक्षा से और गुण की अपेक्षा से।

द्रव्य की अपेक्षा से अधर्मास्तिकाय एक द्रव्य है।

क्षेत्र की अपेक्षा से लोक-प्रमाण मात्र है।

काल की अपेक्षा से कभी नहीं था—ऐसा नहीं है, कभी नहीं है—ऐसा नहीं है, कभी नहीं होगा—ऐसा नहीं है—वह अतीत में था, वर्तमान में है और भविष्य में रहेगा—अतः वह ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है।

भाव की अपेक्षा से अवर्ण, अगन्ध, अरस और अस्पर्श है।

गुण की अपेक्षा से स्थान-गुण-स्थिति में उदासीन सहायक है।

१२७. भन्ते! आकाशास्तिकाय में कितने वर्ण हैं? कितने गन्ध हैं? कितने रस हैं? कितने स्पर्श हैं?

गौतम! वह अवर्ण, अगन्ध, अरस, अस्पर्श; अरूपी, अजीव, शाश्वत, अवस्थित तथा लोकालोक का एक अंशभूत द्रव्य है।

वह संक्षेप में पांच प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—द्रव्य की अपेक्षा से, क्षेत्र की अपेक्षा से, काल की अपेक्षा से, भाव की अपेक्षा से और गुण की अपेक्षा से।

द्रव्य की अपेक्षा से आकाशास्तिकाय एक द्रव्य है।

क्षेत्र की अपेक्षा से लोकालोक-प्रमाण अनन्त है।

काल की अपेक्षा से कभी नहीं था—ऐसा नहीं है, कभी नहीं है—ऐसा नहीं है, कभी नहीं होगा—ऐसा नहीं है—वह अतीत में था, वर्तमान में है और भविष्य में रहेगा—अतः वह ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है।

भाव की अपेक्षा से अवर्ण, अगन्ध, अरस और अस्पर्श है।

गुण की अपेक्षा से अवगाहन-गुण वाला है।

१२८. भन्ते! जीवास्तिकाय में कितने वर्ण हैं? कितने गन्ध हैं? कितने रस हैं? कितने स्पर्श हैं?

गौतम! वह अवर्ण, अगन्ध, अरस, अस्पर्श; अरूपी, जीव, शाश्वत, अवस्थित तथा लोक का एक अंशभूत द्रव्य है।

वह संक्षेप में पांच प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—द्रव्य की अपेक्षा से, क्षेत्र की अपेक्षा से, काल की अपेक्षा से, भाव की अपेक्षा से और गुण की अपेक्षा से।

द्रव्य की अपेक्षा से जीवास्तिकाय अनन्त जीव-द्रव्य है।

क्षेत्र की अपेक्षा से लोक-प्रमाणमात्र है।

काल की अपेक्षा से कभी नहीं था—ऐसा नहीं है, कभी नहीं है—ऐसा नहीं है, कभी नहीं होगा—ऐसा नहीं है—वह अतीत में था, वर्तमान में है और भविष्य में रहेगा—अतः वह ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय अव्यय, अवस्थित और नित्य है।

भाव की अपेक्षा से अवर्ण, अगन्ध, अरस और अस्पर्श है।

गुण की अपेक्षा से उपयोग गुण वाला है।

१२९. भन्ते! पुद्गलास्तिकाय में कितने वर्ण हैं? कितने गन्ध हैं? कितने रस हैं? कितने स्पर्श हैं?

गौतम! उसमें पांच वर्ण, पांच रस, दो गन्ध और आठ स्पर्श हैं;

वह रूपी, अजीव, शाश्वत, अवस्थित तथा लोक का एक अंशभूत द्रव्य है। वह संक्षेप में पांच प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—द्रव्य की अपेक्षा से, क्षेत्र की अपेक्षा से, काल की अपेक्षा से, भाव की अपेक्षा से और गुण की अपेक्षा से।

द्रव्य की अपेक्षा से पुद्गलास्तिकाय अनन्त द्रव्य है।

क्षेत्र की अपेक्षा से लोक-प्रमाण मात्र है।

काल की अपेक्षा से कभी नहीं था—ऐसा नहीं है, कभी नहीं है—ऐसा नहीं है, कभी नहीं होगा—ऐसा नहीं है—वह अतीत में था, वर्तमान में है और भविष्य में रहेगा—अतः वह ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है।

भाव की अपेक्षा से वर्णवान्, गन्धवान्, रसवान् और स्पर्शवान् है।

गुण की अपेक्षा से ग्रहणगुण-समुदित होने की योग्यता वाला है।

१३०. भन्ते! क्या धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश को धर्मास्तिकाय कहा जा सकता है?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है।

१३१. भन्ते! क्या इसी प्रकार धर्मास्तिकाय के दो, तीन, चार, पांच, छह, सात, आठ, नौ, दस, संख्येय और असंख्येय प्रदेशों को धर्मास्तिकाय कहा जा सकता है?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है।

१३२. भन्ते! क्या एक प्रदेश कम धर्मास्तिकाय को भी धर्मास्तिकाय कहा जा सकता है?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है।

१३३. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश को धर्मास्तिकाय नहीं कहा जा सकता यावत् एक प्रदेश कम धर्मास्तिकाय को भी धर्मास्तिकाय नहीं कहा जा सकता है?

गौतम! क्या चक्र का खण्ड चक्र कहलाता है? अथवा अखण्ड चक्र चक्र कहलाता है?

भगवन्! चक्र का खण्ड चक्र नहीं कहलाता, अखण्ड चक्र चक्र कहलाता है।

क्या छत्र का खण्ड छत्र कहलाता है? अथवा अखण्ड छत्र छत्र कहलाता है।

भगवान्! छत्र का खण्ड छत्र नहीं कहलाता, अखण्ड छत्र कहलाता है।

क्या चर्म का खण्ड चर्म कहलाता है? अथवा अखण्ड चर्म चर्म कहलाता है।

भगवन्! चर्म का खण्ड चर्म नहीं कहलाता, अखण्ड चर्म चर्म कहलाता है।

क्या दण्ड का खण्ड दण्ड कहलाता है? अथवा अखण्ड दण्ड दण्ड कहलाता है?

भगवन्! दण्ड का खण्ड दण्ड नहीं कहलाता, अखण्ड दण्ड दण्ड कहलाता है।

क्या वस्त्र का खण्ड वस्त्र कहलाता है? अथवा अखण्ड वस्त्र वस्त्र कहलाता है?

भगवन्! वस्त्र का खण्ड वस्त्र नहीं कहलाता, अखण्ड वस्त्र वस्त्र कहलाता है।

क्या आयुध का खण्ड आयुध कहलाता है? अथवा अखण्ड आयुध आयुध कहलाता है?

भगवन्! आयुध का खण्ड आयुध नहीं कहलाता, अखण्ड आयुध आयुध कहलाता है।

क्या मोदक का खण्ड मोदक कहलाता है? अथवा अखण्ड मोदक मोदक कहलाता है।

भगवन्! मोदक का खण्ड मोदक नहीं कहलाता, अखण्ड मोदक मोदक कहलाता है।

गौतम! यह इस अपेक्षा से कहा जा रहा है—धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश को धर्मास्तिकाय नहीं कहा जा सकता यावत् एक प्रदेश कम धर्मास्तिकाय को भी धर्मास्तिकाय नहीं कहा जा सकता।

१३४. भन्ते! धर्मास्तिकाय किसे (कितने प्रदेशों को) कहा जा सकता है?

गौतम! धर्मास्तिकाय के असंख्येय प्रदेश हैं। वे सब प्रतिपूर्ण, निरवशेष और एक शब्द (धर्मास्तिकाय) के द्वारा गृहीत होते हैं—गौतम! इसको धर्मास्तिकाय कहा जा सकता है।

१३५. इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय वक्तव्य है। आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय भी इसी प्रकार वक्तव्य हैं, केवल इतना अन्तर है—इन तीनों के प्रदेश अनन्त होते हैं। शेष पूर्ववत्।

जीवत्व-उपदर्शन-पद

१३६. भन्ते! उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम से युक्त जीव अपने आत्म-भाव

(आत्म-प्रवृत्ति) से जीव-भाव (जीव होने) को प्रकट करता है—क्या यह कहा जा सकता है? हां, गौतम! उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम से युक्त जीव अपने आत्म-भाव से जीव-भाव को प्रकट करता है—यह कहा जा सकता है।

१३७. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम से युक्त जीव अपने आत्म-भाव से जीवभाव को प्रकट करता है—यह कहा जा सकता है?

गौतम! जीव आभिनिबोधिक-ज्ञान के अनन्त पर्यवों, श्रुत-ज्ञान के अनन्त पर्यवों, अवधि-ज्ञान के अनन्त पर्यवों, मनःपर्यव-ज्ञान के अनन्त पर्यवों, केवलज्ञान के अनन्त पर्यवों, मति-अज्ञान के अनन्त पर्यवों, श्रुत-अज्ञान के अनन्त पर्यवों, विभङ्ग-ज्ञान के अनन्त पर्यवों, चक्षु-दर्शन के अनन्त पर्यवों, अचक्षु-दर्शन के अनन्त पर्यवों, अवधि-दर्शन के अनन्त पर्यवों और केवल-दर्शन के अनन्त पर्यवों के उपयोग को प्राप्त होता है। जीव उपयोग-लक्षण वाला है। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम से युक्त जीव अपने आत्म-भाव से जीव-भाव को प्रकट करता है—यह कहा जा सकता है।

आकाश-पद

१३८. आकाश कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?

गौतम! आकाश दो प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे लोकाकाश और अलोकाकाश।

१३९. भन्ते! लोकाकाश क्या जीव है? जीव का देश है? जीव का प्रदेश है? अजीव है? अजीव का देश है? अजीव का प्रदेश है?

गौतम! लोकाकाश जीव भी है, जीव का देश भी है, जीव का प्रदेश भी है, अजीव भी है, अजीव का देश भी है और अजीव का प्रदेश भी है।

जो जीव हैं, वे नियमतः एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय और अनिन्द्रिय हैं।

जो जीव के देश हैं, वे नियमतः एकेन्द्रिय जीवों का देश हैं, द्वीन्द्रिय जीवों के देश हैं, त्रीन्द्रिय जीवों के देश हैं, चतुरिन्द्रिय जीवों के देश हैं, पञ्चेन्द्रिय जीवों के देश हैं और अनिन्द्रिय जीवों के देश हैं।

जो जीव के प्रदेश हैं, वे नियमतः एकेन्द्रिय जीवों का प्रदेश हैं, द्वीन्द्रिय जीवों के प्रदेश हैं, त्रीन्द्रिय जीवों के प्रदेश हैं, चतुरिन्द्रिय जीवों के प्रदेश हैं, पञ्चेन्द्रिय जीवों के प्रदेश हैं और अनिन्द्रिय जीवों के प्रदेश हैं।

जो अजीव हैं, वे दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—रूपी और अरूपी।

जो रूपी हैं, वे चार प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे स्कन्ध, स्कन्ध के देश, स्कन्ध के प्रदेश और परमाणु-पुद्गल।

जो अरूपी हैं, वे पांच प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—धर्मास्तिकाय, धर्मास्तिकाय का देश नहीं होता, धर्मास्तिकाय के प्रदेश; अधर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय का देश नहीं होता,

अधर्मास्तिकाय के प्रदेश और अध्व-समय।

१४०. भन्ते! अलोकाकाश क्या जीव है? जीव का देश है? जीव का प्रदेश है? अजीव है? अजीव का देश है। अजीव का प्रदेश है?

गौतम! वह न जीव है, न जीव का देश है, न जीव का प्रदेश है; न अजीव है, न अजीव का देश है, न अजीव का प्रदेश है। वह एक अजीव द्रव्य का देश है, अगुरुलघु है, अनन्त अगुरुलघु गुणों से संयुक्त है और अनन्त भाग से न्यून परिपूर्ण आकाश है।

अस्तिकाय-पद

१४१. भन्ते! धर्मास्तिकाय कितना बड़ा प्रज्ञप्त है?

गौतम! वह लोक में है, लोक-परिमाण है, लोक-प्रमाण है, लोक से स्पृष्ट है और लोक का ही स्पर्श कर अवस्थित है।

१४२. भन्ते! अधर्मास्तिकाय कितना बड़ा प्रज्ञप्त है?

गौतम! वह लोक में है, लोक-परिमाण है, लोक-प्रमाण है, लोक से स्पृष्ट है और लोक का ही स्पर्श कर अवस्थित है।

१४३. भन्ते! लोकाकाश कितना बड़ा प्रज्ञप्त है?

गौतम! वह लोक में है, लोक-परिमाण है, लोक-प्रमाण है, लोक से स्पृष्ट है और लोक का ही स्पर्श कर अवस्थित है।

१४४. भन्ते! जीवास्तिकाय कितना बड़ा प्रज्ञप्त है?

गौतम! वह लोक में है, लोक-परिमाण है, लोक-प्रमाण है, लोक से स्पृष्ट है और लोक का ही स्पर्श कर अवस्थित है।

१४५. भन्ते! पुद्गलास्तिकाय कितना बड़ा प्रज्ञप्त है?

गौतम! वह लोक में है, लोक-परिमाण है, लोक-प्रमाण है, लोक से स्पृष्ट है और लोक का ही स्पर्श कर अवस्थित है।

स्पर्शना-पद

१४६. भन्ते! अधो-लोक धर्मास्तिकाय के कितने भाग का स्पर्श करता है?

गौतम! वह धर्मास्तिकाय का कुछ अधिक आधे भाग का स्पर्श करता है।

१४७. भन्ते! तिर्यग्-लोक धर्मास्तिकाय के कितने भाग का स्पर्श करता है?

गौतम! वह धर्मास्तिकाय के असंख्यातवें भाग का स्पर्श करता है।

१४८. भन्ते! ऊर्ध्व-लोक धर्मास्तिकाय के कितने भाग का स्पर्श करता है?

गौतम! वह धर्मास्तिकाय के कुछ कम आधे भाग का स्पर्श करता है।

१४९. भन्ते! यह रत्नप्रभा-पृथ्वी क्या धर्मास्तिकाय के संख्यातवें भाग का स्पर्श करती है? असंख्यातवें भाग का स्पर्श करती है? संख्येय भागों का स्पर्श करती हैं? असंख्येय भागों का स्पर्श करती है अथवा सम्पूर्ण का स्पर्श करती है?

गौतम! वह संख्यातवें भाग का स्पर्श नहीं करती, असंख्यातवें भाग का स्पर्श करती है, संख्येय भागों का स्पर्श नहीं करती, असंख्येय भागों का स्पर्श नहीं करती और सम्पूर्ण का स्पर्श नहीं करती।

१५०. भन्ते! इस रत्नप्रभा-पृथ्वी का घनोदधि क्या धर्मास्तिकाय के संख्यातवें भाग का स्पर्श करता है? असंख्यातवें भाग का स्पर्श करता है? संख्येय भागों का स्पर्श करता है? असंख्येय भागों का स्पर्श करता है अथवा सम्पूर्ण का स्पर्श करता है।

जैसे रत्नप्रभा पृथ्वी स्पर्श करती है, वैसे ही घनोदधि, घनवात और तनुवात भी स्पर्श करते हैं।

१५१. भन्ते! इस रत्नप्रभा-पृथ्वी का अवकाशान्तर क्या धर्मास्तिकाय के संख्येय भाग का स्पर्श करता है? असंख्यातवें भाग का स्पर्श करता है? संख्येय भागों का स्पर्श करता है? असंख्येय भागों का स्पर्श करता है? अथवा सम्पूर्ण का स्पर्श करता है?

गौतम! वह संख्यातवें भाग का स्पर्श करता है, असंख्यातवें भाग का स्पर्श नहीं करता, संख्येय भागों का स्पर्श नहीं करता, असंख्येय भागों का स्पर्श नहीं करता और सम्पूर्ण का स्पर्श नहीं करता।

इसी प्रकार सभी अवकाशान्तर वक्तव्य हैं।

१५२. जैसे रत्नप्रभा-पृथ्वी की वक्तव्यता कही गई है वैसे ही यावत् अधःसप्तमी (सातवीं पृथ्वी) की वक्तव्यता ज्ञातव्य है।

इसी प्रकार सौधर्म-कल्प यावत् ईषत्-प्राग्भारा पृथ्वी—ये सभी धर्मास्तिकाय के असंख्यात वें भाग का स्पर्श करते हैं। शेष विकल्पों का प्रतिषेध कर देना चाहिए।

१५३. इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय का और इसी प्रकार लोकाकाश का स्पर्श करते हैं।

पृथ्वी, घनोदधि, घनवात, तनुवात, बारह कल्प, नौ ग्रैवेयक, पांच अनुत्तरविमान और सिद्धशिला—इन में पृथ्वी, बारह कल्प, नौ ग्रैवेयक और पांच अनुत्तरविमान के अवकाशान्तर धर्मास्तिकाय आदि के संख्यातवें भाग का स्पर्श करते हैं और शेष सब (पृथ्वी से सिद्धशिला तक) उनके असंख्यातवें भाग का स्पर्श करते हैं।

• • •

तीसरा शतक

पहला उद्देशक

संग्रहणी गाथा

चमर की कैसी विक्रिया, चमर का उत्पात, क्रिया, यान, स्त्री, नगर, लोक-पाल, अधिपति, इन्द्रिय और परिषद्—तीसरे शतक में ये दश उद्देशक हैं।

उत्क्षेप-पद

१. उस काल और उस समय में मोका नाम की नगरी थी—नगर का वर्णन।
२. उस मोका नगरी के बाहर उत्तर-पूर्व दिशाभाग में नन्दन नाम का चैत्य था—चैत्य का वर्णन।
३. उस काल और उस समय में भगवान् महावीर समवसूत हुए। परिषद् ने नगर से निर्गमन किया। परिषद् वापस नगर में चली गई।

देवविक्रिया-पद

४. उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के दूसरे अन्तेवासी अग्निभूति नामक अनगर थे। उनका गौत्र गौतम था। उनकी ऊंचाई सात हाथ की थी। यावत् वे भगवान् की पर्युपसाना करते हुए इस प्रकार बोले—भन्ते! असुरेन्द्र असुरराज चमर कितनी महान् ऋद्धि वाला, कितनी महान् द्युति वाला, कितने महान् बल वाला, कितने महान् यश वाला, कितने महान् सुख वाला, कितनी महान् सामर्थ्य वाला और कितनी विक्रिया करने में समर्थ है?

गौतम! असुरेन्द्र असुरराज चमर महान् ऋद्धि वाला, महान् द्युति वाला, महाबली, महायशस्वी, महासुखी और महान् सामर्थ्य वाला है। वह चमरचज्वा राजधानी में चौंतीस लाख भवनावास, चौंसठ हजार सामानिक, तैंतीस तावत्त्रिंशक, चार लोकपाल, पांच सपरिवार पटरानियां, तीन परिषद्, सात सेनाएं, सात सेनापति, दो लाख छप्पन हजार आत्मरक्षक-देव और चमरचज्वा राजधानी में रहने वाले अन्य अनेक देवों तथा देवियों का आधिपत्य, पौरपत्य, स्वामित्व, भर्तृत्व (पोषण) तथा आज्ञा देने में समर्थ और सेनापतित्व करता हुआ, अन्य देवों से आज्ञा का पालन करवाता हुआ वह आहत नाट्यों, गीतों तथा कुशल वादक के द्वारा बजाए गए वादित्र, तन्त्री, तल, ताल, नुटित, घन और मृदंग की महान् ध्वनि से युक्त दिव्य भोगार्ह भोगों को भोगता हुआ रहता है। वह इतनी महान् ऋद्धि वाला, इतनी महान् द्युति वाला, इतने महान् बल वाला, इतने महान् यश वाला, इतने महान् सुख वाला, इतनी महान् सामर्थ्य वाला है और इतनी विक्रिया करने में समर्थ है। जैसे कोई युवक युवती का प्रगाढ़ता से हाथ पकड़ता है अथवा गाड़ी के चक्के की नाभि जैसे अरों से युक्त

होती है, उसी प्रकार गौतम! असुरेन्द्र असुरराज चमर (अपनी विक्रिया से निर्मित एवं अपनी शरीर से प्रतिबद्ध रूपों से जम्बूद्वीप को आकीर्ण करने के लिए) वैक्रिय-समुद्घात से समवहत होता है। समवहत होकर वह अपने शरीर से संख्येय योजन लम्बा दंड निकालता है। उसके पश्चात् वह रत्न, वज्र (हीरा), वैडूर्य (लसुनिया), लोहिताक्ष (लोहितक), मसारगल्ल (मसुणपाषाणमणि), हसंगर्भ (पुष्पराग), पुलक, सौगन्धिक (भाणिक्य), ज्योतिरस (सफेद और लाल रंग से मिश्रित मणि), अज्जन (समीरक), अज्जनपुलक, चांदी, स्वर्ण, अंक, स्फटिक और रिष्ट नामक मणि—इन रत्नों से स्थूल (असार) पुद्गलों को झटक देता है और सूक्ष्म (सार) पुद्गलों को ग्रहण करता है। उन्हें ग्रहण कर, वह फिर दूसरी बार वैक्रिय समुद्घात से समवहत होता है।

गौतम! असुरेन्द्र असुरराज चमर सम्पूर्ण जम्बूद्वीप द्वीप को अनेक असुरकुमार देवों और देवियों से आकीर्ण, व्यतिकीर्ण, उपस्तृत (बिछौना-सा बिछाया हुआ), संस्तृत (भलीभांति बिछौना-सा बिछाया हुआ), स्पृष्ट (छूने) और अवगाढावगाढ (अत्यन्त सघन रूप से व्याप्त) करने में समर्थ है।

और दूसरी बात, गौतम! असुरेन्द्र असुरराज चमर तिरछे लोक के असंख्य द्वीप-समुद्रों को अनेक असुरकुमार देवों और देवियों से आकीर्ण, व्यतिकीर्ण, उपस्तृत, संस्तृत, स्पृष्ट और अवगाढावगाढ करने में समर्थ है।

गौतम! असुरेन्द्र असुरराज चमर की विक्रिया-शक्ति का यह इतना विषय केवल विषय की दृष्टि से प्रतिपादित है। चमर ने क्रियात्मक रूप में न तो कभी ऐसी विक्रिया की, न करता है और न करेगा।

५. भन्ते! यदि असुरेन्द्र असुरराज चमर इतनी महान् ऋद्धि वाला है यावत् इतनी विक्रिया करने में समर्थ है, तो भन्ते! असुरेन्द्र असुरराज चमर के सामानिक देव कितनी महान् ऋद्धि वाले यावत् कितनी विक्रिया करने में समर्थ हैं?

गौतम! असुरेन्द्र असुरराज चमर के सामानिक देव महान् ऋद्धि वाले, महान् द्युति वाले, महाबली, महायशस्वी, महासुखी और महान् सामर्थ्य वाले हैं। वे वहां पर अपने-अपने भवनों का, अपने-अपने सामानिक देवों का और अपनी-अपनी पटरानियों का आधिपत्य करते हुए यावत् दिव्य भोगार्ह भोग भोगते हुए रहते हैं। वे इतनी महान् ऋद्धि वाले हैं यावत् इतनी विक्रिया करने में समर्थ हैं। जैसे कोई युवक युवती का प्रगाढ़ता से हाथ पकड़ता है अथवा गाड़ी के चक्के की नाभि जैसे अरों से युक्त होती है उसी प्रकार गौतम! असुरेन्द्र असुरराज चमर का प्रत्येक सामानिक देव वैक्रिय समुद्घात से समवहत होता है यावत् दूसरी बार फिर वैक्रिय समुद्घात से समवहत होता है।

गौतम! असुरेन्द्र असुरराज चमर का प्रत्येक सामानिक देव सम्पूर्ण जम्बूद्वीप द्वीप को अनेक असुरकुमार देवों और देवियों से आकीर्ण, व्यतिकीर्ण, उपस्तृत, संस्तृत, स्पृष्ट और अवगाढावगाढ करने में समर्थ हैं।

और दूसरी बात, गौतम! असुरेन्द्र असुरराज चमर का प्रत्येक सामानिक देव तिर्यक्-लोक के

असंख्य द्वीप-समुद्रों को अनेक असुरकुमार देवों और देवियों से आकीर्ण, व्यतिकीर्ण, उपस्तुत, संस्तुत, स्पृष्ट और अवगाढावगाढ करने में समर्थ हैं।

गौतम! असुरेन्द्र असुरराज चमर के प्रत्येक सामानिक देव की विक्रिया शक्ति का यह इतना विषय केवल विषय की दृष्टि से प्रतिपादित है। उन देवों ने क्रियात्मक रूप में न तो कभी ऐसी विक्रिया की, न करते हैं और न करेंगे।

६. भन्ते! यदि असुरेन्द्र असुरराज चमर सामानिक देव इतनी महान् ऋद्धि वाले यावत् इतनी विक्रिया करने में समर्थ हैं, तो भन्ते! असुरेन्द्र असुरराज चमर के तावत्त्रिंशक देव कितनी महान् ऋद्धि वाले हैं?

जैसे सामानिक देवों की प्रज्ञापना है, वैसा ही तावत्त्रिंशक देवों के विषय में ज्ञातव्य है। लोकपाल का प्रज्ञापन भी वैसा ही है, केवल इतना अन्तर है—यहां द्वीप-समुद्र संख्येय कहने चाहिए।

७. भन्ते! यदि असुरेन्द्र असुरराज चमर के लोकपाल इतनी महान् ऋद्धि वाले हैं। यावत् इतनी विक्रिया करने में समर्थ हैं, तो असुरेन्द्र असुरराज चमर की पटरानियां कितनी महान् ऋद्धि वाली यावत् कितनी विक्रिया करने में समर्थ हैं?

गौतम! असुरेन्द्र असुरराज चमर की पटरानियां महान् ऋद्धि वाली यावत् महान् सामर्थ्य वाली हैं। वे अपने-अपने भवनों, अपनी-अपनी एक-एक हजार सामानिक देवियों, अपनी-अपनी महत्तरिकाओं (प्रधान देवियों) और अपनी-अपनी परिषदों का आधिपत्य करती हुई यावत् इतनी महान् ऋद्धि वाली हैं। उनका शेष सारा प्रज्ञापन लोकपालों की तरह वक्तव्य है।

८. "भन्ते! वह ऐसा ही है, भन्ते! वह ऐसा ही है," इस प्रकार भगवान् द्वितीय गौतम अग्निभूति श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन नमस्कार करते हैं। वन्दन-नमस्कार कर जहां तीसरे गौतम वायुभूति अनगर हैं, वहां आते हैं। वहां आकर तीसरे गौतम वायुभूति अनगर से इस प्रकार कहते हैं—गौतम! इस प्रकार असुरेन्द्र असुरराज चमर इतनी महान् ऋद्धि वाला है—यहां से लेकर पटरानियों की वक्तव्यता समाप्त होती है, वहां तक का समग्र विषय अग्निभूति ने बिना पूछे ही वायुभूति को बतला दिया।

९. तीसरे गौतम वायुभूति अनगर दूसरे गौतम अग्निभूति अनगर के ऐसे आख्यान, भाषण, प्रज्ञापन और प्ररूपण पर न श्रद्धा करते हैं, न प्रतीति करते हैं और न रुचि करते हैं। वह इस तथ्य पर अश्रद्धा, अप्रतीति और अरुचि करते हुए उठने को मुद्रा में उठते हैं, उठ कर जहां श्रमण भगवान् महावीर हैं, वहां आते हैं, यावत् पर्युपासना करते हुए वे इस प्रकार बोले—भन्ते! दूसरे गौतम अग्निभूति अनगर मेरे सामने इस प्रकार आख्यान, भाषण, प्रज्ञापन और प्ररूपण करते हैं—गौतम! असुरेन्द्र असुरराज चमर महान् ऋद्धि वाला है यावत् महान् सामर्थ्य वाला है। वह वहां पर चौतीस लाख भवनावासों का आधिपत्य करता है। पटरानियों की वक्तव्यता समाप्त होती है, वहां तक का समग्र वक्तव्य यहां जानना चाहिए।

१०. भन्ते! यह कैसे है?

गौतम! इस सम्बोधन से सम्बोधित कर श्रमण भगवान् महावीर ने तृतीय गौतम वायुभूति

अणगार से इस प्रकार कहा—गौतम! द्वितीय गौतम अग्निभूति अनगार तुम्हारे सामने इस प्रकार आख्यान, भाषण, प्रज्ञापन और प्ररूपण करता है—गौतम! असुरेन्द्र असुरराज चमर महान् ऋद्धि वाला है। पटरानियों तक का समग्र वक्तव्य पुनरावर्तनीय है। यह अर्थ सत्य है। गौतम! मैं भी इसी प्रकार आख्यान, भाषण प्रज्ञापन और प्ररूपण करता हूँ—गौतम! असुरेन्द्र असुरराज चमर महान् ऋद्धि वाला है। भगवान् ने पटरानियों तक की समग्र वक्तव्यता दोहरा दी और अन्त में फिर कहा—यह अर्थ सत्य है।

११. “भन्ते! वह ऐसा ही है, भन्ते! वह ऐसा ही है” इस प्रकार तृतीय गौतम वायुभूति अनगार श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करते हैं, वन्दन-नमस्कार कर वे जहां द्वितीय गौतम अग्निभूति अनगार हैं, वहां आते हैं, आकर द्वितीय गौतम अग्निभूति अनगार को वन्दन-नमस्कार करते हैं, वन्दन-नमस्कार कर वे इस अर्थ (उनकी यथार्थ वाणी पर अविश्वास किया) के लिए सम्यक् प्रकार से विनयपूर्वक बार-बार क्षमा याचना करते हैं।

१२. वे तृतीय गौतम वायुभूति अनगार द्वितीय गौतम अग्निभूति अनगार के साथ जहां श्रमण भगवान् महावीर थे, वहां आये यावत् पर्युपासना करते हुए इस प्रकार बोले—भन्ते! यदि असुरेन्द्र असुरराज चमर इतनी महान् ऋद्धि वाला है यावत् इतनी विक्रिया करने में समर्थ है तो भन्ते! वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि कितनी महान् ऋद्धि वाला है यावत् कितनी विक्रिया करने में समर्थ है?

गौतम! वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि महान् ऋद्धि वाला है यावत् महान् सामर्थ्य वाला है। जैसी चमर की वक्तव्यता है वैसी ही बलि की है। केवल इतना अन्तर है कि यहां कुछ अधिक जम्बूद्वीप द्वीप वक्तव्य है। शेष समूचा प्रकरण उसी प्रकार है। एक और अन्तर ज्ञातव्य है—भवन तीस लाख और सामानिक देवों की संख्या साठ लाख है।

१३. “भन्ते! वह ऐसा ही है, भन्ते! वह ऐसा ही है” इस प्रकार तृतीय गौतम वायुभूति अनगार श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करते हैं, वन्दन-नमस्कार कर न अति निकट न अति दूर, शुश्रूषा और नमस्कार की मुद्रा में उनके सम्मुख सविनय बद्धाञ्जलि होकर पर्युपासना करते हैं।

१४. द्वितीय गौतम अग्निभूति अनगार श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करते हैं, वन्दन-नमस्कार कर वे इस प्रकार बोले—भन्ते! यदि वैरोचनेन्द्र वैरोचनराज बलि इतनी महान् ऋद्धि वाला है यावत् इतनी विक्रिया करने में समर्थ है, तो भन्ते! नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण कितनी महान् ऋद्धि वाला है यावत् कितनी विक्रिया करने में समर्थ है?

गौतम! नागकुमारेन्द्र नागकुमारराज धरण महान् ऋद्धि वाला यावत् महान् सामर्थ्य वाला है वह वहां चौवालीस लाख भवनावास, छह हजार सामानिक देव, तेतीस तावत्त्रिंशक देव, चार लोकपाल, छह सपरिवार पटरानियां, तीन परिषद्, सात सेनाएं, सात सेनापति, चौबीस हजार आत्मरक्षक-देव तथा अन्य अनेक देवों और देवियों का आधिपत्य करता हुआ रहता है। वह इतनी विक्रिया करने में समर्थ है। जैसे कोई युवक युवती को प्रगाढ़ता से हाथ पकड़ता है यावत् सम्पूर्ण जम्बूद्वीप द्वीप उसी प्रकार यावत् तिरछे लोक के संख्येय द्वीप-समुद्रों को अनेक नागकुमार और नागकुमारियों से आकीर्ण करने में समर्थ है। यावत् क्रियात्मक रूप में न तो कभी

ऐसी विक्रिया की, न करता है और न करेगा।

सामानिक, तावत्त्रिंशक, लोकपाल और पटरानियां—उनकी विक्रिया की वक्तव्यता चमर के सामानिक, तावत्त्रिंशक, लोकपाल और पटरानियों के समान है। केवल इतना अन्तर है—ये संख्येय द्वीप-समुद्रों को अपने रूपों से आकीर्ण करने में समर्थ हैं।

१५. इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार-, वानमन्तर- और ज्योतिष्क-देवों के संबंध में भी ज्ञातव्य है। विशेष बात यह है कि दक्षिण दिशा के सब देवों के संबंध में अग्निभूति प्रश्न करते हैं और उत्तर दिशा के सब देवों के संबंध में वायुभूति प्रश्न करते हैं।

१६. भन्ते! इस सम्बोधन से संबोधित कर द्वितीय गौतम भगवान् अग्निभूति अनगार श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करते हैं, वन्दन-नमस्कार कर इस प्रकार बोले—भन्ते! यदि ज्योतिरिन्द्र ज्योतीराज इतना महान् ऋद्धि वाला यावत् इतनी विक्रिया करने में समर्थ है, तो भन्ते! देवेन्द्र देवराज शक्र कितनी महान् ऋद्धि वाला है यावत् कितनी विक्रिया करने में समर्थ है?

गौतम! देवेन्द्र देवराज शक्र महान् ऋद्धि वाला है यावत् महान् सामर्थ्य वाला है। यह बत्तीस लाख विमानावास, चौरासी हजार सामानिक देव, तेतीस तावत्त्रिंशक देव, चार लोकपाल, आठ सपरिवार पटरानियां, तीन परिषद, सात सेनाएं, सात सेनापति, तीन लाख छत्तीस हजार आत्मरक्षक-देव तथा अन्य देवों और देवियों का आधिपत्य करता हुआ रहता है। वह इतनी महान् ऋद्धि वाला है यावत् इतनी विक्रिया करने में समर्थ है। इस प्रकार जैसे चमर की वक्तव्यता है वैसे ही शक्र की है, केवल इतना अन्तर है—शक्र दो सम्पूर्ण जम्बूद्वीप द्वीपों को अपने रूपों से आकीर्ण कर सकता है, शेष वक्तव्यता उसी प्रकार है।

गौतम! देवेन्द्र देवराज शक्र की विक्रिया का यह इतना विषय केवल विषय की दृष्टि से प्रतिपादित है, शक्र ने क्रियात्मक रूप में न तो कभी ऐसी विक्रिया की, न करता है और न करेगा।

१७. भन्ते! यदि देवेन्द्र देवराज शक्र इतनी महान् ऋद्धि वाला यावत् इतनी विक्रिया करने में समर्थ है, तो भन्ते! तिष्यक देव कैसी महान् ऋद्धि वाला है? वह आपका अन्तेवासी तिष्यक नामक अनगार जो प्रकृति से भद्र और प्रकृति से उपशान्त था, जिसकी प्रकृति में क्रोध, मान, माया और लोभ प्रतनु (पतले) थे, जो मृदु-मार्दव से सम्पन्न, आत्मलीन और विनीत था। उसने अविच्छिन्न रूप से दो-दो दिन के उपवास से तपःकर्म की साधना द्वारा आत्मा को भावित करते हुए पूरे साठ भक्तों को छेदन किया, वह आलोचना और प्रतिक्रमण कर समाधिपूर्ण दशा में कालमास में काल को प्राप्त हो गया। वह सौधर्म कल्प में अपने विमान में उपपात सभा के देवदूष्य से आच्छन्न देवशयनीय में अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी अवगाहना से देवेन्द्र देवराज शक्र के सामानिक देव के रूप में उपपन्न हुआ।

तिष्यक देव तत्काल उपपन्न होते ही पांच प्रकार की पर्याप्तियों से पर्याप्त भाव को प्राप्त होता है, जैसे—आहार-पर्याप्ति से, शरीर-पर्याप्ति से, इन्द्रिय पर्याप्ति से, आनापान (श्वोसोच्छ्वास)-पर्याप्ति से और भाषा-मन-पर्याप्ति से।

सामानिक परिषद में उपपन्न देव पांच पर्याप्तियों से पर्याप्तभाव को प्राप्त हुए उस तिष्यक देव को दोनों हथेलियों से निष्पन्न सम्पुटवाली दस-नखात्मक अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर, मस्तक पर टिकाकर, जय-विजय ध्वनि से वर्धापित करते हैं, वर्धापित कर इस प्रकार कहा—अहो! आपने जैसी दिव्य देवर्द्धि, दिव्य देवद्युति और दिव्य देवानुभाव उपलब्ध किया है, प्राप्त किया है और वह भोग्य अवस्था में आया है, वैसी दिव्य देवर्द्धि देवेन्द्र देवराज शक्र ने उपलब्ध की है, प्राप्त की है यावत् वह भोग्य अवस्था में है। जैसे दिव्य देवर्द्धि देवेन्द्र देवराज शक्र ने उपलब्ध की है यावत् भोग्य अवस्था में आई है वैसी दिव्य देवर्द्धि आपने भी भलीभांति उपलब्ध की है यावत् वह भोग्य अवस्था में आई है।

भन्ते! वह तिष्यक देव कितनी महान् ऋद्धि वाला यावत् कितनी विक्रिया करने में समर्थ है?

गौतम! वह महान् ऋद्धि वाला यावत् महान् समर्थ्य वाला है। वह वहां पर अपने विमान, चार हजार सामानिक देव, चार सपरिवार पटरानियां, तीन परिषद्, सात सेनाएं, सात सेनापति, सोलह हजार आत्मरक्षक-देव और अन्य अनेक वैमानिक देवों और देवियों का आधिपत्य करता हुआ रहता है। वह इतनी महान् ऋद्धि वाला है यावत् इतनी विक्रिया करने में समर्थ है। जैसे कोई युवक युवती का प्रगाढ़ता से हाथ पकड़ता है, जैसी शक्र की वक्तव्यता है वही वक्तव्यता यहां जाननी चाहिए। गौतम! तिष्यक देव की विक्रिया शक्ति का यह इतना विषय केवल विषय की दृष्टि से प्रतिपादित है। तिष्यक ने क्रियात्मक रूप में न तो कभी ऐसी विक्रिया की, न करता है और न करेगा।

१८. भन्ते! यदि तिष्यक-देव महान् ऋद्धि वाला यावत् इतनी विक्रिया करने में समर्थ है, तो भन्ते! देवेन्द्र देवराज शक्र के शेष सामानिक देव कितनी महान् ऋद्धि वाले हैं! यह समग्र प्रकरण पूर्ववत् वक्तव्य है यावत् गौतम! देवेन्द्र देवराज शक्र के एक-एक सामानिक देव की विक्रिया-शक्ति का यह इतना विषय केवल विषय की दृष्टि से ही प्रतिपादित है। किसी भी देव ने क्रियात्मक रूप में न तो कभी ऐसी विक्रिया की, न करता है और न करेगा।

तावत्त्रिंशक, लोकपाल और अग्रमहिषी की वक्तव्यता चमर की भांति ज्ञातव्य है। केवल इतना अन्तर है कि ये दो सम्पूर्ण जम्बूद्वीप द्वीपों को अपने रूपों से आकीर्ण कर सकते हैं। शेष वक्तव्यता उसी प्रकार है।

१९. भन्ते! वह ऐसा ही है, भन्ते! वह ऐसा ही है। इस प्रकार द्वितीय गौतम श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करते हैं यावत् संयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए विहरण कर रहे हैं।

२०. भन्ते! इस संबोधन से संबोधित कर तृतीय गौतम भगवान् वायुभूति अनगार भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करते हैं, वन्दन-नमस्कार कर उन्होंने इस प्रकार कहा—भन्ते! यदि देवेन्द्र देवराज शक्र महान् ऋद्धि वाला है यावत् इतनी विक्रिया करने में समर्थ है तो भन्ते! देवेन्द्र देवराज ईशान कितनी महान् ऋद्धि वाला है? यह समग्र प्रकरण पूर्ववत् वक्तव्य है, केवल इतना अन्तर है—वह अपनी विक्रिया से कुछ अधिक सम्पूर्ण दो जम्बूद्वीप द्वीपों को आकीर्ण कर सकता है। शेष वक्तव्यता उसी प्रकार है।

२१. भन्ते! यदि देवेन्द्र देवराज ईशान इतनी महान् ऋद्धि वाला यावत् इतनी विक्रिया करने में समर्थ है, तो आपका अंतैवासी कुरुदत्त-पुत्र नामक अनगर जो प्रकृति से भद्र यावत् विनीत था। वह निरन्तर तेला-तेला (तीन-तीन दिन का उपवास) और पारणे में आचाम्ल की स्वीकृति रूप तपः-साधना करता था। वह आतापना-भूमी में दोनों भुजाएं ऊपर उठा कर सूर्य के सामने आतापना लेता था। उसने पूरे छह मास तक श्रामण्य-पर्याय का पालन कर पन्द्रह दिन की संलेखना (तपस्या) से अपने आपको कृश बनाया, अनशन के द्वारा तीस भक्तों का छेदन किया, वह आलोचना और प्रतिक्रमण कर समाधिपूर्ण दशा में काल-मास में काल को प्राप्त हो गया। वइ ईशान कल्प में अपने विमान में उपपात-सभा के देवदूष्य से आच्छन्न देव-शयनीय में अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी अवगाहना से देवेन्द्र देवराज ईशान के सामानिक देवरूप में उत्पन्न हुआ। तिष्यक के संबंध में जो वक्तव्यता है, वही समग्र रूप से कुरुदत्त-पुत्र के प्रसंग में ज्ञातव्य है, केवल इतना अन्तर है कि वह कुछ अधिक सम्पूर्ण दो जम्बूद्वीप द्वीपों को आकीर्ण कर सकता है। शेष वक्तव्यता उसी प्रकार है।

इसी प्रकार सामानिक, तावत्त्रिंशक, लोकपाल और पटरानियों के विषय में ज्ञातव्य है यावत् गौतम! देवेन्द्र देवराज ईशान की प्रत्येक पटरानी देवी की विक्रिया-शक्ति का यह इतना विषय केवल विषय की दृष्टि से प्रतिपादित है। किसी भी पटरानी ने क्रियात्मक रूप में न तो कभी ऐसी विक्रिया की, न करती है और न करेगी।

२२. इसी प्रकार सनत्कुमार के संबंध में ज्ञातव्य है केवल इतना अन्तर है—वह चार सम्पूर्ण जम्बूद्वीप द्वीपों को आकीर्ण कर सकता है। और दूसरी बार वह तिरछे लोक के असंख्य द्वीप समुद्रों को आकीर्ण कर सकता है।

इसी प्रकार सामानिक, तावत्त्रिंशक, लोकपाल और पटरानियां ये सब ज्ञातव्य हैं। ये सब असंख्येय द्वीपसमुद्रों में विक्रिया करते हैं। सनत्कुमार से लेकर ऊपर के सभी लोकपाल असंख्य द्वीपसमुद्रों में विक्रिया करते हैं।

२३. इसी प्रकार माहेन्द्र-देवलोक के संबंध में ज्ञातव्य है। केवल इतना अन्तर है कि कुछ अधिक चार सम्पूर्ण जम्बूद्वीप द्वीपों से अधिक क्षेत्र आकीर्ण कर सकता है। इसी प्रकार ब्रह्मलोक के संबंध में ज्ञातव्य है, केवल इतना अंतर है कि वह आठ सम्पूर्ण जम्बूद्वीप द्वीपों को आकीर्ण कर सकता है।

इसी प्रकार लान्तक—कुछ अधिक आठ।

महाशुक्र—सोलह, सहस्रार—कुछ अधिक सोलह।

प्राणत—बत्तीस।

अच्युत—कुछ अधिक बत्तीस, सम्पूर्ण जम्बूद्वीप द्वीपों को आकीर्ण कर सकता है। शेष सब उसी प्रकार है।

२४. भन्ते! वह ऐसा ही है, भन्ते! वह ऐसा ही है। इस प्रकार तृतीय गौतम वायुभूति अनगर श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करते हैं यावत् संयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए विहरण कर रहे हैं।

२५. श्रमण भगवान् महावीर ने किसी समय मोका नगरी और नन्दन चैत्य से प्रतिनिष्क्रमण किया, प्रतिनिष्क्रमण कर वे बाह्य जनपदों में विहार करने लगे।

तामलि का ईशानेन्द्र-पद

२६. उस काल और उस समय में राजगृह नाम का नगर था—नगर का वर्णन (द्रष्टव्य—भ. १/४ का भाष्य) यावत् परिषद भगवान् की पर्युपासना करती है।

२७. उस काल और उस समय में ईशान कल्प के ईशानावतंसक विमान में देवेन्द्र देवराज ईशान भगवान् महावीर की वन्दना के लिए आया (पूरा प्रकरण रायपसेणइयं के सूर्याभ देव की तरह ज्ञातव्य है।) वह गौतम आदि मुनिगण को दिव्य देव-ऋद्धि, दिव्य देव-द्युति, दिव्य देव-सामर्थ्य और बत्तीस प्रकार की दिव्य नाट्य-विधि दिखाकर जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में पुनः चला गया।

२८. भन्ते! इस संबोधन से संबोधित कर भगवान् गौतम श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करते हैं, वन्दन-नमस्कार कर वे इस प्रकार बोले—आश्चर्य है भन्ते! देवेन्द्र देवराज ईशान महान ऋद्धि वाला है यावत् महान् सामर्थ्य वाला है। भन्ते! ईशान की वह दिव्य देवर्द्धि, दिव्य देव-द्युति और दिव्य देवानुभाग कहां गया? कहां प्रविष्ट हो गया?

गौतम! वह शरीर में गया, शरीर में प्रविष्ट हो गया।

२९. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—वह शरीर में गया, शरीर में प्रविष्ट हो गया? गौतम! जैसे कोई कूटागार (शिखर के आकार वाली)—शाला है। वह भीतर और बाहर दोनों ओर से लिपी हुई, गुप्त, गुप्तद्वार वाली, पवन-रहित और निवात गंभीर है। उस कूटागारशाला के पास एक महान् जनसमूह है। वह आते हुए एक विशाल अभ्र-बादल, वर्षा-बादल, महावात को देखता है। देख कर उस कूटागार शाला के भीतर प्रविष्ट हो कर ठहर जाता है। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—वह शरीर में गया, शरीर में प्रविष्ट हो गया।

३०. भन्ते! देवेन्द्र देवराज ईशान ने वह दिव्य देवर्द्धि, दिव्य देव-द्युति और दिव्य देवानुभाग किस हेतु से उपलब्ध किया? किस हेतु से प्राप्त किया? और किस हेतु से अभिसमन्वागत (विपाकाभिमुख) किया। यह पूर्वभव में कौन था? इसका क्या नाम था? क्या गोत्र था? किस ग्राम, नगर यावत् सन्निवेश में रहता था? इसने क्या दान दिया? क्या आहार किया? क्या तप किया? क्या आचरण किया तथा किस तथारूप श्रमण या माहन के पास एक भी आर्य धार्मिक सुवचन सुना या अवधारण किया? जिससे देवेन्द्र देवराज ईशान ने यह दिव्य देवर्द्धि, दिव्य देव-द्युति और दिव्य देवानुभाग उपलब्ध किया है, प्राप्त किया है और अभिसमन्वागत किया है?

३१. गौतम! उस देश काल और उस समय में इसी जम्बूद्वीप द्वीप के भारतवर्ष में ताम्रलिप्ति नामक नगरी थी—नगरी का वर्णन।

३२. उस ताम्रलिप्ति नगरी में मौर्यपुत्र तामलि नामक गृहपति रहता था, वह समृद्ध, तेजस्वी यावत् अनेक लोगों द्वारा अपरिभूत था।

३३. किसी समय मध्यरात्रि में कुटुम्बजागरिका करते हुए उस मौर्यपुत्र तामलि नामक गृहपति के

मन में यह इस प्रकार का आध्यात्मिक, स्मृत्यात्मक, अभिलाषात्मक, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—इस समय मेरे पूर्वकृत पुरातन सुआचरित, सुपराक्रान्त, शुभ और कल्याणकारी कर्मों का कल्याणकारी फल मिल रहा है, जिससे मैं चांदी, सोना, धन, धान्य, पुत्र, पशु तथा विपुल वैभव, कनक, रत्न, मणि, मोती, शंख, मेनसिल, प्रवाल, लाल रत्न (पद्मरागमणि) और श्रेष्ठ सार—इन वैभवशाली द्रव्यों से अतीव-अतीव वृद्धि कर रहा हूं, तो क्या मेरे पूर्वकृत पुरातन सुआचरित, सुपराक्रान्त, शुभ और कल्याणकारी कर्म एकान्ततः क्षीण हो रहे हैं और मैं उन्हें देखता हुआ विहरण कर रहा हूं?

इसलिए जब तक मैं चांदी से वृद्धि कर रहा हूं यावत् इन वैभवशाली द्रव्यों से अतीव-अतीव वृद्धि कर रहा हूं और जब तक मेरे मित्र, ज्ञाति, कुटुम्बी, स्वजन, संबंधी और परिजन मेरा आदर करते हैं, मुझे स्वामी के रूप में स्वीकारते हैं, सत्कार-सम्मान देते हैं, कल्याणकारी, मंगलकारी देवरूप और चित्ताह्लादक मानकर विनयपूर्वक पर्युपासना करते हैं तब तक मेरे लिए यह श्रेय है कि मैं कल उषाकाल के पौ फटने पर यावत् (भग. २.६६) सहस्ररश्मि दिनकर सूर्य के उदित और तेज से देदीप्यमान होने पर मैं स्वयं काष्ठमय पात्र का निर्माण कर, विपुल भोजन, पेय, खाद्य और स्वाद्य पदार्थ तैयार करवा कर मित्र, ज्ञाति, कुटुम्बी, स्वजन, संबंधी और परिजनों को आमन्त्रित कर उन्हें विपुल भोजन पेय, खाद्य, स्वाद्य पदार्थों से तथा वस्त्र, सुगन्धित द्रव्य, माला और अलंकारों से सत्कृत-सम्मानित कर उन्हीं मित्रों, ज्ञातियों, कुटुम्बी-जनों, स्वजनों, संबंधियों और परिजनों के सामने ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब में स्थापित कर उन मित्र, ज्ञाति, कुटुम्बी, स्वजन, संबंधी परिजनों और ज्येष्ठ पुत्र को पूछ कर, स्वयं काष्ठमय पात्र ग्रहण कर मुण्ड हो कर प्राणामा प्रव्रज्या से प्रव्रजित होना मेरे लिए श्रेयस्कर है। प्रव्रजित हो कर मैं इस आकार वाला यह अभिग्रह स्वीकार करूंगा—मैं जीवन भर निरन्तर बेले-बेले (दो-दो दिन के उपवास) की तपःसाधना करूंगा। मैं आतापना-भूमि में दोनों भुजाएं ऊपर उठा कर सूर्य के सामने आतापना लेता हुआ विहार करूंगा। बेले के पारणे में मैं आतापना-भूमि से उतर कर स्वयं काष्ठमय पात्र ग्रहण कर ताम्रलिप्ति नगरी के ऊंच, नीच और मध्यम कुलों में सामुदानिक भिक्षाचारी के लिए पर्यटन कर केवल चावल ग्रहण कर उसे इक्कीस बार पानी से धो कर फिर आहार करूंगा। इस प्रकार सोच कर वह संप्रेक्षा करता है, संप्रेक्षा कर उषाकाल में पौ फटने पर तेज से प्रज्वलित सहस्ररश्मि दिनकर सूर्य के उदित और तेज से देदीप्यमान होने पर स्वयमेव काष्ठमय पात्र का निर्माण करता है, निर्माण कर विपुल भोजन, पेय, खाद्य, स्वाद्य पदार्थ पकवाता है, पकवाने के बाद वह स्नान, बलिकर्म (पूजा), कौतुक (तिलक आदि) इष्ट नमस्कार रूप मंगल और प्रायश्चित्त करके शुद्ध प्रावेश्य (सभा में प्रवेशोचित) मांगलिक वस्त्र विधिवत् पहन कर, अल्पभार और बहुमूल्य वाले आभूषणों से शरीर को सजा कर भोजन की बेला में भोजन-मंडप में सुखासन की मुद्रा में बैठा हुआ वह उन मित्र, ज्ञाति, कुटुम्बी, स्वजन, संबंधी और परिजनों के साथ उस विपुल भोजन, पेय, खाद्य और स्वाद्य का आस्वाद लेता हुआ विशिष्ट स्वाद लेता हुआ, बांटता हुआ और परिभोग करता हुआ विहरण करता है। उसने भोजन कर आचमन किया, आचमन कर वह स्वच्छ और परम शुचीभूत (सर्वथा साफ-सुथरा) हो गया। फिर वर अपने बैठने के स्थान पर आया। वहां वह उन मित्रों, ज्ञातियों, कुटुम्बी-जनों, स्वजनों, संबंधियों और परिजनों को विपुल

भोजन, पेय, खाद्य, स्वाद्य पदार्थों से तथा वस्त्र, सुगन्धित द्रव्य, माला और अलंकारों से सत्कृत-सम्मानित करता है। फिर उन्हीं मित्रों, ज्ञातियों, कुटुम्बी-जनों, स्वजनों, संबंधियों और परिजनों के सामने ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब में स्थापित करता है, स्थापित कर वह उन मित्रों, ज्ञातियों, कुटुम्बी-जनों, स्वजनों, संबंधियों, परिजनों और ज्येष्ठ पुत्र की अनुमति लेता है। अनुमति ले कर मुण्ड हो कर प्राणामा प्रव्रज्या से प्रव्रजित हो जाता है। प्रव्रजित हो कर वह इस आकार वाला यह अभिग्रह स्वीकार करता है—मैं जीवन भर बेले-बेले का तपःसाधना यावत् केवल चावल को इक्कीस बार पानी से धो कर फिर आहार करूंगा। इस प्रकार सोच कर इस आकार वाला यह अभिग्रह ग्रहण कर वह जीवनभर निरन्तर बेले-बेले की तपःसाधना करता है। यह आतापना-भूमि में दोनों भुजाएं ऊपर उठा कर सूर्य के सामने आतापना लेता हुआ विहार करता है। बेले के पारणे में आतापना-भूमि से उतरता है, उतर कर स्वयं काष्ठमय पात्र ग्रहणकर ताम्रलिप्ति नगरी के उच्च, नीच और मध्यम कुलों में सामुदायिक भिक्षाचरी के लिए पर्यटन करता है। पर्यटन कर केवल चावल ग्रहण करता है, ग्रहण कर उसे इक्कीस बार पानी से धोता है, धो कर फिर आहार करता है।

३४. भन्ते! इस प्रव्रज्या को प्राणामा प्रव्रज्या किस अपेक्षा से कहा जाता है?

गौतम! प्राणामा प्रव्रज्या से प्रव्रजित होने वाला जहां जिस इन्द्र, कार्तिकेय, रुद्र, शिव, वैश्रण्व, आर्या कौटुक्रिया, राजा, युवराज, कोटवाल, मडम्बाधिपति, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह, कौवा, कुत्ता अथवा चण्डाल को देखता है, वहीं उसको प्रणाम करता है। वह किसी उच्च (पूज्य) को देखता है तो अतिशायी विनम्रता के साथ प्रणाम करता है, नीच (अपूज्य) को देखता है तो साधारण विनम्रता से प्रणाम करता है। जिसे जिस रूप में देखता है, उसे उसी रूप में प्रणाम करता है। गौतम! इस अपेक्षा से इस प्रव्रज्या को प्राणामा प्रव्रज्या कहा जाता है।

३५. वह मौर्यपुत्र तामलि उस प्रधान, विपुल, अनुज्ञात और प्रगृहीत बालतपः-कर्म से सुखा, रूखा, मांस-रहित चर्म से वेष्टित अस्थि वाला, उठते-बैठते समय किट-किट शब्द से युक्त, कृश और धमनियों का जालमात्र हो गया।

३६. किसी एक दिन मध्यरात्रि में अनित्य जागरिका करते हुए उस बालतपस्वी तामलि के मन में यह इस प्रकार का आध्यात्मिक, स्मृत्यात्मक, अभिलाषात्मक, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—मैं इस विशिष्ट तप वाले प्रधान, विपुल, अनुज्ञात, प्रगृहीत, कल्याण, शिव, धन्य, मंगलमय, श्रीसम्पन्न, उत्तरोत्तर वर्धमान, उदात्त, उत्तम और महान् प्रभावी तपःकर्म से सूखा, रूखा, यावत् धमनियों का जालमात्र हो गया हूं। अतः जब तक मुझमें उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम है, तब तक मेरे लिए यह श्रेय है कि मैं कल उषाकाल में पौ फटने पर यावत् सहस्ररश्मि दिनकर सूर्य के उदित और तेज से देदीप्यमान होने पर ताम्रलिप्ति नगरी में जिन्हें देखा है, जिनके साथ बातचीत की है, उन पाषण्डस्थों (श्रमणों) और गृहस्थों, तापस-जीवन की स्वीकृति से पूर्व-परिचितों तथा तापस जीवन में परिचितों को पूछ कर ताम्रलिप्ति नगरी के मध्य भाग से गुजर कर पादुका, कमण्डलु आदि उपकरण और काष्ठकमय पात्र को एकान्त में छोड़ कर ताम्रलिप्ति नगरी के उत्तरपूर्व दिग्भाग (ईशानकोण)

में निवर्तनिक मण्डल का आलेखन कर संलेखना की आराधना में लीन हो भक्त-पान का प्रत्याख्यान कर प्रायोपगमन अनशन की अवस्था में मृत्यु की आकांक्षा नहीं करता हुआ रहूँ—ऐसी संप्रेक्षा करता है, संप्रेक्षा कर दूसरे दिन उषाकाल में पौ फटने पर यावत् सहसरश्मि दिनकर सूर्य के उदित और तेज से देदीप्यमान होने पर ताम्रलिप्ति नगरी में जिन्हें देखा है, जिनके साथ बातचीत की है, उन पाषण्डस्थों (श्रमणों) और गृहस्थों, तापस-जीवन की स्वीकृति से पूर्व-परिचितों और तापस-जीवन में परिचितों को पूछता है, पूछकर ताम्रलिप्ति नगरी के मध्य भाग से निर्गमन करता है, निर्गमन कर वह पादुका, कमण्डलु आदि उपकरण और काष्ठमय पात्र को एकान्त स्थान में छोड़ता है। छोड़ कर ताम्रलिप्ति नगरी के उत्तरपूर्व दिग्भाग में निवर्तनिक मण्डल का आलेखन करता है। आलेखन कर वह संलेखना-आराधना से युक्त हो कर भोजन-पानी का प्रत्याख्यान कर प्रायोपगमन अनशन में उपस्थित हो गया।

३७. उस काल और उस समय बलिचज्वा राजधानी इन्द्र और पुरोहित से रिक्त थी।

३८. वे बलिचज्वा राजधानी में रहने वाले अनेक असुरकुमार देव और देवियां अवधिज्ञान से बाल तपस्वी तामलि को देखते हैं। उसे देख कर वे परस्पर एक दूसरे को बुलाते हैं। उन्हें बुला कर वे इस प्रकार बोले—देवानुप्रियो! बलिचज्वा राजधानी इन्द्र और पुरोहित से रिक्त है। देवानुप्रियो! हम इन्द्र के अधीन हैं, इन्द्र में अधिष्ठित हैं और हमारे सारे काम इन्द्र के अधीन हैं। देवानुप्रियो! यह बालतपस्वी तामलि ताम्रलिप्ति नगरी के बाहर उत्तरपूर्व दिग्भाग में निवर्तनिक मण्डल का आलेखन कर, संलेखना की आराधना से युक्त हो भक्त-पान का प्रत्याख्यान कर प्रायोपगमन अनशन कर लेटा हुआ है। देवानुप्रियो! हमारे लिये यह श्रेयस्कर है कि बालतपस्वी तामलि को बलिचज्वा राजधानी के लिए स्थिति-प्रकल्प (विशेष संकल्प) करवाएं। ऐसा सोच कर वे एक दूसरे के पास इस बात को स्वीकार करते हैं स्वीकार कर बलिचज्वा राजधानी के मध्य भाग में निर्गमन करते हैं। निर्गमन कर वह जहां रुचकेन्द्र उत्पात पर्वत हैं, वहां आते हैं वहां आ कर वैक्रिय-समुद्घात से समवहत होते हैं। समवहत हो कर उत्तरवैक्रिय रूपों का निर्माण करते हैं। निर्माण कर वे उत्कृष्ट, त्वरित, चपल, चण्ड, जविनी, छेकी, सैंही, शीघ्र, उद्घुत और द्रव्य देवगति से तिरछी दिशा में असंख्य द्वीप और समुद्रों के मध्य से गुजरते हुए जहां जम्बूद्वीप द्वीप, भारतवर्ष, ताम्रलिप्ति नगरी और मौर्यपुत्र तामलि है, वहां आते हैं आ कर बालतपस्वी तामलि के ठीक ऊपर आकाश में स्थित होकर दिव्य देवर्द्धि, दिव्य देव-द्युति, दिव्य देवानुभाग और बत्तीस प्रकार की दिव्य नाट्यविधियां दिखाते हैं। दिखा कर तामलि तापस को दांई ओर से प्रारंभ कर तीन बार प्रदक्षिणा करते हैं। प्रदक्षिणा कर वन्दन-नमस्कार करते हैं। वन्दन-नमस्कार कर वे इस प्रकार बोले—देवानुप्रिय! हम बलिचज्वा राजधानी में रहने वाले अनेक असुरकुमार देव और देवियां आपकी वन्दन करते हैं, नमस्कार करते हैं, सत्कृत और सम्मानित करते हैं। आप कल्याणकारी, मंगलकारी, देवरूप और चित्ताह्लादक हैं; इसलिए हम आपकी पर्युपासना करते हैं। देवानुप्रिय! हमारी बलिचज्वा राजधानी इन्द्र और पुरोहित से रिक्त है। देवानुप्रिय! हम इन्द्र के अधीन हैं, इन्द्र में अधिष्ठित हैं और हमारे सारे काम इन्द्र के अधीन हैं, इसलिए देवानुप्रिय! आप बलिचज्वा राजधानी को आदर दें, उसमें ध्यान केन्द्रित करें, उसकी स्मृति करें। उस प्रयोजन का निश्चय करें, निदान करें और स्थिति-प्रकल्प (वहां उत्पन्न होने का संकल्प) करें। इससे आप मृत्यु के

समय मृत्यु प्राप्त कर बलिचज्वा राजधानी में उत्पन्न हो जायेंगे। आप हमारे इन्द्र बन जायेंगे और हमारे साथ दिव्य भोगार्ह भोगों को भोगते हुए विहरण करेंगे।

३९. वह बालतपस्वी तामलि उन बलिचज्वा राजधानी में रहने वाले अनेक असुरकुमार देवों और देवियों के द्वारा ऐसा कहने पर उनकी बात को न आदर देता है और न उस पर ध्यान केन्द्रित करता है, मौन रहता है।

४०. बलिचज्वा राजधानी में रहने वाले वे अनेक असुरकुमार देव और देवियां मौर्यपुत्र तामलि को दूसरी बार भी, तीसरी बार भी दाईं ओर से प्रारंभ कर तीन बार प्रदक्षिणा करते हैं यावत् (वे बोले)—देवानुप्रिय! हमारी बलिचज्वा राजधानी इन्द्र और पुरोहित से रिक्त है। देवानुप्रिय! हम इन्द्र के अधीन हैं, इन्द्र में अधिष्ठित हैं और हमारे सारे कार्य इन्द्र के अधीन हैं, इसलिए देवानुप्रिय! आप बलिचज्वा राजधानी को आदर दें, उस में ध्यान केन्द्रित करें, उसकी स्मृति करें, उस प्रयोजन का निश्चय करें, निदान करें और स्थिति-प्रकल्प (वहां उत्पन्न होने का संकल्प) करें यावत् दूसरी बार और तीसरी बार भी ऐसा कहने पर वह न तो उनकी बात को आदर देता है और न उस पर ध्यान केन्द्रित करता है, मौन रहता है।

४१. वे बलिचज्वा राजधानी में रहने वाले अनेक असुरकुमार देव और देवियां बालतपस्वी तामलि के द्वारा अनाहत और अस्वीकृत होकर जिस दिशा में आए थे, उसी दिशा में चले गए।

४२. उस काल और उस समय में ईशान कल्प (दूसरा देवलोक) इन्द्र और पुरोहित से रिक्त था।

४३. वह बालतपस्वी तामलि पूरे साठ हजार वर्ष के तापस-पर्याय का पालन कर दो मास की संलेखना से अपने आपको कृश बना कर अनशन के द्वारा एक सौ बीस भक्तों का छेदन कर काल-मास में काल को प्राप्त कर ईशान कल्प के ईशानावतंसक विमान में उपपात सभा के देवदूष्य से आच्छन्न देवशयनीय में अंगुल के असंख्येय भाग जितनी अवगाहना से ईशान देवेन्द्र से विरहित समय में ईशान देवेन्द्र के रूप में उपपन्न हो गया।

४४. वह तत्काल उपपन्न देवेन्द्र देवराज ईशान पांच प्रकार की पर्याप्तियों से पर्याप्त भाव को प्राप्त होता है, (जैसे—आहार-पर्याप्ति से यावत् भाषा-मनः-पर्याप्ति से)

४५. बलिचज्वा राजधानी में रहने वाले अनेक असुरकुमार-देव और देवियां बालतपस्वी तामलि को मृत जान कर तथा ईशान-कल्प में देवेन्द्र रूप में उपपन्न देख कर तत्काल आवेश में आ गए, रुष्ट हो गए, कुपित हो गए। उनका रूप रौद्र बन गया। वे क्रोध की अग्नि से प्रदीप्त हो उठे। वे बलिचज्वा राजधानी के मध्यभाग से निर्गमन करते हैं, निर्गमन कर उस उत्कृष्ट दिव्य देवगति से यावत् जहां भारतवर्ष है, जहां ताम्रलिप्ति नगरी है और जहां बालतपस्वी तामलि का मृत शरीर पड़ा हुआ है, वहां आते हैं। उसके बाएं पैर को रज्जु से बांधते हैं, तीन बार मुंह पर थूकते हैं और ताम्रलिप्ति नगरी के दुराहों, तिराहों, चौराहों, चौक, चार द्वार वाले स्थानों, राजपथों और सामान्य मार्गों पर उसको घसीटते हुए बाढ़ स्तर पर उद्घोषणा करते हुए इस प्रकार बोले—कौन है यह बालतपस्वी तामलि जो स्वयं ही तापस का लिंग धारण कर प्राणामा प्रव्रज्या में प्रव्रजित हुआ था? कौन है वह ईशान-कल्प में देवेन्द्र

देवराज ईशान ? ऐसा कहकर वे बालतपस्वी तामलि के शरीर की हेलना, निन्दा, तिरस्कार, गर्हा, अवमानना, तर्जना, ताड़ना, कदर्थना करते हैं, व्यथा (अथवा संचालन) उत्पन्न करते हैं और घसीटते हैं। हेलना, निन्दा, तिरस्कार, गर्हा, अवमानना, तर्जना, ताड़ना, कदर्थना कर और व्यथित कर, घसीट कर उसे एकान्त में डाल देते हैं। डाल कर जिस दिशा से आए उसी दिशा में चले गये।

४६. वे ईशान-कल्पवासी अनेक वैमानिक-देव और देवियां बलिचञ्चा राजधानी में रहने वाले अनेक असुरकुमार-देवों और देवियों के द्वारा बालतपस्वी तामलि के शरीर की हेलना, निन्दा, तिरस्कार, गर्हा, अवमानना, तर्जना, ताड़ना, कदर्थना, व्यथा (संचालन) की जा रही है, उसे घसीटा जा रहा है—यह देखते हैं। देख कर वे तत्काल आवेश में आ जाते हैं यावत् क्रोध की अग्नि से प्रदीप्त हो जाते हैं। वे जहां देवेन्द्र देवराज ईशान हैं, वहां आते हैं। आ कर दोनों हथेलियों से निष्पन्न सम्पुट वाली दश-नखात्मक अंजलि को सिर के सम्मुख घुमा कर मस्तक पर टिका कर जय-विजय की ध्वनि से उन्हें वर्धापित कर वे इस प्रकार बोले—देवानुप्रिय ! बलिचञ्चा राजधानी में रहने वाले अनेक असुरकुमार देव और देवियां आपको मृत जान कर तथा ईशान-कल्प में इन्द्र के रूप में उपपन्न देखकर तत्काल आवेश में आ गए यावत् उस शरीर को घसीटते हुए एकान्त में डाल देते हैं। डाल कर जिस दिशा से आए उसी दिशा में चले गए।

४७. देवेन्द्र देवराज ईशान उन ईशान-कल्पवासी अनेक वैमानिक-देवों और देवियों के पास यह बात सुन कर, अवधारण कर तत्काल आवेश में आ गया यावत् क्रोध की अग्नि से प्रदीप्त हो गया। वह उसी शयनीय (शय्या) पर बैठा हुआ ललाट पर तीन रेखाओं वाली भृकुटि को चढ़ा कर अपने ठीक नीचे बलिचञ्चा राजधानी को देखता है।

४८. वह बलिचञ्चा राजधानी देवेन्द्र देवराज ईशान के द्वारा अपने ठीक नीचे दृष्ट होने पर उस दिव्य प्रभाव से अंगारों, भुमुरों (भस्म-मिश्रित अमिकणों), राख एवं तपे हुए तवे के समान हो गई। वह ताप से तप्त और अग्नि तुल्य बन गई।

४९. वे बलिचञ्चा राजधानी में रहने वाले अनेक असुरकुमार-देव और देवियां उस बलिचञ्चा राजधानी को अंगारों के समान तप्त यावत् अग्नि-तुल्य देखते हैं। देख कर भीत और प्रकम्पित हो गए। उनके कंठ प्यास से सूख गए। वे उद्विग्न और भय से व्याकुल होकर चारों ओर इधर-उधर दौड़ रहे हैं, दौड़कर वे परस्पर एक दूसरे के शरीर का आश्लेष कर रहे हैं।

५०. बलिचञ्चा राजधानी में रहने वाले अनेक असुरकुमार देव और देवियां देवेन्द्र देवराज ईशान को परिकुपित जान कर, देवेन्द्र देवराज ईशान की उस दिव्य देवर्द्धि दिव्य देव-द्युति, दिव्य देवानुभाव और दिव्य तेजोलेश्या को सहन करने में असमर्थ हो कर वे सब ठीक देवराज ईशान की दिशा में खड़े हो कर, दोनों हथेलियों से निष्पन्न सम्पुटवाली दशनखात्मक अंजलि को सिर के सम्मुख घुमा कर, मस्तक पर टिका कर जय-विजय ध्वनि से उन्हें वर्धापित, करते हैं, वर्धापित कर वे इस प्रकार बोले—अहो ! आपने दिव्य देवर्द्धि, दिव्य देव-द्युति और दिव्य देवानुभाव उपलब्ध किया है, प्राप्त किया है, अभिसमन्वात (विपाकाभिमुख) किया है। आपने जो दिव्य देवर्द्धि, दिव्य देव-द्युति और दिव्य देवानुभाव

उपलब्ध किया है, प्राप्त किया है अभिसमन्वात किया है, वह हमने देख लिया है। इसलिए हम आपसे क्षमायाचना करते हैं, देवानुप्रिय! आप हमें क्षमा करें, देवानुप्रिय! आप क्षमा करने में समर्थ हैं, देवानुप्रिय! हम पुनः ऐसा न करने के लिए संकल्प करते हैं। ऐसा कह कर वे इस बात के लिए सम्यक् प्रकार से विनयपूर्वक बार-बार क्षमायाचना करते हैं।

५१. वह देवेन्द्र देवराज ईशान उन बलिचञ्चा राजधानी में रहने वाले अनेक असुरकुमार देव और देवियों के द्वारा इस बात के लिए सम्यक् प्रकार से विनयपूर्वक बार-बार क्षमायाचना करने पर उस दिव्य देवर्द्धि यावत् तेजोलेश्या को पुनः अपने भीतर समेट लेता है। गौतम! उस दिन से वे बलिचञ्चा राजधानी में रहने वाले अनेक असुरकुमार देव और देवियां देवेन्द्र देवराज ईशान को आदर करते हैं, स्वामी के रूप में स्वीकार करते हैं, सत्कार-सम्मान देते हैं, कल्याणकारी, मंगलकारी, देव रूप और चित्ताह्लादक मानकर विनयपूर्वक पर्युपासना करते हैं। वे देवेन्द्र देवराज ईशान की आज्ञा, उपपात (सेवा), आदेश और निर्देश में रहते हैं।

गौतम! इस प्रकार देवेन्द्र देवराज ईशान ने वह दिव्य देवर्द्धि, दिव्य देव-द्युति और दिव्य देवानुभाव उपलब्ध किया है, प्राप्त किया है, अभिसमन्वागत (विपाकाभिमुख) किया है।

५२. भन्ते! देवेन्द्र देवराज ईशान की स्थिति कितनी प्रज्ञप्त हैं।

गौतम! कुछ अधिक दो सागरोपम की स्थिति प्रज्ञप्त है।

५३. भन्ते! देवेन्द्र देवराज ईशान आयु-क्षय, भव-क्षय और स्थिति-क्षय के अनन्तर उस देवलोक से च्यवन कर कहाँ जाएगा? कहा उपपन्न होगा?

गौतम! वह महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध, प्रशान्त, मुक्त और परितनर्वृत्त होगा, सब दुखों का अन्त करेगा।

शक्रेशान-पद

५४. भन्ते! क्या देवेन्द्र देवराज ईशान के विमान देवेन्द्र देवराज शक्र के विमानों से कुछ ऊंचे हैं? कुछ उन्नत हैं? क्या देवेन्द्र देवराज शक्र के उच्चतर उन्नततर विमान देवेन्द्र देवराज ईशान के विमानों से कुछ नीचे हैं? कुछ निम्न हैं?

हां, गौतम! यह सब इसी प्रकार ज्ञातव्य है।

५५. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है?

गौतम! जैसे हथेली का एक भाग ऊंचा और उन्नत होता है, एक भाग नीचा और निम्न होता है। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—देवेन्द्र देवराज शक्र के विमान यावत् कुछ निम्न हैं।

५६. भन्ते! क्या देवेन्द्र देवराज शक्र देवेन्द्र देवराज ईशान के पास प्रकट होने में समर्थ है?

हां, वह समर्थ है।

५७. भन्ते! क्या वह आदर करता हुआ समर्थ है? अनादर करता हुआ समर्थ है?

गौतम! वह आदर करता हुआ समर्थ है, अनादर करता हुआ समर्थ नहीं है।

५८. भन्ते! क्या देवेन्द्र देवराज ईशान देवेन्द्र देवराज शक्र के पास प्रकट होने में समर्थ है?

हां, वह समर्थ है।

५९. भन्ते! क्या वह आदर करता हुआ समर्थ है? अनादर करता हुआ समर्थ है?

गौतम! वह आदर करता हुआ भी समर्थ है, अनादर करता हुआ भी समर्थ है।

६०. भन्ते! क्या देवेन्द्र देवराज शक्र देवेन्द्र देवराज ईशान को ठीक सीध में स्थित हो देखने में समर्थ है?

हां, वह समर्थ है।

६१. भन्ते! क्या वह आदर करता हुआ समर्थ है? अनादर करता हुआ समर्थ है?

गौतम! वह आदर करता हुआ समर्थ है, अनादर करता हुआ समर्थ नहीं है।

६२. भन्ते! क्या देवेन्द्र देवराज ईशान देवेन्द्र देवराज शक्र के ठीक सीध में स्थित हो देखने में समर्थ है?

६३. भन्ते! क्या वह आदर करता हुआ समर्थ है? अनादर करता हुआ समर्थ है?

गौतम! वह आदर करता हुआ भी समर्थ है, अनादर करता हुआ भी समर्थ है।

६४. भन्ते! क्या देवेन्द्र देवराज ईशान शक्र देवेन्द्र देवराज ईशान के साथ आलाप-संलाप करने में समर्थ है?

हां, वह समर्थ है।

६५. भन्ते! क्या वह आदर करता हुआ समर्थ है? अनादर करता हुआ समर्थ है?

गौतम! वह आदर करता हुआ समर्थ, अनादर करता हुआ समर्थ नहीं है।

६६. भन्ते! क्या देवेन्द्र देवराज ईशान शक्र देवेन्द्र देवराज ईशान के साथ आलाप-संलाप करने में समर्थ है?

हां, वह समर्थ है।

६७. भन्ते! क्या वह आदर करता हुआ समर्थ है? अनादर करता हुआ समर्थ है?

गौतम! वह आदर करता हुआ समर्थ है, अनादर करता हुआ भी समर्थ है।

६८. भन्ते! उन देवेन्द्र देवराज शक्र और ईशान के मध्य यह कार्य करणीय है—ऐसा विचार उत्पन्न होता है?

हां, होता है।

६९. ऐसा होने पर वे उसे क्रियान्वित कैसे कर सकते हैं? गौतम! यदि देवेन्द्र देवराज शक्र के सामने कोई प्रयोजन उपस्थित होता है तो वह देवेन्द्र देवराज ईशान के पास प्रकट होता है और यदि देवेन्द्र देवराज ईशान के सामने कोई प्रयोजन उपस्थित होता है तो वह देवेन्द्र देवराज शक्र के पास प्रकट होता है। ईशान कहता है—हे दक्षिणार्ध-लोकाधिपति देवेन्द्र देवराज शक्र! इस समय यह कार्य करणीय है। शक्र कहता है—हे उत्तरार्ध-लोकाधिपति देवेन्द्र देवराज

ईशान! इस समय यह कार्य करणीय है। ओ! यह करणीय है, ओ! यह करणीय है—इस प्रकार वे परस्पर एक दूसरे के करणीय कार्य का अनुभव करते हुए विहार करते हैं।

७०. भन्ते! क्या उन देवेन्द्र देवराज शक्र और ईशान के मध्य कभी विवाद उत्पन्न होते हैं? हां, होते हैं।

७१. ऐसा होने पर वे उसे कैसे सुलझाते हैं?

गौतम! उस समय वे देवेन्द्र देवराज शक्र और ईशान देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार की मानसिक स्मृति करते हैं। उन देवेन्द्र देवराज शक्र और ईशान द्वारा मानसिक स्मृति करने पर शीघ्र ही वह देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार उन देवेन्द्र देवराज शक्र और ईशान के पास प्रकट होता है। वह जो कहता है (उसे शिरोधार्य करते हैं), उसकी आज्ञा, उपपात (सेवा), आदेश और निर्देश का पालन करते हैं।

सनत्कुमार-पद

७२. भन्ते! देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार भवसिद्धिक (मुक्ति जाने के लिए योग्य) है? अभवसिद्धिक है? सम्यग्दृष्टि है? मिथ्यादृष्टि है? परीत-संसारी है? अनन्त-संसारी है? सुलभबोधिक है? दुर्लभबोधिक है? आराधक है? विराधक है? चरम है? अचरम है?

गौतम! देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार भवसिद्धिक है, अभवसिद्धिक नहीं है। सम्यग्दृष्टि है, मिथ्यादृष्टि नहीं है। परीत-संसारी है, अनन्त-संसारी नहीं है। सुलभबोधिक है, दुर्लभबोधिक नहीं है। आराधक है, विराधक नहीं है। चरम है, अचरम नहीं है।

७३. भन्ते! यह किस अपेक्षा से (कहा जा रहा है)?

गौतम! देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार अनेक साधुओं, अनेक साध्वियों, अनेक श्रावकों और अनेक श्राविकाओं का हित चाहने वाला, सुख चालने वाला, पथ्य चाहने वाला, अनुकम्पा करने वाला, निःश्रेयस् की दिशा में प्रेरित करने वाला है। हित, सुख और निःश्रेयस् चाहने वाला है। गौतम! इस अपेक्षा से देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार भवसिद्धिक है, अभवसिद्धिक नहीं है। सम्यग्दृष्टि है, मिथ्या-दृष्टि नहीं है। परीत-संसारी है, अनन्त-संसारी नहीं है। सुलभबोधिक है, दुर्लभबोधिक नहीं है। आराधक है, विराधक नहीं है। चरम है, अचरम नहीं है।

७४. भन्ते! देवेन्द्र देवराज सनत्कुमार की स्थिति कितने काल की प्रज्ञप्त है?

गौतम! सात सागरोपम की स्थिति प्रज्ञप्त है।

७५. भन्ते! वह आयु-क्षय, भव-क्षय और स्थिति-क्षय होने के अनन्तर उस देवलोक से च्यवन कर कहाँ जाएगा? कहाँ उपपन्न होगा?

गौतम! वह महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध, प्रशान्त, मुक्त और परिनिर्वृत होगा, सब दुःखों का अन्त करेगा।

७६. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है।

संग्रहणी गाथा

तिष्ठक मुनि की तपस्या निरन्तर दो-दो दिन का उपवास, अनशन एक महीने का और दीक्षा-पर्याय आठ वर्ष का था। कुरुदत्त मुनि की तपस्या निरन्तर तीन-तीन दिन का उपवास, अनशन पन्द्रह दिन का और दीक्षा-पर्याय छह महीने का था।

विमानों की ऊंचाई, इन्द्रों का परस्पर एक दूसरे के पास प्रकट होना, दर्शन वार्तालाप, करणी, विवादोत्पत्ति तथा सनत्कुमारकी भव्यता आदि विषयों का वर्णन इस उद्देशक में हुआ है।

दूसरा उद्देशक

चमर का भगवान को वन्दन-पद

७७. उस काल और उस समय में राजगृह नामक नगर था, यावत् परिषद् पर्युपासना करती है।

७८. उस काल और उस समय में असुरेन्द्र असुरराज चमर चमरचञ्चा राजधानी की सुधर्मा सभा में चमर सिंहासन पर चौंसठ हजार सामानिक देवों से (परिवृत था) यावत् भगवान् के सामने नाट्यविधि का उपदर्शन कर वह जिस दिशा से आया, उसी दिशा में चला गया।

असुरकुमार-वर्णक-पद

७९. भन्ते! इस सम्बोधन के साथ भगवान् गौतम श्रमण भगवान् महावीर को वन्दना करते हैं, नमस्कार करते हैं, वन्दन-नमस्कार कर इस प्रकार बोले—भन्ते! क्या इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे असुरकुमार-देव रहते हैं?

गौतम! यह बात संगत नहीं है।

८०. भन्ते! इसी प्रकार यावत् सातवीं पृथ्वी के नीचे सौधर्म कल्प के नीचे यावत् भन्ते! क्या ईषत्-प्राग्भारा पृथ्वी के नीचे असुरकुमार-देव रहते हैं?

यह बात संगत नहीं है।

८१. भन्ते! तो फिर असुरकुमार देव कहां रहते हैं?

गौतम! इस एक लाख अस्सी हजार योजन की मोटाई वाली रत्नप्रभा पृथ्वी में असुरकुमार देव रहते हैं। इस प्रकार असुरकुमार-देवों की वक्तव्यता है, यावत् वे दिव्य भोगार्ह भोगों का भाग करते हुए रहते हैं।

८२. भन्ते! क्या असुरकुमार-देवों की गति का विषय नीचे लोक में हैं?

हां, है।

८३. भन्ते! असुरकुमार-देवों की गति का विषय नीचे लोक में कितना प्रज्ञप्त है?

गौतम! उनकी गति का विषय अधःसप्तमी पृथ्वी तक है। तीसरी पृथ्वी तक वे गए हैं और जाएंगे।

८४. भन्ते! असुरकुमार-देव तीसरी पृथ्वी तक गए हैं और जाएंगे, इसका प्रत्यय क्या है?

गौतम! पूर्वजन्म के वैरी की वेदना की उदीरणा करने के लिए अथवा पूर्वजन्म के मित्र की वेदना का उपशमन करने के लिए—इन दो प्रत्ययों से असुरकुमार-देव तीसरी पृथ्वी तक गए हैं और जाएंगे।

८५. भन्ते! क्या असुरकुमार-देवों की गति का विषय तिरछे लोक में प्रज्ञप्त हैं?

हां, है।

८६. भन्ते! तिरछे लोक में असुरकुमार-देवों की गति का विषय कितना प्रज्ञप्त है?

गौतम! उनकी गति का विषय असंख्य द्वीप-समुद्रों तक है। नन्दीश्वरवर द्वीप तक वे गये हैं और जाएंगे।

८७. भन्ते! असुरकुमार-देव नन्दीश्वरवर द्वीप तक गए हैं और जाएंगे, इसका प्रत्यय क्या है?

गौतम! जो ये अर्हत् भगवान् हैं, इनके जन्मोत्सव, अभिनिष्क्रमण-उत्सव, केवलज्ञानोत्पत्ति-उत्सव अथवा परिनिर्वाण-उत्सव के अवसर पर इन चार प्रत्ययों से असुरकुमार-देव नन्दीश्वरवर द्वीप तक गए हैं और जाएंगे।

८८. भन्ते! क्या असुरकुमार-देवों की गति का विषय ऊर्ध्व-लोक में है?

हां, है।

८९. भन्ते! ऊर्ध्व-लोक में असुरकुमार-देवों की गति का विषय कितना है?

गौतम! ऊर्ध्व-लोक में असुरकुमार देवों की गति का विषय अच्युत कल्प तक है। सौधर्म कल्प तक वे गए हैं और जाएंगे।

९०. भन्ते! असुरकुमार-देव सौधर्म-कल्प में गए हैं और जाएंगे—इसका प्रत्यय क्या है?

गौतम! असुरकुमार-देवों का सौधर्म-कल्पवासी देवों के साथ भवप्रत्ययिक वैरानुबन्ध होता है। वे असुरकुमार-देव (सौधर्म कल्पवासी देवों को डराने के लिए) विशाल शरीर का निर्माण करते हैं, अन्य देवियों के साथ भोग करना चाहते हैं, आत्मरक्षक देवों को संत्रस्त करते हैं, छोटे, रत्नों को चुराकर स्वयं एकान्त स्थान में चले जाते हैं।

९१. भन्ते! क्या उन देवों के पास छोटे रत्न हैं?

हां, हैं।

९२. असुरकुमार-देव छोटे रत्नों को चुरा एकान्त में चले जाते हैं। तब वैमानिक देव क्या करते हैं?

वैमानिक-देव उन असुरकुमार-देवों के शरीर को प्रव्यथित करते हैं—शस्त्र-प्रहार से आहत कर डालते हैं।

९३. भन्ते! सौधर्म-कल्प में गए हुए असुरकुमार-देव उन अप्सराओं के साथ दिव्य भोगार्ह भोग भोगने में समर्थ हैं?

यह बात संगत नहीं हैं। वे वहां से लौट आते हैं। वहां से लौट कर अपने असुरकुमार-आवासों में आ जाते हैं। यदि वे अप्सराएं उनका आदर करती हैं और उन्हें स्वीकार करती हैं, तो वे असुरकुमार-देव उन अप्सराओं के साथ दिव्य भोगार्ह भोग भोगने में समर्थ हैं। यदि वे अप्सराएं उनका आदर नहीं करती हैं और उन्हें स्वीकार नहीं करती हैं, तो वे असुरकुमार-देव उन अप्सराओं के साथ दिव्य भोगार्ह भोग भोगने में समर्थ नहीं हैं। गौतम! इस प्रकार

असुरकुमार-देव सौधर्म-कल्प में गए हैं और जाएंगे।

१४. भन्ते! असुरकुमार-देव कितने समय से ऊर्ध्व-लोक में जाते हैं यावत् सौधर्म-कल्प तक गए हैं और जाएंगे?

गौतम! अनन्त अवसर्पिणी और अनन्त उत्सर्पिणी के व्यतीत होने पर लोक में आश्चर्यभूत यह भाव उत्पन्न होता है कि असुरकुमार देव ऊर्ध्व-लोक में यावत् सौधर्म कल्प तक जाते हैं।

१५. भन्ते! असुरकुमार-देव किसकी निश्रा (आश्रय) से ऊर्ध्व-लोक में, यावत् सौधर्म कल्प तक जाते हैं?

गौतम! जैसे कोई शबर, बर्बर, टंकण, चुचुक, पल्हव या पुलिन्द एक महान् अरण्य, गर्त, दुर्ग, दरी, विषम अथवा पर्वत की निश्रा से एक विशाल अश्वसेना, हस्तिसेना, पदातिसेना अथवा धनुष्यबल को आन्दोलित कर देते हैं, इसी प्रकार असुरकुमार-देव भी अर्हत्, अर्हत्-चैत्य अथवा भावितात्मा अणगार की निश्रा से ऊर्ध्व-लोक में यावत् सौधर्म-कल्प तक जाते हैं। उनकी निश्रा के बिना वे ऊर्ध्व-लोक में नहीं जा सकते।

१६. भन्ते! क्या सभी असुरकुमार देव ऊर्ध्व-लोक में यावत् सौधर्म-कल्प तक जाते हैं?

गौतम! यह बात संगत नहीं है। महर्द्धिक असुरकुमार देव ही ऊर्ध्व-लोक में यावत् सौधर्म-कल्प तक जाते हैं।

चमर का ऊर्ध्व-उत्पाद-पद

१७. भन्ते यह असुरेन्द्र असुरराज चमर भी ऊर्ध्व-लोक में यावत् सौधर्म-कल्प तक गया हुआ है?

हां, गौतम! यह असुरेन्द्र असुरराज चमर भी ऊर्ध्व-लोक में यावत् सौधर्म-कल्प तक गया हुआ है।

१८. अहो भन्ते! असुरेन्द्र असुरराज चमर महान् ऋद्धि वाला है, महान् द्युति वाला है यावत् महासामर्थ्य वाला है। भन्ते! चमर की यह दिव्य देवर्द्धि, दिव्य देवद्युति और दिव्य देवानुभाग कहां गया? कहां प्रविष्ट हो गया है?

कूटागार-शाला का दृष्टान्त वक्तव्य है।

चमर का पूर्वभव में पूरण गृहपति का पद

१९. भन्ते! असुरेन्द्र असुरराज चमर ने दिव्य देवर्द्धि, दिव्य देव-द्युति और दिव्य देवानुभाग किस हेतु से उपलब्ध किया? किस हेतु से प्राप्त किया है? और किस हेतु से अभिसमन्वागत (विपाकाभिमुख) किया?

१००. गौतम! उस काल और उस समय उसी जम्बूद्वीप द्वीप के भारतवर्ष में विन्ध्यपर्वत की तलहटी में बेभेल नामक सन्निवेश था। सन्निवेश का वर्णन।

१०१. उस बेभेल सन्निवेश में पूरण नामक गृहपति रहता था। वह समृद्ध, तजस्वी यावत् अनेक लोगों द्वारा अपरिभूत था।

पूरण की दानामा प्रव्रज्या का पद

१०२. किसी समय मध्यरात्रि में कुटुम्बजागरिका करते हुए उस पूरण गृहपति के यह इस प्रकार का आध्यात्मिक, स्मृत्यात्मक, अभिलाषात्मक, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—इस समय मेरे पूर्वकृत पुरातन सु-आचरित, सुपराक्रान्त, शुभ और कल्याणकारी कर्मों का कल्याणदायी फल मिल रहा है, जिससे मैं चांदी, सोना, धन, धान्य, पुत्र, पशु तथा विपुल वैभव—रत्न, मणि, मोती, शंख, शिला, प्रवाल, लालरत्न (पद्मरागमणि) और श्रेष्ठ सार—वैभवशाली द्रव्यों द्रव्यों से अतीव-अतीव वृद्धि कर रहा हूं, तो क्या मेरे पूर्वकृत पुरातन सु-आचरित, सुपराक्रान्त, शुभ और कल्याणकारी कर्म एकान्ततः क्षीण हो रहे हैं और मैं उन्हें देखता हुआ विहरण कर रहा हूं?

इसलिए जब तक मैं चांदी से वृद्धि कर रहा हूं यावत् इन वैभवशाली द्रव्यों से अतीव-अतीव वृद्धि कर रहा हूं और जब तक मेरे मित्र, ज्ञाति, कुटुम्बी, स्वजन, संबंधी और परिजन मेरा आदर करते हैं, मुझे स्वामी के रूप में स्वीकारते हैं, सत्कार-सम्मान देते हैं, कल्याणकारी, मंगलकारी, देवरूप और चित्ताह्लादक मानकर विनयपूर्वक पर्युपासना करते हैं तब तक मेरे लिए यह श्रेय है कि मैं कल उषाकाल में पौ फटने पर यावत् सहस्ररश्मि दिनकर सूर्य के उदित और तेज से देदीप्यमान होने पर मैं स्वयं चतुष्पुट काष्ठमय पात्र का निर्माण कर, विपुल भोजन, पेय, स्वाद्य और खाद्य पदार्थ तैयार करवा कर, मित्र, ज्ञाति, कुटुम्बी, स्वजन, संबंधी और परिजनों को आमन्त्रित कर, उन्हें विपुल भोजन, पेय, खाद्य, ओर स्वाद्य पदार्थों से तथा वस्त्र, सुगन्धित द्रव्य, माला और अलंकारों से सत्कृत-सम्मानित कर, उन्हीं मित्रों, ज्ञातियों, कुटुम्बीजनों, स्वजनों, संबंधियों और परिजनों के सामने ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब में स्थापित कर, उन मित्रों, ज्ञातियों, कुटुम्बीजनों, स्वजनों, संबंधियों, परिजनों और ज्येष्ठ पुत्र को पूछकर, स्वयं चतुष्पुट काष्ठमय पात्र ग्रहण कर, मुण्ड होकर दानामा प्रव्रज्या से प्रव्रजित होना मेरे लिए श्रेयस्कर है। प्रव्रजित होकर मैं इस आकार वाला यह अभिग्रह स्वीकार करूंगा—मैं जीवन भर निरन्तर बेले-बेले (दो-दो दिन के उपवास) की तपःसाधना करूंगा। मैं आतापना-भूमि में दोनों भुजाएं ऊपर उठा कर सूर्य के सामने आतापना लेता हुआ विहार करूंगा। बेले के पारणे में मैं आतापना-भूमि से उतरकर स्वयं चतुष्पुट काष्ठमय पात्र ग्रहण कर बेभेल सन्निवेश के ऊंच, नीच और मध्यम कुलों में सामुदानिक भिक्षाचारी के लिए पर्यटन करूंगा। मेरे पात्र के प्रथम पुट में जो भिक्षा डाली जाएगी वह मार्ग में समागत पथिकों को दूंगा। मेरे पात्र के दूसरे पुट में जो भिक्षा डाली जाएगी वह मैं कौबों और कुत्तों को दूंगा। जो मेरे पात्र के तीसरे पुट में डाली जाएगी वह मछलियों और कछुओं को दूंगा। मेरे पात्र के चौथे पुट में जो डाली जाएगी वह आहार मेरे लिए कल्पनीय होगा। इस प्रकार सोच कर वह संप्रेक्षा करता है, संप्रेक्षा कर उषाकाल में रात्रि के पौ फटने पर उस सम्पूर्ण पूर्वोक्त विधि का पालन करता हुआ यावत् उसके पात्र के चौथे पुट में जो भिक्षा डाली जाती है, उसका वह स्वयं आहार करता है।

१०३. वह बालपतस्वी पूरण उस प्रधान, विपुल, अनुज्ञात और प्रगृहीत बालतपः-कर्म से सूखा, रूखा, मांस-रहित चर्म से वेष्टित अस्थि वाला, उठते-बैठते समय किट-किट शब्द से

युक्त, कृश और धमनियों का जालमात्र हो गया।

पूरण का प्रायोपगमन-पद

१०४. किसी एक दिन मध्यरात्रि में अनित्य-जागरिका करते हुए उस बाल तपस्वी पूरण के मन में यह इस प्रकार का आध्यात्मिक, स्मृत्यात्मक, अभिलाषात्मक, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—मैं इस विशिष्ट रूप वाले प्रधान, विपुल, अनुज्ञात, प्रगृहीत, कल्याण, शिव, धन्य, मंगलमय, शोभायित, उत्तरोत्तर वर्धमान, उदात्त, उत्तम और महान् प्रभावी तपःकर्म से सूखा, रूखा, यावत् धमनियों का जालमात्र हो गया हूँ। अतः जब तक मुझमें उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार-पराक्रम है, तब तक मेरे लिए यह श्रेयस्कर है कि मैं कल उषाकाल में पौ फटने पर यावत् सहस्ररश्मि दिनकर सूर्य के उदित और तेज से देदीप्यमान होने पर बेभेल सन्निवेश में जिन्हें देखा है, जिनके साथ बातचीत की है, उन पाषण्डस्थो (श्रमणों), गृहस्थों तापस जीवन की स्वीकृति से पूर्व परिचितों तथा तापस जीवन में परिचितों को पूछ कर बेभेल सन्निवेश के मध्यभाग से गुजरकर पादुका, कमण्डलु आदि उपकरण तथा चतुष्पुटक काष्ठमय पात्र को एकान्त में छोड़कर कर बेभेल सन्निवेश के दक्षिण-पूर्व दिग्बिभाग (आग्नेय-कोण) में अर्ध निवर्तनिक मण्डल का आलेखन कर संलेखन (अनशन से पूर्वकालिक तपस्या) की आराधना से युक्त होकर, भोजन-पानी का त्याग कर प्रायोपगमन अनशन स्वीकार कर मृत्यु की आकांक्षा नहीं करता हुआ रहूँ, ऐसी संप्रेक्षा करता है, संप्रेक्षा कर दूसरे दिन उषाकाल में पौ फटने पर यावत् सहस्ररश्मि दिनकर सूर्य के उदित और तेज से देदीप्यमान होने पर बेभेल सन्निवेश में जिन्हें देखा है, जिनके साथ बातचीत की है, उन पाषण्डस्थों (श्रमणों) और गृहस्थों, तापस-जीवन की स्वीकृति से पूर्व परिचितों और तापस-जीवन में परिचितों को पूछता है, पूछकर बेभेल सन्निवेश के मध्यभाग से निर्गमन करता है, निर्गमन कर वह पादुका, कमण्डलु आदि उपकरण और चतुष्पुटक काष्ठमय पात्र को एकान्त स्थान में छोड़ देता है, छोड़कर बेभेल सन्निवेश के दक्षिण-पूर्व दिग्बिभाग में अर्धनिवर्तनिक मण्डल का आलेखन करता है, आलेखन कर वह संलेखना-आराधना से युक्त होकर भोजन-पानी का प्रत्याख्यान कर प्रायोपगमन अनशन में उपस्थित हो गया।

भगवान की एकरात्रिकी महाप्रतिमा का पद

१०५. गौतम! उस काल और उस समय में मैं छद्मस्थ-अवस्था की ग्यारह वर्षीय दीक्षा-पर्याय में था। तब मैं बिना विराम षष्ठ-भक्त तपःकर्म, संयम और तप से आत्मा को भावित करता हुआ क्रमानुसार विचरण, ग्रामानुग्राम में परिव्रजन करता हुआ जहां सुंसुमारपुर, अशोकषण्ड उद्यान, प्रवर अशोक वृक्ष और पृथ्वीशिलापट्ट है, वहां आता हूँ। वहां आकर मैं प्रवर अशोकवृक्ष के नीचे पृथ्वी-शिलापट्ट पर तीन दिनका उपवास ग्रहण करता हूँ। दोनों पैरों को सटा, दोनों हाथों को प्रलम्बित कर, एक पुद्गल पर दृष्टि टिका, नेत्रों को अनिमेष बना, मुंह आगे की ओर झुका, अवयवों को अपने-अपने स्थान पर सम्यक् नियोजित कर, सब इन्द्रियों को संवृत बना एक रात की महाप्रतिमा को स्वीकार कर विहरण करता हूँ।

पूरण का चमरत्त्व-पद

१०६. उस काल और उस समय में चमरचञ्चा राजधानी इन्द्र और पुरोहित से रिक्त थी।

१०७. वह बालतपस्वी पूरण पूरे बारह वर्ष के तापस-पर्याय का पालन कर एक मास की संलेखना से अपने आपको कृश बना कर, अनशन के द्वारा साठ भक्तों को छेद कर कालमास में काल को प्राप्त कर चमरचञ्चा राजधानी की उपपात सभा में यावत् इन्द्र रूप में उपपन्न हो गया।

१०८. वह तत्काल उपपन्न असुरराज असुरेन्द्र चमर पांच प्रकार की पर्याप्तियों से पर्याप्त भाव को प्राप्त होता है (जैसे—आहार-पर्याप्ति से यावत् भाषा-मनः-पर्याप्ति से)।

चमर का कोप-पद

१०९. वह असुरेन्द्र असुरराज चमर पांच प्रकार की पर्याप्तियों से पर्याप्त भाव को प्राप्त हो, स्वाभाविक अवधिज्ञान द्वारा ऊर्ध्व-लोक में यावत् सौधर्म-कल्प तथा ध्यान देता है। वहां वह देखता है—देवेन्द्र देवराज मधवा पाकशासन शतक्रतु सहस्राक्ष वज्रपाणि पुरन्दर शक्र को।

दक्षिणार्ध-लोक का अधिपति, बत्तीस लाख विमानों का अधिपति, ऐरावण हाथी की सवारी करने वाला, देवताओं का स्वामी, आकाश के सामने निर्मल-वस्त्र धारण करने वाला, मुकुट तक माला धारण करने वाला, नए स्वर्णिम सुन्दर चित्रों से युक्त चंचल कुण्डलों से रखाङ्कित कपोल वाला, दीप्तिमान् शरीर वाला, प्रलम्ब वनमाला धारण करने वाला, दिव्य वर्ण से यावत् दसों दिशाओं का उद्द्योतित करने वाला, प्रभासित करने वाला है। उसे सौधर्म कल्प में सौधर्मावतंसक विमान में सुधर्मा सभा के शक्र नामक सिंहासन पर यावत् दिव्य भोगार्ह भोगों को भोगते हुए देखता है, देखकर असुरेन्द्र चमर के यह इस प्रकार का आध्यात्मिक, स्मृत्यात्मक, अभिलाषात्मक मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—कौन है यह अप्रार्थनीय को चाहने वाला, दुःखःद अन्त और अमनोज्ञ लक्षण वाला, लज्जा और शोभा से रहित, हीनपुण्य-चतुर्दशी को जन्मा हुआ जो ऐसी विशिष्ट प्रकार की दिव्य देवर्षि, दिव्य देव-द्युति और दिव्य देवानुभाव उपलब्ध करने, प्राप्त करने, अभिसमन्वागत (विपाकाभिमुख) करने पर भी मेरे सिर पर बैठा हुआ, बड़े धैर्य के साथ दिव्य भोगार्ह भोग भोगता हुआ रहता है। ऐसा सोचता है, सोच कर सामानिक परिषद् में उपपन्न देवों को आमन्त्रित करता है, आमन्त्रित कर इस प्रकार बोला—हे देवानुप्रियो! यह कौन है अप्रार्थनीय को चाहने वाला यावत् दिव्य भोगार्ह भोग भोगता हुआ रहता है?

११०. असुरेन्द्र असुरराज चमर के द्वारा ऐसा कहने पर वे सामानिक परिषद् में उपपन्न देव हृष्ट-तुष्ट चित्त वाले, आनन्दित, नन्दित, प्रीतिपूर्ण मन वाले और परम सौमनस्य युक्त हो गए हैं। हर्ष से उनका हृदय फूल गया। वे दोनों हथेलियों से निष्पन्न सम्पुट वाली दश नखात्मक अंजलि को सिर के सम्मुख घुमा कर मस्तक पर टिका कर असुरेन्द्र को जय-विजय ध्वनि से वर्धापित करते हैं। वर्धापित कर इस प्रकार बोले—देवानुप्रियो! यह देवेन्द्र देवराज शक्र है, यावत् दिव्य भोगार्ह भोग भोगता हुआ रहता है।

१११. वह असुरेन्द्र असुरराज चमर सामानिक परिषद् में उपपन्न उन देवों के पास यह बात सुन कर, अवधारण कर तत्काल आवेश में आ गया, रुष्ट हो गया, कुपित हो गया। उसका रूप रौद्र बन गया, वह क्रोध की अग्नि से प्रदीप्त हो उठा। उसने उन सामानिक देवों से इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो! वह देवेन्द्र देवराज शक्र अन्य है, हमारा विरोधी है वह असुरेन्द्र असुरराज

चमर अन्य है, उसका विरोधी है। वह देवेन्द्र देवराज शक्र महर्द्धिक है और वह असुरेन्द्र असुरराज चमर अल्प ऋद्धि वाला है। इसलिए देवेन्द्र देवराज शक्र की मैं स्वयं अति आशातना (उसे श्रीहीन) करना चाहता हूँ, ऐसा कह कर वह तप्त हो गया, तापमय बन गया।

चमर का भगवान की निश्चापूर्वक शक्र की आशातना का पद

११२. वह असुरेन्द्र असुरराज चमर अवधि-ज्ञान का प्रयोग करता है। प्रयोग कर अवधि-ज्ञान से मुझे (भगवान् महावीर को) देखता है। देखने के बाद उसके यह इस प्रकार का आध्यात्मिक, स्मृत्यात्मक, अभिलाषात्मक, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—इस समय श्रमण भगवान् महावीर जम्बूद्वीप द्वीप के भारतवर्ष में सुंसुमारपुर नगर के अशोकषण्ड उद्यान में प्रवर अशोकवृक्ष के नीचे पृथ्वीशिलापट्ट पर तीन दिन के उपवास का संकल्प ग्रहण कर एक रात की महाप्रतिमा स्वीकार कर ठहरे हुए हैं। मेरे लिए श्रमण भगवान् महावीर का सहारा लेकर देवेन्द्र देवराज शक्र की अति आशातना करना श्रेयस्कर है, ऐसा सोचकर वह संप्रेक्षा करता है, संप्रेक्षा कर शय्या से उठता है, उठकर देवदूष्य धारण करता है, धारण कर जहां सुधर्मा सभा और चोप्याल नामक शस्त्रागार है वहां आता है। आकर परिघरत्न को हाथ में लेता है, वह अकेला किसी दूसरे के सहारे की अपेक्षा नहीं रखता हुआ वहां से परिघरत्न लेकर बहुत अधिक क्रोध करता हुआ चमरचज्वा राजधानी के ठीक मध्यभाग से निर्गमन करता है। निर्गमन कर जहां तिगिञ्जिकूट उत्पात पर्वत है, वहां आता है। आकर वैक्रिय-समुद्घात से समवहत होता है। समवहत होकर यावत् उत्तरवैक्रिय रूप का निर्माण करता है। निर्माण कर उस उत्कृष्टत, त्वरित, चपल, चण्ड, जविनी, छेक, सैही, शीघ्र, उद्धुत और दिव्य देवगति से तिरछी दिशा में असंख्य द्वीप-समुद्रों के मध्य भाग से गुजरता-गुजरता जहां जम्बूद्वीप द्वीप, भारतवर्ष सुंसुमारपुर नगर, अशोकषण्ड उद्यान, प्रवर अशोकवृक्ष और पृथ्वीशिला पट्ट है, जहां मेरा परिपाश्वर्य है, वहां आता है। आकर तीन बार दाएं ओर से प्रारम्भ कर मेरी प्रदक्षिणा करता है। प्रदक्षिणा कर वन्दन-नमस्कार करता है। वन्दन-नमस्कार कर इस प्रकार बोला—भते! मैं आपकी निश्चा से देवेन्द्र देवराज शक्र की अति आशातना करना चाहता हूँ, ऐसा कहकर वह उत्तर-पौरस्त्य दिग्भाग (ईशानकोण) में पहुंचता है। पहुंचकर वैक्रिय-समुद्घात से समवहत होता है। समवहत हो कर यावत् दूसरी बार फिर वैक्रिय समुद्घात से समवहत होता है। एक महान् घोर घोर आकार वाले, भयंकर, भयंकर आकार वाले, भास्वर (चौंधियाने वाले) भयानक, गंभीर, त्रास देने वाले, अमा की अर्धरात्रि और उरद की राशि जैसे काले एक लाख योजन की अवगाहना वाले महाशरीर का निर्माण करता है। निर्माण कर हाथों को आकाश में उछालता है, कूदता है, गर्जन करता है, अश्व की भांति हिनहिनाता है, हाथी की भांति चिंघाड़ता है, रथ की भांति घनघनाहट (चड़घड़ाहट) करता है, पैरों से भूमि पर प्रहार करता है, भूमि पर चपेटा मारता है, सिंहनाद करता है, कभी आगे की ओर चपेटा मारता है, कभी पीछे की ओर, त्रिपदी का छेद करता है, बाईं भुजा को ऊंचा उठाता है, दाएं हाथ की तर्जनी अंगुली और अंगूठे के नख द्वारा मुंह को टेढ़ा कर विकृत करता है, ऊंचे-ऊंचे शब्द से कलकलरव करता है। (इस भयानक मुद्रा में) उसने अकेले, किसी दूसरे के सहारे की अपेक्षा नहीं रखता हुआ परिघरत्न को ले कर ऊपर आकाश की उड़ान भरी। मानो अधो-

लोक को क्षुब्ध कर रहा है, भूमितल को कम्पित कर रहा है, तिरछे लोक को खींच रहा है, अम्बरतल का स्फोटन कर रहा है, कहीं गरज रहा है, कहीं बिजली बन कौंध रहा है, कहीं वर्षा बरसा रहा है, कहीं धूलि-विकिरण कर रहा है, कहीं सघन अन्धकार कर रहा है, वानव्यन्तर-देवों को संत्रस्त करता हुआ-संत्रस्त करता हुआ, ज्योतिष्क-देवों को दो भागों में विभक्त करता हुआ-विभक्त करता हुआ, आत्मरक्षक-देवों को भगाता हुआ-भगाता हुआ, परिघरत्न को आकाश में घुमाता हुआ-घुमाता हुआ, तिरस्कार करता हुआ-तिरस्कार करता हुआ उस उत्कृष्ट, त्वरित, चपल, चण्ड, जविनी, छेक, सैही, शीघ्र, उद्धत और दिव्य देव-गति से तिरछे-लोक में असंख्य द्वीप-समुद्रों के मध्यभाग से गुजरता-गुजरता जहां सौधर्म कल्प है, जहां सौधर्मावतंसक विमान है, जहां सुधर्मा सभा है वहां आता है। वहां वह अपने एक पांव को पद्मवरवेदिका पर रखता है, एक पांव सुधर्मा सभा में रखता है और ऊंचा-ऊंचा शब्द करता हुआ परिघरत्न से तीन बार इन्द्रकील पर प्रहार करता है। प्रहार कर इस प्रकार बोला—‘कहां है वह देवेन्द्र देवराज शक्र? कहां हैं वे चौरासी हजार सामानिक देव? कहां है वे तेतीस तावत्रिंशक देव? कहां हैं वे चार लोकपाल? कहां हैं वे सपरिवार आठ पटरानियां? कहां हैं वे तीन परिषदें? कहां हैं वे सात सेनाएं? कहां हैं वे सात सेनापति? कहां हैं वे तीन लाख छत्तीस हजार आत्मरक्षक-देव? कहां हैं वे करोड़ों अप्सराएं? आज मैं उनको मारता हूं, मथता हूं, व्यथित करता हूं, अब तक जो अप्सराएं मेरे वश में नहीं थीं वे अब मेरे वश में हो जाएं,’ ऐसा कर वह उस अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अशुभ, अमनोज्ञ, मन को न भाने वाली, कठोर वाणी का प्रयोग करता है।

शक्रेन्द्र द्वारा वज्र-प्रक्षेप-पद

११३. वे देवेन्द्र देवराज शक्र उस अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अशुभ, अमनोज्ञ, मनको न भाने वाली, अश्रुतपूर्व, कठोर वाणी को सुन कर, अवधारण कर तत्काल आवेश में आ गया, रुष्ट हो गया, कुपित हो गया, उसका रूप रौद्र बन गया, वह क्रोध की अग्नि से प्रदीप्त हो उठा। ललाट पर तीन रेखाओं वाली भृकुटि को चढ़ाकर असुरेन्द्र असुरराज चमर से इस प्रकार बोला—हे अप्रार्थनीय को चाहने वाले! दुःखद अंत और अमनोज्ञ लक्षण वाले! लज्जा और शोभा से रहित! हीनपुण्य चतुर्दशी को जन्मे हुए! असुरेन्द्र! असुरराज! चमर! आज तू नहीं बचेगा, अब तुम्हें सुख नहीं होगा, ऐसा कह कर वहीं सिंहासन पर बैठे-बैठे वज्र को हाथ में लेता है। वह जाज्वल्यमान, विस्फोटक, गड़गड़ाहट करता हुआ हजारों उल्काओं को छोड़ता हुआ, हजारों ज्वालाओं का प्रमोचन करता हुआ, हजारों अंगारों को बिखेरता हुआ, हजारों स्फुलिंगों और ज्वालाओं की माला से चक्षु-विक्षेप और दृष्टि का प्रतिघात करता हुआ, अग्नि से भी अतिरिक्त तेज से दीप्यमान, अतिशय वेग वाला, विकसित किंशुक (टेसू) पुष्प के समान रक्त, महाभय उत्पन्न करने वाला, भयंकर वज्र हाथ में उठा शक्र ने असुरेन्द्र असुरराज चमर का वध करने के लिए उसका प्रक्षेपण किया।

चमर द्वारा भगवान् की शरण का पद

११४. वह असुरेन्द्र असुरराज चमर उस जाज्वल्यमान यावत् भयंकर वज्र को सामने आते हुए देखता है, देखकर चिन्तन में डूब जाता है, चिन्तन करते-करते आंखें मूंद लेता है। कुछ क्षणों

बाद आंखें खोल कर मूंद लेता है। आंखें मंदे-मूंदे चिन्तन में डूब जाता है। इस व्याकुलता के क्षण में उसके मुकुट का विस्तार हो गया, उसके हाथ के आभरण नीचे लटक गए। पांव ऊपर और सिर नीचे किए हुए वह मानो कांख में से स्वेद-बूंदों को टपकाता हुआ उस उत्कृष्ट यावत् देव-गति से तिरछे-लोक में असंख्य द्वीप-समुद्रों के बीचों-बीच गुजरता हुआ जहां जम्बूद्वीप द्वीप है यावत् जहां प्रवर अशोकवृक्ष है, जहां मेरा पार्श्व है, वहां आता है। आकर भयभीत बना हुआ भय से घबराते हुए स्वर में बोला—'भगवन्! आप शरण हैं' ऐसा कहता हुआ मेरे दोनों पांव के अन्तराल में शीघ्र ही अतिवेग से गिर गया।

शक्र का वज्र-प्रतिसंहरण-पद

११५. उस देवेन्द्र देवराज शक्र के यह इस प्रकार का आध्यात्मिक, स्मृत्यात्मक, अभिलाषात्मक, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—असुरेन्द्र असुरराज चमर प्रभु नहीं है, असुरेन्द्र असुरराज चमर समर्थ नहीं हैं तथा असुरेन्द्र असुरराज चमर का विषय नहीं है कि वह अपनी निश्रा (शक्ति) से ऊर्ध्व-लोक में यावत् सौधर्म-कल्प तक आए। वह अर्हत्, अर्हत्-चैत्य अथवा भावितात्मा अनगर की निश्रा के बिना ऊर्ध्व-लोक में यावत् सौधर्म-कल्प तक नहीं आ सकता। अतः मेरे लिए यह महान् कष्ट का विषय है कि मैंने तथारूप अर्हत्, भगवान और अनगरों की अति आशातना की है। ऐसा सोच कर वह अवधि-ज्ञान का प्रयोग करता है। अवधि-ज्ञान से मुझे देखता है, मुझे देख कर 'हा! हा! अहो! मैं मारा गया'—ऐसा कह कर वह उस उत्कृष्ट यावत् दिव्य देव-गति से वज्र की वीथि का अनुगमन करता हुआ तिरछे लोक में असंख्य द्वीपसमुद्रों के ठीक मध्य भाग से गुजरता हुआ यावत् जहां प्रवर अशोक वृक्ष है, जहां मेरा पार्श्व है वहां आता है। आकर मुझसे चार अंगुल दूर रहे वज्र को उसने पकड़ लिया और गौतम! उसकी मुट्ठी से उठी हुई हवा से मेरे केशाग्र प्रकम्पित हो गए।

११६. वह देवेन्द्र देवराज शक्र वज्र को पकड़कर तीन बार दाईं ओर से प्रारम्भ कर मेरी प्रदक्षिणा करता है, प्रदक्षिणा कर वन्दन-नमस्कार करता है, वन्दन नमस्कार कर इस प्रकार बोला—भंते! असुरेन्द्र असुरराज चमर ने आपकी निश्रा से स्वयं ही मेरी अति आशातना की। तब मैंने कुपित हो कर असुरेन्द्र असुरराज चमर का वध करने के लिए वज्र का प्रक्षेपण किया। उस समय मेरे मन में यह इस प्रकार का आध्यात्मिक, स्मृत्यात्मक, अभिलाषात्मक, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—असुरेन्द्र असुरराज चमर प्रभु नहीं है, असुरेन्द्र असुरराज चमर समर्थ नहीं है तथा असुरेन्द्र असुरराज चमर का विषय नहीं है कि वह अपनी निश्रा (शक्ति) से ऊर्ध्व-लोक में यावत् सौधर्म-कल्प तक आए। वह अर्हत्, अर्हत्-चैत्य अथवा भावितात्मा अनगर की निश्रा के बिना ऊर्ध्व-लोक में यावत् सौधर्म कल्प तक नहीं आ सकता। अतः मेरे लिए यह महान् कष्ट का विषय है कि मैंने इन तथारूप अर्हत्, भगवान और अनगरों की अति आशातना की है। ऐसा सोच कर मैं अवधि-ज्ञान का प्रयोग करता हूं, अवधि-ज्ञान से आपको देखता हूं। देखकर 'हा! हा! अहो! मैं मारा गया'—ऐसा सोच कर उस उत्कृष्ट यावत् दिव्यगति से जहां आप है वहां आता हूं और आपसे चार अंगुल दूर रहे वज्र को पकड़ लेता हूं। मैं वज्र को पकड़ने के लिए यहां आया हूं, यहां समवसृत हुआ हूं, यहां सम्प्राप्त हूं और आज यहां आपके समीप आकर विहरण कर रहा हूं। इसलिए मैं आपसे क्षमायाचना

करता हूं! देवानुप्रिय! आप मुझे क्षमा करें। देवानुप्रिय! आप क्षमा करने में समर्थ हैं। देवानुप्रिय! मैं पुनः ऐसा न करने के लिए संकल्प करता हूं। ऐसा कहकर वह मुझे वन्दन-नमस्कार करता है, वन्दन-नमस्कार कर उत्तर-पूर्व दिशा (ईशानकोण) में चला जाता है। वहां वह दाएं पांव से तीन बार भूमि का विदलन करता है और विदलन करके असुरेन्द्र असुरराज चमर से इस प्रकार बोला—हे असुरेन्द्र ! असुरराज ! चमर ! श्रमण भगवान् महावीर के प्रभाव से अब तुम मुक्त हो गए हो, इस समय तुमको मुझसे भय नहीं है। ऐसा कहकर वह जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में चला गया।

शक्र, चमर और वज्र का गति-विषयक-पद

११७. भन्ते! इस सम्बोधन से सम्बोधित कर भगवान् गौतम श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करते हैं, वन्दन-नमस्कार कर इस प्रकार बोले—भन्ते! महर्द्धिक यावत् महान् सामर्थ्य वाला देव पहले पुद्गल का प्रक्षेपण कर फिर उसका पीछा कर उसे पकड़ने में समर्थ है?

हां, है।

११८. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—महर्द्धिक यावत् महान् सामर्थ्य वाला देव पहले पुद्गल का प्रक्षेपण कर फिर उसका पीछा कर उसे पकड़ने में समर्थ है?

गौतम! पुद्गल फेंके जाने पर वह पहले शीघ्र गति वाला होता है फिर मन्द-गति वाला हो जाता है। महर्द्धिक यावत् महान् सामर्थ्य वाला देव पहले भी और पीछे भी शीघ्र और शीघ्र गति वाला, त्वरित और त्वरित गति वाला होता है। इस अपेक्षा से वह उसे पकड़ने में समर्थ है।

११९. भन्ते! यदि महर्द्धिक देव पीछा करके पहले फेंके गए पुद्गल को पकड़ने में समर्थ है तो देवेन्द्र देवराज शक्र असुरेन्द्र असुरराज चमर को अपने हाथ से क्यों नहीं पकड़ सका?

गौतम! असुरकुमार-देवों का नीचे लोक में गति का विषय—शीघ्र-शीघ्र और त्वरित-त्वरित है, ऊंचे लोक में उनकी गति का विषय अल्प-अल्प और मंद-मंद है। वैमानिक देवों का ऊंचे लोक में गति का विषय शीघ्र-शीघ्र और त्वरित-त्वरित है, नीचे लोक में उनकी गति का विषय अल्प-अल्प और मंद-मंद है।

देवेन्द्र देवराज शक्र ऊंचे लोक में एक समय में जितने क्षेत्र में चला जाता है, उतने क्षेत्र के अवगाहन में वज्र को दो समय लगते हैं। वज्र का जितने क्षेत्र के अवगाहन में दो समय लगते हैं, उतने क्षेत्र के अवगाहन में चमर को तीन समय लगते हैं। देवेन्द्र देवराज शक्र का ऊर्ध्व-लोक-कण्डक सबसे थोड़ा, अधो-लोक-कण्डक उससे संख्येयगुणा।

असुरेन्द्र असुरराज चमर नीचे लोक में एक समय में जितने क्षेत्र में चला जाता है, उतने क्षेत्र के अवगाहन में शक्र को दो समय लगते हैं। शक्र को जितने क्षेत्र के अवगाहन में दो समय लगते हैं उतने क्षेत्र के अवगाहन में वज्र को तीन समय लगते हैं। असुरेन्द्र असुरराज चमर का अधो-लोक-कण्डक सबसे थोड़ा, ऊर्ध्व-लोक-कण्डक उससे संख्येयगुणा।

गौतम! इस प्रकार देवेन्द्र देवराज शक्र अपने हाथ से असुरेन्द्र असुरराज चमर को नहीं पकड़ सकता।

१२०. गौतम! देवेन्द्र देवराज शक्र की ऊंची, नीची और तिरछी गति के विषय में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है?

गौतम! देवेन्द्र देवराज शक्र एक समय में सबसे थोड़ा क्षेत्र अधो-लोक को अवगाहित करता है। तिरछे-लोक में वह उससे संख्येय भाग अधिक गति करता है और ऊर्ध्व-लोक में उससे संख्येय भाग अधिक गति करता है।

१२१. भन्ते! असुरेन्द्र असुरराज चमर की ऊंची, नीची और तिरछी गति के विषय में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है?

गौतम! असुरेन्द्र असुरराज चमर एक समय में सबसे थोड़ा क्षेत्र ऊर्ध्व-लोक को अवगाहित करता है। तिरछे-लोक में वह उससे संख्येय भाग अधिक गति करता है और अधो-लोक में उससे संख्येय भाग अधिक गति करता है।

१२२. भन्ते! वज्र की ऊंची, नीची और तिरछी गति के विषय में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है?

गौतम! वज्र एक समय में सबसे थोड़ा क्षेत्र अधो-लोक का अवगाहित करता है। तिरछे-लोक में वह उससे विशेषाधिक भाग में गति करता है और ऊर्ध्व-लोक में उससे विशेषाधिक गति करता है।

१२३. भन्ते! देवेन्द्र देवराज शक्र के नीचे जाने के समय और ऊपर जाने के समय में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है?

गौतम! देवेन्द्र देवराज शक्र के ऊपर जाने का समय सबसे थोड़ा है। नीचे जाने का समय उससे संख्येयगुणा अधिक है।

१२४. शक्र की भांति चमर की वस्तव्यता। केवल इतना अन्तर है—नीचे जाने का समय सबसे थोड़ा है। ऊपर जाने का समय उससे संख्येयगुणा अधिक है।

१२५. वज्र के विषय में पृच्छा।

गौतम! वज्र के ऊपर जाने का समय सबसे थोड़ा है, नीचे जाने का समय उससे विशेषाधिक है।

१२६. भन्ते! वज्र, वज्राधिपति शक्र और असुरेन्द्र असुरराज चमर के नीचे जाने के समय और ऊपर जाने के समय में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है?

गौतम! शक्र के ऊपर जाने और चमर के नीचे जाने के समय—ये दोनों तुल्य हैं और सबसे अल्प हैं। शक्र के नीचे जाने और वज्र के ऊपर जाने का समय—ये दोनों तुल्य हैं और उससे संख्येयगुणा अधिक हैं। चमर के ऊपर जाने और वज्र के नीचे जाने का समय—ये दोनों तुल्य हैं और उससे विशेषाधिक हैं।

चमर की चिन्ता का पद

१२७. असुरेन्द्र असुरराज चमर वज्र के भय से मुक्त हो गया। किन्तु देवेन्द्र देवराज शक्र के द्वारा महान् अपमान से अपमानित बना हुआ चमरचञ्चा राजधानी की सुधर्मा सभा में चमर सिंहासन पर बैठा हुआ, उपहत मनः-संकल्प वाला, चिन्ता और शोक के सागर में निमग्न, मुख हथेली पर टिकाए हुए, आर्त्तध्यान में लीन और दृष्टि को भूमि पर गाड़े हुए कुछ चिन्तन कर रहा था।

१२८. सामानिक परिषद् में उपपन्न देव उपहत-मनः-संकल्प वाले यावत् चिन्ता-रत असुरेन्द्र असुरराज चमर को देखते हैं और देखकर दोनों हथेलियों से निष्पन्न सम्पुट वाली दश-नखात्मक अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर मस्तक पर टिका कर जय-विजय की ध्वनि से उसको वर्धापित करते हैं। वर्धापित कर इस प्रकार बोले—देवानुप्रियो! आज उपहत-मनः-संकल्प वाले, चिन्ता और शोक के सागर में निमग्न, मुख हथेली पर टिकाए हुए, आर्त्तध्यान में लीन और दृष्टि को भूमि पर गाड़े हुए आप क्या चिन्तन कर रहे हैं?

१२९. असुरेन्द्र असुरराज चमर ने उन सामानिक परिषद् में उपपन्न देवों से इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो! मैंने श्रमण भगवान् महावीर की निश्रा से देवेन्द्र देवराज शक्र की स्वयं की अति आशातना की। इससे परिकुपित होकर उसने मुझे मारने के लिए वज्र का प्रक्षेपण किया। देवानुप्रियो! भला हो श्रमण भगवान् महावीर का, जिनके प्रभाव से मैं अक्लिष्ट, अव्यथित और अपरितापित रहकर यहां आया हूं, यहां समवसूत हूं, यहां सम्प्राप्त हूं और आज इसी स्थान में उपसम्पन्न (प्रशान्त)-अवस्था में विहरण कर रहा हूं। इसलिए देवानुप्रियो! हम श्रमण भगवान् महावीर के पास चलें, उन्हें वन्दन-नमस्कार करें यावत् पर्युपासना करें, ऐसा सोचकर वह चौसठ हजार सामानिक देवों के साथ यावत् अपनी समग्र ऋद्धि के साथ यावत् जहां प्रवर अशोक वृक्ष है, जहां मेरा पार्श्व है, वहां आता है, आकर तीन बार दांई ओर से प्रारम्भ कर मेरी प्रदक्षिणा कर, वन्दन-नमस्कार कर इस प्रकार बोला—मैंने आपकी निश्रा से देवेन्द्र देवराज शक्र की स्वयं अति आशातना की। उसने परिकुपित होकर मुझे मारने के लिए वज्र का प्रक्षेपण किया। भला हो देवानुप्रियो! आपका जिनके प्रभाव से मैं अक्लिष्ट, अव्यथित और अपरितापित रह कर यहां आया हूं, यहां समवसूत हूं, यहां संप्राप्त हूं और आज इसी स्थान में उपसम्पन्न अवस्था में विहरण कर रहा हूं। देवानुप्रियो! मैं आपसे क्षमायाचना करता हूं, देवानुप्रियो! आप मुझे क्षमा करें; देवानुप्रियो! आप क्षमा करने में समर्थ हैं। मैं पुनः ऐसा कभी नहीं करूंगा। ऐसा कहकर वह मुझे वन्दन-नमस्कार करता है, वन्दन-नमस्कार कर उत्तर-पूर्व दिशाभाग में अवक्रमण करता है अवक्रमण कर यावत् बत्तीस प्रकार की नाट्यविधि दिखाता है। दिखाकर जिस दिशा से आया, उसी दिशा में चला गया।

१३०. गौतम! इस प्रकार असुरेन्द्र असुरराज चमर ने वह दिव्य देवर्द्धि, दिव्य देवद्युति और दिव्य देवानुभाग उपलब्ध किया, प्राप्त किया, अभिसमन्वागत (विपाकाभिमुख) किया। उसकी स्थिति एक सागरोपम की है। वह महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध होगा यावत् सब दुःखों का अन्त करेगा।

असुरकुमारों का ऊर्ध्वलोक में जाने का हेतु-पद

१३१. भन्ते! असुरकुमार-देव ऊर्ध्व-लोक में यावत् सौधर्म-कल्प तक किस प्रत्यय से जाते हैं?

गौतम! तत्काल उपपन्न और जीवन के चरम भाग में अवस्थित देवों के यह इस प्रकार का आध्यात्मिक, स्मृत्यात्मक, अभिलाषात्मक, मनोगत संकल्प उत्पन्न होता है—अहो! हमने ऐसी दिव्य देवर्द्धि यावत् अभिसमन्वागत की है। हमने जैसी दिव्य देविर्द्धि यावत् अभिसमन्वागत की है, वैसी ही दिव्य देवर्द्धि यावत् देवेन्द्र देवराज शक्र ने अभिसमन्वागत की है। जैसी दिव्य देविर्द्धि यावत् देवेन्द्र देवराज शक्र ने अभिसमन्वागत की है, हमने भी वैसी ही दिव्य देवर्द्धि यावत् अभिसमन्वागत की है; इसलिए हम देवेन्द्र देवराज शक्र के पास जाएं, वहां प्रकट होकर देवेन्द्र देवराज शक्र ने जो दिव्य देवर्द्धि यावत् अभिसमन्वागत की है, उसे देखें। हमने जो दिव्य देवर्द्धि यावत् अभिसमन्वागत की है उसे देवेन्द्र देवराज शक्र भी देखें। देवेन्द्र देवराज शक्र ने जो दिव्य देवर्द्धि यावत् अभिसमन्वागत की है, उसे हम जानें। हमने जो दिव्य देवर्द्धि यावत् अभिसमन्वागत की है, उसे देवेन्द्र देवराज शक्र भी जाने।

इस प्रकार गौतम! असुरकुमार देव ऊर्ध्व-लोक में यावत् सौधर्म कल्प तक जाते हैं।

१३२. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है।

तीसरा उद्देशक

क्रिया-पद

१३३. उस काल और उस समय में राजगृह नाम का नगर था। भगवान् महावीर वहां पधारे। परिषद् आई यावत् धर्म सुनकर वापिस चली गई।

१३४. उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर का अन्तेवासी शिष्य मण्डितपुत्र नामक अनगर भगवान् के पास आया। वह प्रकृति से भद्र था यावत् भगवान् की पर्युपासना करता हुआ इस प्रकार बोला—भन्ते! कितनी क्रियाएं प्रज्ञप्त हैं?

मण्डितपुत्र! पांच क्रियाएं प्रज्ञप्त हैं, जैसे—कायिकी, आधिकरणिकी, प्रादोषिकी, पारितापनिकी और प्राणातिपात-क्रिया।

१३५. भन्ते! कायिकी क्रिया कितने प्रकार की प्रज्ञप्त है?

मण्डितपुत्र! वह दो प्रकार की प्रज्ञप्त हैं? जैसे अनुपगत-कायक्रिया—विरति-रहित व्यक्ति की काया की प्रवृत्ति और दुष्प्रयुक्त-कायक्रिया—इन्द्रिय और मन के विषयों में आसक्त व्यक्ति की काया की प्रवृत्ति।

१३६. भन्ते! आधिकरणिकी क्रिया कितने प्रकार की प्रज्ञप्त हैं?

मण्डितपुत्र! वह दो प्रकार की प्रज्ञप्त हैं, जैसे—संयोजनाधिकरणक्रिया—पूर्व निर्मित भागों को जोड़कर शस्त्र-निर्माण करने की क्रिया और निर्वर्तनाधिकरणक्रिया—नए सिरे से शस्त्र-निर्माण करने की क्रिया।

१३७. भन्ते! प्रादोषिकी क्रिया कितने प्रकार की प्रज्ञप्त हैं?

मण्डितपुत्र! वह दो प्रकार की प्रज्ञप्त हैं, जैसे—जीव-प्रादोषिकी और अजीव-प्रादोषिकी।

१३८. भन्ते! पारितापनिकी क्रिया कितने प्रकार की प्रज्ञप्त है?

मण्डितपुत्र! वह दो प्रकार की प्रज्ञप्त है, जैसे—स्व-हस्त-पारितापनिकी और पर-हस्त-पारितापनिकी।

१३९. प्राणातिपात-क्रिया कितने प्रकार की प्रज्ञप्त है?

मण्डितपुत्र! वह दो प्रकार की प्रज्ञप्त हैं, जैसे—स्व-हस्त-प्राणातिपात-क्रिया और पर-हस्त-प्राणातिपात-क्रिया।

क्रिया-वेदना-पद

१४०. भन्ते! क्या पहले क्रिया और पीछे वेदना होती है? अथवा पहले वेदना और पीछे क्रिया होती है?

मण्डितपुत्र! पहले क्रिया और पीछे वेदना होती है। पहले वेदना और पीछे क्रिया नहीं होती।

१४१. भन्ते! क्या श्रमण-निर्ग्रन्थों के क्रिया होती है?

हां, होती है।

१४२. भन्ते! श्रमण-निर्ग्रन्थों के क्रिया कैसे होती है?

मण्डितपुत्र! उसका प्रत्यय है—प्रमाद और उसका निमित्त है योग। इस प्रकार श्रमण-निर्ग्रन्थों के प्रमाद और योग—इन दो हेतुओं से क्रिया होती है।

अन्तक्रिया-पद

१४३. भन्ते! क्या जीव सदा प्रतिक्षण एजन, व्येजन, चलन, स्पन्दन, घट्टन, क्षोभ और उदीरणा को प्राप्त होता है तथा उस-उस भाव (परिणाम) में परिणत होता है?

हां, मण्डितपुत्र! जीव सदा प्रतिक्षण एजन, व्येजन, चलन, स्पन्दन, घट्टन, क्षोभ और उदीरणा को प्राप्त होता है तथा उस-उस भाव (परिणाम) में परिणत होता है।

१४४. भन्ते! जब वह जीव सदा प्रतिक्षण एजन, व्येजन, चलन, स्पन्दन, घट्टन, क्षोभ और उदीरणा को प्राप्त होता है तथा उस-उस भाव (परिणाम) में परिणत होता है तब उस जीव के अन्तिम समय में अन्तक्रिया होती है?

यह अर्थ संगत नहीं है।

१४५. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—जब वह जीव सदा प्रतिक्षण एजन, व्येजन, चलन, स्पन्दन, घट्टन, क्षोभ और उदीरणा को प्राप्त होता है तथा उस-उस भाव (परिणाम) में परिणत होता है, तब उस जीव के अन्तिम समय में अन्तक्रिया नहीं होती?

मण्डितपुत्र! जब वह जीव सदा प्रतिक्षण एजन, व्येजन, चलन, स्पन्दन, घट्टन, क्षोभ और उदीरणा को प्राप्त होता है तथा उस-उस भाव (परिणाम) में परिणत होता है तब वह जीव आरम्भ करता है, संरम्भ करता है और समारम्भ करता है। वह आरम्भ में प्रवृत्त रहता है, संरम्भ में प्रवृत्त रहता है और समारम्भ में प्रवृत्त रहता है। वह आरम्भ करता हुआ, संरम्भ करता हुआ और समारम्भ करता हुआ आरम्भ में प्रवृत्त रहता हुआ, संरम्भ में प्रवृत्त रहता

हुआ और समारम्भ में प्रवृत्त रहता हुआ अनेक प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों को दुःखी बनाता है, शोकाकुल करता है, जुराता (शरीर को जीर्ण अथवा खेदखिन्न करता) है, रुलाता है, पीटता है और परिताप देता है।

मण्डितपुत्र! इस अपेक्षा से कहा जा रहा है—जब तक जीव सदा प्रतिक्षण एजन, व्येजन, चलन, स्पन्दन, घट्टन, क्षोभ और उदीरणा को प्राप्त होता है तथा उस-उस भाव (परिणाम) में परिणत होता है, तब उस जीव के अन्तिम समय में अन्तक्रिया नहीं होती।

१४६. भन्ते! क्या जीव सदा प्रतिक्षण एजन, व्येजन, चलन, स्पन्दन, घट्टन, क्षोभ और उदीरणा को प्राप्त नहीं होता है तथा उस-उस भाव (परिणाम) में परिणत नहीं होता है?

हां, मण्डितपुत्र! जीव सदा प्रतिक्षण एजन, व्येजन, चलन, स्पन्दन, घट्टन, क्षोभ और उदीरणा को प्राप्त नहीं होता है तथा उस-उस भाव (परिणाम) में परिणत नहीं होता है।

१४७. भन्ते! क्या जब वह जीव सदा प्रतिक्षण एजन, व्येजन, चलन, स्पन्दन, घट्टन, क्षोभ और उदीरणा को प्राप्त नहीं होता तथा उस-उस भाव में परिणत नहीं होता, तब उस जीव की अन्तिम समय में अन्तक्रिया हो जाती है?

हां, मण्डितपुत्र! जब वह जीव सदा प्रतिक्षण एजन, व्येजन, चलन, स्पन्दन, घट्टन, क्षोभ और उदीरणा को प्राप्त नहीं होता है तथा उस-उस भाव में परिणत नहीं होता, तब उस जीव की अन्तिम समय में अन्तक्रिया हो जाती है।

१४८. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—जब वह जीव सदा प्रतिक्षण एजन, व्येजन, चलन, स्पन्दन, घट्टन, क्षोभ और उदीरणा को प्राप्त नहीं होता है तथा उस-उस भाव में (परिणाम) में परिणत नहीं होता, तब उस जीव की अन्तिम समय में अन्तक्रिया हो जाती है?

मण्डितपुत्र! जब वह जीव सदा प्रतिक्षण एजन, व्येजन, चलन, स्पन्दन, घट्टन, क्षोभ और उदीरणा को प्राप्त नहीं होता तथा उस-उस भाव में परिणत नहीं होता, तब वह जीव न आरम्भ करता है, न संरम्भ करता है, न समारंभ करता है। वह न आरम्भ में प्रवृत्त होता है, न संरम्भ में प्रवृत्त होता है, न समारम्भ में प्रवृत्त होता है। वह आरम्भ नहीं करता हुआ, संरम्भ नहीं करता हुआ, समारम्भ नहीं करता हुआ, आरम्भ में अवर्तमान, संरम्भ में अवर्तमान, समारम्भ में अवर्तमान होकर अनेक प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों को दुःखी नहीं बनाता, शोकाकुल नहीं करता, न जुराता (शरीर को जीर्ण अथवा खेदखिन्न नहीं करता), न रुलाता, न पीटता और न परिताप देता है।

जैसे कोई व्यक्ति सूखे तृणपूले को अग्नि में प्रक्षिप्त करे, तो क्या मण्डितपुत्र! वह सूखा तृणपूला अग्नि में प्रक्षिप्त होने पर शीघ्र ही जल जाता है?

हां, वह शीघ्र ही जल जाता है।

जैसे कोई पुरुष तपे हुए तवे पर जल-बिन्दु गिराए, तो क्या मण्डितपुत्र! वह जल-बिन्दु तपे हुए तवे पर गिरने पर शीघ्र ही विध्वंस को प्राप्त होता है?

हां, वह विध्वंस को प्राप्त होता है।

मण्डितपुत्र! जैसे कोई द्रव (नद) जल से भरा हुआ, परिपूर्ण, छलकता हुआ, हिलोरे लेता हुआ, चारों ओर से जल-जलाकर हो रहा है। कोई व्यक्ति उस द्रव में एक बहुत बड़ी, सैंकड़ों आश्रवों और सैंकड़ों छिद्रों वाली नौका को उतारे तो क्या मण्डितपुत्र! वह नौका इन आश्रव-द्वारों के द्वारा जल से भरती हुई—भरती हुई परिपूर्ण हो जाती है, भर जाती है? छलकती हुई, हिलोरे लेती हुई चारों ओर से जल-जलाकर हो जाती है?

हां, हो जाती है।

यदि कोई पुरुष उस नौका के आश्रव-द्वारों को चारों ओर से रोक देता है। उन्हें रोक कर नौका के उत्सेचनक द्वारा जल को उलीच दे, तो क्या मण्डितपुत्र! वह नौका उस पानी के बाहर निकल जाने पर शीघ्र ही ऊपर आ जाती है?

हां, आ जाती है।

मण्डितपुत्र! इसी प्रकार जो अनगार आत्मना संवृत, विवेकपूर्वक चलता है, विवेकपूर्वक बोलता है, विवेकपूर्वक आहार की एषणा करता है, विवेकपूर्वक वस्त्र-पात्र आदि को लेता और रखता है, विवेकपूर्वक मलमूत्र, श्लेषमा, नाक के मैल, शरीर के गाढ़े मैल का परिष्ठापन (विसर्जन) करता है, मन की संगत प्रवृत्ति करता है, वचन की संगत प्रवृत्ति करता है, शरीर की संगत प्रवृत्ति करता है, मन का निरोध करता है, वचन का निरोध करता है, शरीर का निरोध करता है, अपने आप को सुरक्षित रखता है, इन्द्रियों को सुरक्षित रखता है, ब्रह्मचर्य को सुरक्षित रखता है, उसके उपयोगपूर्वक चलते, खड़े रहते, बैठते और सोते तथा उपयोगपूर्वक वस्त्र, पात्र, कम्बल, पाद-प्राँछन लेते-रखते समय और यावत् उन्मेष-निमेष करते समय भी विविध मात्रा वाली सूक्ष्म ऐर्यापथिकी क्रिया होती है—वह प्रथम समय में बद्ध-स्पृष्ट होती है, दूसरे समय में उसका वेदन होता है, तीसरे समय में वह निर्जीर्ण हो जाती है। वह बद्ध, स्पृष्ट, उदीरित, वेदित, निर्जीर्ण तथा अगले समय में अकर्म भी हो जाती है। मण्डितपुत्र! इस अपेक्षा से कहा जा रहा है—जब जीव सदा प्रतिक्षण एजन, व्येजन, चलन, स्पन्दन, घट्टन, क्षोभ और उदीरणा नहीं करता तथा उस-उस भाव में परिणत नहीं होता, तब उस जीव के अंतिम समय में अन्तक्रिया होती है।

प्रमत्त और अप्रमत्त के काल का पद

१४९. भंते! प्रमत्त-संयम में वर्तमान प्रमत्त-संयत (मुनि) के प्रमत्त-अवस्था का काल काल की अपेक्षा कितना लम्बा होता है?

मण्डितपुत्र! एक जीव की अपेक्षा जघन्यतः एक समय, उत्कृष्टतः कुछ-कम-करोड़-पूर्व। अनेक जीवों की अपेक्षा सर्व-काल।

१५०. भंते! अप्रमत्त संयम में वर्तमान अप्रमत्त संयत (मुनि) के अप्रमत्त-अवस्था का काल काल की अपेक्षा कितना लम्बा होता है?

मण्डितपुत्र! एक जीव की अपेक्षा जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टतः कुछ-कम-करोड़-पूर्व। अनेक जीवों की अपेक्षा सर्व-काल।

१५१. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है। ऐसा कहकर भगवान् मण्डितपुत्र अनगार

श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करते हैं, वन्दन-नमस्कार कर संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विहार कर रहे हैं।

लवणसमुद्र-वृद्धि-हानि-पद

१५२. भन्ते! इस सम्बोधन से सम्बोधित कर भगवान् गौतम श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करते हैं, वन्दन-नमस्कार कर इस प्रकार बोले—भन्ते! लवणसमुद्र, चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या (उद्दिष्टा) और पूर्णिमा को अतिरिक्त रूप से क्यों बढ़ता है? क्यों घटता है?

यहां लवणसमुद्र की वस्तव्यता लोक-स्थिति और लोकानुभाव (जीवा. ३/७२३-७९५) तक ज्ञातव्य है।

१५३. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है—यह कह भगवान् गौतम संयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए विहार कर रहे हैं।

चौथा उद्देशक

भावितात्म-पद

१५४. भन्ते! भावितात्मा अनगार वैक्रिय-समुद्घात से समवहत वैक्रिय विमान में बैठकर जाते हुए देव को क्या जानता-देखता है?

गौतम! १. कोई अनगार देव को देखता है, विमान को नहीं देखता। २. कोई अनगार विमान को देखता है, देव को नहीं देखता। ३. कोई अनगार देव को भी देखता है, विमान को भी देखता है। ४. कोई अनगार न देव को देखता है और न विमान को देखता है।

१५५. भन्ते! भावितात्मा अनगार वैक्रिय-समुद्घात से समवहत वैक्रिय-विमान में बैठकर जाती हुई देवी को क्या जानता-देखता है?

गौतम! १. कोई अनगार देवी को देखता है, विमान को नहीं देखता। २. कोई अनगार विमान को देखता है, देवी को नहीं देखता। ३. कोई अनगार देवी को भी देखता है, विमान को भी देखता है। ४. कोई अनगार न देव को देखता है और न विमान को देखता है।

१५६. भन्ते! भावितात्मा अनगार वैक्रिय-समुद्घात से समवहत वैक्रिय-विमान में बैठकर जाते हुए देवी-सहित देव को क्या जानता-देखता है?

गौतम! १. कोई अनगार देवी-सहित देव को देखता है, विमान को नहीं देखता। २. कोई अनगार विमान को देखता है, देवी-सहित देव को नहीं देखता। ३. कोई अनगार देवी-सहित देव को भी देखता है, विमान को भी देखता है। ४. कोई अनगार न देवी-सहित देव को देखता है और न विमान को देखता है।

१५७. भन्ते! भावितात्मा अनगार क्या वृक्ष के अन्तर्वर्ती भाग को देखता है? बहिर्वर्ती भाग को देखता है?

गौतम! कोई अनगार वृक्ष के अन्तर्वर्ती भाग को देखता है, बहिर्वर्ती भाग को नहीं देखता है। २. कोई अनगार वृक्ष के बहिर्वर्ती भाग को देखता है, अन्तर्वर्ती भाग को नहीं देखता।

३. कोई अनगार वृक्ष के अन्तर्वर्ती भाग को भी देखता है, बहिर्वर्ती भाग को भी देखता है। ४. कोई अनगार न वृक्ष के अन्तर्वर्ती भाग को देखता है और न ही बहिर्वर्ती भाग को देखता है।

१५८. भन्ते! भावितात्मा अनगार क्या वृक्ष के मूल को देखता है? कन्द को देखता है?

गौतम! कोई अनगार वृक्ष के मूल को देखता है, कन्द को नहीं देखता। २. कोई अनगार वृक्ष के कन्द को देखता है, मूल को नहीं देखता। ३. कोई अनगार वृक्ष के मूल को भी देखता है, कन्द को भी देखता है। ४. कोई अनगार न वृक्ष के मूल को देखता है और न कन्द को देखता है।

१५९. क्या मूल को देखता है? स्कन्ध को देखता है? यहां भी चार भंग वक्तव्य हैं।

१६०. इसी प्रकार मूल के साथ (यावत्) बीज का संयोग करने पर प्रत्येक के चार-चार भंग होते हैं।

१६१. इसी प्रकार कन्द के साथ भी यावत् बीज का संयोग करने पर प्रत्येक के चार-चार भंग होते हैं।

१६२. इसी प्रकार यावत् पुष्प के साथ बीज का संयोग करने पर प्रत्येक के चार-चार भंग होते हैं।

१६३. भन्ते! भावितात्मा अनगार क्या वृक्ष के फल को देखता है? बीज को देखता है? यहां भी चार भंग वक्तव्य हैं।

१६४. भन्ते! क्या वायुकाय एक महान् स्त्री-रूप, पुरुष-रूप, (अश्व-रूप), हस्ति-रूप, यान-रूप, युग्य-रूप, अम्बाबाड़ी(हाथी का हौदा)-रूप, बग्घी-रूप, शिबिका-रूप अथवा स्यन्दमानिका-रूप का निर्माण करने में समर्थ है?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है। वायुकाय विक्रिया करता हुआ एक महापताका के आकार वाले रूप की विक्रिया करता है।

१६५. भन्ते! क्या वायुकाय एक महापताका के आकार वाले रूप की विक्रिया कर अनेक योजन तक जाने में समर्थ है?

हां, समर्थ है।

१६६. भन्ते! क्या वायुकाय अपनी ऋद्धि से जाता है अथवा पर-ऋद्धि से जाता है?

गौतम! वह अपनी ऋद्धि से जाता है, पर-ऋद्धि से नहीं जाता।

१६७. भन्ते! क्या वायुकाय अपनी क्रिया से जाता है? परक्रिया से जाता है?

गौतम! वह अपनी क्रिया से जाता है, परक्रिया से नहीं जाता।

१६८. भन्ते! क्या वायुकाय अपने प्रयोग से जाता है? पर-प्रयोग से जाता है?

गौतम! वह अपने प्रयोग से जाता है, पर-प्रयोग से नहीं जाता।

१६९. भन्ते! क्या वायुकाय ऊपर उठी हुई पताका के रूप में जाता है अथवा नीचे गिरी हुई

पताका के रूप में जाता है?

गौतम! वह ऊपर उठी हुई पताका के रूप में भी जाता है और नीचे गिरी हुई पताका के रूप में भी जाता है।

१७०. भन्ते! क्या वायुकाय एक दिशा में पताका के आकार में जाता है अथवा दो दिशाओं में पताका के आकार में जाता है?

गौतम! वह एक दिशा में पताका के आकार में जाता है, दो दिशाओं में पताका के आकार में नहीं जाता।

१७१. भन्ते! क्या वह वायुकाय है अथवा पताका है?

गौतम! वह वायुकाय है, पताका नहीं है।

बलाहक-पद

१७२. भन्ते! क्या मेघ एक महान् स्त्री-रूप यावत् स्यन्दमानिका-रूप में परिणत होने पर समर्थ है?

हां, समर्थ है।

१७३. भन्ते! क्या मेघ एक महान् स्त्री-रूप में परिणत होकर अनेक योजन तक जाने में समर्थ है?

हां, समर्थ है।

१७४. भन्ते! क्या मेघ अपनी ऋद्धि से जाता है अथवा पर-ऋद्धि से जाता है?

गौतम! वह अपनी ऋद्धि से नहीं जाता, पर-ऋद्धि से जाता है।

१७५. भन्ते! क्या मेघ अपनी क्रिया से जाता है? परक्रिया से जाता है?

गौतम! वह अपनी क्रिया से नहीं जाता, परिक्रिया से जाता है।

१७६. भन्ते! क्या मेघ अपने प्रयोग से जाता है? पर-प्रयोग से जाता है?

गौतम! वह अपने प्रयोग से नहीं जाता, पर-प्रयोग से जाता है।

१७७. भन्ते! क्या मेघ ऊपर उठी हुई पताका के रूप में जाता है अथवा नीचे गिरी हुई पताका के रूप में जाता है?

गौतम! वह ऊपर उठी हुई पताका के रूप में भी जाता है और नीचे गिरी हुई पताका के रूप में भी जाता है।

१७८. भन्ते! क्या वह मेघ है अथवा स्त्री है?

गौतम! वह मेघ है, स्त्री नहीं है।

१७९. इसी प्रकार मेघ के साथ पुरुष, अश्व और हस्ती की वक्तव्यता।

१८०. भन्ते! क्या मेघ एक महान् यान-रूप में परिणत होकर अनेक योजन तक जाने में समर्थ है?

जैसे स्त्री-रूप की वक्तव्यता है, वैसे ही यान के विषय में वक्तव्य है।

१८१. भन्ते! क्या मेघ एक ओर चक्राकार गति से जाता है अथवा दोनों ओर चक्राकार गति से जाता है?

गौतम! वह एक ओर चक्राकार गति से भी जाता है तथा दोनों ओर चक्राकार गति से भी जाता है।

१८२. इसी प्रकार युग्य, अम्बावाड़ी, बग्घी, शिबिका, और स्यन्दमानिका के संबंध में वक्तव्य है।

किलेश्योपपाद-पद

१८३. भन्ते! जो जीव नैरयिकों में उपपन्न होने योग्य है, वह भन्ते! कौन-सी लेश्या वाले नैरयिकों में उपपन्न होता है?

गौतम! जो जीव जिस लेश्या वाले द्रव्यों को ग्रहण कर मरता है, वह उसी लेश्या वाले नैरयिकों में उपपन्न होता है, जैसे-कृष्ण-लेश्या वाले नैरयिकों में अथवा नील-लेश्या वाले नैरयिकों में अथवा कापोत-लेश्या वाले नैरयिकों में। इस प्रकार जिसकी जो लेश्या हो, उसके लिए वह लेश्या वक्तव्य है। यावत्—

१८४. भन्ते! जो जीव ज्योतिष्कों में उपपन्न होने योग्य है, वह भन्ते! कौन-सी लेश्या वाले ज्योतिष्क देवों में उपपन्न होता है?

गौतम! जो जीव जिस लेश्या वाले द्रव्यों को ग्रहण कर मरता है, वह उसी लेश्या वाले ज्योतिष्क-देवों में उपपन्न होता है, जैसे-तेजो-लेश्या वालों में।

१८५. भन्ते! जो जीव वैमानिकों में उपपन्न होने योग्य है, वह कौन-सी लेश्या वाले वैमानिक देवों में उपपन्न होता है?

गौतम! जो जीव जिस लेश्या वाले द्रव्यों का ग्रहण कर मरता है, वह उसी लेश्या वालों में उपपन्न होता है, जैसे-तेजो-लेश्या के द्रव्यों को ग्रहण कर मरने वाला तेजो-लेश्या वालों में, पद्म-लेश्या के द्रव्यों को ग्रहण कर मरने वाला पद्म-लेश्या वालों में, शुक्ल-लेश्या के द्रव्यों को ग्रहण कर मरने वाला शुक्ल-लेश्या वालों में।

१८६. भन्ते! भावितात्मा अनगार बाहरी पुद्गलों का ग्रहण किए बिना वैभार पर्वत का उल्लंघन (एक बार लांघना) और प्रलंघन (बार-बार लांघना) करने में समर्थ है?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है।

१८७. भन्ते! भावितात्मा अनगार बाहरी पुद्गलों का ग्रहण कर वैभार पर्वत का उल्लंघन और प्रलंघन करने में समर्थ है?

हां, वह समर्थ है।

१८८. भन्ते! भावितात्मा अनगार बाहरी पुद्गलों का ग्रहण किए बिना राजगृह नगर में जितने रूप हैं, उतने रूपों की विक्रिया कर वैभार पर्वत के भीतर प्रविष्ट हो क्या उसके समभाग को विषम करने में और विषम भाग को सम करने में समर्थ है?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है।

१८९. भन्ते! भावितात्मा अनगार बाहरी पुद्गलों का ग्रहण कर राजगृह नगर में जितने रूप हैं, उतने रूपों की विक्रिया कर वैभार पर्वत के भीतर प्रविष्ट हो क्या उसके समभाग को विषम करने में और विषम भाग को सम करने में समर्थ है?

हां, वह समर्थ है।

१९०. भन्ते! मायी विक्रिया (रूप-निर्माण) करता है? अमायी विक्रिया करता है?

गौतम! मायी विक्रिया करता है, अमायी विक्रिया नहीं करता।

१९१. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—मायी विक्रिया करता है, अमायी विक्रिया नहीं करता?

गौतम! मायी प्रणीत पान-भोजन खा-खा कर उसका वमन करता है, उस प्रणीत पान-भोजन से उसकी अस्थियां और अस्थि-मज्जा सघन हो जाती हैं। मांस और शोणित पतला हो जाता है। वह जिन यथोचित बादर पुद्गलों को लेता है वे भी श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शनेन्द्रिय, अस्थि, अस्थि-मज्जा, केश, श्मश्रु, रोम, नख, शुक्र और शोणित-रूप में परिणत हो जाते हैं।

अमायी रूक्ष पान-भोजन खा-खा कर उसका वमन नहीं करता। उरा रूक्ष पान-भोजन से उसकी अस्थियां और अस्थिमज्जा पतली हो जाती है। मांस और शोणित सघन हो जाता है। वह जिन यथोचित बादर पुद्गलों को लेता है वह भी मल, मूत्र श्लेष्मा, नासिका-मल, वगन, पित्त, पीव और शोणित-रूप में परिणत हो जाते हैं।

गौतम! इस अपेक्षा से कहा जा रहा है—मायी विक्रिया करता है, अमायी विक्रिया नहीं करता।

१९२. मायी उस स्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण किए बिना काल को प्राप्त होता है, उसके आराधना नहीं होती। अमायी उस स्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण कर काल को प्राप्त होता है, उसकी आराधना होती है।

१९३. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है।

पांचवां उद्देशक

भावितात्मा-विकुर्यणा-पद

१९४. भन्ते! क्या भावितात्मा अनगार बहिर्वर्ती पुद्गलों का ग्रहण किए बिना एक महान् स्त्री-रूप यावत् स्थन्दमानिका-रूप की विक्रिया करने में समर्थ है?

यह अर्थ संगत नहीं है।

१९५. भन्ते! क्या भावितात्मा अनगार बहिर्वर्ती पुद्गलों का ग्रहण कर एक महान् स्त्री-रूप यावत् स्थन्दमानिका-रूप का निर्माण करने में समर्थ है?

हां, समर्थ है।

१९६. भन्ते! भावितात्मा अनगार कितने स्त्री-रूपों का निर्माण करने में समर्थ है?

गौतम! जैसे कोई युवक युवती का हाथ प्रगाढ़ता से पकड़ता है तथा गाड़ी के चक्के की नाभि आरों से युक्त होती है, उसी प्रकार भावितात्मा अनगार वैक्रिय समुद्घात से समवहत होता है यावत् गौतम! वह भावितात्मा अनगार सम्पूर्ण जम्बूद्वीप द्वीप को अनेक स्त्रीरूपों से आकीर्ण, व्यतिकीर्ण, उपस्तृत (बिछौना-सा बिछाया हुआ), संस्तृत (भली-भांति बिछौना-सा बिछाया हुआ), स्पृष्ट और अवगाढावगाढ (अत्यन्त सघन रूप से व्याप्त) करने में समर्थ है। गौतम! भावितात्मा अनगार (की विक्रिया शक्ति) का यह इतना विषय केवल विषय की दृष्टि से प्रतिपादित है। भावितात्मा अनगार ने क्रियात्मक रूप में न तो कभी ऐसी विक्रिया की, न करता है, और न करेगा। इस परिपाटी से यावत् स्यन्दमानिका तक ज्ञातव्य है।

१९७. जैसे कोई भी पुरुष तलवार और ढाल ग्रहण कर जाए इसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी क्या हाथ में तलवार और ढाल ले कृत्यागत होकर (माया या विद्या का प्रयोग कर) ऊपर आकाश में उड़ता है?

हां, उड़ता है।

१९८. भन्ते! भावितात्मा अनगार हाथ में तलवार और ढाल ले कितने कृत्यागत रूपों की विक्रिया करने में समर्थ है?

गौतम! जैसे कोई युवक युवती का हाथ प्रगाढ़ता से पकड़ता है, वही (सू. १९६) वक्तव्यता यावत् भावितात्मा अनगार ने क्रियात्मक रूप में न तो कभी ऐसी विक्रिया की, न करता है और न करेगा।

१९९. जैसे कोई पुरुष एक हाथ में पताका लेकर जाए, इसी प्रकार भावितात्मा अनगार क्या एक हाथ में पताका ले कृत्यागत होकर ऊपर आकाश में उड़ता है?

हां, उड़ता है।

२००. भन्ते! भावितात्मा अनगार एक हाथ में पताका ले कितने कृत्यागत रूपों की विक्रिया करने में समर्थ है?

वही (सू. १९६) वक्तव्यता यावत् भावितात्मा अनगार में क्रियात्मक रूप में न तो कभी ऐसी विक्रिया की, न करता है और न करेगा।

२०१. इसी प्रकार दोनों हाथों में पताका लिए हुए पुरुष की वक्तव्यता।

२०२. जैसे कोई पुरुष एक ओर यज्ञोपवीत धारण कर जाए, इसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी क्या एक ओर यज्ञोपवीत धारण किए हुए कृत्यागत होकर ऊपर आकाश में उड़ता है?

हां, उड़ता है।

२०३. भन्ते! भावितात्मा अनगार एक ओर यज्ञोपवीत धारण किए हुए कितने कृत्यागत रूपों की विक्रिया करने में समर्थ है?

वही (सू. १९६ की) वक्तव्यता यावत् भावितात्मा अनगार ने क्रियात्मक रूप में न तो कभी ऐसी विक्रिया की, न करता है और न करेगा।

२०४. इसी प्रकार दोनों और यज्ञोपवीत धारण किए हुए पुरुष की वक्तव्यता।

२०५. भन्ते! जैसे कोई पुरुष एक (अर्ध) पर्यस्तिका-आसन में बैठता है, इसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी क्या एक पर्यस्तिका-आसन में बैठ कृत्यागत होकर ऊपर आकाश में उड़ता है?

वही (सूत्र. १९६ की) वक्तव्यता यावत् भावितात्मा अनगार ने क्रियात्मक रूप में न तो कभी ऐसी विक्रिया की, न करता है और न करेगा।

२०६. इसी प्रकार द्वि (पूर्ण) पर्यस्तिकासन की वक्तव्यता।

२०७. जैसे कोई पुरुष एक (अर्ध) पर्यकासन में बैठता है, इसी प्रकार भावितात्मा अनगार भी क्या एक पर्यकासन में बैठ कृत्यागत होकर ऊपर आकाश में उड़ता है?

वही (सूत्र. १९६ की) वक्तव्यता यावत् भावितात्मा अनगार ने क्रियात्मक रूप में न तो कभी ऐसी विक्रिया की, न करता है और न करेगा।

२०८. इसी प्रकार द्वि (पूर्ण) पर्यकासन की वक्तव्यता।

भावितात्म-अभियोजना-पद

२०९. भन्ते! भावितात्मा अनगार बहिर्वर्ती पुद्गलों का ग्रहण किए बिना क्या एक महान् अश्व-रूप, हस्ती-रूप, सिंह-रूप, व्याघ्र-रूप, भेड़िये का रूप, चीते का रूप, रीछ का रूप, तेंदुए का रूप अथवा अष्टापद-रूप की अभियोजना (उनके शरीर में अनुप्रविष्ट हो व्यापृत करने) में समर्थ है?

नहीं, यह अर्थ संगत नहीं है।

२१०. भन्ते! भावितात्मा अनगार बहिर्वर्ती पुद्गलों का ग्रहण कर क्या एक महान् अश्व-रूप, हस्ती-रूप, सिंह-रूप, व्याघ्र-रूप, भेड़िये का रूप, चीते का रूप, रीछ का रूप, तेंदुए का रूप अथवा अष्टापद-रूप की अभियोजना (उनके शरीर में अनुप्रविष्ट हो व्यापृत करने) में समर्थ है?

हां, समर्थ है।

२११. भन्ते! भावितात्मा अनगार क्या एक महान् अश्वरूप की अभियोजना कर अनेक योजनों तक जाने में समर्थ है?

हां, समर्थ है।

२१२. भन्ते! क्या भावितात्मा अनगार अपनी ऋद्धि से जाता है? पर-ऋद्धि से जाता है?

गौतम! वह अपनी ऋद्धि से जाता है, पर-ऋद्धि से नहीं जाता।

२१३. भन्ते! क्या भावितात्मा अनगार अपनी क्रिया से जाता है? पर-क्रिया से जाता है?

गौतम! वह अपनी क्रिया से जाता है, परक्रिया से नहीं जाता।

२१४. भन्ते! क्या भावितात्मा अनगार अपने प्रयोग से जाता है? पर-प्रयोग से जाता है?

गौतम! वह अपने प्रयोग से जाता है, पर-प्रयोग से नहीं जाता।

२१५. भन्ते! क्या भावितात्मा अनगार ऊपर उठी हुई पताका के रूप में जाता है? नीचे गिरी

हुई पताका के रूप में जाता है?

गौतम! वह ऊपर उठी हुई पताका के रूप में भी जाता है और नीचे गिरी हुई पताका के रूप में भी जाता है।

२१६. भन्ते! क्या वह अनगार है? अश्व है?

गौतम! वह अनगार है, अश्व नहीं है।

२१७. इसी प्रकार यावत् अष्टापद-रूप की अभियोजना के विषय में ज्ञातव्य है।

२१८. भन्ते! क्या मायी विक्रिया (रूप-निर्माण) करता है? अमायी विक्रिया करता है?

गौतम! मायी विक्रिया करता है, अमायी विक्रिया नहीं करता।

२१९. भन्ते! मायी उस स्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण किए बिना मर- कर वहां उपपन्न होता है?

गौतम! आभियोगिक देवलोकों में से किसी एक देवलोक में देवरूप में उपपन्न होता है।

२२०. भन्ते! अमायी उस स्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण के पश्चात् मरकर कहां उपपन्न होता है?

गौतम! अनाभियोगिक देवलोकों में से किसी एक देवलोक में देवरूप में उपपन्न होता है।

२२१. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है।

स्त्री, तलवार, पताका, यज्ञोपवीत, पर्यस्तिका, पर्यंक, अभियोग, विक्रिया और मायी—इस उद्देशक में ये विषय वर्णित हैं।

छठा उद्देशक

भावितात्म-विक्रिया-पद

२२२. भन्ते! क्या भावितात्मा अनगार जो मायी, मिथ्या-दृष्टि है, वीर्य-लब्धि, वैक्रिय-लब्धि और विभंग-ज्ञान-लब्धि से सम्पन्न है, वह वाराणसी नगरी में वैक्रिय-समुद्घात का प्रयोग करता है, प्रयोग कर राजगृह नगर में विद्यमान रूपों को जानता-देखता है?

हां, जानता-देखता है।

२२३. भन्ते! क्या वह यथार्थभाव को जानता-देखता है? अन्यथाभाव (विपरीत-भाव) को जानता-देखता है?

गौतम! वह यथार्थभाव को नहीं जानता-देखता है, अन्यथाभाव को जानता-देखता है।

२२४. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—वह यथार्थभाव को नहीं जानता-देखता, अन्यथाभाव को जानता-देखता है?

गौतम! उसके इस प्रकार से दृष्टिकोण होता है—मैंने राजगृह नगर में वैक्रिय-समुद्घात का प्रयोग किया है, प्रयोग कर मैं वाराणसी नगरी में विद्यमान रूपों को जानता-देखता हूं। यह उसके दर्शन का विपर्यास है। गौतम! इस अपेक्षा से कहा जा रहा है—वह

यथार्थभाव को नहीं जानता-देखता, अन्यथाभाव को जानता-देखता है।

२२५. भन्ते! क्या भावितात्मा अनगार जो मायी, मिथ्या-दृष्टि है, वीर्य-लब्धि, वैक्रिय-लब्धि और विभंग-ज्ञान-लब्धि से सम्पन्न है, वह राजगृह नगर में वैक्रिय-समुद्घात का प्रयोग करता है, प्रयोग कर वाराणसी नगरी में विद्यमान रूपों को जानता-देखता है?

हां, जानता-देखता है।

२२६. भन्ते! क्या वह यथार्थभाव को जानता-देखता है? अन्यथाभाव (विपरीत-भाव) को जानता-देखता है?

गौतम! वह यथार्थभाव को नहीं जानता-देखता है, अन्यथाभाव को जानता-देखता है।

२२७. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—वह यथार्थभाव को नहीं जानता-देखता है, अन्यथाभाव को जानता-देखता?

गौतम! उसके इस प्रकार दृष्टिकोण होता है—मैंने वाराणसी नगरी में वैक्रिय-समुद्घात का प्रयोग किया है, प्रयोग कर मैं राजगृह नगर में विद्यमान रूपों को जानता-देखता हूं। यह उसके दर्शन का विपर्यास है। गौतम! इस अपेक्षा से कहा जा रहा है—क्या वह यथार्थभाव को जानता-देखता है, अन्यथाभाव को जानता-देखता है।

२२८. भन्ते! क्या भावितात्मा अनगार जो मायी, मिथ्या-दृष्टि है, वीर्य-लब्धि, वैक्रिय-लब्धि और विभंग-ज्ञान-लब्धि से सम्पन्न है, वह वाराणसी नगरी और राजगृह नगर के अन्तराल में एक महान् जनपदाग्र का निर्माण करने के लिए वैक्रिय-समुद्घात का प्रयोग करता है, प्रयोग कर वाराणसी नगरी, राजगृह नगर और उनके अन्तराल में एक महान् जनपदाग्र को जानता-देखता है?

हां, जानता-देखता है।

२२९. भन्ते! क्या वह यथार्थभाव को जानता-देखता है? अन्यथाभाव (विपरीत-भाव) को जानता-देखता है?

गौतम! वह यथार्थभाव को नहीं जानता-देखता है, अन्यथाभाव को जानता-देखता है।

२३०. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—वह यथार्थभाव को नहीं जानता-देखता, अन्यथाभाव को जानता-देखता है?

गौतम! उसके इस प्रकार का दृष्टिकोण होता है—यह वाराणसी नगरी है, यह राजगृह नगर है। इन दोनों के अन्तराल में महान् जनपदाग्र है। यह मेरी वीर्य-लब्धि, वैक्रिय-लब्धि और विभंग-ज्ञान-लब्धि नहीं है। यह ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम मुझे लब्ध, प्राप्त और अभिसमन्वागत (विपाकाभिमुख) नहीं है। यह उसके दर्शन का विपर्यास है। गौतम! इस अपेक्षा से कहा जा रहा है—वह यथार्थभाव को नहीं जानता-देखता, अन्यथाभाव को जानता-देखता है।

२३१. भन्ते! क्या भावितात्मा अनगार जो अमायी, सम्यग्-दृष्टि है, वीर्य-लब्धि, वैक्रिय-लब्धि और अवधि-ज्ञान-लब्धि से सम्पन्न है, वह राजगृह नगर में वैक्रिय-समुद्घात का प्रयोग

करता है, प्रयोग कर वाराणसी नगरी में विद्यमान रूपों को जानता-देखता है?

हां, जानता देखता है।

२३२. भन्ते! क्या वह यथार्थभाव को जानता-देखता है? अन्यथाभाव (विपरीत-भाव) को जानता-देखता है?

गौतम! वह यथार्थभाव को नहीं जानता-देखता है, अन्यथाभाव नहीं जानता-देखता।

२३३. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—वह यथार्थभाव को जानता-देखता है, अन्यथाभाव को नहीं जानता-देखता?

गौतम! उसके इस प्रकार का दृष्टिकोण होता है—मैंने राजगृह नगर में वैक्रिय-समुद्घात का प्रयोग किया है, प्रयोग कर मैं वाराणसी नगरी में विद्यमान रूपों को जानता-देखता हूं। यह उसके दर्शन का अविपर्यास है। गौतम! इस अपेक्षा से कहा जा रहा है—यह यथार्थभाव को जानता-देखता है, अन्यथाभाव को नहीं जानता-देखता।

२३४. भन्ते! क्या भावितात्मा अनगर जो अमायी, सम्यग्-दृष्टि है, वीर्य-लब्धि, वैक्रिय-लब्धि और अवधि-ज्ञान-लब्धि से सम्पन्न है, वह वाराणसी नगरी में वैक्रिय-समुद्घात का प्रयोग करता है, प्रयोग कर राजगृह नगर में विद्यमान रूपों को जानता-देखता है?

हां, जानता देखता है।

२३५. भन्ते! क्या वह यथार्थभाव को जानता-देखता है अथवा अन्यथाभाव (विपरीत-भाव) को जानता-देखता है?

गौतम! वह यथार्थभाव को जानता-देखता है, अन्यथाभाव को नहीं जानता-देखता।

२३६. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—वह यथार्थभाव को जानता-देखता है, अन्यथाभाव को नहीं जानता-देखता?

गौतम! उसके इस प्रकार का दृष्टिकोण होता है—मैंने वाराणसी नगरी में वैक्रिय-समुद्घात का प्रयोग किया है, प्रयोग कर राजगृह नगर में विद्यमान रूपों को जानता-देखता हूं। यह उसके दर्शन का अविपर्यास है। गौतम! इस अपेक्षा से कहा जा रहा है—यह यथार्थभाव को जानता-देखता है, अन्यथाभाव को नहीं जानता-देखता।

२३७. भन्ते! क्या भावितात्मा अनगर जो अमायी, सम्यग्-दृष्टि है, वीर्य-लब्धि, वैक्रिय-लब्धि और अवधि-ज्ञान-लब्धि से सम्पन्न है, वह राजगृह नगर, वाराणसी नगरी और उसके अन्तराल में एक महान् जनपदाग्र का निर्माण करने के लिए वैक्रिय-समुद्घात का प्रयोग करता है, प्रयोग कर राजगृह नगर वाराणसी नगरी और उनके अन्तराल में एक महान् जनपदाग्र को जानता-देखता है?

हां, जानता देखता है।

२३८. भन्ते! क्या वह यथार्थभाव को जानता-देखता है? अथवा अन्यथाभाव (विपरीत-भाव) को जानता-देखता है?

गौतम! वह यथार्थभाव को जानता-देखता है, अन्यथाभाव को नहीं जानता-देखता।

२३९. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—वह यथार्थभाव को जानता-देखता है, अन्यथाभाव को नहीं जानता-देखता?

गौतम! उसके इस प्रकार का दृष्टिकोण होता है—यह राजगृह नगर नहीं है, यह वाराणसी नगरी नहीं है, यह इन दोनों के अन्तराल में एक महान् जनपदाग्र नहीं है। यह मेरी वीर्य-लब्धि, वैक्रिय-लब्धि और अवधि-ज्ञान-लब्धि है। यह ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम मुझे लब्ध, प्राप्त और अभिसमन्वागत (विपाकाभिमुख) है। यह उसके दर्शन का अविपर्यास है। गौतम! इस अपेक्षा से कहा जा रहा है—वह यथार्थभाव को जानता-देखता है, अन्यथाभाव को नहीं जानता-देखता।

२४०. भन्ते! क्या भावितात्मा अनगार बहिर्वर्ती पुद्गलों का ग्रहण किए बिना एक महान् ग्राम-रूप अथवा नगर-रूप यावत् सन्निवेश-रूप की विक्रिया (निर्माण) करने में समर्थ है?

यह अर्थ संगत नहीं हैं।

२४१. भन्ते! क्या भावितात्मा अनगार बहिर्वर्ती पुद्गलों का ग्रहण कर एक महान् ग्राम-रूप अथवा नगर-रूप यावत् सन्निवेश-रूप की विक्रिया (निर्माण) करने में समर्थ है?

हां, समर्थ है।

२४२. भन्ते! भावितात्मा अनगार कितने ग्राम-रूपों की विक्रिया करने में समर्थ है?

गौतम! जैसे कोई युवक युवती का हाथ प्रगाढ़ता से पकड़ता है, वही (सू. १९६) वक्तव्यता यावत् भावितात्मा अनगार ने क्रियात्मक रूप में न तो कभी ऐसी विक्रिया की, न करता है, और न करेगा।

२४३. इसी प्रकार सन्निवेश-रूप तक ग्राम-रूप की भांति वक्तव्य है।

आत्मरक्षक-पद

२४४. भन्ते! असुरेन्द्र असुरराज चमर के आत्मरक्षक-देव कितने हजार प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! उसके दो लाख छप्पन हजार आत्मरक्षक-देव प्रज्ञप्त हैं। उन आत्मरक्षकों का वर्णन—(द्रष्टव्य रायपसेणइयं, सूत्र ६६४)

२४५. इस प्रकार सब इन्द्रों के जिसके जितने आत्मरक्षक-देव हैं, वे सब वक्तव्य हैं।

२४६. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है।

सातवां उद्देशक

लोकपाल-पद

२४७. राजगृह नगर में भगवान् की पर्युपासना करते हुए गणधर गौतम इस प्रकार बोले—भन्ते! देवेन्द्र देवराज शक्र के कितने लोकपाल प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! उसके चार लोकपाल प्रज्ञप्त हैं, जैसे—सोम, यम, वरुण और वैश्रवण।

२४८. भन्ते! इन चार लोकपालों के कितने विमान प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! इनके चार विमान प्रज्ञप्त हैं, जैसे सन्ध्याप्रभ, वरशिष्ट, स्वयञ्ज्वल और वल्गु।

२४९. भन्ते! देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल महाराज सोम का सन्ध्याप्रभ नामक महाविमान कहां प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! जम्बूद्वीप द्वीप के मेरु पर्वत के दक्षिण भाग में इसी रत्नप्रभा पृथ्वी के प्रायः समतल और रमणीय भूभाग से ऊपर चांद, सूरज, ग्रह-गण, नक्षत्र और ताराओं से बहुत योजन दूर यावत् पांच अवतंसक प्रज्ञप्त हैं जैसे—अशोकावतंसक, सप्तपर्णावतंसक, चम्पकावतंसक, चूतावतंसक और मध्य में सौधर्मावतंसक।

सोम-पद

२५०. उस सौधर्मावतंसक महाविमान के पूर्व में सौधर्मकल्प में असंख्य योजन जाने पर देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल महाराज सोम का सन्ध्यप्रभ नामक महाविमान प्रज्ञप्त है। उसकी लम्बाई-चौड़ाई साढ़ा बारह लाख योजन है और परिधि उनचालीस लाख, बावन हजार आठ सौ अड़तालीस योजन से कुछ अधिक है। जो सूर्याभ विमान की वक्तव्यता है, वह समग्रतया अभिषेक तक यहां वक्तव्य है। केवल सूर्याभ के स्थान पर सोमदेव वक्तव्य है।

२५१. सन्ध्यप्रभ महाविमान के नीचे ठीक सीधे तिरछे लोक में असंख्येय हजार योजनका अवगाहन करने पर देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल महाराज सोम की सोमा नाम की राजधानी प्रज्ञप्त है। उसकी लम्बाई-चौड़ाई, जम्बूद्वीप-प्रमाण एक लाख योजन है। इसके प्रासाद आदि का प्रमाण सौधर्मवर्ती प्रासाद आदि से आधा है यावत् पीठिका लम्बाई-चौड़ाई में सोलह हजार (१६०००) योजन और परिधि में पचास हजार पांच सौ सितानवे (५०५९७) योजन से कुछ कम है। उसके प्रासादों की चार पंक्तियां हैं। शेष (सुधर्मा सभा) नहीं है।

२५२. देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल महाराज सोम की आज्ञा, उपपात, वचन और निर्देश में रहने वाले देव ये हैं—सोमकायिक, सोमदेवकायिक, विद्युत्-कुमार, विद्युत्कुमारियां, अम्निकुमार, अम्निकुमारियां, वातकुमार, वात-कुमारियां, चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारा-रूप। इस प्रकार के जितने अन्य देव हैं, वे सब देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल महाराज सोम के प्रति भक्ति रखते हैं, उसके पक्ष में रहते हैं, उसके वशवर्ती रहते हैं तथा उसकी आज्ञा, उपपात, वचन और निर्देश में अवस्थित हैं।

२५३. जम्बूद्वीप द्वीप में मेरु पर्वत के दक्षिण भाग में जो ये स्थितियां उत्पन्न होती हैं, जैसे—ग्रहदण्ड, ग्रहमुशाल, ग्रहगर्जित, ग्रहयुद्ध, ग्रहशृंगाटक, ग्रहों का विरोधी दिशा में गमन, अभ्र, अभ्रवृक्ष, सन्ध्या, गन्धर्वनगर, उत्कापात, दिग्दाह, गर्जित, विद्युत्, पांशुवृष्टि, यूपक, यक्षोद्दीप्त, धूमिका, महिका, रजोद्घात, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, चन्द्रमण्डल, सूर्यमण्डल, प्रतिचन्द्र, प्रतिसूर्य, इन्द्र-धनुष, उदक-मत्स्य, कपि-हसित, अमोघा, पूर्वदिशा की वायु, पश्चिम दिशा की वायु, दक्षिण-दिशा की वायु, उत्तर-दिशा की वायु, ऊर्ध्व-दिशा की वायु, अधो-दिशा की वायु, तिरछी दिशा की वायु, विदिशा की वायु, अनवस्थित वायु, वात-उत्कलिका, वात-मण्डलिका, उत्कलिका-वात, मण्डलिका-वात, गुञ्जा-वात, झंझा-वात, संवर्तक-वात, ग्राम-दाह यावत् सन्निवेश-दाह, प्राण-क्षय, जन-क्षय धन-क्षय, कुल-क्षय तथा और भी इस प्रकार की अनिष्ट आपदाएं, वे सब देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल

महाराज सोम से तथा उन सोमकायिक देवों से अज्ञात, अदृष्ट, अश्रुत, अस्मृत और अविज्ञात नहीं होती।

२५४. ये निम्नांकित देव देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल महाराज सोम के पुत्र के रूप में पहचाने जाते हैं, जैसे-अंगारक (मंगलग्रह), विकालक (ज्योतिष्क-देव की एक जाति) लोहिताक्ष (एक महाग्रह), शनिश्चर, चन्द्रमा, सूर्य, शुक्र, बुध, बृहस्पति और राहु।

२५५. देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल की स्थिति त्रिभाग अधिक एक पल्योपम की प्रज्ञप्त है। उसके पुत्र-रूप में पहचाने जाने वाले देवों की स्थिति एक पल्योपम की प्रज्ञप्त है। लोकपाल सोम ऐसी महान् ऋद्धि वाला यावत् महान् सामर्थ्य वाला है।

यम-पद

२५६. भन्ते! देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल महाराज यम का वरशिष्ट नाम का महाविमान कहां प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! सौधर्मावतंसक महाविमान के दक्षिण भाग में सौधर्मकल्प में असंख्य योजन जाने पर देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल महाराज यम का वरशिष्ट नाम का महाविमान है। वह साढा-बारह लाख योजन की लम्बाई-चौड़ाई वाला है-सोम के विमान तक जैसा वर्णन है, वैसा ही वर्णन अभिषेक तक ज्ञातव्य है (सू. २५०) राजधानी का वर्णन भी प्रासाद-पंक्ति तक सोम की राजधानी की भांति ज्ञातव्य है।

२५७. देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल महाराज यम की आज्ञा, उपपात, वचन और निर्देश में रहने वाले देव ये हैं-यमकायिक, यमदेवकायिक, प्रेतकायिक, प्रेतदेवकायिक, असुरकुमार, असुरकुमारियां, कन्दर्प, नरकपाल और आभियोगिक। इस प्रकार के जितने अन्य देव हैं, वे सब देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल महाराज यम के प्रति भक्ति रखते हैं, उसके पक्ष में रहते हैं, उसके वशवर्ती रहते हैं तथा उसकी आज्ञा, उपपात, वचन और निर्देश में अवस्थित हैं।

२५८. जम्बूद्वीप द्वीप में मेरुपर्वत के दक्षिण भाग में जो ये स्थितियां उत्पन्न होती हैं, जैसे डिम्ब (दंगा), डमर, कलह, बोल, मात्सर्य, महायुद्ध, महासंग्राम, महाशस्त्रनिपात, महापुरुषनिपात, महारुधिरनिपात, टिड्डी, आदि का उपद्रव, कुलरोग, ग्रामरोग, मण्डलरोग, नगररोग, शिरोवेदना, अक्षिवेदना, कर्णवेदना, नखवेदना, दन्तवेदना, इन्द्रग्रह, स्कन्दग्रह, कुमारग्रह, यक्षग्रह, भूतग्रह, एकान्तर ज्वर, दो दिन से आने वाला ज्वर, तीन दिन से आने वाला ज्वर, चार दिन से आने वाला ज्वर, चोर आदि का उपद्रव, खांसी, श्वास, शोष, बुढ़ापा, दाह, कक्षाकोथ, अजीर्ण, पाण्डुरोग, मस्सा, भगंदर, हृदय-शूल, मस्तक-शूल, योनि-शूल, पार्श्व-शूल, कुक्षि-शूल, ग्राम-मारि, नगर-मारि, खेट-मारि, कर्बट-मारि, द्रोणमुख-मारि, मडम्ब-मारि, पत्तन-मारि, आश्रम-मारि, संवाह-मारि, सन्निवेश-मारि, प्राण-क्षय, जन-क्षय, धन-क्षय, बल-क्षय तथा और भी इस प्रकार की अनिष्ट आपदाएं, उन सब देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल महाराज यम से तथा उन यमकायिक देवों से अज्ञात, अदृष्ट, अश्रुत, अस्मृत और अविज्ञात नहीं होती।

२५९. ये निम्नांकित देव देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल महाराज यम के पुत्र के रूप में पहचाने जाते हैं—

संग्रहणी गाथा

अंब, अम्बरीष, श्याम, शबल, रुद्र, उपरुद्र, काल महाकाल, असिपत्र, धनु, कुम्भ, बालुक, वैतरणी, खरस्वर और महाघोष—ये पन्द्रह देव यम के पुत्रस्थानीय हैं।

२६०. देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल महाराज यम की स्थिति त्रिभाग अधिक एक पल्योपम की प्रज्ञप्त है। उसके पुत्र-रूप में पहचाने जाने वाले देवों की स्थिति एक पल्योपम की प्रज्ञप्त है। लोकपाल यम ऐसी महान् ऋद्धि वाला यावत् महान सामर्थ्य वाला है।

वरुण-पद

२६१. भन्ते! देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल महाराज वरुण का स्वयञ्जल नाम का महाविमान कहां प्रज्ञप्त है?

गौतम! उस सौधर्मावतंसक महाविमान के पश्चिम भाग में स्वयञ्जल नाम का महाविमान है। इसके विमान, राजधानी और प्रासादावतंसक तक का वर्णन सोम की भांति ज्ञातव्य है। केवल नामों को भिन्नता है।

२६२. देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल महाराज वरुण की आज्ञा, उपपात, वचन और निर्देश में रहने वाले देव ये हैं—वरुणकायिक, वरुणदेवकायिक, नागकुमार, नागकुमारियां, उदधिकुमार, उदधिकुमारियां, स्तनितकुमार, स्तनितकुमारियां। इस प्रकार के जितने अन्य देव हैं। वे सब देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल महाराज वरुण के प्रति भक्ति रखते हैं, उसके पक्ष में रहते हैं, उसके वशवर्ती रहते हैं तथा उसकी आज्ञा, उपपात, वचन और निर्देश में अवस्थित हैं।

२६३. जम्बूद्वीप द्वीप में मेरु पर्वत के दक्षिण भाग में जो ये स्थितियां उत्पन्न होती हैं, जैसे—अतिवर्षा, मन्दवर्षा, सुवृष्टि, दुर्वृष्टि, उदकोद्भेद (निर्झर) उदकोत्पीड, (पानी का अतिप्रवाह), अप्रवाह, प्रवाह, ग्राम-वाह, यावत् सन्निवेश-वाह, प्राण-क्षय, जन-क्षय, धन-क्षय, कुल-क्षय, तथा और भी इस प्रकार की अनिष्ट आपदाएं, वे सब देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल महाराज वरुण तथा उन वरुणकायिक देवों से अज्ञात अदृष्ट, अश्रुत, अस्मृत और अविज्ञात नहीं होती।

२६४. ये निम्नांकित देव देवराज शक्र के लोकपाल महाराज वरुण के पुत्र के रूप में पहचाने जाते हैं, जैसे—ककौटक, कर्दमक, अंजन, शंखपालक, पुण्ड्र, पलाश, मोद, जय, दधिमुख, अयंपुल और कातरिक।

२६५. देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल महाराज वरुण की स्थिति कुछ कम दो पल्योपम की प्रज्ञप्त है। उसके पुत्र-रूप में पहचाने जाने वाले देवों की स्थिति एक पल्योपम की प्रज्ञप्त है। लोकपाल वरुण ऐसी महान् ऋद्धि वाला यावत् सामर्थ्य वाला है।

वैश्रवण-पद

२६६. भन्ते! देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल महाराज वैश्रवण का वल्गु नामक महाविमान कहां प्रज्ञप्त है?

गौतम! उस सौधर्मावतंसक महाविमान के उत्तर भाग में वैश्रमण का वल्गु नाम का महाविमान है। इसके विमान, राजधानी और प्रसादावतंसक तक की वक्तव्यता सोम की भांति ज्ञातव्य है।

२६७. देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल महाराज वैश्रवण की आज्ञा, उपपात, वचन और निर्देश में रहने वाले देव ये हैं—वैश्रवणकायिक, वैश्रवणदेवकायिक, सुपर्णकुमार, सुपर्णकुमारियां, द्वीपकुमार, द्वीपकुमारियां, दिक्कुमार, दिक्कुमारियां, वानमन्तर, वानमन्तरियां। इस प्रकार के जितने अन्य देव हैं, वे सब देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल महाराज वैश्रवण के प्रति भक्ति रखते हैं, उसके पक्ष में रहते हैं, उसके वशवर्ती रहते हैं। तथा उसकी आज्ञा, उपपात, वचन और निर्देश में अवस्थित हैं।

२६८. जम्बूद्वीप द्वीप में मेरुपर्वत के दक्षिण भाग में जो ये स्थितियां उत्पन्न होती हैं—लोहे की खान, रांगे की खान, ताम्बे की खान, सीसे की खान, चांदी की खान, सोने की खान, रत्नों की खान, वज्र की खान, वसुधारा, हिरण्यवर्षा, सुवर्णवर्षा, रत्नवर्षा, वज्रवर्षा, आभरणवर्षा, पत्रवर्षा, पुष्पवर्षा, फलवर्षा, बीजवर्षा, माल्यवर्षा, वर्णवर्षा, चूर्णवर्षा, गन्धवर्षा, वस्त्रवर्षा, हिरण्यवृष्टि, सुवर्णवृष्टि, रत्नवृष्टि, वज्रवृष्टि, आभरणवृष्टि, पत्रवृष्टि, पुष्पवृष्टि, फलवृष्टि, बीजवृष्टि, माल्यवृष्टि, वर्णवृष्टि, चूर्णवृष्टि, गन्धवृष्टि, वस्त्रवृष्टि, भाजनवृष्टि, क्षीरवृष्टि, सुकाल, दुष्काल, अल्पाध्य, महाध्य, सुभिक्ष, दुर्भिक्ष, क्रय-विक्रय, सन्निधि, सनिचय, निधि, निधान हैं—चिरपुराण, अल्पस्वामित्व वाले हों, उनमें धन का न्यास करने वाले कम रहे हों, उन तक पहुंचने के मार्ग कम हों, वहां धन का न्यास करने वालों का गोत्रगृह कम रहा हो, उनका स्वामित्व उच्छिन्न हो गया हो, उनमें धन का न्यास करने वाले उच्छिन्न हो गए हों, (उन तक जाने वाले मार्ग उच्छिन्न हो गए हों) वहां धन का न्यास करने वालों के गोत्र-गृह उच्छिन्न हो गए हों। वहां जो दुराहे, तिराहे, चौराहे, चोक चारों ओर प्रवेशद्वार वाले स्थान, राजपथ और वीथियों में, नगर के जलनिर्गमन-मार्गों में, श्मशानगृहों, गिरिगृहों, कन्दरागृहों, शांतिगृहों, शैलगृहों, उपस्थानगृहों और भवनगृहों में जो निधान निक्षिप्त हैं—वे देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल महाराज वैश्रवण और वैश्रवणकायिक देवों से अज्ञात, अदृष्ट, अश्रुत, अस्मृत और अविज्ञात नहीं होते।

२६९. ये निम्नांकि देव देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल महाराज वैश्रवण के पुत्ररूप में पहचाने जाते हैं, जैसे—पूर्णभद्र, माणिभद्र, शालिभद्र, सुमनभद्र, चक्ररक्ष, पूर्णरक्ष, सव्यान, सर्वयश, सर्वकाम, समृद्ध, अमोह और असंग।

२७०. देवेन्द्र देवराज शक्र के लोकपाल महाराज वैश्रवण की स्थिति दो पत्न्योपम की प्रज्ञप्त है। उनके पुत्ररूप में पहचाने जाने वाले देवों की स्थिति एक पत्न्योपम की प्रज्ञप्त है। लोकपाल वैश्रवण ऐसी महान् ऋद्धिवाला यावत् महान् सामर्थ्यवाला है।

२७१. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है।

आठवां उद्देशक

२७२. राजगृह नगर में भगवान् गौतम भगवान् महावीर की पर्युपासना करते हुए इस प्रकार बोले—भन्ते! कितने देव असुरकुमार-देवों का आधिपत्य करते हुए यावत् दिव्य भोग भोगते हुए विहरण करते हैं?

गौतम! दस देव उनका आधिपत्य करते हुए यावत् दिव्य भोग भोगते हुए विहरण करते हैं, जैसे—असुरेन्द्र-असुरराज-चमर, सोम, यम, वरुण, वैश्रमण। वैरोचनेन्द्र-वैरोचनराज-बली, सोम, यम, वैश्रवण और वरुण।

२७३. भन्ते! कितने देव नागकुमार-देवों का आधिपत्य करते हुए यावत् दिव्य भोग भोगते हुए विहरण करते हैं?

गौतम! दस देव उनका आधिपत्य करते हुए यावत् दिव्य भोग भोगते हुए विहरण करते हैं, जैसे—नागकुमारेन्द्र-नागकुमारराज-धरण, कालपाल, कोल-पाल, शैलपाल, शंखपाल। नागकुमारेन्द्र-नागकुमारराज-भूतानन्द, कालपाल, कोलपाल, शंखपाल और शैलपाल।

२७४. नागकुमारेन्द्र की जो वक्तव्यता है, वही वक्तव्यता निम्न-निर्दिष्ट देवों की ज्ञातव्य है—सुपर्णकुमार-देवों का आधिपत्य करने वाले देव—वेणुदेव, चित्र, विचित्र, चित्रपक्ष और विचित्रपक्ष। वेणुदाली, चित्र, विचित्र, चित्रपक्ष और विचित्रपक्ष।

विद्युत्कुमार-देवों का आधिपत्य करने वाले देव—हरिकान्त, प्रभ, सुप्रभ, प्रभकान्त और सुप्रभकान्त। हरिस्सह, प्रभ, सुप्रभ, सुप्रभकान्त और प्रभकान्त।

अग्निकुमार-देवों का आधिपत्य करने वाले देव—अग्निशिख, तेजः, तेजः-शिख, तेजस्कान्त और तेजःप्रभ। अग्निमानव, तेजः, तेजःशिख, तेजःप्रभ और तेजस्कान्त।

द्वीपकुमार-देवों का आधिपत्य करने वाले देव—पूर्ण, रूप, रूपांश, रूपकान्त और रूपप्रभ। विशिष्ट, रूप, रूपांश, रूपप्रभ और रूपकान्त।

उदधिकुमार-देवों का आधिपत्य करने वाले देव। जलकान्त, जल, जलरूप, जलकान्त और जलप्रभ। जलप्रभ, जल, जलरूप, जलप्रभ और जलकान्त। दिक्कुमार देवों का आधिपत्य करने वाले देव—अमितगति, त्वरितगति, क्षिप्रगति, सिंहगति और सिंहविक्रमगति। अमितवाहन, त्वरितगति, क्षिप्रगति सिंहविक्रमगति और सिंहगति।

वायुकुमार-देवों का आधिपत्य करने वाले देव—वेलम्ब, काल, महाकाल, अंजन और रिष्ट। प्रभञ्जन, काल, महाकाल, रिष्ट और अंजन। स्तनितकुमार देवों का आधिपत्य करने वाले देव—धोष, आवर्त्त, व्यावर्त्त, नन्दावर्त्त और महानन्दावर्त्त। महाधोष, आवर्त्त, व्यावर्त्त, महानन्दावर्त्त और नन्दावर्त्त।

इस प्रकार असुरकुमारों की भांति (३/२७२) वक्तव्यता।

२७५. भन्ते! कितने देव पिशाचकुमार-देवों का आधिपत्य करते हुए यावत् दिव्य भोग भोगते हुए विहरण करते हैं?

गौतम! दो देव उनका आधिपत्य करते हुए यावत् दिव्य भोग भोगते हुए विहरण करते हैं,

जैसे—

संग्रहणी गाथा

पिशाचों के—काल, महाकाल। भूतों के—सूरूप, प्रतिरूप। यक्षों के—पूर्णभद्र, माणिभद्र। राक्षसों के—भीम, महाभीम। किन्नरों के—किन्नर, किंपुरुष। किंपुरुषों के—सत्पुरुष, महापुरुष। महोरगों के—अतिकाय, महाकाय। गन्धर्वों के—गीतरति और गीतयशा।

ये वानमन्तर-देवों का आधिपत्य करने वाले देव हैं।

२७६. दो देव ज्योतिष्क-देवों का आधिपत्य करते हुए यावत् दिव्य भोग भोगते हुए विहरण करते हैं, जैसे—चन्द्रमा और सूर्य।

२७७. भन्ते! कितने देव सौधर्म- और ईशान-कल्प में आधिपत्य करते हुए यावत् दिव्य भोग भोगते हुए विहरण करते हैं?

गौतम! दस देव उनमें आधिपत्य करते हुए यावत् दिव्य भोग भोगते हुए विहरण करते हैं, जैसे—देवेन्द्र देवराज शक्र, सोम, यम, वरुण, और वैश्रवण। देवेन्द्र देवराज ईशान, सोम, यम, वैश्रवण और वरुण।

इस वक्तव्यता के अनुसार सभी कल्पों में ये लोकपाल वक्तव्य हैं जहां जो इन्द्र है वहां वह वक्तव्य है।

२७८. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है।

नवां उद्देशक

२७९. राजगृह नगर में भगवान् गौतम भगवान् महावीर की पर्युपासना करते हुए इस प्रकार बोले—भन्ते! इन्द्रियों के विषय कितने प्रकार के प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! इन्द्रियों के विषय पांच प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—श्रोत्रेन्द्रिय-विषय, चक्षुरिन्द्रिय-विषय, घ्राणेन्द्रिय-विषय, रसनेन्द्रिय-विषय, और स्पर्शनेन्द्रिय-विषय। जीवाजीवाभिगम में ज्योतिष्क-सम्बन्धी उद्देशक यहां अविकल रूप से ज्ञातव्य है।

दसवां उद्देशक

२८०. राजगृह नगर में भगवान् गौतम भगवान् महावीर से इस प्रकार बोले—भन्ते! असुरेन्द्र असुरराज चमर के कितनी परिषदें प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! तीन परिषदें प्रज्ञप्त हैं, जैसे—शमिता, चण्डा और जाता। इस प्रकार क्रमशः अच्युत-कल्प तक ज्ञातव्य है।

२८१. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है।

• • •

चौथा शतक

पहला, दूसरा, तीसरा और चौथा उद्देशक

संग्रहणी गाथा

चार विमान, चार राजधानियां, नैरयिक और लेश्या—चौथे शतक में ये दस उद्देशक हैं।

१. राजगृह नगर में भगवान गौतम भगवान महावीर की पर्युपासना करते हुए इस प्रकार बोले—भन्ते! देवेन्द्र देवराज ईशान के कितने लोकपाल प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! चार लोकपाल प्रज्ञप्त हैं, जैसे सोम, यम, वैश्रवण और वरुण।

२. भन्ते! इन लोकपालों के कितने विमान प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! इनके चार विमान प्रज्ञप्त हैं, जैसे—सुमन, सर्वतोभद्र, वल्गु और सबल्गु।

३. भन्ते! देवेन्द्र देवराज ईशान के लोकपाल महाराज सोम का सुमन नाम का महाविमान कहां प्रज्ञप्त है?

गौतम! जम्बूद्वीप द्वीप में मेरु पर्वत के उत्तर में इस रत्नप्रभा-पृथ्वी के प्रायः समतल और रमणीय भू-भाग से ऊपर यावत् ईशाननाम का कल्प प्रज्ञप्त है। वहां पांच अवतंसक प्रज्ञप्त हैं, जैसे—अंकावतंसक, स्फटिकावतंसक, रत्नावतंसक, जातरूपावतंसक और मध्य में ईशानावतंसक।

४. उस ईशानावतंसक महाविमान के पूर्व में तिरछी दिशा में असंख्य हजार योजन जाने पर देवेन्द्र देवराज ईशान के लोकपाल महाराज सोम का सुमन नाम का महाविमान प्रज्ञप्त है। उसकी लम्बाई-चौड़ाई साढ़े बारह लाख योजन है। तीसरे शतक में शुक्र की जैसी वक्तव्यता है वैसी ही वक्तव्यता यावत् अर्चनिका तक ईशान की भी है।

५. चारों ही लोकपालों के प्रत्येक विमान का एक-एक उद्देशक अविकल रूप से ज्ञातव्य है, केवल उनकी स्थिति में नानात्व है—

संग्रहणी गाथा

प्रथम दो लोकपालों की स्थिति एक तिहाई भाग कम दो पल्योपम की है। धनद (वैश्रवण) लोकपाल की स्थिति दो पल्योपम की है और वरुण की स्थिति एक तिहाई भाग अधिक दो पल्योपम (२½) की है। लोकपालों के पुत्र-रूप में पहचाने जाने वाले देवों की स्थिति एक पल्योपम की है।

पांचवां, छट्ठा, सातवां और आठवां उद्देशक

६. राजधानी के भी चार उद्देशक ज्ञातव्य हैं यावत् महाराज वरुण ऐसी महान् ऋद्धि वाला है।

नवां उद्देशक

७. भंते! नैरयिक नैरयिकों में उपपन्न होता है अथवा अनैरयिक नैरयिकों में उपपन्न होता है?

यहां पण्णवणा के लेश्या-पद का तीसरा उद्देशक ज्ञानके प्रकरण तक वक्तव्य है।

दसवां उद्देशक

८. भंते! क्या कृष्ण-लेश्या नील-लेश्या के योग्य पुद्गलों को प्राप्त कर उसके रूप, वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श में बार-बार परिणत होती है?

हां, गौतम! कृष्ण-लेश्या के योग्य पुद्गलों को प्राप्त कर उसके रूप, वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श में बार-बार परिणत होती है। इस प्रकार पण्णवणा के लेश्या-पद का चौथा उद्देशक ज्ञातव्य है यावत्—

संग्रहणी गाथा

परिणाम, वर्ण, रस, गन्ध, शुद्ध, अप्रशस्त, संक्लिष्ट, उष्ण, गति, परिणाम, प्रदेश, अवगाहना, वर्गणा, स्थान और अल्पबहुत्व।

९. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है।

• • •

पांचवा शतक

पहला उद्देशक

संग्रहणी गाथा

पांचवे शतक के दस उद्देशक हैं—चम्पानगरी में सूर्य, वायु, ग्रन्थिक, शब्द, छद्मस्थ, आयु, एजन, निर्ग्रन्थ, राजगृह और चम्पानगरी में चन्द्रमा।

जम्बूद्वीप में सूर्य की व्यक्तव्यता का पद

१. उस काल और उस समय में चम्पा नाम की नगरी थी—वर्णनवाची आलापक।
२. उस चम्पा नगरी में पूर्णभद्र नाम का चैत्य था—वर्णनवाची आलापक। भगवान महावीर पधारे यावत् परिषद् लौट गई।
३. उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर के ज्येष्ठ अन्तेवासी गौतमगोत्रीय इन्द्रभूति नामक अनगर यावत् इस प्रकार बोले—भन्ते! इस जम्बूद्वीप द्वीप में दो सूर्य उत्तर और पूर्व के मध्य उदित हो कर पूर्व और दक्षिण के मध्य आते हैं? पूर्व और दक्षिण के मध्य उदित हो कर दक्षिण और पश्चिम के मध्य आते हैं? दक्षिण और पश्चिम के मध्य उदित हो कर पश्चिम और उत्तर के मध्य आते हैं? पश्चिम और उत्तर के मध्य उदित हो कर उत्तर और पूर्व के मध्य आते हैं?
- हां, गौतम! जम्बूद्वीप द्वीप में दो सूर्य उत्तर और पूर्व के मध्य उदित हो कर यावत् उत्तर और पूर्व के मध्य आते हैं।

जम्बूद्वीप में दिवस-रात्रि की व्यक्तव्यता का पद

४. भन्ते! जिस समय जम्बूद्वीप द्वीप में मेरु पर्वत के दक्षिणार्ध में दिन होता है, उस समय उत्तरार्ध में भी दिन होता है? जिस समय उत्तरार्ध में दिन होता है उस समय जम्बूद्वीप द्वीप में मेरु पर्वत के पूर्व-पश्चिम भाग में रात्रि होती है?
- हां, गौतम! जिस समय जम्बूद्वीप द्वीप में मेरु पर्वत के दक्षिणार्ध में दिन होता है यावत् उस समय पूर्व और पश्चिम भाग में रात्रि होती है।
५. भन्ते! जिस समय जम्बूद्वीप द्वीप में मेरु पर्वत के पूर्व भाग में दिन होता है, उस समय पश्चिम भाग में भी दिन होता है? जिस समय पश्चिम भाग में दिन होता है, उस समय जम्बूद्वीप द्वीप में मेरु पर्वत के उत्तर और दक्षिण भाग में रात्रि होती है?
- हां, गौतम! जिस समय जम्बूद्वीप द्वीप में मेरु पर्वत के पूर्व में दिन होता है, यावत् उस समय

उत्तर और दक्षिण भाग में रात्रि होती है।

६. भन्ते! जिस समय जम्बूद्वीप द्वीप में मेरु पर्वत के दक्षिणार्द्ध में अठारह मुहूर्त का उत्कृष्ट दिन होता है, उस समय उत्तरार्द्ध में भी अठारह मुहूर्त का उत्कृष्ट दिन होता है? जिस समय उत्तरार्द्ध में अठारह मुहूर्त का उत्कृष्ट दिन होता है, उस समय जम्बूद्वीप द्वीप में मेरु पर्वत के पूर्व और पश्चिम भाग में बारह मुहूर्त की जघन्य रात्रि होती है?

हां, गौतम! जिस समय जम्बूद्वीप द्वीप में मेरु पर्वत के दक्षिणार्द्ध में अठारह-मुहूर्त का उत्कृष्ट दिन होता है यावत् उस समय पूर्व और पश्चिमी भाग में बारह मुहूर्त की जघन्य रात्रि होती है।

७. भन्ते! जिस समय जम्बूद्वीप द्वीप में मेरु पर्वत के पूर्व भाग में अठारह-मुहूर्त का उत्कृष्ट दिन होता है, उस समय पश्चिम भाग में अठारह मुहूर्त का उत्कृष्ट दिन होता है? जिस समय पश्चिम भाग में भी अठारह मुहूर्त का उत्कृष्ट दिन होता है, उस समय जम्बूद्वीप द्वीप में मेरुपर्वत के उत्तर और दक्षिण भाग में बारह मुहूर्त की जघन्य रात्रि होती है?

हां, गौतम! यह सब ऐसा ही है।

८. भन्ते! जिस समय जम्बूद्वीप द्वीप में मेरु पर्वत के दक्षिणार्द्ध भाग में अठारह-मुहूर्त-से-कुछ-कम परिमाण वाला दिन होता है, उस समय उत्तरार्द्ध भाग में भी अठारह-मुहूर्त से कुछ कम परिमाण वाला दिन होता है? जिस समय उत्तरार्द्ध भाग में अठारह-मुहूर्त-से-कुछ-कम परिमाण वाला दिन होता है, उस समय जम्बूद्वीप द्वीप में मेरुपर्वत के पूर्व-पश्चिम भाग में बारह-मुहूर्त-से-कुछ-अधिक परिमाण वाली रात्रि होती है?

हां, गौतम! जिस समय जम्बूद्वीप द्वीप में यावत् बारह-मुहूर्त-से-कुछ-अधिक परिमाण वाली रात्रि होती है।

९. भन्ते! जिस समय जम्बूद्वीप द्वीप में मेरु पर्वत के पूर्व भाग में अठारह-मुहूर्त-से-कुछ-कम परिमाण वाला दिन होता है, उस समय पश्चिम भाग में भी अठारह-मुहूर्त-से-कुछ-कम परिमाण वाला दिन होता है? जिस समय पश्चिम भाग में अठारह-मुहूर्त-से-कुछ-कम परिमाण वाला दिन होता है, उस समय जम्बूद्वीप द्वीप में मेरुपर्वत के उत्तर और दक्षिण भाग में बारह-मुहूर्त-से-कुछ-अधिक परिमाण वाली रात्रि होती है?

हां, गौतम! यह सब ऐसा ही है।

१०. इस प्रकार इसी क्रम से अवतरित करना चाहिए सतरह मुहूर्त का दिन और तेरह मुहूर्त की रात्रि। सतरह-मुहूर्त-से-कुछ-कम परिमाण वाला दिन और तेरह मुहूर्त से कुछ अधिक परिमाण वाली रात्रि। सोलह मुहूर्त का दिन और चौदह मुहूर्त की रात्रि।

सोलह-मुहूर्त-से-कुछ-कम परिमाण वाला दिन और चौदह-मुहूर्त-से-कुछ-अधिक परिमाण वाली रात्रि।

पन्द्रह मुहूर्त का दिन और पन्द्रह मुहूर्त की रात्रि। पन्द्रह-मुहूर्त-से-कुछ-कम परिमाण वाला दिन और पन्द्रह-मुहूर्त-से-कुछ-अधिक परिमाण वाली रात्रि।

चौदह मुहूर्त का दिन और सोलह मुहूर्त की रात्रि। चौदह-मुहूर्त-से-कुछ-कम परिमाण वाला दिन और सोलह-मुहूर्त-से-कुछ-अधिक परिमाण वाली रात्रि।

तेरह मुहूर्त का दिन और सतरह मुहूर्त की रात्रि। तेरह-मुहूर्त-से-कुछ-कम परिमाण वाला दिन और सतरह-मुहूर्त-से-कुछ-अधिक परिमाण वाली रात्रि।

११. भन्ते! जिस समय जम्बूद्वीप द्वीप में मेरु पर्वत के दक्षिणार्द्ध भाग में बारह मुहूर्त का जघन्य दिन होता है, उस समय उत्तरार्द्ध भाग में भी बारह मुहूर्त का दिन होता है? जिस समय उत्तरार्द्ध भाग में बारह मुहूर्त का दिन होता है, उस समय जम्बूद्वीप द्वीप में मेरु पर्वत के पूर्व और पश्चिम भाग में अठारह मुहूर्त की उत्कृष्ट रात्रि होती है?

हां, गौतम! इस प्रकार पूर्ण पाठ वक्तव्य है यावत् अठारह मुहूर्त की उत्कृष्ट रात्रि होती है।

१२. भन्ते! जिस समय जम्बूद्वीप द्वीप में मेरु पर्वत के पूर्व भाग में बारह मुहूर्त का जघन्य दिन होता है, उस समय पश्चिम भाग में बारह मुहूर्त का जघन्य दिन होता है? जिस समय पश्चिम भाग में बारह मुहूर्त का जघन्य दिन होता है, उस समय जम्बूद्वीप द्वीप में मेरु पर्वत के उत्तर और दक्षिण भाग में अठारह मुहूर्त की उत्कृष्ट रात्रि होती है?

हां, गौतम! यावत् अठारह मुहूर्त की उत्कृष्ट रात्रि होती है।

१३. भन्ते! जिस समय जम्बूद्वीप द्वीप में मेरु पर्वत के दक्षिणार्द्ध में वर्षा का प्रथम समय प्रतिपन्न होता है, उस समय उत्तरार्द्ध में भी वर्षा का प्रथम समय प्रतिपन्न होता है, जिस समय उत्तरार्द्ध के वर्षा का प्रथम समय प्रतिपन्न होता है, उस समय जम्बूद्वीप द्वीप में मेरु पर्वत के पूर्व-पश्चिम भाग में वर्षा के प्रथम समय के अनन्तर आने वाले समय में वर्षा का प्रथम समय प्रतिपन्न होता है?

हां, गौतम! जिस समय जम्बूद्वीप द्वीप में मेरु पर्वत के दक्षिणार्द्ध में वर्षा का प्रथम समय प्रतिपन्न होता है उस समय यावत् वर्षा का प्रथम समय प्रतिपन्न होता है।

१४. भन्ते! जिस समय जम्बूद्वीप द्वीप में मेरु पर्वत के पूर्व भाग में वर्षा का प्रथम समय प्रतिपन्न होता है, उस समय पश्चिम भाग में भी वर्षा का प्रथम समय प्रतिपन्न होता है, जिस समय पश्चिम भाग में वर्षा का प्रथम समय प्रतिपन्न होता है उस समय जम्बूद्वीप द्वीप में मेरु पर्वत के उत्तर-दक्षिण भाग में वर्षा के पूर्व- और अपर-विदेह की वर्षा के प्रथम समय की अपेक्षा प्रथम समय के अनन्तर पश्चाद्वर्ती समय में वर्षा का प्रथम समय प्रतिपन्न होता है?

हां, गौतम! जिस समय जम्बूद्वीप द्वीप में मेरु पर्वत के पूर्व भाग में वर्षा का प्रथम समय प्रतिपन्न होता है.....इस प्रकार पूर्ण पाठ वक्तव्य है यावत् प्रथम समय प्रतिपन्न होता है।

१५. इस प्रकार जैसे समय के साथ वर्षा का अभिलाप कहा गया है, उसी प्रकार आवलिका के साथ भी वर्षा का अभिलाप वक्तव्य है। आनापान, स्तोक, लव, मुहूर्त, अहोरात्र, पक्ष, मास और ऋतु—इन सबके साथ भी समय की भांति ही वर्षा का अभिलाप वक्तव्य है।

१६. भन्ते! जिस समय जम्बूद्वीप द्वीप में मेरु पर्वत के दक्षिणार्द्ध में हेमन्त का प्रथम समय प्रतिपन्न होता है। जैसे समय के साथ वर्षा का अभिलाप है वैसे ही हेमन्त, ग्रीष्म यावत्

ऋतु के साथ भी वक्तव्य है। तीन ऋतुओं में इसी प्रकार वक्तव्य है। इसके तीस आलापक होते हैं।

जम्बूद्वीप में अयनादि की वक्तव्यता का पद

१७. भन्ते! जिस समय जम्बूद्वीप द्वीप में मेरु पर्वत के दक्षिणार्द्ध में प्रथम अयन (दक्षिणायन) प्रतिपन्न होता है उस समय उत्तरार्द्ध में भी प्रथम अयन प्रतिपन्न होता है, जिस प्रकार समय के साथ अभिलाप है, उसी प्रकार अयन के साथ भी वक्तव्य है। यावत् अनन्तर पश्चाद्वर्ती समय में प्रथम अयन प्रतिपन्न होता है।

१८. जिस प्रकार अयन के साथ अभिलाप हैं उसी प्रकार संवत्सर के साथ भी अभिलाप वक्तव्य है। युग, सौ वर्ष, हजार वर्ष, लाख वर्ष, पूर्वांग, पूर्व, त्रुटितांग, त्रुटित के साथ भी अभिलाप वक्तव्य है। इसी प्रकार पूर्वांग, पूर्व, त्रुटितांग, त्रुटित, अट्टांग, अट्ट, अववांग, अवव, हूहकांग, हूहक, उत्पालंग, उत्पल, पद्मांग, पद्म, नलिनांग, नलिन, अर्थनिकुरांग, अर्थनिकुर, अयुतांग, अयुत, नयुतांग, नयुत, प्रयुतांग, प्रयुत, चूलिकांग, चूलिका, शीर्षप्रहेलिकांग, शीर्षप्रहेलिका तथा पल्योपम, सागरोपम के साथ भी अभिलाप वक्तव्य है।

१९. भन्ते! जिस समय जम्बूद्वीप द्वीप में मेरु पर्वत के दक्षिणार्द्ध में प्रथम अवसर्पिणी प्रतिपन्न होती है, उस समय उत्तरार्द्ध में भी प्रथम अवसर्पिणी प्रतिपन्न होती है; जिस समय उत्तरार्द्ध में प्रथम अवसर्पिणी प्रतिपन्न होती है, उस समय जम्बूद्वीप द्वीप में मेरु पर्वत के पूर्व-पश्चिम भाग में अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी नहीं होती है, आयुष्मन् श्रमण! वहां काल अवस्थित है?

हां, गौतम! पूर्ण पाठ प्रश्नवत् वक्तव्य है यावत् आयुष्मान् श्रमण!

२०. जिस प्रकार अवसर्पिणी का आलापक कहा गया, उसी प्रकार उत्सर्पिणी का आलापक भी वक्तव्य है।

लवणसमुद्रादि में सूर्यादि की वक्तव्यता का पद

२१. भन्ते! लवण समुद्र में सूर्य उत्तर और पूर्व के मध्य उदित होकर पश्चिम और दक्षिण के मध्य आते हैं। जम्बूद्वीप में सूर्य की जो वक्तव्यता कही गई है वह सारी अविकल रूप से लवण समुद्र के सन्दर्भ में भी वक्तव्य है। विशेषतः यह अभिलाप ज्ञातव्य है।

२२. भन्ते! जिस समय लवण समुद्र के दक्षिणार्द्ध में दिन होता है। वही वक्तव्यता यावत् उस समय लवण समुद्र के पूर्व-पश्चिम भाग में रात्रि होती है।

२३. इस अभिलाप के अनुसार ज्ञातव्य है यावत् भन्ते! जिस समय लवण समुद्र के दक्षिणार्द्ध में प्रथम अवसर्पिणी प्रतिपन्न होती है, उस समय उत्तरार्द्ध में भी प्रथम अवसर्पिणी प्रतिपन्न होती है; जिस समय उत्तरार्द्ध में प्रथम अवसर्पिणी प्रतिपन्न होती है उस समय लवण समुद्र के पूर्व-पश्चिम भाग में अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी नहीं होती, आयुष्मन् श्रमण! क्या वहां काल अवस्थित है?

हां, गौतम! यावत् आयुष्मन् श्रमण!

२४. भन्ते! धातकीषण्ड द्वीप में सूर्य उत्तर और पूर्व के मध्य उदित होकर पश्चिम और दक्षिण

के मध्य आते हैं। जैसे जम्बूद्वीप की वक्तव्यता कही गई है, उसी प्रकार धातकीषण्ड की वक्तव्यता है। इतना विशेष है कि सारे आलापक इस अभिलाप के अनुसार वक्तव्य है।

२५. भन्ते! जिस समय धातकीषण्ड द्वीप के दक्षिणार्द्ध में दिन होता है, उस समय उत्तरार्द्ध में भी दिन होता है? जिस समय उत्तरार्द्ध में दिन होता है, उस समय धातकीषण्ड द्वीप में मेरु पर्वतों के पूर्व-पश्चिम भाग में रात्रि होती है?

हां, गौतम! ऐसा ही है यावत् रात्रि होती है।

२६. भन्ते! जिस समय धातकीषण्ड द्वीप में मेरु पर्वतों के पूर्व भाग में दिन होता है, उस समय पश्चिम भाग में भी दिन होता है? जिस समय पश्चिम भाग में दिन होता है उस समय धातकीषण्ड द्वीप में मेरु पर्वतों के उत्तर-दक्षिण भाग में रात्रि होती है?

हां, गौतम! यावत् रात्रि होती है।

२७. इस प्रकार इस अभिलाप के अनुसार ज्ञातव्य है यावत् भन्ते! जिस समय दक्षिणार्द्ध में प्रथम अवसर्पिणी प्रतिपन्न होती है, उस समय उत्तरार्द्ध में भी प्रथम अवसर्पिणी प्रतिपन्न होती है? जिस समय उत्तरार्द्ध में प्रथम अवसर्पिणी प्रतिपन्न होती है, उस समय धातकीषण्ड द्वीप में मेरु पर्वतों के पूर्व-पश्चिम भाग में अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी नहीं होती यावत् आयुष्यमन् श्रमण?

हां, गौतम! यावत् आयुष्यमन् श्रमण!

२८. जिस प्रकार लवण समुद्र की वक्तव्यता है, उसी प्रकार कालोद समुद्र की भी व्यक्तव्यता है, इतनी विशेष है—लवण समुद्र के स्थान पर 'कालोद' नाम वक्तव्य है।

२९. भन्ते! आभ्यन्तर-पुष्करार्द्ध में सूर्य उत्तर और पूर्व के मध्य उदित होकर पश्चिम और दक्षिण के मध्य आते हैं। जिस प्रकार धातकीषण्ड की वक्तव्यता है उसी प्रकार आभ्यान्तर पुष्करार्द्ध की भी वक्तव्यता है। विशेषतः यह अभिलाप ज्ञातव्य है। यावत् उस समय आभ्यन्तर-पुष्करार्द्ध में मेरु पर्वतों के पूर्व-पश्चिम भाग में अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी नहीं होती। वहां अवस्थित काल होता है। आयुष्यमन् श्रमण!

३०. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है।

दूसरा उद्देशक

वायु-पद

३१. राजगृह नगर में भगवान् गौतम भगवान् महावीर की पर्युपासना करते हुए इस प्रकार बोले—भन्ते! ईषत् पुरोवात (पूर्वी वायु), पश्चाद्वात (पश्चिमी-वायु), मन्दवात और महावात चलते हैं?

हां, गौतम! चलते हैं।

३२. भन्ते! पूर्व में ईषत् पुरोवात, पश्चात्वात, मन्दवात और महावात चलते हैं?

हां, चलते हैं?

३३. इसी प्रकार पश्चिम, दक्षिण, उत्तर, उत्तर-पूर्व (ईशान कोण), दक्षिण-पश्चिम (नैऋत्य कोण), दक्षिण-पूर्व (आग्नेय कोण) और उत्तर-पश्चिम (वायव्य कोण) में वात चलते हैं।

३४. भन्ते! जिस समय पूर्व में ईषत् पुरोवात, पश्चाद्वात, मन्दवात और महावात चलते हैं, उस समय पश्चिम में भी ईषत् पुरोवात, पश्चाद्वात, मन्दवात और महावात चलते हैं? जिस समय पश्चिम में ईषत् पुरोवात, पश्चाद्वात, मन्दवात और महावात चलते हैं, उस समय पूर्व में भी चलते हैं?

हां, गौतम! जिस समय पूर्व में ईषत् पुरोवात, पश्चाद्वात, मन्दवात और महावात चलते हैं, उस समय पश्चिम में भी ईषत् पुरोवात, पश्चाद्वात, मन्दवात और महावात चलते हैं; जिस समय पश्चिम में ईषत् पुरोवात, पश्चाद्वात, मन्दवात और महावात चलते हैं, उस समय पूर्व में भी ईषत्, पुरोवात, पश्चाद्वात, मन्दवात और महावात चलते हैं।

३५. इस प्रकार सब दिशाओं और सब विदिशाओं में वात चलते हैं।

३६. भन्ते। द्वीपों में उत्पन्न ईषत् पुरोवात चलते हैं? (५/३१ की तरह)

हां, चलते हैं।

३७. भन्ते। समुद्रों में उत्पन्न ईषत् पुरोवात चलते हैं? (५/३१ की तरह)

हां, चलते हैं।

३८. भन्ते। जिस द्वीपों में उत्पन्न ईषत् पुरोवात चलते हैं, उस समय समुद्रों में उत्पन्न ईषत् पुरोवात भी चलते हैं? जिस समय समुद्रों में उत्पन्न ईषत् पुरोवात चलते हैं, उस समय द्वीपों में उत्पन्न ईषत् पुरोवात भी चलते हैं? (५/३१ की तरह)

यह अर्थ संगत नहीं है।

३९. भन्ते। यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—जिस द्वीपों में उत्पन्न ईषत् पुरोवात चलते हैं, उस समय समुद्रों में उत्पन्न ईषत् पुरोवात नहीं चलते हैं? जिस समय समुद्रों में उत्पन्न ईषत् पुरोवात चलते हैं, उस समय द्वीपों में उत्पन्न ईषत् पुरोवात नहीं चलते हैं? (५/३१ की तरह)

गौतम! द्वीपोत्पन्न और समुद्रोत्पन्न वात परस्पर विपरीत रूप से चलते हैं, इसीलिए लवण समुद्र वेला का अतिक्रमण नहीं करता।

इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है जिस समय समुद्रों में उत्पन्न ईषत् पुरोवात चलते हैं यावत् उस समय द्वीपों में उत्पन्न ईषत् पुरोवात, पश्चाद्वात, मन्दवात और महावात नहीं चलते।

४०. भन्ते! क्या ईषत् पुरोवात, पश्चाद्वात, मन्दवात और महावात चलते हैं?

हां, वे चलते हैं।

४१. भन्ते! ईषत् पुरोवात यावत् कब चलते हैं? (५/४० की तरह)

गौतम! जिस समय वायुकाय यथेयं (अपनी स्वाभाविक गति से) चलता है, उस समय ईषत् पुरोवात यावत् महावात चलते हैं।

४२. भन्ते! ईषत् पुरोवात आदि चलते हैं? (५/४० की तरह)

हां, चलते हैं।

४३. भन्ते! ईषत् पुरोवात आदि कब चलते हैं। (५/४० की तरह)

गौतम! जिस समय वायुकाय उत्तरक्रिया(वैक्रिय शरीर की गति) से चलता है, उस समय ईषत् पुरोवात यावत् महावात चलते हैं। (५/४० की तरह)

४४. भन्ते! ईषत् पुरोवात यावत् महावात चलते हैं? (५/४० की तरह)

हां, चलते हैं।

४५. भन्ते! ईषत् पुरोवात, पश्चाद्वात आदि कब चलते हैं? (५/४० की तरह)

गौतम! जिस समय वायुकुमार और वायुकुमारियां अपने लिए, औरों के लिए या दोनों के लिए वायुकाय की उदीरणा करती हैं, उस समय ईषत् पुरोवात यावत् महावात चलते हैं (५/४० की तरह)

४६. भन्ते! क्या वायुकायिक-जीव वायुकाय का ही आन, अपान तथा उच्छ्वास, निःश्वास करते हैं?

हां, गौतम! वायुकायिक-जीव वायुकाय का ही आन, अपान तथा उच्छ्वास, निःश्वास करते हैं।

४७. भन्ते! क्या वायुकायिक-जीव वायुकाय में ही अनेक लाख बार मर-मर कर वहीं पुनः-पुनः उत्पन्न होता है?

हां, गौतम! वायुकायिक-जीव वायुकाय में ही अनेक लाख बार मर-मर कर वहीं पुनः-पुनः उत्पन्न होता है।

४८. भन्ते! क्या वायुकायिक-जीव स्पृष्ट होकर मरता है अथवा अस्पृष्ट होकर मरता है?

गौतम! वह स्पृष्ट होकर मरता है, अस्पृष्ट रहकर नहीं मरता।

४९. भन्ते! वायुकायिक-जीव सशरीर निष्क्रमण करता है अथवा अशरीर निष्क्रमण करता है?

गौतम! यह स्यात् सशरीर निष्क्रमण करता है, स्यात् अशरीर निष्क्रमण करता है।

५०. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—वायुकायिक-जीव स्यात् सशरीर निष्क्रमण करता है, स्यात् अशरीर निष्क्रमण करता है।

गौतम! वायुकायिक-जीव के चार शरीर प्रज्ञप्त हैं, जैसे—औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मण। वह औदारिक और वैक्रिय शरीर को छोड़कर तैजस और कार्मण शरीर के साथ निष्क्रमण करता है। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—वह स्यात् सशरीर निष्क्रमण करता है, स्यात् अशरीर निष्क्रमण करता है।

ओदन आदि 'किसके शरीर' का पद

५१. भन्ते! ओदन, कुल्माष और सुरा—इन्हें किन जीवों का शरीर कहा जा सकता है?

गौतम! ओदन, कुल्माष और सुरा में जो सघन द्रव्य हैं, वे पूर्व-पर्याय-प्रज्ञापन की अपेक्षा से वनस्पति-जीवों के शरीर हैं। उसके पश्चात् वे शस्त्रातीत और शस्त्र-परिणत तथा अग्नि से श्यामल, अग्नि से शोषित और अग्नि-रूप में परिणत होने पर उन्हें अग्नि-जीवों का शरीर

कहा जा सकता है। सुरा में जो द्रव द्रव्य हैं, वे पूर्व-पर्याय-प्रज्ञापन की अपेक्षा से जल-जीवों के शरीर हैं। उसके पश्चात् शस्त्रातीत यावत् अग्नि रूप में परिणत होने पर उन्हें अग्नि-जीवों का शरीर कहा जा सकता है।

५२. भन्ते! लोहा, ताम्बा, रांगा, सीसा, पाषाण और कसौटी—इन्हें किन जीवों का शरीर कहा जा सकता है?

गौतम! लोहा, ताम्बा, रांगा, सीसा, पाषाण और कसौटी—ये पूर्व-पर्याय-प्रज्ञापन की अपेक्षा से पृथ्वी-जीवों के शरीर हैं। उसके पश्चात् शस्त्रातीत यावत् अग्नि-रूप में परिणत होने पर उन्हें अग्नि-जीवों का शरीर कहा जा सकता है।

५३. भन्ते! अस्थि, दग्ध अस्थि, चर्म, दग्ध चर्म, रोम, दग्ध रोम, सींग, दग्ध सींग, खुर, दग्ध खुर, नख और दग्ध नख—इन्हें किन जीवों का शरीर कहा जा सकता है?

गौतम! अस्थि, दग्ध अस्थि, चर्म, दग्ध चर्म, रोम, दग्ध रोम, सींग, दग्ध सींग, खुर, दग्ध खुर, नख और दग्ध नख—ये पूर्व-पर्याय-प्रज्ञापन की अपेक्षा त्रस-प्राण-जीवों के शरीर हैं। उसके पश्चात् शस्त्रातीत यावत् अग्नि-रूप में परिणत होने पर इन्हें अग्नि-जीवों का शरीर कहा जा सकता है।

५४. भन्ते! अंगार, राख, बुसा और गोबर—इन्हें किन जीवों का शरीर कहा जा सकता है?

गौतम! अंगार, राख, बुसा और गोबर—ये पूर्व-पर्याय-प्रज्ञापन की अपेक्षा से एकेन्द्रिय-जीवों द्वारा भी शरीर-प्रयोग में परिणमित है, यावत् पंचेन्द्रिय-जीवों द्वारा भी शरीर-प्रयोग में परिणमित है। उसके पश्चात् वे शस्त्रातीत यावत् अग्नि-रूप में परिणत होने पर उन्हें अग्नि-जीवों का शरीर कहा जा सकता है।

लवण समुद्र-पद

५५. भन्ते! लवण समुद्र की चक्राकार चौड़ाई कितनी प्रज्ञप्त है?

उसकी चक्राकार चौड़ाई दो लाख योजन की है यावत् जीवाजीवाभिगम (३/७०६-७९५) के लोक-स्थिति लोकानुभाव तक वक्तव्य है।

५६. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है। इस प्रकार कह कर भगवान् गौतम यावत् विहरण कर रहे हैं।

तीसरा उद्देशक

आयुष्य-प्रकरण-प्रतिसंवेदन-पद

५७. भन्ते! अन्ययूथिक ऐसा आख्यान, भाषण, प्रज्ञापन और प्ररूपण करते हैं—जैसे कोई जाल-ग्रन्थिका है। उस जाल में क्रमपूर्वक गांठे दी हुई हैं। एक के बाद एक किसी अंतर के बिना गांठे दी हुई हैं, परम्पर ग्रन्थियों के साथ गूंथी हुई हैं। सब ग्रन्थियां परस्पर एक-दूसरी से गूंथी हुई हैं। वैसा जाल परस्पर विस्तीर्ण, परस्पर भारी, परस्पर विस्तीर्ण और परस्पर भारी होने के कारण परस्पर समुदय-रचना के रूप में अवस्थित है। इसी प्रकार अनेक जीवों के अनेक हजार जन्मों के अनेक हजार आयुष्य क्रम से गूंथे हुए यावत् समुदय-रचना के रूप में अवस्थित हैं।

-एक जीव एक समय में दो आयुष्यों का प्रतिसंवेदन करता है, जैसे—इस भव के आयुष्य का और पर-भव के आयुष्य का।

जिस समय जीव इस भव के आयुष्य का प्रतिसंवेदन करता है, उसी समय वह पर-भव के आयुष्य का प्रतिसंवेदन करता है।

जिस समय वह पर-भव के आयुष्य का प्रतिसंवेदन करता है, उसी समय वह इस भव के आयुष्य का प्रतिसंवेदन करता है।

इस भव के आयुष्य का प्रतिसंवेदन करने से पर-भव के आयुष्य का प्रति-संवेदन करता है।

पर-भव के आयुष्य का प्रतिसंवेदन करने से वह इस भव के आयुष्य का प्रति-संवेदन करता है।

इस प्रकार एक जीव एक समय में दो आयुष्यों का प्रतिसंवेदन करता है, जैसे—इस भव के आयुष्य का और पर-भव के आयुष्य का।

५८. भन्ते! यह किस प्रकार कैसे है?

गौतम! अन्ययूथिक जो कहते हैं यावत् एक जीव एक समय में दो आयुष्यों का प्रतिसंवेदन करता है, जैसे—इस भव के आयुष्य का और पर-भव के आयुष्य का। जो ऐसा कहते हैं, वह मिथ्या है। गौतम! मैं इस प्रकार आख्यान, भाषण, प्रज्ञापन और प्ररूपण करता हूँ—जैसे कोई जाल-ग्रन्थिका है। उस जाल में क्रमपूर्वक गांठे दी हुई हैं, एक के बाद एक किसी अन्तर के बिना परम्पर ग्रन्थियों के साथ गूँथी हुई हैं। सब ग्रन्थियाँ परस्पर एक-दूसरी से गूँथी हुई हैं। वैसा जाल परस्पर विस्तीर्ण, परस्पर भारी, परस्पर विस्तीर्ण और भारी होने के कारण परस्पर समुदय-रचना के रूप में अवस्थित है। इसी प्रकार एक-एक जीव के अनेक हजार जन्मों के अनेक हजार आयुष्य क्रम से गूँथे हुए यावत् समुदय-रचना के रूप में अवस्थित हैं।

एक जीव एक समय में एक आयुष्य का प्रतिसंवेदन करता है, जैसे—इस भव के आयुष्य का अथवा पर-भव के आयुष्य का।

जिस समय वह इस भव के आयुष्य का प्रतिसंवेदन करता है, उस समय पर-भव के आयुष्य का प्रतिसंवेदन नहीं करता।

जिस समय वह पर-भव के आयुष्य का प्रतिसंवेदन करता है, उस समय इस भव के आयुष्य का प्रतिसंवेदन नहीं करता।

इस भव के आयुष्य का प्रतिसंवेदन करने से वह पर-भव के आयुष्य का प्रति-संवेदन नहीं करता।

पर-भव के आयुष्य का प्रतिसंवेदन करने से वह इस भव के आयुष्य का प्रति-संवेदन नहीं करता।

इस प्रकार एक जीव एक समय में एक आयुष्य का प्रतिसंवेदन करता है—इस भव के आयुष्य का अथवा पर-भव के आयुष्य का।

सायुष्यसंक्रमण-पद

५९. भन्ते! जो जीव नैरयिकों में उपपन्न होने वाला है, भन्ते! वह वहां आयुष्य-सहित संक्रमण करता है? आयुष्य-रहित संक्रमण करता है?

गौतम! वह आयुष्य-सहित संक्रमण करता है, आयुष्य-रहित संक्रमण नहीं करता।

६०. भन्ते! उसने आयुष्य किस जन्म में अर्जित किया और किस जन्म में समाचीर्ण किया?

गौतम! पूर्व जन्म में अर्जित किया और पूर्व जन्म में समाचीर्ण किया।

६१. इस प्रकार यावत् वैमानिक-देवों के दण्डक तक ज्ञातव्य है।

६२. भन्ते! जो जीव जिस योनि में उत्पन्न होने वाला है, वह उसी का आयुष्य अर्जित करता है, जैसे-नैरयिक का आयुष्य? तिर्यग्योनिक का आयुष्य? मनुष्य का आयुष्य अथवा देव का आयुष्य?

हां, गौतम! जो जीव जिस योनि से उत्पन्न होने वाला है, वह उसी का आयुष्य अर्जित करता है, जैसे-नैरयिक का आयुष्य, तिर्यग्योनिक का आयुष्य, मनुष्य का आयुष्य अथवा देव का आयुष्य।

नैरयिक का आयुष्य अर्जित करने वाला जीव सात प्रकार का आयुष्य अर्जित करता है, जैसे-रत्नप्रभा-पृथ्वी-नैरयिक का आयुष्य, शर्कराप्रभा-पृथ्वी-नैरयिक का आयुष्य, बालुकाप्रभा-पृथ्वी-नैरयिक का आयुष्य, पंकप्रभा-पृथ्वी-नैरयिक का आयुष्य, धूमप्रभा-पृथ्वी-नैरयिक का आयुष्य, तमःप्रभा-पृथ्वी-नैरयिक का आयुष्य अथवा अधःसप्तमी-पृथ्वी-नैरयिक का आयुष्य।

तिर्यग्योनिक आयुष्य अर्जित करने वाला जीव पांच प्रकार का आयुष्य अर्जित करता है, जैसे-एकेन्द्रिय-तिर्यग्योनिक-आयुष्य द्वीन्द्रिय-तिर्यग्योनिक-आयुष्य, त्रीन्द्रिय-तिर्यग्योनिक-आयुष्य, चतुरिन्द्रिय-तिर्यग्योनिक-आयुष्य अथवा पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिक-आयुष्य।

मनुष्य का आयुष्य अर्जित करने वाला जीव दो प्रकार का आयुष्य अर्जित करता है, जैसे-संमूर्च्छिम-मनुष्य का आयुष्य अथवा गर्भावक्रान्तिक-मनुष्य का आयुष्य।

देव का आयुष्य अर्जित करने वाला जीव चार प्रकार का आयुष्य अर्जित करता है, जैसे-भवनवासी-देव का आयुष्य, वानमन्तर-देव का आयुष्य, ज्योतिष्क-देव का आयुष्य अथवा वैमानिक-देव का आयुष्य।

६३. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है।

चौथा उद्देशक

छद्मस्थ और केवली द्वारा शब्द श्रवण का पद

६४. भन्ते! क्या छद्मस्थ मनुष्य आकुट्यमान (वाद्ययंत्रों को पीटे जाने पर उत्पन्न) शब्दों को सुनता है, जैसे-शंख-शब्द, सींग-शब्द, छोटे शंख का शब्द, काहला का शब्द, बड़ी काहला का शब्द, वीणा-शब्द, पणव-शब्द, पटह-शब्द, भंभा-शब्द, होरंभ (बड़े ढोल) का शब्द,

भेरी-शब्द, झल्लरी-शब्द, दुन्दुभि-शब्द, तत (वीणा आदि वाद्यों के शब्द), वितत (पटह आदि के शब्द), घन (कांस्य ताल आदि के शब्द) और शुषिर (बांसुरी आदि के शब्द)? हां गौतम! छद्मस्थ मनुष्य आकुट्यमान शब्दों को सुनता है, जैसे-शंख-शब्द, यावत् शुषिर-शब्द।

भन्ते! क्या उन स्पृष्ट शब्द को सुनता है अथवा अस्पृष्ट शब्द को सुनता है?

गौतम! वह स्पृष्ट शब्दों को सुनता है, अस्पृष्ट शब्दों को नहीं सुनता।

भन्ते! वह जिन स्पृष्ट शब्दों को सुनता है, क्या उन अवगाढ शब्दों को सुनता है अथवा अनवगाढ शब्दों को सुनता है?

गौतम! वह अवगाढ शब्दों को सुनता है, अनवगाढ शब्दों को नहीं सुनता है?

भन्ते! वह जिन अवगाढ शब्दों को सुनता है, क्या उन अनन्तरावगाढ शब्दों को सुनता है अथवा परम्परावगाढ शब्दों को सुनता है?

गौतम! वह अनन्तरावगाढ शब्दों को सुनता है, परम्परावगाढ शब्दों को नहीं सुनता।

भन्ते! वह जिन अनन्तरावगाढ शब्दों को सुनता है, क्या उन अणु (सूक्ष्म) शब्दों को सुनता है अथवा बादर (स्थूल) शब्दों को सुनता है?

गौतम! वह अणु शब्दों को भी सुनता है, बादर शब्दों को भी सुनता है।

भन्ते! वह जिन अणु शब्दों को सुनता है और बादर शब्दों को भी सुनता है, क्या उन ऊर्ध्व-क्षेत्र में विद्यमान शब्दों को सुनता है, अधः-क्षेत्र में विद्यमान शब्दों को सुनता है अथवा तिरछे-क्षेत्र में विद्यमान शब्दों को सुनता है?

गौतम! ऊर्ध्व-क्षेत्र में विद्यमान शब्दों को भी सुनता है, अधः-क्षेत्र में विद्यमान शब्दों को भी सुनता है और तिरछे-क्षेत्र में विद्यमान शब्दों को भी सुनता है।

भन्ते! वह जिन ऊर्ध्व-क्षेत्र में विद्यमान शब्दों को सुनता है, अधः- और तिरछे-क्षेत्र में विद्यमान शब्दों को भी सुनता है, क्या उनके आदि-भाग को सुनता है, मध्य-भाग को सुनता है अथवा पर्यवसान-भाग को सुनता है?

गौतम! वह उनके आदि-भाग को भी सुनता है, मध्य-भाग को भी सुनता है और पर्यवसान-भाग को भी सुनता है।

भन्ते! वह जिन शब्दों के आदि-भाग को भी सुनता है, मध्य-भाग को भी सुनता है और पर्यवसान-भाग को भी सुनता है, क्या उन अपनी इन्द्रिय के विषयभूत शब्दों को सुनता है अथवा अपनी इन्द्रिय के अविषयभूत शब्दों को सुनता है?

गौतम! वह अपनी इन्द्रिय के विषयभूत शब्दों को सुनता है, अपनी इन्द्रिय के अविषयभूत शब्दों को नहीं सुनता है।

भन्ते! वह अपनी इन्द्रिय के विषयभूत जिन शब्दों को सुनता है, क्या उन्हें क्रम से सुनता है? अथवा अक्रम से सुनता है।

गौतम! वह क्रम से सुनता है, अक्रम से नहीं सुनता।

भन्ते! वह जिन शब्दों को क्रम से सुनता है, क्या उन्हें तीन दिशाओं से सुनता है यावत् छह दिशाओं से सुनता है?

गौतम! वह नियमतः छह दिशाओं से सुनता है।

६५. भन्ते! छद्मस्थ मनुष्य आरगत (इन्द्रिय-विषय की सीमा में आने वाले) शब्दों को सुनता है या पारगत (इन्द्रिय-विषय की सीमा से परवर्ती) शब्दों को सुनता है?

गौतम! वह आरगत शब्दों को सुनता है, पारगत शब्दों को नहीं सुनता।

६६. भन्ते! जिस प्रकार छद्मस्थ मनुष्य आरगत शब्दों को सुनता है, पारगत शब्दों को नहीं सुनता, क्या उसी प्रकार केवली आरगत शब्दों को सुनता है अथवा पारगत शब्दों को सुनता है?

गौतम! केवली आरगत अथवा पारगत, अतिदूर, अतिनिकट तथा मध्यवर्ती (न आसन्न न दूर) स्थित शब्द को जानता-देखता है।

६७. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—केवली आरगत अथवा पारगत, अतिदूर, अतिनिकट तथा मध्यवर्ती (न आसन्न न दूर) स्थित शब्द को जानता-देखता है?

गौतम! केवली पूर्व में परिमित को भी जानता है, अपरिमित को भी जानता है। इसी प्रकार दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊर्ध्व और अधः दिशाओं में परिमित को भी जानता है और अपरिमित को भी जानता है। केवली सबको जानता है, केवली सबको देखता है। केवली सब ओर से जानता है, केवली सब ओर से देखता है।

केवली सब काल में जानता है, केवली सब काल में देखता है।

केवली सब भावों को जानता है, केवली सब भावों को देखता है।

केवली का ज्ञान अनन्त है, केवली का दर्शन अनन्त है।

केवली का ज्ञान निरावरण है, केवली का दर्शन निरावरण है। गौतम! इस अपेक्षा से कहा जा रहा है—केवली आरगत अथवा पारगत, अतिदूर, अति-निकट तथा मध्यवर्ती (न आसन्न न दूर) स्थित शब्द को जानता-देखता है।

छद्मस्थ और केवली का हास्य-पद

६८. भन्ते! छद्मस्थ मनुष्य हंसता है? उत्सुक होता है?

हां, वह हंसता है, उत्सुक होता है।

६९. भन्ते! जिस प्रकार छद्मस्थ मनुष्य हंसता है और उत्सुक होता है, उस प्रकार केवली भी हंसता है? उत्सुक होता है?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है।

७०. यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—जिस प्रकार छद्मस्थ मनुष्य हंसता है, उस प्रकार उत्सुक केवली न हंसता है, न उत्सुक होता है?

गौतम! जीव चारित्र-मोहनीय-कर्म के उदय से हंसते हैं और उत्सुक होते हैं। वह केवली के नहीं होता। गौतम! इस अपेक्षा से कहा जा रहा है—जिस प्रकार छद्मस्थ मनुष्य हंसता और उत्सुक होता है, उस प्रकार केवली न हंसता है और न उत्सुक होता है।

७१. भन्ते। जीव हंसता हुआ और उत्सुक होता हुआ कितनी कर्म-प्रकृतियों का बन्ध करता है?

गौतम! वह सात प्रकार की कर्म-प्रकृतियों का बन्धन करता है अथवा आठ प्रकार की कर्म-प्रकृतियों का बन्धन करता है। इस प्रकार यावत् वैमानिक-देवों तक यही वक्तव्यता है। पृथक्त्व सूत्रों (बहुवचनान्त सूत्रों) में जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर सर्वत्र तीन विकल्प होते हैं—सब जीव सात प्रकार की कर्म-प्रकृतियों का बन्धन करते हैं।

शेष सब जीव सात प्रकार की कर्म-प्रकृतियों का बन्धन करते हैं तथा एक जीव आठ प्रकार की कर्म-प्रकृतियों का बन्धन करता है।

कुछ जीव सात प्रकार की कर्म-प्रकृतियों का बन्धन करते हैं और कुछ जीव आठ प्रकार की कर्म-प्रकृतियों का बन्धन करते हैं। बहुवचनान्त जीव और एकेन्द्रिय-जीवों का केवल एक ही भंग होता है। वे सब सात प्रकार की और आठ प्रकार की कर्म-प्रकृतियों का बन्धन करते हैं।

छद्मस्थ और केवली की निद्रा का पद

७२. भन्ते! क्या छद्मस्थ मनुष्य नींद लेता है? प्रचला लेता है?

हां, वह नींद लेता है, प्रचला लेता है।

७३. भन्ते! जिस प्रकार छद्मस्थ मनुष्य नींद लेता है, प्रचला लेता है, उस प्रकार क्या केवली भी नींद और प्रचला लेता है?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है।

७४. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—जिस प्रकार छद्मस्थ मनुष्य नींद लेता है, प्रचला लेता है, उस प्रकार केवली नींद नहीं लेता और प्रचला नहीं लेता?

गौतम! जीव दर्शनावरणीय-कर्म के उदय से नींद लेते हैं, प्रचला लेते हैं। वह (दर्शनावरणीय-कर्म) केवली के नहीं होता। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—जिस प्रकार छद्मस्थ मनुष्य नींद लेता है, प्रचला लेता है, उस प्रकार केवली नींद नहीं लेता, प्रचला नहीं लेता।

७५. भन्ते! जीव नींद लेता हुआ, प्रचला लेता हुआ कितनी कर्म-प्रकृतियों का बन्धन करता है?

गौतम! वह सात प्रकार की कर्म-प्रकृतियों का बन्धन करता है अथवा आठ प्रकार की कर्म-प्रकृतियों का बन्धन करता है। इस प्रकार यावत् वैमानिक-देवों तक ज्ञातव्य है। पृथक्त्व सूत्रों (बहुवचनान्त सूत्रों) में जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर सर्वत्र तीन विकल्प (सू. ७१ की तरह) होते हैं।

गर्भ-संहरण-पद

७६. भन्ते! शक्र का दूत हरि-नैगमैषी देव स्त्री के शरीर में से गर्भ का संहरण करता हुआ क्या गर्भ से गर्भ में संहरण करता है? गर्भ से योनि में संहरण करता है? योनि से गर्भ में संहरण

करता है? योनि से योनि में संहरण करता है?

गौतम! गर्भ से गर्भ में संहरण नहीं करता, गर्भ से योनि में संहरण नहीं करता, योनि से योनि में संहरण नहीं करता, किन्तु वह हाथ से स्पर्श कर-कर सुखपूर्वक योनि से गर्भ में संहरण करता है।

७७. भन्ते! शक्र का दूत हरि-नैगमेषी देव स्त्री के गर्भ का नख के अग्रभाग अथवा रोमकूप से संहरण अथवा निर्हरण करने में समर्थ है?

हां, समर्थ है। ऐसा करते समय वह गर्भ को किञ्चिद् भी आबाधा अथवा विबाधा उत्पन्न नहीं करता और न उसका छविच्छेद करता। वह इतनी सूक्ष्मता (निपूणता) के साथ उसका संहरण अथवा निर्हरण करता है।

अतिमुक्तक-पद

७८. उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर का अन्तेवासी अतिमुक्त नाम का कुमार श्रमण प्रकृति से भद्र, प्रकृति से उपशान्त था। उसकी प्रकृति में क्रोध, मान, माया और लोभ प्रतनु (पतले) थे। वह मृदुभाव से सम्पन्न, आत्मलीन और विनीत था।

७९. किसी समय बहुत तेज वर्षा हो रही थी। उस समय कुमार श्रमण अतिमुक्त कांख में पात्र और रजोहरण लेकर बहिर्भूमि जाने के लिए प्रस्थान करता है।

८०. वह कुमार श्रमण अतिमुक्त बहते हुए जल-प्रवाह को देखता है, देख कर मिट्टी से पाल बांधता है। बांध कर फिर 'यह मेरी नौका, यह मेरी नौका' इस विकल्प के साथ नाविक की भांति अपने नौकामय पात्र को जल में प्रवाहित करता हुआ क्रीड़ा कर रहा है। उसे क्रीड़ा करते हुए स्थविरों ने देखा। वे जहां श्रमण भगवान् महावीर हैं, वहां आते हैं, आ कर इस प्रकार बोले—

भन्ते! आपका अन्तेवासी अतिमुक्त नाम का कुमार श्रमण जो है। भन्ते! वह कुमार श्रमण अतिमुक्त कितने जन्म लेकर सिद्ध, प्रशान्त, मुक्त और परिनिवृत्त होगा और सब दुःखों का अन्त करेगा?

८१. आर्यों! श्रमण भगवान् महावीर ने उन स्थविरों से इस प्रकार कहा— आर्यों! मेरा अन्तेवासी अतिमुक्त नामक कुमार श्रमण जो प्रकृति से भद्र यावत् विनीत है वह कुमार श्रमण अतिमुक्त इसी भव में सिद्ध होगा यावत् सब दुःखों का अन्त करेगा। आर्यों! इसलिए तुम कुमार श्रमण अतिमुक्त की अवहेलना, निन्दा, तिरस्कार, गर्हा और अवमानना मत करो। देवानुप्रियो! तुम कुमार श्रमण अतिमुक्त को अग्लान भाव से स्वीकृत करो, अग्लान भाव से आलम्बन दो और अग्लान भाव से विनयपूर्वक भोजन-पानी से उसकी वैयापृत्य करो। कुमार श्रमण अतिमुक्त संसार का अन्त करने वाला है और अन्तिमशरीरी है।

८२. श्रमण भगवान् महावीर द्वारा ऐसा कहे जाने पर वे स्थविर भगवान् श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करते हैं, कुमार श्रमण अतिमुक्त को अग्लान भाव से स्वीकार करते हैं, अग्लान भाव से आलम्बन देते हैं और अग्लान भाव से विनयपूर्वक भोजन-पानी से उसकी वैयापृत्य करते हैं।

८३. उस काल और उस समय में महाशुक्र-कल्प के महासामान विमान से महर्द्धिक यावत् महान् सामर्थ्य वाले दो देव श्रमण भगवान् महावीर के पास प्रगट हुए वे देव श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करते हैं और मानसिक स्तर पर ही यह इस प्रकार का प्रश्न पूछते हैं—

८४. भन्ते! आपके कितने सौ अन्तेवासी सिद्ध होंगे यावत् सब दुःखों का अन्त करेंगे? उन देवों द्वारा मानसिक स्तर पर प्रश्न उपस्थित करने में श्रमण भगवान् महावीर उन देवों को मानसिक स्तर पर ही यह इस प्रकार का उत्तर देते हैं—देवानुप्रियो! मेरे सात सौ अन्तेवासी सिद्ध होंगे यावत् सब दुःखों का अन्त करेंगे।

वे देव श्रमण भगवान् महावीर के द्वारा मानसिक स्तर पर पूछे गए प्रश्नों का मानसिक स्तर पर ही इस प्रकार का उत्तर दिए जाने पर वे देव द्रष्ट-तुष्ट चित्त वाले, आनन्दित, नन्दित, प्रीतिपूर्ण मन वाले और परम-सौमनस्य-युक्त हो गए। हर्ष से उनका हृदय फूल गया। वे श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करते हैं। वन्दन-नमस्कार कर मानसिक स्तर पर ही शुश्रूषा और नमस्कार की मुद्रा में उनके सम्मुख सविनय बद्धाञ्जलि हो कर पर्युपासना कर रहे हैं।

८५. उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के ज्येष्ठ अन्तेवासी इन्द्रभूति नामक अनगर भगवान् महावीर के न अति दूर और न अति निकट, ऊर्ध्वजानु अधःसिर (उकडू आसन की मुद्रा में) और ध्यान-कोष्ठ में लीन होकर संयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए रह रहे हैं। ध्यानान्तरिका में वर्तमान उन भगवान् गौतम के यह इस प्रकार का आध्यात्मिक, स्मृत्यात्मक, अभिलाषात्मक, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—महर्द्धिक यावत् महान् सामर्थ्यवान् दो देव श्रमण भगवान् महावीर के पास प्रगट हुए हैं, मैं नहीं जानता कि वे देव किस कल्प, स्वर्ग अथवा विमान से किस प्रयोजन के लिए यहां आए हैं? इसलिए मैं श्रमण भगवान् महावीर के पास जाऊँ, उन्हें वन्दन-नमस्कार करूँ यावत् पर्युपासना करूँ और इन इस प्रकार के प्रश्नों को पूछूँगा, ऐसा सोच कर वे संप्रेक्षा करते हैं, संप्रेक्षा कर उठने की मुद्रा में उठते हैं। उठ कर जहां श्रमण भगवान् महावीर हैं, वहां आते हैं यावत् पर्युपासना करते हैं।

८६. गौतम! इस सम्बोधन से सम्बोधित कर श्रमण भगवान् महावीर गौतम से इस प्रकार बोले—गौतम! तुम ध्यानान्तरिका में वर्तमान थे तब तुम्हारे यह इस प्रकार का आध्यात्मिक यावत् मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ और तुम शीघ्र ही मेरे निकट आ गए, गौतम! क्या यह अर्थ संगत है?

हां, यह संगत है।

गौतम! जाओ, ये देव ही तुम्हें इन इस प्रकार के प्रश्नों का उत्तर देंगे।

८७. भगवान् गौतम श्रमण भगवान् महावीर से अनुज्ञा प्राप्त होने पर श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करते हैं, जहां वे देव हैं वहां जाने का संकल्प करते हैं।

८८. वे देव भगवान् गौतम को आत हुए देखते हैं। देख कर वे हर्षित सन्तुष्ट चित्तवाले,

आनन्दित, नन्दित, प्रीति-पूर्ण मन वाल, परम-सौमनस्य-युक्त और हर्ष से उल्लसित हृदय वाले होकर शीघ्रता से उठते हैं, उठ कर शीघ्रता से उनके सम्मुख आते हैं, जहां भगवान् गौतम है, वहां उनके सम्मुख आते हैं, यावत् नमस्कार कर इस प्रकार बोले—भन्ते! महाशुक्र-कल्प के महासामान विमान से हम दो देव जो महर्द्धिक यावत् महाप्रभावी हैं, श्रमण भगवान् महावीर के निकट आए हैं। हम श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार कर मानसिक स्तर पर ये इस प्रकार के प्रश्न पूछते हैं—भन्ते! आपके कितने सौ अन्तेवासी सिद्ध होंगे यावत् सब दुःखों का अन्त करेंगे? हमारे द्वारा मानसिक स्तर पर पूछे गए प्रश्न का श्रमण भगवान् महावीर हमें मानसिक स्तर पर यह इस प्रकार का उत्तर देते हैं—देवानुप्रियो! मेरे सात सौ अन्तेवासी सिद्ध होंगे यावत् सब दुःखों का अन्त करेंगे। हमारे द्वारा मानसिक स्तर पर पूछे गए प्रश्न का श्रमण भगवान् महावीर द्वारा मानसिक स्तर पर ही यह इस प्रकार का उत्तर दिए जाने पर हम श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन नमस्कार करते हैं यावत् पर्युपासना करते हैं, ऐसा कह कर वे भगवान् गौतम को वन्दन-नमस्कार करते हैं। वन्दन-नमस्कार कर वे जिस दिशा से आए उसी दिशा में चले गए।

देवों की नोसंयत-वक्तव्यता का पद

८९. भन्ते! इस सम्बोधन से सम्बोधित कर भगवान् गौतम श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन नमस्कार करते हैं यावत् इस प्रकार बोले—भन्ते! देव संयत है, क्या ऐसा कहा जा सकता है?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है। यह देवों के लिए अभ्याख्यान है—यथार्थ से परे है।

९०. भन्ते! देव असंयत है, क्या ऐसा कहा जा सकता है?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है। यह देवों के लिए निष्ठुर वचन है।

९१. भन्ते! देव संयतासंयत है, क्या ऐसा कहा जा सकता है?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है। देवों के लिए असदभूत वचन है—यथार्थ नहीं है।

९२. भन्ते! फिर उन देवों को क्या कहा जा सकता है?

गौतम! देव नोसंयत हैं, ऐसा कहा जा सकता है।

देवभाषा-पद

९३. भन्ते! देव किस भाषा में बोलते हैं? बोली जाती हुई कौन-सी भाषा विशिष्ट होती है?

गौतम! देव अर्धमागधी भाषा में बोलते हैं और वह अर्धमागधी भाषा बोली जाती हुई विशिष्ट होती है।

छद्मस्थ और केवली का ज्ञान-भेद-पद

९४. भन्ते! केवली अन्तकर और अन्तिमशरीरी को जानता-देखता है?

हां, जानता-देखता है।

९५. भन्ते! जिस प्रकार केवली अंतकर और अन्तिम-शरीरी को जानता-देखता है, क्या उसी प्रकार छद्मस्थ भी अंतकर और अन्तिमशरीरी को जानता-देखता है?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है। वह सुनकर अथवा किसी प्रमाण से जानता-देखता है।

१६. वह 'श्रुत्वा' (सुनकर) क्या है?

छद्मस्थ पुरुष, केवली के श्रावक, केवली की श्राविका, केवली के उपासक, केवली की उपसिका, स्वयंबुद्ध, स्वयंबुद्ध के श्रावक, स्वयंबुद्ध की श्राविका, स्वयंबुद्ध के उपासक अथवा स्वयंबुद्ध की उपसिका के पास जानता-देखता है। यह 'श्रुत्वा' है।

१७. वह प्रमाण क्या है?

प्रमाण चार प्रकार का प्रज्ञप्त है—प्रत्यक्ष, अनुमान, औपम्य और आगम। प्रमाण का विवरण अणुयोगद्वारा की भांति ज्ञातव्य है यावत् गणधर के प्रशिष्यों के लिए सूत्रागम और अर्थागम दोनों न आत्मागम हैं, न अनन्तरागम हैं, किन्तु परम्परागम हैं।

१८. भन्ते! केवली चरम कर्म और चरम निर्जरा को जानता-देखता है?

हां. जानता-देखता है।

१९. भन्ते! जिस प्रकार केवली चरम कर्म और चरम निर्जरा को जानता देखता है, क्या उसी प्रकार छद्मस्थ भी चरम कर्म और चरम निर्जरा को जानता-देखता है?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है। वह सुन कर अथवा किसी प्रमाण से जानता-देखता है। जिस प्रकार अन्तकर का आलापक है, उसी प्रकार चरम कर्म का भी आलापक अविकल रूप से ज्ञातव्य है।

केवली के प्रणीत-मन-वचन-पद

१००. भन्ते! क्या केवली प्रणीत मन और वचन को धारण करता है—उनका प्रयोग करता है? हां, धारण करता है।

१०१. भन्ते! केवली प्रणीत मन और वचन को धारण करता है, इसे वैमानिक-देव जानते-देखते हैं?

गौतम! कुछ देव जानते-देखते हैं, कुछ देव नहीं जानते-देखते।

१०२. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—कुछ देव जानते-देखते हैं, कुछ देव नहीं जानते, नहीं देखते?

गौतम! वैमानिक देव दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—मायि-मिथ्यादृष्टि-उपपन्नक और अमायि-सम्यग्दृष्टि-उपपन्नक। इनमें जो मायि-मिथ्यादृष्टि-उपपन्नक हैं, वे न जानते हैं, न देखते हैं। इनमें जो अमायि-सम्यग्दृष्टि-उपपन्नक हैं, वे जानते-देखते हैं।

यह किस अपेक्षा से?

गौतम! अमायि-सम्यग्दृष्टि दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—अनन्तरोपपन्नक और परम्परोपपन्नक। इनमें जो अनन्तरोपपन्नक हैं, वे न जानते हैं, न देखते हैं। इनमें जो परम्परोपपन्नक हैं, वे जानते देखते हैं।

यह किस अपेक्षा से?

गौतम! परम्परोपपन्नक दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—अपर्याप्तक और पर्याप्तक। इनमें जो

अपर्याप्तक हैं, वे न जानते हैं, न देखते हैं। इनमें जो पर्याप्तक हैं, वे जानते-देखते हैं।

यह किस अपेक्षा से?

गौतम! पर्याप्तक दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—अनुपयुक्त और उपयुक्त। इनमें जो अनुपयुक्त हैं, वे न जानते हैं, न देखते हैं। इनमें जो उपयुक्त हैं, वे जानते-देखते हैं। गौतम! इस अपेक्षा से कहा जा रहा है कुछ देव जानते-देखते हैं, कुछ देव नहीं जानते, नहीं देखते।

अनुत्तरोपपातिक देवों द्वारा केवली के साथ आलाप का पद

१०३. भन्ते! अनुत्तरोपपातिक-देव अपने विमानों में रहते हुए ही मनुष्य-लोक में स्थित केवली के साथ आलाप अथवा संलाप करने में समर्थ हैं?

हां, समर्थ हैं।

१०४. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—अनुत्तरोपपातिक-देव अपने विमानों में रहते हुए ही मनुष्य-लोक में स्थित केवली के साथ आलाप अथवा संलाप करने में समर्थ है?

गौतम! अनुत्तरोपपातिक-देव अपने विमानों में रहते हुए ही जो अर्थ, हेतु, प्रश्न, कारण अथवा व्याकरण पूछते हैं, मनुष्य-लोक में स्थित केवली उस अर्थ, हेतु, प्रश्न, कारण अथवा व्याकरण का उत्तर देते हैं। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—अनुत्तरोपपातिक-देव अपने विमानों से रहते हुए ही मनुष्य-लोक में स्थित केवली के साथ आलाप अथवा संलाप करने में समर्थ हैं।

१०५. भन्ते! मनुष्य-लोक में स्थित केवली जिस अर्थ, हेतु, प्रश्न, कारण अथवा व्याकरण का उत्तर देते हैं, उसे अपने विमानों में रहते हुए अनुत्तरोपपातिक-देव जानते-देखते हैं?

हां, जानते-देखते हैं।

१०६. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—मनुष्य-लोक में स्थित केवली जिस अर्थ, हेतु, प्रश्न, कारण अथवा व्याकरण का उत्तर देते हैं, उसे अपने विमानों में रहते हुए अनुत्तरोपपातिक-देव जानते-देखते हैं?

गौतम! उन देवों को अनन्त मनो-द्रव्य की वर्णाणं लब्ध, प्राप्त और अभिसमन्वागत हो जाती है। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—मनुष्य-लोक में स्थित केवली जिस अर्थ, हेतु, प्रश्न, कारण अथवा व्याकरण का उत्तर देते हैं, उसे अपने विमानों में रहते हुए अनुत्तरोपपातिक-देव जानते-देखते हैं।

१०७. भन्ते! अनुत्तरोपपातिक-देव क्या उदीर्ण (उत्कट) मोह वाले हैं? उपशान्त-मोह वाले हैं? क्षीण-मोह वाले हैं?

गौतम! वे उदीर्ण मोह वाले नहीं हैं, उपशान्त-मोह वाले हैं, क्षीण-मोह वाले नहीं हैं?

केवलियों के इन्द्रिय-ज्ञान का निषेध-पद

१०८. भन्ते! क्या केवली आदान (इन्द्रियों) के द्वारा जानता-देखता है?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है।

१०९. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—केवली आदान (इन्द्रियों) से न जानता है, न देखता है?

गौतम! केवली पूर्व दिशा में मित को भी जानता है, अमित को भी जानता है। इसी प्रकार दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊर्ध्व और अधो दिशा में वह मित को भी जानता है, अमित को भी जानता है।

केवली सब को जानता है, सब को देखता है।

केवली सब ओर से जानता है, सब ओर से देखता है।

केवली सब काल को जानता है, सब काल को देखता है।

केवली सब भावों को जानता है, सब भावों को देखता है।

केवली का ज्ञान अनन्त है, केवली का दर्शन अनन्त है।

केवली का ज्ञान निरावरण है, केवली का दर्शन निरावरण है। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—केवली आदान (इन्द्रियों) से नहीं जानता, नहीं देखता।

केवलियों की योग-चंचलता का पद

११०. भन्ते! केवली इस समय (निर्दिष्ट वर्तमान समय) में जिन आकाश-प्रदेशों में हाथ, पांव, बाहू अथवा सक्थि (साथल) को अवगाहित कर ठहरता है, वह भविष्य में भी उन्हीं आकाश-प्रदेशों में हाथ, पांव, बाहू या सक्थि को अवगाहित कर ठहरने में समर्थ हैं?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है।

१११. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—केवली इस समय जिन आकाश-प्रदेशों में हाथ, पांव, बाहू अथवा सक्थि को अवगाहित कर ठहरता है, वह भविष्य में भी उन्हीं आकाश-प्रदेशों में हाथ, पांव बाहू अथवा सक्थि को अवगाहित कर ठहरने में समर्थ नहीं है?

गौतम! केवली का वीर्य योग (कायिक प्रवृत्ति) तथा द्रव्य(कायवर्गणा-प्रयोग)-सहित होता है। इसलिए उसके उपकरण (हाथ पैर आदि अवयव) चल होते हैं। चल उपकरण के कारण केवली उस समय में जिन आकाश-प्रदेशों में हाथ, पांव, बाहू अथवा सक्थि को अवगाहित कर ठहरता है, वह भविष्य में भी उन्हीं आकाश-प्रदेशों में हाथ, पांव, बाहू अथवा सक्थि को अवगाहित कर ठहरने में समर्थ नहीं है। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—केवली इस समय में जिन आकाश-प्रदेशों में हाथ, पांव, बाहू अथवा सक्थि को अवगाहित कर ठहरता है, वह भविष्य में उन्हीं आकाश-प्रदेशों में हाथ, पांव, बाहू अथवा सक्थि को अवगाहित कर ठहरने में समर्थ नहीं है।

चतुर्दशपूर्वियों का सामर्थ्य-पद

११२. भन्ते! चतुर्दशपूर्वी एक घड़े से हजार घड़े, एक वस्त्र से हजार वस्त्र, एक चटाई से हजार चटाइयां, एक रथ से हजार रथ, एक छत्र से हजार छत्र और एक दण्ड से हजार दण्ड उत्पन्न कर दिखाने में समर्थ हैं?

हां, समर्थ है।

११३. यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—चतुर्दशपूर्वी यावत् एक दण्ड से हजार दण्ड उत्पन्न कर दिखाने में समर्थ है?

गौतम! चतुर्दशपूर्वी को उत्कारिका-भेद से भिद्यमान अनन्त द्रव्य लब्ध, प्राप्त और अभिसमन्वागत होते हैं। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—चतुर्दशपूर्वी एक घड़े से हजार घड़े, एक वस्त्र से हजार वस्त्र, एक चटाई से हजार चटाइयाँ, एक रथ से हजार रथ, एक छत्र से हजार छत्र और एक दण्ड से हजार दण्ड उत्पन्न कर दिखाने में समर्थ है।

११४. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है।

पांचवां उद्देशक

मोक्ष-पद

११५. भन्ते! क्या छद्मस्थ मनुष्य इस अनन्त, शाश्वत अतीत-काल में केवल संयम, केवल संवर, केवल ब्रह्मचर्यवास और केवल प्रवचनमाता की आराधना से सिद्ध हुआ? बुद्ध हुआ? मुक्त हुआ? परिनिवृत्त हुआ? और उसने सब दुःखों का अन्त किया?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है। प्रथम शतक के चतुर्थ उद्देशक में जिस प्रकार आलापक हैं उसी प्रकार यहां ज्ञातव्य हैं यावत् केवली समर्थ है, ऐसा कहा जा सकता है।

एवंभूत-अनेवंभूत-वेदना-पद

११६. भन्ते! अन्ययूथिक इस प्रकार आख्यान करते हैं यावत् प्ररूपणा करते हैं—सब प्राण, सब भूत, सब जीव और सब सत्त्व एवंभूत (जिसमें जिस प्रकार कर्मों का बन्धन होता है उसी प्रकार कर्मों का वेदन करते हैं) वेदना का अनुभव करते हैं।

११७. भन्ते! यह वक्तव्य कैसा है?

गौतम! वे अन्ययूथिक इस प्रकार आख्यान करते हैं यावत् सब सत्त्व भूत वेदना का अनुभव करते हैं। जो वे इस प्रकार कहते हैं, वे मिथ्या कहते हैं। गौतम! मैं इस प्रकार आख्यान करता हूँ यावत् प्ररूपणा करता हूँ—कुछ एक प्राण, भूत, जीव और सत्त्व एवंभूत वेदना का अनुभव करते हैं, कुछ एक प्राण, भूत, जीव और सत्त्व अनेवंभूत (कर्मों के बन्धन में परिवर्तन लाकर) वेदना का अनुभव करते हैं।

११८. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—कुछ एक प्राण, भूत, जीव और सत्त्व एवंभूत वेदना का अनुभव करते हैं, कुछ एक प्राण, भूत, जीव और सत्त्व अनेवंभूत वेदना का अनुभव करते हैं? गौतम! जो प्राण, भूत जीव और और सत्त्व जैसे कर्म किया वैसे ही वेदना का अनुभव करते हैं, वे प्राण, भूत, जीव और सत्त्व एवंभूत वेदना का अनुभव करते हैं।

जो प्राण, भूत, जीव और सत्त्व जैसे कर्म किया वैसे ही वेदना का वेदन नहीं करते वे अनेवंभूत वेदना का अनुभव करते हैं। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—कुछ एक प्राण, भूत, जीव और सत्त्व एवंभूत वेदना का अनुभव करते हैं, कुछ एक प्राण, भूत, जीव और सत्त्व अनेवंभूत वेदना का अनुभव करते हैं।

११९. भन्ते! नैरयिक एवंभूत वेदना का अनुभव करते हैं अथवा अनेवंभूत वेदना का अनुभव करते हैं?

गौतम! नैरयिक एवंभूत वेदना का भी अनुभव करते हैं और अनेवंभूत वेदना का भी अनुभव करते हैं।

१२०. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—नैरयिक एवंभूत वेदना का भी अनुभव करते हैं और अनेवंभूत वेदना का भी अनुभव करते हैं?

गौतम! जो नैरयिक जैसे कर्म किया, वैसे ही वेदना का वेदन करते हैं, वे एवंभूत वेदना का अनुभव करते हैं।

जो नैरयिक जैसे कर्म किया वैसे ही वेदना का वेदन नहीं करते, वे अनेवंभूत वेदना का अनुभव करते हैं। इस अपेक्षा से कहा जा रहा है।

१२१. इसी प्रकार वैमानिक तक सभी दंडकों में दोनों प्रकार की वेदना वक्तव्य है।

कुलकर आदि-पद

१२२. संसार-मण्डल ज्ञातव्य है। (द्र. समवाओ, प्रकीर्णक समवाय, सूत्र २१८-२४७)

१२३. भन्ते! वह ऐसा ही है, भन्ते! वह ऐसा ही है, इस प्रकार कह भगवान् गौतम यावत् विहार करते हैं।

छठा उद्देशक

अल्पायु-दीर्घायु-पद

१२४. भन्ते! जीव अल्प-आयुष्य वाले कर्म का बन्ध कैसे करते हैं?

गौतम! प्राणों का अतिपात कर, झूठ बोल कर, तथारूप श्रमण अथवा माहन को अप्रासुक और अनेषणीय अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य से प्रतिलाभित कर—इस प्रकार जीव अल्प आयुष्य वाले कर्म का बन्ध करते हैं।

१२५. भन्ते! दीर्घ-आयुष्य वाले कर्म का बन्ध कैसे करते हैं?

गौतम! प्राणों को अतिपात न कर, झूठ न बोल कर, तथारूप श्रमण अथवा माहन को प्रासुक और एषणीय अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य से प्रतिलाभित कर—इस प्रकार जीव दीर्घ-आयुष्य वाले कर्म का बन्ध करते हैं।

अशुभ-शुभ-दीर्घायु-पद

१२६. भन्ते! जीव अशुभ-दीर्घ-आयुष्य वाले कर्म का बन्ध कैसे करते हैं?

गौतम! प्राणों का अतिपात कर, झूठ बोल कर, तथारूप श्रमण अथवा माहन की अवहेलना, निन्दा, तिरस्कार, गर्हा और अवमानना कर तथा किसी प्रकार के अमनोज्ञ एवं अप्रीतिकर, अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य से प्रतिलाभित कर जीव—इस प्रकार अशुभ-दीर्घ-आयुष्य वाले कर्म का बन्ध करते हैं।

१२७. भन्ते! जीव शुभ-दीर्घ-आयुष्य वाले कर्म का बन्धन कैसे करते हैं?

गौतम! प्राणों का अतिपात न कर, झूठ न बोल कर, तथारूप श्रमण अथवा माहन को वन्दन-नमस्कार कर यावत् उसकी पर्युपासना कर उसे किसी प्रकार के मनोज्ञ एवं प्रीतिकर अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य से प्रतिलाभित कर—इस प्रकार जीव शुभ-दीर्घ-आयुष्य वाले कर्म का बन्ध करते हैं।

क्रय-विक्रय-क्रिया-पद

१२८. भन्ते! एक गृहपति भाण्ड बेच रहा है। उस समय कोई व्यक्ति भाण्ड का अपहरण कर ले, उस अपहृत भाण्ड की गवेषणा करते हुए गृहपति के क्या आरम्भिक क्रिया होती है? पारिग्रहिकी क्रिया होती है? माया-प्रत्यया-क्रिया होती है? अप्रत्याख्यान-क्रिया होती है? अथवा मिथ्या-दर्शन-प्रत्यया क्रिया होती है?

गौतम! उसके आरम्भिकी क्रिया होती है, पारिग्रहिकी क्रिया होती है, माया-प्रत्यया-क्रिया होती है, अप्रत्याख्यान-क्रिया होती है और मिथ्या-दर्शन-क्रिया कदाचित् होती है, कदाचित् नहीं होती।

जब वह अपहृत भाण्ड मिल जाता है, तब वे सब क्रियाएं पतली हो जाती हैं।

१२९. भन्ते! एक गृहपति भाण्ड बेच रहा है, ग्राहक भाण्ड को वचनबद्ध होकर स्वीकार कर लेता है, किन्तु अभी तक उसने भाण्ड को ग्रहण नहीं किया है।

भन्ते! उस भाण्ड से गृहपति के क्या आरम्भिकी क्रिया होती है? यावत् मिथ्या-दर्शन-क्रिया होती है?

उस भाण्ड से ग्राहक के क्या आरम्भिकी क्रिया होती है? यावत् मिथ्या-दर्शन-क्रिया होती है?

गौतम! उस भाण्ड से गृहपति के आरम्भिकी क्रिया होती है यावत् अप्रत्याख्यान-क्रिया होती है। मिथ्या-दर्शन-क्रिया कदाचित् होती है, कदाचित् नहीं होती है।

ग्राहक के ये सब क्रियाएं पतली हो जाती हैं।

१३०. भन्ते! एक गृहपति भाण्ड बेच रहा है, ग्राहक भाण्ड को वचनबद्ध होकर स्वीकार कर लेता है और उसे ग्रहण कर लेता है।

भन्ते! उस भाण्ड से ग्राहक के क्या आरम्भिकी क्रिया होती है? यावत् मिथ्या-दर्शन-क्रिया होती है?

उस भाण्ड से गृहपति के क्या आरम्भिकी क्रिया होती है? यावत् मिथ्या-दर्शन-क्रिया होती है?

गौतम! उस भाण्ड से ग्राहक के प्रथम चार क्रियाएं होती हैं। मिथ्यादर्शनक्रिया की भजना है—कदाचित् होती है, कदाचित् नहीं होती।

गृहपति के ये सब क्रियाएं पतली हो जाती हैं।

१३१. भन्ते! एक गृहपति भाण्ड बेच रहा है ग्राहक भाण्ड को वचनबद्ध होकर स्वीकार कर लेता है, पर गृहपति ने धन ग्रहण नहीं किया है।

भन्ते! उस धन से ग्राहक के क्या आरम्भिकी क्रिया होती है? यावत् मिथ्या-दर्शन-क्रिया होती है?

उस धन से गृहपति के क्या आरम्भिकी क्रिया होती है? यावत् मिथ्या-दर्शन-क्रिया होती है?

गौतम! उस धन से ग्राहक के प्रथम चार क्रियाएं होती हैं। मिथ्या-दर्शन-क्रिया की भजना है—कदाचित् होती है, कदाचित् नहीं होती।

गृहपति के वे सब क्रियाएं पतली हो जाती हैं।

१३२. भन्ते! एक गृहपति भाण्ड बेच रहा है, ग्राहक भाण्ड को वचनबद्ध हो कर स्वीकार कर लेता है और गृहपति धन ग्रहण कर लेता है।

भन्ते! उस धन से गृहपति के क्या आरम्भिकी क्रिया होती है? यावत् मिथ्या-दर्शन-क्रिया होती है?

उस धन से ग्राहक के क्या आरम्भिकी क्रिया होती है? यावत् मिथ्या-दर्शन-क्रिया होती है?

गौतम! उस धन से गृहपति के आरम्भिकी क्रिया होती है यावत् अप्रत्या-ख्यान-क्रिया होती है। मिथ्या-दर्शन-क्रिया कदाचित् होती है, कदाचित् नहीं होती।

ग्राहक के वे सब क्रियाएं पतली हो जाती हैं।

अग्निकाय में महाकर्म आदि-पद

१३३. भन्ते! तत्काल प्रज्वलित होता हुआ अग्निकाय महा-कर्म वाला, महा-क्रिया वाला, महा-आश्रव वाला और महा-वेदना वाला होता है और वह क्षण-क्षण क्षीण होता हुआ अन्तिम समय में कोयला बन जाता है, मुर्मर बन जाता है, क्षार बन जाता है, क्या उसके पश्चात् वह अल्प-कर्म वाला, अल्प-क्रिया वाला, अल्प-आश्रव वाला और अल्प-वेदना वाला होता है?

हां, गौतम! तत्काल प्रज्वलित होता हुआ अग्निकाय महा-कर्म वाला यावत् क्षीण होता हुआ अल्प-वेदना वाला होता है।

धनुःप्रक्षेप में क्रिया-पद

१३४. भन्ते! एक पुरुष धनुष हाथ में लेता है, लेकर बाण को धनुष पर चढ़ाता है, चढ़ा कर स्थान (वैशाख नाम युद्ध की मुद्रा) में खड़ा होता है, खड़ा हो कर बाण को कान की लम्बाई तक खींचता है और ऊपर आकाश की ओर फेंकता है।

ऊपर आकाश की ओर फेंका हुआ वह बाण, वहां जो प्राण, भूत, जीव और सत्त्व हैं, उनका अभिघात करता है, उनका वर्तुल बनाता है, उन्हें चोट पहुंचाता है, उनके अवयवों को संहत करता है, उन्हें संचालित करता है, परितप्त करता है, क्लान्त करता है, स्थानान्तरित करता है और उनका प्राण-वियोजन करता है। भन्ते! उस बाण को फेंकने वाला पुरुष कितनी क्रिया से स्पृष्ट होता है?

गौतम! जिस समय वह पुरुष धनुष हाथ में लेता है, लेकर बाण को धनुष पर चढ़ाता है, चढ़ाकर स्थान (वैशाख नामक युद्ध की मुद्रा) में खड़ा होता है, खड़ा होकर बाण को कान की लम्बाई तक खींचता है और ऊपर आकाश की ओर उसे फेंकता है, उस समय वह पुरुष कायिकी, आधिकारणिकी, प्रादोषिकी, पारितापनिकी और प्राणातिपात-क्रिया—इन पांच क्रियाओं से स्पृष्ट होता है। जिन जीवों के शरीर से धनुष बना, वे जीव भी कायिकी यावत् पांच क्रियाओं से स्पृष्ट होते हैं। इसी प्रकार जिन जीवों के शरीर से धनुःपृष्ठ, प्रत्यञ्चा, स्नायु और बाण बने, वे जीव पांच क्रियाओं से स्पृष्ट होते हैं। शर, बाण का पक्ष, बाण का फलक और स्नायु—ये सब जिन जीवों के शरीर से बने हैं, वे जीव भी पांच क्रियाओं से स्पृष्ट होते हैं।

१३५. वह बाण अपनी गुरुता से, भारीपन से, गुरुतम भारीपन से स्वाभाविक रूप से नीचे आता हुआ वहां रहे हुए प्राण यावत् सत्त्वों का प्राण-वियोजन करता है, तब वह पुरुष कितनी क्रियाओं से स्पृष्ट होता है?

गौतम! जिस समय बाण अपनी गुरुता से यावत् प्राण का वियोजन करता है, तब वह पुरुष कायिकी यावत् चार क्रियाओं से स्पृष्ट होता है। जिन जीवों के शरीर से धनुष, धनुःपृष्ठ, प्रत्यञ्चा और स्नायु बने हैं, वे जीव भी चार क्रियाओं से स्पृष्ट होते हैं। बाण, शर, बाण का पक्ष, बाण का फलक और स्नायु—ये सब जिन जीवों के शरीर से बने हैं, वे जीव पांच क्रियाओं से स्पृष्ट होते हैं। जो जीव नीचे गिरते हुए बाण के आलम्बन बनते हैं, वे जीव भी कायिकी यावत् पांच क्रियाओं से स्पृष्ट होते हैं।

अन्ययूथिक-पद

१३६. भन्ते! अन्ययूथिक इस प्रकार आख्यान करते हैं यावत् प्ररूपणा करते हैं—जैसे कोई युवा युवती का हाथ अपने हाथ में पकड़ता है, जैसे चक्र की नाभि आरों से युक्त होती है, इसी प्रकार यावत् चार सौ पांच सौ योजन वाला मनुष्य-लोक मनुष्यों से अत्यन्त आकीर्ण है।

१३७. भन्ते! यह ऐसे कैसे है?

गौतम! वे अन्ययूथिक इस प्रकार आख्यान करते हैं यावत् मनुष्य-लोक मनुष्यों से अत्यन्त आकीर्ण है। जो ऐसा कहते हैं, वे मिथ्या कहते हैं। गौतम! मैं ऐसा आख्यान करता हूं यावत् प्ररूपणा करता हूं—जैसे कोई युवा युवती का हाथ अपने आथ में पकड़ता है, जैसे चक्र की नाभि आरों से युक्त होती है, इसी प्रकार यावत् चार सौ पांच सौ योजन वाला नरक-लोक नैरयिकों से अत्यन्त आकीर्ण है।

नैरयिक-विक्रिया-पद

१३८. भन्ते! नैरयिक एक (शस्त्र) की विक्रिया करने में समर्थ है अथवा अनेक (शस्त्रों) की विक्रिया करने में समर्थ है?

गौतम! एक (शस्त्र) की भी विक्रिया करने में समर्थ हैं, अनेक (शस्त्रों) की भी विक्रिया करने में समर्थ है। जीवाजीवाभिगम में जैसा आलापक है, वैसा ही ज्ञातव्य है यावत् वे शस्त्रों की विक्रिया कर परस्पर एक-दूसरे शरीर का अभिघात करते हुए उज्ज्वल, विपुल, प्रगाढ़, कर्कश,

कटुक, परुष, निष्ठुर, प्रचण्ड, तीव्र दुःख, दुर्गम और दुःसह वेदना की उदीरणा करते हैं।

आधाकर्म आदि आहार के सम्बन्ध में आराधनादि-पद

१३९. आधाकर्म अनवद्य है, इस प्रकार जो मानसिक प्रधारणा करता है, वह उस स्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण किए बिना काल-धर्म को प्राप्त होता है—उसके आराधना नहीं होती। वह उस स्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण कर काल-धर्म को प्राप्त होता है—उसके आराधना होती है।

१४०. इसी गमक के अनुसार क्रीत-कृत, स्थापित, रचित, कान्तार-भक्त, दुर्भिक्ष-भक्त, बार्दलिका-भक्त, ग्लान-भक्त, शय्यातर-पिण्ड और राज-पिण्ड ज्ञातव्य है।

१४१. आधाकर्म अनवद्य है, ऐसा सोचकर जो स्वयं उसका परिभोग करता है, वह उस स्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण किए बिना काल-धर्म को प्राप्त होता है—उसके आराधना नहीं होती। वह उस स्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण कर काल-धर्म को प्राप्त होता है—उसके आराधना होती है।

१४२. क्रीत-कृत का परिभोग यावत् राज-पिण्ड का परिभोग पूर्व सूत्र (१४०) की भांति वक्तव्य है।

१४३. आधाकर्म अनवद्य है, ऐसा सोचकर जो परस्पर अनुप्रदान करता है, वह उस स्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण किए बिना काल-धर्म को प्राप्त होता है—उसके आराधना नहीं होती। जो उस स्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण कर काल-धर्म को प्राप्त होता है—उसके आराधना होती है।

१४४. क्रीत-कृत का परस्पर अनुप्रदान यावत् राजपिण्ड का परस्पर अनुप्रदान पूर्व सूत्र (१४३) की भांति वक्तव्य है।

१४५. आधाकर्म अनवद्य है, इस प्रकार जो बहुजनों के बीच प्रज्ञापन करता है, वह उस स्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण किए बिना काल-धर्म को प्राप्त होता है—उसके आराधना नहीं होती। जो उस स्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण कर कालधर्म को प्राप्त होता है—उसके आराधना होती है।

१४६. क्रीत-कृत का बहुजनों के बीच प्रज्ञापन यावत् राज-पिण्ड का बहुजनों के बीच प्रज्ञापन पूर्व सूत्र (१४५) की भांति वक्तव्य है।

आचार्य-उपाध्याय की सिद्धि का पद

१४७. भन्ते! आचार्य और उपाध्याय अपने विषय (अर्थदान और सूत्रदान) में अग्लान भाव से गण का संग्रह करते हुए और अग्लान भाव से गण का उपग्रह करते हुए कितने भवग्रहणों से सिद्ध होते हैं यावत् सब दुःखों का अन्त करते हैं?

गौतम! कुछ (आचार्य-उपाध्याय) उसी भव में सिद्ध हो जाते हैं, कुछ दूसरे भव में सिद्ध हो जाते हैं, वे तीसरे भव का अतिक्रमण नहीं करते—तीसरे भव में वे अवश्य सिद्ध होते हैं।

अभ्याख्यान के कर्मबन्ध-पद

१४८. भन्ते! जो पुरुष मिथ्या असद्भूत अभ्याख्यान (दोषारोपण) के द्वारा दूसरे को आरोपित करता है, उसके किस प्रकार के कर्मों का बन्ध होता है?

गौतम! जो पुरुष मिथ्या, असद्भूत अभ्याख्यान के द्वारा दूसरे को आरोपित करता है, उसके उसी प्रकार के कर्मों का बन्ध होता है। वहां जहां उत्पन्न होता है, वहीं उन कर्मों का प्रतिसंवेदन करता है, पश्चाद् उनका वेदन-निर्जरण करता है।

१४९. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है।

सातवां उद्देशक

परमाणु-स्कन्धों का एजनादि-पद

१५०. भन्ते! क्या परमाणु-पुद्गल एजन, व्येजन, चलन, स्पन्दन, प्रकम्पन, क्षोभ और उदीरणा करता है, नए-नए भाव में परिणत होता है?

गौतम! कदाचित् वह एजन, व्येजन करता है यावत् नए-नए भाव में परिणत होता है, कदाचित् वह एजन नहीं करता यावत् नए-नए भाव में परिणत नहीं होता।

१५१. भन्ते! क्या द्विप्रदेशिक स्कन्ध एजन करता है यावत् नए-नए भाव में परिणत होता है?

गौतम! कदाचित् वह एजन करता है यावत् नए-नए भाव में परिणत होता है। कदाचित् वह एजन नहीं करता यावत् नए-नए भाव में परिणत नहीं होता। कदाचित् उसका एक देश एजन करता है, एक देश एजन नहीं करता।

१५२. भन्ते! क्या त्रिप्रदेशिक स्कन्ध एजन करता है?

गौतम! कदाचित् वह एजन करता है, कदाचित् एजन नहीं करता। कदाचित् उसका एक देश एजन करता है, एक देश एजन नहीं करता। कदाचित् उसका एक देश एजन करता है, अनेक देश एजन नहीं करते। कदाचित् उसके अनेक देश एजन करते हैं, एक देश एजन नहीं करता।

१५३. भन्ते! क्या चतुःप्रदेशिक स्कन्ध एजन करता है?

गौतम! कदाचित् वह एजन करता है, कदाचित् एजन नहीं करता। कदाचित् उसका एक देश एजन करता है, एक देश एजन नहीं करता। कदाचित् उसका एक देश एजन करता है अनेक देश एजन नहीं करते। कदाचित् उसके अनेक देश एजन करते हैं, एक देश एजन नहीं करता। कदाचित् उसके अनेक देश एजन करते हैं, अनेक देश एजन नहीं करते।

जैसे-चतुः-प्रदेशी स्कन्ध की प्ररूपणा है, वैसी ही प्ररूपणा पंच-प्रदेशी स्कन्ध की करणीय है। यावत् अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध की प्ररूपणा भी वैसी ही है।

परमाणु-स्कन्धों का छेदन आदि-पद

१५४. भन्ते! क्या परमाणु-पुद्गल तलवार की धारा अथवा छुरे की धारा पर अवगाहन कर सकता है?

हां, अवगाहन कर सकता है।

भन्ते! क्या वह (परमाणु-पुद्गल) वहां छिन्न अथवा भिन्न होता है?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है। परमाणु-पुद्गल पर शस्त्र नहीं चलता।

१५५. इसी प्रकार यावत् असंख्येयप्रदेशिक स्कन्ध वक्तव्य है।

१५६. भन्ते! क्या अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध तलवार की धारा अथवा छुरे की धारा पर अवगाहन कर सकता है?

हां, अवगाहन कर सकता है।

भन्ते! क्या वह वहां छिन्न अथवा भिन्न होता है?

गौतम! कुछ स्कन्ध छिन्न-भिन्न होते हैं, कुछ स्कन्ध छिन्न अथवा भिन्न नहीं होते।

१५७. भन्ते क्या परमाणु-पुद्गल अग्निकाय के बीचोबीच से जा सकता है?

हां, वह जा सकता है।

भन्ते! क्या वह वहां पर जलता है?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है, परमाणु-पुद्गल पर शस्त्र नहीं चलता।

भन्ते! क्या वह पुष्कर-संवर्तक महामेघ के बीचोबीच से जा सकता है?

हां, वह जा सकता है।

भन्ते! क्या वह वहां पर आद्र होता है?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है, परमाणु-पुद्गल पर शस्त्र नहीं चलता।

भन्ते! क्या वह गंगा-महानदी के प्रतिस्त्रोत में शीघ्र ही आ सकता है?

हां, वह शीघ्र ही आ सकता है।

भन्ते! क्या वह वहां विनिघात को प्राप्त होता है?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है, परमाणु-पुद्गल पर शस्त्र नहीं चलता।

भन्ते! क्या वह जल के आवर्त्त या जल की बूंद पर अवगाहन कर सकता है?

हां, वह अवगाहन कर सकता है।

भन्ते! क्या वह वहां पर पर पीड़ित होता है?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है, परमाणु-पुद्गल पर शस्त्र नहीं चलता।

१५८. इसी प्रकार यावत् असंख्येयप्रदेशिक स्कन्ध पर शस्त्र नहीं चलता।

१५९. भन्ते! क्या अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध अग्निकाय के बीचोबीच जा सकता है?

हां, वह जा सकता है।

भन्ते! क्या वह वहां पर जलता है?

गौतम! कुछ एक स्कन्ध जलते हैं, कुछ एक स्कन्ध नहीं जलते हैं।

भन्ते! क्या वह अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध पुष्कर-संवर्त्तिक महामेष के बीचोबीच से जा सकता है?

हां, वह जा सकता है।

भन्ते! क्या वह वहां पर आर्द्र होता है?

गौतम! कुछ एक स्कन्ध आर्द्र होते हैं, कुछ एक स्कन्ध आर्द्र नहीं होते।

भन्ते! क्या वह गंगा महानदी के प्रतिस्रोत में शीघ्र ही आ सकता है?

हां, वह शीघ्र ही आ सकता है।

भन्ते! क्या वह वहां विनिघात को प्राप्त होता है?

गौतम! कुछ एक स्कन्ध विनिघात को प्राप्त होते हैं, कुछ एक स्कन्ध विनिघात को प्राप्त नहीं होते।

भन्ते! वह जल के आवर्त्त या जल की बूंद पर अवगाहन कर सकता है?

हां, वह अवगाहन कर सकता है।

भन्ते! क्या वह वहां विनष्ट होता है?

गौतम! कुछ एक स्कन्ध विनष्ट होते हैं, कुछ एक स्कन्ध विनष्ट नहीं होते।

परमाणु-स्कन्धों का सार्द्ध समध्यादि-पद

१६०. भन्ते! परमाणु-पुद्गल क्या स-अर्ध, स-मध्य और स-प्रदेश है? अथवा अनर्ध, अ-मध्य और अ-प्रदेश है?

गौतम! परमाणु-पुद्गल अनर्ध, अ-मध्य और अ-प्रदेश है, स-अर्ध, स-मध्य और स-प्रदेश नहीं है।

१६१. भन्ते! द्वि-प्रदेशी स्कन्ध क्या स-अर्ध, स-मध्य और स-प्रदेश है? अथवा अनर्ध, अ-मध्य और अ-प्रदेश है?

गौतम! द्वि-प्रदेशी स्कन्ध स-अर्ध, अ-मध्य और स-प्रदेश है, अनर्ध, स-मध्य और अ-प्रदेश नहीं है।

१६२. भन्ते! त्रि-प्रदेशी स्कन्ध क्या स-अर्ध, स-मध्य और स-प्रदेश है? अथवा अनर्ध, अ-मध्य और अ-प्रदेश है?

गौतम! त्रि-प्रदेशी स्कन्ध अनर्ध, स-मध्य और स-प्रदेश है, स-अर्ध, अ-मध्य और अ-प्रदेश नहीं है।

१६३. समसंख्या वाले (चतुः-प्रदेशी, षट्-प्रदेशी आदि) स्कन्ध द्वि-प्रदेशी स्कन्ध की भांति वक्तव्य हैं। विषम संख्या वाले स्कन्ध (पञ्च-प्रदेशी, सप्त-प्रदेशी आदि) त्रि-प्रदेशी स्कन्ध की भांति वक्तव्य हैं।

१६४. भन्ते! संख्येय-प्रदेशी स्कन्ध क्या स-अर्ध, स-मध्य और स-प्रदेश है। अथवा अनर्ध, अ-मध्य और अ-प्रदेश है?

गौतम! संख्येय-प्रदेशी स्कन्ध कथंचित् स-अर्ध, स-मध्य और स-प्रदेश है।

कथंचित् अनर्ध, अ-मध्य और स-प्रदेश है।

असंख्येय-प्रदेशी और अनन्त-प्रदेशी स्कन्ध संख्येय-प्रदेशी स्कन्ध की भांति वक्तव्य है।

परमाणु-स्कन्धों का परस्पर स्पर्शना-पद

१६५. भन्ते! परमाणु-पुद्गल परमाणु-पुद्गल का स्पर्श करता हुआ क्या—१. एक देश से एक देश का स्पर्श करता है? २. एक देश से अनेक देशों का स्पर्श करता है? ३. एक देश से सर्व का स्पर्श करता है? ४. अनेक देश से एक देश का स्पर्श करता है? ५. अनेक देशों से अनेक देशों का स्पर्श करता है? ६. अनेक देशों से सर्व का स्पर्श करता है? ७. सर्व से एक देश का स्पर्श करता है? ८. सर्व से अनेक देशों का स्पर्श करता है? ९. सर्व से सर्व का स्पर्श करता है?

गौतम! १. परमाणु-पुद्गल एक देश से एक देश का स्पर्श नहीं करता। २. एक देश से अनेक देशों का स्पर्श नहीं करता। ३. एक देश से सर्व का स्पर्श नहीं करता। ४. अनेक देश से एक देश का स्पर्श नहीं करता। ५. अनेक देशों से अनेक देशों का स्पर्श नहीं करता। ६. अनेक देशों से सर्व का स्पर्श नहीं करता। ७. सर्व से एक देश का स्पर्श नहीं करता। ८. सर्व से अनेक देशों का स्पर्श नहीं करता। ९. सर्व से सर्व का स्पर्श करता है।

१६६. परमाणु-पुद्गल द्विप्रदेशिक स्कन्ध का स्पर्श करता हुआ सातवें और नौवें विकल्प (सर्व से एक देश और सर्व से सर्व का) का स्पर्श करता है।

परमाणु-पुद्गल त्रिप्रदेशिक स्कन्ध का स्पर्श करता हुआ अन्तिम तीन विकल्पों (सर्व से एक देश, सर्व से अनेक देशों और सर्व से सर्व) का स्पर्श करता है। जिस प्रकार परमाणु-पुद्गल का त्रिप्रदेशिक स्कन्ध से स्पर्श कराया गया है, इस प्रकार चतुःप्रदेशिक स्कन्ध से लेकर यावत् अनन्त-प्रदेशिक स्कन्ध तक स्पर्श कराया जाए।

१६७. भन्ते! द्विप्रदेशिक स्कन्ध परमाणु-पुद्गल का स्पर्श करता हुआ क्या एक देश से एक देश का स्पर्श करता है? पृच्छ।

तीसरे और नौवें विकल्प (एक देश से सर्व और सर्व से सर्व का) का स्पर्श करता है।

द्विप्रदेशिक स्कन्ध द्विप्रदेशिक स्कन्ध का स्पर्श करता हुआ पहले, तीसरे, सातवें और नौवें (एक देश से एक देश, एक देश से सर्व, सर्व से एक देश और सर्व से सर्व का) विकल्प का स्पर्श करता है।

द्विप्रदेशिक स्कन्ध त्रिप्रदेशिक स्कन्ध का स्पर्श करता हुआ तीन प्रथम तीन अन्तिम विकल्पों का स्पर्श करता है। मध्यवर्ती तीन विकल्प प्रतिषिद्ध है। जिस प्रकार द्विप्रदेशिक स्कन्ध का त्रिप्रदेशिक स्कन्ध से स्पर्श कराया गया है, इस प्रकार चतुःप्रदेशिक स्कन्ध से लेकर यावत् अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध तक से स्पर्श कराया जाए।

१६८. भन्ते! त्रिप्रदेशिक स्कन्ध परमाणु-पुद्गल का स्पर्श करता हुआ क्या एक देश से एक देश का स्पर्श करता है? पृच्छ।

वह तीसरे, छठ और नौवें विकल्प का स्पर्श करता है।

त्रिप्रदेशिक स्कन्ध द्विप्रदेशिक स्कन्ध का स्पर्श करता हुआ पहले, तीसरे, चौथे, छठे, सातवें और नौवें विकल्प का स्पर्श करता है।

त्रिप्रदेशिक स्कन्ध त्रिप्रदेशिक स्कन्ध का स्पर्श करता हुआ सब स्थानों का स्पर्श करता है।

जिस प्रकार त्रिप्रदेशिक स्कन्ध का त्रिप्रदेशिक स्कन्ध से स्पर्श कराया गया है, उस प्रकार त्रिप्रदेशिक स्कन्ध का चतुःप्रदेशिक स्कन्ध से लेकर यावत् अनन्त प्रदेशिक स्कन्ध के साथ संयोग कराया जाए। जिस प्रकार त्रिप्रदेशिक स्कन्ध की वक्तव्यता है। वही वक्तव्यता चतुःप्रदेशिक से यावत् अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध की है।

परमाणु-स्कन्धों की संस्थिति का पद

१६९. भन्ते! परमाणु-पुद्गल काल की दृष्टि से (परमाणु-पुद्गल के रूप में) कितने समय तक रहता है?

गौतम! जघन्यतः एक समय, उत्कर्षतः, असंख्येय काल। इसी प्रकार यावत् अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध तक वही कालावधि है।

१७०. भन्ते! आकाश के एक प्रदेश में अवगाढ सप्रकम्प पुद्गल उस अधिकृत स्थान में अथवा किसी दूसरे स्थान में काल की दृष्टि से कितने समय तक रहता है?

गौतम! जघन्यतः एक समय, उत्कर्षतः आवलिका का असंख्यातवां भाग। इसी प्रकार यावत् असंख्यप्रदेशावगाढ सप्रकम्प पुद्गल की यही कालावधि है।

१७१. भन्ते! आकाश के एक प्रदेश में अवगाढ सप्रकम्प पुद्गल काल की दृष्टि से कितने समय तक रहता है?

गौतम! जघन्यतः एक समय, उत्कर्षतः असंख्येय काल। इसी प्रकार यावत् असंख्यप्रदेशावगाढ अप्रकम्प पुद्गल की यही कालावधि है।

१७२. भन्ते! एक-गुण-कृष्ण-वर्ण वाला पुद्गल काल की दृष्टि से (एक-गुण-कृष्ण-वर्ण के रूप में) कितने समय तक रहता है?

गौतम! जघन्यतः एक समय, उत्कर्षतः असंख्येय काल। इसी प्रकार यावत् अनन्त-गुण-कृष्ण-वर्ण वाले पुद्गल की यही कालावधि है।

इसी प्रकार वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श यावत् अनन्त-गुण-रूक्ष पुद्गल की कालावधि वक्तव्य है। इसी प्रकार सूक्ष्म परिणति में परिणत पुद्गल तथा बादर परिणति में परिणत पुद्गल की कालावधि वक्तव्य है।

१७३. भन्ते! शब्द-परिणति में परिणत पुद्गल काल की दृष्टि से शब्द-परिणति के रूप में कितने समय तक रहता है?

गौतम! जघन्यतः एक समय, उत्कर्षतः आवलिका के असंख्यातवें भाग तक रहता है।

१७४. भन्ते! अशब्द-परिणति में परिणत पुद्गल काल की दृष्टि से अशब्द-परिणति के रूप में कितने समय तक रहता है?

गौतम! जघन्यतः एक समय, उत्कर्षतः असंख्य काल।

परमाणु-स्कन्धों का अन्तरकाल-पद

१७५. भन्ते! परमाणु-पुद्गल में (पुनः परमाणु-रूप में परिणत होने में) काल-कृत अन्तर कितना होता है?

गौतम! जघन्यतः एक समय, उत्कर्षतः असंख्येय काल।

१७६. भन्ते! द्विप्रदेशिक स्कन्ध में काल-कृत अन्तर कितना होता है?

गौतम! जघन्यतः एक समय, उत्कर्षतः अनन्त काल। इसी प्रकार यावत् अनन्तप्रदेशिक स्कन्ध में काल-कृत अन्तर वक्तव्य है।

१७७. भन्ते! आकाश के एक प्रदेश में अवगाढ सप्रकम्प पुद्गल में काल-कृत अन्तर कितना होता है?

गौतम! जघन्यतः एक समय, उत्कर्षतः असंख्य काल। इसी प्रकार यावत् असंख्यप्रदेशावगाढ सप्रकम्प पुद्गल में काल-कृत अन्तर वक्तव्य है।

१७८. भन्ते! आकाश के एक प्रदेश में अवगाढ अप्रकम्प पुद्गल में काल-कृत अन्तर कितना होता है?

गौतम! जघन्यतः एक समय, उत्कर्षतः आवलिका का असंख्यातवां भाग। इसी प्रकार यावत् असंख्यप्रदेशावगाढ अप्रकम्प पुद्गल में काल-कृत अन्तर वक्तव्य है।

वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श सूक्ष्म परिणति में परिणत तथा बादर परिणति में परिणत—इन पुद्गलों का जो अवस्थान-काल है, वही काल-कृत अन्तर है।

१७९. भन्ते! शब्द-परिणति में परिणत पुद्गल में काल-कृत अन्तर कितना होता है?

गौतम! जघन्यतः एक समय, उत्कर्षतः असंख्य काल।

१८०. भन्ते! अशब्द-परिणति में परिणत पुद्गल में काल-कृत अन्तर कितना होता है?

गौतम! जघन्यतः एक समय, उत्कर्षतः आवलिका का असंख्यातवां भाग।

परमाणु-स्कन्धों का परस्पर अल्पबहुत्व-पद

१८१. भन्ते! इस द्रव्य-स्थान-आयु, क्षेत्र-स्थान-आयु, अवगाहन-स्थान-आयु और भाव-स्थान-आयु में कौन किनसे अल्प, बहु, तुल्य अथवा विशेषाधिक है?

गौतम! क्षेत्र-स्थान-आयु सबसे थोड़ा है, अवगाहन-स्थान-आयु उससे असंख्येयगुणा, द्रव्य-स्थान-आयु उससे असंख्येयगुणा और भाव-स्थान-आयु उससे असंख्येयगुणा अधिक होता है।

संग्रहणी गाथा

क्षेत्र, अवगाहना, द्रव्य और भाव-स्थान-आयु का अल्पबहुत्व विमर्शनीय है। क्षेत्र का आयु सबसे थोड़ा है, शेष तीनों का आयु क्रमशः असंख्येयगुणा है।

जीवों का समारम्भ-सपरिग्रह-पद

१८२. भन्ते! नैरयिक-जीव क्या आरम्भ और परिग्रह से युक्त होते हैं? अथवा आरम्भ और परिग्रह से मुक्त होते हैं?

गौतम! नैरयिक-जीव आरम्भ और परिग्रह से युक्त होते हैं, आरम्भ और परिग्रह से मुक्त नहीं होते।

१८३. भन्ते यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—नैरयिक-जीव आरम्भ और परिग्रह से युक्त होते हैं, आरम्भ और परिग्रह से मुक्त नहीं होते?

गौतम! नैरयिक-जीव पृथ्वीकाय का समारम्भ करते हैं, अप्काय का समारम्भ करते हैं, तेजस्काय का समारम्भ करते हैं, वायुकाय का समारम्भ करते हैं, वनस्पतिकाय का समारम्भ करते हैं और त्रसकाय का समारम्भ करते हैं। नैरयिक-जीवों के शरीर का परिग्रह होता है, कर्म का परिग्रह होता है तथा सचित्त, अचित्त और मिश्र द्रव्यों का परिग्रह होता है। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—नैरयिक-जीव आरम्भ और परिग्रह से युक्त होते हैं, आरम्भ और परिग्रह से मुक्त नहीं होते।

१८४. भन्ते! असुरकुमार-देव क्या आरम्भ और परिग्रह से युक्त होते हैं? पृच्छा।

गौतम! असुरकुमार-देव क्या आरम्भ और परिग्रह से युक्त होते हैं, आरम्भ और परिग्रह से मुक्त नहीं होते।

१८५. यह किस अपेक्षा से? गौतम! असुरकुमार-देव पृथ्वीकाय का समारम्भ करते हैं यावत् त्रसकाय का समारम्भ करते हैं। असुरकुमार-देवों के शरीर का परिग्रह होता है, कर्म का परिग्रह होता है, भवनों का परिग्रह होता है, देवों, देवियों, मनुष्यों, मानुषियों, नर-तिर्यज्ज्वों और स्त्री-तिर्यज्ज्वों का परिग्रह होता है, आसन, शयन, भाण्ड, पात्र तथा अन्य उपकरणों का परिग्रह होता है, सचित्त-, अचित्त- और मिश्र-द्रव्यों का परिग्रह होता है। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—असुरकुमार-देव आरम्भ और परिग्रह से युक्त होते हैं, आरम्भ और परिग्रह से मुक्त नहीं होते।

१८६. इसी प्रकार स्तनिक-कुमार-देवों तक आरम्भ और परिग्रह की वक्तव्यता। एकेन्द्रिय-जीव नैरयिक-जीवों की भांति ज्ञातव्य हैं।

१८७. भन्ते! द्वीन्द्रिय-जीव क्या आरम्भ और परिग्रह से युक्त होते हैं? अथवा आरम्भ और परिग्रह से मुक्त होते हैं? नैरयिक-जीवों की भांति द्वीन्द्रिय पृथ्वीकाय का समारम्भ करते हैं, द्वीन्द्रिय जीवों के शरीर का परिग्रह होता है, कर्म का परिग्रह होता है, बाह्य भाण्ड, पात्र तथा अन्य उपकरणों का परिग्रह होता है, सचित्त-, अचित्त- और मिश्र-द्रव्यों का परिग्रह होता है।

१८८. इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय जीवों तक आरम्भ और परिग्रह की वक्तव्यता।

१८९. भन्ते! पञ्चेन्द्रिय-तिर्यक्योनिक-जीव क्या आरम्भ और परिग्रह से युक्त होते हैं अथवा आरम्भ और परिग्रह से मुक्त होते हैं?

नैरयिक जीवों की भांति पञ्चेन्द्रिय-तिर्यक्योनिक-जीवों के यावत् कर्म का परिग्रह होता है (यह वक्तव्य है, इतना विशेष है)—टंक, कूट, शैल, शिखरी और प्राग्भार (झूके हुए पर्वत

प्रदेश) का परिग्रह होता है। जल, स्थल, बिल, गूफा और लयन (पर्वत के उकेरा हुआ गृह) का परिग्रह होता है। उज्झर, निर्झर, तलैया, जल का छोटा गढा, जल-प्रणाली का परिग्रह होता है। कुआ, तालाब, द्रव, नदी, बावड़ी, पुष्करिणी, नहर, वक्राकार नहर, सर, सरपंक्ति, सरसरपंक्ति और बिलपंक्ति का परिग्रह होता है। आराम, उद्यान, कानन, वन, वनषण्ड और वनराजि का परिग्रह होता है। देवल, सभा, प्रपा, स्तूप, खाई और परिखा का परिग्रह होता है। प्राकार, अट्टालक, चरिका, द्वार और गोपुर का परिग्रह होता है। प्रासाद, घर, शरण, लयन और आपण का परिग्रह होता है। दुराहे, तिराहे, चौराहे, चौक, चौहट्टे, महापथ और पथ का परिग्रह होता है। शकट, रथ, यान, युग, डाली, बग्गी, शिबिका और स्यन्दमानिका का परिग्रह होता है। तवा, लोहकटाह, करछी का परिग्रह होता है। भवन का परिग्रह होता है। देवों, देवियों, मनुष्यों, मानुषियों, नर-तिर्यज्ज्वों और स्त्री-तिर्यज्ज्वों का परिग्रह होता है। आसन, शयन, स्तम्भ, भाण्ड, सचित्त-, अचित्त- और मिश्र-द्रव्यों का परिग्रह होता है। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—यज्वेन्द्रिय-तिर्यक्योनिक-जीव आरम्भ और परिग्रह से युक्त होते हैं, आरम्भ और परिग्रह से मुक्त नहीं होते।

१९०. जिस प्रकार तिर्यक्योनिक-जीवों की वक्तव्यता है, उसी प्रकार मनुष्यों के आरम्भ और परिग्रह वक्तव्य हैं। वानमन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकों की वक्तव्यता भवनवासी-देवों की भांति ज्ञातव्य है।

हेतु-पद

१९१. हेतु के पांच प्रकार प्रज्ञप्त हैं। जैसे—हेतु को जानता है, हेतु को देखता है, हेतु पर सम्यक् श्रद्धा करता है, हेतु को प्राप्त करता है और सहेतुक छद्मस्थ-मरण से मरता है।

१९२. हेतु के पांच प्रकार प्रज्ञप्त हैं, जैसे—हेतु से जानता है यावत् सहेतुक छद्मस्थ-मरण से मरता है।

१९३. हेतु के पांच प्रकार प्रज्ञप्त हैं, जैसे—हेतु को नहीं जानता यावत् सहेतुक अज्ञान-मरण से मरता है।

१९४. पांच प्रकार के हेतु (हेतु-पुरुष) प्रज्ञप्त हैं, जैसे—हेतु से नहीं जानता है, यावत् हेतु से अज्ञान-मरण से मरता है।

१९५. पांच प्रकार के अहेतुक प्रज्ञप्त हैं, जैसे—निर्हेतुक पदार्थ को जानता है और निर्हेतुक केवलि-मरण से मरता है।

१९६. पांच प्रकार के अहेतु प्रज्ञप्त हैं, जैसे—अहेतु से जानता है यावत् निर्हेतुक केवलि-मरण से मरता है।

१९७. पांच प्रकार के अहेतु प्रज्ञप्त हैं, जैसे—अहेतु को नहीं जानता यावत् निर्हेतुक छद्मस्थ-मरण से मरता है।

१९८. पांच प्रकार के अहेतु प्रज्ञप्त हैं, जैसे—अहेतु से नहीं जानता है यावत् निर्हेतुक छद्मस्थ-मरण से मरता है।

१९९. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है।

आठवां उद्देशक

निर्ग्रन्थीपुत्र-नारदपुत्र-पद

२००. उस काल और समय में राजगृह नाम का नगर था—नगर का वर्णन यावत् (पू.भ.१/४) परिषद् वापस नगर में चली गई।

२०१. उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर का अन्तेवासी नारदपुत्र नाम का अनगर था। वह प्रकृति से भद्र और उपशान्त था। उसके क्रोध, मान, माया व लोभ प्रतनु (पतले) थे, वह मृदु-मार्दव-सम्पन्न था, आलीन—संयतेन्द्रिय और विनीत था। वह श्रमण भगवान् महावीर के न अति दूर न अति निकट, 'ऊर्ध्वजानु अधःसिर' इस मुद्रा में और ध्यान कोष्ठ में लीन होकर संयम तथा तपस्या से अपने आपको भावित करता हुआ विहार कर रहा है।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर का अन्तेवासी निर्ग्रन्थीपुत्र नाम का अनगर था। वह प्रकृति से भद्र यावत् विहार कर रहा है।

निर्ग्रन्थी-पुत्र अनगर जहां पर नारदपुत्र अनगर था, वहां पहुंचता है। वहां पहुंचकर उसने नारदपुत्र अनगर से इस प्रकार कहा—आर्य! तुम्हारे मत में सब पुद्गल क्या स-अर्ध, स-मध्य और स-प्रदेश है, अथवा अनर्ध, अ-मध्य और अ-प्रदेश हैं?

अनगर नारद-पुत्र ने अनगर निर्ग्रन्थीपुत्र से इस प्रकार कहा—आर्य! मेरे मत में सब पुद्गल स-अर्ध, स-मध्य और स-प्रदेश हैं, अनर्ध, अ-मध्य और अ-प्रदेश नहीं है।

२०२. अनगर निर्ग्रन्थी-पुत्र ने अनगर नारदपुत्र से इस प्रकार कहा—आर्य! यदि तुम्हारे मत में सब पुद्गल स-अर्ध, स-मध्य और स-प्रदेश हैं, अनर्ध, अ-मध्य और अ-प्रदेश नहीं हैं, तो क्या—

आर्य! द्रव्य की अपेक्षा से सब पुद्गल स-अर्ध, स-मध्य और स-प्रदेश हैं, अनर्ध, अ-मध्य और अ-प्रदेश नहीं हैं?

आर्य! क्षेत्र की अपेक्षा से सब पुद्गल स-अर्ध, स-मध्य और स-प्रदेश हैं, अनर्ध, अ-मध्य और अ-प्रदेश नहीं हैं?

आर्य! काल की अपेक्षा से सब पुद्गल स-अर्ध, स-मध्य और स-प्रदेश हैं, अनर्ध, अ-मध्य और अ-प्रदेश नहीं हैं?

आर्य! भाव की अपेक्षा से सब पुद्गल स-अर्ध, स-मध्य और स-प्रदेश हैं, अनर्ध, अ-मध्य और अ-प्रदेश नहीं हैं?

अनगर नारद-पुत्र ने अनगर निर्ग्रन्थी-पुत्र से इस प्रकार कहा—आर्य! मेरे मत में द्रव्य की अपेक्षा सब पुद्गल स-अर्ध, स-मध्य और स-प्रदेश हैं, अनर्ध, अ-मध्य और अ-प्रदेश नहीं हैं।

इस प्रकार क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा भी सब पुद्गल स-अर्ध, स-मध्य और स-प्रदेश हैं, अनर्ध, अ-मध्य और अ-प्रदेश नहीं हैं।

२०३. अनगार निर्ग्रन्थी-पुत्र ने अनगार नारद-पुत्र से इस प्रकार कहा—आर्य! यदि द्रव्य की अपेक्षा से सब पुद्गल स-अर्ध, स-मध्य और स-प्रदेश है—अनर्ध, अ-मध्य और अ-प्रदेश नहीं हैं तो इस प्रकार तुम्हारे मत में परमाणु-पुद्गल भी स-अर्ध, स-मध्य और स-प्रदेश है, अनर्ध, अ-मध्य और अ-प्रदेश नहीं है।

आर्य! यदि क्षेत्र की अपेक्षा से भी सब पुद्गल स-अर्ध, स-मध्य और स-प्रदेश है, (अनर्ध, अ-मध्य और अ-प्रदेश नहीं हैं) तो इस प्रकार तुम्हारे मत में एक-प्रदेशावगाढ़ पुद्गल भी स-अर्ध, स-मध्य और स-प्रदेश है, (अनर्ध, अ-मध्य और अ-प्रदेश नहीं है।)

आर्य! यदि काल की अपेक्षा से सब पुद्गल स-अर्ध, स-मध्य और स-प्रदेश है (अनर्ध, अ-मध्य और अ-प्रदेश नहीं हैं), तो इस प्रकार तुम्हारे मत में एक समय की स्थिति वाला पुद्गल भी स-अर्ध, स-मध्य और स-प्रदेश है, (अनर्ध, अ-मध्य और अ-प्रदेश नहीं है।)

आर्य! यदि भाव की अपेक्षा से सब पुद्गल स-अर्ध, स-मध्य और स-प्रदेश है, (अनर्ध, अ-मध्य और अ-प्रदेश नहीं हैं) तो इस प्रकार तुम्हारे मत में एक-गुण वाला कृष्ण पुद्गल भी स-अर्ध, स-मध्य और स-प्रदेश है, (अनर्ध, अ-मध्य और अ-प्रदेश नहीं है।)

यदि तुम्हारे मत में ऐसा नहीं होता है, तो तुम जो कहते हो कि द्रव्य की अपेक्षा से भी सब पुद्गल स-अर्ध, स-मध्य और स-प्रदेश है, अनर्ध, अ-मध्य और अ-प्रदेश नहीं हैं, इस प्रकार क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से सब पुद्गल स-अर्ध, स-मध्य और स-प्रदेश है—अनर्ध, अ-मध्य और अ-प्रदेश नहीं हैं, तो तुम्हारा मत मिथ्या है।

२०४. अनगार नारद-पुत्र ने अनगार निर्ग्रन्थी-पुत्र से इस प्रकार कहा—देवानुप्रिय! यदि आपको यह अर्थ बताने में किसी प्रकार की ग्लानि न हो, तो मैं देवानुप्रिय के पास इस अर्थ को सुनकर निश्चयपूर्वक जानना चाहता हूँ।

२०५. अनगार निर्ग्रन्थी-पुत्र ने अनगार नारद-पुत्र से इस प्रकार कहा—आर्य! मेरे मत में द्रव्य की अपेक्षा से भी सब पुद्गल स-प्रदेश भी हैं और अ-प्रदेश भी हैं—ऐसे पुद्गल अनन्त हैं।

आर्य! मेरे मत में क्षेत्र की अपेक्षा से भी सब पुद्गल स-प्रदेश भी हैं और अ-प्रदेश भी हैं—ऐसे पुद्गल अनन्त हैं।

आर्य! मेरे मत में काल की अपेक्षा से भी सब पुद्गल स-प्रदेश भी हैं और अ-प्रदेश भी हैं—ऐसे पुद्गल अनन्त हैं।

आर्य! मेरे मत में भाव की अपेक्षा से भी सब पुद्गल स-प्रदेश भी हैं और अ-प्रदेश भी हैं—ऐसे पुद्गल अनन्त हैं।

जो पुद्गल द्रव्य की अपेक्षा से अ-प्रदेश है, वह क्षेत्र की अपेक्षा से नियमतः अ-प्रदेश है। काल की अपेक्षा से वह स्यात् स-प्रदेश है, स्यात् अ-प्रदेश है। भाव की अपेक्षा से वह स्यात् स-प्रदेश है, स्यात् अ-प्रदेश है। जो पुद्गल क्षेत्र की अपेक्षा से अ-प्रदेश है, वह द्रव्य की अपेक्षा से स्यात् स-प्रदेश है, स्यात् अ-प्रदेश है। काल की अपेक्षा से भजना है—वह स्यात् स-प्रदेश है, स्यात् अ-प्रदेश है। भाव की अपेक्षा से भजना है—वह स्यात् स-प्रदेश है, स्यात् अ-प्रदेश है।

जैसे क्षेत्र की दृष्टि से अ-प्रदेश की वक्तव्यता है, वैसे ही काल और भाव की दृष्टि से भी अ-प्रदेश की वक्तव्यता है। जो पुद्गल द्रव्य की अपेक्षा से स-प्रदेश है, वह क्षेत्र की अपेक्षा से स्यात् स-प्रदेश है, स्यात् अ-प्रदेश है। इसी प्रकार काल और भाव की अपेक्षा से भी वह स्यात् स-प्रदेश है, स्यात् अ-प्रदेश है।

जो पुद्गल क्षेत्र की अपेक्षा से स-प्रदेश है, वह द्रव्य की अपेक्षा से नियमतः स-प्रदेश है। काल की अपेक्षा से भजना है—वह स्यात् स-प्रदेश है, स्यात् अ-प्रदेश है। भाव की अपेक्षा से भजना है—स्यात् स-प्रदेश है, स्यात् अ-प्रदेश है।

जैसे द्रव्य की दृष्टि से स-प्रदेश की वक्तव्यता है, वैसे ही काल और भाव की दृष्टि से स-प्रदेश की वक्तव्यता है।

२०६. भन्ते! इन द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से स-प्रदेश और अप्रदेश पुद्गलों में कौन किससे कम हैं, अधिक हैं, तुल्य हैं अथवा विशेषाधिक हैं?

नारदपुत्र! भाव की अपेक्षा से अ-प्रदेश पुद्गल सबसे अल्प है, काल की अपेक्षा से अ-प्रदेश पुद्गल उनसे असंख्येय-गुना अधिक हैं, द्रव्य की अपेक्षा से अ-प्रदेश पुद्गल उनसे असंख्येय-गुना अधिक हैं, क्षेत्र की अपेक्षा से अ-प्रदेश पुद्गल उनसे असंख्येय-गुना अधिक हैं। क्षेत्र की अपेक्षा से स-प्रदेश पुद्गल उनसे असंख्येय-गुना अधिक हैं, द्रव्य की अपेक्षा से स-प्रदेश पुद्गल उनसे विशेषाधिक हैं, काल की अपेक्षा से स-प्रदेश पुद्गल उनसे विशेषाधिक हैं, भाव की अपेक्षा से स-प्रदेश पुद्गल उनसे विशेषाधिक हैं।

२०७. अनगर नारदपुत्र अनगर निर्ग्रन्थीपुत्र को वन्दन-नमस्कार करता है, वन्दन-नमस्कार कर इस अर्थ-बोध को देने में हुई परिश्रान्ति के लिए सम्यक् विनयपूर्वक बार-बार क्षमा-याचना करता है। क्षमा-याचना कर संयम और तप से अपने आपको भावित करता हुआ विहरण कर रहा है।

जीवों की वृद्धि-हानि-अवस्थिति-पद

२०८. भन्ते! इस सम्बोधन से सम्बोधित कर भगवान गौतम भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार करते हैं, वन्दन-नमस्कार कर उन्होंने इस प्रकार कहा—भन्ते! क्या जीव बढ़ते हैं? घटते हैं? अथवा अवस्थित हैं?

गौतम! जीव न बढ़ते हैं, न घटते हैं, अवस्थित हैं।

२०९. भन्ते! क्या नैरयिक-जीव बढ़ते हैं? घटते हैं? अथवा अवस्थित हैं?

गौतम! नैरयिक जीव बढ़ते भी हैं, घटते भी हैं और अवस्थित भी हैं।

२१०. जैसी वक्तव्यता नैरयिक जीवों की है वैसे ही वक्तव्यता यावत् वैमानिक-देवों तक की है।

२११. भन्ते! सिद्धों की पृच्छा।

गौतम! सिद्ध जीव बढ़ते भी हैं, घटते नहीं हैं, अवस्थित भी हैं।

२१२. भन्ते! जीव कितने काल तक अवस्थित रहते हैं?

गौतम! सर्व-काल में जीव अवस्थित रहते हैं।

२१३. भन्ते! नैरयिक-जीव कितने काल तक बढ़ते हैं?

गौतम! जघन्यतः वे एक समय तक बढ़ते हैं, उत्कर्षतः आवलिका के असंख्यातवें भाग तक।

२१४. इसी प्रकार जीव घटते भी हैं। (जघन्यतः एक समय तक, उत्कर्षतः आवलिका के असंख्यातवें भाग तक)।

२१५. भन्ते! नैरयिक-जीव कितने काल तक अवस्थित रहते हैं?

गौतम! जघन्यतः एक समय तक और उत्कर्षतः चौबीस मुहूर्त तक।

२१६. इसी प्रकार सातों पृथ्वियों में नैरयिक-जीवों की वृद्धि और हानि वक्तव्य है। विशेष अवस्थिति में यह नानात्व है, जैसे-रत्नप्रभा-पृथ्वी में अड़तालीस मुहूर्त, शर्कराप्रभा-पृथ्वी में चौदह दिन-रात, बालुकाप्रभा-पृथ्वी में एक मास, पंकप्रभा-पृथ्वी में दो मास, धूमप्रभा-पृथ्वी में चार मास, तमा-पृथ्वी में आठ मास और तमतमा-पृथ्वी में बारह मास तक अवस्थित रहते हैं।

२१७. असुरकुमार-देव भी नैरयिक-जीवों की भांति बढ़ते-घटते हैं। वे जघन्यतः एक समय और उत्कर्षतः अड़तालीस मुहूर्त तक अवस्थित रहते हैं।

२१८. इसी प्रकार दस प्रकार के भवनपति-देवों का वृद्धि-हानि- और अवस्थिति-काल वक्तव्य है।

२१९. एकेन्द्रिय-जीव बढ़ते भी हैं, घटते भी हैं और अवस्थित भी हैं। इन तीनों की वृद्धि, हानि और अवस्थिति का काल जघन्यतः एक समय और उत्कर्षतः आवलिका का असंख्यातवां भाग है।

२२०. द्वीन्द्रिय-जीव एकेन्द्रिय जीवों की भांति बढ़ते-घटते हैं। वे जघन्यतः एक समय और उत्कर्षतः दो अन्तर्मुहूर्त तक अवस्थित रहते हैं।

२२१. चतुरिन्द्रिय जीवों तक वृद्धि, हानि और अवस्थिति का यही क्रम ज्ञातव्य है।

२२२. अवशेष सब जीव एकेन्द्रिय-जीवों की भांति बढ़ते-घटते हैं। अवस्थिति का नानात्व इस प्रकार है, जैसे-सम्पुच्छिम-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिक-दो अन्तर्मुहूर्त, गर्भज-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिक-चौबीस मुहूर्त, सम्पुच्छिम-मनुष्य-अड़तालीस मुहूर्त, गर्भज-मनुष्य-चौबीस मुहूर्त, वानमन्तर, ज्योतिष्क, सौधर्म- और ईशान-देवलोक में अड़तालीस मुहूर्त, सनत्कुमार-देवलोक में अठारह दिन-रात और चालीस मुहूर्त, माहेन्द्र-देवलोक में चौबीस दिन-रात और बीस मुहूर्त, ब्रह्मलोक-देवलोक में पैंतालीस दिन-रात, लान्तक-देवलोक में नव्वे दिन-रात, महाशुक्र-देवलोक में एक सौ साठ दिन-रात, सहस्रार- देवलोक में दो सौ दिन-रात, आनत- और प्राणत-देवलोकों में संख्येय मास, आरण- और अच्युत-देवलोकों में संख्येय वर्ष, इसी प्रकार ग्रैवेयक-देवों या देवलोकों में, विजय-, वैजयन्त-, जयन्त- और अपराजित-देवलोकों में असंख्येय हजार वर्ष तथा सर्वार्थसिद्ध में पत्योपम का संख्यातवां भाग

अवस्थिति-काल है। यह पूरा प्रकरण इस प्रकार वक्तव्य है—जीवों की वृद्धि और हानि का क्रम जघन्यतः एक समय और उत्कर्षतः आवलिका का असंख्यातवा भाग है। अवस्थित-काल (सभी का जघन्यतः एक समय उत्कर्षतः) जो ऊपर बताया गया, वैसा ही है।

२२३. भन्ते! सिद्ध कितने काल तक बढ़ते हैं?

गौतम! जघन्यतः एक समय, उत्कर्षतः आठ समय।

२२४. भन्ते! सिद्ध कितने काल तक अवस्थित हैं।

गौतम! जघन्यतः एक समय, उत्कर्षतः छह मास तक।

जीवों का सोपचय-सापचय-आदि पद

२२५. भन्ते! क्या जीव उपचय-सहित है? अपचय-सहित हैं? उपचय-अपचय-सहित हैं? अथवा उपचय और अपचय से रहित हैं?

गौतम! जीव न उपचय-सहित हैं, न अपचय-सहित हैं, न उपचय-अपचय-सहित हैं वे उपचय और अपचय से रहित हैं।

एकेन्द्रिय-जीव तीसरे पद में सोपचय-सापचय हैं। शेष जीव चारों पदों में वक्तव्य हैं।

२२६. भन्ते! सिद्धों की पृच्छा।

गौतम! सिद्ध उपचय-सहित हैं, अपचय-सहित नहीं है, उपचय-अपचय-सहित नहीं है, उपचय और अपचय से रहित हैं।

२२७. भन्ते! जीव कितने काल तक उपचय और अपचय से रहित होते हैं?

गौतम! सर्व-काल।

२२८. भन्ते! नैरयिक-जीव कितने काल तक उपचय-सहित होते हैं?

गौतम! जघन्यतः एक समय, उत्कर्षतः आवलिका के असंख्यातवें भाग तक।

२२९. भन्ते! नैरयिक-जीव कितने काल तक अपचय-सहित होते हैं?

जघन्यतः एक समय, उत्कर्षतः आवलिका के असंख्यातवें भाग तक।

२३०. भन्ते! नैरयिक-जीव कितने काल तक उपचय- और अपचय-सहित होते हैं?

जघन्यतः एक समय, उत्कर्षतः आवलिका के असंख्यातवें भाग तक।

२३१. भन्ते! नैरयिक-जीव कितने काल तक उपचय- और अपचय-रहित होते हैं?

गौतम! जघन्यतः एक समय, उत्कर्षतः बारह मुहूर्त तक।

सभी एकेन्द्रिय जीव सब काल में उपचय- और अपचय-सहित होते हैं। शेष सभी जीव उपचय-सहित भी हैं, अपचय-सहित भी हैं, उपचय-अपचय-सहित भी हैं। इसकी कालावधि—जघन्यतः एक समय, उत्कर्षतः आवलिका का असंख्यातवा भाग। अवस्थित रहने का काल विरह-काल (सू. ५/२२२) की भांति वक्तव्य है।

२३२. भन्ते। सिद्ध कितने काल तक उपचय-सहित होते हैं?

गौतम! जधन्यतः एक समय, उत्कर्षतः आठ समय तक।

२३३. भन्ते! सिद्ध कितने समय तक उपचय-अपचय से रहित होते हैं?

जधन्यतः एक समय, उत्कर्षतः छह मास।

२३४. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है।

नवां उद्देशक

‘यह कौन राजगृह’ का पद

२३५. उस काल और उस समय में राजगृह नाम का नगर था यावत् गौतम स्वामी ने इस प्रकार कहा—भन्ते! यह कौन राजगृह नगर कहलाता है? क्या पृथ्वी राजगृह नगर कहलाती है? क्या जलात्मक नगर राजगृह कहलाता है? क्या अग्नि, वायु और वनस्पत्यात्मक नगर राजगृह कहलाता है? क्या टंक, कूट, शैल, शिखरी और प्राग्भारात्मक नगर राजगृह कहलाता है? क्या जल, स्थल, बिल, गुफा और लयनात्मक नगर राजगृह कहलाता है? क्या उज्झर-, निर्झर-, तलैया-, जल का छोटा गड्ढा- और जल-प्रणाली-रूप नगर राजगृह कहलाता है? क्या कुआं-, तालाब-, हद-, नदी-, बावड़ी-, पुष्करिणी-, नहर-, चक्राकार नहर-, सर-, सरपंक्ति-, सरसरपंक्ति- और बिलपंक्ति-रूप नगर राजगृह कहलाता है? क्या आराम-, उद्यान-, कानन-, वन-, वनषण्ड- और वनराजि-रूप नगर राजगृह कहलाता है? क्या देवल, सभा, प्रपा, स्तूप, खाई और परिखात्मक नगर राजगृह कहलाता है? क्या प्राकार, अट्टालक, चरिका, द्वार और गोपुरात्मक नगर राजगृह कहलाता है? क्या प्रासाद-, घर-, शरण-, लयन- और आपण-रूप नगर राजगृह कहलाता है? क्या दुराहे, तिराहे, चौराहे, चौक, चौहट्टे, महापथ और पथात्मक नगर राजगृह कहलाता है? क्या शकट-, रथ-, यान-, युग्य-, डोली-, बग्गी-, शिबिका- और स्यन्दमानिका-रूप नगर राजगृह कहलाता है? क्या तवा-, लोह-, कटाह-, करछी-रूप नगर राजगृह कहलाता है? क्या भावनात्मक नगर राजगृह कहलाता है? क्या देव-, देवी-, मनुष्य-, मानुषी-, नर-तिर्यज्व- और स्त्री-तिर्यज्व-रूप नगर राजगृह कहलाता है? क्या आसन-, शयन-, स्तम्भ-, भाण्ड-, सचित्त-, अचित्त- और मिश्र-द्रव्य-रूप नगर राजगृह कहलाता है?

गौतम! पृथ्वी भी राजगृह नगर कहलाती है यावत् सचित्त-, अचित्त-, मिश्र-द्रव्यों को भी राजगृह नगर कहा जाता है।

२३६. यह किस अपेक्षा से?

गौतम! जीवाजीवात्मक पृथ्वी राजगृह नगर कहलाती है, यावत् जीवाजीवात्मक सचित्त-, अचित्त-, मिश्र-द्रव्यों को राजगृह नगर कहा जाता है। यह इस अपेक्षा से।

उद्द्योत-अन्धकार-पद

२३७. भन्ते! क्या दिन में उद्द्योत और रात्रि में अन्धकार है?

हां, गौतम! दिन में उद्द्योत और रात्रि में अन्धकार है।

२३८. यह किस अपेक्षा से?

गौतम! दिन में शुभ-पुद्गल होते हैं और पुद्गलों का परिणमन शुभ होता है। रात्रि में अशुभ-पुद्गल होते हैं और पुद्गलों का परिणमन अशुभ होता है—यह इस अपेक्षा से।

२३९. भन्ते! नैरयिक-जीवों के क्या उद्द्योत होता है? अथवा अन्धकार?

गौतम! नैरयिक-जीवों के उद्द्योत नहीं होता, अन्धकार होता है।

१४०. यह किस अपेक्षा से?

गौतम! नैरयिक-जीवों के अशुभ-पुद्गल होते हैं और पुद्गलों का परिणमन अशुभ होता है—यह इस अपेक्षा से।

२४१. भन्ते! असुरकुमार-देवों के क्या उद्द्योत होता है? अथवा अन्धकार?

गौतम! असुरकुमार-देवों के उद्द्योत होता है, अन्धकार नहीं होता।

२४२. यह किस अपेक्षा से?

गौतम! असुरकुमार-देवों के शुभ-पुद्गल होते हैं, और पुद्गलों का परिणमन शुभ होता है—यह इस अपेक्षा से। यावत् स्तनितकुमार-देवों तक यही वक्तव्यता है।

२४३. पृथ्वीकायिक यावत् त्रीन्द्रिय जीवों की वक्तव्यता नैरयिकों की भांति ज्ञातव्य है।

२४४. भन्ते! चतुरिन्द्रिय जीवों के क्या उद्द्योत होता है? अथवा अन्धकार?

गौतम! उद्द्योत भी होता है, अन्धकार भी होता है।

२४५. यह किस अपेक्षा से?

गौतम! चतुरिन्द्रिय जीवों के शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के पुद्गल होते हैं और पुद्गलों का परिणमन शुभ और अशुभ दोनों प्रकार का होता है—यह इस अपेक्षा से।

२४६. इसी प्रकार यावत् मनुष्यों की व्यक्तव्यता।

२४७. वानमन्तर-, ज्योतिष्क- और वैमानिक-देवों की वक्तव्यता असुरकुमारों की भांति ज्ञातव्य है।

मनुष्य-क्षेत्र में समयादि-पद

२४८. भन्ते! नैरयिक मनुष्य-लोक (समयक्षेत्र) के बाहर स्थित है, इसलिए उनके विषय में क्या ऐसा प्रज्ञापन हो सकता है, जैसे—समय, आवलिका यावत् अवसर्पिणी अथवा उत्सर्पिणी होते हैं?

यह अर्थ संगत नहीं है।

२४९. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—नैरयिक मनुष्य-लोक के बाहर स्थित है, इसलिए उनके विषय में ऐसा प्रज्ञापन नहीं हो सकता, जैसे—समय, आवलिका यावत् अवसर्पिणी अथवा उत्सर्पिणी होते हैं?

गौतम! समय आदि का मान और प्रमाण मनुष्य-लोक में होता है। मनुष्य-लोक में ही उनका इस प्रकार प्रज्ञापन हो सकता है, जैसे—समय यावत् उत्सर्पिणी होते हैं। इस अपेक्षा से यावत्

नैरयिक मनुष्य-लोक के बाहर स्थित हैं, इसलिए उनके विषय में ऐसा प्रज्ञापन नहीं हो सकता, जैसे-समय यावत् उत्सर्पिणी होते हैं।

२५०. इसी प्रकार यावत् मनुष्य-लोक के बाहर स्थित पञ्चेन्द्रिय-तिर्यग्योनिक जीवों के विषय में ज्ञातव्य है।

२५१. भन्ते! मनुष्य-लोक में स्थित मनुष्यों के लिए क्या ऐसा प्रज्ञापन हो सकता है, जैसे-समय यावत् उत्सर्पिणी होते हैं।

हां, ऐसा हो सकता है।

२५२. यह किस अपेक्षा से?

गौतम! समय आदि का मान और प्रमाण मनुष्य-लोक में ही होता है, मनुष्य-लोक में ही समय यावत् उत्सर्पिणी होते हैं। यह इस अपेक्षा से।

२५३. वानमन्तर-, ज्योतिष्क- और वैमानिक-देवों के विषय में नैरयिकों की भांति वक्तव्यता।

पार्श्वपत्तीय-पद

२५४. उस काल और उस समय में पार्श्वपत्तीय स्थविर भगवान् जहां श्रमण भगवान् महावीर हैं, वहां आते हैं। वहां आकर श्रमण भगवान् महावीर के न अति दूर, न अति निकट स्थित होकर इस प्रकार बोले-भन्ते! क्या इस असंख्येयप्रदेशात्मक लोक में अनन्त रात-दिन उत्पन्न हुए हैं, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे? व्यतीत हुए हैं, व्यतीत होते हैं और व्यतीत होंगे? परीत (परिमित) रात-दिन उत्पन्न हुए हैं, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे? व्यतीत हुए हैं, व्यतीत होते हैं और व्यतीत होंगे?

हां, आर्यों! इस असंख्येयप्रदेशात्मक लोक में अनन्त रात-दिन उत्पन्न हुए हैं, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे। व्यतीत हुए हैं, व्यतीत होते हैं और व्यतीत होंगे। इसी प्रकार परीत रात-दिन उत्पन्न हुए हैं, उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे। व्यतीत हुए हैं, व्यतीत होते हैं और व्यतीत होंगे।

२५५. यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है-असंख्येयप्रदेशात्मक लोक में अनन्त रात-दिन उत्पन्न हुए हैं यावत् व्यतीत होंगे?

हे आर्यों! आपके पूर्ववर्ती पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व ने लोक को शाश्वत कहा है-अनादि, अनन्त, परीत, अलोक से परिवृत, निम्नभाग में विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त और ऊपर विशाल है। वह निम्न भाग में पर्यंक के आकार वाला, मध्य में उसकी आकृति श्रेष्ठ व्रज जैसी है और ऊपर ऊर्ध्वमुख मृदंग के आकार वाला है। उस शाश्वत, अनादि, अनन्त, परीत, अलोक से परिवृत, निम्न भाग में विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त, ऊपर विशाल, निम्न भाग में पर्यंक आकार वाले, मध्य में श्रेष्ठ वज्र और ऊपर ऊर्ध्वमुख मृदंग के आकार वाले लोक में अनन्त जीव-घन उत्पन्न हो-होकर निलीन हो जाते हैं। परीत जीव-घन उत्पन्न हो-होकर निलीन हो जाते हैं। वह लोक सदभूत, उत्पन्न, विगत और परिणत है। अजीव-पुद्गल आदि के विविध परिणामों के द्वारा जिसका लोकन किया जाता है, प्रलोकन किया जाता है, वह लोक है।

हां, भगवन्।

आर्यों! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—इस असंख्येयप्रदेशात्मक लोक में अनन्त रात-दिन उत्पन्न होते हैं—पूर्ण वक्तव्यता।

उस समय से पार्श्वपत्तीय स्थविर भगवान् श्रमण भगवान् महावीर को सर्वज्ञ और सर्वदर्शी के रूप में पहचानते हैं।

२५६. वे स्थविर भगवान् श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करते हैं, वन्दन-नमस्कार कर इस बोले—भन्ते! हम आपके पास चातुर्याम-धर्म से सप्रतिक्रमण पांच महाव्रत-रूप धर्म की उपसंपदा प्राप्त कर विहरण करना चाहते हैं।

देवानुप्रियो! तुम्हें जैसा सुख हो, प्रतिबन्ध मत करो।

२५७. वे पार्श्वपत्तीय स्थविर भगवान् चातुर्याम-धर्म से सप्रतिक्रमण पांच-महाव्रत-रूप-धर्म की उपसम्पदा प्राप्त कर विहरण कर रहे हैं। यावत् चरम उच्छ्वास-निःश्वास में सिद्ध, प्रशांत, मुक्त, परिनिवृत और सब दुःखों से प्रहीण हुए। उनमें से कुछ एक स्थविर देवलोकों में उपपन्न हुए।

देवलोक-पद

२५८. भन्ते! देवलोक के कितने प्रकार प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! देवलोक के चार प्रकार प्रज्ञप्त हैं, जैसे भवनवासी, वानमन्तर, ज्यौतिषिक और वैमानिक। भवनवासी के दश प्रकार, वानमन्तर के आठ प्रकार, ज्यौतिषिक के पांच प्रकार और वैमानिक के दो प्रकार हैं।

संग्रहणी गाथा

यह राजगृह क्या है? उद्द्योत और अन्धकार कहां है? समय आदि को कौन जानता है? पार्श्वपत्तीय स्थविरों की धृच्छा, लोक में होने वाले रात-दिन और देवलोकों का वर्णन—इस उद्देशक में है।

२५९. भन्ते! वह ऐसा ही है, भन्ते! वह ऐसा ही है।

दसवां उद्देशक

२६०. उस काल और उस समय में चम्पा नाम की नगरी थी। प्रथम उद्देशक में जो सूर्य की वक्तव्यता है, वह यहां ज्ञातव्य है। उसमें और इसमें इतना विशेष—सूर्य के स्थान पर चन्द्रमा वक्तव्य है।

• • •

छठा शतक

पहला उद्देशक

संग्रहणी गाथा

वेदना, आहार, महाश्रव, सप्रदेश, तमस्काय, भव्य, शालि, पृथ्वी, कर्म और अन्ययूथिक—
छठे शतक के दस उद्देशकों के ये प्रतिपाद्य हैं।

प्रशस्त निर्जरा का श्रेयस्त्व-पद

१. भन्ते! क्या जो महावेदना वाला है, वह महानिर्जरा वाला है? क्या जो महानिर्जरा वाला है, वह महावेदना वाला है? महावेदना वाले और अल्पवेदना वाले में क्या वह श्रेयमान् है जो प्रशस्त निर्जरा वाला है?

हां, गौतम! जो महावेदना वाला है, वह महानिर्जरा वाला है। जो महानिर्जरा वाला है, वह महावेदना वाला है। महावेदना वाले और अल्पवेदना वाले में वह श्रेष्ठ है, जो प्रशस्त निर्जरा वाला है।

२. भन्ते! छठी और सातवीं पृथ्वियों के नैरयिक क्या महावेदना वाले हैं?

हां, महावेदना वाले हैं।

३. भन्ते! क्या वे श्रमण-निर्ग्रन्थों से महानिर्जरा वाले हैं?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है।

४. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—जो महावेदना वाला है, वह महानिर्जरा वाला है? जो महानिर्जरा वाला है, वह महावेदना वाला है? महा-वेदना वाले और अल्पवेदना वाले में वह श्रेष्ठ है जो प्रशस्त निर्जरा वाला है?

गौतम! जैसे कोई दो वस्त्र हैं—एक वस्त्र कर्दम-राग से रंगा हुआ और एक वस्त्र खंजन-राग से रंगा हुआ है। गौतम! इन दोनों वस्त्रों में कौन-सा वस्त्र कठिनता से धुलता है? किस वस्त्र का धब्बा कठिनता से उतरता है और किस वस्त्र का परिकर्म सम्यक् प्रकार से नहीं होता? कौन-सा वस्त्र सरलता से धुलता है? किस वस्त्र का धब्बा सरलता से उतरता है? और किस वस्त्र का परिकर्म सम्यक् प्रकार से होता है? वह जो वस्त्र कर्दम-राग से रंगा हुआ है अथवा वह जो वस्त्र खंजनराग से रंगा हुआ है?

भगवन्! जो वस्त्र कर्दम-राग से रंगा हुआ है, वह कठिनता से धुलता है, उसके धब्बे कठिनता से उतरते हैं और उसका परिकर्म सम्यक् प्रकार से नहीं होता। गौतम! इसी प्रकार

नैरयिक जीवों के पाप-कर्म गाढ़ रूप में किए हुए होते हैं, चिकने किए हुए होते हैं, संसृष्ट किए हुए होते हैं और अलंघ्य होते हैं। वे प्रगाढ़ वेदना का वेदन करते हुए भी महानिर्जरा वाले नहीं होते, महापर्यवसान वाले नहीं होते।

जैसे कोई पुरुष अहरन (निहाई) को तेज शब्द, तेज घोष और निरन्तर तेज आघात के साथ हथौड़े से पीटता हुआ उस अहरन के स्थूल पुद्गलों का परिशाटन करने में समर्थ नहीं होता, गौतम! इसी प्रकार नैरयिक-जीवों के पाप-कर्म गाढ़रूप में किए हुए होते हैं, चिकने किए हुए होते हैं, संसृष्ट किए हुए होते हैं और अलंघ्य होते हैं। वे प्रगाढ़ वेदना का वेदन करते हुए भी महानिर्जरा वाले नहीं होते, महापर्यवसान वाले नहीं होते।

भगवन्! जो वस्त्र खंजन-राग से रंगा हुआ है, वह सरलता से धुलता है। उसके धब्बे सरलता से उतरते हैं, उसका परिकर्म सम्यक् प्रकार से होता है। गौतम! इसी प्रकार श्रमण-निर्ग्रन्थों के शिथिल रूप में किए हुए, निःसत्त्व किए हुए और विपरिणमन को प्राप्त किए हुए स्थूल कर्म-पुद्गल शीघ्र ही विध्वस्त हो जाते हैं। वे जिस-तिस मात्रा में वे वेदना का वेदन करते हुए महानिर्जरा वाले और महापर्यवसान वाले होते हैं।

गौतम! जैसे कोई पुरुष सूखे घास के पूलों को अग्नि में डालता है। वह अग्नि में डाला हुआ सुखा घास का पूला शीघ्र ही भस्म हो जाता है?

हां, भस्म हो जाता है।

गौतम! इसी प्रकार श्रमण-निर्ग्रन्थों के शिथिल रूप में किए हुए, निःसत्त्व किए हुए और विपरिणमन को प्राप्त किए हुए स्थूल कर्म-पुद्गल शीघ्र ही विध्वस्त हो जाते हैं। वे जिस-तिस मात्रा में भी वेदना का वेदन करते हुए महानिर्जरा वाले और महापर्यवसान वाले होते हैं।

गौतम! जैसे कोई पुरुष तपे हुए लोहे के तवे पर पानी की एक बूंद गिराता है। वह तपे हुए लोहे के तवे पर गिराई हुई पानी की एक बूंद शीघ्र ही विध्वस्त हो जाती है?

हां, विध्वस्त हो जाती है।

गौतम! इस प्रकार श्रमण-निर्ग्रन्थों के शिथिल रूप में किए हुए, निःसत्त्व किए हुए और विपरिणमन को प्राप्त किए हुए स्थूल कर्म-पुद्गल शीघ्र ही विध्वस्त हो जाते हैं। वे जिस-तिस मात्रा में भी वेदना का वेदन करते हुए महानिर्जरा वाले और महापर्यवसान वाले होते हैं। इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—जो महावेदना वाला है, वह महानिर्जरा वाला है, जो महानिर्जरा वाला है, वह महावेदना वाला है। महावेदना वाले और अल्पवेदना वाले में वह श्रेष्ठ है जो प्रशस्त निर्जरा वाला है।

करण-पद

५. भन्ते! करण के कितने प्रकार प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! करण के चार प्रकार प्रज्ञप्त हैं, जैसे—मन-करण, वचन-करण, काय-करण और कर्म-करण।

६. भन्ते! नैरयिक जीवों के करण कितने प्रकार के प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! उनके चारों प्रकार के करण प्रज्ञप्त हैं, जैसे—मन-करण, वचन-करण, काय-करण और कर्म-करण।

७. इस प्रकार सब पंचेन्द्रिय-जीवों के चारों प्रकार के करण प्रज्ञप्त हैं।

एकेन्द्रिय-जीवों के करण दो प्रकार के हैं—काय-करण और कर्म-करण।

विकलेन्द्रिय-जीवों के करण तीन प्रकार के हैं—वचन-करण, काय-करण और कर्म-करण।

८. भन्ते! क्या नैरयिक-जीव करण से असात-वेदना का वेदन करते हैं अथवा अकरण से असात-वेदना का वेदन करते हैं?

गौतम! नैरयिक-जीव करण से असात-वेदना का वेदन करते हैं, अकरण से असात-वेदना का वेदन नहीं करते।

९. यह किस अपेक्षा से?

गौतम! नैरयिक-जीवों के चार प्रकार के करण प्रज्ञप्त हैं, जैसे—मन-करण, वचन-करण, काय-करण और कर्म-करण। इस चतुर्विध अशुभ-करण के आधार पर यह कहा जाता है—नैरयिक-जीव करण से असात-वेदना का वेदन करते हैं, अकरण से असात-वेदना का वेदन नहीं करते।

इस अपेक्षा से।

१०. असुरकुमार-देव क्या करण से वेदना का वेदन करते हैं? अथवा अकरण से?

गौतम! वे करण से वेदना का वेदन करते हैं, अकरण से वेदना का वेदन नहीं करते।

११. यह किस अपेक्षा से?

गौतम! असुरकुमार-देवों के करण चार प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—मन-करण, वचन-करण, काय-करण और कर्म-करण। इस शुभ-करण के आधार पर कहा जाता है—असुरकुमार-देव करण से सात-वेदना का वेदन करते हैं, अकरण से सात-वेदना का वेदन नहीं करते।

१२. इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार-देवों की वक्तव्यता।

१३. पृथ्वीकायिक-जीवों की पृच्छा इसी प्रकार है, केवल इतना अन्तर है—इस शुभाशुभ-करण के आधार पर कहा जाता है—पृथ्वीकायिक-जीव करण से विमात्र—कभी सात- कभी असात-वेदना का वेदन करते हैं, अकरण से विमात्र वेदना का वेदन नहीं करते।

१४. औदारिक शरीर वाले सभी जीव शुभ- और अशुभ-करण से विमात्र वेदना का वेदन करते हैं।

देव शुभ-करण से सात-वेदना का वेदन करते हैं।

महावेदना-महानिर्जरा-चतुर्भग-पद

१५. भन्ते! क्या जीव महावेदना और महानिर्जरा वाले हैं? महावेदना और अल्पनिर्जरा वाले हैं? अल्पवेदना और महानिर्जरा वाले हैं? अल्पवेदना और अल्पनिर्जरा वाले हैं।

गौतम! कुछ जीव महावेदना और महानिर्जरा वाले हैं, कुछ जीव महावेदना और अल्पनिर्जरा

वाले हैं, कुछ जीव अल्पवेदना और महानिर्जरा वाले हैं, कुछ जीव अल्पवेदना और अल्पनिर्जरा वाले हैं।

१६. यह किस अपेक्षा से?

गौतम! प्रतिमा-प्रतिपन्न अनगार महावेदना और महानिर्जरा वाले हैं। छठी-सातवीं नरक भूमियों के नैरयिक जीव महावेदना और अल्पनिर्जरा वाले हैं। शैलेशी-अवस्था को प्रतिपन्न अनगार अल्पवेदना और महानिर्जरा वाले हैं। अनुत्तरोपपातिक-देव अल्पवेदना और अल्पनिर्जरा वाले हैं।

१७. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है।

संग्रहणी गाथा

महावेदना, कर्दम और खञ्जन से रंगा हुआ वस्त्र, अहरन, पूला, लोह का तवा, करण और महावेदना वाले जीव—प्रथम उद्देशक में ये विषय वर्णित हैं।

दूसरा उद्देशक

१८. राजगृह नाम का नगर यावत् गौतम ने इस प्रकार कहा—पण्णवणा (पद २८) का जो आहार-उद्देशक है, वह यहां अविकल रूप से ज्ञातव्य है।

भन्ते! नैरयिक-जीव क्या सचित्त-आहार वाले हैं, अचित्त-आहार वाले हैं अथवा मिश्र-आहार वाले हैं?

१९. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है।

तृतीय उद्देशक

संग्रहणी गाथा

बहुकर्म, प्रयोग और स्वभाव से वस्त्र का उपचय—वस्त्र में पुद्गल के उपचय का सादित्व, कर्मस्थिति, स्त्री, संयत, सम्यग्-दृष्टि, संज्ञी, भव्य, दर्शनी, पर्याप्तक, भाषक, परीत, ज्ञानी, योगी, उपयोगी, आहारक, सूक्ष्म, चरम-बन्ध और अल्पबहुत्व।

तीसरे उद्देशक में ये विषय प्रतिपाद्य हैं।

महा-कर्म वाले आदि के पुद्गल-बन्ध-पद

२०. भन्ते! क्या महा-कर्म, महा-क्रिया, महा-आश्रव और महा-वेदना वाले पुरुष के सब ओर से पुद्गलों का बन्ध होता है? सब ओर से पुद्गलों का चय होता है? सब ओर से पुद्गलों का उपचय होता है? सदा प्रतिक्षण पुद्गलों का बन्ध होता है? सदा प्रतिक्षण पुद्गलों का चय होता है? सदा प्रतिक्षण पुद्गलों का उपचय होता है? उस पुरुष की आत्मा (शरीर) सदा प्रतिक्षण बीभत्स, दुर्वर्ण, दुर्गन्ध, दूरा, दुःस्पर्श, अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अशुभ, अमनोज्ञ, अकमनीय, अवाञ्छनीय, अलोभनीय और जघन्य-रूप में—न ऊर्ध्व-रूप में, दुःख-रूप में—न सुख-रूप में बार-बार परिणत होती है?

हां, गौतम! महा-कर्म, महा-क्रिया, महा-आश्रव और महा-वेदना वाले पुरुष की आत्मा (शरीर) का परिणमन ऐसा ही होता है।

२१. यह किस अपेक्षा से?

गौतम! जैसे कोई वस्त्र अपरिभुक्त है, प्रक्षालित है अथवा तन्त्र (करघा) से तत्काल निकला हुआ है। वह पहना जा रहा है तब कालक्रम से उसके सब ओर से पुद्गलों का बन्ध होता है, सब ओर से पुद्गलों का चय होता है यावत् परिणमन होता है। यह इस अपेक्षा से।

अल्पकर्म वाले आदि के पुद्गल-भेद का पद

२२. भन्ते! क्या अल्प-कर्म, अल्प-क्रिया, अल्प-आश्रव और अल्प-वेदना वाले पुरुष के सब ओर से पुद्गलों का भेदन होता है? सब ओर से पुद्गलों का छेदन होता है? सब ओर से पुद्गलों का विध्वंस होता है? सब ओर से पुद्गलों का परिविध्वंस होता है? सदा प्रतिक्षण पुद्गलों का भेदन होता है? सदा प्रतिक्षण पुद्गलों का छेदन होता है? सदा प्रतिक्षण पुद्गलों का विध्वंस होता है? सदा प्रतिक्षण पुद्गलों का परिविध्वंस होता है? उस पुरुष की आत्मा सदा प्रतिक्षण सुरूप, सुवर्ण, सुगन्ध, सुरस, सुस्पर्श, इष्ट, कान्त, प्रिय, शुभ, मनोज्ञ, कमनीय, वाञ्छनीय, लोभनीय और ऊर्ध्व-रूप में—न जघन्य-रूप में सुख-रूप में—न दुःख-रूप में बार-बार परिणत होती है।

हां, गौतम! यावत् परिणत होती है।

२३. यह किस अपेक्षा से?

गौतम! जैसे कोई वस्त्र शरीर के मल, आर्द्रमल, कठिनमल और रजकरणों से सना हुआ हो उसका परिकर्म करने पर और शुद्ध जल से धोने पर कालक्रम से उसके सब ओर से पुद्गलों का भेदन होता है, यावत् शुद्धरूप में परिणमन होता है। यह इस अपेक्षा से।

कर्मोपचय-पद

२४. भन्ते! वस्त्र के पुद्गलों का उपचय क्या प्रयोग से होता है? अथवा स्वभाव से होता है?

गौतम! प्रयोग से भी होता है और स्वभाव से भी होता है।

२५. भन्ते! जैसे वस्त्र के पुद्गलों का उपचय प्रयोग से भी होता है और स्वभाव से भी होता है, उसी प्रकार जीवों के कर्मों का उपचय प्रयोग से होता है? अथवा स्वभाव से होता है?

गौतम! प्रयोग से होता है, स्वभाव से नहीं होता।

२६. यह किस अपेक्षा से?

गौतम! जीवों के तीन प्रकार के प्रयोग प्रज्ञप्त हैं—जैसे मन-प्रयोग, वचन-प्रयोग और काय-प्रयोग। इस त्रिविध प्रयोग के आधार पर जीवों के कर्मों का उपचय प्रयोग से होता है, स्वभाव से नहीं होता है। इसी प्रकार सब पंचेन्द्रिय-जीवों के तीन प्रकार के प्रयोग वक्तव्य है।

पृथ्वीकायिक-जीवों के एक प्रकार के प्रयोग से कर्मों का उपचय होता है। इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक जीवों की वक्तव्यता।

विकलेन्द्रिय-जीवों के दो प्रकार का प्रयोग वक्तव्य है—वचन-प्रयोग और काय-प्रयोग। इस

द्विविध प्रयोग के आधार पर विकलेन्द्रिय-जीवों के कर्मों का उपचय प्रयोग से होता है, स्वभाव से नहीं होता। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—जीवों के कर्मों का उपचय प्रयोग से होता है, स्वभाव से नहीं होता। इस प्रकार यावत् वैमानिक-देवों तक जिसके जो प्रयोग है उससे कर्मों का उपचय वक्तव्य है।

कर्मोपचय का सादि-अनादि-पद

२७. भन्ते! वस्त्र के पुद्गलों का उपचय सादि-सपर्यवसित है? सादि-अपर्यवसित है? अनादि-सपर्यवसित है? अनादि-अपर्यवसित है?

गौतम! वस्त्र के पुद्गलों का उपचय सादि-सपर्यवसित है, सादि-अपर्यवसित नहीं है, अनादि-सपर्यवसित नहीं है, अनादि-अपर्यवसित नहीं है।

२८. भन्ते! जैसे वस्त्र के पुद्गलों का उपचय सादि-सपर्यवसित है, सादि-अपर्यवसित नहीं है, अनादि-सपर्यवसित नहीं है, अनादि-अपर्यवसित नहीं है, उसी प्रकार जीवों के कर्मोपचय के संबंध में प्रश्न है।

गौतम! कुछ जीवों के कर्मों का उपचय सादि-सपर्यवसित है, कुछ जीवों के कर्मों का उपचय अनादि-सपर्यवसित है, कुछ जीवों के कर्मों का उपचय अनादि-अपर्यवसित है, पर जीवों के कर्मों का उपचय सादि-अपर्यवसित नहीं होता।

२९. यह किस अपेक्षा से?

गौतम! ईर्यापथिक-कर्म बांधने वाले कर्मों का उपचय सादि-सपर्यवसित है, भवसिद्धिक-जीवों के कर्मों का उपचय अनादि-सपर्यवसित है, अभवसिद्धिक-जीवों के कर्मों का उपचय अनादि-अपर्यवसित है। इस अपेक्षा से।

३०. भन्ते! क्या वस्त्र सादि-सपर्यवसित है? सादि-अपर्यवसित है? अनादि-सपर्यवसित है? अथवा अनादि-अपर्यवसित है?

गौतम! वस्त्र सादि-सपर्यवसित है। शेष तीनों भंग (विकल्प) प्रतिषेधनीय है—सादि-अपर्यवसित नहीं है, अनादि-सपर्यवसित नहीं है और अनादि-अपर्यवसित नहीं है।

३१. भन्ते! जैसे वस्त्र सादि-सपर्यवसित है, सादि-अपर्यवसित नहीं है, अनादि-अपर्यवसित नहीं है और अनादि-सपर्यवसित नहीं है, वैसे ही क्या जीव भी सादि-सपर्यवसित हैं? सादि-अपर्यवसित हैं? अनादि-सपर्यवसित हैं? अथवा अनादि-अपर्यवसित हैं?

गौतम! कुछ जीव सादि-सपर्यवसित हैं। कुछ जीव सादि-अपर्यवसित हैं। कुछ जीव अनादि-सपर्यवसित हैं। कुछ जीव अनादि-अपर्यवसित हैं।

३२. यह किस अपेक्षा से?

गौतम! नैरयिक, तिर्यग्योनिक, मनुष्य और देव गति-आगति अपेक्षा सादि-सपर्यवसित हैं। सिद्ध-गति की अपेक्षा सादि-अपर्यवसित हैं। भवसिद्धिक-जीव भव्यत्व-लब्धि की अपेक्षा अनादि-सपर्यवसित हैं, अभवसिद्धिक-जीव संसार (जन्म-मरण) की अपेक्षा अनादि-अपर्यवसित हैं। इस अपेक्षा से।

कर्म-प्रकृति-बंध-विवेचन-पद

३३. भन्ते! कर्म-प्रकृतियां कितनी प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! आठ कर्म प्रकृतियां प्रज्ञप्त हैं, जैसे ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र, अन्तराय।

३४. भन्ते! ज्ञानावरणीय-कर्म की बंध-स्थिति कितने काल की प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कर्षतः तीस कोटाकोटि सागरोपम है। इसका अबाधाकाल तीन हजार वर्ष का है। अबाधाकाल जितनी न्यून कर्म-स्थिति कर्म-निषेक (कर्म-दलिकों के अनुभव के लिए होने वाली विशिष्ट प्रकार की रचना) का काल है।

दर्शनावरणीय कर्म की बंध-स्थिति जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कर्षतः तीस कोटाकोटि सागरोपम है। इसका अबाधाकाल तीन हजार वर्ष का है। अबाधाकाल जितनी न्यून कर्म-स्थिति कर्म-निषेक का काल है।

वेदनीय-कर्म की बन्ध-स्थिति जघन्यतः दो समय, उत्कर्षतः तीस कोटाकोटि सागरोपम है। इसका अबाधाकाल तीन हजार वर्ष का है। अबाधाकाल जितनी न्यून कर्म-स्थिति कर्म-निषेक का काल है।

मोहनीय-कर्म की बंध-स्थिति जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कर्षतः सत्तर कोटाकोटि सागरोपम है। इसका अबाधाकाल सात हजार वर्ष का है। अबाधाकाल जितनी न्यून कर्म-स्थिति कर्म-निषेक का काल है।

आयुष्य-कर्म की बंध स्थिति जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कर्षतः कोटिपूर्व का एक तिहाई भाग अधिक तेतीस सागरोपम है। कर्मस्थिति घटाव पूर्वकोटि का तीसरा भाग (यानि तेतीस सागर) कर्म-निषेक का काल है।

नाम-कर्म और गोत्र-कर्म की बंध-स्थिति जघन्यतः आठ मुहूर्त्त, उत्कर्षतः कोटाकोटि सागरोपम है। उनका अबाधाकाल दो हजार वर्ष का है। अबाधाकाल जितनी न्यून कर्म-स्थिति कर्म-निषेक का काल है।

अन्तराय-कर्म की बंध-स्थिति जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कर्षतः तीस कोटाकोटि सागरोपम है। इसका अबाधाकाल तीन हजार वर्ष का है। अबाधाकाल जितनी न्यून कर्म-स्थिति कर्म-निषेक का काल है।

३५. भन्ते! ज्ञानावरणीय-कर्म का बंध क्या स्त्री करती है? पुरुष करता है? नपुंसक करता है, नोस्त्री-नोपुरुष-नोनपुंसक करता है?

गौतम! स्त्री भी ज्ञानावरणीय-कर्म का बंध करती है, पुरुष भी करता है, नपुंसक भी करता है; नोस्त्री-नोपुरुष-नोनपुंसक स्यात् बंध करता है, स्यात् बंध नहीं करता।

इस प्रकार आयुष्य-कर्म को छोड़कर सातों ही कर्म-प्रकृतियों के बंध की वक्तव्यता करें।

३६. भन्ते! आयुष्य-कर्म का बंध क्या स्त्री करती है? पुरुष करता है? नपुंसक करता है? नोस्त्री-नोपुरुष-नोनपुंसक करता है?

गौतम! आयुष्य-कर्म का बंध स्त्री स्यात् करती है, स्यात् नहीं करती। पुरुष स्यात् करता है, स्यात् नहीं करता। नपुंसक स्यात् करता है, स्यात् नहीं करता। नोस्त्री-नोपुरुष-नोनपुंसक आयुष्य-कर्म का बंध नहीं करता।

३७. भन्ते! ज्ञानावरणीय-कर्म का बंध क्या संयत करता है? असंयत करता है? संयतासंयत करता है? नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत करता है?

गौतम! संयत ज्ञानावरणीय-कर्म का बंध स्यात् करता है, स्यात् नहीं करता। असंयत बंध करता है, संयतासंयत भी बंध करता है। नोसंयत-नोअसंयत-नो-संयतासंयत बंध नहीं करता।

इसी प्रकार आयुष्य-कर्म को छोड़कर सातों ही कर्म-प्रकृतियों के बंध की वक्तव्यता। प्रथम तीनों-संयत, असंयत और संयतासंयत आयुष्य-कर्म का बंध स्यात् करते हैं, स्यात् नहीं करते। चौथा भंग-नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत नहीं करता।

३८. भन्ते! ज्ञानावरणीय-कर्म का बंध सम्यग्-दृष्टि करता है? मिथ्या-दृष्टि करता है? सम्यग्-मिथ्या-दृष्टि करता है?

गौतम! सम्यग्-दृष्टि ज्ञानावरणीय-कर्म का बंध स्यात् करता है, स्यात् नहीं करता, मिथ्या-दृष्टि बंध करता है, सम्यग्-मिथ्या-दृष्टि बंध करता है।

इसी प्रकार आयुष्य को छोड़ कर सातों ही कर्म-प्रकृतियों के बंध की वक्तव्यता। प्रथम दोनों-सम्यग्-दृष्टि और मिथ्या-दृष्टि आयुष्य-कर्म का बन्ध स्यात् करते हैं, स्यात् नहीं करते। सम्यग्-मिथ्या-दृष्टि नहीं करता।

३९. भन्ते! ज्ञानावरणीय-कर्म का बन्ध क्या संज्ञी (समनस्क) करता है? असंज्ञी (अमनस्क) करता है? नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी (केवली और सिद्ध) करता है?

गौतम! संज्ञी ज्ञानावरणीय-कर्म का बंध स्यात् करता है, स्यात् नहीं करता। असंज्ञी बन्ध करता है। नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी बन्ध नहीं करता।

इसी प्रकार वेदनीय-कर्म और आयुष्य-कर्म को छोड़ कर छह कर्म-प्रकृतियों के बन्ध की वक्तव्यता। प्रथम दोनों-संज्ञी और असंज्ञी वेदनीय-कर्म का बन्ध करते हैं; तीसरा-नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी स्यात् बन्ध करता है, स्यात् नहीं करता। प्रथम दोनों-संज्ञी और असंज्ञी आयुष्य-कर्म का बन्ध स्यात् करते हैं, स्यात् नहीं करते। तीसरा-नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी बन्ध नहीं करता।

४०. भन्ते! ज्ञानावरणीय-कर्म का बन्ध क्या भविसिद्धिक करता है? अभवसिद्धिक करता है? नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक करता है?

गौतम! भविसिद्धिक ज्ञानावरणीय-कर्म का बन्ध स्यात् करता है, स्यात् नहीं करता। अभवसिद्धिक बंध करता है। नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक बन्ध नहीं करता।

इसी प्रकार आयुष्य-कर्म को छोड़ कर सातों ही कर्म-प्रकृतियों के बंध की वक्तव्यता। प्रथम दोनों-भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक आयुष्य-कर्म का बन्ध स्यात् करते हैं, स्यात् नहीं करते। नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक बन्ध नहीं करता।

४१. भन्ते! ज्ञानावरणीय-कर्म का बन्ध क्या चक्षुदर्शनी करता है? अचक्षुदर्शनी करता है? अवधिदर्शनी करता है? केवलदर्शनी करता है?

गौतम! प्रथम तीनों—चक्षु-दर्शनी, अचक्षु-दर्शनी और अवधि-दर्शनी ज्ञानावरणीय-कर्म का बंध स्यात् करते हैं, स्यात् नहीं करते। केवल-दर्शनी बन्ध नहीं करता। इसी प्रकार वेदनीय-कर्म को छोड़ कर सातों ही कर्म-प्रकृतियों के बन्ध की वक्तव्यता। प्रथम तीनों वेदनीय-कर्म का बन्ध करते हैं। केवल-दर्शनी स्यात् बन्ध करता है, स्यात् नहीं करता।

४२. भन्ते! ज्ञानावरणीय-कर्म का बन्ध क्या पर्याप्तक करता है? अपर्याप्तक करता है? नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक करता है?

गौतम! पर्याप्तक ज्ञानावरणीय-कर्म का बन्ध स्यात् करता है, स्यात् नहीं करता। अपर्याप्तक करता है। नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक नहीं करता।

इसी प्रकार आयुष्य-कर्म को छोड़ कर सातों ही कर्म-प्रकृतियों के बंध की वक्तव्यता। आयुष्य-कर्म का बन्ध प्रथम दोनों—पर्याप्तक और अपर्याप्तक स्यात् करते हैं, स्यात् नहीं करते। नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक नहीं करता।

४३. भन्ते! ज्ञानावरणीय-कर्म का बन्ध क्या भाषक (भाषा-पर्याप्ति-सम्पन्न) करता है? अभाषक करता है?

गौतम! दोनों ही स्यात् करते हैं, स्यात् नहीं करते। इसी प्रकार वेदनीय-कर्म को छोड़ कर सात कर्म-प्रकृतियों के बंध की वक्तव्यता। वेदनीय-कर्म का बन्ध भाषक करता है। अभाषक स्यात् करता है, स्यात् नहीं करता।

४४. भन्ते! ज्ञानावरणीय-कर्म का बन्ध क्या परीत करता है? अपरीत करता है? नोपरीत-नोअपरीत करता है?

गौतम! परीत ज्ञानावरणीय-कर्म का बन्ध स्यात् करता है, स्यात् नहीं करता। अपरीत करता है। नोपरीत-नोअपरीत नहीं करता।

इसी प्रकार आयुष्य-कर्म को छोड़ कर सातों ही कर्म-प्रकृतियों के बन्ध की वक्तव्यता। आयुष्य-कर्म का बंध परीत और अपरीत दोनों स्यात् करते हैं, स्यात् नहीं करते। नोपरीत-नोअपरीत नहीं करता।

४५. भन्ते! ज्ञानावरणीय-कर्म का बन्ध क्या आभिनिबोधिक-ज्ञानी करता है? श्रुत-ज्ञानी करता है? अवधि-ज्ञानी करता है? मनःपर्यव-ज्ञानी करता है? केवल-ज्ञानी करता है?

गौतम! प्रथम चारों—आभिनिबोधिक-ज्ञानी, श्रुत-ज्ञानी, अवधि-ज्ञानी और मनः-पर्यवज्ञानी स्यात् ज्ञानावरणीय-कर्म का बन्ध करते हैं, स्यात् नहीं करते। केवल-ज्ञानी बंध नहीं करता।

इसी प्रकार वेदनीय-कर्म को छोड़ कर सातों ही कर्म-प्रकृतियों के बंध की वक्तव्यता। वेदनीय-कर्म का बन्ध प्रथम चारों करते हैं। केवल-ज्ञानी स्यात् करता है, स्यात् नहीं करता।

४६. भन्ते! ज्ञानावरणीय-कर्म का बंध क्या मति-अज्ञानी करता है? श्रुत-अज्ञानी करता है? विभंग-ज्ञानी करता है?

गौतम! आयुष्य-कर्म को छोड़ कर सातों ही कर्म-प्रकृतियों का बन्ध वे करते हैं, आयुष्य-कर्म का बंध स्यात् करते हैं, स्यात् नहीं करते।

४७. भन्ते! ज्ञानावरणीय-कर्म का बंध क्या मन-योगी करता है? वचन-योगी करता है? काय-योगी करता है? अयोगी करता है?

गौतम! प्रथम तीनों स्यात् ज्ञानावरणीय-कर्म का बंध करते हैं, स्यात् नहीं करते। अयोगी नहीं करता।

इसी प्रकार वेदनीय-कर्म को छोड़ कर सातों ही कर्म-प्रकृतियों के बंध की वक्तव्यता। वेदनीय-कर्म का बन्ध प्रथम तीनों करते हैं, अयोगी नहीं करता।

४८. भन्ते! ज्ञानावरणीय-कर्म का बन्ध क्या साकार-उपयोग वाला करता है? अनाकार-उपयोग वाला करता है?

गौतम! आठों ही कर्म-प्रकृतियों का बन्ध वे स्यात् करते हैं, स्यात् नहीं करते।

४९. भन्ते! ज्ञानावरणीय-कर्म का बन्ध क्या आहारक करता है? अनाहारक करता है?

गौतम! दोनों स्यात् करते हैं, स्यात् नहीं करते। इसी प्रकार वेदनीयकर्म- और आयुष्य-कर्म को छोड़ कर छह कर्म-प्रकृतियों के बन्ध की वक्तव्यता। वेदनीय-कर्म का बन्ध आहारक करता है। अनाहारक स्यात् करता है, स्यात् नहीं करता। आयुष्य कर्म का बन्ध आहारक स्यात् करता है, स्यात् नहीं करता। अनाहारक नहीं करता।

५०. भन्ते! ज्ञानावरणीय-कर्म का बन्ध क्या सूक्ष्म करता है? बादर करता है? नोसूक्ष्म-नोबादर करता है?

गौतम! सूक्ष्म बन्ध करता है। बादर स्यात् करता है, स्यात् नहीं करता। नोसूक्ष्म-नोबादर नहीं करता।

इसी प्रकार आयुष्य-कर्म को छोड़कर सातों ही कर्म-प्रकृतियों के बंध की वक्तव्यता। आयुष्य-कर्म का बंध सूक्ष्म और बादर स्यात् करते हैं, स्यात् नहीं करते। नोसूक्ष्म-नोबादर नहीं करता।

५१. भन्ते! ज्ञानावरणीय-कर्म का बन्ध क्या चरम करता है? अचरम करता है?

गौतम! आठों ही कर्म-प्रकृतियों का बन्ध स्यात् करता है, स्यात् नहीं करता।

वेदक-अवेदक जीवों का अल्पबहुत्व-पद

५२. भन्ते! स्त्री-वेदक, पुरुष-वेदक, नपुंसक-वेदक और अवेदक जीवों में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

गौतम! पुरुष-वेदक सबसे अल्प हैं, स्त्री-वेदक उनसे संख्येयगुना हैं, अवेदक उससे अनन्त-गुना हैं, नपुंसक-वेदक उनसे अनन्त-गुना हैं।

इन सब पदों (संयत आदि) का अल्पबहुत्व उच्चारणीय है यावत् अचरम जीव सबसे अल्प हैं, चरम उनसे अनन्त-गुना हैं।

५३. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है।

चौथा उद्देशक

काल की अपेक्षा सप्रदेश-अप्रदेश-पद

५४. भन्ते! जीव काल की अपेक्षा क्या सप्रदेश है? अप्रदेश है?

गौतम! नियमतः सप्रदेश है।

५५. भन्ते! नैरयिक-जीव काल की अपेक्षा क्या सप्रदेश है? अप्रदेश है?

गौतम! स्यात् सप्रदेश है, स्यात् अप्रदेश है।

५६. इसी प्रकार यावत् सिद्ध की वक्तव्यता।

५७. भन्ते! जीव काल की अपेक्षा क्या सप्रदेश है? अप्रदेश है?

गौतम! नियमतः सप्रदेश हैं।

५८. भन्ते! नैरयिक-जीव काल की अपेक्षा क्या सप्रदेश हैं? अप्रदेश हैं?

गौतम! १. सभी जीव सप्रदेश हैं २. अथवा अनेक जीव सप्रदेश हैं और एक जीव अप्रदेश है ३. अथवा अनेक जीव सप्रदेश हैं और अनेक जीव अप्रदेश हैं।

५९. इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार-देवों की वक्तव्यता।

६०. भन्ते! पृथ्वीकायिक-जीव क्या सप्रदेश है? अप्रदेश है?

गौतम! सप्रदेश भी हैं, अप्रदेश भी हैं।

६१. इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक जीवों की वक्तव्यता।

६२. शेष सिद्धों तक सभी जीव नैरयिक-जीवों की भांति वक्तव्य हैं।

६३. आहारक जीवों में जीव-पद और एकेन्द्रिय-पद को छोड़कर तीन भंग होते हैं। अनाहारक जीवों में बहुवचनान्त जीव-पद और एकेन्द्रिय-पद को छोड़कर छह भंग इस प्रकार हैं—१. अनेक जीव सप्रदेश हैं २. अनेक जीव अप्रदेश हैं ३. अथवा एक जीव सप्रदेश हैं, एक जीव अप्रदेश है। ४. अथवा एक जीव सप्रदेश है, अनेक जीव अप्रदेश हैं। ५. अथवा अनेक जीव सप्रदेश है, एक जीव अप्रदेश है। ६. अथवा अनेक जीव सप्रदेश हैं, अनेक जीव अप्रदेश हैं। सिद्ध जीवों में तीन भंग होते हैं।

भवसिद्धिक- और अभवसिद्धिक-जीव औधिक जीवों की भांति वक्तव्य हैं। नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक जीव और सिद्ध के तीन-तीन भंग होते हैं।

जीव आदि पदों (जीव तथा नैरयिक आदि दण्डकों) में संज्ञी-जीवों के तीन भंग होते हैं। असंज्ञी-जीवों में एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग होते हैं। नैरयिक, देव और मनुष्यों में छह भंग होते हैं। नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी जीवों में जीव, मनुष्य और सिद्ध के तीन-तीन भंग होते हैं।

लेश्या-युक्त-जीवों की भंग-व्यवस्था औधिक जीव की भांति वक्तव्य है। कृष्ण-लेश्या वाले नील-लेश्या वाले और कापोत-लेश्या वाले जीवों की भंग-व्यवस्था आहारक की भांति वक्तव्य है। केवल इतना विशेष है—जिन दण्डकों में ये लेश्याएं उपलब्ध हैं। तैजस-लेश्या

वाले जीवों के जीव आदि पदा (नारक, तेजो, वायु, विकलेन्द्रिय और सिद्ध को वर्ज कर) में तीन भंग होते हैं। केवल इतना विशेष है—पृथ्वीकायिक, अप्कायिक और वनस्पतिकायिक जीवों में छह भंग होते हैं। पद्म-लेश्या और शुक्ल-लेश्या वाले जीवों के जीव आदि पदों (पंचेन्द्रिय-तिर्यक्-, मनुष्य- और वैमानिक-पदों) में तीन भंग होते हैं। लेश्या-रहित जीव और सिद्धों में तीन भंग होते हैं। मनुष्य में छह भंग होते हैं।

सम्यग्-दृष्टि जीवों के जीव आदि पदों में तीन भंग होते हैं। विकलेन्द्रिय जीवों में छह भंग होते हैं। मिथ्या-दृष्टि जीवों में एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग होते हैं। सम्यक्-मिथ्या-दृष्टि जीवों में छह भंग होते हैं। संयत जीवों के जीव आदि पदों में तीन भंग होते हैं। असंयत जीवों में एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग होते हैं। संयतासंयत जीवों के जीव आदि पदों में तीन भंग होते हैं। नोसंयत-नोअसंयत-नोसंयतासंयत, जीव और सिद्धों में तीन भंग होते हैं।

सकषायी-जीवों के जीव आदि पदों में तीन भंग होते हैं। एकेन्द्रिय-जीवों में कोई भंग नहीं होता। क्रोध-कषायी-जीवों में जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग होते हैं। देवों में छह भंग होते हैं। मान-कषायी- और माया-कषायी-जीवों में जीव तथा एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग होते हैं। नरयिकों में और देवों में छह भंग होते हैं। लोभ-कषायी-जीवों में जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग होते हैं। नैरयिकों में छह भंग होते हैं। अकषायी-जीव और मनुष्यों तथा सिद्धों में तीन भंग होते हैं।

औधिकज्ञानी, आभिनिबोधिक-ज्ञानी और श्रुत-ज्ञानी के जीव आदि पदों में तीन भंग होते हैं। विकलेन्द्रिय-जीवों में छह भंग होते हैं। अवधिज्ञानी, मनः-पर्यवज्ञानी और केवल-ज्ञानी के जीव आदि पदों में तीन भंग होते हैं।

औधिक अज्ञानी, मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी में एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग होते हैं। विभंग-ज्ञानी के जीव आदि पदों में तीन भंग होते हैं।

सयोगी औधिक जीव की भांति वक्तव्य है। मन-योगी, वचन-योगी, काय-योगी के जीव आदि पदों के तीन भंग होते हैं। केवल इतना विशेष है—काय-योगी एकेन्द्रिय जीवों में कोई भंग नहीं होता। अयोगी लेश्या-रहित जीवों की भांति वक्तव्य है।

साकारोपयोग वाले और अनाकारोपयोग वाले जीवों में जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग होते हैं। सवेदक सकषाय-जीवों की भांति वक्तव्य है। स्त्री-वेदक-, पुरुष-वेदक- और नपुंसक-वेदक-जीवों के जीव आदि पदों में तीन भंग होते हैं। केवल इतना विशेष है: नपुंसक-वेदक-एकेन्द्रिय-जीवों में कोई भंग नहीं होता। अवेदक अकषायी की भांति वक्तव्य है।

सशरीर औधिक जीव की भांति वक्तव्य है। औदारिक- और वैक्रिय-शरीरी-जीवों में जीव और एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग होते हैं। आहारक-शरीरी-जीव और मनुष्य में छह भंग होते हैं। तैजस- और कर्मक-शरीरी औधिक जीव की भांति वक्तव्य है। अशरीर-जीव और सिद्धों में तीन भंग होते हैं।

आहार-पर्याप्ति, शरीर-पर्याप्ति, इन्द्रिय-पर्याप्ति और आनापान-पर्याप्ति वाले जीवों में जीव तथा एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग होते हैं। भाषा- और मन-पर्याप्ति वाले जीव संज्ञी-जीव

की भांति वक्तव्य हैं। आहार-अपर्याप्ति वाले जीव अनाहारक-जीव की भांति वक्तव्य हैं। शरीर-अपर्याप्ति वाले, इन्द्रिय-अपर्याप्ति और आनापान-अपर्याप्ति वाले जीवों में जीव तथा एकेन्द्रिय को छोड़कर तीन भंग होते हैं। नैरयिक, देव और मनुष्यों में छह भंग होते हैं। भाषा-और मन-अपर्याप्ति वाले जीवों के जीव आदि पदों में तीन भंग होते हैं। नैरयिक, देव और मनुष्यों में छह भंग होते हैं।

संग्रहणी गाथा

सप्रदेश, आहारक, भव्य, संज्ञी, लेश्या, दृष्टि, संयत, कषाय, ज्ञान, योग, उपयोग, वेद, शरीर और पर्याप्ति—उक्त दस सूत्रों (५४-६३) में ये विषय वर्णित हैं।

प्रत्याख्यानानादि-पद

६४. भन्ते! क्या जीव प्रत्याख्यानी हैं? अप्रत्याख्यानी हैं? प्रत्याख्यानी-अप्रत्याख्यानी हैं?

गौतम! जीव प्रत्याख्यानी भी हैं, अप्रत्याख्यानी भी हैं और प्रत्याख्यानी-अप्रत्याख्यानी भी हैं।

६५. इस प्रकार सब जीवों की पृच्छा।

गौतम! नैरयिक-जीव अप्रत्याख्यानी हैं यावत् चतुरिन्द्रिय-जीव अप्रत्याख्यानी हैं। (इनमें शेष दो प्रत्याख्यानी तथा प्रत्याख्यानप्रत्याख्यानी प्रतिषेधनीय है।) पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिक प्रत्याख्यानी नहीं है, अप्रत्याख्यानी भी हैं और प्रत्याख्यानप्रत्याख्यानी भी हैं। मनुष्य तीनों ही हैं। शेष सभी जीव नैरयिक-जीवों की भांति वक्तव्य हैं।

६६. भन्ते! क्या जीव प्रत्याख्यान को जानते हैं? अप्रत्याख्यान को जानते हैं? प्रत्याख्यानप्रत्याख्यान को जानते हैं?

गौतम! जो पंचेन्द्रिय जीव हैं, वे तीनों को जानते हैं। अवशेष जीव प्रत्याख्यान को नहीं जानते, अप्रत्याख्यान को नहीं जानते, प्रत्याख्यानप्रत्याख्यान को नहीं जानते।

६७. भन्ते! क्या जीव प्रत्याख्यान करते हैं? अप्रत्याख्यान करते हैं? प्रत्याख्यानप्रत्याख्यान करते हैं?

प्रत्याख्यान करने का औधिक सूत्र (६४, ६५) की भांति वक्तव्य है।

६८. भन्ते! क्या जीव प्रत्याख्यान से बद्ध आयुष्य वाले हैं? अप्रत्याख्यान से बद्ध आयुष्य वाले हैं? प्रत्याख्यानप्रत्याख्यान से बद्ध आयुष्य वाले हैं?

गौतम! जीव और वैमानिक देव प्रत्याख्यान से बद्ध आयुष्य वाले हैं, अप्रत्याख्यान से बद्ध आयुष्य वाले हैं और प्रत्याख्यानप्रत्याख्यान से बद्ध आयुष्य वाले भी हैं। अवशेष जीव अप्रत्याख्यान से बद्ध आयुष्य वाले हैं।

संग्रहणी गाथा

१. प्रत्याख्यानी २. प्रत्याख्यान को जानना। ३. प्रत्याख्यान करना और ४. तीनों से आयुष्य का निबन्ध—इस प्रकार सप्रदेश के उद्देशक में ये चार दण्डक और प्रतिपादित हैं।

६९. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है।

पांचवां उद्देशक

तमस्काय-पद

७०. भन्ते! तमस्काय किसे कहा जाता है? क्या पृथ्वी को तमस्काय कहा जाता है? क्या जल को तमस्काय कहा जाता है?

गौतम! पृथ्वी को तमस्काय नहीं कहा जाता, जल को तमस्काय कहा जाता है।

७१. यह किस अपेक्षा से?

गौतम! कुछेक शुभ (भास्वर) पृथ्वीकाय विवक्षित क्षेत्र के देश को प्रकाशित करता है और कुछेक पृथ्वीकाय विवक्षित क्षेत्र के देश को प्रकाशित नहीं करता। इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—पृथ्वीकाय तमस्काय नहीं है।

७२. भन्ते! तमस्काय कहां से उठता है? और कहां समाप्त होता है?

गौतम! जम्बूद्वीप से बाहर तिरछी दिशा में असंख्य द्वीप-समुद्रों को पार करने पर अरुणवर द्वीप के बहिर्वर्ती वेदिका के छोर से आगे जो अरुणोदय समुद्र है, उसमें बयालीस हजार योजन अवगाहन करने पर जल के ऊपर के सिरे से एक प्रदेश वाली (सममिति आकार वाली) श्रेणी निकली है। यहां से तमस्काय उठता है। वह सतरह सौ इक्कीस योजन ऊपर जाता है। उसके पश्चात् तिरछा फैलता हुआ सौधर्म, ईशान, सनतकुमार और माहेन्द्र—इन चारों कल्पों (स्वर्गलोकों) को घेर कर ऊपर ब्रह्मलोक-कल्प के रिष्ट-विमान के प्रस्तर तक पहुंच जाता है। यहां तमस्काय समाप्त होता है।

७३. भन्ते! तमस्काय का संस्थान कैसा है?

गौतम! नीचे से शराव के तल का संस्थान है और ऊपर मुर्गे के पिंजरे का संस्थान है।

७४. भन्ते! तमस्काय का विष्कम्भ (चौड़ाई) कितना और परिक्षेप (परिधि) कितना प्रज्ञप्त है?

गौतम! तमस्काय दो प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे संख्यात-योजन विस्तृत और असंख्यात-योजन विस्तृत। जो संख्यात-योजन विस्तृत है, उसका विष्कम्भ संख्यात-हजार-योजन और उसका परिक्षेप असंख्यात-हजार-योजन प्रज्ञप्त है।

जो असंख्यात-योजन विस्तृत है, उसका विष्कम्भ असंख्यात-हजार-योजन और उसका परिक्षेप असंख्यात-हजार-योजन प्रज्ञप्त है।

७५. भन्ते! तमस्काय कितना बड़ा प्रज्ञप्त है?

गौतम! यह जम्बूद्वीप द्वीप सब द्वीपसमुद्रों के मध्य में अवस्थित है यावत् एक लाख योजन लम्बा-चौड़ा और उसका परिक्षेप तीन-लाख-सोलह-हजार-, दो-सौ-सत्ताईस-योजन, तीन कोस, एक-सौ-अठाईस-धनुष-और- साढ़ा-तेरह-अंगुल से कुछ-अधिक प्रज्ञप्त है। कोई महान् ऋद्धि वाला यावत् महान् अनुभाव वाला देव 'यह रहा-यह रहा' इस प्रकार कहकर सम्पूर्ण जम्बूद्वीप द्वीप में तीन बार चुटकी बजाने जितने समय में इक्कीस बार घूमकर शीघ्र ही आ जाता है, वह देव उस उत्कृष्ट त्वरित यावत् दिव्य देव गति से परिव्रजन करता हुआ-परिव्रजन करता हुआ यावत् एक दिन, दो दिन, तीन दिन उत्कर्षतः छह मास तक परिव्रजन

करे तो किसी (संख्यात-योजन विस्तार वाले) तमस्काय का अतिक्रमण कर जाता है और किसी (असंख्यात-योजन विस्तार वाले) तमस्काय का अतिक्रमण नहीं कर पाता। गौतम! तमस्काय इतना बड़ा प्रज्ञप्त है।

७६. भन्ते! तमस्काय में क्या घर है? गृह-आपण (दुकानें) हैं?

यह अर्थ संगत नहीं है।

७७. भन्ते! तमस्काय में क्या गांव है? यावत् सन्निवेश हैं?

यह अर्थ संगत नहीं है।

७८. भन्ते! तमस्काय में क्या बड़े मेघ संस्विन्न होते हैं? समूर्च्छित होते हैं? (मेघ का आकार लेते हैं) बरसते हैं?

हां, ऐसा होता है।

७९. भन्ते! क्या वह संस्वेदन, सम्मूर्च्छन, वर्षणा कोई देव करता है? असुर करता है? नाग करता है?

गौतम! देव भी करता है, असुर भी करता है, नाग भी करता है।

८०. भन्ते! तमस्काय में क्या बादर (स्थूल) गर्जन का शब्द है? बादर विद्युत् है?

हां, है।

८१. भन्ते! क्या वह (गर्जन का शब्द और विद्युत्) कोई देव करता है? असुर करता है? नाग करता है?

तीनों ही करते हैं।

८२. भन्ते! तमस्काय में क्या बादर-पृथ्वीकाय है? बादर-अग्निकाय है?

यह अर्थ संगत नहीं है, विग्रह-गति (अन्तराल-गति) करते हुए जीवों को छोड़ कर।

८३. भन्ते! तमस्काय में चन्द्रमा, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र और तारारूप हैं?

यह अर्थ संगत नहीं है। उसके परिपार्श्व में चन्द्रमा आदि पांचों हैं।

८४. भन्ते! तमस्काय में क्या चन्द्रमा की आभा है? सूर्य की आभा है?

यह अर्थ संगत नहीं है। पार्श्ववर्ती चंद्र, सूर्य की प्रभा तमस्काय में आ कर धुंधली बन जाती है।

८५. भन्ते! तमस्काय वर्ण से कैसा प्रज्ञप्त है?

गौतम! वह वर्ण से काला, कृष्ण अवभास वाला, गम्भीर, रोमाञ्च उत्पन्न करने वाला, भयंकर, उत्त्रासक और परम कृष्ण प्रज्ञप्त है। कोई एक देव भी उसे देखकर प्रथम दर्शन में क्षुब्ध हो जाता है; यदि वह उसमें प्रविष्ट हो जाता है तो उसके पश्चात् अतिशीघ्रता और अतित्वरा के साथ झटपट उसके बाहर चला जाता है।

८६. भन्ते! तमस्काय के कितने नाम हैं?

गौतम! तमस्काय के तेरह नाम प्रज्ञप्त हैं, जैसे—तम, तमस्काय, अन्धकार, महान्धकार,

लोकान्धकार, लोकतमिस्र, देवान्धकार, देवतमिस्र, देवारण्य, देवव्यूह, देवपरिघ, देवप्रतिक्षोभ, अरुणोदक समुद्र।

८७. भन्ते! तमस्काय क्या पृथ्वी का परिणमन है? जल का परिणमन है? जीव का परिणमन है? पुद्गल का परिणमन है?

गौतम! तमस्काय पृथ्वी का परिणमन नहीं है, जल का परिणमन भी है, जीव का परिणमन भी है, पुद्गल का परिणमन भी है।

८८. भन्ते! क्या तमस्काय में सब प्राण, भूत, जीव और सत्त्व पृथ्वीकाय रूप में यावत् त्रसकाय रूप में उपपन्न पूर्व हैं?

हां, गौतम! अनेक बार अथवा अनन्त बार उत्पन्न हुए हैं, बादर पृथ्वीकायिक और बादर अमिकायिक के रूप में उपपन्न नहीं हुए।

कृष्णराजि-पद

८९. भन्ते! कृष्णराजियां कितनी प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! आठ कृष्णराजियां प्रज्ञप्त हैं।

९०. भन्ते! ये आठ कृष्णराजियां कहां प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! सनत्कुमार- और माहेन्द्र-कल्प से ऊपर ब्रह्मलोक-कल्प में रिष्ट-विमान-प्रस्तर के समानान्तर आखाटक के आकार वाली समचतुरस्र-संस्थान से संस्थित आठ कृष्णराजियां प्रज्ञप्त हैं, जैसे—दो पूर्व में, दो पश्चिम में, दो दक्षिण में और दो उत्तर में। पूर्व दिशा में भीतरी कृष्णराजि दक्षिण दिशा में बाहरी कृष्णराजि का स्पर्श करती है। दक्षिण दिशा की भीतरी कृष्णराजि पश्चिम दिशा की बाहरी कृष्णराजि का स्पर्श करती है। पश्चिम दिशा की भीतरी कृष्णराजि उत्तर दिशा की बाहरी कृष्णराजि का स्पर्श करती है। उत्तर दिशा की भीतरी कृष्णराजि पूर्व दिशा की बाहरी कृष्णराजि का स्पर्श करती है।

दो पूर्व और पश्चिम की बाहरी कृष्णराजियां षट्कोण हैं, दो उत्तर और दक्षिण की बाहरी कृष्णराजियां त्रिकोण हैं, दो पूर्व और पश्चिम की भीतरी कृष्णराजियां चतुष्कोण हैं, दो उत्तर और दक्षिण के भीतरी कृष्णराजियां चतुष्कोण हैं।

संग्रहणी गाथा

पूर्व और पश्चिम की बाहरी कृष्णराजियां षट्कोण हैं, दक्षिण और उत्तर की बाहरी कृष्णराजियां त्रिकोण हैं और सभी भीतरी कृष्णराजियां चतुष्कोण हैं।

९१. भन्ते! कृष्णराजियों का आयाम (लम्बाई) कितना, विष्कम्भ (चौड़ाई) कितना और परिक्षेप (परिधि) कितना प्रज्ञप्त है?

गौतम! उनका आयाम असंख्येय-हजार योजन, विष्कम्भ संख्येय-हजार योजन और परिक्षेप असंख्येय-हजार योजन प्रज्ञप्त हैं।

९२. भन्ते! कृष्णराजियां कितनी बड़ी प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! यह जम्बूद्वीप द्वीप यावत् कोई महान् ऋद्धि वाला यावत् महान् अनुभाव वाला देव

‘यह रहा, यह रहा’—इस प्रकार कह कर सम्पूर्ण जम्बूद्वीप द्वीप में तीन बार चुटकी बजाने जितने समय में इक्कीस बार घूम कर शीघ्र ही आ जाता है। वह देव उस उत्कृष्ट, त्वरित यावत् देवगति से परिव्रजन करता हुआ-परिव्रजन करता हुआ यावत् एक दिन, दो दिन, तीन दिन अथवा उत्कर्षतः पन्द्रह दिन परिव्रजन करे तो किसी कृष्णराजि को अतिक्रमण कर जाता है और किसी कृष्णराजि का अतिक्रमण नहीं कर पाता।

गौतम! कृष्णराजियां इतनी बड़ी प्रज्ञप्त हैं।

१३. भन्ते! कृष्णराजियों में क्या घर हैं? गृह-आपण (दुकानें) हैं?

यह अर्थ संगत नहीं है।

१४. भन्ते! कृष्णराजियों में क्या गांव हैं यावत् सन्निवेश हैं?

यह अर्थ संगत नहीं है।

१५. भन्ते! कृष्णराजियों में क्या बड़े मेघ संस्विन्न होते हैं? संमूर्च्छित होते हैं? (मेघ का आकार लेते हैं) बरसते हैं?

हां, ऐसा होता है।

१६. भन्ते! क्या वह (संस्वेदन, संमूर्च्छन, वर्षणा) कोई देव करता है? असुर करता है? नाग करता है?

गौतम! देव करता है, असुर नहीं करता है, नाग नहीं करता है?

१७. भन्ते! कृष्णराजियों में क्या बादर (स्थूल) गर्जना का शब्द है? बादर विद्युत् है?

हां, है।

१८. भन्ते! क्या वह (गर्जन का शब्द और विद्युत्) कोई देव करता है? असुर करता है, नाग करता है?

गौतम! देव करता है। असुर नहीं करता, नाग नहीं करता।

१९. भन्ते! कृष्णराजियों में क्या बादर-अपकाय है? बादर-अग्निकाय है? बादर-वनस्पतिकाय है?

यह अर्थ संगत नहीं है। विग्रह-गति (अन्तराल-गति) करते हुए जीवों को छोड़कर।

१००. भन्ते! कृष्णराजियों में क्या चन्द्रमा, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र और तारारूप हैं?

यह अर्थ संगत नहीं है।

१०१. भन्ते! कृष्णराजियों में क्या चन्द्रमा की आभा है? सूर्य की आभा है?

यह अर्थ संगत नहीं है।

१०२. भन्ते! कृष्णराजियां वर्ण से कैसी प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! वे वर्ण से काली, कृष्ण अवभास वाली, गम्भीर रोमाञ्च उत्पन्न करने वाली, भयंकर, उत्त्रासक और परमकृष्ण प्रज्ञप्त है। कोई एक देव भी उनके प्रथम दर्शन में क्षुब्ध हो जाता है। यदि वह उनमें प्रविष्ट हो जाता है तो उसके पश्चात् अतिशीघ्रता और अतित्वरा के साथ झटपट उसके बाहर चला जाता है।

१०३. भन्ते! कृष्णराजि के कितने नाम हैं?

गौतम! कृष्णराजि के आठ नाम प्रज्ञप्त हैं—कृष्णराजि, मेघराजि, मघा, माघवती, वात-परिघ, वात-प्रतिक्षोभ, देव-परिघ, देव-प्रतिक्षोभ।

१०४. भन्ते! कृष्णराजियां क्या पृथ्वी के परिणमन हैं? जल के परिणमन हैं? जीव के परिणमन हैं? पुद्गल के परिणमन हैं?

गौतम! कृष्णराजियां पृथ्वी के परिणमन हैं, जल के परिणमन नहीं हैं, जीव के परिणमन भी हैं और पुद्गल के परिणमन भी हैं।

१०५. भन्ते! क्या कृष्णराजियों में सब प्राण, भूत जीव और सत्त्व पृथ्वीकाय-रूप में यावत् त्रसकाय-रूप में उपपन्नपूर्व हैं?

हां गौतम! अनेक बार अथवा अनन्त बार उपपन्न हुए हैं। पर बादर-अप्कायिक, बादर-अग्निकायिक और बादर-वनस्पतिकायिक रूप में उपपन्न नहीं हुए।

लोकान्तिक देव-पद

१०६. इन आठ कृष्णराजियों के आठ अवकाशान्तरों में आठ लोकान्तिक विमान प्रज्ञप्त हैं, जैसे—

संग्रहणी गाथा

१. अर्चि २. अर्चिमाली ३. वैरोचन ४. प्रभंकर ५. चन्द्राभ ६. सूर्याभ ७. शुक्लाभ ८. सुप्रतिष्ठाभ और मध्य में रिष्टाभ।

१०७. भन्ते! अर्चि-विमान कहां प्रज्ञप्त है?

गौतम! उत्तरपूर्व (ईशान कोण) में।

१०८. भन्ते! अर्चिमाली विमान कहां प्रज्ञप्त है?

गौतम! पूर्व दिशा में हैं। इस प्रकार परिपाटी से ज्ञातव्य है। यावत्—

१०९. रिष्ट विमान कहां प्रज्ञप्त है?

गौतम! कृष्णराजियों के प्रायः मध्यदेश भाग में।

११०. इन आठों लोकान्तिक-विमानों में आठ प्रकार के लोकान्तिक-देव निवास करते हैं, जैसे—

संग्रहणी गाथा

सारस्वत, आदित्य, वह्नि, वरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध और आम्येय। रिष्ट-विमान में रिष्ट नामक देव।

१११. भन्ते! सारस्वत-देव कहां निवास करते हैं?

गौतम! अर्चि-विमान में निवास करते हैं।

११२. भन्ते! आदित्य-देव कहां निवास करते हैं?

गौतम! अर्चिमाली-विमान में निवास करते हैं। इस प्रकार क्रमशः ज्ञातव्य है यावत्—

११३. भन्ते! रिष्ट-देव कहां निवास करते हैं?

गौतम! रिष्ट-विमान में।

११४. भन्ते! सारस्वत- और आदित्य-देवों के कितने देव हैं? और कितने सौ देवों का परिवार हैं?

गौतम! सात देव और सात सौ देवों का परिवार प्रज्ञप्त है।

बह्नि- और वरुण-देवों के चौदह देव और चौदह हजार देवों का परिवार प्रज्ञप्त है।

गर्दतोय- और तुषित-देवों के सात देव और सात हजार देवों का परिवार प्रज्ञप्त है।

अवशेष देवों के नौ देव और नौ सौ देवों का परिवार प्रज्ञप्त है।

संग्रहणी गाथा

प्रथम युगल में सात सौ, दूसरे युगल में चौदह हजार, तीसरे युगल में सात हजार और शेष में नौ सौ देवों का परिवार है।

११५. भन्ते! लोकान्तिक-विमान किस पर प्रतिष्ठित हैं?

गौतम! वे वायु पर प्रतिष्ठित हैं। इस प्रकार सभी विमानों का प्रतिष्ठान वायु पर ज्ञातव्य है। इन विमानों की मोटाई, ऊंचाई और संस्थान ब्रह्मलोक के विमानों की वक्तव्यता के अनुसार ज्ञातव्य है, यावत्—

११६. भन्ते! लोकान्तिक-विमानों में सब प्राण, भूत, जीव और सत्त्व पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, देव और देवी के रूप में उपपन्नपूर्व हैं?

हां, गौतम! अनेक बार अथवा अनन्त बार। पर वे देवी के रूप में उपपन्न नहीं होते।

११७. भन्ते! लोकान्तिक-देवों की स्थिति कितने काल की प्रज्ञप्त है?

गौतम! उनकी स्थिति आठ सागरोपम की प्रज्ञप्त है।

११८. भन्ते! लोकान्तिक-विमानों से लोकान्त कितने अन्तर (दूरी) पर प्रज्ञप्त है?

गौतम! लोकान्त लोकान्तिक-विमानों से असंख्येय-हजार-योजन के अन्तर पर प्रज्ञप्त है।

११९. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है।

छठा उद्देशक

नैरयिक आदि के आवास-पद

१२०. भन्ते! पृथ्वियां कितनी प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! पृथ्वियां सात प्रज्ञप्त हैं, जैसे—रत्नप्रभा यावत् अधःसप्तमी।

रत्नप्रभा-पृथ्वी यावत् अधःसप्तमी-पृथ्वी के आवास वक्तव्य हैं। इस प्रकार जितने आवास हैं, वे सब वक्तव्य हैं, यावत्—

१२१. भन्ते! अनुत्तरविमान कितने प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! अनुत्तरविमान पांच प्रज्ञप्त हैं, जैसे-विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्ध।

मारणान्तिक-समुद्घात-पद

१२२. भन्ते! जीव मारणान्तिक-समुद्घात से समवहत होता है। समवहत हो कर जो भव्य इस रत्नप्रभा-पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से किसी एक नरकावास में नैरयिक के रूप में उत्पन्न होने वाला है, भन्ते! वह जीव वहां नरकावास में जाते ही क्या पुद्गलों का आहरण करता है? उनका परिणमन करता है? उनसे शरीर का निर्माण करता है?

गौतम! कोई जीव वहां नरकावास में जाते ही पुद्गलों का आहरण करता है, उनका परिणमन करता है और उनसे शरीर का निर्माण करता है। कोई जीव वहां से लौट आता है। लौटकर यहां अपने वर्तमान शरीर में आ जाता है। आ कर फिर दूसरी बार मारणान्तिक-समुद्घात से समवहत होता है। समवहत हो कर इस रत्नप्रभा-पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से किसी एक नरकावास में नैरयिक के रूप में उपपन्न होता है। उसके पश्चात् पुद्गलों का आहरण करता है, उनका परिणमन करता है और उनसे शरीर का निर्माण करता है। इस प्रकार अधःसप्तमी पृथ्वी तक ज्ञातव्य है।

१२३. भन्ते! जीव मारणान्तिक-समुद्घात से समवहत होता है। समवहत हो कर जो भव्य चौसठ लाख असुरकुमारावासों में से किसी एक असुरकुमारावास में असुरकुमार के रूप में उपपन्न होता है, उसकी वक्तव्यता नैरयिक की भांति (सू. १२२) ज्ञातव्य है। असुरकुमार से स्तनिककुमार तक यही वक्तव्यता।

१२४. भन्ते! जीव मारणान्तिक-समुद्घात से समवहत होता है। समवहत हो कर जो भव्य असंख्य-लाख पृथ्वीकायिक-आवासों में से किसी एक पृथ्वीकायिक-आवास में पृथ्वीकायिक के रूप में उपपन्न होता है, भन्ते! वह जीव मेरु पर्वत के पूर्व में कितनी दूर जाता है? कितनी दूरी प्राप्त करता है?

गौतम! वह लोकान्त तक जाता है, लोकान्त की प्राप्त करता है।

१२५. भन्ते! वह वहां पृथ्वीकायिक-आवास में जाते ही क्या पुद्गलों का आहरण करता है? उनका परिणमन करता है? उनसे शरीर का निर्माण करता है?

गौतम! कोई जीव वहां पृथ्वीकायिक-आवास में जाते ही पुद्गलों का आहरण करता है, उनका परिणमन करता है, उनसे शरीर का निर्माण करता है। कोई जीव वहां से लौट आता है, लौट कर यहां अपने वर्तमान शरीर में आता है, आ कर फिर दूसरी बार मारणान्तिक-समुद्घात से समवहत होता है। समवहत हो कर मेरुपर्वत के पूर्व में अंगुल के असंख्यातवें भाग मात्र, संख्यातवें भाग मात्र, बालाग्र, बालाग्र-पृथक्त्व (अनेक बालाग्र), इसी प्रकार लीख, जूं, यव, अंगुल यावत् कोटि योजन, कोटिकोटि योजन, संख्येय-हजार योजन और असंख्येय-हजार योजन में अथवा लोकान्त में एकप्रदेशात्मक श्रेणी को छोड़ कर पृथ्वीकायिक जीवों के असंख्य-लाख पृथ्वीकायिक-आवासों में से किसी एक पृथ्वीकायिक-आवास में पृथ्वीकायिक के रूप में उपपन्न होता है, उसके पश्चात् पुद्गलों का

आहरण करता है, उनका परिणमन करता है, उनसे शरीर का निर्माण करता है।

जिस प्रकार मेरु पर्वत के पूर्व में (इतने दूर जाने से सम्बन्धित) आलापक कहा गया है, इसी प्रकार दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊर्ध्व और अधो दिशा में वक्तव्य है।

जैसे पृथ्वीकायिक-जीवों के आलापक कहे गए हैं, वैसे ही शेष सब एकेन्द्रिय-जीवों में से प्रत्येक के छह-छह आलापक वक्तव्य हैं।

१२६. भन्ते! जीव मारणान्तिक-समुद्घात से समवहत होता है। समवहत हो कर जो भव्य असंख्येय लाख द्वीन्द्रिय-आवासों में से किसी एक द्वीन्द्रियावास में द्वीन्द्रिय के रूप में उपपन्न होता है, भन्ते! वह वहां द्वीन्द्रियावास में जाते ही पुद्गलों का आहरण करता है? उनका परिणमन करता है? उनसे शरीर का निर्माण करता है?

नैरयिक जीवों की भांति वक्तव्यता। इस प्रकार यावत् अनुत्तरौपापतिक की वक्तव्यता।

१२७. भन्ते! जीव मारणान्तिक-समुद्घात से समवहत होता है। समवहत होकर जो भव्य पांच अनुत्तर महति-महान् महाविमानों में से किसी एक अनुत्तर विमान में अनुत्तरौपापतिक-देव के रूप में उपपन्न होता है, भन्ते! वह वहां अनुत्तरौपापतिक-विमान में जाते ही पुद्गलों का आहरण करता है? उनका परिणमन करता है? उनसे शरीर का निर्माण करता है?

यह पूर्ववत् ज्ञातव्य है यावत् वह पुद्गलों का आहरण करता है, परिणमन करता है, उनसे शरीर का निर्माण करता है।

१२८. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है।

सातवां उद्देशक

धान्यों की योनि आर स्थिति का पद

१२९. भन्ते! शालि, व्रीहि, गेहूं, जौ तथा यवयव—इन धान्यों को कोठे, पल्य, मचान और माल में डाल कर उनके द्वार-देश को लीप देने, चारों ओर से लीप देने, ढक्कन के ढक देने, मिट्टी से मुद्रित कर देने और रेखाओं से लांछित कर देने पर उनकी योनि (उत्पादक-शक्ति) कितने काल तक रहती है?

गौतम! जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कर्षतः तीन वर्ष उसके बाद योनि म्लान हो जाती है, प्रविध्वस्त हो जाती है, बीज अबीज हो जाता है, योनि का विच्छेद हो जाता है, आयुष्मन् श्रमण!

१३०. मटर, मसूर, तिल, मूंग, उड़द, निष्पाव (सेम), कुलथी, चवला, मटर का एक भेद और काला चना आदि—इन धान्यों को कोठे, पल्य, मचान और माल में डाल कर उनके द्वार-देश को लीप देने, चारों ओर से लीप देने, ढक्कन से ढक देने, मिट्टी से मुद्रित कर देने और रेखाओं से लांछित कर देने पर उनकी योनि कितने काल तक रहती है?

गौतम! जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कृष्टतः पांच वर्ष उसके बाद योनि म्लान हो जाती है, प्रविध्वस्त हो जाती है, बीज अबीज हो जाता है, योनि का विच्छेद हो जाता है, आयुष्मन् श्रमण!

१३१. अलसी, कुसुम्भ, कोदव, कंगु, चीना धान्य, दाल, कोदव की एक जाति, सन, सरसों, मूलक बीज—इन धान्यों को कोटे, पल्य, मचान और माल में डाल कर उनके द्वार-देश को लीप देने, चारों ओर से लीप देने, ढक्कन से ढक देने, मिट्टी से मुद्रित कर देने और रेखाओं से लांछित कर देने पर उनकी योनि कितने काल तक रहती है?

गौतम! जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टतः सात वर्ष । उसके बाद योनि म्लान हो जाती है, प्रविध्वस्त हो जाती है, बीज अबीज हो जाता है, योनि का विच्छेद हो जाता है, आयुष्यमन् श्रमण !

गणना-काल-पद

१३२. भन्ते! प्रत्येक मुहूर्त का उच्छ्वास-काल कितना होता है?

गौतम! असंख्येय समयों के समुदय, समिति और समागम से एक आवलिका होती है। संख्येय आवलिकाओं का एक उच्छ्वास होता है। संख्येय आवलिकाओं का एक निःश्वास होता है।

गाथाएं—

हृष्ट, नीरोग और मानसिक क्लेश से मुक्त प्राणी का एक उच्छ्वास-निःश्वास प्राण कहलाता है, सात प्राण का एक स्तोक, सात स्तोकों का एक लव और सतहत्तर लवों का एक मुहूर्त होता है। तीन-हजार-सात-सौ-तिहत्तर (३७७३) उच्छ्वासों का एक मुहूर्त होता है—यह सब अनन्तज्ञानियों द्वारा दृष्ट है।

इस मुहूर्त-प्रमाण से तीस मुहूर्त का एक दिन-रात, पंद्रह दिन-रात का एक पक्ष, दो पक्ष का एक मास, दो मास की एक ऋतु, तीन ऋतु का एक अयन, दो अयन का एक संवत्सर, पांच संवत्सर का एक युग, बीस युग की एक शताब्दी, दस शताब्दियों की एक सहस्राब्दी, सौ सहस्राब्दियों का एक लाख वर्ष, चौरासी-लाख वर्ष का एक पूर्वांग, चौरासी-लाख पूर्वांगों का एक पूर्व होता है। इसी प्रकार (पूर्वोक्त क्रम से) त्रुटितांग, त्रुटित, अट्टांग, अट्ट, अववांग, अवव, हूहकांग, हूहक, उत्पलांग, उत्पल, पद्मांग, पद्म, नलिनांग, नलिन, अर्थनिकुरांग, अर्थनिकुर, अयुतांग, अयुत, नयुतांग, नयुत, प्रयुतांग, प्रयुत, चूलिकांग, चूलिका, शीर्षप्रहेलिकांग और शीर्षप्रहेलिका। यहां तक गणित है, यहां तक गणित का विषय है। इसके बाद औपमिक काल प्रवृत्त होता है।

औपमिक-काल-पद

१३३. वह औपमिक क्या है?

औपमिक के दो प्रकार प्रज्ञप्त हैं, जैसे—पल्योपम और सागरोपम।

१३४. वह पल्योपम क्या है? वह सागरोपम क्या है?

गाथा—

सुतीक्ष्ण शस्त्र से भी जिसका छेदन-भेदन नहीं किया जा सकता, उस (व्यावहारिक) परमाणु को सिद्ध पुरुष (केवली) प्रमाणों का आदि बतलाते हैं।

अनन्त व्यावहारिक परमाणु-पुद्गलां के समुदय, समिति और समागम से एक उत्सलक्षणश्लक्ष्णिका, (परिपाटी के अनुसार) श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका, ऊर्ध्वरेणु, त्रसरेणु, रथरेणु, बालाग्र, लिक्षा, यूका, यवमध्य और अंगुल होता है। आठ उत्सलक्षणश्लक्ष्णिका की एक श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका, आठ श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका का एक ऊर्ध्वरेणु, आठ ऊर्ध्वरेणु का एक त्रसरेणु, आठ त्रसरेणु का एक रथरेणु, आठ रथरेणु का देवकुरु-उत्तरकुरु के मनुष्यों का एक बालाग्र, देवकुरु-उत्तरकुरु के मनुष्यों के आठ बालाग्र हरिवर्ष और रम्यक्वर्ष के मनुष्यों का एक बालाग्र, हरिवर्ष और रम्यक्वर्ष के मनुष्यों के आठ बालाग्र का हैमवत और हैरण्यवत के मनुष्यों का एक बालाग्र, हैमवत और हैरण्यवत के मनुष्यों के आठ बालाग्र का पूर्व विदेह (और अपर विदेह) के मनुष्यों का एक बालाग्र, पूर्व-विदेह और अपर-विदेह के मनुष्यों का आठ बालाग्र की एक लिक्षा, आठ लिक्षा की एक यूका, आठ यूका का एक यवमध्य और आठ यवमध्य का एक अंगुल होता है।

इस अंगुल-प्रमाण से छह अंगुल का पाद, बारह अंगुल की वितस्ति, चौबीस अंगुल की रत्ति, अड़तालीस अंगुल की कुक्षि, छियानवे अंगुल का एक दंड, धनुष, यूप, नालिका, अक्ष अथवा मुसल होता है।

इस धनुष-प्रमाण से दो हजार धनुष का एक गव्यूत (कोश) और चार गव्यूत का एक योजन होता है। इस योजन-प्रमाण से कोई कोठा एक योजन लम्बा, चौड़ा, ऊंचा और कुछ अधिक तिगुनी परिधि वाला है। वह—

गाथा—

एक, दो, तीन यावत् उत्कर्षतः सात रात के बढ़े हुए करोड़ों बालाग्रों में टूंस-टूंस कर घनीभूत कर भरा हुआ है।

वे बालाग्र न अग्नि से जलते हैं, न हवा से उड़ते हैं, न असार होते हैं, न विध्वस्त होते हैं और न दुर्गन्ध को प्राप्त होते हैं।

उस कोठे से सौ-सौ वर्ष के बीत जाने पर एक-एक बालाग्र को निकालने से जितने समय में वह कोठा खाली, रज-रहित, निर्मल ओर निष्ठित होता है, निर्लेप होता है, सब बालाग्रों के निकल जाने पर विशुद्ध (सर्वथा खाली) हो जाता है, वह (व्यावहारिक) पत्त्योपम है।

गाथा—

इन दस कोटिकोटि पत्त्यों से एक (व्यावहारिक) सागरोपम होता है।

इस सागरोपम प्रमाण से—१. सुषम-सुषमा का कालमान चार-सागरोपम-कोटिकोटि है। २. सुषमा का कालमान तीन सागरोपम-कोटिकोटि है। ३. सुषम-दुःषमा का कालमान दो-सागरोपम-कोटिकोटि है। ४. दुःषम-सुषमा का कालमान बयालीस-हजार-वर्ष-न्यून-एक-सागरोपम-कोटिकोटि है। ५. दुःषमा का कालमान इक्कीस-हजार-वर्ष है। ६. दुःषमा-दुःषमा का कालमान इक्कीस-हजार-वर्ष है।

पुनः उत्सर्पिणी में—१. दुःषमा-दुःषमा का कालमान इक्कीस-हजार-वर्ष है। २. दुःषमा का कालमान इक्कीस-हजार-वर्ष है। ३. दुःषम-सुषमा का कालमान बयालीस-हजार-वर्ष-

-न्यून-एक-सागरोपम-कोटिकोटी है। ४. सुषम-दुःषमा का कालमान दो-सागरोपम-कोटिकोटी है। ५. सषमा का कालमान तीन-सागरोपम-कोटिकोटी है। ६. सुषम-सुषमा का कालमान चार-सागरोपम-कोटिकोटी है।

अवसर्पिणी का कालमान दस-सागरोपम-कोटिकोटी है। उत्सर्पिणी का कालमान दस-सागरोपम-कोटिकोटी है। अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी दोनों का समन्वित कालमान बीस-सागरोपम-कोटिकोटी है।

सुषम-सुषमा में भरतवर्ष-पद

१३५. भन्ते! जम्बूद्वीप द्वीप में इस अवसर्पिणी के सुषम-सुषमा काल की प्रकृष्ट अवस्था में भरतवर्ष के आकार और भाव का अवतरण कैसा था?

गौतम! उस समय का भूमिभाग समतल और रमणीय था जैसे मुरज (वाद्य) का मुखपुट। इस प्रकार उत्तरकुरु क्षेत्र की वक्तव्यता ज्ञातव्य है यावत् भरतवर्ष में रहने वाले अनेक भारतीय मनुष्य और स्त्रियां उस भूमिभाग पर आश्रय लेती हैं, सोती हैं, ठहरती हैं, बैठती हैं, करवट लेती हैं, हंसती हैं, क्रीडा करती हैं, खेलती हैं। उस समय भरतवर्ष के खण्ड-खण्ड, प्रदेश-प्रदेश और इधर-उधर अनेक उद्दाल, कोद्दाल यावत् दर्भ और बल्वज आदि तृणों से रहित मूल वाले वृक्ष हैं यावत् छह जाति के मनुष्यों की परम्परा चल रही थी, जैसे-मद्मगन्ध, मृगगन्ध, अमम, तेतली, सह, शनैश्चारी।

१३६. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है।

आठवां उद्देशक

पृथ्वी-आदि में गेह-आदि की पृच्छा का पद

१३७. भन्ते! पृथ्वियां कितनी प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! आठ पृथ्वियां प्रज्ञप्त हैं, जैसे-रत्नप्रभा यावत् ईषत्-प्रागभारा।

१३८. भन्ते! इस रत्नप्रभा-पृथ्वी के नीचे घर हैं? घर की आपण हैं?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है।

१३९. भन्ते! इस रत्नप्रभा (पृथ्वी) के नीचे क्या गांव हैं यावत् सन्निवेश हैं?

यह अर्थ संगत नहीं है।

१४०. भन्ते! इन रत्नप्रभा-पृथ्वी के नीचे क्या बड़े मेघ संस्वित्र होते हैं? सम्मूर्च्छित होते हैं? बरसते हैं?

हां, ऐसा होता है।

यह क्रिया तीनों ही करते हैं-देव भी करता है, असुर भी करता है, नाग भी करता है।

१४१. भन्ते! इस रत्नप्रभा-पृथ्वी में क्या बादर (स्थूल) गर्जन का शब्द है?

हां, है।

यह क्रिया तीनों ही करते हैं।

१४२. भन्ते! इस रत्नप्रभा-पृथ्वी के नीचे क्या बादर अग्निकाय है?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है, विग्रह-गति करते हुए जीवों को छोड़कर।

१४३. भन्ते! इस रत्नप्रभा-पृथ्वी के नीचे क्या चन्द्रमा, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र और तारारूप हैं?
यह अर्थ संगत नहीं है।

१४४. भन्ते! इस रत्नप्रभा-पृथ्वी के नीचे क्या चन्द्रमा की आभा है? सूर्य की आभा है?
यह अर्थ संगत नहीं है।

इस प्रकार दूसरी पृथ्वी के विषय में वक्तव्य है। इसी प्रकार तीसरी पृथ्वी के विषय में भी वक्तव्य है। केवल इतना विशेष है—देव भी करता है, असुर भी करता है, नाग नहीं करता। चौथी पृथ्वी के विषय में भी इसी प्रकार वक्तव्यता। केवल इतना विशेष है—अकेला देव करता है, असुर नहीं करता, नाग भी नहीं करता। इसी प्रकार नीचे की सभी पृथ्वियों में अकेला देव करता है।

१४५. भन्ते! सौधर्म- और ईशान-कल्प के नीचे क्या घर हैं? घर की आपण हैं?
यह अर्थ संगत नहीं है।

१४६. भन्ते! वहां बड़े मेघ हैं?
हां, हैं।

उसे देव करता है, असुर भी करता है, नाग नहीं करता।

इसी प्रकार गर्जन शब्द की वक्तव्यता।

१५७. भन्ते! वहां क्या बादर-पृथ्वीकाय है? बादर-अग्निकाय है?
यह अर्थ संगत नहीं है, विग्रह-गति करते हुए जीवों को छोड़ कर।

१४८. भन्ते! वहां चन्द्रमा, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र और तारारूप हैं?
यह अर्थ संगत नहीं है।

१४९. भन्ते! वहां क्या गांव हैं? यावत् सन्निवेश हैं?
यह अर्थ संगत नहीं है।

१५०. भन्ते! क्या वहां चन्द्रमा की आभा है? सूर्य की आभा है?
गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है।

इसी प्रकार सनत्कुमार- और माहेन्द्र-कल्पों की वक्तव्यता। केवल इतना विशेष है—अकेला देव करता है। इसी प्रकार ब्रह्मलोक की वक्तव्यता। इसी प्रकार ब्रह्मलोक से ऊपर सर्वत्र (अच्युत-कल्प तक) देव करता है। बादर अप्काय, बादर-अग्निकाय और बादर-वनस्पतिकाय प्रष्टव्य है—इनका निषेध है। शेष सर्व पूर्ववत् वक्तव्य हैं।

संग्रहणी गाथा

तमस्काय और पांच कल्पों—सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र और ब्रह्म में बादर-अग्निकाय

और बादर-पृथ्वीकाय का सूत्र विवक्षित है। रत्नप्रभा आदि पृथ्वियों में बादर-अग्निकाय का सूत्र विवक्षित है। उपरितन कल्पों और कृष्णराजियों में बादर-अप्काय, बादर-तेजस्काय और बादर-वनस्पतिकाय का सूत्र विवक्षित नहीं है।

आयुष्क-बन्ध-पद

१५१. भन्ते! आयुष्य का बन्ध कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?

गौतम! आयुष्य का बन्ध छह प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—जाति-नाम-निषिक्त्यायुष्य, गति-नाम-निषिक्त्यायुष्य, स्थिति-नाम-निषिक्त्यायुष्य, अवगाहना-नाम-निषिक्त्यायुष्य, प्रदेश-नाम-निषिक्त्यायुष्य और अनुभाग-नाम-निषिक्त्यायुष्य। नरक से लेकर वैमानिक तक सभी दण्डकों में छह प्रकार के आयुष्य का बन्ध होता है।

१५२. भन्ते! क्या जीव जाति-नाम का निषिक्त (विशिष्ट बन्ध) किए हुए हैं? गति-नाम का निषिक्त किए हुए हैं? स्थिति-नाम का निषिक्त किए हुए हैं? अवगाहना-नाम का निषिक्त किए हुए हैं? प्रदेश-नाम का निषिक्त किए हुए हैं? अनुभाग-नाम का निषिक्त किए हुए हैं?

गौतम! जीव जाति-नाम का निषिक्त भी किए हुए हैं यावत् अनुभाग-नाम का निषिक्त भी किए हुए हैं। नरक से लेकर वैमानिक तक सभी दण्डकों में छह प्रकार की निषिक्त (विशिष्ट बन्ध) होता है।

१५३. भन्ते! क्या जीव जाति-नाम-निषिक्त्यायुष्क है? यावत् अनुभाग-नाम-निषिक्त्यायुष्क हैं?

गौतम! जीव जाति-नाम-निषिक्त्यायुष्क भी यावत् अनुभाग-नाम-निषिक्त्यायुष्क भी हैं। नरक से लेकर वैमानिक तक सभी दण्डक जाति-नाम निषिक्त्यायुष्क यावत् अनुभाग-नाम-निषिक्त्यायुष्क हैं।

१५४. इसी प्रकार ये बारह दण्डक वक्तव्य हैं—

भन्ते! क्या जीव १. जाति-नाम का निषिक्त (विशिष्ट बन्ध) किए हुए हैं? २. जाति-नाम-निषिक्त्यायुष्क हैं?

भन्ते! क्या ३. जाति-नाम-नियुक्त—जाति-नाम के वेदन में नियुक्त हैं? ४. जाति-नाम-नियुक्त्यायुष्क—जाति-नाम के साथ आयुष्य का वेदन आरम्भ किए हुए हैं?

भन्ते! क्या जीव ५. जाति-गोत्र का निषिक्त किए हुए हैं? ६. जाति-गोत्र-निषिक्त्यायुष्क हैं?

भन्ते! क्या जीव ७. जाति-गोत्र-नियुक्त हैं? ८. जाति-गोत्र-नियुक्त्यायुष्क हैं?

भन्ते! क्या जीव ९. जाति-नाम-गोत्र का निषिक्त किए हुए हैं? १०. जाति-नाम-गोत्र-निषिक्त्यायुष्क हैं?

भन्ते! क्या जीव ११. जाति-नाम-गोत्र-नियुक्त हैं? १२. जाति-नाम-गोत्र-नियुक्त्यायुष्क हैं? यावत् ७२ अनुभाग-नाम-गोत्र-नियुक्त्यायुष्क हैं?

गौतम! जीव जाति-नाम गोत्र-नियुक्त्यायुष्क भी हैं यावत् अनुभाग-नाम-गोत्र-नियुक्त्यायुष्क भी हैं। नरक से लेकर वैमानिक तक सभी दण्डकों में सभी भंग प्राप्त होते हैं।

लवणादि समुद्र-पद

१५५. भन्ते! क्या लवणसमुद्र ऊंचे जलस्तर वाला है? सम जलस्तर वाला है? क्षुब्ध जल वाला है? अक्षुब्ध जल वाला है?

गौतम! लवणसमुद्र ऊंचे जलस्तर वाला है, सम जलस्तर वाला नहीं है, क्षुब्ध जल वाला है, अक्षुब्ध जल वाला नहीं है।

१५६. भन्ते! जिस प्रकार लवणसमुद्र ऊंचे जलस्तर वाला है, सम जलस्तर वाला नहीं है, क्षुब्ध जल वाला है, अक्षुब्ध जल वाला नहीं है। उसी प्रकार अढ़ाई द्वीप से बहिर्वर्ती समुद्र क्या ऊंचे जलस्तर वाले है? सम जलस्तर वाले है, क्षुब्ध जल वाले है? अक्षुब्ध जल वाले हैं?

गौतम! अढ़ाई द्वीप से बहिर्वर्ती समुद्र ऊंचे जलस्तर वाले नहीं है, सम जलस्तर वाले है, क्षुब्ध जल वाले नहीं हैं, अक्षुब्ध जल वाले हैं। वे जल से भरे हुए, परिपूर्ण, छलकते हुए, हिलोरे लेते हुए, चारों ओर से जलजलाकर हो रहे हैं।

१५७. भन्ते! लवणसमुद्र में क्या अनेक बड़े मेघ संस्विन्न होते हैं? सम्मूर्च्छित होते हैं? बरसते हैं?

हां, ऐसा होता है।

१५८. भन्ते! जिस प्रकार लवणसमुद्र में अनेक बड़े मेघ संस्विन्न होते हैं, सम्मूर्च्छित होते हैं, बरसते हैं, उसी प्रकार अढ़ाई द्वीप से बहिर्वर्ती समुद्रों में भी अनेक बड़े मेघ संस्विन्न होते हैं? सम्मूर्च्छित होते हैं? बरसते हैं?

१५९. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—अढ़ाई द्वीप से बहिर्वर्ती समुद्र पूर्ण हैं यावत् चारों ओर से जलजलाकर हो रहे हैं?

गौतम! अढ़ाई द्वीप से बहिर्वर्ती समुद्रों में अनेक उदकयोनिक जीव और पुद्गल उदक-रूप में उत्पन्न होते हैं और विनष्ट होते हैं, च्युत होते हैं और उत्पन्न होते हैं। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—अढ़ाई द्वीप से बहिर्वर्ती समुद्र जल से भरे हुए परिपूर्ण, छलकते हुए, हिलोरे लेते हुए, चारों ओर से जलजलाकर हो रहे हैं। उनका संस्थानगत स्वरूप एक प्रकार—चक्रवाल के आकार का है। विस्तार की दृष्टि से वे अनेक प्रकार के हैं। वे क्रमशः पूर्ववर्ती से उत्तरवर्ती द्विगुण-द्विगुण हैं। यावत् इस तिरछे-लोक में असंख्येय द्वीप तथा स्वयम्भूरमण अवसान वाले समुद्र प्रज्ञप्त हैं, आयुष्मन् श्रमण!

१६०. भन्ते! कितने द्वीप और समुद्र नामों से प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! लोक में जितने शुभ नाम, शुभ रूप, शुभ गन्ध, शुभ रस और शुभ स्पर्श हैं उतने द्वीप और समुद्र नामों से प्रज्ञप्त हैं। इस प्रकार शुभ नाम, उद्धार, परिणाम और द्वीप-समुद्रों में सब जीवों का उत्पाद ज्ञातव्य है।

१६१. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है।

नवां उद्देशक

कर्मप्रकृति-बन्ध-पद

१६२. भन्ते! जीव ज्ञानावरणीय-कर्म का बन्ध करता हुआ कितनी कर्म-प्रकृतियों का बन्ध करता है?

गौतम! सात प्रकार की प्रकृतियों का बन्ध करता है। अथवा आठ प्रकार की कर्म-प्रकृतियों का बन्ध करता है। अथवा छह प्रकार की प्रकृतियों का बन्ध करता है। यहां पणवणा का बन्ध-उद्देशक (पद २४) ज्ञातव्य है।

महर्द्धिक देव की विक्रिया का पद

१६३. भन्ते! क्या महान् ऋद्धि यावत् महान् शक्ति से सम्पन्न देव बहिर्वर्ती पुद्गलों का ग्रहण किए बिना एक वर्ण और एक रूप का निर्माण करने में समर्थ हैं?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है।

१६४. भन्ते! क्या देव बहिर्वर्ती पुद्गलों का ग्रहण कर एक वर्ण और एक रूप का निर्माण करने में समर्थ हैं?

हां, समर्थ है।

१६५. भन्ते! क्या वह प्रज्ञापक-स्थानवर्ती पुद्गलों का ग्रहण कर एक वर्ण और एक रूप का निर्माण करता है? अथवा स्व-स्थानवर्ती पुद्गलों का ग्रहण कर एक वर्ण और एक रूप का निर्माण करता है? अथवा इन दोनों से भिन्न किसी अन्य-स्थानवर्ती पुद्गलों का ग्रहण कर एक वर्ण और एक रूप का निर्माण करता है?

गौतम! वह प्रज्ञापक-स्थानवर्ती पुद्गलों का ग्रहण कर एक वर्ण और एक रूप का निर्माण नहीं करता, स्व-स्थानवर्ती पुद्गलों का ग्रहण कर एक वर्ण और एक रूप का निर्माण करता है, इन दोनों से भिन्न किसी अन्य-स्थानवर्ती पुद्गलों का ग्रहण कर एक वर्ण और एक रूप का निर्माण नहीं करता।

इस प्रकार इस गमक के अन्य विकल्प भी ज्ञातव्य हैं यावत् १. एक वर्ण और एक रूप का निर्माण २. एक वर्ण और अनेक रूप का निर्माण ३. अनेक वर्ण और एक रूप का निर्माण तथा ४. अनेक वर्ण और अनेक रूप का निर्माण—यह चौभंगी है।

१६६. भन्ते! क्या महान् ऋद्धि यावत् महान् शक्ति से सम्पन्न देव बहिर्वर्ती पुद्गलों का ग्रहण किए बिना कृष्ण वर्ण वाले पुद्गल को नील वर्ण वाले पुद्गल के रूप में परिणत करने में समर्थ हैं? अथवा नील वर्ण वाले पुद्गल को कृष्ण वर्ण वाले पुद्गल के रूप में परिणत करने में समर्थ हैं?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है। वह बहिर्वर्ती पुद्गलों का ग्रहण कर वैसा करने में समर्थ है।

१६७. भन्ते! क्या वह प्रज्ञापक-स्थानवर्ती पुद्गलों का ग्रहण कर परिणत करता है? अथवा स्व-स्थानवर्ती पुद्गलों का ग्रहण कर परिणत करता है? अथवा इन दोनों से भिन्न किसी अन्य-स्थानवर्ती पुद्गलों का ग्रहण कर परिणत करता है?

गौतम! वह प्रज्ञापक-स्थानवर्ती पुद्गलों का ग्रहण कर परिणत नहीं करता, स्व-स्थानवर्ती पुद्गलों का ग्रहण कर परिणत करता है, इन दोनों से भिन्न किसी अन्य-स्थानवर्ती पुद्गलों का ग्रहण कर परिणत नहीं करता।

इसी प्रकार कृष्ण-वर्ण वाले पुद्गल को लाल-वर्ण वाले पुद्गल के रूप में परिणत करता है। इसी प्रकार कृष्ण-वर्ण वाले पुद्गल से यावत् शुक्ल-वर्ण वाले पुद्गल तक के परिणमन की वक्तव्यता। इसी प्रकार नील-वर्ण वाले पुद्गल से यावत् शुक्ल-वर्ण वाले पुद्गल के परिणमन की वक्तव्यता। इसी प्रकार लोहित-वर्ण वाले पुद्गल से यावत् शुक्ल-वर्ण वाले पुद्गल के परिणमन की वक्तव्यता। इसी प्रकार पीत-वर्ण वाले पुद्गल से यावत् शुक्ल-वर्ण वाले पुद्गल के परिणमन की वक्तव्यता। इसी प्रकार इस परिपाटी से गन्ध, रस और स्पर्श की परिणमन की वक्तव्यता।

अविशुद्ध लेश्या आदि वाले देव का ज्ञान-दर्शन-पद

१६८. भन्ते! १. अविशुद्ध-लेश्या वाला देव असमवहत आत्मा के द्वारा अविशुद्ध-लेश्या वाले देव, देवी अथवा अन्य किसी को जानता-देखता है?

यह अर्थ संगत नहीं है।

इसी प्रकार—२. अविशुद्ध-लेश्या वाला देव असमवहत आत्मा के द्वारा विशुद्ध-लेश्या वाले देव को ३. अविशुद्ध-लेश्या वाला देव समवहत आत्मा के द्वारा अविशुद्ध-लेश्या वाले देव को ४. अविशुद्ध-लेश्या वाला देव समवहत आत्मा के द्वारा विशुद्ध-लेश्या वाले देव को ५. अविशुद्ध-लेश्या वाला देव समवहत-असमवहत आत्मा के द्वारा अविशुद्ध-लेश्या वाले देव को ६. अविशुद्ध-लेश्या वाला देव समवहत-असमवहत आत्मा के द्वारा विशुद्ध-लेश्या वाले देव को ७. विशुद्ध-लेश्या वाला देव असमवहत आत्मा के द्वारा अविशुद्ध-लेश्या वाले देव को ८. विशुद्ध-लेश्या वाला देव असमवहत आत्मा के द्वारा विशुद्ध-लेश्या वाले देव को नहीं जानता-देखता।

१६९. भन्ते! ९. विशुद्ध-लेश्या वाला देव समवहत आत्मा के द्वारा अविशुद्ध-लेश्या वाले देव को जानता-देखता है?

हां, जानता-देखता है।

इसी प्रकार—१०. विशुद्ध-लेश्या वाला देव समवहत आत्मा के द्वारा विशुद्ध-लेश्या वाले देव को ११. विशुद्ध-लेश्यावाला देव समवहत-असमवहत आत्मा के द्वारा अविशुद्ध-लेश्या वाले देव को १२. विशुद्ध-लेश्या वाला देव समवहत-असमवहत आत्मा के द्वारा विशुद्ध-लेश्या वाले देव को जानता-देखता है।

१७०. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है।

दशवां उद्देशक

सुख-दुःख-उपदर्शन-पद

१७१. भन्ते! अन्ययूथिक इस प्रकार आख्यान करते हैं यावत् प्ररूपणा करते हैं—राजगृह नगर में

जितने जीव हैं, इतने जीवों के सुख अथवा दुःख को यावत् बेर की गुठली जितना भी, सेम जितना भी, मटर जितना भी, उड़द जितना भी, मूंग जितना भी, जूँ जितना भी और लीख जितना भी निष्पन्न करके दिखाने में कोई भी समर्थ नहीं है।

१७२. भन्ते! इस प्रकार का वक्तव्य कैसे है?

गौतम वे अन्ययूथिक जो ऐसा आख्यान करते हैं यावत् प्ररूपणा करते हैं, वे मिथ्या कहते हैं। गौतम! मैं इस प्रकार आख्यान करता हूँ यावत् प्ररूपणा करता हूँ—सर्व लोक के सब जीवों के सुख अथवा दुःख को यावत् बेर की गुठली जितना भी, सेम जितना भी, मटर जितना भी, मूंग जितना भी जूँ जितना भी और लीख जितना भी निष्पन्न करके दिखाने में कोई भी समर्थ नहीं है।

१७३. यह किस अपेक्षा से?

गौतम! यह जम्बूद्वीप द्वीप एक लाख योजन लम्बा-चौड़ा यावत् उसका परिक्षेप तीन-लाख-सोलह-हजार-दो-सौ-सत्ताईस-योजन-तीन-कोस-एक-सौ-अट्ठाईस-धनुष-और-साढा-तेरह-अंगुल-से-कुछ-अधिक प्रज्ञप्त है। महान् ऋद्धि वाला यावत् कोई महान् सामर्थ्य वाला देव विलेपन-सहित पिटक को ले कर उसे खोलता है, खोल कर यावत् यह रहा, यह रहा, इस प्रकार कह कर सम्पूर्ण जम्बूद्वीप द्वीप में तीन बार चुटकी बजाने जितने समय में इक्कीस बार घूम कर शीघ्र ही आ जाता है। गौतम! क्या वह सम्पूर्ण जम्बूद्वीप द्वीप उन नासिका-ग्राह्य पुद्गलों से स्पृष्ट हुआ?

हां, स्पृष्ट हुआ।

गौतम! उन नासिका-ग्राह्य पुद्गलों को बेर की गुठली जितना भी, सेम जितना भी, मटर जितना भी, उड़द जितना भी, मूंग जितना भी, जूँ जितना भी और लीख जितना भी निष्पन्न कर क्या कोई दिखाने में समर्थ हैं?

यह अर्थ संगत नहीं है। गौतम! इसीलिए यह कहा जा रहा है—जीव के सुख अथवा दुःख को यावत् दिखाने में कोई भी समर्थ नहीं है।

जीव-चेतना-पद

१७४. भन्ते! क्या जीव जीव (चैतन्य) है? भन्ते! क्या जीव (चैतन्य) जीव है?

गौतम! जीव नियमतः जीव (चैतन्य) है। जीव (चैतन्य) भी नियमतः जीव है।

१७५. भन्ते! क्या जीव नैरयिक है? क्या नैरयिक जीव है?

गौतम! नैरयिक नियमतः जीव है, जीव स्यात् नैरयिक है, स्यात् नैरयिक नहीं है।

१७६. भन्ते! क्या जीव असुरकुमार है? क्या असुरकुमार जीव है?

गौतम! असुरकुमार नियमतः जीव है। जीव स्यात् असुरकुमार है, स्यात् असुर-कुमार नहीं है।

१७७. इस प्रकार वैमानिक-देवों तक सभी दण्डक वक्तव्य हैं।

१७८. भन्ते! क्या जो जीता है, वह जीव है? अथवा जो जीव है वह जीता है?

गौतम! जो जीता है, वह नियमतः जीव है और जीव स्यात् जीता है, स्यात् नहीं जीता।

१७९. भन्ते! क्या जो जीता है, वह नैरयिक है? अथवा जो नैरयिक है, वह जीता है?

गौतम! नैरयिक नियमतः जीता है और जो जीता है, वह स्यात् नैरयिक है, स्यात् नैरयिक नहीं है।

१८०. इस प्रकार वैमानिक तक सभी दण्डक वक्तव्य हैं।

१८१. भन्ते! क्या जो भवसिद्धिक है, वह नैरयिक है? अथवा जो नैरयिक है, वह भवसिद्धिक है?

गौतम! जो भवसिद्धिक है, वह स्यात् नैरयिक है, स्यात् नैरयिक नहीं है। नैरयिक भी स्यात् भवसिद्धिक है, स्यात् भवसिद्धिक नहीं है।

१८२. इसी प्रकार वैमानिक तक सभी दण्डक वक्तव्य है।

वेदना-पद

१८३. भन्ते! अन्ययूथिक इस प्रकार आख्यान करते हैं यावत् प्ररूपणा करते हैं सब प्राण, भूत, जीव और सत्त्व एकान्त दुःखमय वेदना का वेदन करते हैं।

१८४. भन्ते! इस प्रकार का वक्तव्य कैसे हैं?

गौतम! जो अन्ययूथिक ऐसा आख्यान करते हैं, यावत् प्ररूपणा करते हैं वे मिथ्या कहते हैं।

गौतम! मैं इस प्रकार आख्यान करता हूँ यावत् प्ररूपणा करता हूँ—कुछ प्राण, भूत, जीव, और सत्त्व एकान्त दुःखमय वेदना का वेदन करते हैं और कभी-कभी सुख का वेदन करते हैं। कुछ प्राण, भूत, जीव और सत्त्व एकान्त सुखमय वेदना का वेदन करते हैं और कभी-कभी दुःख का वेदन करते हैं। कुछ प्राण, भूत, जीव और सत्त्व विमात्रा से वेदना का वेदन करते हैं—कभी सुख का वेदन करते हैं, कभी दुःख का वेदन करते हैं।

१८५. यह किस अपेक्षा से?

गौतम! नैरयिक एकान्त दुःखमय वेदना का वेदन करने हैं, कभी-कभी सुख का वेदन करते हैं। भवनपति, वानमन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक-देव एकान्त सुख का वेदन करते हैं, कभी-कभी दुःख का वेदन करते हैं। पृथ्वीकायिक-जीवों से लेकर मनुष्य तक सभी जीव विमात्रा से वेदना का वेदन करते हैं—कभी सुख का वेदन करते हैं, कभी दुःख का वेदन करते हैं। इस अपेक्षा से यह कहा जाता है।

नैरयिक आदि जीवों के आहार का पद

१८६. भन्ते! नैरयिक जीव जिन पुद्गलों को आत्मा से ग्रहण कर आहार करते हैं, क्या अपने शरीर के क्षेत्र में अवगाढ पुद्गलों को आत्मा से ग्रहण कर आहार करते हैं? क्या अनन्तर-क्षेत्र में अवगाढ पुद्गलों को आत्मा से ग्रहण कर आहार करते हैं? क्या परम्पर-क्षेत्र में अवगाढ पुद्गलों को आत्मा से ग्रहण कर आहार करते हैं?

गौतम! वे अपने शरीर के क्षेत्र में अवगाढ पुद्गलों को आत्मा से ग्रहण कर आहार करते हैं, अनन्तर-क्षेत्र में अवगाढ पुद्गलों को आत्मा से ग्रहण कर आहार नहीं करते, परम्पर-क्षेत्र में

अवगाढ़ पुद्गलों को आत्मा से ग्रहण कर आहार नहीं करते।

नैरयिक जीवों की भांति वैमानिक तक सभी दण्डक वक्तव्य हैं।

केवली के ज्ञान का पद

१८७. भन्ते! क्या केवली इन्द्रियों से जानता-देखता है?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है।

१८८. यह किस अपेक्षा से?

गौतम! केवली पूर्व दिशा में परिमित को भी जानता है, अपरिमित को भी जानता है, यावत् केवली का दर्शन निरावरण है, इस अपेक्षा से।

संग्रहणी गाथा

जीव का सुख और दुःख, जीव और जीना, भवसिद्धिक, एकान्त दुःखमय वेदना, आत्मा से आहार ग्रहण कर विषय और केवली का जानना-देखना— दसवें उद्देशक में प्रतिपादित विषय ये हैं।

१८९. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है।

● ● ●

सातवां शतक

पहला उद्देशक

संग्रहणी गाथा

सप्तम शतक के दस उद्देशक हैं—१. आहार—आहारक और अनाहारक की वक्तव्यता, २. विरति—प्रत्याख्यान की वक्तव्यता, ३. स्थावर—वनस्पति की वक्तव्यता, ४. जीव—संसारी जीवों की वक्तव्यता, ५. पक्षी—पक्षी की वक्तव्यता, ६. आयुष्य—आयुष्य की वक्तव्यता, ७. अनगार—अनगार की वक्तव्यता, ८. छद्मस्थ—छद्मस्थ मनुष्य की वक्तव्यता, ९. असंवृत—असंवृत अनगार की वक्तव्यता, १०. अन्ययूथिक—कालोदायी आदि अन्यतीर्थिकों की वक्तव्यता।

अनाहारक-पद

१. उस काल और उस समय में गणधर गौतम ने श्रमण भगवान् महावीर से इस प्रकार कहा—भन्ते! जीव किस समय अनाहारक होता है?

गौतम! जीव प्रथम समय में स्यात् आहारक होता है, स्यात् अनाहारक, दूसरे समय में स्यात् आहारक होता है, स्यात् अनाहारक, तीसरे समय में स्यात् आहारक होता है, स्यात् अनाहारक, चौथे समय में नियमतः आहारक होता है। इस प्रकार चौबीस दण्डक वक्तव्य हैं। जीव और एकेन्द्रिय ये दोनों चौथे समय में नियमतः आहारक होते हैं, शेष सब तीसरे समय में नियमतः आहारक होते हैं।

सर्वअल्प आहार-पद

२. भन्ते! जीव सबसे अल्प आहार किस समय करता है?

गौतम! उत्पत्ति के प्रथम समय और जीवन के अन्तिम समय में जीव सबसे अल्प आहार करता है। वैमानिक तक सभी दण्डकों में यह वक्तव्यता।

लोक-संस्थान-पद

३. भन्ते! लोक किस संस्थान से संस्थित है?

गौतम! लोक सुप्रतिष्ठक-संस्थान से संस्थित है। वह निम्न भाग में विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त और ऊपर विशाल है। वह निम्न भाग में पर्यंक के आकार वाला, मध्य में श्रेष्ठ वज्र के आकार वाला और ऊपर ऊर्ध्वमुख मृदंग के आकार वाला है।

उत्पन्न-ज्ञानदर्शन का धारक अर्हत्, जिन, केवली निम्न भाग में विस्तीर्ण यावत् ऊपर

ऊर्ध्वमुख मृदंग के आकार वाले उस शाश्वत लोक में जीव को भी जानता है, देखता है; अजीव को भी जानता है, देखता है उसके पश्चात् वह सिद्ध, प्रशान्त, मुक्त और परिनिर्वृत होता है तथा सब दुःखों का अन्त करता है।

श्रमणोपासक की क्रिया का पद

४. भन्ते! जो श्रमणोपासक सामायिक की साधना में है और श्रमणों के उपाश्रय में बैठा हुआ है, उसके क्या ऐर्यापथिकी क्रिया होती है अथवा साम्प्रायिकी क्रिया होती है?

गौतम! ऐर्यापथिकी क्रिया नहीं होती, साम्प्रायिकी क्रिया होती है।

५. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—श्रमणोपासक के ऐर्यापथिकी क्रिया नहीं होती, साम्प्रायिकी क्रिया होती है?

गौतम! जो श्रमणोपासक सामायिक की साधना में है और श्रमणों के उपाश्रय में बैठा हुआ है, उसकी आत्मा अधिकरणी होती है; आत्मा अधिकरण है, इस कारण उसके ऐर्यापथिकी क्रिया नहीं होती, साम्प्रायिकी क्रिया होती है। यह इस अपेक्षा से कहा जाता है।

६. भन्ते! श्रमणोपासक के पहले ही त्रस-प्राण का समारम्भ (हिंसा) का प्रत्याख्यान किया हुआ, पृथ्वीकायिक-जीव के समारम्भ का प्रत्याख्यान किया हुआ नहीं हैं। वह पृथ्वीकाय का खनन करता हुआ किसी त्रस-प्राणी की हिंसा करे, भन्ते! क्या ऐसा करता हुआ वह उस व्रत का अतिचरण करता है?

यह अर्थ संगत नहीं है, क्योंकि वह उस त्रस-प्राणी के वध के संकल्प से प्रवृत्ति नहीं करता।

७. भन्ते! श्रमणोपासक के पहले ही वनस्पति-जीवों के समारम्भ का प्रत्याख्यान किया हुआ है। वह पृथ्वी का खनन करता हुआ किसी वृक्ष की जड़ का काट दे, भन्ते! क्या ऐसा करता हुआ वह उस व्रत का अतिचरण करता है?

यह अर्थ संगत नहीं है। क्योंकि वह वनस्पति-जीव के वध के संकल्प से प्रवृत्ति नहीं करता।

श्रमण-प्रतिलाभ से लाभ-पद

८. भन्ते! श्रमणोपासक तथारूप श्रमण अथवा माहन को अभिलषणीय और एषणीय अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य से प्रतिलाभित करता हुआ क्या प्राप्त करता है? गौतम! श्रमणोपासक तथारूप श्रमण अथवा माहन को अभिलषणीय और एषणीय अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य से प्रतिलाभित करता हुआ तथारूप श्रमण अथवा माहन के समाधि उत्पन्न करता है। समाधि देने वाला व्यक्ति उसी समाधि को प्राप्त करता है।

९. भन्ते! श्रमणोपासक तथारूप श्रमण अथवा माहन को अभिलषणीय और एषणीय अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य से प्रतिलाभित करता हुआ क्या देता है?

गौतम! वह जीवन देता है, दुस्त्यज को त्यागता है, दुष्कर करता है, दुर्लभ को पाता है, बोधि का अनुभव करता है, उसके पश्चात् सिद्ध हो जाता है यावत् सब दुःखों का अन्त करता है।

अकर्म की गति का पद

१०. भन्ते! क्या अकर्म के गति होती है?

हां, होती है।

११. भन्ते! अकर्म के गति कैसी होती है?

गौतम! निस्संगता, निरञ्जनता, गति-परिणाम, बन्धन-छेदन, निरिन्धनता और पूर्व प्रयोग—इन कारणों से अकर्म के गति होती है।

१२. भन्ते! निस्संगता, निरञ्जनता और गति-परिणाम—इन कारणों से अकर्म के गति कैसे होती है?

जैसे कोई पुरुष सूखे, निश्छिद्र और निरुपहत तुम्बे का पहले परिकर्म करता है, फिर दर्भ और कुश से उसका वेष्टन करता है, वेष्टित कर आठ मिट्टी के लेपों से लीपता है, लीप कर धूप में रख देता है, प्रभूत शुष्क होने पर उसे अथाह, अतरणीय, पुरुष से अधिक परिमाण वाले जल में प्रक्षिप्त कर देता है। गौतम! क्या वह तुम्बा उन आठ मिट्टी के लेपों की गुरुता से, भारीपन से, अत्यन्त भारीपन से जल के तल तक पहुंचकर नीचे धरातल पर प्रतिष्ठित होता है?

हां, होता है।

क्या वह तुम्बा मिट्टी के आठों लेपों के उतर जाने पर धरातल से ऊपर उठकर सलिल-तल पर प्रतिष्ठित होता है?

हां, होता है।

गौतम! इसी प्रकार निस्संगता, निरञ्जनता और गति-परिणाम—इन कारणों से अकर्म के गति होती है।

१३. भन्ते! बन्धन का छेद होने से अकर्म के गति कैसे होती है?

गौतम! जैसे कोई गोल चने की फली, मूंग की फली, उड़द की फली, शाल्मली की फली और एरण्ड-फल धूप लगने पर सूख जाता है और उसके बीज प्रस्फुटित हो ऊपर की ओर उछल जाते हैं। गौतम! इसी प्रकार बन्धन का छेदन होने पर अकर्म के गति होती है।

१४. भन्ते! निरिन्धन होने के कारण अकर्म के गति कैसे होती है?

गौतम! जैसे इंधन से मुक्त धुएं की गति स्वभाव से ही किसी व्याघात के बिना ऊपर की ओर होती है। गौतम! इसी प्रकार निरिन्धन होने के कारण अकर्म के गति होती है।

१५. भन्ते! पूर्व प्रयोग से अकर्म के गति कैसे होती है?

गौतम! जैसे कोई धनुष से छूटे हुए बाण की किसी व्याघात के बिना लक्ष्य की ओर गति होती है। गौतम! इसी प्रकार पूर्व प्रयोग से अकर्म के गति होती है।

गौतम! इसी प्रकार निस्संगता, निरञ्जनता, गति-परिणाम, बन्धन-छेदन, निरिन्धनता और पूर्व प्रयोग—इन कारणों से अकर्म के गति होती है।

दुःखी के दुःखस्पर्श आदि का पद

१६. भन्ते! दुःखी व्यक्ति दुःख से स्पष्ट होता है? अथवा अदुःखी दुःख से स्पष्ट होता है।

गौतम! दुःखी दुःख से स्पष्ट होता है, अदुःखी दुःख से स्पष्ट नहीं होता है।

१७. भन्ते! दुःखी नैरयिक दुःख से स्पष्ट होता है? अथवा अदुःखी नैरयिक दुःख से स्पष्ट होता है?

गौतम! भन्ते! दुःखी नैरयिक दुःख से स्पष्ट होता है, अदुःखी नैरयिक दुःख से स्पष्ट नहीं होता ।

१८. वैमानिक तक सभी दण्डक इसी प्रकार वक्तव्य हैं।

१९. इस प्रकार पांच दण्डक ज्ञातव्य हैं—१. दुःखी दुःख से स्पष्ट होता है, २. दुःखी दुःख का ग्रहण करता है, ३. दुःखी दुःख की उदीरणा करता है, ४. दुःखी दुःख का वेदन करता है, ६. दुःखी दुःख की निर्जरा करता है।

ऐर्यापथिक-साम्प्रायिक-क्रिया-पद

२०. भन्ते! जो अनगर अनायुक्त दशा में (दत्तचित्त न होकर) चलता है, खड़ा होता है, बैठता है, लेटता है, वस्त्र, पात्र, कम्बल और पाद-प्रौछन लेता अथवा रखता है। भन्ते! क्या उसे ऐर्यापथिकी क्रिया होती है? अथवा साम्प्रायिकी क्रिया होती है?

गौतम! उसे ऐर्यापथिकी क्रिया नहीं होती, साम्प्रायिकी क्रिया होती है।

२१. यह किस अपेक्षा से?

गौतम! जिसके क्रोध, मान, माया और लोभ व्यवच्छिन्न हो जाते हैं, उसके ऐर्यापथिकी क्रिया होती है, जिसके क्रोध, मान, माया और लोभ व्यवच्छिन्न नहीं होते, उसके साम्प्रायिकी क्रिया होती है। यथासूत्र-सूत्र के अनुसार चलने वाले के ऐर्यापथिकी क्रिया होती है, उत्सूत्र-सूत्र के विपरीत चलने वाले के साम्प्रायिकी क्रिया होती है। वह (जिसके क्रोध, मान, माया और लोभ व्यवच्छिन्न नहीं होते) उत्सूत्र ही चलता है। यह इस अपेक्षा से कहा जाता है।

स-अंगार आदि दोष से दूषित पान-भोजन-पद

२२. भन्ते! स-अंगार, सधूम और संयोजन-दोष से दूषित पान-भोजन का क्या अर्थ प्रज्ञप्त है?

गौतम! जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी अभिलषणीय और एषणीय अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का प्रतिग्रहण कर उसमें मूर्च्छित, गृद्ध, ग्रथित और आसक्त हो कर आहार करता है, गौतम! वह पान-भोजन स-अंगार है।

जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी अभिलषणीय और एषणीय अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का प्रतिग्रहण कर महती अप्रीति और क्रोध-जनित क्लेश करता हुआ आहार कहता है, गौतम! वह पान-भोजन सधूम है।

जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी अभिलषणीय और एषणीय अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का प्रतिग्रहण कर उसे अधिक स्वादिष्ट बनाने के लिए दूसरे पदार्थ के साथ मिलाकर आहार

करता है, गौतम! वह पान-भोजन संयोजना-दोष से दूषित है।

गौतम! स-अंगार, सधूम और संयोजन-दोष से दूषित पान-भोजन का यह अर्थ प्रज्ञप्त है।

२३. भन्ते! अङ्गार-मुक्त, धूम-मुक्त और संयोजना-दोष-विप्रमुक्त पान-भोजन का क्या अर्थ प्रज्ञप्त है?

गौतम! जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी अभिलषणीय और एषणीय अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का प्रतिग्रहण कर उसमें अमूर्च्छित, अगृह्य, अग्रथित और अनासक्त हो कर आहार करता है, गौतम! यह अङ्गार-मुक्त पान-भोजन है।

जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी अभिलषणीय और एषणीय अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का प्रतिग्रहण कर महती अप्रीति तथा क्रोध-जनित क्लेश न करता हुआ आहार करता है, गौतम! वह धूम-मुक्त पान-भोजन है।

जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी अभिलषणीय और एषणीय अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का प्रतिग्रहण कर जैसा मिला है उसे उसी रूप में खाता है, गौतम! वह संयोजना-दोष-विप्रमुक्त पान-भोजन है।

गौतम! अङ्गार-मुक्त, धूम-मुक्त और संयोजना-दोष-विप्रमुक्त पान-भोजन का क्या यह अर्थ प्रज्ञप्त है।

२४. भन्ते! क्षेत्रातिक्रान्त, कालातिक्रान्त, मार्गातिक्रान्त और प्रमाणातिक्रान्त पान-भोजन का क्या अर्थ है।

गौतम! जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी अभिलषणीय और एषणीय अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का सूर्योदय से पहले प्रतिग्रहण कर सूरज के उगने पर आहार करता है, गौतम! यह क्षेत्रातिक्रान्त पान-भोजन है।

जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी अभिलषणीय और एषणीय अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का प्रथम प्रहर में प्रतिग्रहण कर अन्तिम प्रहर आने पर आहार करता है, गौतम! यह कालातिक्रान्त पान-भोजन है।

जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी अभिलषणीय और एषणीय अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का प्रतिग्रहण कर आधे योजन (दो कोश) की मर्यादा का अतिक्रमण कर आहार करता है, गौतम! यह मार्गातिक्रान्त पान-भोजन है।

जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी अभिलषणीय और एषणीय अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य का प्रतिग्रहण कर मुर्गी के अंडे के प्रमाण जितने बत्तीस कवल से अधिक आहार करता है, गौतम! यह प्रमाणातिक्रान्त पान-भोजन है।

मुर्गी के अण्डे जितने आठ कवल का आहार करने पर अल्पाहारी कहलाता है, मुर्गी के अण्डे जितने बारह कवल का आहार करने वाला अपार्द्ध-अवमोदरिक कहलाता है, मुर्गी के अण्डे जितने सोलह कवल का आहार करने वाला द्विभाग-प्राप्त कहलाता है। मुर्गी के अण्डे जितने चौबीस कवल का आहार करने वाला अवमोदरिक कहलाता है और मुर्गी के अण्डे जितने बत्तीस कवल का आहार करने वाला प्रमाणप्राप्त कहलाता है। इससे एक ग्रास भी कम

आहार करने वाला श्रमण निर्ग्रन्थ प्रकामरस-भोजी नहीं कहलाता।

गौतम! क्षेत्रातिक्रान्त, कालातिक्रान्त, मार्गातिक्रान्त और प्रमाणातिक्रान्त पान-भोजन का यह अर्थ है।

२५. भन्ते! शस्त्रातीत, शस्त्र-परिणामित एषणा से प्राप्त, साधुवेश से लब्ध और सामुदानिक पान-भोजन का क्या अर्थ प्रज्ञप्त है?

गौतम! शस्त्र (चाकु आदि) और मूसल का प्रयोग न करने वाला, पुष्पमाला और चन्दन के विलेपन से रहित निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी जो आहार व्यपगत-च्युत-च्यावित- और त्यक्त-जीव-शरीर वाला, जीव-रहित, साधु के निमित्त न किया गया, न कराया गया, न संकल्पित किया गया, आमन्त्रण-रहित, साधु के निमित्त न खरीदा गया, साधु को उद्दिष्ट कर न बनाया गया, नवकोटि से परिशुद्ध, दस दोष से विप्रमुक्त, उद्गम, उत्पादन और एषणा से परिशुद्ध, अंगार, धूम और संयोजना-दोष से विप्रमुक्त है। वैसा आहार करता है तथा 'सुरसुर' और 'चवचव' शब्द न करते हुए, न अधिक शीघ्रता से और न अधिक विलम्ब से, भूमि पर नहीं गिराते हुए, गाड़ी के पहिए की धूरी पर किए जाने वाले प्रक्षण और व्रण पर किए जाने वाले अनुलेप की भांति संयम-यात्रा के लिए अपेक्षित मात्रा वाला, संयम का भार वहन करने के लिए जैसे सर्प बिल में प्रवेश करते समय सीधा होता है वैसे ही स्वाद लिए बिना सीधा खाने वाला—जो इस विधि से आहार करता है, गौतम! यह शस्त्रातीत, शस्त्र-परिणामित, एषित, वैशिक और सामुदानिक पान-भोजन का अर्थ प्रज्ञप्त है।

२६. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है।

दूसरा उद्देशक

सुप्रत्याख्यान-दुष्प्रत्याख्यान-पद

२७. कोई पुरुष कहता है—मैंने सब प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों के वध का प्रत्याख्यान किया है? भन्ते! उसका वह प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यात होता है? अथवा दुष्प्रत्याख्यात होता है?

गौतम! जो पुरुष कहता है—मैंने सब प्राण यावत् सब सत्त्वों के वध का प्रत्याख्यान किया है। उसका वह प्रत्याख्यान स्यात् सुप्रत्याख्यात होता है, स्यात् दुष्प्रत्याख्यात होता है।

२८. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—जो पुरुष कहता है—मैंने सब प्राण यावत् सब सत्त्वों के वध का प्रत्याख्यान किया है, उसका वह प्रत्या-ख्यान स्यात् सुप्रत्याख्यात होता है, स्यात् दुष्प्रत्याख्यात होता है?

गौतम! जो पुरुष कहता है—मैंने सब प्राण यावत् सत्त्वों के वध का प्रत्याख्यान किया है और जिसे यह ज्ञात नहीं होता कि ये जीव हैं, ये अजीव हैं; ये त्रस हैं, ये स्थावर हैं, उसके सब प्राण यावत् सब सत्त्वों के वध का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यात नहीं होता, दुष्प्रत्याख्यात होता है।

इस प्रकार वह दुष्प्रत्याख्यानी कहता है—मैंने सब प्राण यावत् सब सत्त्वों के वध का प्रत्याख्यान किया है, वह सत्य भाषा नहीं बोलता, मृषा भाषा बोलता है। इस प्रकार वह

मृषावादी मनुष्य सब प्राण यावत् सब सत्त्वों के प्रति तीन योग और तीन करण से असंयत, अविरत, अतीत के पापकर्म का प्रतिहनन न करने वाला, भविष्य के पापकर्म का प्रत्याख्यान न करने वाला होता है। वह कायिकी आदि क्रिया से युक्त, असंवृत, एकान्तदण्डक और एकान्तबाल भी होता है।

जो पुरुष कहता है—मैंने सब प्राण यावत् सब सत्त्वों के वध का प्रत्याख्यान किया है, और जिसे यह ज्ञात होता है कि ये जीव हैं, ये अजीव हैं, ये त्रस हैं, ये स्थावर हैं, उसके सब प्राण यावत् सब सत्त्वों के वध का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यात होता है, दुष्प्रत्याख्यात नहीं होता।

इस प्रकार वह सुप्रत्याख्यानी कहता है—मैंने सब प्राण यावत् सब सत्त्वों के वध का प्रत्याख्यान किया है, वह सत्य भाषा बोलता है, मिथ्या भाषा नहीं बोलता। इस प्रकार वह सत्यवादी मनुष्य सब प्राण यावत् सब सत्त्वों के प्रति तीन योग और तीन करण से संयत, विरत, अतीत के पाप कर्म का प्रतिहनन करने वाला, भविष्य के पापकर्म का प्रत्याख्यान करने वाला होता है, वह कायिकी आदि क्रिया से मुक्त, संवृत और एकान्त-पण्डित भी होता है। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—जो पुरुष कहता है—मैंने सब प्राण यावत् सब तत्त्वों के वध का प्रत्याख्यान किया है, उसका वह प्रत्याख्यान स्यात् सुप्रत्याख्यात होता है, स्यात् दुष्प्रत्याख्यात होता है।

प्रत्याख्यान-पद

२९. भन्ते! प्रत्याख्यान के कितने प्रकार प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! प्रत्याख्यान के दो प्रकार प्रज्ञप्त हैं, जैसे—मूल-गुण-प्रत्याख्यान, उत्तर-गुण-प्रत्याख्यान।

३०. भन्ते! मूल-गुण-प्रत्याख्यान के कितने प्रकार प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! दो प्रकार प्रज्ञप्त हैं, जैसे—सर्व-मूल-गुण-प्रत्याख्यान, देश-मूल-गुण-प्रत्याख्यान।

३१. भन्ते! सर्व-मूल-गुण-प्रत्याख्यान के कितने प्रकार प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! पांच प्रकार प्रज्ञप्त हैं, जैसे—सर्व-प्राणातिपात-विरमण, सर्व-मृषावाद-विरमण, सर्व-अदत्तादान-विरमण, सर्व-मैथुन-विरमण, सर्व-परिग्रह-विरमण।

३२. भन्ते! देश-मूल-गुण-प्रत्याख्यान के कितने प्रकार प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! पांच प्रकार प्रज्ञप्त हैं, जैसे—स्थूल-प्राणातिपात-विरमण, स्थूल-मृषावाद-विरमण, स्थूल-अदत्तादान-विरमण, स्थूल-मैथुन-विरमण, स्थूल-परिग्रह-विरमण।

३३. भन्ते! उत्तर-गुण-प्रत्याख्यान के कितने प्रकार प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! दो प्रकार हैं, जैसे सर्व-उत्तर-गुणप्रत्याख्यान, देश-उत्तर-गुण-प्रत्याख्यान।

३४. भन्ते! सर्व-उत्तर-गुण-प्रत्याख्यान के कितने प्रकार प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! दस प्रकार प्रज्ञप्त हैं, जैसे—

गाथा—अनागत, अतिक्रान्त, कोटि-सहित, नियन्त्रित, साकार, अनाकार, परिमाण-कृत, निरवशेष, संकेत, अध्वा—इस प्रकार प्रत्याख्यान दस प्रकार का होता है।

३५. भन्ते! देश-उत्तर-गुण-प्रत्याख्यान के कितने प्रकार प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! सात प्रकार प्रज्ञप्त हैं, जैसे—१. दिग्व्रत, २. उपभोग-परिभोग-परिमाण, ३. अनर्थदण्ड-विरमण, ४. सामायिक, ५. देशावकाशिक, ६. पौषधोपवास, ७. अतिथि-संविभाग। अपश्चिमभारणान्तिकसंलेखना-जोषणा-आराधना।

प्रत्याख्यानी-अप्रत्याख्यानी-पद

३६. भन्ते! जीव क्या मूल-गुण-प्रत्याख्यानी हैं? उत्तर-गुण-प्रत्याख्यानी हैं? अप्रत्याख्यानी हैं?

गौतम! जीव मूल-गुण-प्रत्याख्यानी भी हैं, उत्तर-गुण-प्रत्याख्यानी भी हैं, अप्रत्याख्यानी भी हैं।

३७. भन्ते! नैरयिक क्या मूल-गुण-प्रत्याख्यानी है? पृच्छा।

गौतम! नैरयिक मूल-गुण-प्रत्याख्यानी नहीं है, उत्तर-गुण-प्रत्याख्यानी नहीं है, अप्रत्याख्यानी है।

३८. चतुरिन्द्रिय-जीवों तक इसी प्रकार वक्तव्य है।

३९. पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिक और मनुष्य जीव की भांति वक्तव्य है। वानमन्तर-, ज्योतिष्क-और वैमानिक-देव नैरयिक की भांति वक्तव्य है।

४०. भन्ते! इन मूल-गुण-प्रत्याख्यानी, उत्तर-गुण-प्रत्याख्यानी और अप्रत्याख्यानी जीवों में कौन किनसे अल्प, अधिक, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

गौतम! मूल-गुण-प्रत्याख्यानी जीव सबसे अल्प हैं, उत्तर-गुण-प्रत्याख्यानी जीव उनसे असंख्येयगुणा अधिक हैं, अप्रत्याख्यानी जीव उनसे अनन्तगुणा अधिक हैं।

४१. भन्ते! इन पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिक-जीवों में पृच्छा।

गौतम! पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिक-जीवों में सबसे अल्प मूल-गुण-प्रत्याख्यानी हैं, उत्तर-गुण-प्रत्याख्यानी उनसे असंख्येय-गुणा अधिक हैं, अप्रत्याख्यानी उनसे असंख्येय-गुणा अधिक हैं।

४२. भन्ते! मूल-गुण-प्रत्याख्यानी मनुष्यों में पृच्छा।

गौतम! मूल-गुण-प्रत्याख्यानी मनुष्य सबसे अल्प हैं, उत्तर-गुण-प्रत्याख्यानी उनसे असंख्येय-गुणा अधिक हैं, अप्रत्याख्यानी उनसे असंख्येय-गुणा अधिक हैं।

४३. भन्ते! जीव क्या सर्व-मूल-गुण-प्रत्याख्यानी हैं? देश-मूल-गुण-प्रत्याख्यानी हैं? अप्रत्याख्यानी हैं?

गौतम! जीव सर्व-मूल-गुण-प्रत्याख्यानी भी हैं, देश-मूल-गुण-प्रत्याख्यानी भी हैं, अप्रत्याख्यानी भी हैं।

४४. नैरयिकों की पृच्छा।

गौतम! नैरयिक सर्व-मूल-गुण-प्रत्याख्यानी नहीं हैं, देश-मूल-गुण-प्रत्याख्यानी नहीं हैं, अप्रत्याख्यानी हैं।

४५. चतुरिन्द्रिय-जीवों तक इसी प्रकार वक्तव्य है।

४६. पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिक-जीवों की पृच्छा।

गौतम! पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिक-जीव सर्व-मूल-गुण-प्रत्याख्यानी नहीं है, देश-मूल-गुण-प्रत्याख्यानी हैं, अप्रत्याख्यानी भी हैं।

४७. भन्ते! मनुष्य क्या सर्व-मूल-गुण-प्रत्याख्यानी हैं, देश-मूल-गुण-प्रत्याख्यानी हैं? अप्रत्याख्यानी हैं?

गौतम! मनुष्य सर्व-मूल-गुण-प्रत्याख्यानी भी हैं, देश-मूल-गुण-प्रत्याख्यानी भी हैं, अप्रत्याख्यानी भी हैं।

४८. वानमंतर-, ज्योतिष्क- और वैमानिक-देव नैरयिक-जीवों की भांति वक्तव्य हैं।

४९. भन्ते! इन सर्व-मूल-गुण-प्रत्याख्यानी, देश-मूल-गुण-प्रत्याख्यानी और अप्रत्याख्यानी जीवों में कौन किनसे अल्प, अधिक, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

गौतम! सर्व-मूल-गुण-प्रत्याख्यानी जीव सबसे अल्प हैं, देश-मूल-गुण-प्रत्याख्यानी उनसे असंख्येय-गुणा अधिक हैं, अप्रत्याख्यानी उनसे अनन्त-गुणा अधिक हैं।

५०. भन्ते! इन पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिक-जीवों की पृच्छा।

गौतम! देश-मूल-गुण-प्रत्याख्यानी पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिक-जीव सबसे अल्प हैं, अप्रत्याख्यानी उनसे असंख्येय-गुणा अधिक हैं।

५१. भन्ते! इन सर्व-मूल-गुण-प्रत्याख्यानी मनुष्यों की पृच्छा।

गौतम! सर्व-मूल-गुण-प्रत्याख्यानी मनुष्य सबसे अल्प हैं, देश-मूल-गुण-प्रत्याख्यानी मनुष्य उनसे असंख्येय-गुणा अधिक हैं, अप्रत्याख्यानी मनुष्य उनसे असंख्येय-गुणा अधिक हैं।

५२. भन्ते! जीव क्या सर्वोत्तर-गुण-प्रत्याख्यानी हैं? देशोत्तर-गुण-प्रत्याख्यानी हैं, अप्रत्याख्यानी हैं?

गौतम! जीव सर्वोत्तर-गुण-प्रत्याख्यानी भी हैं, देशोत्तर-गुण-प्रत्याख्यानी प्रत्याख्यानी भी हैं, अप्रत्याख्यानी भी हैं।

पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिक-जीव और मनुष्य इसी प्रकार वक्तव्य हैं। वैमानिक-देवों तक शेष सभी जीव अप्रत्याख्यानी हैं।

५३. भन्ते! इन सर्वोत्तर-गुण-प्रत्याख्यानी, देशोत्तर-गुण-प्रत्याख्यानी और अप्रत्याख्यानी जीवों में कौन किनसे अल्प, अधिक, तुल्य विशेषाधिक हैं? प्रथम दण्डक की भांति तीनों हैं। (सू. ४०-४२) यावत् मनुष्यों तक वक्तव्य है।

५४. भन्ते! जीव क्या संयत हैं? असंयत हैं? संयतासंयत हैं?

गौतम! जीव संयत भी हैं, असंयत भी हैं, संयतासंयत भी हैं। इस प्रकार वैमानिक जीवों तक पणवणा (पद ३२) की भांति वक्तव्य है। तीनों का अल्प-बहुत्व भी प्रथम दण्डक (सूत्र ४०-४२) की भांति वक्तव्य है।

५५. भन्ते! जीव क्या प्रत्याख्यानी हैं? अप्रत्याख्यानी हैं? प्रत्याख्यानी-अप्रत्याख्यानी हैं?

गौतम! जीव जीव प्रत्याख्यानी भी हैं, अप्रत्याख्यानी भी हैं, प्रत्याख्यानी-अप्रत्याख्यानी भी हैं।

५६. इसी प्रकार मनुष्यों की वक्तव्यता। पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिक जीव प्रत्याख्यानी नहीं हैं।

वैमानिक देवों तक शेष सभी जीव अप्रत्याख्यानी हैं।

५७. भन्ते! इन प्रत्याख्यानी, अप्रत्याख्यानी और प्रत्याख्यानी-अप्रत्याख्यानी जीवों में कौन किससे अल्प, अधिक, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

गौतम! प्रत्याख्यानी जीव सबसे अल्प हैं, प्रत्याख्यानी-अप्रत्याख्यानी जीव उनसे असंख्येयगुणा अधिक हैं, अप्रत्याख्यानी जीव उनसे अनन्तगुणा अधिक हैं।

पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिक जीवों में सबसे अल्प प्रत्याख्यानी-अप्रत्याख्यानी हैं, अप्रत्याख्यानी उनसे असंख्येयगुणा अधिक हैं।

मनुष्य में प्रत्याख्यानी सबसे अल्प हैं, प्रत्याख्यानी-अप्रत्याख्यानी उनसे संख्येयगुणा अधिक है, अप्रत्याख्यानी उनसे असंख्येयगुणा अधिक है।

शाश्वत-अशाश्वत-पद

५८. भन्ते! जीव क्या शाश्वत हैं? अशाश्वत हैं?

गौतम! जीव स्यात् शाश्वत हैं, स्यात् अशाश्वत हैं।

५९. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—जीव स्यात् शाश्वत हैं, स्यात् अशाश्वत हैं?

गौतम! द्रव्यार्थता (द्रव्य-राशि) की अपेक्षा जीव शाश्वत हैं, भावार्थता (पर्याय) की अपेक्षा जीव अशाश्वत हैं।

गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—जीव स्यात् शाश्वत हैं, स्यात् अशाश्वत हैं।

६०. भन्ते! नैरयिक क्या शाश्वत है? अशाश्वत हैं?

जिस प्रकार जीव की वक्तव्यता, उसी प्रकार नैरयिकों की वक्तव्यता। इस प्रकार वैमानिक-देवों तक सभी जीव स्यात् शाश्वत हैं, स्यात् अशाश्वत हैं।

६१. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है।

तीसरा उद्देशक

वनस्पति-आहार-पद

६२. भन्ते! वनस्पतिकायिक-जीव किस समय सबसे अल्प आहार करते हैं और किस समय सबसे अधिक आहार करते हैं?

गौतम! प्रावृट्-और वर्षा-ऋतु में वनस्पतिकायिक-जीव सबसे अधिक आहार करते हैं, तदनन्तर शरद्-ऋतु में उससे अल्प, हेमन्त-ऋतु में उससे अल्प, बसन्त-ऋतु में उससे अल्प और ग्रीष्म-ऋतु में उससे अल्प आहार करते हैं। ग्रीष्म-ऋतु में वनस्पतिकायिक-जीव सबसे अल्प आहार करते हैं।

६३. भन्ते! यदि वनस्पतिकायिक-जीव ग्रीष्म-ऋतु में सबसे अल्प आहार करते हैं, तो भन्ते! क्या कारण है—ग्रीष्म-ऋतु में अनेक वनस्पतिकायिक-जीव पत्रों और पुष्पों से आकीर्ण, फलों से लदे हुए, हरितिमा से दीप्यमान और वनश्री से अतीव-अतीव उपशोभमान-उपशोभमान होते हैं?

गौतम! ग्रीष्म-ऋतु में अनेक उष्णयोनिक जीव और पुद्गल वनस्पतिकायिक-जीव के रूप में उत्पन्न होते हैं और विनष्ट होते हैं, च्युत होते हैं और उत्पन्न होते हैं। गौतम! इस प्रकार ग्रीष्म-ऋतु में अनेक वनस्पतिकायिक-जीव पत्रों और पुष्पों से आकीर्ण, फलों से लदे हुए, हरितिमा से दीप्यमान और वनश्री से अतीव-अतीव उपशोभमान-उपशोभमान होते हैं।

६४. भन्ते! क्या मूल मूल के जीव से स्पृष्ट, कंद कंद के जीव से स्पृष्ट, स्कन्ध (तना) स्कन्ध के जीव से स्पृष्ट, त्वचा (छाल) त्वचा के जीव से स्पृष्ट, शाखा शाखा के जीव से स्पृष्ट, प्रवाल (कोपल) प्रवाल के जीव से स्पृष्ट, पत्र पत्र के जीव से स्पृष्ट, पुष्प पुष्प के जीव से स्पृष्ट, फल फल के जीव से स्पृष्ट और बीज बीज के जीव से स्पृष्ट हैं?

हां, गौतम! मूल मूल के जीव स्पृष्ट यावत् बीज बीज के जीव स्पृष्ट हैं।

६५. भन्ते! यदि मूल मूल के जीव से स्पृष्ट यावत् बीज बीज के जीव स्पृष्ट हैं तो भन्ते! वनस्पतिकायिक-जीव कैसे आहार करते हैं और कैसे उसे परिणत करते हैं?

गौतम! मूल मूल के जीव स्पृष्ट और पृथ्वी के जीव से प्रतिबद्ध होते हैं। इस हेतु से वे आहार करते हैं और उसे परिणत करते हैं। कंद कंद के जीव से स्पृष्ट और मूल के जीव से प्रतिबद्ध होते हैं। इस हेतु से वे आहार करते हैं और उसे परिणत करते हैं। इस प्रकार यावत् बीज बीज के जीव से स्पृष्ट और फल के जीव से प्रतिबद्ध होते हैं। इस हेतु से वे आहार करते हैं और उसे परिणत करते हैं।

अनन्तकाय-पद

६६. भन्ते! क्या आलु^१, मूला, अदरक, हिरिलि, सिरिलि, सिस्सिरिली, वाराही-कंद, भूखर्जूर, क्षीरविदारी, कृष्णकंद, वज्रकंद, सूरणकंद, केलूट, भद्रमुस्ता, पिण्डहरिद्रा, रोहीतक, त्रिधारा थूहर, थीहू, स्तबक, शाल, अडूसा, कांटा-थूहर, काली मूसली इस प्रकार के अन्य वनस्पतिकायिक-जीव हैं, वे सब अनन्त जीव वाले हैं? उनका सत्त्व विविध प्रकार का है?

हां, गौतम, आलु, मूला, यावत् अनन्त जीव वाले हैं। उनका सत्त्व विविध प्रकार का है।

अल्पकर्म-महाकर्म-पद

६७. भन्ते! स्यात् (कदाचित्) कृष्ण-लेश्या वाला नैरयिक अल्पतर कर्म वाला और नील लेश्या वाला नैरयिक महत्तर कर्म वाला हो सकता है?

हां, स्यात् हो सकता है।

६८. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—कृष्ण-लेश्या वाला नैरयिक अल्पतर-कर्म

१. आलु का अर्थ आलू (Potato) नहीं है, देखें, भगवती भाष्य, खण्ड २, पृ. ३५२-३५३।

वाला और नील-लेश्या वाला नैरयिक महत्तर-कर्म वाला हो सकता है?

गौतम! स्थिति की अपेक्षा से। गौतम! इसलिए यह कहा जा रहा है यावत् नील-लेश्या वाला नैरयिक महत्तर-कर्म वाला हो सकता है।

६९. भन्ते! स्यात् नील-लेश्या वाला नैरयिक अल्पतर-कर्म वाला और कापोत-लेश्या वाला नैरयिक महत्तर-कर्म वाला हो सकता है?

हां, स्यात् हो सकता है।

७०. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—नील-लेश्या वाला नैरयिक अल्पतर-कर्म वाला और कापोत-लेश्या वाला नैरयिक महत्तर-कर्म वाला हो सकता है? गौतम! स्थिति की अपेक्षा से। गौतम! इसलिए यह कहा जा रहा है यावत् कापोत-लेश्या वाला नैरयिक महत्तर-कर्म वाला हो सकता है।

७१. असुरकुमार की वक्तव्यता भी इसी प्रकार है। विशेष यह है कि असुरकुमार में तेजो-लेश्या वक्तव्य है। इस प्रकार यावत् वैमानिक की वक्तव्यता। जिसमें जितनी लेश्याएं हैं, उतनी वक्तव्य हैं। ज्योतिष्क-देवों में केवल तेजो-लेश्या होती है, इसलिए वह इस प्रकरण में वक्तव्य नहीं है। यावत्—

७२. भन्ते! स्यात् पद्म-लेश्या वाला वैमानिक अल्पतर-कर्म वाला और शुक्ल-लेश्या वाला वैमानिक महत्तर-कर्म वाला हो सकता है?

हां, स्यात् हो सकता है।

७३. भन्ते! यह किस अपेक्षा से?

गौतम! स्थिति की अपेक्षा से। गौतम! इसलिए यह कहा जा रहा है। यावत् शुक्ल-लेश्या वाला वैमानिक महत्तर-कर्म वाला हो सकता है।

वेदना-निर्जरा-पद

७४. भन्ते! क्या जो वेदना है वह निर्जरा है, जो निर्जरा है वह वेदना है?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है।

७५. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—जो वेदना है वह निर्जरा नहीं है? जो निर्जरा है वह वेदना नहीं है?

गौतम! वेदना कर्म की होती है, निर्जरा नो-कर्म की होती है। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—जो वेदना है वह निर्जरा नहीं है, जो निर्जरा है वह वेदना नहीं है।

७६. भन्ते! क्या नैरयिकों के जो वेदना है वह निर्जरा है? जो निर्जरा है वह वेदना है?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है।

७७. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—नैरयिकों के जो वेदना है वह निर्जरा नहीं है? जो निर्जरा है वह वेदना नहीं है?

गौतम! नैरयिकों के वेदना कर्म की होती है, निर्जरा नो-कर्म की होती है। गौतम! इस अपेक्षा

से यह कहा जा रहा है—नैरयिकों के जो वेदना है वह निर्जरा नहीं है, जो निर्जरा है वह वेदना नहीं है।

७८. इसी प्रकार यावत् वैमानिकों की वक्तव्यता।

७९. भन्ते! क्या जिसकी वेदना की उसकी निर्जरा की? जिसकी निर्जरा की उसकी वेदना की? ऐसा हो सकता है?

यह अर्थ संगत नहीं है।

८०. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—जिसकी वेदना की उसकी निर्जरा नहीं की? जिसकी निर्जरा की उसकी वेदना नहीं की?

गौतम! वेदना कर्म की की और निर्जरा नोकर्म की की। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है यावत् जिसकी निर्जरा की उसकी वेदना नहीं की।

८१. इसी प्रकार नैरयिक यावत् वैमानिकों की वक्तव्यता।

८२. भन्ते! क्या जिसकी वेदना करते हैं उसकी निर्जरा करते हैं, जिसकी निर्जरा करते हैं उसकी वेदना करते हैं?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है।

८३. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—यावत् जिसकी निर्जरा करते हैं उसकी वेदना नहीं करते?

गौतम! वेदना कर्म की करते हैं, निर्जरा नोकर्म की करते हैं। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—यावत् जिसकी निर्जरा करते हैं उसकी वेदना नहीं करते।

८४. इसी प्रकार नैरयिकों यावत् वैमानिकों की वक्तव्यता।

८५. भन्ते! क्या जिसकी वेदना करेंगे उसकी निर्जरा करेंगे, जिसकी निर्जरा करेंगे उसकी वेदना करेंगे?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है।

८६. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—यावत् जिसकी निर्जरा करेंगे उसकी वेदना नहीं करेंगे?

गौतम! वेदना कर्म की करेंगे, निर्जरा नोकर्म की करेंगे। इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है यावत् जिसकी वेदना करेंगे उसकी निर्जरा नहीं करेंगे।

८७. इसी प्रकार नैरयिक यावत् वैमानिकों की वक्तव्यता।

८८. भन्ते! क्या जो वेदना का समय है वही निर्जरा का समय है? जो निर्जरा का समय है वही वेदना का समय है?

यह अर्थ संगत नहीं है।

८९. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—जो वेदना का समय है वह निर्जरा का समय नहीं है? जो निर्जरा का समय है वह वेदना का समय नहीं है?

गौतम! जिस समय वेदना करत है उस समय निर्जरा नहीं करते! जिस समय निर्जरा करते हैं उस समय वेदना नहीं करते—अन्य समय में वेदना करते हैं, अन्य समय में निर्जरा करते हैं। वेदना का समय अन्य है, निर्जरा का समय अन्य है। इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है यावत् जो निर्जरा का समय है वह वेदना का समय नहीं है। जो वेदना का समय है वह निर्जरा का समय नहीं है।

९०. भन्ते! क्या नैरयिकों के जो वेदना का समय है वही निर्जरा का समय है, जो निर्जरा का समय है वही वेदना का समय है।

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है।

९१. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—नैरयिकों के जो वेदना का समय है वह निर्जरा का समय नहीं है? जो निर्जरा का समय है वह वेदना का समय नहीं है?

गौतम! नैरयिक जिस समय वेदना करते हैं उस समय निर्जरा नहीं करते, जिस समय निर्जरा करते हैं उस समय वेदना नहीं करते—अन्य समय में वेदना करते हैं, अन्य समय में निर्जरा करते हैं। वेदना का समय अन्य है, निर्जरा का समय अन्य है। इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है यावत् जो निर्जरा का समय है वह वेदना का समय नहीं है।

९२. इसी प्रकार यावत् वैमानिकों की वक्तव्यता।

शाश्वत-अशाश्वत-पद

९३. भन्ते! क्या नैरयिक शाश्वत हैं? अशाश्वत हैं?

गौतम! स्यात् (किसी अपेक्षा से) शाश्वत हैं, स्यात् अशाश्वत हैं।

९४. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—नैरयिक स्यात् शाश्वत हैं, स्यात् अशाश्वत हैं?

गौतम! अव्युच्छित्ति-नय की अपेक्षा शाश्वत हैं, व्युच्छित्ति-नय की अपेक्षा अशाश्वत हैं, इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है यावत् नैरयिक स्यात् शाश्वत हैं, स्यात् अशाश्वत हैं।

९५. इसी प्रकार यावत् वैमानिक यावत् स्यात् अशाश्वत हैं।

९६. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है।

चौथा उद्देशक

संसारस्थजोव-पदम्

९७. राजगृह नगर में महावीर का समवसरण यावत् गौतम ने कहा—भन्ते! संसार-समापन्नक जीव कितने प्रकार के प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! संसार-समापन्नक जीव छह प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—पृथ्वीकायिक यावत् त्रसकायिक। इस प्रकार यह प्रकरण जीवाजीवाधिगम (३/१८३-२११) की भांति वक्तव्य है यावत् एक जीव एक समय में एक क्रिया करता है, जैसे—सम्यक्त्व-क्रिया अथवा मिथ्यात्व-क्रिया।

९८. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है।

पांचवां उद्देशक

योनि-संग्रह-पद

१९. राजगृह नगर में महावीर का समवसरण यावत् गौतम ने कहा—भन्ते! खेचर पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिक जीवों का योनि-संग्रह कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?

गौतम! तीन प्रकार का योनि-संग्रह प्रज्ञप्त है, जैसे—अण्डज, पोतज, सम्मूर्च्छिम। इस प्रकार यह प्रकरण जीवाजीवाभिगम (३/१४७-१८२) की भांति वक्तव्य है यावत् वे उन विमानों का अतिक्रमण नहीं करते। गौतम! वे विमान इतने महान् प्रज्ञप्त हैं।

१००. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है।

छठा उद्देशक

आयुष्क-प्रकरण-वेदना-पद

१०१. राजगृह नगर में महावीर का समवसरण यावत् गौतम! ने इस प्रकार कहा—भन्ते! जो भविक जीव नैरयिक-रूप में उपपन्न होने वाला है, भन्ते! क्या वह यहां रहता हुआ नैरयिक-आयुष्य का बंध करता है? उपपन्न होता हुआ नैरयिक-आयुष्य का बंध करता है? उपपन्न होने पर नैरयिक-आयुष्य का बंध करता है?

गौतम! वह यहां रहता हुआ नैरयिक-आयुष्य का बंध करता है, उपपन्न होता हुआ नैरयिक-आयुष्य का बंध नहीं करता, उपपन्न होने पर नैरयिक-आयुष्य का बंध नहीं करता। असुर-कुमारों के लिए भी यही नियम है। इसी प्रकार यावत् वैमानिकों के लिए भी यही नियम है।

१०२. भन्ते! जो भविक जीव नैरयिक-रूप में उपपन्न होने वाला है, भन्ते! क्या वह यहां रहता हुआ नैरयिक-आयुष्य का प्रतिसंवेदन करता है? उपपन्न होता हुआ नैरयिक-आयुष्य का प्रतिसंवेदन करता है? उपपन्न होने पर नैरयिक आयुष्य का प्रतिसंवेदन करता है?

गौतम! वह यहां रहता हुआ नैरयिक-आयुष्य प्रतिसंवेदन नहीं करता, उपपन्न होता हुआ नैरयिक-आयुष्य का प्रतिसंवेदन करता है, उपपन्न होने पर भी नैरयिक-आयुष्य का प्रतिसंवेदन करता है। इसी प्रकार यावत् वैमानिकों के लिए यही नियम है।

१०३. भन्ते! जो भविक जीव नैरयिक-रूप में उपपन्न होने वाला है, भन्ते! क्या वह यहां रहता हुआ (मृत्युक्षण में) महा-वेदना वाला होता है? उपपन्न होता हुआ महा-वेदना वाला होता है? उपपन्न होने पर महा-वेदना वाला होता है?

गौतम! वह यहां रहता हुआ स्यात् महा-वेदना वाला होता है, स्यात् अल्प-वेदना वाला होता है। उपपन्न होता हुआ स्यात् महा-वेदना वाला होता है, स्यात् अल्प-वेदना वाला होता है। उपपन्न होने के पश्चात् एकान्त दुःखद वेदना का वेदन करता है और कदाचित् सात वेदना का वेदन करता है।

१०४. भन्ते! जो भविक जीव असुरकुमारों में उपपन्न होने वाला है, पृच्छा।

गौतम! वह यहां रहता हुआ स्यात् महा-वेदना वाला होता है, स्यात् अल्प-वेदना वाला

होता है। उपपन्न होता हुआ स्यात् महा-वेदना वाला होता है, स्यात् अल्प-वेदना वाला होता है, उपपन्न होने के पश्चात् एकान्त सुखद वेदना का वेदन करता है और कदाचित् असात वेदना का वेदन करता है। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारों के लिए यही नियम है।

१०५. भन्ते! जो भविक जीव पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होने वाला है, पृच्छा।

गौतम! वह यहां रहता हुआ स्यात् महा-वेदना वाला होता है, स्यात् अल्प-वेदना वाला होता है। इसी प्रकार उत्पन्न होता हुआ भी स्यात् महा-वेदना वाला होता है, स्यात् अल्प-वेदना वाला होता है, उत्पन्न होने के पश्चात् विभिन्न मात्रा वाली वेदना का वेदन करता है। इसी प्रकार यावत् मनुष्यों के लिए यही नियम है। व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिकों में असुरकुमार के समान वक्तव्यता।

१०६. भन्ते! क्या जीव ज्ञात अवस्था में आयुष्य का बंध करते हैं? अथवा अज्ञात अवस्था में आयुष्य का बंध करते हैं।

गौतम! जीव ज्ञात अवस्था में आयुष्य का बंध नहीं करते, अज्ञात अवस्था में आयुष्य का बंध करते हैं। इसी प्रकार नैरयिक यावत् वैमानिक की वक्तव्यता।

कर्कश-अकर्कश-वेदनीय-पद

१०७. भन्ते! क्या जीवों के कर्कश-वेदनीय कर्म होते हैं?

हां, होते हैं।

१०८. भन्ते! जीवों के कर्कश-वेदनीय कर्म किस कारण से होते हैं?

गौतम! प्राणातिपात यावत् मिथ्या-दर्शन-शल्य से होते हैं। गौतम! इस प्रकार जीवों के कर्कश-वेदनीय कर्म होते हैं।

१०९. भन्ते! क्या नैरयिकों के कर्कश-वेदनीय कर्म होते हैं?

हां, होते हैं। इसी प्रकार यावत् वैमानिकों के कर्कश-वेदनीय कर्म होते हैं।

११०. भन्ते! क्या जीवों के अकर्कश-वेदनीय कर्म होते हैं?

हां, होते हैं।

१११. भन्ते! जीवों के अकर्कश-वेदनीय कर्म किस कारण से होते हैं?

गौतम! प्राणातिपात-विरमण यावत् परिग्रह-विरमण और क्रोध-विवेक यावत् मिथ्यादर्शन-शल्य-विवेक से होते हैं। गौतम! इस प्रकार जीवों के अकर्कश-वेदनीय कर्म होते हैं।

११२. भन्ते! क्या नैरयिकों के अकर्कश-वेदनीय कर्म होते हैं?

यह अर्थ संगत नहीं है। इसी प्रकार यावत् वैमानिकों के लिए यही नियम है। विशेष यह है—मनुष्यों की वक्तव्यता जीवों के समान है।

सातासात-वेदनीय-पद

११३. भन्ते! क्या जीवों के सात-वेदनीय-कर्म होते हैं?

हां, होते हैं।

११४. भन्ते! जीवों के सात-वेदनीय-कर्म का बंध किस कारण से होता है।

गौतम! प्राणों की अनुकम्पा, भूतों की अनुकम्पा, जीवों की अनुकम्पा, सत्त्वों की अनुकम्पा, अनेक प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों को दुःखी न बनाना, शोकाकुल न करना, न जुराना (शरीर को जीर्ण अथवा खेद खिन्न न करना) न रूलाना, न पीटना, न परिताप देना—गौतम! इस प्रकार की अनुकम्पा-वृत्ति से जीवों के सात-वेदनीय-कर्म का बंध होता है। इसी प्रकार नैरयिक यावत् वैमानिकों के सात-वेदनीय-कर्म का बंध होता है।

११५. भन्ते! क्या जीवों के असात-वेदनीय-कर्म होते हैं?

हां, होते हैं।

११६. भन्ते! जीवों के असात-वेदनीय-कर्म का बंध किस कारण से होता है?

गौतम! दूसरों को दुःखी बनाना, शोकाकुल बनाना, जुराना (शरीर को जीर्ण और खेद खिन्न करना) रूलाना, पीटना, परिताप देना, अनेक प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों को दुःखी बनाना, शोकाकुल करना, जुराना, रूलाना, पीटना, परिताप देना—गौतम! इस प्रकार की क्रूर वृत्ति से जीवों के असात-वेदनीय-कर्म का बंध होता है। इसी प्रकार नैरयिक यावत् वैमानिकों के असात-वेदनीय-कर्म का बंध होता है।

दुःषम-दुःषमा-पद

११७. भन्ते! जम्बूद्वीप द्वीप में इस अवसर्पिणी का दुःषम-दुषमा अर पराकाष्ठा पर होगा, तब भरतक्षेत्र के आकार-पर्याय का अवतरण कैसा होगा?

गौतम! वह काल हाहाकारमय होगा, पशुओं का 'भां-भां' इस प्रकार का आर्तस्वर तथा पीड़ित पक्षियों का कोलाहल होगा। उस काल के प्रभाव से खर-पुरुष धूलि से भटमैले, दुःसह वातुल (बवण्डर) तथा भयंकर प्रलथंकारी हवाएं चलेंगीं। दिशाएं बार-बार धूमिल रजकणों से व्याप्त तथा धूल-भरी आंधियों से अन्धकारमय हो जाएंगीं। 'समय' की रूक्षता के कारण चांद अधिक शीतल होंगे। सूर्यों का ताप अधिक तपेगा। अरस जल वाले मेघ, विरस जल वाले मेघ, क्षार जल वाले मेघ, खाद के समान रस वाले मेघ, अग्नि की भांति दाहक जल वाले मेघ, विद्युत् निपात करने वाले मेघ, विषयुक्त जल वाले मेघ, ओला-वृष्टि वाले मेघ—इस प्रकार के अनेक मेघ बार-बार बरसेंगे। उनका जल पीने योग्य नहीं होगा। वह व्याधि, रोग, वेदना को उभारने वाला होगा। वह अमनोज्ञ होगा और वर्षा भी प्रचण्ड वायु के आघात से प्रेरित हो मूसलाधार होगी। उस वर्षा के कारण भरत क्षेत्र में गांव, आकर, नगर, खेट, कब्बड, मडम्ब, द्रोणमुख, पट्टण, आश्रम आदि जनपदों, गाय, भेड़ आदि पशुओं, आकाशविहारी पक्षी-समूहों, गांव और जंगल में घूमने वाले प्राणियों और बहुत प्रकार के वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता, वल्लि, तृण, पर्व, हरित, औषधि, प्रवाल, अंकुर आदि तृण वनस्पतिकाय का विध्वंस हो जायेगा। वैताद्वय पर्वत को छोड़ कर शेष सारे पर्वत, गिरि, डूंगर, टीले, पठार नष्ट हो जायेंगे। गंगा और सिंधु नदी को छोड़ कर शेष सारे भूमि-निर्झर, गढे, दुर्ग, विषम प्रदेश और निम्नोन्नत प्रदेश समतल हो जायेंगे।

११८. भन्ते! उस काल में भरत क्षेत्र की भूमि के आकार और भाव का अवतरण कैसा होगा?

गौतम! उस काल में भरत क्षेत्र की भूमि अंगारों, मुर्मुरीं (भस्ममिश्रित-अमिकणों), तपी हुई राख एवं तपे हुए तवे के समान हो जाएगी। वह ताप से तप्त और अग्नि तुल्य हो जाएगी। वह बहुल धूल वाली, बहुल रज वाली, बहुल पंक वाली, बहुल सघन कीचड़ वाली और बहुल चरण-प्रमाण कीचड़ वाली हो जायेगी। भूमि पर चलने वाले अनेक प्राणियों के लिए उस पर चलना कठिन हो जाएगा।

११९. भन्ते! उस काल में भरत क्षेत्र के मनुष्यों का आकार और भाव का अवतरण कैसा होगा?

गौतम! उस काल में भरतक्षेत्र के मनुष्य दुःस्वभाव वाले, दुर्वर्ण, दुर्गन्ध, दूसर, दुःस्पर्श, अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अशुभ, अमनोज्ञ, अकमनीय, तथा हीन स्वर, दीन स्वर, अनिष्ट स्वर, अकान्त स्वर, अप्रिय स्वर, अशुभ स्वर, अमनोज्ञ स्वर, अकमनीय स्वर वाले होंगे। उनका वचन दूसरों द्वारा आदेय नहीं होगा। वे निर्लज्ज तथा चूट, कपट, कलह, वध, बंध और वैर में संलग्न रहेंगे। वे मर्यादा का अतिक्रमण करने में मुखिया, अकरणीय करने में सदा उद्यत, चढ़ों के प्रति अवश्य करणीय विनय से शून्य होंगे। उनका रूप विकल होगा, उनके नख, केश, श्मश्रु, रोम बड़े हुए होंगे, वे काले वर्ण वाले होंगे, धे अत्यन्त रूक्ष और गटभैले वर्ण वाले फटे हुए सिर वाले, पीले और सफेद केश वाले बहुत स्नायुओं से गूंथे हुए होने के कारण दुर्दर्शनीय रूप वाले, सिकुड़ी हुई बलि-तरंगों (झुर्रियों) से परिवेष्टित प्रत्येक अंग वाले, जरा-परिणत वृद्ध मनुष्यों के समान, संख्या में स्वल्प और सड़ी हुई दांतों की श्रेणी वाले, घड़े के मुख की भांति छोटे होठ वाले, तुच्छ मुख, विपम नेत्र, टेढ़ी नाक, टेढ़े और झुर्रियों से विकृत बने हुए भयानक मुख वाले, कच्छू (खुजली) और कसर (गीली खुजली) से अभिभूत, खर-तीक्ष्ण नखों से खुजलाने के कारण क्षत-विक्षत चर्मे हुए शरीर वाले, दाद, कुष्ठ और सेंहुआ रोग से फटी और रूखी चमड़ी वाले, चितकवरे अंग वाले, टिड्डे की जैसे टेढ़ी-मेढ़ी गति, टेढ़े-मेढ़े सन्धि-बन्धन, हड्डियों की अव्यवस्थित रचना और दुर्बल शरीर वाले, दोषपूर्ण संहनन, दोषपूर्ण शरीरप्रमाण और दोषपूर्ण संस्थान वाले, कुरूप, कुत्सित आसन, कुत्सित शय्या और कुत्सित भोजन-वाले, शुचि करने वाले, अनेक व्याधियों से पीड़ित प्रत्येक अंग वाले, स्वलित और विह्वल गति वाले, निरुत्साह, सत्त्व से रहित, चेष्टा-शून्य, तेज-शून्य बार-बार सदीं-गर्मी, रूक्ष और कठोर वायु से व्याप्त होने वाली मलिन धूलि और रजकरणों से भरे हुए प्रत्येक अंग वाले होंगे। उनका क्रोध, मान, माया और लोभ प्रबल होगा। उनका दुःख दुःखानुबन्धी होगा। वे प्रायः धर्म-संज्ञा से शून्य और सम्यक्त्व-रहित होंगे। उनका शरीर रत्नि (बन्धी मुट्ठी वाला हाथ) जितना होगा। उनकी उत्कृष्ट आयु सोलह अथवा बीस वर्ष की होगी। वे पुत्र-पौत्र आदि में बहुत स्नेह रखने वाले होंगे। ये गंगा, सिंधु दो गहानदियों तथा वैताद्वय पर्वत के परिपार्श्व में होने वाले कुछ द्रिलों अथवा गुफाओं के आश्रय में रहेंगे। उनके बहत्तर कुटुम्ब आग्रणी मनुष्य-जाति के लिए बीज और बीजगात्र बचेंगे।

१२०. भन्ते! वे मनुष्य किसका आहार करेंगे?

गौतम! उस काल और उस समय गंगा और सिंधु-दो गहानदियों का विस्तार रथ के पथ

जितना होगा। उनमें पहिले की धुरी के प्रवेश-छिद्र जितना जल बहेगा। वह जल अनेक मछलियों और कछुओं से आकीर्ण होगा। उसमें जल की मात्रा कम होगी। वे मनुष्य सूर्य के उदयकाल और अस्तकाल के समय अपने-अपने बिलों से निकलेंगे, निकल कर मछलियों और कछुओं को स्थल पर लाएंगे, ला कर उन्हें सर्दी के दाह और गर्मी के ताप में पकाएंगे। इक्कीस हजार वर्ष तक इस प्रकार जीविका का निर्वाह करेंगे।

१२१. भन्ते! वे शील-रहित, गुण-रहित, गर्यादा-रहित, पौषघोषवास और प्रत्याख्यान-रहित तथा प्रायः मांस-मछली खाने वाले, क्षुद्र-भोजी तथा शवों को खाने वाले मनुष्य कालमास में काल कर कहां जायेंगे? कहां उत्पन्न होंगे?

गौतम! वे प्रायः नरक और तिर्यञ्च-योनि में उत्पन्न होंगे।

१२२. भन्ते! वे शील-रहित सिंह, व्याघ्र, भेड़िया, चीता (चित्तिदार तेंदुआ) रीछ, तेंदुआ (लक्कडबग्घा या hyena), अष्टापद (भालू की प्रजाति का जानवर या wombat) यावत् कालमास में काल कर कहां उत्पन्न होंगे?

गौतम! वे प्रायः नरक और तिर्यञ्च-योनि में उत्पन्न होंगे।

१२३. भन्ते! वे शील-रहित ढंक (द्रोण-काक या बड़े कौए), कंक (सफेद कौआ), बिलक (सुनहरा नील पक्षी या नीलक), जलवायस (पन्नडूबी या बादकी), मोर या कुक्कुट (मुर्गा) यावत् कहां उपपन्न होंगे?

गौतम! वे प्रायः नरक और तिर्यञ्च-योनि में उत्पन्न होंगे।

१२४. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है।

सातवां उद्देशक

संवृत का क्रिया-पद

१२५. भन्ते! जो संवृत अनगार आयुक्त दशा में (दत्तचित्त होकर) चलता है, खड़ा होता है, धैर्यता है, लेटता है, वस्त्र, पात्र, कम्बल और पाद-प्रोज्झन लेता अथवा रखता है, भन्ते! क्या उसके ऐर्यापथिकी क्रिया होती है अथवा साम्परायिकी क्रिया होती है?

गौतम! संवृत अनगार आयुक्त दशा में चलता है यावत् उसके ऐर्यापथिकी क्रिया होती है, साम्परायिकी क्रिया नहीं होती।

१२६. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—संवृत अनगार आयुक्त दशा में चलता है यावत् साम्परायिकी क्रिया नहीं होती?

गौतम! जिसके क्रोध, मान, माया, और लोभ व्यवच्छिन्न हो जाते हैं, उसके ऐर्यापथिकी क्रिया होती है, जिसके क्रोध, मान, माया और लोभ व्यवच्छिन्न नहीं होते, उसके साम्परायिकी क्रिया होती है। यथासूत्र-सूत्र के अनुसार चलने वाले के ऐर्यापथिकी क्रिया होती है, उत्सूत्र-सूत्र के विपरीत चलने वाले के साम्परायिकी क्रिया होती है। वह (जिसके क्रोध, मान, माया, और लोभ व्यवच्छिन्न होते हैं) यथासूत्र ही चलता है। गौतम! यह इस

अपेक्षा से कहा जा रहा है—संवृत अनगर जो आयुक्त दशा में चलता है यावत् साम्प्रायिकी क्रिया नहीं होती।

१२७. भन्ते! काम रूपी हैं अथवा अरूपी?

गौतम! काम रूपी हैं, अरूपी नहीं हैं।

१२८. भन्ते! काम सचित्त हैं अथवा अचित्त ?

गौतम! काम सचित्त भी हैं और अचित्त भी हैं।

१२९. भन्ते! काम जीव हैं अथवा अजीव ?

गौतम! काम जीव भी हैं और अजीव भी हैं।

१३०. भन्ते! काम जीवों के होते हैं अथवा अजीवों के होते हैं?

गौतम! काम जीवों के होते हैं, अजीवों के नहीं होते।

१३१. भन्ते! काम कितने प्रकार के प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! काम दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—शब्द और रूप।

१३२. भन्ते! भोग रूपी हैं अथवा अरूपी हैं?

गौतम! भोग रूपी हैं, अरूपी नहीं हैं।

१३३. भन्ते! भोग सचित्त भी हैं और अचित्त भी हैं?

गौतम! भोग सचित्त भी हैं और अचित्त भी हैं।

१३४. भन्ते! भोग जीव हैं अथवा अजीव?

गौतम! भोग जीव भी हैं और अजीव भी हैं।

१३५. भन्ते! भोग जीवों के होते हैं अथवा अजीव के होते हैं?

गौतम! भोग जीवों के होते हैं, अजीवों के नहीं होते।

१३६. भन्ते! भोग कितने प्रकार के प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! भोग तीन प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—गन्ध, रस और स्पर्श।

१३७. भन्ते! काम-भोग कितने प्रकार के प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! काम-भोग पांच प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श।

१३८. भन्ते! क्या जीव कामी हैं अथवा भोगी?

गौतम! जीव कामी भी हैं और भोगी भी हैं।

१३९. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—जीव कामी भी हैं और भोगी भी हैं?

गौतम! श्रोत्र-इन्द्रिय और चक्षु-इन्द्रिय की अपेक्षा जीव कामी हैं। घ्राण-इन्द्रिय, जिह्वा-इन्द्रिय और स्पर्शन-इन्द्रिय की अपेक्षा जीव भोगी हैं। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—जीव कामी भी हैं, और भोगी भी हैं।

१४०. भन्ते! नैरयिक कामी है अथवा भोगी?

नैरयिक से लेकर स्तनितकुमार तक जीव की भांति वक्तव्य है।

१४१. पृथ्वीकायिक-जीवों के विषय में पृच्छा।

गौतम! पृथ्वीकायिक-जीव कामी नहीं हैं, भोगी हैं।

१४२. भन्ते! पृथ्वीकायिक-जीव किस अपेक्षा से भोगी है?

गौतम! स्पर्शन-इन्द्रिय की अपेक्षा से। उनके स्पर्शन-इन्द्रिय है, इसलिए वे भोगी हैं। अप्कायिक-, तेजस्कायिक-, वायुकायिक- और वनस्पतिकायिक-जीवों की वक्तव्यता पृथ्वीकायिक-जीवों के समान है। द्वीन्द्रिय-जीवों के विषय में यही वक्तव्यता है, केवल इतना विशेष है—वे जिह्वा और स्पर्शन—इन दो इन्द्रियों की अपेक्षा से भोगी हैं। त्रीन्द्रिय-जीवों के विषय में भी यही वक्तव्यता है, केवल इतना विशेष है—वे घ्राण, जिह्वा और स्पर्शन—इन तीन इन्द्रियों की अपेक्षा से भोगी हैं।

१४३. चतुरिन्द्रिय-जीवों के विषय में पृच्छा।

गौतम! चतुरिन्द्रिय जीव कामी भी हैं और भोगी भी हैं।

१४४. भन्ते! चतुरिन्द्रिय-जीव किस अपेक्षा से कामी भी हैं, भोगी भी हैं?

गौतम! वे चक्षु-इन्द्रिय की अपेक्षा से कामी हैं, घ्राण-, जिह्वा- और स्पर्शन-इन्द्रियों की अपेक्षा से भोगी हैं। गौतम! इस अपेक्षा से वे कामी भी हैं, भोगी भी हैं। अवशिष्ट वैमानिक तक सभी दण्डकों की वक्तव्यता जीव के समान है।

१४५. भन्ते! कामभोगी, नो कामी-नो भोगी और भोगी—इन जीवों में कौन किससे अल्प, अधिक, तुल्य और विशेषाधिक हैं?

गौतम! कामभोगी जीव सबसे अल्प हैं। नोकामी-नोभोगी उनसे अनन्त-गुना अधिक हैं। भोगी उनसे अनन्त-गुना अधिक हैं।

दुर्बल शरीर वाले का भोग-परित्याग-पद

१४६. भन्ते! छद्मस्थ मनुष्य जो किसी देवलोक में देव के रूप में उपपन्न होने के योग्य है, भन्ते! वह क्षीण-भोगी—दुर्बल शरीर वाला है। वह उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम से विपुल भोग्य भोगों का भोग करने में समर्थ नहीं है। भन्ते! क्या आप भी इस अर्थ को इस प्रकार कहते हैं?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है। वह उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम से विपुल भोग्य भोगों का भोग करने में समर्थ है, इसलिए वह भोगी है। वह भोगों का परित्याग करता हुआ महानिर्जरा और महापर्यवसान को प्राप्त होता है।

१४७. भन्ते! आधोवधि-ज्ञानी मनुष्य जो किसी देवलोक में देव के रूप में उपपन्न होने के योग्य है, भन्ते! वह क्षीण-भोगी—दुर्बल शरीर वाला है। वह उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम से विपुल भोग्य भोगों का भोग करने में समर्थ नहीं है। भन्ते! क्या आप भी इस अर्थ को इस प्रकार कहते हैं?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है। वह उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम से विपुल भोग्य भोगों का भोग करने में समर्थ, इसलिए वह भोगी है। वह भोगों का परित्याग करता हुआ महानिर्जरा और महापर्यवसान को प्राप्त होता है।

१४८. भन्ते! परम-अवधि-ज्ञानी मनुष्य, जो उसी भव में सिद्ध होने यावत् सब दुःखों को अन्त करने में योग्य हैं, भन्ते! वह क्षीणभोगी-दुर्बल शरीर वाला है। वह उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम से विपुल भोग्य भोगों का भोग करने में समर्थ नहीं है। भन्ते! क्या आप भी इस अर्थ को इस प्रकार कहते हैं?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है। वह उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम से विपुल भोग्य भोगों का भोग करने में समर्थ है, इसलिए वह भोगी है। वह भोगों का परित्याग करता हुआ महानिर्जरा और महापर्यवसान को प्राप्त होता है।

१४९. भन्ते! केवल-ज्ञानी मनुष्य जो उसी भव में सिद्ध होने यावत् सब दुःखों का अन्त करने के योग्य है, भन्ते! वह क्षीण-भोगी-दुर्बल शरीर वाला है। वह उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम से विपुल भोग्य भोगों का भोग करने में समर्थ नहीं है। भन्ते! क्या आप भी इस अर्थ को इस प्रकार कहते हैं?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है। वह उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार-पराक्रम से विपुल भोग्य भोगों का भोग करने में समर्थ है, इसलिए वह भोगी है। वह भोगों का परित्याग करता हुआ महानिर्जरा और महापर्यवसान को प्राप्त होता है।

अकामनिकरण-वेदना-पद

१५०. भन्ते! जो ये अमनस्क प्राणी, जैसे-पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक (पांच स्थावर) छोटे वर्ग के कुछ त्रस-जीव हैं-ये अन्ध हैं, मूढ़ हैं, अन्धकार में प्रविष्ट हैं, तमपटल और मोहजाल में आच्छादित हैं, अकाम-निकरण-अज्ञानहेतुक वेदना का वेदन करते हैं, क्या यह कहा जा सकता है?

हां, गौतम! जो ये अमनस्क प्राणी यावत् अकाम-निकरण वेदना का वेदन करते हैं-यह कहा जा सकता है।

१५१. भन्ते! क्या प्रभु-समनस्क भी अकाम-निकरण वेदना का वेदन करते हैं?

हां, करते हैं।

१५२. भन्ते! प्रभु भी अकाम-निकरण वेदना का वेदन कैसे करते हैं?

गौतम! जो दीप के बिना अन्धकार में रूपों को देखने में समर्थ नहीं है, जो अपने सामने के रूपों को भी चक्षु का व्यापार किए बिना देखने में समर्थ नहीं है, जो अपने पृष्ठवर्ती रूपों को पीछे की ओर मुड़े बिना देखने में समर्थ नहीं है, जो अपने पार्श्ववर्ती रूपों का अवलोकन किए बिना देखने में समर्थ नहीं है, जो अपने ऊर्ध्ववर्ती रूपों का अवलोकन किए बिना देखने में समर्थ नहीं है, जो अपने अधोवर्ती रूपों का अवलोकन किए बिना देखने में समर्थ नहीं है, गौतम! यह प्रभु भी अकाम-निकरण वेदना का वेदना करता है।

प्रकामनिकरण-वेदना-पद

१५३. भन्ते! क्या प्रभु प्रकाम-निकरण-प्रज्ञानहेतुक वेदना का वेदन करते हैं?

हां, करते हैं।

१५४. भन्ते! प्रभु भी प्रकाम-निकरण-प्रज्ञानहेतुक वेदना का वेदन कैसे करते हैं?

गौतम! जो समुद्र के उस पार जाने में समर्थ नहीं है, जो समुद्र के पारवर्ती रूपों को देखने में समर्थ नहीं है, जो देवलोक में जाने में समर्थ नहीं है, जो देवलोकवर्ती रूपों को देखने में समर्थ नहीं है, गौतम! यह प्रभु भी प्रकाम-निकरण वेदना का वेदन करता है।

१५५. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है।

आठवां उद्देशक

मोक्ष-पद

१५६. भन्ते! क्या छद्मस्थ मनुष्य निरन्तर गतिशील अनन्त अतीत समय में केवल संयम, केवल संवर, केवल ब्रह्मचर्यवास, केवल प्रवचनमाता की आराधना के द्वारा सिद्ध, प्रशान्त, मुक्त और परिनिर्वृत हुए? सब दुःखों का अन्त किया?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है।

१५७. भन्ते! क्या उत्पन्न-ज्ञान-दर्शन के धारक अर्हत् जिन और केवली को 'अलमस्तु' ऐसा कहा जा सकता है?

हां, गौतम! उत्पन्न-ज्ञान-दर्शन के धारक अर्हत् जिन और केवली को 'अलमस्तु' ऐसा कहा जा सकता है।

हस्ति और कुन्थु के जीव की समानता का पद

१५८. भन्ते! हाथी का जीव और कुन्थु का जीव एक समान है?

हां, गौतम! हाथी का जीव और कुन्थु का जीव एक समान है।

भन्ते! क्या हाथी की अपेक्षा कुन्थु अल्पतर कर्म, अल्पतर क्रिया, अल्पतर आश्रव, अल्पतर आहार, अल्पतर नीहार, अल्पतर उच्छ्वास, अल्पतर निःश्वास, अल्पतर ऋद्धि, अल्पतर महिमा और अल्पतर द्युति वाला है?

कुन्थु की अपेक्षा हाथी महत्तर कर्म, महत्तर क्रिया, महत्तर आश्रव, महत्तर आहार, महत्तर नीहार, महत्तर उच्छ्वास, महत्तर निःश्वास, महत्तर ऋद्धि, महत्तर महिमा और महत्तर द्युति वाला है?

हां, गौतम! हाथी की अपेक्षा कुन्थु अल्पतर कर्म वाला है और कुन्थु की अपेक्षा हाथी महत्तर कर्म वाला है; हाथी की अपेक्षा कुन्थु अल्पतर क्रिया वाला है और कुन्थु की अपेक्षा हाथी महत्तर क्रिया वाला है;

हाथी की अपेक्षा कुन्थु अल्पतर आश्रव वाला है और कुन्थु की अपेक्षा हाथी महत्तर आश्रव

वाला है; इसी प्रकार हाथी की अपेक्षा कुन्थु अल्पतर आहार, नीहार, उच्छ्वास, निःश्वास, ऋद्धि, महिमा और द्युति वाला है और कुन्थु की अपेक्षा हाथी महत्तर आहार, नीहार, उच्छ्वास, निःश्वास, ऋद्धि, महिमा और द्युति वाला है।

१५९. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—हाथी का जीव और कुन्थु का जीव समान है?

गौतम! जैसे कोई कूटाकार (शिखर के आकार वाली) शाला है। वह भीतर और बाहर दोनों ओर से लीपी हुई, गुप्त, गुप्त द्वार वाली, पवन-रहित और निवात-गंभीर है। कोई पुरुष ज्योति अथवा दीप को लेकर उस कूटाकार शाला के चारों ओर से सघन, निचित, अन्तर-और छिद्र-रहित किवाड़ों को बंद कर देता है और उस कूटाकार शाला के प्रायः मध्यभाग में उस प्रदीप को प्रदीप्त करता है।

वह प्रदीप उस कूटाकार शाला के भीतरी भाग को अवभासित, उद्द्योतित, तप्त और प्रभासित करता है, बाहर के भाग में उसका प्रकाश नहीं फैलता।

वह पुरुष उस प्रदीप को एक बड़े पिटक से ढांक देता है, तब वह प्रदीप उस बड़े पिटक के भीतरी भाग को अवभासित, उद्द्योतित, तप्त और प्रभासित करता है, उसके बाहर प्रकाश नहीं फैलता, न कूटाकार शाला में और न कूटाकार शाला के बाहर।

इसी प्रकार—गोकिलिज्ज, पिठारा, डालिया, आढक, अर्ध-आढक, प्रस्थ, अर्ध-प्रस्थ, कुडव, अर्ध-कुडव, चतुर्भागिका (कुडव का चौथा भाग), अष्ट-भागिका (कुडव का आठवां भाग), षोडशिका (कुडव का सोलहवां भाग), द्वात्रिंशिका (कुडव का बत्तीसवां भाग), चतुःषष्टिका (कुडव का चौसठवां भाग) से ढांकने पर प्रदीप का प्रकाश उनके भीतर ही फैलता है, बाहर नहीं फैलता।

वह पुरुष उस प्रदीप को दीप-चंपक (दीये का ढक्कन) से ढांक देता है, तब वह प्रदीप दीपचंदक के भीतरी भाग को अवभासित, उद्द्योतित, तप्त और प्रभासित करता है, उसके बाहर प्रकाश नहीं फैलता, न चतुःषष्टिका के बाहर, न कूटाकार शाला में और न कूटाकार शाला के बाहर।

गौतम! इसी प्रकार जीव भी पूर्व कर्म के अनुसार जैसे शरीर का निर्माण करता है, उस शरीर को अपने असंख्य प्रदेशों में सचित्त बना देता है—वह शरीर छोटा हो अथवा बड़ा। गौतम! इस अपेक्षा से कहा जा रहा है—हाथी और कुन्थु का जीव समान है।

सुख-दुःख-पद

१६०. भन्ते! नैरयिकों द्वारा जो पापकर्म कृत है, जो किया जा रहा है, जो किया जाएगा, क्या वह सब दुःख है? जो पाप कर्म निर्जीर्ण है, क्या वह सुख है?

हां, गौतम! नैरयिकों द्वारा जो पाप कर्म कृत है, जो किया जा रहा है, जो किया जाएगा, वह सब दुःख है। जो पाप कर्म निर्जीर्ण है, वह सुख है। इसी प्रकार वैमानिक तक के सभी दण्डकों की वक्तव्यता।

दशविधसंज्ञा-पद

१६१. भन्ते! संज्ञा के कितने प्रकार प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! संज्ञा के दश प्रकार प्रज्ञप्त हैं, जैसे—आहार-संज्ञा, भय-संज्ञा, मैथुन-संज्ञा, परिग्रह-संज्ञा, क्रोध-संज्ञा, मान-संज्ञा, माया-संज्ञा, लोभ-संज्ञा, लोक-संज्ञा, ओघ-संज्ञा। वैमानिक तक के सभी दण्डकों में दशों संज्ञाएं होती हैं।

नैरयिकों की दशविध वेदना का पद

१६२. नैरयिक दस प्रकार की वेदना का अनुभव करते रहते हैं, जैसे—सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, खुजली, परवशता, ज्वर, दाह, भय और शोक।

हस्ती और कुन्थु की अप्रत्याख्यानक्रिया का पद

१६३. भन्ते! क्या हाथी और कुन्थु के अप्रत्याख्यान-क्रिया समान होती है?

हां, गौतम! हाथी और कुन्थु के अप्रत्याख्यान-क्रिया समान होती है।

१६४. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—हाथी और कुन्थु के अप्रत्याख्यान-क्रिया समान होती है?

गौतम! अविरति की अपेक्षा से। गौतम! इस अपेक्षा से कहा जा रहा है—हाथी और कुन्थु के अप्रत्याख्यान-क्रिया समान होती है।

आधाकर्म आदि-पद

१६५. भन्ते! 'आधाकर्म' भोजन करता हुआ श्रमण निर्ग्रन्थ क्या बांधता है? क्या करता है? क्या चय करता है? क्या उपचय करता है?

गौतम! आधाकर्म भोजन करता हुआ श्रमण निर्ग्रन्थ आयुष्य-कर्म को छोड़ कर शेष सात कर्मों के शिथिल बन्धनबद्ध प्रकृतियों को गाढ़ बन्धनबद्ध करता है यावत् (पू. भ. १/४३६-४४०) पण्डित शाश्वत है, पंडितत्व अशाश्वत है।

१६६. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है।

नवां उद्देशक

असंवृत अनगार की विक्रिया का पद

१६७. भन्ते! क्या असंवृत अनगार बहिर्वर्ती पुद्गलों का ग्रहण किए बिना एक वर्ण और एक रूप का निर्माण करने में समर्थ है?

यह अर्थ संगत नहीं है।

१६८. भन्ते! क्या असंवृत अनगार बहिर्वर्ती पुद्गलों का ग्रहण कर एक वर्ण और एक रूप का निर्माण करने में समर्थ है?

हां, समर्थ है।

१६९. भन्ते! क्या वह मनुष्य-लोक में स्थित पुद्गलों का ग्रहण कर एक वर्ण और एक रूप का

निर्माण करता है? अथवा गन्तव्य-स्थानवर्ती पुद्गलों का ग्रहण कर एक वर्ण और एक रूप का निर्माण करता है? अथवा इन दोनों से भिन्न किसी अन्य-स्थानवर्ती पुद्गलों का ग्रहण कर एक वर्ण और एक रूप का निर्माण करता है?

गौतम! वह मनुष्य-लोक में स्थित पुद्गलों का ग्रहण कर एक वर्ण और एक रूप का निर्माण करता है, गन्तव्य-स्थानवर्ती पुद्गलों का ग्रहण कर एक वर्ण और एक रूप का निर्माण नहीं करता, इन दोनों से भिन्न किसी अन्य-स्थानवर्ती पुद्गलों का ग्रहण कर निर्माण नहीं करता। इस प्रकार—२. एकवर्ण और अनेक रूप का निर्माण ३. अनेक वर्ण और एक रूप का निर्माण ४. अनेक वर्ण और अनेक रूप का निर्माण—यह चौभंगी है।

१७०. भन्ते! क्या असंवृत अनगार बहिर्वर्ती पुद्गलों का ग्रहण किए बिना कृष्ण-वर्ण वाले पुद्गल को नील-वर्ण वाले पुद्गल के रूप में परिणत करने में समर्थ है? अथवा नील-वर्ण वाले पुद्गल को कृष्ण-वर्ण वाले पुद्गल के रूप में परिणत करने में समर्थ है?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है। वह बहिर्वर्ती पुद्गलों का ग्रहण कर वैसा करने में समर्थ है यावत्—

१७१. क्या असंवृत अनगार बहिर्वर्ती पुद्गलों का ग्रहण किए बिना स्निग्ध-स्पर्श वाले पुद्गल को रूक्ष-स्पर्श वाले पुद्गल के रूप में परिणत करने में समर्थ है? अथवा रूक्ष-स्पर्श वाले पुद्गल को स्निग्ध-स्पर्श वाले पुद्गल के रूप में परिणत करने में समर्थ है?

गौतम! यह अर्थ संगत नहीं है। वह बहिर्वर्ती पुद्गलों का ग्रहण कर वैसा करने में समर्थ है।

१७२. भन्ते! क्या वह मनुष्य-लोक में स्थित पुद्गलों का ग्रहण कर परिणत करता है? अथवा गन्तव्य-स्थानवर्ती पुद्गलों का ग्रहण कर परिणत करता है? अथवा इन दोनों से भिन्न किसी अन्य-स्थानवर्ती पुद्गलों का ग्रहण कर परिणत करता है?

गौतम! वह मनुष्य-लोक में स्थित पुद्गलों का ग्रहण कर परिणत करता है, गन्तव्य-स्थानवर्ती पुद्गलों का ग्रहण कर परिणत नहीं करता है, इन दोनों से भिन्न किसी अन्य-स्थानवर्ती पुद्गलों का ग्रहण कर परिणत नहीं करता।

महाशिला-कंटक-संग्राम-पद

१७३. यह अर्हत् के द्वारा ज्ञात है, यह अर्हत् के द्वारा स्मृत है, यह अर्हत् के द्वारा विज्ञात है—महाशिला-कंटक-संग्राम। भदन्त! महाशिला-कंटक-संग्राम में कौन जीता? कौन हारा?

गौतम! वज्री (इन्द्र) और विदेहपुत्र (कृष्णिक) जीते। नौ मल्ल नौ लिच्छवी—काशी कौशल के अट्टारह गणराज हारे।

१७४. महाशिला-कंटक-संग्राम उपस्थित हो गया है—यह जानकर राजा कोणिक ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर कहा—देवानुप्रियो! शीघ्र ही हस्तिराज उदाई को सज्ज करो, अश्व, गज, रथ और प्रवर योद्धा से युक्त चतुरंगिणी सेना को सन्नद्ध करो, सन्नद्ध कर शीघ्र ही मेरी इस आज्ञा का प्रत्यर्पण करो।

१७५. कौटुम्बिक पुरुष कोणिक राजा के द्वारा इस प्रकार का निर्देश प्राप्त कर हृष्ट-तुष्ट और

आनन्दित चित्त वाले हुए यावत् अञ्जलि को भाल पर टिका कर बोले—स्वामिन्! जैसा आपका निर्देश है वैसा ही होगा, यह कह कर विनयपूर्वक वचन को स्वीकार किया, स्वीकार कर शीघ्र ही कुशल आचार्य के उपदेश से उत्पन्न मति, कल्पना और विकल्पों तथा सुनिपुण व्यक्तियों द्वारा निर्मित उज्ज्वल, नेपथ्य से युक्त, सुसज्ज यावत् भीम, सांग्रामिक, अयोध्य—जिसके सामने कोई लड़ने में समर्थ न हो—हस्तिराज उदाई को सज्ज किया, अश्व, गज, रथ और प्रवर योद्धा से युक्त चतुरङ्गिणी सेना को सन्नद्ध किया, सन्नद्ध कर जहां राजा कूणिक है वहां आए, आ कर दोनों हथेलियों से निष्पन्न सम्पुट वाली दसनखात्मक अंजलि को सिर के सम्मुख घुमा कर मस्तक पर टिका कर राजा कूणिक को उस आज्ञा का प्रत्यर्पण किया।

१७६. राजा कूणिक जहां मज्जन-घर है, वहां आया, आ कर मज्जन-घर में अनुप्रवेश किया, अनुप्रवेश कर उसने स्नान किया, बलिकर्म किया, कौतुक (तिलक आदि), मंगल (दधि, अक्षत आदि) और प्रायश्चित्त किया, सब अलंकारों से विभूषित हुआ, लोहकवच को धारण किया, कलाई पर चमड़े की पट्टी बांधी, गले का सुरक्षाकवच पहना, विमलवर चिह्नपट्ट बांधे, आयुध और प्रहरण लिए। उसने कटसरीया के फूलों से बनी मालाओं से युक्त छत्र धारण किया, जिसके दोनों ओर दो-दो चामर डुलाए जा रहे थे। उसको देखते ही जनसमूह मंगल जय-मिनाद करने लगा। यावत् जहां हस्तिराज उदाई था, वहां आया। आकर हस्तिराज उदाई पर आरूढ़ हो गया।

१७७. राजा कूणिक का वक्ष-हार के आच्छादन से सुशोभित हो रहा था यावत् वह डुलाए जा रहे श्वेतवर चामरों से युक्त, अश्व, गज, रथ और प्रवर योद्धा से युक्त चतुरङ्गिणी सेना से परिवृत, महान् सुभटों के सुविस्तृत वृन्द से घिरा हुआ जहां महाशिला-कंटक-संग्राम की भूमि थी, वहां आया, आकर महाशिला-कंटक-संग्राम में उतर गया। उसके पुरोभाग में देवेन्द्र देवराज शक्र एक महान् वज्रतुल्य अभेद्य कवच का निर्माण कर उपस्थित है। इस प्रकार दो इन्द्र संग्राम कर रहे हैं, जैसे देवेन्द्र और मनुष्येन्द्र। राजा कूणिक एकहस्तिका से भी जीतने में समर्थ है। राजा कूणिक एकहस्तिका से भी दूसरों को पराजित करने में समर्थ है।

१७८. राजा कूणिक ने महाशिला-कंटक-संग्राम लड़ते हुए नौ मल्ल और नौ लिच्छवी-काशी-कौशल के अट्टारह गणराजों को हत-प्रहत कर दिया, मथ डाला, प्रवर योद्धाओं को मार डाला, चिह्न-ध्वजा-पताका को गिरा दिया, उनके प्राण संकट में पड़ गए, उन्हें पीछे की ओर ढकेल दिया।

१७९. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है कि वह महाशिला-कंटक-संग्राम है?

गौतम! महाशिला-कंटक-संग्राम चल रहा था। वहां विद्यमान अश्व, हाथी, योद्धा अथवा सारथी पर तृण, काष्ठ, पत्र अथवा शर्करा (कंकर) का प्रहार किया जाता, तब वे सब अनुभव करते कि उन पर महाशिला से प्रहार किया जा रहा है। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—महाशिला-कंटक-संग्राम है।

१८०. भन्ते! महाशिला-कंटक-संग्राम में कितने लाख मनुष्य मारे गए?

गौतम! चौरासी लाख मनुष्य मारे गए।

१८१. भन्ते! उस संग्राम में मार जाने वाले मनुष्य शील, गुण, मर्यादा, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास से रहित, रुष्ट और परिकुपित थे। उनका क्रोध उपशान्त नहीं था। वे मृत्यु के समय में भर कर कहां गए? कहां उत्पन्न हुए?

गौतम! वे प्रायः नरक और तिर्यक् योनि में उपपन्न हुए।

१८२. यह अर्हत् के द्वारा ज्ञात है, यह अर्हत् के द्वारा स्मृत है, यह अर्हत् के द्वारा विज्ञात है—रथमुसल-संग्राम! भन्ते! रथमुसल-संग्राम में कौन जीता? कौन हारा?

गौतम! वज्री (इन्द्र) विदेहपुत्र (कोणिक) और असुरेन्द्र असुरकुमार चमर जीते। नौ मल्ल और नौ लिच्छवी हारे।

१८३. रथमुसल-संग्राम उपस्थित हो गया है—यह जान कर राजा कोणिक ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया बुला कर कहा—देवानुप्रियो! शीघ्र ही हस्तिराज भूतानन्द को सज्ज करो, अश्व, गज, रथ और प्रवर योद्धा से युक्त चतुरंगिणी सेना को सन्नद्ध करो, सन्नद्ध कर शीघ्र ही मेरी इस आज्ञा का प्रत्यर्पण करो।

१८४. कौटुम्बिक पुरुष कोणिक राजा के द्वारा इस प्रकार का निर्देश प्राप्त कर हृष्ट-तुष्ट और आनन्दित चित्त वाले हुए यावत् अञ्जलि को मस्तक पर टिका कर बोले—स्वामिन्। जैसा आपका निर्देश है, वैसा ही होगा, यह कह कर विनयपूर्वक वचन को स्वीकार किया, स्वीकार कर शीघ्र ही कुशल आचार्य के उपदेश से उत्पन्न मति, कल्पना और विकल्पों तथा सुनिपुण व्यक्तियों द्वारा निर्मित उज्ज्वल नेपथ्य से युक्त, सुसज्ज यावत् भीम, सांग्रामिक, अयोध्य—जिसके सामने कोई लड़ने में समर्थ न हो—हस्तिराज भूतानन्द को सज्ज किया; अश्व, गज, रथ और प्रवर योद्धा से युक्त चतुरंगिणी सेना को सन्नद्ध किया, सन्नद्ध कर जहां राजा कूणिक है वहां आए, आ कर दोनों हथेलियों से निष्पन्न सम्पुट वाली दसनखात्मक अंजलि को सिर के सम्मुख घुमा कर, मस्तक पर टिका कर राजा कूणिक को उस आज्ञा का प्रत्यर्पण किया।

१८५. राजा कूणिक जहां मज्जन-घर है, वहां आया, आ कर मज्जन-घर में अनुप्रवेश किया, अनुप्रवेश कर उसने स्नान किया, बलिकर्म किया, कौतुक (तिलक आदि), मंगल (दधि, अक्षत आदि) और प्रायश्चित्त किया, सब अलंकारों से विभूषित हुआ, लोह-कवच को धारण किया, कलाई पर चमड़े की पट्टी बांधी, गले का सुरक्षाकवच पहना, विमलवर चिह्नपट्ट बांधे, आयुध और प्रहरण लिए। उसने कटसरैया के फूलों से बनी मालाओं से युक्त छत्र धारण किया, जिसके दोनों ओर दो-दो चमर डुलाए जा रहे थे। उसको देखते ही जनसमूह मंगल जय-निनाद करने लगा यावत्, जहां हस्तिराज भूतानन्द है, वहां आया। आ कर हस्तिराज भूतानन्द पर आरूढ़ हो गया।

१८६. राजा कूणिक का वक्ष हार के आच्छादन से सुशोभित हो रहा था यावत् वह डुलाए जा रहे श्वेतवर चमरों से युक्त; अश्व, गज, रथ और प्रवर योद्धा से युक्त चतुरंगिणी सेना से परिवृत, महान् सुभटों के सुविस्तृत वृन्द से परिक्षिप्त हो कर जहां रथमुसल-संग्राम की भूमि थी, वहां आया। आ कर रथमुसल-संग्राम में उतर गया। उसके पुरोभाग में देवेन्द्र देवराज

शक्र एक महान् वज्र तुल्य अभेद्य कवच को निर्माण कर उपस्थित है। उसके पृष्ठभाग में असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर एक महान् लोह का तापस-पात्र-तुल्य पात्र निर्मित कर उपस्थित है। इस प्रकार तीन इन्द्र संग्राम कर रहे हैं, जैसे—देवेन्द्र, मनुष्येन्द्र और असुरेन्द्र। राजा कूणिक एकहस्तिका से भी जीतने में समर्थ है। राजा कूणिक एकहस्तिका से भी दूसरों को पराजित करने में समर्थ है।

१८७. राजा कूणिक ने रथमुसल-संग्राम लड़ते हुए नौ मल्ल और नौ लिच्छवी—काशी-कोशल के अठारह गणराजों को हत-प्रहत कर दिया, मथ डाला, प्रवर योद्धाओं को मार डाला, ध्वजा-पताका को गिरा दिया, उनके प्राण संकट में पड़ गए, उन्हें पीछे की ओर ढकेल दिया।

१८८. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—वह रथमुसल संग्राम है?

गौतम! रथमुसल-संग्राम चल रहा था। उस समय एक रथ जिसमें घोड़े जुते हुए नहीं थे, कोई सारथि उसे चला नहीं रहा था। जिसमें कोई योद्धा नहीं बैठा था, उसमें एक मुसल था, वह रथ योद्धाओं का क्षय, वध और प्रमर्दन करता हुआ, योद्धाओं के लिए प्रलयपात के समान बना हुआ, युद्धभूमि पर रक्त का कीचड़ फैलाता हुआ चारों तरफ दौड़ रहा था। गौतम! इस अपेक्षा से कहा जा रहा है—रथमुसल-संग्राम है।

१८९. भन्ते! रथमुसल-संग्राम में कितने लाख मनुष्य मारे गए?

गौतम! छियानवें लाख मनुष्य मारे गए।

१९०. भन्ते! उस संग्राम में मारे जाने वाले मनुष्य शील, गुण, मर्यादा, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास से रहित, रुष्ट और परिकुपित थे। उनका क्रोध उपशान्त नहीं था। वे मृत्यु के समय में मरकर कहाँ गए? कहाँ उपपन्न हुए।

गौतम! उनमें से दस हजार मनुष्य एक मछली की कुक्षि में उपपन्न हुए। एक देवलोक में उपपन्न हुआ। एक अच्छे मनुष्य कुल में उत्पन्न हो गया। शेष सब नरक और तिर्यक्-योनि में उपपन्न हुए।

१९१. भन्ते! देवेन्द्र देवराज शक्र और असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर ने राजा कूणिक को सहाय्य किस कारण से दिया?

गौतम! देवेन्द्र देवराज शक्र राजा कूणिक का पूर्व जन्म का मित्र था, असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर उसका दीक्षा-पर्याय का साथी था। गौतम! इस प्रकार देवेन्द्र देवराज शक्र और असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर ने राजा कूणिक को सहाय्य दिया।

१९२. भन्ते! बहुत लोग परस्पर ऐसा आख्यान कर रहे हैं यावत् प्ररूपणा कर रहे हैं—अनेक मनुष्य छोटे-बड़े किसी भी संग्राम में लड़ते हुए प्रहत हो मृत्यु के समय में मरकर किसी देवलोक में देव के रूप में उपपन्न होते हैं।

१९३. भन्ते! यह कैसे है?

गौतम! बहुत लोग परस्पर ऐसा आख्यान कर रहे हैं यावत् प्ररूपणा कर रहे हैं—अनेक मनुष्य छोटे बड़े किसी भी संग्राम में लड़ते हुए प्रहत हो मृत्यु के समय में मरकर किसी देवलोक में

देव के रूप में उपपन्न होते हैं। जो ऐसा कहते हैं वे मिथ्या कहते हैं। गौतम! मैं ऐसा आख्यान करता हूँ यावत् प्ररूपणा करता हूँ—गौतम! उस काल और उस समय में वैशाली नाम की नगरी थी—वर्णन। उस वैशाली नगरी में नागनप्तृक (नाग का धेवता) वरुण रहता था—वह सम्पन्न यावत् अपरिभवनीय था। वह श्रमणों की उपासना करने वाला, जीव-अजीव को जानने वाला, यावत् श्रमण-निर्ग्रन्थों को प्रासुक और एषणीय अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, पात्र, कंबल, पाद-प्रोज्झन, पीठ-फलक, शय्यासंस्तारक और औषध-भैषध-भैषज्य का दान देने वाला, निरन्तर बेले-बेले के तपःकर्म द्वारा अपने आपको भावित करता हुआ विहरण कर रहा है।

१९४. युद्ध का प्रसंग उपस्थित होने पर राजाभियोग, गणाभियोग, बलाभियोग के द्वारा नागनप्तृक वरुण को रथमुसल-संग्राम में जाने की आज्ञा प्राप्त हुई। उस दिन वह बेला (दो दिन का उपवास) की तपस्या में था। उसने तेला (तीन दिन का उपवास) कर लिया, तप सम्पन्न कर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर कहा—देवानुप्रियो! शीघ्र ही चार घण्टाओं वाले अश्वरथ को जोत कर उपस्थित करो; अश्व, गज, रथ और प्रवर योद्धा से युक्त चतुरंगिणी सेना को सन्नद्ध करो, सन्नद्ध कर शीघ्र ही मेरी इस आज्ञा का प्रत्यर्पण करो।

१९५. कौटुम्बिक पुरुषों ने यावत् स्वीकार कर शीघ्र ही छत्र और ध्वजायुक्त यावत् चार घण्टाओं वाले अश्वरथ को जोत कर उपस्थित किया तथा अश्व, गज, रथ और प्रवर योद्धा से युक्त चतुरंगिणी सेना को सन्नद्ध किया, सन्नद्ध कर जहां नागनप्तृक वरुण था वहां आए, आकर यावत् उस आज्ञा का प्रत्यर्पण किया।

१९६. नागनप्तृक वरुण जहां मज्जन-घर है वहां आया, आ कर मज्जन-घर में अनुप्रवेश किया, अनुप्रवेश कर उसने स्नान किया, बलिकर्म किया, कौतुक (तिलक आदि), मंगल (दधि, अक्षत आदि) और प्रायश्चित्त किया; सब अलंकारों से विभूषित हुआ, लोह-कवच को धारण किया, कटसरैया के फूलों से बनी मालाओं से युक्त छत्र धारण किया। अनेक गणनायक, दण्डनायक, राजे, ईश्वर, तलवर (कोटवाल), माडम्बिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्धवाह, दूत और सन्धिपालों के साथ उनसे घिरा हुआ मज्जनघर से बाहर निकला, निकल कर जहां बाहरी उपस्थानशाला है, जहां चार घण्टाओं वाला अश्वरथ है, वहां आया। आकर चार घण्टाओं वाले अश्वरथ पर आरूढ़ हुआ, आरूढ़ हो कर अश्व, गज, रथ और प्रवर योद्धा से युक्त चतुरंगिणी सेना से परिवृत, महान् सुभटों के सुविस्तृत वृन्द से परिक्षिप्त होकर जहां रथमुसल-संग्राम की भूमि थी वहां आया। आकर रथमुसल-संग्राम में उतर गया।

१९७. नागनप्तृक वरुण ने रथमुसल-संग्राम में उतरने के साथ-साथ इस प्रकार का अभिग्रह स्वीकार किया—रथमुसल-संग्राम करते समय जो मुझ पर पहले प्रहार करता है उस पर मैं प्रहार करूंगा, दूसरों पर प्रहार नहीं करूंगा। इस प्रकार का अभिग्रह स्वीकार किया, स्वीकार कर रथमुसल-संग्राम में संलग्न हो गया।

१९८. वह नागनप्तृक वरुण रथमुसल-संग्राम में युद्ध कर रहा था, उस समय एक रथारोही पुरुष प्रतिरथी के रूप में उसके सामने आया जो उसके जैसा ही लग रहा था—समान त्वचा वाला,

समान वय वाला और समान युद्धोपयोगी साधन सामग्री वाला।

१९९. उस पुरुष ने नागनप्तृक वरुण से इस प्रकार कहा—हे नागनप्तृक वरुण! प्रहार करो। नागनप्तृक वरुण! प्रहार करो।

२००. नागनप्तृक वरुण ने उस पुरुष से इस प्रकार कहा—देवानुप्रिय! जो पहले मुझ पर प्रहार नहीं करता, उस पर मैं प्रहार नहीं कर सकता। तू ही पहले मुझ पर प्रहार करो।

२०१. नागनप्तृक वरुण के द्वारा ऐसा कहने पर वह पुरुष तत्काल आवेश में आ गया, रुष्ट हो गया, कुपित हो गया। उसका रूप रौद्र बन गया। वह क्रोध की अग्नि से प्रदीप्त हो उठा। इस अवस्था में वह धनुष हाथ में लेता है, ले कर बाण को धनुष पर चढ़ाता है, चढ़ाकर स्थान (वैशाख नामक युद्ध की मुद्रा) में खड़ा होता है। खड़ा होकर बाण को कान की लंबाई तक खींचता है, खींच कर वह नागनप्तृक वरुण पर गाढ़ प्रहार करता है।

२०२. नागनप्तृक वरुण उस प्रतिरथी पुरुष के द्वारा गाढ़ प्रहार किये जाने पर तत्काल आवेश में आ गया, रुष्ट हो गया, कुपित हो गया। उसका रूप रौद्र बन गया। वह क्रोध की अग्नि से प्रदीप्त हो उठा। इस अवस्था में वह धनुष हाथ में लेता है, लेकर बाण को धनुष पर चढ़ाता है, चढ़ाकर बाण को कान की लम्बाई तक खींचता है, खींच कर उस पुरुष को कूट के प्रहार की भांति एक ही प्रहार में जीवन-शून्य बना देता है।

२०३. नागनप्तृक वरुण उस पुरुष के द्वारा गाढ़ प्रहार किये जाने पर प्राण, बल, वीर्य, पुरुषकार और पराक्रम रहित हो गया। शरीर अब टिक नहीं पाएगा, यह चिन्तन कर घोड़ों की लगाम खींची, खींच कर रथ को मोड़ा, मोड़ कर रथमुसल संग्रामभूमि से बाहर आ गया, बाहर आ कर एकान्त भूमिभाग में पहुंचा, पहुंचकर घोड़ों की लगाम को खींचा, खींच कर रथ को ठहराया, ठहरा कर रथ से नीचे उतरा, उतरकर घोड़ों को मुक्त कर दिया, मुक्तकर उन्हें विसर्जित कर दिया, विसर्जित कर दर्भ का बिछौना किया, बिछौना कर उस पर चला गया। जाकर पूर्व की ओर मुंह कर पर्यकासन में बैठ दोनों हथेलियों से निष्पन्न सम्पुट वाली दस-दस-दस-दस अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर भाल पर टिका कर इस प्रकार बोला—‘नमस्कार हो अर्हत् भगवान् को यावत् जो सिद्धिगति नामक स्थान को प्राप्त हो चुके हैं, नमस्कार हो आदिकर्त्ता श्रमण भगवान् महावीर को यावत् जो सिद्धिगति नामक स्थान को प्राप्त करने के इच्छुक हैं, जो मेरे धर्माचार्य और धर्मोपदेशक हैं। वहां विराजित भगवान् यहां स्थित मुझे देखें, ऐसा सोच कर वह वन्दन-नमस्कार करता है, वन्दन-नमस्कार कर वह इस प्रकार बोला—‘मैंने पहले भी श्रमण भगवान् महावीर के पास जा कर जीवनभर के लिए स्थूल प्राणातिपात यावत् स्थूल परिग्रह का प्रत्याख्यान किया था। इस समय भी मैं श्रमण भगवान् महावीर के पास जीवनभर के लिए सर्व प्राणातिपात यावत् मिथ्या-दर्शन-शल्य का प्रत्याख्यान करता हूं। मैं जीवन-भर के लिए सर्व अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य इस चार प्रकार के आहार का प्रत्याख्यान करता हूं। यद्यपि मेरा यह शरीर मुझे इष्ट, कान्त, प्रिय यावत् वात, पित्त, श्लेष्मा और सन्निपातजनित बहुत से रोग और आतंक तथा परीषह और उपसर्ग इसका स्पर्श न करें, इसलिए इसको भी मैं अन्तिम उच्छ्वास-निःश्वास तक छोड़ता हूं, ऐसा कर कवच खोला, खोलकर बाण को निकाला, निकाल कर आलोचना की,

प्रतिक्रमण किया, समाधि में लीन हो गया, कुछ समय पश्चात् मृत्यु को प्राप्त हुआ।

नागनप्तृक वरुण के मित्र का पद

२०४. उस नागनप्तृक वरुण का प्रिय बालसखा रथमुसल-संग्राम में लड़ रहा था, एक पुरुष के द्वारा गाढ़ प्रहार किये जाने पर वह प्राण, बल, वीर्य, पुरुषकार और पराक्रमरहित हो गया। शरीर अब टिक नहीं पाएगा, यह चिन्तन कर रहा था। उसने देखा—नागनप्तृक वरुण रथमुसल-संग्राम की भूमि से लौट रहा है, यह देख कर उसने घोड़ों की लगाम खींची, खींच कर वरुण की भांति यावत् घोड़ों को विसर्जित किया, वस्त्र के बिछौने पर गया, जा कर पूर्व की ओर मुंह कर, पर्यकासन में बैठ दोनों हथेलियों से निष्पन्न सम्पुट वाली दस-नखात्मक अंजलि को सिर के सम्मुख धुमा कर भाल पर टिकाकर इस प्रकार बोला—मेरे प्रिय बालसखा नागनप्तृक वरुण के जो शील, व्रत, गुण, विरमण, प्रत्याख्यान और पौषषोपवास हैं वे सब मुझे भी उपलब्ध हो। यह कह कर कवच को खोला, खोलकर बाण को निकाला, निकालकर कुछ समय पश्चात् मृत्यु को प्राप्त हुआ।

२०५. नागनप्तृक वरुण को दिवंगत हुआ जानकर पार्श्ववर्ती वाणमन्तर-देवों ने दिव्य सुरभि गंध वाला जल बरसाया, पांच वर्ष के फूलों की वर्षा की, दिव्य गीत गाए और गन्धर्व-निनाद किया।

२०६. नागनप्तृक वरुण की वह दिव्य देव ऋद्धि, दिव्य देव-द्युति और दिव्य देव-सामर्थ्य के संवाद को सुन कर देख कर बहुत जनों ने परस्पर इस प्रकार आख्यान किया यावत् प्ररूपणा की—देवानुप्रियो! बहुत मनुष्य नाना प्रकार के संग्रामों में अभिमुख रहते हुए प्रहत हुए हैं, वे काल-मास में काल (मृत्यु) को प्राप्त कर किसी भी देवलोक में देव के रूप में उपपन्न हुए हैं।

२०७. भन्ते! नागनप्तृक वरुण काल-मास में काल को प्राप्त कर कहां गया है? कहां उपपन्न हुआ है?

गौतम! वह सौधर्म-कल्प में अरुणाभ-विमान में देव-रूप में उपपन्न हुआ है। वहां कुछ देवों की स्थिति चार पत्योपम की प्रज्ञप्त है। वहां नागनप्तृक वरुण-देव की स्थिति भी चार पत्योपम की प्रज्ञप्त है।

२०८. भन्ते! वह वरुण-देव आयु-क्षय, भव-क्षय और स्थिति-क्षय के अनन्तर उस देवलोक से च्यवन कर कहां जाएगा? कहां उपपन्न होगा?

गौतम! वह महाविदेह-क्षेत्र में सिद्ध, प्रशान्त, मुक्त और परिनिर्वृत होगा, सब दुःखों का अन्त करेगा।

२०९. भन्ते! नागनप्तृक वरुण का प्रिय बालसखा काल-मास में काल को प्राप्त कर कहां गया है? कहां उपपन्न हुआ है?

गौतम! वह अच्छे मनुष्य-कुल में उत्पन्न हुआ है।

२१०. भन्ते! वह उस जन्म के अनन्तर उद्घर्तन कर कहा जाएगा? कहां उपपन्न होगा?

गौतम! महाविदेह-क्षेत्र में सिद्ध होगा यावत् सब दुःखों का अन्त करेगा।
२११. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है।

दसवां उद्देशक

कालोदायी प्रभृति का पञ्चास्तिकाय में सन्देह-पद

२१२. उस काल और उस समय में राजगृह नामक नगर था—नगर का वर्णन। गुणशिलक नाम चैत्य—वर्णन। यावत् पृथ्वीशिलापट्ट। उस गुणशिलक चैत्य के न बहुत दूर न बहुत निकट अनेक अन्ययूथिक निवास करते थे, जैसे—कालोदायी, शैलोदायी, शैवालोदायी, उदक, नामोदक, नर्मोदक, अन्नपालक, शैलपालक, शंखपालक और सुहस्ती गृहपति।

२१३. वे अन्ययूथिक किसी समय अपने-अपने आवासगृहों से निकल कर एकत्र हुए, एक स्थान पर बैठे। उनमें परस्पर इस प्रकार का समुल्लास प्रारंभ हुआ—श्रमण ज्ञातपुत्र पांच अस्तिकायों की प्रज्ञापना करते हैं, जैसे—धर्मास्तिकाय यावत् पुद्गलास्तिकाय।

उनमें श्रमण ज्ञातपुत्र चार अस्तिकायों को अजीवकाय बतलाते हैं, जैसे— धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय। श्रमण ज्ञातपुत्र एक जीवास्तिकाय को, जो अरूपीकाय है, जीवकाय बतलाते हैं।

उनमें श्रमण ज्ञातपुत्र चार अस्तिकायों को अरूपीकाय बतलाते हैं, जैसे— धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और जीवास्तिकाय। श्रमण ज्ञातपुत्र एक पुद्गलास्तिकाय को जो रूपीकाय अजीवकाय बतलाते हैं। क्या यह ऐसा है?

२१४. उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर यावत् गुणशिलक चैत्य में समवसृत हुए यावत् परिषद् आई, धर्मोपदेश सुन चली गई।

२१५. उस काल और उस समय श्रमण भगवान् महावीर के ज्येष्ठ अन्तेवासी गौतमगोत्री इन्द्रभूति नामक अनगर यावत् भिक्षाचर्या के लिए घूमते हुए आवश्यकतानुसार पर्याप्त भक्त-पान ग्रहण कर राजगृह नगर से बाहर आते हैं। त्वरा-, चपलता- और संभ्रम-रहित होकर युग-प्रमाण भूमि को देखने वाली दृष्टि से ईर्यासमिति का शोधन करते हुए, शोधन करते हुए उन अन्ययूथिक के न अति दूर न अति निकट से जा रहे थे।

२१६. ये अन्ययूथिक भगवान् गौतम को न अति दूर ओर न अति निकट से जाते हुए देखते हैं, देख कर परस्पर एक-दूसरे को बुलाते हैं, बुला कर इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो! यह कथा—अस्तिकाय की वक्तव्यता हमारे लिए अप्रकट है—अस्पष्ट है और यह गौतम हमारे पार्श्ववर्ती मार्ग से जा रहा है। देवानुप्रियो! हमारे लिए श्रेय है कि हम यह अर्थ गौतम से पूछें, यह चिन्तन कर वे एक दूसरे के पास जा इस विषय का प्रतिश्रवण (विचार-विनिमय) करते हैं, प्रतिश्रवण कर जहां भगवान् गौतम हैं, वहां आए, आकर भगवान् गौतम से इस प्रकार बोले—गौतम! तुम्हारे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक श्रमण ज्ञातपुत्र पांच आस्तिकायों का प्रज्ञापन करते हैं, जैसे—धर्मास्तिकाय यावत् पुद्गलास्तिकाय। पूर्ववत् वक्तव्यता यावत् रूपीकाय अजीवकाय का प्रज्ञापन करते हैं। गौतम! यह इस प्रकार की वक्तव्यता कैसे संगत है?

कालोदायी का समाधानपूर्वक प्रव्रज्या का पद

२१७. भगवान् गौतम ने उन अन्ययूथिकों से इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो! हम अस्तित्व को नास्ति (नहीं है) ऐसा नहीं कहते, नास्तित्व को अस्ति (है) ऐसा नहीं कहते। देवानुप्रियो! हम सर्व अस्तित्व को 'अस्ति' (है) ऐसा कहते हैं, सर्व नास्तित्व को 'नास्ति' (नहीं है) ऐसा कहते हैं। देवानुप्रियो! तुम अपनी चेतना से स्वयं इसका प्रत्युपेक्षण करो—गौतम ने अन्ययूथिकों से इस प्रकार कहा, कहकर जहां गुणशिलक चैत्य है, जहां श्रमण भगवान् महावीर हैं, वहां आते हैं यावत् भक्त-पान दिखलाते हैं, दिखलाकर श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करते हैं, वन्दन-नमस्कार कर न अति निकट न अति दूर यावत् पर्युपासना करते हैं।

२१८. उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर महाकथाप्रतिपन्न विशाल परिषद् में प्रवचन कर रहे थे। कालोदायी उस प्रवचन सभा में आ गया, श्रमण भगवान् महावीर ने कालोदायी को संबोधित कर कहा—हे कालोदायी! किसी समय तुम लोग अपने-अपने आवासगृहों से निकल कर एकत्र हुए, एक स्थान पर बैठे। तुम लोगों में परस्पर इस प्रकार का सम्मुल्लास प्रारम्भ हुआ—श्रमण ज्ञातपुत्र पांच अस्तिकायों की प्रज्ञापना करते हैं, पूरी वक्तव्यता। यावत् क्या यह ऐसा है? कालोदायी! क्या यह अर्थ संगत है?

हां, संगत है।

कालोदायी! यह अर्थ सत्य है। मैं पञ्चास्तिकाय का प्रज्ञापन करता हूं, जैसे—धर्मास्तिकाय यावत् पुद्गलास्तिकाय।

उनमें चार अस्तिकायों को मैं अजीवकाय बतलाता हूं, जैसे—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय। एक जीवास्तिकाय मैं अरूपीकाय जीवकाय बतलाता हूं।

उनमें चार अस्तिकायों को मैं अरूपीकाय बतलाता हूं, जैसे—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और जीवास्तिकाय। एक पुद्गलास्तिकाय, को मैं रूपीकाय बतलाता हूं।

२१९. कालोदायी ने श्रमण भगवान् महावीर से इस प्रकार कहा—भन्ते! इस धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय जो अरूपीकाय अजीवकाय हैं, मैं क्या कोई प्राणी रूक सकता है? सो सकता है? खड़ा रह सकता है? बैठ सकता है? करवट ले सकता है? कालोदायी! यह अर्थ संगत नहीं है। केवल एक पुद्गलास्तिकाय, जो रूपीकाय और अजीवकाय है, मैं कोई प्राणी रूक सकता है, सो सकता है, खड़ा रह सकता है, बैठ सकता है, करवट ले सकता है।

२२०. भन्ते! इस पुद्गलास्तिकाय, जो रूपीकाय अजीवकाय है, मैं क्या जीवों के पाप-कर्म पाप-फल-विपाक-संयुक्त होते हैं?

कालोदायी! यह अर्थ संगत नहीं है। केवल एक जीवास्तिकाय, जो अरूपीकाय है, मैं जीवों के पाप-कर्म पाप-फल-विपाक-संयुक्त होते हैं। इस संवाद से कालोदायी संबुद्ध हो गया; वह श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करता है, वन्दन-नमस्कार कर इस प्रकार

बोला—‘भन्ते! मैं आपके पास धर्म सुनना चाहता हूँ।’ महावीर ने धर्म का उपदेश दिया और वह प्रव्रजित हो गया। स्कन्दक (भ. २/५०-६३) की भांति पूरी वक्तव्यता। कालोदायी ने म्यारह अंगों का अध्ययन किया यावत् वह नाना प्रकार के तपःकर्मों से आत्मा को भावित करता हुआ विहरण कर रहा है।

२२१. श्रमण भगवान् महावीर किसी समय राजगृह नगर और गुणशिलक चैत्य से पुनः निष्क्रमण करते हैं, पुनः निष्क्रमण कर नगर से बाहर जनपद-विहार कर रहे हैं।

कालोदायी का कर्म आदि के विषय में प्रश्न का पद

२२२. उस काल और उस समय में राजगृह नाम का नगर और गुणशिलक नाम का चैत्य। श्रमण भगवान् महावीर किसी समय वहां समवसृत हुए, परिषद आई, धर्म सुना और वापिस चली गई।

२२३. किसी समय अनगर कालोदायी जहां भगवान् श्रमण महावीर हैं वहां आता है, आ कर श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करता है, वन्दन-नमस्कार कर इस प्रकाल बोला—भन्ते! क्या जीवों के पाप-कर्म पाप-फल-विपाक-संयुक्त होते हैं? हां, होते हैं।

२२४. भन्ते! जीवों के पाप-कर्म पाप-फल-विपाक-संयुक्त कैसे होते हैं?

कालोदायी! जैसे कोई पुरुष मनोज्ञ स्थाली-पाक-शुद्ध (हंडिया में पका हुआ) अठारह प्रकार के व्यञ्जनों से युक्त विषमिश्रित भोजन करता है, उस भोजन का आपात भद्र होता है—खाते समय वह सरस लगता है, उसके पश्चात् जैसे-जैसे उसका परिणमन होता है, वैसे-वैसे वह दुरूप, दुर्वर्ण, दुर्गन्ध यावत् दुःखरूप में—न सुखरूप में बार-बार परिणत होता है। कालोदायी इसी प्रकार जीवों के अठारह पाप होते हैं—प्राणातिपात यावत् मिथ्या-दर्शन-शल्य। उस पापवर्ग का आपात भद्र होता है—करते समय वह अच्छा लगता है, उसके पश्चात् जैसे-जैसे उसका विपरिणमन होता है, वैसे-वैसे वह दुरूप, दुर्वर्ण, दुर्गन्ध यावत् दुःखरूप में—न सुखरूप में बार-बार परिणत होता है। कालोदायी! इसी प्रकार जीवों के पाप कर्म पाप-फल-विपाक-संयुक्त होते हैं।

२२५. भन्ते! क्या जीवों के कल्याण कर्म कल्याण-फल-विपाक-संयुक्त होते हैं?

हां, होते हैं।

२२६. भन्ते! जीवों के कल्याण कर्म कल्याण-फल-विपाक-संयुक्त कैसे होते हैं?

कालोदायी! जैसे कोई मनुष्य मनोज्ञ स्थालीपाक शुद्ध अठारह प्रकार के व्यञ्जनों से युक्त औषधिमिश्रित भोजन करता है, उस भोजन का आपात भद्र नहीं होता—खाते समय वह नीरस लगता है, उसे पश्चात् जैसे-जैसे उसका परिणमन होता है, वैसे-वैसे वह सुरूप, सुवर्ण यावत् सुखरूप में—न दुःखरूप में बार-बार परिणत होता है। कालोदायी! इसी प्रकार जीवों के प्राणातिपात-विरमण यावत् परिग्रह-विरमण, क्रोध-विवेक यावत् मिथ्यादर्शन-शल्य-विवेक होते हैं। उस विरमण और विवेक का आपात भद्र नहीं होता—प्रारम्भ में वह नीरस लगता है, उसके पश्चात् जैसे-जैसे उसका परिणमन होता है वैसे-वैसे वह सुरूप, सुवर्ण यावत् सुखरूप

में—न दुःखरूप में बार-बार परिणत होता है। कालोदायी! इसी प्रकार जीवों के कल्याण-कर्म कल्याण-फल-विपाक-संयुक्त होते हैं।

२२७. भन्ते! दो पुरुष जो एक जैसे समान त्वचा वाले, समान वय वाले और समान भाण्ड, पात्र, उपकरण वाले हैं, परस्पर मिलकर अग्निकाय का समारम्भ करते हैं। उनमें एक पुरुष अग्निकाय को प्रज्वलित करता है और दूसरा पुरुष उसे बुझाता है। भन्ते! इन दोनों पुरुषों में कौन-सा पुरुष महत्तर कर्म वाला होता है? महत्तर क्रिया वाला होता है? महत्तर आश्रव वाला होता है? महत्तर वेदना वाला होता है? और कौन-सा पुरुष अल्पतर कर्म वाला होता है? अल्पतर क्रिया वाला होता है? अल्पतर आश्रव वाला होता है? अल्पतर वेदना वाला होता है? जो पुरुष अग्निकाय को प्रज्वलित करता है तथा जो पुरुष अग्निकाय को बुझाता है? कालोदायी! उनमें जो पुरुष अग्निकाय को प्रज्वलित करता है, वह पुरुष महत्तर कर्म, महत्तर क्रिया, महत्तर आश्रव और महत्तर वेदना वाला है। जो पुरुष अग्निकाय को बुझाता है, वह पुरुष अल्पतर कर्म, अल्पतर क्रिया अल्पतर आश्रव और अल्पतर वेदना वाला होता है।

२२८. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—जो पुरुष अग्निकाय को प्रज्वलित करता है, वह पुरुष महत्तर कर्म वाला होता है? महत्तर क्रिया वाला होता है? महत्तर आश्रव वाला होता है? महत्तर वेदना वाला होता है? जो पुरुष अग्निकाय को बुझाता है, वह पुरुष अल्पतर कर्म वाला होता है? अल्पतर क्रिया वाला होता है? अल्पतर आश्रव वाला होता है? अल्पतर वेदना वाला होता है?

कालोदायी! जो पुरुष अग्निकाय को प्रज्वलित करता है, वह पुरुष बहुतर पृथ्वीकाय का समारम्भ करता है, बहुतर अप्काय का समारम्भ करता है, अल्पतर तेजस्काय का समारम्भ करता है, बहुतर वायुकाय का समारम्भ करता है, बहुतर वनस्पतिकाय का समारम्भ करता है, बहुतर त्रसकाय का समारम्भ करता है।

जो पुरुष अग्निकाय को बुझाता है, वह पुरुष अल्पतर पृथ्वीकाय का समारम्भ करता है, अल्पतर अप्काय का समारम्भ करता है, बहुतर तेजस्काय का समारम्भ करता है, अल्पतर वायुकाय का समारम्भ करता है, अल्पतर वनस्पतिकाय का समारम्भ करता है, अल्पतर त्रसकाय का समारम्भ करता है।

कालोदायी! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—जो पुरुष अग्निकाय को प्रज्वलित करता है, वह पुरुष महत्तर कर्म, महत्तर क्रिया, महत्तर आश्रव, महत्तर वेदना वाला होता है। जो पुरुष अग्निकाय को बुझाता है, वह पुरुष अल्पतर कर्म, अल्पतर क्रिया, अल्पतर आश्रव और अल्पतर वेदना वाला होता है।

२२९. भन्ते! क्या अचित्त पुद्गल भी वस्तु को अवभासित करते हैं? उद्धोतित करते हैं? तप्त करते हैं? प्रभासित करते हैं?

हां, करते हैं।

२३०. भन्ते! वे कौन से अचित्त पुद्गल भी वस्तु को अवभासित करते हैं? उद्धोतित करते हैं? तप्त करते हैं? प्रभासित करते हैं?

कालोदायी! क्रुद्ध अनगार ने तेजो-लेश्या का निसर्जन किया, वह दूर जाकर दूर देश में गिरती है, पार्श्व में जाकर पार्श्व देश में गिरती है। वह जहां-जहां गिरती है, वहां-वहां उसके अचित्त पुद्गल भी वस्तु को अवभासित करते हैं, उद्द्योतित करते हैं, तप्त करते हैं और प्रभासित करते हैं। कालोदायी! इस प्रकार वे अचित्त पुद्गल भी वस्तु को अवभासित करते हैं, उद्द्योतित करते हैं, तप्त करते हैं और प्रभावित करते हैं।

२३१. कालोदायी अनगार, श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन नमस्कर करता है, वन्दन नमस्कार कर अनेक चतुर्थ-भक्त, षष्ठ-भक्त, अष्टम-भक्त, दशम-भक्त, द्वादश-भक्त, अर्ध-मास और मास-क्षपण-इस प्रकार विचित्र तपः-कर्म द्वारा आत्मा को भावित करता हुआ विहार कर रहा है।

२३२. कालोदायी अनगार यावत् चरम उच्छ्वास-निःश्वासों के साथ सिद्ध, प्रशान्त, मुक्त, परिनिर्वृत और सब दुःखों का नाश करने वाला हो गया।

२३३. भन्ते! भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है।

• • •

आठवां शतक

पहला उद्देशक

संग्रहणी गाथा

आठवें शतक के दस उद्देशक हैं—१. पुद्गल २. आशीविष ३. वृक्ष ४. क्रिया ५. आजीवक ६. प्रासुक ७. अदत्त ८. प्रत्यनीक ९. बन्ध १०. आराधना।

पुद्गल-परिणति-पद

१. राजगृह नगर में भगवान् का समवसरण यावत् गौतम ने इस प्रकार कहा—भन्ते! पुद्गल कितने प्रकार के प्रज्ञप्त हैं।

गौतम! पुद्गल तीन प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—प्रयोग-परिणत, मिश्र-परिणत, विस्रसा-परिणत।

प्रयोग-परिणति-पद

२. भन्ते! प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! पांच प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत, द्वीन्द्रिय-प्रयोग-परिणत, त्रीन्द्रिय-प्रयोग-परिणत, चतुरिन्द्रिय-प्रयोग-परिणत और पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत।

३. भन्ते! एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! पांच प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत, अप्कायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत, तैजसकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत, वायुकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत और वनस्पतिकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत।

४. भन्ते! पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत और बादर-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत। अप्कायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत की भांति वक्तव्य हैं। इसी प्रकार तैजसकाय यावत् वनस्पतिकाय के सूक्ष्म और बादर इन दो भेदों की वक्तव्यता।

५. द्वीन्द्रिय-प्रयोग-परिणत की पृच्छा।

गौतम! द्वीन्द्रिय-प्रयोग-परिणत अनेक प्रकार के प्रज्ञप्त हैं। इसी प्रकार त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-प्रयोग-परिणत भी अनेक प्रकार के प्रज्ञप्त हैं।

६. पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत की पृच्छा।

गौतम! पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत चार प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे-नैरयिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत, तिर्यक्-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत, मनुष्य-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत, देव-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत।

७. नैरयिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत की पृच्छा।

गौतम! नैरयिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत सात प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे-रत्नप्रभा-पृथ्वी-नैरयिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत यावत् अधःसप्तमी-पृथ्वी-नैरयिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत।

८. तिर्यग्योनिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत की पृच्छा।

गौतम! तिर्यक्योनिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत तीन प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे-जलचर-तिर्यक्योनिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत, स्थलचर-तिर्यक्-योनिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत, खेचर(नभचर)-तिर्यक्योनिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत।

९. जलचर-तिर्यक्योनिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत की पृच्छा।

गौतम! जलचर-तिर्यक्योनिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे-सम्पूच्छिम-जलचर-तिर्यक्योनिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत, गर्भावक्रान्तिक-जलचर-तिर्यक्योनिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत।

१०. स्थलचर-तिर्यक्योनिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत की पृच्छा।

गौतम! स्थलचर-तिर्यक्योनिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे-चतुष्पद-स्थलचर-तिर्यक्योनिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत, परिसर्प-स्थलचर-तिर्यक्योनिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत।

११. चतुष्पद-स्थलचर-तिर्यक्योनिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत की पृच्छा।

गौतम! चतुष्पद-स्थलचर-तिर्यक्-योनिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे-सम्पूच्छिम-चतुष्पद-स्थलचर-तिर्यक्योनिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत, गर्भावक्रान्तिक-चतुष्पद-तिर्यक्योनिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत।

१२. इसी प्रकार इस अभिलाप के अनुसार परिसर्प दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे-उरः-परिसर्प और भुज-परिसर्प। उरः-परिसर्प दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे-सम्पूच्छिम और गर्भावक्रान्तिक। इसी प्रकार भुज-परिसर्प की वक्तव्यता। इसी प्रकार खेचर की वक्तव्यता।

१३. मनुष्य-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत की पृच्छा।

गौतम! मनुष्य-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे-सम्पूच्छिम-मनुष्य-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत, गर्भावक्रान्तिक-मनुष्य-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत।

१४. देव-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत की पृच्छा।

गौतम! देव-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत चार प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे-भवनवासी-देव-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत, इसी प्रकार यावत् वैमानिक-देव-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत।

१५. भवनवासी-देव-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत की पृच्छा।

गौतम! भवनवासी-देव-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत दस प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे-असुरकुमार-
-देव-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत यावत् स्तनितकुमार-देव-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत।

१६. इसी प्रकार इस अभिलाप के अनुसार वानमंतर आठ प्रकार के प्रज्ञप्त हैं-पिशाच यावत्
गंधर्व। ज्योतिष्क पांच प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे-चन्द्रविमान- ज्योतिष्क यावत् ताराविमान-
-ज्योतिष्क-देव-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत। वैमानिक दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे-कल्पोपग-
-वैमानिक और कल्पातीतग-वैमानिक। कल्पोपग-वैमानिक बारह प्रकार के प्रज्ञप्त हैं,
जैसे-सौधर्म-कल्पोपग-वैमानिक यावत् अच्युत-कल्पोपग-वैमानिक। कल्पातीतग-वैमानिक
दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे-ग्रेवेयक-कल्पातीतग-वैमानिक, अनुत्तरोपपातिक-कल्पातीतग-
-वैमानिक। ग्रेवेयक-कल्पातीतग-वैमानिक नौ प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे-सबसे नीचे वाले
-ग्रेवेयक-कल्पातीतग-वैमानिक यावत् सबसे ऊपर वाले ग्रेवेयक-कल्पातीतग-वैमानिक।

१७. भन्ते! अनुत्तरोपपातिक-कल्पातीतग-वैमानिक-देव-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने
प्रकार के प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! पांच प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे-विजय अनुत्तरोपपातिक-कल्पातीतग-वैमानिक-देव-
-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत यावत् सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरोपपातिक-कल्पातीतग-वैमानिक-देव-
-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत।

पर्याप्त-अपर्याप्त की अपेक्षा प्रयोग-परिणति-पद

१८. भन्ते! सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे-पर्याप्तक-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत
और अपर्याप्तक-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत।

इसी प्रकार बादर-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत यावत् वनस्पति-कायिक-एकेन्द्रिय-
-प्रयोग-परिणत की वक्तव्यता। इनमें से प्रत्येक दो प्रकार के हैं-सूक्ष्म और बादर। सूक्ष्म
और बादर के दो-दो प्रकार हैं-पर्याप्तक और अपर्याप्तक।

१९. द्वीन्द्रिय-प्रयोग-परिणत की पृच्छा।

गौतम! द्वीन्द्रिय-प्रयोग-परिणत दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे-पर्याप्तक-द्वीन्द्रिय-प्रयोग-परिणत
और अपर्याप्तक-द्वीन्द्रिय-प्रयोग-परिणत। इसी प्रकार त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय की
वक्तव्यता।

२०. रत्नप्रभा-पृथ्वी-नैरयिक-प्रयोग-परिणत की पृच्छा।

गौतम! रत्नप्रभा-पृथ्वी-नैरयिक-प्रयोग-परिणत दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे-पर्याप्तक-
-रत्नप्रभा-पृथ्वी-नैरयिक-प्रयोग-परिणत और अपर्याप्तक-रत्नप्रभा-पृथ्वी-नैरयिक-प्रयोग-
-परिणत। इसी प्रकार यावत् अधःसप्तमी-पृथ्वी-नैरयिक-प्रयोग-परिणत।

२१. सम्मूर्च्छिम-जलचर-तिर्यच की पृच्छा।

गौतम! सम्मूर्च्छिम-जलचर-तिर्यच दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे-पर्याप्तक और अपर्याप्तक।
इसी प्रकार गर्भावक्रान्तिक-जलचर-तिर्यच की वक्तव्यता। इसी प्रकार यावत् सम्मूर्च्छिम-खेचर

और गर्भावक्रान्तिक-खेचर की वक्तव्यता। प्रत्येक के पर्याप्तक और अपर्याप्तक भेद वक्तव्य हैं।

२२. समूर्च्छिम-मनुष्य-पंचेन्द्रिय की पृच्छा।

गौतम! समूर्च्छिम-मनुष्य-पंचेन्द्रिय एक प्रकार के ही प्रज्ञप्त हैं—वे अपर्याप्तक ही होते हैं।

२३. गर्भावक्रान्तिक-मनुष्य-पंचेन्द्रिय की पृच्छा।

गौतम! गर्भावक्रान्तिक-मनुष्य-पंचेन्द्रिय दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—पर्याप्तक-गर्भावक्रान्तिक और अपर्याप्तक-गर्भावक्रान्तिक।

२४. असुरकुमार-भवनवासी-देवों की पृच्छा।

गौतम! असुरकुमार-भवनवासी दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—पर्याप्तक-असुरकुमार और अपर्याप्तक-असुरकुमार। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार के पर्याप्तक-अपर्याप्तक की वक्तव्यता।

२५. इस प्रकार इस अभिलाष के अनुसार पिशाच यावत् गंधर्व के दो-दो भेद—पर्याप्तक और अपर्याप्तक वक्तव्य हैं। चन्द्र यावत् ताराविमान, सौधर्म-कल्पोपग यावत् अच्युत, सबसे नीचे वाले ग्रैवेयक-कल्पातीतग यावत् सबसे ऊपर वाले ग्रैवेयक-कल्पातीतग। विजय-अनुत्तरौपपातिक यावत् अपराजित।

२६. सर्वार्थसिद्ध-कल्पातीतग की पृच्छा।

गौतम! सर्वार्थसिद्ध-कल्पातीतग दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—पर्याप्तक-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक, अपर्याप्तक-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-प्रयोग-परिणत।

शरीर की अपेक्षा प्रयोग-परिणति-पद

२७. जो अपर्याप्त-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं वे औदारिक-, तैजस- और कर्म-शरीर-प्रयोग-परिणत हैं। जो पर्याप्त-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं वे औदारिक-, तैजस- और कर्म-शरीर-प्रयोग-परिणत हैं। इसी प्रकार यावत् चतुरिन्द्रिय-पर्याप्त-प्रयोग-परिणत की वक्तव्यता। केवल इतना विशेष है—जो पर्याप्त-बादर-वायुकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं वे औदारिक-, वैक्रिय-, तैजस- और कर्म-शरीर-प्रयोग-परिणत हैं—शेष जो अपर्याप्त-बादर-वायुकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं वे औदारिक-, तैजस- और कर्म-शरीर-प्रयोग-परिणत हैं।

२८. जो अपर्याप्त-रत्नप्रभा-पृथ्वी-नैरयिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं वे वैक्रिय-, तैजस- और कर्म-शरीर-प्रयोग-परिणत हैं। इसी प्रकार पर्याप्त-रत्नप्रभा-पृथ्वी-नैरयिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत की वक्तव्यता। इसी प्रकार यावत् अधःसप्तमी-पृथ्वी-नैरयिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत की वक्तव्यता।

२९. जो अपर्याप्त-समूर्च्छिम-जलचर-तिर्यच-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं वे औदारिक-, तैजस- और कर्म-शरीर-प्रयोग-परिणत हैं।

इसी प्रकार पर्याप्त-समूर्च्छिम-जलचर-तिर्यच-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत की वक्तव्यता। इसी

प्रकार पर्याप्त-गर्भावक्रान्तिक-जलचर-तिर्यच-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत की वक्तव्यता। केवल इतना विशेष है कि बादर-वायुकायिक की भांति शरीर चार होते हैं। जैसे-जलचर के चार आलापक कहे गए हैं वैसे ही चतुष्पद उरः-परिसर्प, भुज-परिसर्प और खेचर के भी चार आलापक वक्तव्य हैं।

३०. जो संमूर्च्छिम-मनुष्य-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं वे औदारिक-, तैजस- और कर्म-शरीर-प्रयोग-परिणत हैं। इसी प्रकार गर्भावक्रान्तिक-मनुष्य-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत की वक्तव्यता। इसी प्रकार अपर्याप्तक की वक्तव्यता। पर्याप्तक की वक्तव्यता भी इसी प्रकार है। केवल इतना विशेष है कि पांच शरीर वक्तव्य हैं।

३१. जो अपर्याप्त-असुरकुमार-भवनवासी-प्रयोग-परिणत हैं वे नैरयिक की भांति वक्तव्य हैं। इसी प्रकार पर्याप्त-असुरकुमार-भवनवासी-प्रयोग-परिणत की वक्तव्यता। इसी प्रकार दो-दो भेद के अनुसार यावत् स्तनितकुमार-भवन-वासी-प्रयोग-परिणत की वक्तव्यता। इसी प्रकार पिशाच यावत् गंधर्व की वक्तव्यता। चन्द्र- यावत् ताराविमान की वक्तव्यता। सौधर्म-कल्प यावत् अच्युत-कल्प की वक्तव्यता। सबसे नीचे वाले ग्रैवेयक यावत् सबसे ऊपर वाले ग्रैवेयक की वक्तव्यता। विजय-अनुत्तरोपपातिक यावत् सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरोपपातिक की वक्तव्यता। प्रत्येक के अपर्याप्त और पर्याप्त-ये दो भेद वक्तव्य हैं यावत् जो पर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरोपपातिक-कल्पातीतग-वैमानिक-देव-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं वे वैक्रिय-, तैजस- और कर्म-शरीर-प्रयोग-परिणत हैं।

इन्द्रिय की अपेक्षा प्रयोग-परिणति-पद

३२. जो अपर्याप्त-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं वे स्पर्शनेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं। इसी प्रकार पर्याप्त-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत की वक्तव्यता। इसी प्रकार अपर्याप्त-बादर-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत की वक्तव्यता। इसी प्रकार पर्याप्त पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत की वक्तव्यता। इस प्रकार चार-चार भेदों के अनुसार यावत् वनस्पतिकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत की वक्तव्यता।

३३. जो अपर्याप्त-द्वीन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं वे रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं। इसी प्रकार पर्याप्त-द्वीन्द्रिय-प्रयोग-परिणत की वक्तव्यता। इसी प्रकार यावत् चतुरिन्द्रिय-प्रयोग-परिणत की वक्तव्यता। केवल इतना विशेष है-त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय में क्रमशः एक-एक इन्द्रिय की वृद्धि करनी चाहिए।

३४. जो अपर्याप्त-रत्नप्रभा-नैरयिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं वे श्रोत्रेन्द्रिय-चक्षुरिन्द्रिय-, घ्राणेन्द्रिय-, रसनेन्द्रिय- और स्पर्शनेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं। इसी प्रकार पर्याप्त-रत्नप्रभा-पृथ्वी-नैरयिक-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत की वक्तव्यता। इसी प्रकार शेष सब की वक्तव्यता। तिर्यग्योनिक, मनुष्य और देव यावत् जो पर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरोपपातिक-कल्पातीतग-वैमानिक-देव-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं वे श्रोत्रेन्द्रिय-, चक्षुरिन्द्रिय-, घ्राणेन्द्रिय-, रसनेन्द्रिय- और स्पर्शनेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं।

शरीर और इन्द्रिय की अपेक्षा-प्रयोग-परिणति-पद

३५. जो अपर्याप्त-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-, तैजस-, कर्म-शरीर-प्रयोग-परिणत हैं वे स्पर्शनिन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं। इसी प्रकार पर्याप्त-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-, तैजस-, कर्म-शरीर-प्रयोग-परिणत की वक्तव्यता। इसी प्रकार बादर-अपर्याप्त-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-, तैजस-, कर्म-शरीर-प्रयोग-परिणत की वक्तव्यता।

इसी प्रकार बादर-पर्याप्त-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-, तैजस-, कर्म-शरीर-प्रयोग-परिणत की वक्तव्यता। इसी प्रकार इस अभिलाप के अनुसार जिसके जितनी इन्द्रियां और शरीर हैं उसके वे सब वक्तव्य हैं यावत् जो पर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीतग-वैमानिक-देव-पंचेन्द्रिय-वैक्रिय-तैजस-कर्म-शरीर-प्रयोग-परिणत हैं वे श्रोत्रेन्द्रिय-, चक्षुरिन्द्रिय- यावत् स्पर्शनिन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं।

वर्ण-आदि की अपेक्षा प्रयोग-परिणति-पद

३६. जो अपर्याप्त-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं वे वर्ण से काल-वर्ण-परिणत भी हैं, नील-, लाल-, पीत- और शुक्ल-वर्ण परिणत भी हैं, गंध से सुगंध-परिणत भी हैं, दुर्गन्ध-परिणत भी हैं, रस से तिक्त-रस-परिणत भी हैं, कटुक-रस-परिणत भी हैं, कषाय-रस-परिणत भी हैं, अम्ल-रस-परिणत भी हैं, मधुर-रस-परिणत भी हैं, स्पर्श से कठोर-स्पर्श-परिणत भी हैं, मृदु-स्पर्श-परिणत भी हैं, गुरु-स्पर्श-परिणत भी हैं, लघु-स्पर्श-परिणत भी हैं, शीत-स्पर्श-परिणत भी हैं, उष्ण-स्पर्श-परिणत भी हैं, स्निग्ध-स्पर्श-परिणत भी हैं, रूक्ष-स्पर्श-परिणत भी हैं; संस्थान से परिमण्डल-संस्थान-परिणत भी हैं, वृत्त-, त्र्यस-, चतुरस-, आयत-संस्थान-परिणत भी हैं।

इसी प्रकार पर्याप्त-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत की वक्तव्यता। इसी प्रकार क्रमशः ज्ञातव्य है यावत् जो पर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-देव-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं वे वर्ण से काल-वर्ण-परिणत भी हैं यावत् आयत-संस्थान-परिणत भी हैं।

शरीर और वर्ण-आदि की अपेक्षा प्रयोग-परिणति-पद

३७. जो अपर्याप्त-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-तैजस- और कर्म-शरीर-प्रयोग-परिणत हैं वे वर्ण से काल-वर्ण-परिणत भी हैं यावत् आयत-संस्थान-परिणत भी हैं।

इसी प्रकार पर्याप्त-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-तैजस- और कर्म-शरीर-प्रयोग-परिणत की वक्तव्यता। इसी प्रकार यथाक्रम ज्ञातव्य हैं, जिसके जितने शरीर हैं वे वक्तव्य हैं यावत् जो पर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीतग-वैमानिक-देव-पंचेन्द्रिय-वैक्रिय-, तैजस- और कर्म-शरीर-प्रयोग-परिणत हैं वे वर्ण से काल-वर्ण-परिणत भी हैं यावत् आयत-संस्थान-परिणत भी हैं।

इन्द्रिय और वर्ण-आदि की अपेक्षा प्रयोग-परिणति-पद

३८. जो अपर्याप्त-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-स्पर्शनिन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं वे वर्ण से

काल-वर्ण-परिणत भी हैं यावत् आयत-संस्थान-परिणत भी हैं।

इसी प्रकार पर्याप्त-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-स्पर्शनिन्द्रिय-प्रयोग-परिणत की वक्तव्यता। इसी प्रकार यथाक्रम जिसके जितनी इन्द्रियां हैं उसके उतनी वक्तव्य हैं यावत् जो पर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीतग-वैमानिक-देव-पंचेन्द्रिय-श्रोत्रेन्द्रिय यावत् स्पर्शनिन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं वे वर्ण से काल-वर्ण-परिणत भी हैं यावत् आयत-संस्थान-परिणत भी हैं।

शरीर, इन्द्रिय और वर्ण-आदि की अपेक्षा प्रयोग-परिणति-पद

३९. जो अपर्याप्त-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-, तैजस-, कर्म-शरीर-स्पर्शनिन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं वे वर्ण से काल-वर्ण-परिणत भी हैं यावत् आयत-संस्थान-परिणत भी हैं।

इसी प्रकार पर्याप्त-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-, तैजस-, कर्म-शरीर-स्पर्शनिन्द्रिय-प्रयोग-परिणत की वक्तव्यता, इसी प्रकार यथाक्रम जिसके जितने शरीर और इन्द्रियां हैं वे वक्तव्य हैं यावत् जो पर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीतग-वैमानिक-देव-पंचेन्द्रिय-वैक्रिय-, तैजस-, कर्म-शरीर-श्रोत्रेन्द्रिय यावत् स्पर्शनिन्द्रिय-प्रयोग-परिणत हैं वे वर्ण से काल-वर्ण-परिणत भी हैं यावत् आयत-संस्थान-परिणत भी हैं। प्रयोग-परिणत के ये नौ दण्डक हैं।

मिश्र-परिणति-पद

४०. भन्ते! मिश्र-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! मिश्र-परिणत पुद्गल पांच प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे-एकेन्द्रिय-मिश्र-परिणत यावत् पंचेन्द्रिय-मिश्र-परिणत।

४१. भन्ते! एकेन्द्रिय-मिश्र-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के प्रज्ञप्त हैं?

जैसे-प्रयोग-परिणत के नौ दण्डक कहे गए हैं उसी प्रकार मिश्र-परिणत के भी नौ दण्डक वक्तव्य हैं। शेष सब पूर्ववत्, केवल इतना विशेष है-प्रयोग-परिणत के स्थान पर मिश्र-परिणत कहना चाहिए यावत् जो पर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक यावत् आयत-संस्थान-परिणत भी हैं।

विस्रसा-परिणति-पद

४२. भन्ते! विस्रसा-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! विस्रसा-परिणत पुद्गल पांच प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे-वर्ण-परिणत, गंध-परिणत, रस-परिणत, स्पर्श-परिणत, संस्थान-परिणत। जो वर्ण-परिणत हैं वे पांच प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे-काल-वर्ण-परिणत यावत् शुक्ल-वर्ण-परिणत। जो गंध-परिणत हैं वे दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे सुगंध-परिणत और दुर्गन्ध-परिणत।

जो रस-परिणत हैं वे पांच प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे-तिक्त-रस-परिणत यावत् मधुर-रस-परिणत। जो स्पर्श-परिणत हैं वे आठ प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे-कठोर-स्पर्श-परिणत यावत् रूक्ष-स्पर्श-परिणत।

जो संस्थान-परिणत हैं वे पांच प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे-परिमण्डल-संस्थान-परिणत यावत्

आयत-संस्थान-परिणत। जो वर्ण से काल-वर्ण-परिणत हैं वे गन्ध से सुगन्ध-परिणत भी हैं, दुर्गन्ध-परिणत भी हैं।

जैसे पण्णवणा में है वैसे ही अविकल रूप में वक्तव्य हैं यावत् जो संस्थान से आयत-संस्थान-परिणत हैं वे वर्ण से काल-वर्ण-परिणत भी हैं यावत् रूक्ष-स्पर्श-परिणत भी हैं।

४३. भन्ते! एक द्रव्य क्या प्रयोग-परिणत है? मिश्र-परिणत है? अथवा विस्मसा-परिणत है?

गौतम! वह प्रयोग-परिणत है अथवा मिश्र-परिणत है अथवा विस्मसा-परिणत है।

प्रयोग-परिणति-पद

४४. यदि प्रयोग-परिणत है तो क्या मन-प्रयोग-परिणत है? वचन-प्रयोग-परिणत है? अथवा काय-प्रयोग-परिणत है?

गौतम! वह मन-प्रयोग-परिणत है अथवा वचन-प्रयोग-परिणत है अथवा काय-प्रयोग-परिणत है।

मन-प्रयोग-परिणति-पद

४५. यदि मन-प्रयोग-परिणत है तो क्या सत्य-मन-प्रयोग-परिणत है? मृषा-मन-प्रयोग-परिणत है? सत्यमृषा-मन-प्रयोग-परिणत है? अथवा असत्यामृषा-मन-प्रयोग-परिणत है?

गौतम! वह सत्य-मन-प्रयोग-परिणत है अथवा मृषा-मन-प्रयोग-परिणत है अथवा सत्य-मृषा-मन-प्रयोग-परिणत है अथवा असत्यामृषा-मन-प्रयोग-परिणत है।

४६. यदि सत्य-मन-प्रयोग-परिणत है तो क्या आरम्भ-सत्य-मन-प्रयोग-परिणत है? अनारम्भ-सत्य-मन-प्रयोग-परिणत है? सारम्भ-सत्य-मन-प्रयोग-परिणत है? असारम्भ-सत्य-मन-प्रयोग-परिणत है? समारम्भ-सत्य-मन-प्रयोग-परिणत है? अथवा असमारम्भ-सत्य-मन-प्रयोग-परिणत है?

गौतम! आरम्भ-सत्य-मन-प्रयोग-परिणत है अथवा यावत् असमारम्भ-सत्य-मन-प्रयोग-परिणत है।

४७. यदि मृषा-मन-प्रयोग-परिणत है तो क्या आरम्भ-मृषा-मन-प्रयोग-परिणत है?

इस प्रकार जैसे सत्य-मन-प्रयोग-परिणत की वक्तव्यता है वैसे ही मृषा-मन-प्रयोग-परिणत की वक्तव्यता। इसी प्रकार सत्य-मृषा-मन-प्रयोग-परिणत की और इसी प्रकार असत्यमृषा-मन-प्रयोग-परिणत की वक्तव्यता।

वचन-प्रयोग-परिणति-पद

४८. यदि वचन-प्रयोग-परिणत है तो क्या सत्य-वचन-प्रयोग-परिणत है? मृषा-वचन-प्रयोग-परिणत है?

इस प्रकार जैसे मन-प्रयोग-परिणत की वक्तव्यता वैसे वचन-प्रयोग-परिणत की भी वक्तव्यता यावत् अथवा असमारम्भ-सत्य-वचन-प्रयोग-परिणत है।

काय-प्रयोग-परिणति-पद

४९. यदि काय-प्रयोग-परिणत है तो क्या औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है? औदारिक-मिश्र-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है? वैक्रिय-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है? वैक्रिय-मिश्र-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है? आहारक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है? आहारक-मिश्र-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है? कर्म-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है?

गौतम! औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है अथवा यावत् कर्म-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है।

५०. यदि औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है तो क्या एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है? यावत् पंचेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है?

गौतम! एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है अथवा यावत् पंचेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है।

५१. यदि एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है तो क्या पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है? यावत् वनस्पतिकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है?

गौतम! पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है अथवा यावत् वनस्पतिकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है।

५२. यदि पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है तो क्या सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है? बादर-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है?

गौतम! सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है अथवा बादर-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है।

५३. यदि सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है तो क्या पर्याप्त-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है? अथवा अपर्याप्त-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है?

गौतम! वह पर्याप्त-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है, अपर्याप्त-सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है। इसी प्रकार बादर-पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत की वक्तव्यता। इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक के चार-चार भेदों की वक्तव्यता। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय के दो-दो भेद पर्याप्तक और अपर्याप्तक की वक्तव्यता।

५४. यदि पंचेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है तो क्या तिर्यग्योनिक-पंचेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है? अथवा मनुष्य-पंचेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है?

गौतम! तिर्यग्योनिक-पंचेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है अथवा मनुष्य-

-पंचेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है।

५५. यदि तिर्यक्योनिक-पंचेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है तो क्या जलचर-तिर्यक्योनिक-औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है? अथवा स्थलचर-खेचर-तिर्यक्योनिक-पंचेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है?

गौतम! इस प्रकार तिर्यक्योनिक-पंचेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत यावत् खेचर के चार-चार भेदों की वक्तव्यता।

५६. यदि मनुष्य-पंचेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है तो क्या संमूर्च्छिम-मनुष्य-पंचेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है? अथवा गर्भावक्रान्तिक-मनुष्य-पंचेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है?

गौतम! दोनों ही मनुष्य-पंचेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत हैं।

५७. यदि गर्भावक्रान्तिक-मनुष्य-पंचेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है तो क्या पर्याप्त-गर्भावक्रान्तिक-मनुष्य-पंचेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है? अथवा अपर्याप्त-गर्भावक्रान्तिक-मनुष्य-पंचेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है?

गौतम! पर्याप्त-गर्भावक्रान्तिक-मनुष्य-पंचेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है अथवा अपर्याप्त-गर्भावक्रान्तिक-मनुष्य-पंचेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है।

५८. यदि औदारिक-मिश्र-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है तो क्या एकेन्द्रिय-औदारिक-मिश्र-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है? द्वीन्द्रिय-औदारिक-मिश्र-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है? यावत् पंचेन्द्रिय-औदारिक-मिश्र-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है?

गौतम! एकेन्द्रिय-औदारिक-मिश्र-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है। इस प्रकार जैसे औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत का आलापक कहा गया है वैसे ही औदारिक-मिश्र-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत का आलापक वक्तव्य है। केवल इतना विशेष है—बादर-वायुकायिक, गर्भावक्रान्तिक-पंचेन्द्रिय-तिर्यक्योनिक और गर्भावक्रान्तिक-मनुष्य-ये पर्याप्तक, अपर्याप्तक दोनों तथा शेष सभी केवल अपर्याप्तक होते हैं।

५९. यदि वैक्रिय-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है तो क्या एकेन्द्रिय-वैक्रिय-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है? अथवा पंचेन्द्रिय-वैक्रिय-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है?

गौतम! एकेन्द्रिय-वैक्रिय-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है अथवा पंचेन्द्रिय-वैक्रिय-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है।

६०. यदि एकेन्द्रिय-वैक्रिय-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है तो क्या वायुकायिक-एकेन्द्रिय-वैक्रिय-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है? अथवा अवायुकायिक-एकेन्द्रिय-वैक्रिय-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है?

गौतम! वायुकायिक-एकेन्द्रिय-वैक्रिय-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है, अवायुकायिक-एकेन्द्रिय-वैक्रिय-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत नहीं है। इस प्रकार इस वायुकाय के अभिलाप के अनुसार जैसी अवगाहना-संस्थान नामक पणवणा के २१वें पद में वैक्रिय-शरीर की

वक्तव्यता है वैसा यहां भी वक्तव्य है। यावत् पर्याप्तक-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीतग-वैमानिक-देव-पंचेन्द्रिय-वैक्रिय-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है अथवा अपर्याप्तक-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीतग-वैमानिक-देव-पंचेन्द्रिय-वैक्रिय-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है।

६१. यदि वैक्रिय-मिश्र-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है तो क्या एकेन्द्रिय-मिश्र-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है? अथवा यावत् पंचेन्द्रिय-मिश्र-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है?

इस प्रकार जैसे वैक्रिय की वक्तव्यता है वैसे ही वैक्रिय-मिश्र की भी वक्तव्यता। केवल इतना विशेष है-देव-नैरयिकों के अपर्याप्तक और शेष के पर्याप्तक यावत् पर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-देव-पंचेन्द्रिय-वैक्रिय-मिश्र-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत नहीं हैं, अपर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-देव-पंचेन्द्रिय-वैक्रिय-मिश्र-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है।

६२. यदि आहारक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है तो क्या मनुष्य-आहारक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है? अथवा अमनुष्य-आहारक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है?

इस प्रकार जैसी अवगाहना-संस्थान नामक पणवणा के २१वें पद में आहारक-शरीर की वक्तव्यता है वैसा यहां भी वक्तव्य है यावत् ऋद्धि-प्राप्त प्रमत्त-संयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्तक-संख्येय-वर्ष-आयुष्य वाला आहारक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है, ऋद्धि-अप्राप्त-प्रमत्त-संयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्त-संख्येय-वर्ष-आयुष्य वाला आहारक-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत नहीं है।

६३. यदि आहारक-मिश्र-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है तो क्या मनुष्य-आहारक-मिश्र-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है?

इस प्रकार जैसी आहारक-शरीर की वक्तव्यता है वैसे आहारक-मिश्र-शरीर के विषय में भी अविकल रूप से वक्तव्य है।

६४. यदि कर्म-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है तो क्या एकेन्द्रिय-कर्म-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है? यावत् पंचेन्द्रिय-कर्म-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है?

गौतम! एकेन्द्रिय-कर्म-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है। इस प्रकार जैसी अवगाहना-संस्थान नामक पणवणा के २१वें पद में कर्म के भेद की वक्तव्यता है वैसे यहां भी वक्तव्य है यावत् पर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीतग-वैमानिक-देव-पंचेन्द्रिय-कर्म-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है, यावत् अपर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीतग-वैमानिक-देव-पंचेन्द्रिय-कर्म-शरीर-काय-प्रयोग-परिणत है।

मिश्र-परिणति-पद

६५. यदि मिश्र-परिणत है तो क्या मन-मिश्र-परिणत है? वचन-मिश्र-परिणत है? अथवा काय-मिश्र-परिणत है?

गौतम! वह मन-मिश्र-परिणत है अथवा वचन-मिश्र-परिणत है, अथवा काय-मिश्र-परिणत है।

६६. यदि मन-मिश्र-परिणत है तो क्या सत्य-मन-मिश्र-परिणत है? मृषा-मन-मिश्र-परिणत है?

जैसे प्रयोग-परिणत की वक्तव्यता है वैसे ही मिश्र-परिणत भी अविकल रूप से वक्तव्य है यावत् पर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक यावत् देव-पंचेन्द्रिय-कर्म-शरीर-मिश्र-परिणत है अथवा अपर्याप्त-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक यावत् कर्म-शरीर-मिश्र-परिणत है।

विस्मसा-परिणति-पद

६७. यदि विस्मसा-परिणत है तो क्या वर्ण-परिणत है? गंध-परिणत है? रस-परिणत है? स्पर्श-परिणत है? संस्थान-परिणत है?

गौतम! वह वर्ण-परिणत भी है, गंध-परिणत भी है, रस-परिणत भी है, स्पर्श-परिणत भी है, संस्थान-परिणत भी है।

६८. यदि वर्ण-परिणत है तो क्या काल-वर्ण-परिणत है यावत् शुक्ल-वर्ण-परिणत है?

गौतम? वह काल-वर्ण-परिणत भी है यावत् शुक्ल-वर्ण-परिणत भी है।

६९. यदि गन्ध-परिणत है तो क्या सुगन्ध-परिणत है? दुर्गन्ध-परिणत है?

गौतम! वह सुगन्ध-परिणत भी है अथवा दुर्गन्ध-परिणत भी है?

७०. यदि रस-परिणत है तो क्या तिक्त-रस-परिणत है? पृच्छा।

गौतम! वह तिक्त-रस-परिणत भी है यावत् मधुर-रस-परिणत भी है।

७१. यदि स्पर्श-परिणत है तो क्या कठोर-स्पर्श-परिणत है यावत् रूक्ष-स्पर्श-परिणत है?

गौतम! कठोर-स्पर्श-परिणत भी है यावत् रूक्ष-स्पर्श-परिणत भी है।

७२. यदि संस्थान-परिणत है—पृच्छा।

गौतम! परिमण्डल-संस्थान-परिणत भी है अथवा यावत् आयत-संस्थान-परिणत भी है।

दो द्रव्यों की अपेक्षा पुद्गल-परिणति-पद

७३. भन्ते! दो द्रव्य क्या प्रयोग-परिणत हैं? क्या मिश्र-परिणत हैं? क्या विस्मसा-परिणत हैं?

गौतम! १. प्रयोग-परिणत भी हैं २. मिश्र-परिणत भी हैं ३. विस्मसा-परिणत भी हैं ४. अथवा एक प्रयोग-परिणत हैं, एक मिश्र-परिणत है, ५. अथवा एक प्रयोग-परिणत है, एक विस्मसा-परिणत है ६. अथवा एक मिश्र-परिणत है, एक विस्मसा-परिणत है।

७४. यदि प्रयोग-परिणत हैं तो क्या मन-प्रयोग-परिणत हैं? वचन-प्रयोग-परिणत हैं? अथवा काय-प्रयोग-परिणत हैं?

गौतम! १. मन-प्रयोग-परिणत हैं २. वचन-प्रयोग-परिणत भी हैं ३. काय-प्रयोग-परिणत भी हैं ४. अथवा एक मन-प्रयोग-परिणत है, एक वचन-प्रयोग-परिणत है ५. अथवा एक मन-प्रयोग-परिणत है, एक काय-प्रयोग-परिणत है ६. अथवा एक वचन-प्रयोग-परिणत है, एक काय-प्रयोग-परिणत है।

७५. यदि मन-प्रयोग-परिणत हैं तो क्या सत्य-मन-प्रयोग-परिणत हैं? असत्य-मन-प्रयोग-

-परिणत हैं? सत्य-मृषा-मन-प्रयोग-परिणत हैं? अथवा असत्यामृषा-मन-प्रयोग-परिणत हैं? गौतम! १-४. सत्य-मन-प्रयोग-परिणत भी हैं, असत्यामृषा-मन-प्रयोग-परिणत भी हैं ५. अथवा एक सत्य-मन-प्रयोग-परिणत है, एक मृषा-मन-प्रयोग-परिणत है ६. अथवा एक सत्य-मन-प्रयोग-परिणत है, एक सत्य-मृषा-मन-प्रयोग-परिणत है ७. अथवा एक सत्य-मन-प्रयोग-परिणत है, एक असत्यामृषा-मन-प्रयोग-परिणत है, ८. अथवा एक मृषा-मन-प्रयोग-परिणत है, एक सत्य-मृषा-मन-प्रयोग-परिणत है ९. अथवा एक मृषा-मन-प्रयोग-परिणत है, एक असत्यामृषा-मन-प्रयोग-परिणत है १०. अथवा एक सत्य-मृषा-मन-प्रयोग-परिणत है, एक असत्यामृषा-मन-प्रयोग-परिणत है।

७६. यदि सत्य-मन-प्रयोग-परिणत हैं तो क्या आरम्भ-सत्य-मन-प्रयोग-परिणत हैं? यावत् असमारम्भ-सत्य-मन-प्रयोग-परिणत हैं?

गौतम! आरम्भ-सत्य-मन-प्रयोग-परिणत भी हैं यावत् असमारम्भ-सत्य-मन-प्रयोग-परिणत भी हैं। अथवा एक आरम्भ-सत्य-मन-प्रयोग-परिणत है, एक अनारम्भ-सत्य-मन-प्रयोग-परिणत है। इस प्रकार इस गमक के अनुसार दो के संयोग से होने वाले भंग ज्ञातव्य हैं, सब सांयोगिक भंग जहां जितने हो सकते हैं, वे सब यावत् सर्वार्थसिद्ध तक वक्तव्य हैं।

७७. यदि मिश्र-परिणत हैं तो क्या मन-मिश्र-परिणत हैं?

इस प्रकार मिश्र-परिणत की भी वक्तव्यता।

७८. यदि विस्रसा-परिणत हैं तो क्या वर्ण-परिणत हैं? गन्ध-परिणत हैं?

इस प्रकार विस्रसा-परिणत की भी वक्तव्यता यावत् अथवा एक चतुरस्र-संस्थान-परिणत है, एक आयत-संस्थान-परिणत है।

तीन द्रव्यों की अपेक्षा पुद्गल-परिणति-पद

७९. भन्ते! तीन द्रव्य क्या प्रयोग-परिणत हैं? मिश्र-परिणत हैं? विस्रसा-परिणत हैं?

गौतम! १. प्रयोग-परिणत भी हैं २. मिश्र-परिणत भी हैं ३. विस्रसा-परिणत भी हैं ४. अथवा एक प्रयोग-परिणत है, दो मिश्र-परिणत हैं ५. अथवा एक प्रयोग-परिणत है, दो विस्रसा-परिणत हैं ६. अथवा दो प्रयोग-परिणत हैं, एक मिश्र-परिणत है ७. अथवा दो प्रयोग-परिणत हैं, एक विस्रसा-परिणत है ८. अथवा एक मिश्र-परिणत है, दो विस्रसा-परिणत हैं ९. अथवा दो मिश्र-परिणत हैं, एक विस्रसा-परिणत है। १०. अथवा एक प्रयोग-परिणत है, एक मिश्र-परिणत है, एक विस्रसा-परिणत है।

८०. यदि प्रयोग-परिणत हैं तो क्या मन-प्रयोग-परिणत हैं? वचन-प्रयोग-परिणत हैं? काय-प्रयोग-परिणत हैं?

गौतम! मन-प्रयोग-परिणत भी हैं, इस प्रकार एक-सांयोगिक, द्विक-सांयोगिक और त्रिक-सांयोगिक भंग वक्तव्य हैं।

८१. यदि मन-प्रयोग-परिणत हैं तो क्या सत्य-मन-प्रयोग-परिणत हैं? असत्य-मन-प्रयोग-परिणत हैं? सत्य-मृषा-मन-प्रयोग-परिणत हैं? असत्यामृषा-मन-प्रयोग-परिणत हैं?

गौतम! सत्य-मन-प्रयोग-परिणत भी हैं यावत् असत्तामृषा-मन-प्रयोग-परिणत भी हैं। अथवा एक सत्य-मन-प्रयोग-परिणत है, दो मृषा-मन-प्रयोग-परिणत हैं। इस प्रकार द्विक-सांयोगिक और त्रिक-सांयोगिक भंग वक्तव्य हैं। यहां द्रव्य-त्रय के अधिकार में भी द्रव्य-द्वय के अधिकार (सूत्र ७३ से ७८) के समान वक्तव्यता यावत् अथवा एक त्रिस-संस्थान-परिणत है, एक चतुरस-संस्थान-परिणत है, एक आयत-संस्थान-परिणत है।

चार द्रव्यों की अपेक्षा पुद्गल-परिणति-पद

८२. भन्ते! चार द्रव्य क्या प्रयोग-परिणत हैं? मिश्र-परिणत हैं? विस्रसा-परिणत हैं?

गौतम! १. वे प्रयोग-परिणत भी हैं २. मिश्र-परिणत भी हैं ३. विस्रसा-परिणत भी हैं ४. अथवा एक प्रयोग-परिणत है, तीन मिश्र-परिणत हैं ५. अथवा एक प्रयोग-परिणत है, तीन विस्रसा-परिणत हैं ६. अथवा दो प्रयोग-परिणत हैं, दो मिश्र-परिणत हैं ७. अथवा दो प्रयोग-परिणत हैं, दो विस्रसा-परिणत हैं ८. अथवा तीन प्रयोग-परिणत हैं, एक मिश्र-परिणत है ९. अथवा तीन प्रयोग-परिणत हैं, एक विस्रसा-परिणत है १०. अथवा एक मिश्र-परिणत है, तीन विस्रसा-परिणत हैं ११. अथवा दो मिश्र-परिणत हैं, दो विस्रसा-परिणत हैं १२. अथवा तीन मिश्र-परिणत हैं, एक विस्रसा-परिणत है १३. अथवा एक प्रयोग-परिणत है, एक मिश्र-परिणत है, दो विस्रसा-परिणत हैं १४. अथवा एक प्रयोग-परिणत है, दो मिश्र-परिणत हैं, एक विस्रसा-परिणत है १५. अथवा दो प्रयोग-परिणत हैं, एक मिश्र-परिणत है, एक विस्रसा-परिणत है।

८३. यदि प्रयोग-परिणत हैं तो क्या मन-प्रयोग-परिणत हैं? वचन-प्रयोग-परिणत हैं? काय-प्रयोग-परिणत हैं?

इस प्रकार इस क्रम से पांच, छह, सात, यावत् दस, संख्येय, असंख्येय और अनन्त द्रव्य वक्तव्य हैं—द्विक-संयोग, त्रिक-संयोग यावत् दस-संयोग और द्वादश-संयोग की उपयोजना कर जहां जितने संयोग बनते हैं वे सब वक्तव्य हैं। इन्हें जैसे नवें शतक के प्रवेशनक प्रकरण (सूत्र ८६ से ११९) में कहेंगे वैसे ही उपयोजना कर वक्तव्य हैं यावत् असंख्येय और अनन्त की इसी प्रकार वक्तव्यता, इतना विशेष है—एक पद अधिक है यावत् अथवा अनन्त परिमण्डल-संस्थान-परिणत हैं यावत् अनन्त आयत-संस्थान-परिणत हैं।

८४. भन्ते! इन प्रयोग-परिणत, मिश्र-परिणत और विस्रसा-परिणत पुद्गलों में कौन किन से अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

गौतम! प्रयोग-परिणत पुद्गल सबसे कम हैं, मिश्र-परिणत उनसे अनन्त-गुना हैं, विस्रसा-परिणत उनसे अनन्त-गुना हैं।

८५. भन्ते! वह ऐसा ही है, भन्ते! वह ऐसा ही है।

दूसरा उद्देशक

आशीविष-पद

८६. भन्ते! आशीविष कितने प्रकार के प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! आशीविष दा प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे-जाति-आशीविष और कर्म-आशीविष।

८७. भन्ते! जाति-आशीविष कितने प्रकार के प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! चार प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे-वृश्चिक-जाति-आशीविष, मंडूक-जाति-आशीविष, उरग-जाति-आशीविष और मनुष्य-जाति-आशीविष।

८८. भन्ते! वृश्चिक-जाति-आशीविष का कितना विषय प्रज्ञप्त है?

गौतम! वृश्चिक-जाति-आशीविष अर्ध-भरत-प्रमाण-शरीर को अपने विष से व्याप्त और परिपूर्ण करने में समर्थ है। यह विषय विष की शक्ति की दृष्टि से बतलाया गया है, क्रियात्मक रूप में न तो ऐसा किया है, न करता है और न करेगा।

८९. भन्ते! मण्डूक-जाति-आशीविष का कितना विषय प्रज्ञप्त है?

गौतम! मंडूक-जाति-आशीविष भरत-प्रमाण शरीर को अपने विष से व्याप्त और परिपूर्ण करने में समर्थ है। यह विषय विष की शक्ति की दृष्टि से बतलाया गया है। क्रियात्मक रूप में न तो ऐसा किया है, न करता है और न करेगा।

९०. भन्ते! उरग-जाति-आशीविष का कितना विषय प्रज्ञप्त है?

गौतम! उरग-जाति-आशीविष जम्बूद्वीप-प्रमाण-शरीर को अपने विष से व्याप्त और परिपूर्ण करने में समर्थ है। यह विषय विष की शक्ति की दृष्टि से बतलाया गया है। क्रियात्मक रूप में न तो ऐसा किया है, न करता है और न करेगा।

९१. भन्ते! मनुष्य-जाति-आशीविष का कितना विषय प्रज्ञप्त है?

गौतम! मनुष्य-जाति-आशीविष समयक्षेत्र(अढाई द्वीप)-प्रमाण-शरीर को अपने विष से व्याप्त और परिपूर्ण करने में समर्थ है। यह विषय विष की शक्ति की दृष्टि से बतलाया गया है। क्रियात्मक रूप में न तो ऐसा किया है, न करता है और न करेगा।

९२. यदि कर्म-आशीविष है तो क्या नैरयिक-कर्म-आशीविष है? तिर्यग्योनिक-कर्म-आशीविष है? मनुष्य-कर्म-आशीविष है? अथवा देव-कर्म-आशीविष है?

गौतम! नैरयिक-कर्म-आशीविष नहीं है। तिर्यग्योनिक-कर्म-आशीविष भी है, मनुष्य-कर्म-आशीविष भी है और देव-कर्म-आशीविष भी है।

९३. यदि तिर्यग्योनिक-कर्म-आशीविष है तो क्या एकेन्द्रिय-तिर्यग्योनिक-कर्म-आशीविष है यावत् पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिक-कर्म-आशीविष है?

गौतम! एकेन्द्रिय-तिर्यग्योनिक-कर्म-आशीविष नहीं है यावत् चतुरिन्द्रिय तिर्यग्योनिक-कर्म-आशीविष नहीं है। पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिक-कर्म-आशीविष है।

यदि पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिक-कर्म-आशीविष है तो क्या समूर्च्छिम-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिक-कर्म-आशीविष है? अथवा गर्भावक्रान्तिक-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिक-कर्म-आशीविष है?

इस प्रकार जैसी पणवणा (२१/५३) में वैक्रिय-शरीर के भेद की वक्तव्यता है वैसे ही यहां वक्तव्य है यावत् पर्याप्त-संख्येय-वर्ष-आयुष्य वाले गर्भावक्रान्तिक-पंचेन्द्रिय-

तिर्यग्योनिक-कर्म-आशीविष है, अपर्याप्त-संख्येय-वर्ष-आयुष्य वाले गर्भावक्रान्तिक-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिक-कर्म-आशीविष नहीं है।

९४. यदि मनुष्य-कर्म-आशीविष है तो क्या समूर्च्छिम-मनुष्य-कर्म-आशीविष है? अथवा गर्भावक्रान्तिक-मनुष्य-कर्म-आशीविष है?

गौतम! समूर्च्छिम-मनुष्य कर्म-आशीविष नहीं है, गर्भावक्रान्तिक-मनुष्य कर्म-आशीविष है। इस प्रकार जैसी पण्णवणा (२१/५४) में मनुष्य-पंचेन्द्रिय-वैक्रिय-शरीर की वक्तव्यता है वैसे ही यहां वक्तव्य है यावत् पर्याप्त-संख्येय-वर्ष-आयुष्य वाला कर्मभूमिज-गर्भावक्रान्तिक-मनुष्य-कर्म-आशीविष है, अपर्याप्त-संख्येय-वर्ष-आयुष्य वाला कर्मभूमिज-गर्भावक्रान्तिक-मनुष्य-कर्म-आशीविष नहीं है।

९५. यदि देव-कर्म-आशीविष है तो क्या भवनवासी-देव-कर्म-आशीविष है यावत् वैमानिक-देव-कर्म-आशीविष है?

गौतम! भवनवासी-देव-कर्म-आशीविष है, वानमन्तर-, ज्योतिष्क- और वैमानिक-देव-कर्म-आशीविष भी हैं।

यदि भवनवासी-देव-कर्म-आशीविष है तो क्या असुरकुमार-भवनवासी-देव-कर्म-आशीविष है यावत् स्तनितकुमार-भवनवासी-देव-कर्म-आशीविष है?

गौतम! असुरकुमार-भवनवासी-देव-कर्म-आशीविष भी है यावत् स्तनितकुमार-भवनवासी-देव-कर्म-आशीविष भी है।

यदि असुरकुमार-भवनवासी-देव-कर्म-आशीविष है तो क्या पर्याप्त-असुरकुमार-भवनवासी-देव-कर्म-आशीविष है? अथवा अपर्याप्त-असुरकुमार-भवनवासी-देव-कर्म-आशीविष है?

गौतम! पर्याप्त-असुरकुमार-भवनवासी-देव-कर्म-आशीविष नहीं है, अपर्याप्त-असुरकुमार-भवनवासी-देव कर्म-आशीविष है। इस प्रकार यावत् स्तनितकुमार की वक्तव्यता।

यदि वानमन्तर-देव-कर्म-आशीविष हैं तो क्या पिशाच-वानमन्तर-देव-कर्म-आशीविष है? इस प्रकार सब अपर्याप्तक-वानमन्तर-देवों की वक्तव्यता। सब अपर्याप्तक-ज्योतिष्क-देवों की वक्तव्यता।

यदि वैमानिक-देव-कर्म-आशीविष है तो क्या कल्पोपग-वैमानिक-देव-कर्म-आशीविष है? अथवा कल्पातीतग-वैमानिक-देव-कर्म-आशीविष है?

गौतम! कल्पोपग-वैमानिक-देव-कर्म-आशीविष है, कल्पातीतग-वैमानिक-देव-कर्म-आशीविष नहीं है।

यदि कल्पोपग-वैमानिक-देव कर्म-आशीविष है तो क्या सौधर्म-कल्पोपग-वैमानिक-देव-कर्म-आशीविष यावत् अच्युत-कल्पोपग-वैमानिक-देव-कर्म-आशीविष है?

गौतम! सौधर्म-कल्पोपग-वैमानिक-देव-कर्म-आशीविष भी है यावत् सहस्रार-कल्पोपग-वैमानिक-देव-कर्म-आशीविष भी है आनत-कल्पोपग-वैमानिक-देव-कर्म-आशीविष नहीं है यावत् अच्युत-कल्पोपग-वैमानिक-देव कर्म-आशीविष नहीं है।

यदि सौधर्म-कल्पोपग-वैमानिक-देव-कर्म-आशीविष है तो क्या पर्याप्त-सौधर्म-कल्पोपग-वैमानिक-देव-कर्म-आशीविष है? अथवा अपर्याप्त-सौधर्म-कल्पोपग-वैमानिक-देव-कर्म-आशीविष है?

गौतम! पर्याप्त-सौधर्म-कल्पोपग-वैमानिक-देव-कर्म-आशीविष नहीं है, अपर्याप्त-सौधर्म-कल्पोपग-वैमानिक-देव-कर्म-आशीविष है। इसी प्रकार यावत् पर्याप्त-सहस्रार-कल्पोपग-वैमानिक-देव-कर्म-आशीविष नहीं है, अपर्याप्त-सहस्रार-कल्पोपग-वैमानिक-देव-कर्म-आशीविष है।

छद्मस्थ-केवली-पद

१६. दस पदार्थों को छद्मस्थ सम्पूर्ण रूप से न जानता है, न देखता है, जैसे—१. धर्मास्तिकाय २. अधर्मास्तिकाय ३. आकाशास्तिकाय ४. शरीर-मुक्त जीव ५. परमाणु-पुद्गल ६. शब्द ७. गंध ८. वायु ९. यह जिन होगा या नहीं १०. यह सभी दुःखों का अन्त करेगा या नहीं।

उत्पन्न-ज्ञान-दर्शन के धारक, अर्हत्, जिन, केवली इनको सम्पूर्ण रूप से जानते-देखते हैं, जैसे—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, शरीर-मुक्त जीव, परमाणु-पुद्गल, शब्द, गन्ध, वायु, यह जिन होगा या नहीं, यह सभी दुःखों का अन्त करेगा या नहीं।

ज्ञान-पद

१७. भन्ते! ज्ञान कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?

गौतम! ज्ञान पांच प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—आभिनिबोधिक-ज्ञान, श्रुत-ज्ञान, अवधि-ज्ञान, मनःपर्यव-ज्ञान, केवल-ज्ञान।

१८. वह आभिनिबोधिक-ज्ञान क्या है?

आभिनिबोधिक ज्ञान चार प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा। इस प्रकार जैसे रायपसेणइयं (सू. ७४१-७४५) में ज्ञानों के भेद की वक्तव्यता है वैसे ही यहां वक्तव्य है यावत् वह केवल-ज्ञान है।

१९. भन्ते! अज्ञान कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?

गौतम! तीन प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान, विभंग-ज्ञान।

१००. वह मति-अज्ञान क्या है?

मति-अज्ञान चार प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा।

१०१. वह अवग्रह क्या है?

अवग्रह दो प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—अर्थावग्रह और व्यञ्जनावग्रह। इस प्रकार जैसे आभिनिबोधिक-ज्ञान की वक्तव्यता है वैसे ही मति-अज्ञान की वक्तव्यता। इतना विशेष है कि इसमें एकार्थिक नामों का उल्लेख करणीय नहीं है यावत् यह पाठ नोईन्द्रिय-धारणा तक वक्तव्य है। वह है धारणा। वह है मति-अज्ञान।

१०२. वह श्रुत-अज्ञान क्या है?

श्रुत-अज्ञान—जो यह अज्ञानी, मिथ्या-दृष्टि, स्वच्छन्द-बुद्धि और मति द्वारा विरचित है जैसे—भारत, रामायण। जैसे नंदी (सू. ६७) में यावत् अंग, उपांग-सहित चार वेद। वह श्रुत-अज्ञान है।

१०३. वह विभंग-ज्ञान क्या है?

विभंग-ज्ञान अनेक प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—ग्राम-संस्थित (गांव के आकार वाला), नगर-संस्थित यावत् सन्निवेश-संस्थित, द्वीप-संस्थित, समुद्र-संस्थित, वर्ष-संस्थित (भरत-क्षेत्र आदि के आकार वाला), वर्षधर-संस्थित (हिमवत आदि वर्षधर पर्वत के आकार वाला), पर्वत-संस्थित, वृक्ष-संस्थित, स्तूप-संस्थित, हय-संस्थित (अश्व के आकार वाला), गज-संस्थित, नर-संस्थित, किन्नर-संस्थित, किंपुरुष-संस्थित, महोरग-संस्थित, गंधर्व-संस्थित, वृषभ-संस्थित, पशु-संस्थित, मृगाकार-संस्थित, विहग-संस्थित (पक्षी के आकार वाला), वानर-संस्थित—नाना संस्थानों के आकार वाला प्रज्ञप्त है।

जीवों का ज्ञान-अज्ञानित्व-पद

१०४. भन्ते! जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

गौतम! जीव ज्ञानी भी हैं, अज्ञानी भी हैं। जो ज्ञानी हैं उनमें कुछ दो ज्ञान वाले, कुछ तीन ज्ञान वाले, कुछ चार ज्ञान वाले और कुछ एक ज्ञान वाले हैं। जो दो ज्ञान वाले हैं वे आभिनिबोधिक-ज्ञान और श्रुत-ज्ञान वाले हैं। जो तीन ज्ञान वाले हैं वे आभिनिबोधिक-ज्ञान, श्रुत-ज्ञान और अवधि-ज्ञान वाले हैं अथवा आभिनिबोधिक-ज्ञान, श्रुत-ज्ञान और मनःपर्यव-ज्ञान वाले हैं। जो चार ज्ञान वाले हैं वे आभिनिबोधिक-ज्ञान, श्रुत-ज्ञान, अवधि-ज्ञान और मनःपर्यव-ज्ञान वाले हैं। जो एक ज्ञान वाले हैं वे नियमतः केवल-ज्ञानी हैं।

जो अज्ञानी हैं उनमें कुछ दो अज्ञान वाले, कुछ तीन अज्ञान वाले हैं। जो दो अज्ञान वाले हैं वे मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञान वाले हैं। जो तीन अज्ञान वाले हैं वे मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और विभंग-ज्ञान वाले हैं।

१०५. भन्ते! नैरयिक क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

गौतम! ज्ञानी भी हैं, अज्ञानी भी हैं। जो ज्ञानी हैं वे नियमतः तीन ज्ञान वाले हैं, जैसे—आभिनिबोधिक-ज्ञान, श्रुत-ज्ञान और अवधि-ज्ञान वाले हैं। जो अज्ञानी हैं उनमें कुछ दो अज्ञान वाले, कुछ तीन अज्ञान वाले हैं। इस प्रकार तीन अज्ञान की भजना है।

१०६. भन्ते! असुरकुमार क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

जैसे नैरयिकों की वक्तव्यता वैसे ही यहां वक्तव्य है—तीन ज्ञान नियमतः होते हैं, तीन अज्ञान की भजना है। इस प्रकार यावत् स्तनितकुमार की वक्तव्यता।

१०७. भन्ते! पृथ्वीकायिक क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

गौतम! ज्ञानी नहीं हैं, अज्ञानी हैं। जो अज्ञानी हैं वे नियमतः दो अज्ञान वाले हैं—मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञान वाले। इस प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक की वक्तव्यता।

१०८. द्वीन्द्रिय की पृच्छा।

गौतम! ज्ञानी भी होते हैं, अज्ञानी भी होते हैं। जो ज्ञानी होते हैं वे नियमतः दो ज्ञान वाले

होते हैं, जैसे—आभिनिबोधक-ज्ञान और श्रुत-ज्ञान वाले। जो अज्ञानी होते हैं वे नियमतः दो अज्ञान वाले होते हैं, जैसे—मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञान वाले। इसी प्रकार त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय की वक्तव्यता।

१०९. पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिक की पृच्छा।

गौतम! ज्ञानी भी होते हैं, अज्ञानी भी होते हैं। जो ज्ञानी होते हैं उनमें कुछ दो ज्ञान वाले और कुछ तीन ज्ञान वाले होते हैं। जो अज्ञानी होते हैं उनमें कुछ दो अज्ञान वाले और कुछ तीन अज्ञान वाले होते हैं। इस प्रकार तीन ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना है। मनुष्य जीव की भांति वक्तव्य हैं। जीव की भांति उनमें पांच ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना है। वानमन्तर नैरयिक की भांति वक्तव्य है। ज्योतिष्क- और वैमानिक-देवों में नियमतः तीन ज्ञान और तीन अज्ञान होते हैं—न्यून और अधिक नहीं होते।

११०. भन्ते! सिद्धों की पृच्छा।

गौतम! ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं हैं। नियमतः एक ज्ञानी—केवल-ज्ञानी हैं।

अन्तराल-गति की अपेक्षा

१११. भन्ते! नरक की अन्तराल-गति में विद्यमान जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

गौतम! ज्ञानी भी हैं, अज्ञानी भी हैं। तीन ज्ञान नियमतः होते हैं, तीन अज्ञान की भजना है।

११२. भन्ते! तिर्यच की अन्तराल-गति में विद्यमान जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

गौतम! नियमतः दो ज्ञान अथवा दो अज्ञान होते हैं।

११३. मनुष्य की अन्तराल-गति में विद्यमान जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

गौतम! तीन ज्ञान की भजना है, दो अज्ञान नियमतः होते हैं। देव की अन्तराल-गति में विद्यमान जीवों की नरक की अन्तराल-गति में विद्यमान जीवों की भांति वक्तव्यता।

११४. भन्ते! सिद्ध की अन्तराल-गति में विद्यमान जीव क्या ज्ञानी हैं?

सिद्धों (सूत्र ८/११०) की भांति वक्तव्यता।

इन्द्रिय की अपेक्षा

११५. भन्ते! स-इन्द्रिय-जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

गौतम! चार ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना है।

११६. भन्ते! एकेन्द्रिय-जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

पृथ्वीकायिक-जीवों की भांति वक्तव्यता। द्वीन्द्रिय-, त्रीन्द्रिय- और चतुरिन्द्रिय-जीवों के नियमतः दो ज्ञान और दो अज्ञान होते हैं। पंचेन्द्रिय-जीव स-इन्द्रिय जीवों की भांति वक्तव्य हैं।

११७. भन्ते! अनिन्द्रिय-जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

सिद्धों की भांति वक्तव्यता।

काय की अपेक्षा

११८. भन्ते! सकायिक-जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

गौतम! पांच ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना है। पृथ्वीकायिक-यावत् वनस्पतिकायिक-जीव ज्ञानी नहीं हैं, अज्ञानी हैं, नियमतः दो अज्ञान वाले हैं, जैसे—मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञान वाले। त्रसकायिक-जीव सकायिक-जीवों की भांति वक्तव्य हैं।

११९. भन्ते! अकायिक-जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

सिद्धों की भांति वक्तव्यता।

सूक्ष्म-बादर की अपेक्षा

१२०. भन्ते! सूक्ष्म जीव क्या ज्ञानी हैं?

पृथ्वीकायिक-जीवों की भांति वक्तव्यता।

१२१. भन्ते! बादर जीव क्या ज्ञानी हैं?

सकायिक-जीवों की भांति वक्तव्यता।

१२२. भन्ते! नोसूक्ष्म-नोबादर जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

सिद्धों की भांति वक्तव्यता।

पर्याप्त-अपर्याप्त की अपेक्षा

१२३. भन्ते! पर्याप्त-जीव क्या ज्ञानी हैं?

सकायिक-जीवों की भांति वक्तव्यता।

१२४. भन्ते! पर्याप्त-नैरयिक-जीव क्या ज्ञानी हैं?

नियमतः तीन ज्ञान और तीन अज्ञान होते हैं। इसी प्रकार असुरकुमार से स्तनितकुमार तक की वक्तव्यता नैरयिक की भांति ज्ञातव्य है। पर्याप्त-पृथ्वीकायिक की वक्तव्यता एकेन्द्रिय की भांति ज्ञातव्य है। इसी प्रकार यावत् पर्याप्त-चतुरिन्द्रिय की वक्तव्यता।

१२५. भन्ते! पर्याप्त-पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिक क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

तीन ज्ञान, तीन अज्ञान की भजना है। पर्याप्त-मनुष्यों की वक्तव्यता सकायिक-जीवों की भांति ज्ञातव्य है। पर्याप्त-वानमंतर-, ज्योतिष्क- और वैमानिक-देवों की वक्तव्यता नैरयिक की भांति ज्ञातव्य है।

१२६. भन्ते! अपर्याप्त-जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

तीन ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना है।

१२७. भन्ते! अपर्याप्त-नैरयिक क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

तीन ज्ञान नियमतः होते हैं, तीन अज्ञान की भजना है। इस प्रकार यावत् स्तनितकुमार की वक्तव्यता। पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक की वक्तव्यता एकेन्द्रिय की भांति ज्ञातव्य है।

१२८. द्वीन्द्रिय की पृच्छा।

दो ज्ञान और दो अज्ञान नियमतः होते हैं। इस प्रकार यावत् पंचेन्द्रिय-तिर्यक्योनिक की वक्तव्यता।

१२९. भन्ते! अपर्याप्तक-मनुष्य क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

तीन ज्ञान की भजना है, दो अज्ञान नियमतः होते हैं। अपर्याप्त-वानमन्तर की वक्तव्यता नैरयिक की भांति ज्ञातव्य है। अपर्याप्त-ज्योतिष्क-देवों और अपर्याप्त-वैमानिक-देवों के नियमतः तीन ज्ञान और तीन अज्ञान होते हैं।

१३०. भन्ते! नोपर्याप्तक-नोअपर्याप्तक-जीव क्या ज्ञानी हैं?

सिद्धों की भांति वक्तव्यता।

भवस्थ की अपेक्षा

१३१. भन्ते! नैरयिक के भव में स्थित जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

नरक की अंतराल-गति में विद्यमान जीव की भांति वक्तव्यता।

१३२. भन्ते! तिर्यच के भव में स्थित जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

तीन ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना है।

१३३. मनुष्य के भव में स्थित जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

सकायिक-जीवों की भांति वक्तव्यता।

१३४. भन्ते! देव के भव में स्थित जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

नैरयिक के भव में स्थित जीव की भांति वक्तव्यता।

अभवस्थ की वक्तव्यता सिद्ध की भांति ज्ञातव्य है।

भवसिद्धिक-अभवसिद्धिक की अपेक्षा

१३५. भन्ते! भवसिद्धिक-जीव क्या ज्ञानी हैं?

सकायिक-जीवों की भांति वक्तव्यता।

१३६. अभवसिद्धिकों की पृच्छा।

गौतम! ज्ञानी नहीं हैं, अज्ञानी हैं, तीन अज्ञान की भजना है।

१३७. भन्ते! नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक-जीव क्या ज्ञानी हैं?

सिद्धों की भांति वक्तव्यता।

संज्ञी-असंज्ञी की अपेक्षा

१३८. संज्ञी-जीवों की पृच्छा।

संज्ञिन्द्रिय-जीवों की भांति वक्तव्यता। असंज्ञी-जीवों की द्वीन्द्रिय-जीवों की भांति वक्तव्यता। नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी-जीवों की सिद्धों की भांति वक्तव्यता।

लब्धि-पद

१३९. भंते! लब्धि कितने प्रकार की प्रज्ञप्त है?

गौतम! लब्धि दस प्रकार की प्रज्ञप्त है, जैसे—१. ज्ञान-लब्धि २. दर्शन-लब्धि ३. चरित्र-लब्धि ४. चरित्राचरित्र-लब्धि ५. दान-लब्धि ६. लाभ-लब्धि ७. भोग-लब्धि ८. उपभोग-लब्धि ९. वीर्य-लब्धि १०. इन्द्रिय-लब्धि।

१४०. भंते! ज्ञान-लब्धि कितने प्रकार की प्रज्ञप्त है?

गौतम! पांच प्रकार की प्रज्ञप्त है, जैसे—आभिनिबोधक-ज्ञान-लब्धि यावत् केवल-ज्ञान-लब्धि।

१४१. भंते! अज्ञान-लब्धि कितने प्रकार की प्रज्ञप्त है?

गौतम! तीन प्रकार की प्रज्ञप्त है, जैसे—मति-अज्ञान-लब्धि, श्रुत-अज्ञान-लब्धि और विभंग-ज्ञान-लब्धि।

१४२. भंते! दर्शन-लब्धि कितने प्रकार की प्रज्ञप्त है?

गौतम! तीन प्रकार की प्रज्ञप्त है, जैसे—सम्यग्-दर्शन-लब्धि, मिथ्या-दर्शन-लब्धि और सम्यग्-मिथ्या-दर्शन-लब्धि।

१४३. भंते! चरित्र-लब्धि कितने प्रकार की प्रज्ञप्त है?

गौतम! वह पांच प्रकार की प्रज्ञप्त है, जैसे—सामायिक-चरित्र-लब्धि, छेदोपस्थापनीय-चरित्र-लब्धि, परिहारविशुद्धि-चरित्र-लब्धि, सूक्ष्मसंपराय-चरित्र-लब्धि, यथाख्यात-चरित्र-लब्धि।

१४४. भंते! चरित्राचरित्र-लब्धि कितने प्रकार की प्रज्ञप्त है?

गौतम! वह एक ही आकार वाली प्रज्ञप्त है। इस प्रकार यावत् उपभोग-लब्धि एक ही आकार वाली प्रज्ञप्त है।

१४५. भंते! वीर्य-लब्धि कितने प्रकार की प्रज्ञप्त है?

गौतम! वह तीन प्रकार की प्रज्ञप्त है, जैसे—बाल-वीर्य-लब्धि, पण्डित-वीर्य-लब्धि और बाल-पण्डित-वीर्य-लब्धि।

१४६. भन्ते! इन्द्रिय-लब्धि कितने प्रकार की प्रज्ञप्त है?

गौतम! वह पांच प्रकार की प्रज्ञप्त है, जैसे—श्रोत्रेन्द्रिय-लब्धि यावत् स्पर्शेन्द्रिय-लब्धि।

ज्ञान-लब्धि की अपेक्षा ज्ञानित्व-अज्ञानित्व-पद

१४७. भंते! ज्ञान-लब्धि वाले जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

गौतम! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं हैं। कुछ दो ज्ञान वाले हैं, इस प्रकार यावत् पांच ज्ञान की भजना है।

१४८. भंते! उस ज्ञान के अलब्धिक ज्ञान-लब्धि से रहित जीव ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

गौतम! वे ज्ञानी नहीं हैं, अज्ञानी हैं। कुछ दो अज्ञान वाले हैं, तीन अज्ञान की भजना है।

१४९. भंते! आभिनिबोधिक-ज्ञान-लब्धि वाले जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

गौतम! ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं हैं। कुछ दो ज्ञान वाले हैं, यावत् चार ज्ञान की भजना है।

१५०. भंते! आभिनिबोधिक-ज्ञान के अलब्धिक-जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

गौतम! वे ज्ञानी भी हैं, अज्ञानी भी हैं। जो ज्ञानी हैं वे नियमतः एक ज्ञान वाले—केवल-ज्ञान वाले हैं। जो अज्ञानी हैं वे कुछ दो अज्ञान वाले हैं। तीन अज्ञान की भजना है। इसी प्रकार श्रुत-ज्ञान-लब्धि वाले जीवों की वक्तव्यता। श्रुत-ज्ञान के अलब्धिक जीवों की वक्तव्यता आभिनिबोधिक-ज्ञान के अलब्धिक-जीवों की भांति ज्ञातव्य है।

१५१. अवधिज्ञान-लब्धि वाले जीवों की पृच्छा।

गौतम! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं हैं। कुछ तीन ज्ञान वाले हैं, कुछ चार ज्ञान वाले हैं। जो तीन ज्ञान वाले हैं वे आभिनिबोधिक-ज्ञान, श्रुत-ज्ञान और अवधि-ज्ञान वाले हैं। जो चार ज्ञान वाले हैं वे आभिनिबोधिक-ज्ञान, श्रुत-ज्ञान, अवधि-ज्ञान और मनःपर्यव-ज्ञान वाले हैं।

१५२. अवधि-ज्ञान के अलब्धिकों की पृच्छा।

गौतम! वे ज्ञानी भी हैं, अज्ञानी भी हैं। इस प्रकार अवधि-ज्ञान को छोड़कर चार ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना है।

१५३. मनःपर्यवज्ञान-लब्धि वालों की पृच्छा।

गौतम! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं हैं। उनमें कुछ तीन ज्ञान वाले हैं, कुछ चार ज्ञान वाले हैं। जो तीन ज्ञान वाले हैं वे आभिनिबोधिक-ज्ञान, श्रुत-ज्ञान और मनःपर्यव-ज्ञान वाले हैं। जो चार ज्ञान वाले हैं वे आभिनिबोधिक-ज्ञान, श्रुत-ज्ञान, अवधि-ज्ञान और मनःपर्यव-ज्ञान वाले हैं।

१५४. मनःपर्यव-ज्ञान के अलब्धिकों की पृच्छा।

गौतम! वे ज्ञानी भी हैं, अज्ञानी भी हैं। मनःपर्यव-ज्ञान को छोड़कर चार ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना है।

१५५. भंते! केवल-ज्ञान-लब्धि वाले जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

गौतम! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं। नियमतः एक ज्ञान—केवल-ज्ञान वाले हैं।

१५६. केवल-ज्ञान के अलब्धिकों की पृच्छा।

गौतम! वे ज्ञानी भी हैं, अज्ञानी भी हैं। केवल-ज्ञान को छोड़कर चार ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना है।

१५७. अज्ञान-लब्धि वालों की पृच्छा।

गौतम! वे ज्ञानी नहीं हैं, अज्ञानी हैं। तीन अज्ञान की भजना है।

१५८. अज्ञान के अलब्धिकों की पृच्छा।

गौतम! ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं हैं। पांच ज्ञान की भजना है। जैसी अज्ञान के लब्धिकों और अलब्धिकों की वक्तव्यता है वैसी ही मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञान के लब्धिकों और

अलब्धिकों की वक्तव्यता ज्ञातव्य है। विभंग-ज्ञान-लब्धि वाले के नियमतः तीन अज्ञान होते हैं। उसके अलब्धिकों के पांच ज्ञान की भजना है, दो अज्ञान नियमतः होते हैं।

दर्शन की अपेक्षा

१५९. भंते! दर्शन-लब्धि वाले जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

गौतम! ज्ञानी भी हैं, अज्ञानी भी हैं। पांच ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना है।

१६०. भंते! दर्शन के अलब्धिक जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

गौतम! उसके अलब्धिक नहीं हैं। सम्यग्-दर्शन-लब्धि वालों के पांच ज्ञान की भजना है। उसके अलब्धिकों के तीन अज्ञान की भजना है।

मिथ्या-दर्शन-लब्धि वालों के तीन अज्ञान की भजना है। उसके अलब्धिकों के पांच ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना है।

सम्यग्मिथ्या-दर्शन-लब्धि वाले और उसके अलब्धिकों की वक्तव्यता मिथ्या-दर्शन-लब्धि वाले और उसके अलब्धिकों की भांति ज्ञातव्य है।

चरित्र की अपेक्षा

१६१. भंते! चरित्र-लब्धि वाले जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

गौतम! पांच ज्ञान की भजना है। उस (चरित्र) के अलब्धिकों के मनःपर्यव-ज्ञान को छोड़कर चार ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना है।

१६२. भंते! सामायिक-चरित्र की लब्धि वाले जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

गौतम! ज्ञानी हैं—केवल-ज्ञान को छोड़कर चार ज्ञान की भजना है। उस (सामायिक-चरित्र) के अलब्धिकों के पांच ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना है। इस प्रकार जैसी सामायिक-चरित्र की लब्धि वाले और अलब्धिकों की वक्तव्यता वैसी ही यावत् यथाख्यात-चरित्र की लब्धिवाले और अलब्धिकों की वक्तव्यता ज्ञातव्य है। केवल इतना विशेष है—यथाख्यात-चरित्र की लब्धि वालों के पांच ज्ञान की भजना है।

चरित्राचरित्र की अपेक्षा

१६३. भंते! चरित्राचरित्र की लब्धि वाले जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

गौतम! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं हैं। उनमें कुछ दो ज्ञान वाले और कुछ तीन ज्ञान वाले हैं। जो दो ज्ञान वाले हैं वे आभिनिबोधिक-ज्ञान और श्रुत-ज्ञान वाले हैं। जो तीन ज्ञान वाले हैं वे आभिनिबोधिक-ज्ञान, श्रुत-ज्ञान और अवधि-ज्ञान वाले हैं।

उस (चरित्राचरित्र) की अलब्धिकों के पांच ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना है।

दान आदि की अपेक्षा

१६४. दान-लब्धि वालों के पांच ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना है।

१६५. दान-लब्धि के अलब्धिकों की पृच्छा।

गौतम! ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं हैं। नियमतः एक ज्ञानी—केवल-ज्ञानी है। इसी प्रकार यावत्

वीर्य के लब्धिकों और अलब्धिकों की वक्तव्यता ज्ञातव्य है।

बाल आदि वीर्य की अपेक्षा

बाल-वीर्य-लब्धि वालों के तीन ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना है। उसके अलब्धिकों के पांच ज्ञान की भजना है। पण्डित-वीर्य-लब्धि वालों के पांच ज्ञान की भजना है। उसके अलब्धिकों के मनःपर्यव-ज्ञान को छोड़कर ज्ञान और अज्ञान की भजना है। बाल-पण्डित-वीर्य-लब्धि वालों के तीन ज्ञान की भजना है। उसके अलब्धिकों के पांच ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना है।

इन्द्रिय की अपेक्षा

१६६. भंते! इन्द्रिय-लब्धि वाले जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

गौतम! चार ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना है।

१६७. इन्द्रिय के अलब्धिकों की पृच्छा।

गौतम! ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं हैं।

नियमतः एक ज्ञान-केवल-ज्ञान वाले हैं।

१६८. श्रोत्रेन्द्रिय-लब्धि वालों की वक्तव्यता इन्द्रिय-लब्धि वालों की भांति ज्ञातव्य है।

१६९. श्रोत्रेन्द्रिय के अलब्धिकों की पृच्छा।

गौतम! वे ज्ञानी भी हैं, अज्ञानी भी हैं। जो ज्ञानी हैं उनमें कुछेक दो ज्ञान वाले हैं, कुछेक एक ज्ञान वाले हैं। जो दो ज्ञान वाले हैं, वे आभिनिबोधिक-ज्ञानी और श्रुत-ज्ञानी हैं। जो एक ज्ञान वाले हैं, वे केवल-ज्ञानी हैं। जो अज्ञानी हैं, वे नियमतः दो अज्ञान वाले हैं, जैसे-मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी। चक्षुरिन्द्रिय और घ्राणेन्द्रिय वाले जीवों के लब्धिकों और अलब्धिकों की वक्तव्यता श्रोत्रेन्द्रिय की भांति वक्तव्य है।

१७०. जिह्वेन्द्रिय-लब्धि वालों के चार ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना है।

१७१. जिह्वेन्द्रिय के अलब्धिकों की पृच्छा।

गौतम! जिह्वेन्द्रिय के अलब्धिक ज्ञानी भी हैं, अज्ञानी भी हैं। जो ज्ञानी हैं, वे नियमतः एक ज्ञान वाले-केवल-ज्ञानी हैं। जो अज्ञानी हैं, वे नियमतः दो अज्ञान वाले हैं, जैसे-मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी। स्पर्शेन्द्रिय के लब्धिकों और अलब्धिकों की वक्तव्यता इन्द्रिय के लब्धिकों और अलब्धिकों के समान है।

जीवों का ज्ञानित्व और अज्ञानित्व-पद

१७२. भंते! साकारोपयुक्त-जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

गौतम! साकारोपयुक्त-जीवों के पांच ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना है।

१७३. भंते! आभिनिबोधिक-ज्ञान-साकारोपयुक्त-जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

गौतम! आभिनिबोधिक-ज्ञान-साकारोपयुक्त-जीवों के चार ज्ञान की भजना है। इसी प्रकार श्रुत-ज्ञान-साकारोपयुक्त-जीवों की वक्तव्यता। अवधि-ज्ञान-साकारोपयुक्त-जीवों की

वक्तव्यता अवधि-ज्ञान-लब्धिकों के समान है। मनःपर्यव-ज्ञान-साकारोपयुक्त-जीवों की वक्तव्यता मनःपर्यव-ज्ञान-लब्धिकों के समान है। केवल-ज्ञान-साकारोपयुक्त-जीवों की वक्तव्यता केवल-ज्ञान-लब्धिकों के समान है।

मति-अज्ञान-साकारोपयुक्त-जीवों के तीन अज्ञान की भजना है।

इसी प्रकार श्रुत-अज्ञान-साकारोपयुक्त-जीवों की वक्तव्यता। विभंग-ज्ञान-साकारोपयुक्त-जीवों के नियमतः तीन अज्ञान होते हैं।

१७४. भंते! अनाकारोपयुक्त-जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

गौतम! अनाकारोपयुक्त-जीवों के पांच ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना है। इसी प्रकार चक्षु-दर्शन-, अचक्षु-दर्शन-अनाकारोपयुक्त-जीवों की वक्तव्यता, इतना विशेष है—उनके चार ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना है।

१७५. अवधि-दर्शन-अनाकारोपयुक्त-जीवों की पृच्छा।

गौतम! अवधि-दर्शन-अनाकारोपयुक्त-जीव ज्ञानी भी हैं, अज्ञानी भी हैं। जो ज्ञानी हैं, उनमें कुछेक तीन ज्ञान वाले हैं और कुछेक चार ज्ञान वाले हैं। जो तीन ज्ञान वाले हैं, वे आभिनिबोधिक-ज्ञानी, श्रुत-ज्ञानी और अवधि-ज्ञानी हैं। जो चार ज्ञान वाले हैं, वे आभिनिबोधिक ज्ञानी यावत् मनः पर्यवज्ञानी हैं। जो ज्ञानी हैं, वे नियमतः तीन अज्ञान वाले हैं, जैसे—मति-अज्ञानी, श्रुत-अज्ञानी, विभंग-ज्ञानी। केवल-दर्शन-अनाकारोपयुक्त जीवों की वक्तव्यता केवल-ज्ञान-लब्धिकों के समान है।

योग की अपेक्षा

१७६. भंते! योग-युक्त-जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

काय-युक्त-जीव की भांति वक्तव्य हैं। इसी प्रकार मन-योगी, वचन-योगी, काय-योगी की वक्तव्यता। अयोगी सिद्ध की भांति वक्तव्य हैं।

लेश्या की अपेक्षा

१७७. भंते! लेश्या-युक्त-जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

काय-युक्त-जीव की भांति वक्तव्यता।

१७८. भंते! कृष्ण-लेश्या वाले जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

इन्द्रिय-युक्त-जीव की भांति वक्तव्यता। इसी प्रकार यावत् पद्म-लेश्या और शुक्ल-लेश्या वाले जीव लेश्या-युक्त-जीव की भांति वक्तव्य हैं। लेश्या-मुक्त-जीव सिद्ध की भांति वक्तव्य हैं।

कषाय की अपेक्षा

१७९. भंते! कषाय-युक्त-जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

इन्द्रिय-युक्त-जीव की भांति वक्तव्यता। इसी प्रकार यावत् लोभ-कषायी वक्तव्य हैं।

१८०. भंते! कषाय-मुक्त-जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

कषाय-मुक्त-जीवों के पांच ज्ञान की भजना है।

वेद की अपेक्षा

१८१. भंते! वेद-युक्त-जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

इन्द्रिय-युक्त-जीव की भांति वक्तव्यता। इसी प्रकार स्त्री-वेद, पुरुष-वेद और नपुंसक-वेद वाले जीवों की वक्तव्यता। वेद-मुक्त-जीव कषाय-मुक्त जीव की भांति वक्तव्य हैं।

आहारक की अपेक्षा

१८२. भंते! आहारक-जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

कषाय-युक्त-जीव की भांति वक्तव्यता। इतना विशेष है—आहारक-जीवों के केवल-ज्ञान भी होता है।

१८३. भंते! अनाहारक-जीव क्या ज्ञानी हैं? अज्ञानी हैं?

अनाहारक-जीवों के मनःपर्यव-ज्ञान को छोड़कर चार ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना है।

ज्ञान का विषय-पद

१८४. भंते? आभिनिबोधिक-ज्ञान का विषय कितना प्रज्ञप्त है?

गौतम! आभिनिबोधिक-ज्ञान का विषय संक्षेप में चार प्रकार का प्रज्ञप्त हैं, जैसे—द्रव्य की दृष्टि से, क्षेत्र की दृष्टि से, काल की दृष्टि से, भाव की दृष्टि से।

द्रव्य की दृष्टि से आभिनिबोधिक-ज्ञानी आदेशतः सब द्रव्यों को जानता, देखता है।

क्षेत्र की दृष्टि से आभिनिबोधिक-ज्ञानी आदेशतः सर्वक्षेत्र को जानता-देखता है।

काल की दृष्टि से आभिनिबोधिक-ज्ञानी आदेशतः सर्वकाल को जानता-देखता है।

भाव की दृष्टि से आभिनिबोधिक-ज्ञानी आदेशतः सब भावों को जानता-देखता है।

१८५. भंते! श्रुत-ज्ञान का विषय कितना प्रज्ञप्त है?

गौतम! श्रुत-ज्ञान का विषय संक्षेप में चार प्रकार का प्रज्ञप्त हैं, जैसे—द्रव्य की दृष्टि से, क्षेत्र की दृष्टि से, काल की दृष्टि से, भाव की दृष्टि से।

द्रव्य की दृष्टि से श्रुत-ज्ञानी उपयुक्त अवस्था में (ज्ञेय के प्रति दत्तचित्त होने पर) सब द्रव्यों को जानता-देखता है।

क्षेत्र की दृष्टि से श्रुत-ज्ञानी उपयुक्त अवस्था में सर्वक्षेत्र को जानता-देखता है।

काल की दृष्टि से श्रुत-ज्ञानी उपयुक्त अवस्था में सर्वकाल को जानता-देखता है।

भाव की दृष्टि से श्रुत-ज्ञानी उपयुक्त अवस्था में सब भावों को जानता-देखता है।

१८६. भंते! अवधि-ज्ञान का विषय कितना प्रज्ञप्त है?

गौतम! अवधि-ज्ञान का विषय संक्षेप में चार प्रकार का प्रज्ञप्त हैं, जैसे—द्रव्य की दृष्टि से, क्षेत्र की दृष्टि से, काल की दृष्टि से, भाव की दृष्टि से।

द्रव्य की दृष्टि से अवधि-ज्ञानी जघन्यतः अनंत रूपी द्रव्यों को जानता-देखता है। उत्कृष्टतः

वह सब रूपी द्रव्यों को जानता-देखता है।

क्षेत्र की दृष्टि से अवधि-ज्ञानी जघन्यतः अंगुल-के-असंख्यातवें-भाग को जानता-देखता है। उत्कृष्टतः वह अलोक में लोक-प्रमाण असंख्यात खण्डों को जानता-देखता है—जान सकता है, देख सकता है।

काल की दृष्टि से अवधि-ज्ञानी जघन्यतः आवलिका-के-असंख्यातवें-भाग को जानता-देखता है। उत्कृष्टतः वह असंख्येय-अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी प्रमाण अतीत- और भविष्य-काल को जानता-देखता है।

भाव की दृष्टि से अवधि-ज्ञानी जघन्यतः अनंत भावों को जानता-देखता है। उत्कृष्टतः भी अनंत भावों को जानता-देखता है, सर्व भावों के अनंतवें भाग को जानता-देखता है।

१८७. भते! मनःपर्यव-ज्ञान का विषय कितना प्रज्ञप्त है?

गौतम! मनःपर्यव-ज्ञान का विषय संक्षेप में चार प्रकार प्रज्ञप्त है, जैसे—द्रव्य की दृष्टि से, क्षेत्र की दृष्टि से, काल की दृष्टि से, भाव की दृष्टि से।

द्रव्य की दृष्टि से ऋजुमति-मनःपर्यव-ज्ञानी मनोवर्गणा के अनंत अनंत-प्रदेशी स्कंधों को जानता-देखता है।

विपुलमति-मनःपर्यव-ज्ञानी उन स्कन्धों को अधिकतर, विपुलतर, विशुद्धतर, उज्ज्वलतर रूप में जानता देखता है।

क्षेत्र की दृष्टि से ऋजुमति-मनःपर्यव-ज्ञानी नीचे की ओर इस रत्नप्रभा-पृथ्वी के ऊर्ध्ववर्ती-क्षुल्लक प्रतर से अधस्तन क्षुल्लक प्रतर तक, ऊपर की ओर ज्योतिष्चक्र के उपरितल तक, तिरछे भाग में मनुष्य-क्षेत्र के भीतर अढ़ाई-द्वीप-समुद्र तक पन्द्रह कर्मभूमियों, तीस अकर्मभूमियों और छप्पन अन्तर्द्वीपों में वर्तमान पर्याप्त-समनस्क-पंचेन्द्रिय-जीवों के मनोगत भावों को जानता-देखता है।

विपुलमति-मनःपर्यव-ज्ञानी उस क्षेत्र में अढ़ाई अंगुल अधिकतर, विपुलतर, विशुद्धतर, उज्ज्वलतर क्षेत्र को जानता-देखता है।

काल की दृष्टि से ऋजुमति-मनःपर्यव-ज्ञानी जघन्यतः पल्योपम-के-असंख्यातवें-भाग अतीत और भविष्य को जानता-देखता है।

विपुलमति-मनःपर्यव-ज्ञानी उस काल-खण्ड को अधिकतर, विपुलतर, विशुद्धतर, उज्ज्वलतर जानता-देखता है।

भाव की दृष्टि से ऋजुमति-मनःपर्यव-ज्ञानी अनंत भावों को जानता-देखता है।

विपुलमति-मनःपर्यव-ज्ञानी उन भावों को अधिकतर, विपुलतर, विशुद्धतर, उज्ज्वलतर जानता-देखता है।

१८८. भते! केवल-ज्ञान का विषय कितना प्रज्ञप्त है?

गौतम! केवलज्ञान का विषय संक्षेप में चार प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—द्रव्य की दृष्टि से, क्षेत्र की दृष्टि से, काल की दृष्टि से, भाव की दृष्टि से।

द्रव्य की दृष्टि से केवल-ज्ञानी सब द्रव्यों को जानता-देखता है।

क्षेत्र की दृष्टि से केवल-ज्ञानी सर्वक्षेत्र को जानता-देखता है।

काल की दृष्टि से केवल-ज्ञानी सर्वकाल को जानता-देखता है।

भाव की दृष्टि से केवल-ज्ञानी सब भावों को जानता-देखता है।

१८९. भंते! मति-अज्ञान का विषय कितना प्रज्ञप्त है?

गौतम! मति-अज्ञान का विषय संक्षेप में चार प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—द्रव्य की दृष्टि से, क्षेत्र की दृष्टि से, काल की दृष्टि से, भाव की दृष्टि से।

द्रव्य की दृष्टि से मति-अज्ञानी मति-अज्ञान के विषयभूत द्रव्यों को जानता-देखता है।

क्षेत्र की दृष्टि से मति-अज्ञानी मति-अज्ञान के विषयभूत क्षेत्र को जानता-देखता है।

काल की दृष्टि से मति-अज्ञानी मति-अज्ञान के विषयभूत काल को जानता-देखता है।

भाव की दृष्टि से मति-अज्ञानी मति-अज्ञान के विषय भूत भावों को जानता-देखता है।

१९०. भंते! श्रुत-अज्ञान का विषय कितना प्रज्ञप्त है?

गौतम! श्रुत-अज्ञान का विषय संक्षेप में चार प्रकार का प्रज्ञप्त हैं, जैसे—द्रव्य की दृष्टि से, क्षेत्र की दृष्टि से, काल की दृष्टि से, भाव की दृष्टि से।

द्रव्य की दृष्टि श्रुत-अज्ञानी श्रुत-अज्ञान के विषयभूत द्रव्यों का आख्यान, प्रज्ञापन और प्ररूपण करता है।

क्षेत्र की दृष्टि से श्रुत-अज्ञानी श्रुत-अज्ञान के विषयभूत क्षेत्र का आख्यान, प्रज्ञापन और प्ररूपण करता है।

काल की दृष्टि से श्रुत-अज्ञानी श्रुत-अज्ञान के विषयभूत काल का आख्यान, प्रज्ञापन और प्ररूपण करता है।

भाव की दृष्टि से श्रुत-अज्ञानी श्रुत-अज्ञान के विषयभूत भावों का आख्यान, प्रज्ञापन और प्ररूपण करता है।

१९१. भंते! विभंग-ज्ञान का विषय कितना प्रज्ञप्त है?

गौतम! विभंग-ज्ञान का विषय संक्षेप में चार प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—द्रव्य की दृष्टि से, क्षेत्र की दृष्टि से, काल की दृष्टि से, भाव की दृष्टि से।

द्रव्य की दृष्टि से विभंग-ज्ञानी विभंग-ज्ञान के विषयभूत द्रव्यों को जानता-देखता है।

क्षेत्र की दृष्टि से विभंग-ज्ञानी विभंग-ज्ञान के विषयभूत क्षेत्र को जानता-देखता है।

काल की दृष्टि से विभंग-ज्ञानी विभंग-ज्ञान के विषयभूत काल को जानता-देखता है।

भाव की दृष्टि से विभंग-ज्ञानी विभंग-ज्ञान के विषयभूत भावों को जानता-देखता है।

ज्ञानी का संस्थिति-पद

१९२. भंते! ज्ञानी ज्ञानी के रूप में कितने काल तक रहता है?

गौतम! ज्ञानी दो प्रकार का प्रज्ञप्त है। जैसे—१. सादि-अपर्यवसित २. सादि- सपर्यवसित। जो सादि-सपर्यवसित है, वह जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कृष्टतः कुछ-अधिक-छासठ-सागरोपम तक ज्ञानी के रूप में रहता है।

१९३. भंते! आभिनिबोधिक-ज्ञानी आभिनिबोधिक-ज्ञानी के रूप में कितने काल तक रहता है?

गौतम! सादि-सपर्यवसित-ज्ञानी की भांति वक्तव्य है।

१९४. इसी प्रकार श्रुत-ज्ञानी की वक्तव्यता।

१९५. इसी प्रकार अवधि-ज्ञानी की वक्तव्यता, इतना विशेष है—उसकी जघन्य स्थिति एक समय की है।

१९६. भंते! मनःपर्यव-ज्ञानी मनःपर्यव-ज्ञानी के रूप में कितने काल तक रहता है?

गौतम! जघन्यतः एक समय, उत्कृष्टतः देशोन-पूर्वकोटि।

१९७. भंते! केवल-ज्ञानी केवल-ज्ञानी के रूप में कितने काल तक रहता है?

गौतम! केवल-ज्ञानी सादि अपर्यवसित होता है।

१९८. भंते! अज्ञानी, मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी की पृच्छा।

गौतम! अज्ञानी, मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी तीन प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—१. अनादि-अपर्यवसित २. अनादि-सपर्यवसित ३. सादि-सपर्यवसित।

जो सादि-सपर्यवसित है, वह जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कृष्टतः अनन्त काल—अनन्त अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी, क्षेत्र की दृष्टि से देशोन-अपाद्ध-पुद्गलपरिवर्त।

१९९. भंते! विभंग-ज्ञानी की पृच्छा।

गौतम! जघन्यतः एक समय, उत्कृष्टतः देशोन-पूर्वकोटि-अधिक-तेतीस-सागरोपम।

२००. भंते! आभिनिबोधिक-ज्ञानी कितने अंतराल के बाद पुनः आभिनिबोधिक-ज्ञानी बनता है?

गौतम! जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कृष्टतः अनन्त-काल यावत् क्षेत्र की दृष्टि से देशोन-अपाद्ध-पुद्गलपरिवर्त।

२०१. श्रुत-ज्ञानी, अवधि-ज्ञानी और मनःपर्यव-ज्ञानी आभिनिबोधिक-ज्ञानी की भांति वक्तव्य हैं।

२०२. भंते! केवल-ज्ञानी की पृच्छा।

गौतम! अंतराल नहीं होता।

२०३. मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी की पृच्छा।

गौतम! जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कृष्टतः कुछ-अधिक-छासठ-सागरोपम।

२०४. विभंगज्ञानी की पृच्छा।

गौतम! जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कृष्टतः वनस्पतिकाल।

ज्ञानी का अल्पबहुत्व-पद

२०५. भंते! इन आभिनिबोधिक-ज्ञानी, श्रुत-ज्ञानी, अवधि-ज्ञानी, मनःपर्यव-ज्ञानी, केवल-ज्ञानी जीवों में कौन किससे अल्प, बहु, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

गौतम! मनःपर्यव-ज्ञानी जीव सबसे अल्प, अवधि-ज्ञानी उनसे असंख्येय-गुण-अधिक, आभिनिबोधिक-ज्ञानी और श्रुत-ज्ञानी दोनों परस्पर तुल्य किंतु अवधि-ज्ञानी से विशेषाधिक, केवल-ज्ञानी उनसे अनन्त-गुण हैं।

२०६. भंते! इन मति-अज्ञानी, श्रुत-अज्ञानी विभंग-ज्ञानी जीवों में कौन किससे अल्प, बहु, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

गौतम! विभंग-ज्ञानी जीव सबसे अल्प हैं। मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी दोनों परस्पर तुल्य किंतु विभंग-ज्ञानी से अनन्त-गुण हैं।

२०७. भंते! इन आभिनिबोधिक-ज्ञानी, श्रुत-ज्ञानी, अवधि-ज्ञानी, मनःपर्यव-ज्ञानी, केवल-ज्ञानी, मति-अज्ञानी, श्रुत-अज्ञानी, विभंग-ज्ञानी जीवों में कौन किससे अल्प, बहु, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

गौतम! मनःपर्यव-ज्ञानी जीव सबसे अल्प, अवधि-ज्ञानी उनसे असंख्येय-गुण अधिक, आभिनिबोधिक-ज्ञानी और श्रुत-ज्ञानी दोनों परस्पर तुल्य किंतु अवधि-ज्ञानी से विशेषाधिक, विभंग-ज्ञानी उनसे असंख्येय-गुण अधिक, केवल-ज्ञानी अनन्त-गुण, मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी दोनों परस्पर तुल्य किंतु उनसे अनन्त-गुण हैं।

ज्ञान-पर्यव-पद

२०८. भंते! आभिनिबोधिक-ज्ञान के पर्यव कितने प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! आभिनिबोधिक-ज्ञान के पर्यव अनन्त प्रज्ञप्त हैं।

२०९. भंते! श्रुत-ज्ञान के पर्यव कितने प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! श्रुत-ज्ञान के पर्यव अनन्त प्रज्ञप्त हैं।

२१०. इसी प्रकार अवधि-ज्ञान, मनःपर्यव-ज्ञान, केवल-ज्ञान तथा मति-अज्ञान और श्रुत-अज्ञान के पर्यव भी अनन्त प्रज्ञप्त हैं।

२११. भंते! विभंग-ज्ञान के पर्यव कितने प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! विभंग-ज्ञान के पर्यव अनन्त प्रज्ञप्त हैं।

ज्ञान-पर्यवों का अल्पबहुत्व-पद

२१२. भंते! इन आभिनिबोधिक-ज्ञान, श्रुत-ज्ञान, अवधि-ज्ञान, मनःपर्यव-ज्ञान और केवल-ज्ञान के पर्यवों में कौन किससे अल्प, बहु, तुल्य अथवा विशेषाधिक है?

गौतम! मनःपर्यव-ज्ञान के पर्यव सबसे अल्प हैं। अवधि-ज्ञान के पर्यव उससे अनन्त-गुण हैं। श्रुत-ज्ञान के पर्यव उससे अनन्त-गुण, आभिनिबोधिक-ज्ञान के पर्यव उनसे अनन्त-गुण, केवल-ज्ञान के पर्यव उनसे अनन्त-गुण हैं।

२१३. भंते! इन मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और विभंग-ज्ञान के पर्यवों में कौन किससे अल्प, बहु, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

गौतम! विभंग-ज्ञान के पर्यव सबसे अल्प हैं। श्रुत-अज्ञान के पर्यव उनसे अनंत-गुण, मति-अज्ञान के पर्यव उनसे अनंत-गुण हैं।

२१४. भंते! इन मति-ज्ञान-पर्यवों यावत् केवल-ज्ञान के पर्यवों तथा मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और विभंग-ज्ञान के पर्यवों में कौन किससे अल्प बहु, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

गौतम! मनःपर्यव-ज्ञान के पर्यव सबसे अल्प हैं। विभंग-ज्ञान के पर्यव उनसे अनंत-गुण, अवधि-ज्ञान के पर्यव उनसे अनन्त-गुण, श्रुत-अज्ञान के पर्यव उनसे अनंत-गुण, श्रुत-ज्ञान के पर्यव उनसे विशेषाधिक, मति-अज्ञान के पर्यव उनसे अनंत-गुण, मति-ज्ञान के पर्यव उनसे विशेषाधिक, केवल-ज्ञान के पर्यव उनसे अनन्त-गुण हैं।

२१५. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

तीसरा उद्देशक

वनस्पति-पद

२१६. भंते! वृक्ष कितने प्रकार के प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! वृक्ष तीन प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—संख्येय जीव वाले, असंख्येय जीव वाले, अनंत जीव वाले।

२१७. भंते! संख्येय जीव वाले वृक्ष कौनसे हैं?

गौतम! संख्येय जीव वाले वृक्ष अनेक प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—ताल, तमाल, अरणी, तेतली, साल, साल-कल्याण, चीड़, जावित्री, केवड़ा, कंदली तथा भोजपत्र, अखरोट, हींग का वृक्ष, लवंग-वृक्ष, सुपारी, खजूर, नारियल। ये तथा इस प्रकार के अन्य संख्येय-जीविक वृक्ष हैं।

२१८. असंख्येय जीव वाले वृक्ष कौनसे हैं?

असंख्येय जीव वाले वृक्ष दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—एक अस्थि वाले, बहुबीज वाले।

२१९. एक अस्थि वाले वृक्ष कौनसे हैं?

एक अस्थि वाले वृक्ष अनेक प्रकार के प्रज्ञप्त हैं। जैसे—नीम, आम, जामुन, कोसम, साल, ढेरा अंकोल, पीलू, लिसोड़ा, सलइ, शाल्मली, काली तुलसी, मौलसरी ढाक, कंटक करंज, जिया-पोता, रीठा, बेहड़ा, हरड़, भिलावा, वायविडंग, गंधीरी, धाय, चिरोँजी, पोई, महानीम—वकायन, निर्मली, सीसम, विजयसार, जायफल, सुलतान, चंपा, सेहुंड कायफल, अशोक।

ये तथा इस प्रकार के अन्य असंख्येय-जीविक वृक्ष एक अस्थिवाले हैं। इनके मूल भी असंख्येय जीव वाले हैं। स्कंध, त्वचा, शाखा और प्रवाल भी असंख्येय जीव वाले हैं। पत्र प्रत्येक जीव वाले हैं। पुष्प अनेक जीव वाले हैं। फल एक अस्थिवाले हैं। ये हैं—एक अस्थि वाले वृक्ष।

२२०. बहुबीज वाले वृक्ष कौनसे हैं?

बहुबीज वाले वृक्ष अनेक प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—हडसंधारी-हडजोड़ी, तेंदु-आबनूस, कैथ, आमड़ा, विजौरा, बेल, आंवला, कटहल्ल, अनार, पीपल, गूलर, बड़, खेजड़ी, तून, पीपर, शतावरी, पाकर, कटूमर, धनिया, धधर बेल, तिलिया, बडहर, गुण्डतृण, सिरस, छतिवन, कैथ, लोध, धौं, चंदन, अर्जुन, नीम, धाराकदम्ब, कुड़ा-कदम।

ये तथा इस प्रकार के अन्य असंख्येय-जीविक बहुबीज वाले हैं। इनके मूल भी असंख्येय जीव वाले हैं। कंद, स्कंध, त्वचा, शाखा और प्रवाल भी असंख्येय जीव वाले हैं। पत्र प्रत्येक जीव वाले हैं। पुष्प अनेक जीव वाले हैं। फल बहुबीज वाले हैं। ये वृक्ष बहुबीज वाले जीव हैं। ये हैं असंख्येय जीव वाले वृक्ष।

२२१. अनंत जीव वाले वृक्ष कौनसे हैं?

अनंत जीव वाले वृक्ष अनेक प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—आलू, मूली, अदरक, इसी प्रकार सातवें शतक (भगवती, ७/६६) में यावत् थोहर, काली मुसली। ये तथा इस प्रकार के अन्य अनंत जीव वाले वृक्ष हैं। ये हैं अनंत जीव वाले वृक्ष।

जीव-प्रदेशों का अन्तर-पद

२२२. भंते! कछुआ, कच्छुए की आवलिका, गोह, गोह की आवलिका, बैल, बैल की आवलिका, मनुष्य, मनुष्य की आवलिका, भैंसा, भैंसे की आवलिका—इन जीवों के शरीर के दो, तीन अथवा संख्येय खण्डों में छिन्न हो जाने पर जो अंतराल होता है, क्या वह उन जीव-प्रदेशों से स्पृष्ट होता है?

हां, स्पृष्ट होता है।

२२३. भंते! कोई पुरुष जीव के छिन्न अवयवों के अंतराल का हाथ, पैर अथवा अंगुली से तथा शलाका, काष्ठ अथवा खपाची से स्पर्श, संस्पर्श, आलेखन, विलेखन करता है अथवा किसी अन्य तीखे शस्त्र से उसका आच्छेदन, विच्छेदन करता है अथवा अग्नि से उसको जलाता है। क्या ऐसा करता हुआ वह उन जीव-प्रदेशों के लिए किञ्चित् आबाधा अथवा विशिष्ट बाधा उत्पन्न करता है अथवा उनका छविच्छेद करता है?

यह अर्थ संगत नहीं है, उस अन्तर में शस्त्र का संक्रमण नहीं होता।

चरम-अचरम-पद

२२४. भंते! पृथ्वियां कितनी प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! पृथ्वियां आठ प्रज्ञप्त हैं जैसे—रत्नप्रभा यावत् अधःसप्तमी और इषत्-प्राग्भारा।

२२५. भंते! यह रत्नप्रभा-पृथ्वी क्या चरम है? अथवा अचरम है?

यहां पण्णवणा का चरम-पद निरवशेष रूप में वक्तव्य है यावत्—

२२६. भंते! वैमानिक-देव स्पर्श-चरम से क्या चरम हैं अथवा अचरम हैं?

गौतम! चरम भी हैं, अचरम भी हैं।

२२७. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

चौथा उद्देशक

क्रिया-पद

२२८. राजगृह नगर में समवसरण यावत् गौतम ने इस प्रकार कहा—भंते! क्रियाएं कितनी प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! क्रियाएं पांच प्रज्ञप्त हैं, जैसे—कायिकी, आधिकरणिकी, प्रादोषिकी, पारितापनिकी, प्राणातिपात-क्रिया—इस प्रकार पण्णावणा का क्रिया-पद (पद २२) निरवशेष रूप में वक्तव्य है। यावत् मिथ्यादर्शन-प्रत्ययिकी क्रिया सबसे अल्प है। अप्रत्याख्यान-क्रिया उससे विशेषाधिक है। पारिग्रहिकी क्रिया उससे विशेषाधिक है। आरंभिकी क्रिया उससे विशेषाधिक है। मायाप्रत्ययिकी क्रिया उससे विशेषाधिक है।

२२९. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

पांचवां उद्देशक

आजीवक के संदर्भ म श्रमणोपासक-पद

२३०. राजगृह नगर में समवसरण यावत् गौतम ने इस प्रकार कहा—भंते! आजीवकों ने भगवान् स्थविरो से इस प्रकार कहा—

भंते! कोई श्रमणोपासक श्रमणों के उपाश्रय में आसीन होकर सामायिक कर रहा है। उस समय कोई पुरुष उसके भाण्ड, वस्त्र आदि वस्तु का अपहरण कर लेता है, भंते! सामायिक पूर्ण होने के पश्चात् श्रमणोपासक उस भाण्ड की अनुगवेषणा कर रहा है तो क्या अपने भाण्ड की अनुगवेषणा कर रहा है अथवा पराए भाण्ड की अनुगवेषणा कर रहा है?

गौतम! वह अपने भांड की अनुगवेषणा करता है, पराए भांड की अनुगवेषणा नहीं करता।

२३१. भंते! श्रमणोपासक शीलव्रत, गुण-विरमण, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास की आराधना करता है। क्या उसका भाण्ड अभाण्ड हो जाता है, पराया हो जाता है?

हां, उसका भाण्ड अभाण्ड बन जाता है।

२३२. भंते! यह कैसे कहा जा सकता है—श्रमणोपासक अपने भाण्ड की अनुगवेषणा करता है, पराए भाण्ड की अनुगवेषणा नहीं करता?

गौतम! उसका ऐसा संकल्प होता है—हिरण्य मेरा नहीं है, सुवर्ण मेरा नहीं है, कांस्य मेरा नहीं है, दूष्य (वस्त्र) मेरा नहीं है, विपुल धन, सोना, रत्न, मणि, मोती, शंख, मैनसिन, प्रवाल, रक्त-रत्न आदि प्रवर सार-वर्ण का वैभव मेरा नहीं है, फिर भी उसका ममत्व भाव अपरिज्ञात होता है, प्रत्याख्यात नहीं होता। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—श्रमणोपासक अपने भाण्ड की अनुगवेषणा करता है, पराए भाण्ड की अनुगवेषणा नहीं करता।

२३३. भंते! कोई श्रमणोपासक श्रमणों के उपाश्रय में आसीन होकर सामायिक कर रहा है। उस समय कोई पुरुष उसको जाया (भार्या) का सेवन करता है? तो क्या वह उसकी जाया

का सेवन करता है। अथवा अजाया (अभार्या) का सेवन करता है?

गौतम! वह श्रमणोपासक की जाया का सेवन करता है, अजाया का सेवन नहीं करता।

२३४. भंते! वह श्रमणोपासक शीलव्रत, गुण-विरमण, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास की आराधना करता है, क्या उसकी जाया अजाया हो जाती है?

हां, उसकी जाया अजाया हो जाती है।

२३५. भंते! यह कैसे कहा जा सकता है—

कोई पुरुष श्रमणोपासक की जाया का सेवन करता है, अजाया का सेवन नहीं करता?

गौतम! उसका ऐसा संकल्प होता है—माता मेरी नहीं है, पिता मेरा नहीं है, भाई मेरा नहीं है, बहिन मेरी नहीं है, भार्या मेरी नहीं है, पुत्र मेरे नहीं हैं, पुत्री मेरी नहीं है, वधू मेरी नहीं है, फिर भी उसका प्रेयस्-बंधन विच्छिन्न नहीं होता।

गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—कोई पुरुष श्रमणोपासक की जाया का सेवन करता है, अजाया का सेवन नहीं करता।

२३६. भंते! श्रमणोपासक के स्थूल प्राणातिपात का पहले प्रत्याख्यान नहीं होता। भंते! फिर वह उसका प्रत्याख्यान करता हुआ क्या करता है?

गौतम! वह अतीत का प्रतिक्रमण, वर्तमान का संवरण और अनगत का प्रत्याख्यान करता है।

२३७. अतीत का प्रतिक्रमण करता हुआ क्या १. वह तीन योग का तीन करण से प्रतिक्रमण करता है? २. तीन योग का दो करण से प्रतिक्रमण करता है? ३. तीन योग का एक करण से प्रतिक्रमण करता है? ४. दो योग का तीन करण से प्रतिक्रमण करता है? ५. दो योग का दो करण से प्रतिक्रमण करता है? ६. दो योग का एक करण से प्रतिक्रमण करता है? ७. एक योग का तीन करण से प्रतिक्रमण करता है? ८. एक योग का दो करण से प्रतिक्रमण करता है? ९. एक योग का एक करण से प्रतिक्रमण करता है?

गौतम! तीन योग का तीन करण से प्रतिक्रमण करता है, तीन योग का दो करण से प्रतिक्रमण करता है, इस प्रकार यावत् एक योग का एक करण से प्रतिक्रमण करता है। १. तीन योग का तीन करण से प्रतिक्रमण करने वाला न करता है, न करवाता है, न करने वाले का अनुमोदन करता है मन से, वचन से काया से २. तीन योग का दो करण से प्रतिक्रमण करने वाला न करता है, न करवाता है, न करने वाले का अनुमोदन करता है मन से, वचन से ३. अथवा न करता है, न करवाता है, न करने वाले का अनुमोदन करता है मन से, काया से ४. अथवा न करता है, न करवाता है, न करने वाले का अनुमोदन करता है वचन से, काया से ५. तीन योग का एक करण से प्रतिक्रमण करने वाला न करता है, न करवाता है, न करने वाले का अनुमोदन करता है मन से ६. अथवा न करता है, न करवाता है, न करने वाले का अनुमोदन करता है वचन से ७. अथवा न करता है, न करवाता है, न करने वाले का अनुमोदन करता है काया से ८. दो योग का तीन करण से प्रतिक्रमण करने वाला न करता है, न करवाता है मन से, वचन से, काया से ९. अथवा न करता है, न करने वाले का अनुमोदन

करता है मन से, वचन से, काया से १०. अथवा न करवाता है, न करने वाले का अनुमोदन करता है मन से, वचन से, काया से ११. दो योग का दो करण से प्रतिक्रमण करने वाला न करता है, न करवाता है मन से, वचन से १२. अथवा न करता है न करवाता है मन से, काया से १३. अथवा न करता है न करवाता है वचन से, काया से १४. अथवा न करता है, न करने वाले का अनुमोदन करता है मन से, वचन से १५. अथवा न करता है, न करने वाले का अनुमोदन करता है मन से, काया से १६. अथवा न करता है, न करने वाले का अनुमोदन करता है वचन से, काया से १७. अथवा न करवाता है, न करने वाले का अनुमोदन करता है मन से, वचन से १८. अथवा न करवाता है, न करने वाले का अनुमोदन करता है, मन से, काया से १९. अथवा न करवाता है, न करने वाले का अनुमोदन करता है वचन से, काया से २०. दो योग एक करण से प्रतिक्रमण करने वाला न करता है, न करवाता है मन से २१. अथवा न करता है, न करवाता है वचन से २२. अथवा न करता है, न करवाता है काया से। २३. अथवा न करता है, न करने वाले का अनुमोदन करता है मन से २४. अथवा न करता है, न करने वाले का अनुमोदन करता है वचन से २५. अथवा न करता है, न करने वाले का अनुमोदन करता है काया से २६. अथवा न करवाता है, न करने वाले का अनुमोदन करता है मन से २७. अथवा न करवाता है, न करने वाले का अनुमोदन करता है वचन से, २८. अथवा न करता है, न करने वाले का अनुमोदन करता है काया से २९. एक योग तीन करण से प्रतिक्रमण करने वाला न करता है मन से, वचन से, काया से, ३०. अथवा न करवाता है मन से, वचन से, काया से, ३१. अथवा न करने वाले का अनुमोदन करता है मन से, वचन से, काया से, ३२. एक योग का दो करण से प्रतिक्रमण करने वाला न करता है मन से, वचन से ३३. अथवा न करता है मन से काया से ३४. अथवा न करता है वचन से, काया से, ३५. अथवा न करवाता है मन से, वचन से ३६. अथवा न करवाता है मन से, काया से ३७. अथवा न करवाता है वचन से, काया से ३८. अथवा न करने वाले का अनुमोदन करता है मन से, वचन से ३९. अथवा न करने वाले का अनुमोदन करता है मन से, काया से ४०. अथवा न करने वाले का अनुमोदन करता है वचन से, काया से ४१. एक योग का एक करण से प्रतिक्रमण करने वाला न करता है मन से ४२. अथवा न करता है वचन से ४३. अथवा न करता है काया से ४४. अथवा न करवाता है मन से ४५. अथवा न करवाता है वचन से ४६. अथवा न करवाता है काया से ४७. अथवा न करने वाले का अनुमोदन करता है मन से ४८. अथवा न करने वाले का अनुमोदन करता है वचन से ४९. अथवा न करने वाले का अनुमोदन करता है काया से।

२३८. वर्तमान का संवरण करने वाला क्या तीन योग का तीन करण से संवरण करता है? जैसे प्रतिक्रमण करने वाले के उनपचास भंग कहे गए हैं उसी प्रकार संवरण करने वाले के उनपचास भंग वक्तव्य हैं।

२३९. अनागत का प्रत्याख्यान करने वाला क्या तीन योग का तीन करण से प्रत्याख्यान करता है?

इस प्रकार उनपचास भंग वक्तव्य हैं यावत् अथवा न करने वाले का अनुमोदन करता है काया से।

२४०. भन्ते! श्रमणोपासक के स्थूल मृषावाद का पहले प्रत्याख्यान नहीं होता। भन्ते! फिर वह उसका प्रत्याख्यान करता हुआ क्या करता है?

जैसे प्राणातिपात के एक सौ सैंतालीस भंग कहे गए हैं वैसे ही मृषावाद के भी एक सौ सैंतालीस भंग वक्तव्य हैं। इसी प्रकार स्थूल अदत्तादान, स्थूल मैथुन और स्थूल परिग्रह की वक्तव्यता, यावत् अथवा न करने वाले का अनुमोदन करता है काया से।

श्रमणोपासक ऐसे होते हैं, उक्त विधि से प्रतिक्रमण, संवर और प्रत्याख्यान करने वाले होते हैं। आजीवक के उपासक ऐसे नहीं होते।

२४१. आजीवक-समय का यह अर्थ प्रतिपाद्य है—सब प्राणी सजीव का परिभोग करने वाले हैं इसलिए वे जीवों को हनन, छेदन, भेदन, लोपन, विलोपन और प्राण वियोजन कर आहार करते हैं।

२४२. आजीवक-समय में बारह आजीवकोपासक हैं, जैसे—१. ताल, २. ताल प्रलंब ३. उद्धिध ४. संविध ५. अपविध ६. उदक ७. नामोदक ८. नर्मोदक ९. अनुपालक १०. शंखपालक ११. अयंपुल १२. कायरक—ये बारह आजीवकोपासक अर्हत् को अपना देवता मानते हैं, माता-पिता की शुश्रूषा करने वाले हैं, पांच फलों का परित्याग करने वाले हैं, (जैसे—उदुम्बर, वट, पीपल, अंजीर, पाकर) प्याज, लहसुन, कंद और मूल का वर्जन करने वाले हैं, नपुंसक बनाए बिना, नाक का छेदन किए बिना, बैलों से खेत जोत कर त्रस जीवों की हिंसा न करते हुए कृषि द्वारा अपनी आजीविका चलाते हैं।

ये आजीविकोपासक भी इस प्रकार का जीवन जीना चाहते हैं तो ये जो श्रमणोपासक होते हैं, उनका कहना ही क्या? उन श्रमणोपासकों के लिए इन पन्द्रह कर्मादानों का आसेवन स्वयं करना, दूसरों से करवाना और करने वालों का अनुमोदन करना—करणीय नहीं है, (पन्द्रह कर्मादान) जैसे—अंगार-कर्म, वन-कर्म, शकट-कर्म, भाटक-कर्म, स्फोटन-कर्म, दंत-वाणिज्य, लाक्षा-वाणिज्य, केश-वाणिज्य, रस-वाणिज्य, विष-वाणिज्य, यंत्र-पीलन-कर्म, निर्लाछन-कर्म, दवाग्निदापन, सर-द्रह-तडाग-परिशोषण, असती-पोषण।

ये श्रमणोपासक शुक्ल, शुक्ल अभिजाति वाले होकर काल-मास में काल कर किसी देवलोक में देव-रूप में उपपन्न होते हैं।

२४३. भन्ते! देवलोक कितने प्रकार के प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! देवलोक चार प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—भवनवासी, वाणमंतर, ज्योतिष्क, वैमानिक।

२४४. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है।

छट्टा उद्देशक

श्रमणोपासक-कृत दान का परिणाम-पद

२४५. भन्ते! तथारूप श्रमण, माहन को प्रासुक एषणीय अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य से

प्रतिलाभित करने वाले श्रमणोपासक के क्या होता है—उसे क्या फल मिलता है?

गौतम! उसके एकान्ततः निर्जरा होती है, पाप-कर्म का बंध नहीं होता।

२४६. भन्ते! तथारूप श्रमण, माहन को अप्रासुक अनेषणीय अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य से प्रतिलाभित करने वाले श्रमणोपासक के क्या होता है—उसे क्या फल मिलता है?

गौतम! उसे बहुतर निर्जरा होती है, अल्पतर पाप-कर्म का बंध होता है।

२४७. भन्ते! तथारूप असंयत, अविरत, अप्रतिहत, अप्रत्याख्यातपापकर्म वाले व्यक्ति को प्रासुक अथवा अप्रासुक एषणीय अथवा अनेषणीय अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य से प्रतिलाभित करने वाले श्रमणोपासक के क्या होता है—उसे क्या फल मिलता है?

गौतम! उसके एकान्ततः पाप-कर्म का बंध होता है, कोई निर्जरा नहीं होती।

उपनिमंत्रित-पिण्डादि परिभोग-विधि-पद

२४८. निर्ग्रन्थ भिक्षा के लिए गृहपति के कुल में अनुप्रवेश करता है, उसे कोई गृहपति दो पिण्डों का उपनिमंत्रण देता है—आयुष्मन्! एक पिण्ड आप खा लेना और दूसरा पिण्ड स्थविरों को दे देना। वह निर्ग्रन्थ उन दोनों पिण्डों को ग्रहण कर ले फिर स्थविरों की अनुगवेषणा करे। अनुगवेषणा करता हुआ वह जहां स्थविरों को देखे वहीं एक पिण्ड उन्हें दे दे। अनुगवेषणा करने पर भी स्थविर दिखाई न दे तो उस दूसरे पिण्ड को न स्वयं खाए, न किसी अन्य को दे, एकान्त, अनापात, अचित्त, बहुप्रासुक स्थण्डिल-भूमि का प्रतिलेखन और प्रमार्जन कर उस पिण्ड का वहां परिष्ठापन कर दे।

२४९. निर्ग्रन्थ भिक्षा के लिए गृहपति के कुल में अनुप्रवेश करता है, उसे कोई गृहपति तीन पिण्डों का उपनिमंत्रण देता है—आयुष्मन्! एक पिण्ड आप खा लेना और दो पिण्ड स्थविरों को दे देना। वह निर्ग्रन्थ उन तीनों पिण्डों को ग्रहण कर ले फिर स्थविरों की अनुगवेषणा करे। अनुगवेषणा करता हुआ वह जहां स्थविरों को देखे वहीं दो पिण्ड उन्हें दे दे। अनुगवेषणा करने पर भी स्थविर दिखाई न दे, तो उन दो पिण्डों को न स्वयं खाए, न किसी अन्य को दे एकान्त, अनापात, अचित्त, बहुप्रासुक स्थण्डिल-भूमि का प्रतिलेखन और प्रमार्जन कर उन पिण्डों का वहां परिष्ठापन कर दे। इस प्रकार यावत् कोई गृहपति दस पिण्डों का उपनिमंत्रण देता है—जैसे आयुष्मान्! एक आप खा लेना और नौ स्थविरों को दे देना। शेष पूर्ववत् वक्तव्य है यावत् परिष्ठापन कर दे।

२५०. निर्ग्रन्थ भिक्षा के लिए गृहपति के कुल में अनुप्रवेश करता है, उसे कोई गृहपति दो पात्रों का उपनिमंत्रण देता है—आयुष्मन्! एक पात्र का आप परिभोग कर लेना और दूसरा स्थविरों को दे देना। वह निर्ग्रन्थ उन दोनों पात्रों को ग्रहण कर ले फिर स्थविरों की अनुगवेषणा करे। अनुगवेषणा करता हुआ वह जहां स्थविरों को देखे, वहीं एक पात्र उन्हें दे दे। अनुगवेषणा करने पर भी स्थविर दिखाई न दे तो उस दूसरे पात्र का न स्वयं परिभोग करे, न किसी अन्य को दे, एकान्त, अनापात, अचित्त, बहुप्रासुक स्थण्डिल-भूमि का प्रतिलेखन और प्रमार्जन कर उस पात्र का वहां परिष्ठापन कर दे। इसी प्रकार यावत् दस पात्रों का। जैसे पात्र की वक्तव्यता कही गई, वैसे ही गोच्छग, रजोहरण, चुल्लपट्टक, कंबल, यष्टि, संस्तारक की

वक्तव्यता कथनीय है यावत् दस संस्तरकों का उपनिमंत्रण देता है यावत् उनका परिष्ठापन कर दे।

आलोचनाभिमुख का आराधक-पद

२५१. निर्ग्रन्थ ने भिक्षा के लिए गृहपति के कुल में प्रवेश कर किसी अकृत्य स्थान का प्रतिसेवन कर लिया, उसके मन में ऐसा संकल्प हुआ—मैं यहीं इस अकृत्य स्थान की आलोचना करूँ, प्रतिक्रमण करूँ, निंदा करूँ, गर्हा करूँ, विवर्तन करूँ, विशोधन करूँ, पुनः न करने के लिए अभ्युत्थान करूँ, यथायोग्य प्रायश्चित्त रूप तपःकर्म स्वीकार करूँ, तत्पश्चात् स्थविरो के पास जाकर आलोचना करूँगा यावत् तपःकर्म स्वीकार करूँगा।

१. उसने आलोचना के संकल्प के साथ प्रस्थान किया, अभी स्थविरो के पास पहुंचा नहीं, उससे पहले ही स्थविर अमुख (बोलने में असमर्थ) हो गए। भंते! इस अवस्था में क्या वह आराधक है अथवा विराधक?

गौतम! वह आराधक है, विराधक नहीं।

२. उसने आलोचना के संकल्प के साथ प्रस्थान किया, अभी स्थविरो के पास पहुंचा नहीं, उससे पहले ही स्वयं अमुख (बोलने में असमर्थ) हो गया। भंते! इस अवस्था में क्या वह आराधक है अथवा विराधक?

गौतम! वह आराधक है, विराधक नहीं।

३. उसने आलोचना के संकल्प के साथ प्रस्थान किया, अभी स्थविरो के पास पहुंचा नहीं उससे पहले ही स्थविर काल कर गए। भंते! इस अवस्था में क्या वह आराधक है अथवा विराधक?

गौतम! वह आराधक है, विराधक नहीं।

४. उसने आलोचना के संकल्प के साथ प्रस्थान किया, अभी स्थविरो के पास पहुंचा नहीं, उससे पहले ही स्वयं काल कर गया। भंते! इस अवस्था में क्या वह आराधक है अथवा विराधक?

गौतम! वह आराधक है, विराधक नहीं।

५. उसने आलोचना के संकल्प के साथ प्रस्थान किया, वह स्थविरो के पास पहुंच गया, उस समय स्थविर अमुख हो गए। भंते! इस अवस्था में क्या वह आराधक है अथवा विराधक?

गौतम! वह आराधक है, विराधक नहीं।

६. उसने आलोचना के संकल्प के साथ प्रस्थान किया, वह स्थविरो के पास पहुंच गया, उस समय स्वयं अमुख हो गया। भंते! इस अवस्था में क्या वह आराधक है अथवा विराधक?

गौतम! वह आराधक है, विराधक नहीं।

७. उसने आलोचना के संकल्प के साथ प्रस्थान किया, वह स्थविरो के पास पहुंच गया, उस समय स्थविर काल कर गए। भंते! इस अवस्था में क्या वह आराधक है अथवा विराधक?

गौतम! वह आराधक है, विराधक नहीं।

८. उसने आलोचना के संकल्प के साथ प्रस्थान किया, वह स्थविरों के पास पहुंच गया, उस समय वह स्वयं काल कर गया। भंते! इस अवस्था में क्या वह आराधक है अथवा विराधक?

गौतम! वह आराधक है, विराधक नहीं।

२५२. निर्ग्रन्थ ने बाह्य विचारभूमि (शौच भूमि) अथवा विहारभूमि के लिए निष्क्रमण कर किसी अकृत्यस्थान का प्रतिसेवन कर लिया, उसके मन में ऐसा संकल्प हुआ—मैं यहीं इस अकृत्यस्थान की आलोचना करूं यहां भी पूर्ववत् आठ आलापक वक्तव्य है यावत् विराधक नहीं।

२५३. निर्ग्रन्थ ने ग्रामानुग्राम विहार करते हुए किसी अकृत्यस्थान का प्रतिसेवन कर लिया, उसके मन में ऐसा संकल्प हुआ—मैं यहीं इस अकृत्यस्थान की आलोचना करूं, यहां भी पूर्ववत् आठ आलापक वक्तव्य हैं यावत् विराधक नहीं।

२५४. निर्ग्रन्थिनी ने भिक्षा के लिए गृहपति के कुल में प्रवेश कर किसी अकृत्यस्थान का प्रतिसेवन कर लिया, उसके मन में ऐसा संकल्प हुआ—मैं यहीं इस अकृत्यस्थान की आलोचना करूं यावत् तपःकर्म स्वीकार करूं, तत्पश्चात् प्रवर्तिनी के पास जाकर आलोचना करूंगी यावत् तपःकर्म स्वीकार करूंगी।

उसने आलोचना के संकल्प के साथ प्रस्थान किया। अभी प्रवर्तिनी के पास पहुंची नहीं, उससे पहले ही प्रवर्तिनी अमुख (बोलने में असमर्थ) हो गई। भंते! इस अवस्था में क्या वह आराधिका है अथवा विराधिका?

गौतम! वह आराधिका है, विराधिका नहीं। उसने आलोचना के संकल्प के साथ प्रस्थान किया, जैसे निर्ग्रन्थ के तीन गमक कहे गए हैं वैसे ही निर्ग्रन्थिनी के तीन आलापक वक्तव्य हैं यावत् आराधिका है, विराधिका नहीं।

२५५. भन्ते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—वह आराधक है, विराधक नहीं?

गौतम! जैसे कोई पुरुष भेड़ के लोम, हाथी के लोम, शणक के सूत्र, कपास के धागे, तृण के अग्रभाग को दो तीन अथवा संख्येय खण्डों में छिन्न कर अग्नि में डालता है।

गौतम! क्या छिद्यमान को छिन्न-प्रक्षिप्यमान को प्रक्षिप्त और दह्यमान को दग्ध कहा जा सकता है?

हां भगवन्! छिद्यमान को छिन्न, प्रक्षिप्यमान को प्रक्षिप्त और दह्यमान को दग्ध कहा जा सकता है।

जैसे कोई पुरुष अभिनव धौत और अभी-अभी वस्त्र-निर्माण-तंत्र से निकले हुए कपड़े को मंजिष्ठा-द्रोणी (रंगने के पात्र) में डालता है। गौतम! क्या उत्क्षिप्यमान को उत्क्षिप्त, प्रक्षिप्यमान को प्रक्षिप्त और रज्यमान को रक्त कहा जा सकता है?

हां, भगवन्! उत्क्षिप्यमान को उत्क्षिप्त, प्रक्षिप्यमान को प्रक्षिप्त और रज्यमान को रक्त कहा जा सकता है।

गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—जो आराधना के लिए कृतसंकल्प है, वह आराधक है, विराधक नहीं।

ज्योति-ज्वलन-पद

२५६. भन्ते! प्रदीप जलता है उस समय क्या प्रदीप जलता है? दीपयष्टि जलती है? बाती जलती है? तेल जलता है? ढक्कन जलता है? ज्योति जलती है?

गौतम! न प्रदीप जलता है, न दीपयष्टि जलती है, न बाती जलती है, न तेल जलता है, न ढक्कन जलता है, ज्योति जलती है।

२५७. भन्ते! घर जलता है उस समय क्या घर जलता है? भीत जलती है? टाटी जलती है? खंभा जलता है? खंभे के ऊपर का काठ जलता है? बांस जलता है? भीत को टिकाने वाला खंभा जलता है? बलका जलती है? बांस की खपाचियां जलती हैं? दर्भपटल जलता है? ज्योति जलती है?

गौतम! न घर जलता है, न भीत जलती है यावत् न दर्भपटल जलता है, ज्योति जलती है।

क्रिया-पद

२५८. भन्ते! जीव औदारिक-शरीर से कितनी क्रिया वाला है?

गौतम! स्यात् तीन क्रिया वाला, स्यात् चार क्रिया वाला, स्यात् पांच क्रिया वाला, स्यात् अक्रिय—क्रिया रहित है।

२५९. भन्ते! नैरयिक औदारिक-शरीर से कितनी क्रिया वाला है?

गौतम! स्यात् तीन क्रिया वाला, स्यात् चार क्रिया वाला, स्यात् पांच क्रिया वाला।

२६०. भन्ते! असुरकुमार औदारिक-शरीर से कितनी क्रिया वाला है?

नैरयिक की भांति वक्तव्यता, इसी प्रकार यावत् वैमानिक की वक्तव्यता, इतना विशेष है—मनुष्य जीव की भांति वक्तव्य है।

२६१. भन्ते! जीव औदारिक-शरीरों से कितनी क्रिया वाला है?

गौतम! स्यात् तीन क्रिया वाला यावत् स्यात् अक्रिय।

२६२. भन्ते! नैरयिक औदारिक-शरीरों से कितनी क्रिया वाला है?

यह प्रथम दण्डक (नैरयिक सू. २५८) की भांति वक्तव्य है। यावत् वैमानिक, इतना विशेष है—मनुष्य जीव की भांति वक्तव्य है।

२६३. भन्ते! जीव औदारिक-शरीर से कितनी क्रिया वाले हैं?

गौतम! स्यात् तीन क्रिया वाले यावत् अक्रिय हैं।

२६४. भन्ते! नैरयिक औदारिक-शरीर से कितनी क्रिया वाले हैं?

यह भी प्रथम दण्डक की भांति वक्तव्य है यावत् वैमानिक, इतना विशेष है—मनुष्य जीव की भांति वक्तव्य हैं।

२६५. भन्ते! जीव औदारिक-शरीरों से कितनी क्रिया वाले हैं?

गौतम! तीन क्रिया वाले भी, चार क्रिया वाले भी, पांच क्रिया वाले भी और अक्रिय भी हैं।
२६६. भन्ते! नैरयिक औदारिक-शरीरों से कितनी क्रिया वाले हैं?

गौतम! तीन क्रिया वाले भी, चार क्रिया वाले भी और पांच क्रिया वाले भी हैं, यावत् वैमानिक, इतना विशेष है—मनुष्य जीव की भांति वक्तव्य हैं।

२६७. भन्ते! जीव वैक्रिय-शरीर से कितनी क्रिया वाला है?

गौतम! स्यात् तीन क्रिया वाला, स्यात् चार क्रिया वाला, स्यात् अक्रिय।

२६८. भन्ते! नैरयिक वैक्रिय-शरीर से कितनी क्रिया वाला है?

गौतम! स्यात् तीन क्रिया वाला, स्यात् चार क्रिया वाला यावत् वैमानिक, इतना विशेष है—मनुष्य जीव की भांति वक्तव्य है। जैसे औदारिक-शरीर से चार दण्डक कहे गए हैं वैसे वैक्रिय-शरीर से भी चार दण्डक वक्तव्य हैं, इतना विशेष है—पांचवी क्रिया का निर्देश नहीं है, शेष सब पूर्ववत्। जैसे वैक्रिय-शरीर की वक्तव्यता है वैसे ही आहारक-शरीर, तैजस-शरीर और कर्म-शरीर भी वक्तव्य हैं। प्रत्येक शरीर के चार-चार दण्डक वक्तव्य हैं यावत्—

२६९. भन्ते! वैमानिक कर्म-शरीरों से कितनी क्रिया वाले हैं?

गौतम! तीन क्रियावाले भी हैं, चार क्रिया वाले भी हैं।

२७०. भन्ते! वह ऐसा ही है। भन्ते! वह ऐसा ही है।

सातवां उद्देशक

अन्ययूथिक-संवाद-पद

अदत्त की अपेक्षा

२७१. उस काल और उस समय में राजगृह नगर था—वर्णन, गुणशीलक नाम का चैत्य था—वर्णन, यावत् पृथ्वीशिलापट्टक। उस गुणशीलक चैत्य के न अति दूर और न अति निकट अनेक अन्ययूथिक रहते थे। उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर आदिकर यावत् वहां समवसृत हुए। परिषद् आई, धर्मदेशना सुन वह लौट गई।

२७२. उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के अनेक अन्तेवासी स्थविर भगवान् जाति-संपन्न, कुल-सम्पन्न, बल-संपन्न, रूप-संपन्न, विनय-सम्पन्न, ज्ञान-संपन्न, दर्शन-संपन्न, चारित्र-संपन्न, लज्जा-संपन्न, लाघव-संपन्न, ओजस्वी, तेजस्वी, वर्चस्वी, यशस्वी, क्रोधजयी, मानजयी, मायाजयी, लोभजयी, निद्राजयी, जितेन्द्रिय, परीषहजयी, जीने की आशंसा और मृत्यु के भय से विप्रमुक्त थे। वे श्रमण भगवान् महावीर के न अति दूर और न अति निकट उर्ध्वजानु अधःसिर (उकडू आसन की मुद्रा में) और ध्यानकोष्ठ में लीन होकर संयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए विहार करते हैं।

२७३. वे अन्ययूथिक जहां स्थविर भगवान् थे वहां आए, आ कर इस प्रकार बोले—आर्यों! तुम तीन योग और तीन करण से असंयत, अविरत, अतीत के पाप-कर्म का प्रतिहनन न करने वाले, भविष्य के पाप-कर्म का प्रत्याख्यान न करने वाले, कायिकी आदि क्रिया से युक्त,

असंवृत, एकान्त दण्ड और एकान्त बाल भी हों।

२७४. भगवान् स्थविरो ने उन अन्ययूथिकों से इस प्रकार कहा—आर्यो! किस कारण से हम तीन योग और तीन करण से असंयत, अविरत, अतीत के पाप-कर्म का प्रतिहनन न करने वाले, भविष्य के पाप-कर्म का प्रत्याख्यान न करने वाले, कायिकी आदि क्रिया से युक्त, असंवृत, एकान्त दण्ड और एकान्त बाल भी हैं?

२७५. अन्ययूथिकों ने भगवान् स्थविरो से इस प्रकार कहा—आर्यो! तुम अदत्त ले रहे हो, अदत्त का उपभोग कर रहे हो, अदत्त का अनुमोदन कर रहे हो। अदत्त का ग्रहण, उपभोग और अनुमोदन करने के कारण तुम तीन योग और तीन करण से असंयत, अविरत, अतीत के पाप-कर्म का प्रतिहनन न करने वाले, भविष्य के पाप-कर्म का प्रत्याख्यान न करने वाले यावत् एकान्त बाल भी हो।

२७६. भगवान् स्थविरो ने उन अन्ययूथिकों से इस प्रकार कहा—आर्यो! कैसे हम अदत्त ले रहे हैं, अदत्त का उपभोग कर रहे हैं, अदत्त का अनुमोदन कर रहे हैं? अदत्त का ग्रहण, उपभोग और अनुमोदन करने के कारण तीन योग और तीन करण से असंयत, अविरत, अतीत के पाप-कर्म का प्रतिहनन न करने वाले, भविष्य के पाप-कर्म का प्रत्याख्यान न करने वाले यावत् एकान्त बाल भी हैं?

२७७. उन अन्ययूथिकों ने भगवान् स्थविरो से इस प्रकार कहा—आर्यो! तुम्हें जो दिया जा रहा है वह अदत्त है, तुम्हारे द्वारा जो प्रतिगृह्यमाण है वह अप्रतिगृहीत है, जो निसृज्यमाण (पात्र में डाला जा रहा) है वह अनिसृष्ट है। आर्यो! जो द्रव्य दिया जा रहा है और वह पात्र में गिरा नहीं है, बीच में ही कोई पुरुष उस द्रव्य का अपहरण कर लेता है वह द्रव्य गृहपति का है, तुम्हारा नहीं है। इस हेतु से हम कह रहे हैं—तुम अदत्त ले रहे हो, अदत्त का उपभोग कर रहे हो, अदत्त का अनुमोदन कर रहे हो। अदत्त का ग्रहण, उपभोग और अनुमोदन करने के कारण तुम असंयत यावत् एकान्त बाल भी हो।

२७८. भगवान् स्थविरो ने उन अन्ययूथिकों से इस प्रकार कहा—आर्यो! हम अदत्त नहीं ले रहे हैं, अदत्त का उपभोग नहीं कर रहे हैं, अदत्त का अनुमोदन नहीं कर रहे हैं। आर्यो! हम दत्त ले रहे हैं, दत्त का उपभोग कर रहे हैं, दत्त का अनुमोदन कर रहे हैं। दत्त का ग्रहण, उपभोग और अनुमोदन करने के कारण हम तीन योग और तीन करण से संयत, विरत, अतीत के पाप-कर्म का प्रतिहनन करनेवाले, भविष्य के पाप-कर्म का प्रत्याख्यान करने वाले, कायिकी आदि क्रिया से मुक्त, संवृत और एकान्त पण्डित भी हैं।

२७९. उन अन्ययूथिकों ने भगवान् स्थविरो से इस प्रकार कहा—आर्यो! कैसे तुम दत्त का ग्रहण कर रहे हो, दत्त का उपभोग कर रहे हो, दत्त का अनुमोदन कर रहे हो? दत्त का ग्रहण, उपभोग और अनुमोदन करने के कारण तुम संयत यावत् एकान्त पण्डित हो?

२८०. भगवान् स्थविरो ने उन अन्ययूथिकों से इस प्रकार कहा—आर्यो! हमें जो दिया जा रहा है वह दत्त है, हमारे द्वारा जो प्रतिगृह्यमाण है, वह प्रतिगृहीत है, जो निसृज्यमाण है, वह निसृष्ट है। आर्यो! हमें जो द्रव्य दिया जा रहा है और वह पात्र में गिरा नहीं है, बीच में ही

कोई पुरुष उस द्रव्य का अपहरण कर लेता है। वह द्रव्य हमारा है, गृहपति का नहीं। इस हेतु से हम कह रहे हैं—हम दत्त का ग्रहण करते हैं, दत्त का उपभोग करते हैं, दत्त का अनुमोदन करते हैं। दत्त का ग्रहण, उपभोग और अनुमोदन करने के कारण हम तीन योग और तीन करण से असंयत, अविरत, अतीत के पापकर्म का प्रतिहनन करने वाले, भविष्य के पापकर्म का प्रत्याख्यान करने वाले यावत् एकान्त पण्डित भी हैं। आर्यों! तुम स्वयं तीन योग और तीन करण से असंयत, अविरत, अतीत के पाप-कर्म का प्रतिहनन न करने वाले, भविष्य के पाप-कर्म का प्रत्याख्यान न करने वाले यावत् एकान्त बाल भी हो।

२८१. उन अन्ययूथिकों ने भगवान् स्थविरों से इस प्रकार कहा—आर्यों! कैसे हम तीन योग और तीन करण से असंयत, अविरत, अतीत के पाप-कर्म का प्रतिहनन न करने वाले, भविष्य के पाप-कर्म का प्रत्याख्यान न करने वाले यावत् एकान्त बाल भी हैं?

२८२. भगवान् स्थविरों ने उन अन्ययूथिकों से इस प्रकार कहा—आर्यों! तुम अदत्त का ग्रहण कर रहे हो, अदत्त का उपभोग कर रहे हो, अदत्त का अनुमोदन कर रहे हो। अदत्त का ग्रहण, उपभोग और अनुमोदन करने के कारण तुम असंयत यावत् एकान्त बाल भी हो।

२८३. उन अन्ययूथिकों ने भगवान् स्थविरों से इस प्रकार कहा—आर्यों! कैसे हम अदत्त का ग्रहण कर रहे हैं यावत् एकान्त बाल भी हैं?

२८४. भगवान् स्थविरों ने उन अन्ययूथिकों से इस प्रकार कहा—आर्यों! तुम्हें जो द्रव्य दिया जा रहा है, वह अदत्त है, जो प्रतिगृह्यमाण है, वह अप्रतिगृहीत है, जो निसृज्यमाण है, वह अनिसृष्ट है। आर्यों! तुम्हें जो द्रव्य दिया जा रहा है और वह पात्र में गिरा नहीं है बीच में ही कोई पुरुष उस द्रव्य का अपहरण कर लेता है, वह द्रव्य गृहपति का है, तुम्हारा नहीं। इस हेतु से तुम अदत्त का ग्रहण करते हो यावत् एकान्त बाल भी हो।

हिंसा की अपेक्षा

२८५. उन अन्ययूथिकों ने भगवान् स्थविरों से इस प्रकार कहा—आर्यों! तुम तीन योग और तीन करण से असंयत, अविरत, अतीत के पाप-कर्म का प्रतिहनन न करने वाले, भविष्य के पाप-कर्म का प्रत्याख्यान न करने वाले यावत् एकान्त बाल भी हो।

२८६. भगवान् स्थविरों ने उन अन्ययूथिकों से इस प्रकार कहा—आर्यों! कैसे हम तीन योग और तीन करण से असंयत यावत् एकान्त बाल भी हैं?

२८७. उन अन्ययूथिकों ने भगवान् स्थविरों से इस प्रकार कहा—आर्यों! तुम गमन करते हुए पृथ्वी को आक्रांत, अभिहत, क्षुण्ण, श्लिष्ट, संहत, स्पृष्ट, परितप्त, क्लान्त और उपद्रुत (प्राण-रहित) करते हो। तुम पृथ्वी को आक्रांत, अभिहत, क्षुण्ण, श्लिष्ट, संहत, स्पृष्ट, परितप्त, क्लान्त और उपद्रुत करने के कारण तीन योग और तीन करण से असंयत, अविरत, अतीत के पापकर्म का प्रतिहनन न करने वाले, भविष्य के पापकर्म का प्रत्याख्यान न करने वाले यावत् एकान्त बाल भी हो।

२८८. भगवान् स्थविरों ने उन अन्ययूथिकों से इस प्रकार कहा—आर्यों! हम गमन करते हुए पृथ्वी को न आक्रांत, अभिहत, यावत् उपद्रुत करते हैं। आर्यों! हम शारीरिक आवश्यकता

की पूर्ति, सेवा आदि कार्य तथा संयम की दृष्टि से गमन करते हुए पृथ्वी के समुचित देश पर, समुचित प्रदेश पर गमन करते हैं। अतः समुचित देश और समुचित प्रदेश पर गमन करते हुए हम पृथ्वी को आक्रांत, अभिहत यावत् उपद्रुत नहीं करते हैं। पृथ्वी को अनाक्रांत, अनभिहत यावत् अनुपद्रुत करते हुए हम तीन योग और तीन करण से संयत, विरत, अतीत के पाप-कर्म का प्रतिहनन करने वाले, भविष्य के पाप-कर्म का प्रत्याख्यान करने वाले यावत् एकान्त पण्डित भी हैं। आर्यो! तुम स्वयं तीन योग और तीन करण से असंयत, अविरत, अतीत के पाप-कर्म का प्रतिहनन न करने वाले, भविष्य के पाप-कर्म का प्रत्याख्यान न करने वाले यावत् एकान्त बाल भी हो।

२८९. उन अन्ययूथिकों ने भगवान् स्थविरों से इस प्रकार कहा—आर्यो! कैसे हम तीन योग और तीन करण से असंयत यावत् एकान्त बाल भी हैं?

२९०. भगवान् स्थविरों ने उन अन्ययूथिकों से इस प्रकार कहा—आर्यो! तुम गमन करते हुए पृथ्वी को आक्रांत यावत् उपद्रुत करते हो। पृथ्वी को आक्रांत यावत् उपद्रुत करते हुए तीन योग और तीन करण से असंयत यावत् एकान्त बाल भी हो।

गम्यमान-गत की अपेक्षा

२९१. उन अन्ययूथिकों ने भगवान् स्थविरों से इस प्रकार कहा—आर्यो! तुम्हारे मत के अनुसार गम्यमान अगत (नहीं गया हुआ), व्यतिक्रम्यमान अव्यतिक्रांत, राजगृह नगर को संप्राप्त करने की कामना करने वाला असंप्राप्त होता है।

२९२. भगवान् स्थविरों ने उन अन्ययूथिकों से इस प्रकार कहा—आर्यो! हमारे मत के अनुसार गम्यमान अगत, व्यतिक्रम्यमान अव्यतिक्रांत, राजगृह नगर को संप्राप्त करने की कामना करने वाला असंप्राप्त नहीं होता। आर्यो! हमारे मत के अनुसार गम्यमान गत, व्यतिक्रम्यमान व्यतिक्रान्त, राजगृह नगर को संप्राप्त करने की कामना करने वाला संप्राप्त होता है। तुम्हारे अपने मत के अनुसार गम्यमान अगत, व्यतिक्रम्यमान अव्यतिक्रांत, राजगृह नगर को संप्राप्त करने की कामना करने वाला असंप्राप्त होता है। भगवान् स्थविरों ने अन्ययूथिकों को इस प्रकार प्रत्युत्तर दिया, प्रत्युत्तर देकर 'गतिप्रवाद' नाम के अध्ययन का प्रज्ञापन किया।

२९३. भते! गतिप्रवाद कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?

गौतम! गतिप्रवाद पांच प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—प्रयोग-गति, तत-गति, बंधच्छेदन-गति, उपपात-गति, विहाय-गति, इस गति-सूत्र से प्रारंभ कर विहायगति के व्याख्या-सूत्र तक पणवणा (पद १६) का प्रयोग-पद निरवशेष रूप में वक्तव्य है।

२९४. भते! वह ऐसा ही है। भते! वह ऐसा ही है।

आठवां उद्देशक

प्रत्यनीक-पद

२९५. राजगृह में समवसरण यावत् गौतम स्वामी ने इस प्रकार कहा—भते! गुरु की अपेक्षा कितने प्रत्यनीक प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! गुरु का अपेक्षा तीन प्रत्यनीक प्रज्ञप्त हैं, जैसे—आचार्य का प्रत्यनीक, उपाध्याय का प्रत्यनीक, स्थविर का प्रत्यनीक।

२९६. भंते! गति की अपेक्षा कितने प्रत्यनीक प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! गति की अपेक्षा तीन प्रत्यनीक प्रज्ञप्त हैं, जैसे—इहलोक-प्रत्यनीक, परलोक-प्रत्यनीक, उभयलोक-प्रत्यनीक।

२९७. भंते! समूह की अपेक्षा कितने प्रत्यनीक प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! समूह की अपेक्षा तीन प्रत्यनीक प्रज्ञप्त हैं, जैसे—कुल-प्रत्यनीक, गण-प्रत्यनीक, संघ-प्रत्यनीक।

२९८. भंते! अनुकंपा की अपेक्षा कितने प्रत्यनीक प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! अनुकंपा की अपेक्षा तीन प्रत्यनीक प्रज्ञप्त हैं, जैसे—तपस्वी-प्रत्यनीक, ग्लान-प्रत्यनीक, शैक्ष-प्रत्यनीक।

२९९. भंते! श्रुत की अपेक्षा कितने प्रत्यनीक प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! श्रुत की अपेक्षा तीन प्रत्यनीक प्रज्ञप्त हैं, जैसे—सूत्र-प्रत्यनीक, अर्थ-प्रत्यनीक, तदुभय-प्रत्यनीक।

३००. भंते! भाव की अपेक्षा कितने प्रत्यनीक प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! भाव की अपेक्षा तीन प्रत्यनीक प्रज्ञप्त हैं, जैसे—ज्ञान-प्रत्यनीक, दर्शन-प्रत्यनीक, चारित्र-प्रत्यनीक।

पांच व्यवहार-पद

३०१. भंते! व्यवहार कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?

गौतम! व्यवहार पांच प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—आगम, श्रुत, आज्ञा, धारणा और जीत।

जहां आगम हो वहां आगम से व्यवहार की प्रस्थापना करें।

जहां आगम न हो, श्रुत हो वहां श्रुत से व्यवहार की प्रस्थापना करे।

जहां श्रुत न हो, आज्ञा हो वहां आज्ञा से व्यवहार की प्रस्थापना करे।

जहां आज्ञा न हो, धारणा हो, वहां धारणा से व्यवहार की प्रस्थापना करे।

जहां धारणा न हो, जीत हो, वहां जीत से व्यवहार की प्रस्थापना करे।

इन पांचों से व्यवहार की प्रस्थापना करे—आगम से, श्रुत से, आज्ञा से, धारणा से और जीत से।

जिस समय आगम, श्रुत, आज्ञा, धारणा और जीत में से जो प्रधान हो, उसी से व्यवहार की प्रस्थापना करे।

भंते! आगमबलिक श्रमण-निर्ग्रंथों ने इस विषय में क्या कहा है?

इन पांचों व्यवहारों में जब-जब जिस-जिस विषय में जो व्यवहार हो, तब-तब वहां-वहां

अनिश्रितोपाश्रित मध्यस्थ-भाव से सम्यग् व्यवहार करता हुआ श्रमण निर्ग्रन्थ आज्ञा का आराधक होता है।

बन्ध-पद

३०२. भंते! बन्ध कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?

गौतम! बन्ध दो प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—ऐर्यापथिक बन्ध, सांपरायिक बन्ध।

ऐर्यापथिक-बन्ध-पद

३०३. भंते! ऐर्यापथिक कर्म का बन्ध क्या नैरयिक करता है? तिर्यग्योनिक करता है? तिर्यग्योनिक स्त्री करती है? मनुष्य करता है? स्त्री करती है? देव करता है? देवी करती है?

गौतम! नैरयिक बन्ध नहीं करता, तिर्यग्योनिक बन्ध नहीं करता, तिर्यग्योनिक स्त्री बन्ध नहीं करती, देव बन्ध नहीं करता, देवी बन्ध नहीं करती। पूर्व प्रतिपन्न की अपेक्षा मनुष्य और मनुष्य-स्त्रियां बन्ध करती हैं।

१. प्रतिपद्यमान की अपेक्षा मनुष्य बन्ध करता है २. अथवा मनुष्य-स्त्री बन्ध करती है ३. मनुष्य बन्ध करते हैं ४. मनुष्य-स्त्रियां बन्ध करती हैं ५. अथवा मनुष्य और मनुष्य स्त्री बन्ध करती है ६. अथवा मनुष्य और मनुष्य-स्त्रियां बन्ध करती हैं ७. अथवा मनुष्य (अनेक) और मनुष्य-स्त्री बन्ध करती हैं, ८. अथवा मनुष्य (अनेक) और मनुष्य-स्त्रियां बन्ध करती हैं।

३०४. भंते! क्या स्त्री बन्ध करती है? पुरुष बन्ध करता है? नपुंसक बन्ध करता है? क्या स्त्रियां बन्ध करती हैं? पुरुष बन्ध करते हैं? नपुंसक बन्ध करते हैं? क्या नो-स्त्री, नो-पुरुष और नो-नपुंसक बन्ध करता है?

गौतम! स्त्री बन्ध नहीं करती, पुरुष बन्ध नहीं करता, नपुंसक बन्ध नहीं करता, स्त्रियां बन्ध नहीं करती, पुरुष बन्ध नहीं करते, नपुंसक बन्ध नहीं करते, नो-स्त्री नो-पुरुष और नो-नपुंसक बन्ध करता है—पूर्व प्रतिपन्न की अपेक्षा वेद-रहित बन्ध करते हैं, प्रतिपद्यमान की अपेक्षा वेद-रहित बन्ध करता है अथवा वेद-रहित बन्ध करते हैं।

३०५. भंते! यदि वेद-रहित बन्ध करता है अथवा वेद-रहित बन्ध करते हैं तो क्या भंते! १. स्त्री पश्चात्कृत बन्ध करती है २. पुरुष पश्चात्कृत बन्ध करता है ३. नपुंसक पश्चात्कृत बन्ध करता है ४. स्त्री पश्चात्कृत बन्ध करती हैं ५. पुरुष पश्चात्कृत बन्ध करते हैं ६. नपुंसक पश्चात्कृत बन्ध करते हैं ७. अथवा स्त्री पश्चात्कृत और पुरुष पश्चात्कृत बन्ध करता है (चार)? अथवा स्त्री पश्चात्कृत और नपुंसक पश्चात्कृत बन्ध करता है (चार)? अथवा पुरुष पश्चात्कृत और नपुंसक पश्चात्कृत बन्ध करता है (चार)? अथवा स्त्री पश्चात्कृत, पुरुष पश्चात्कृत और नपुंसक पश्चात्कृत बन्ध करता है (आठ)? इस प्रकार ये छब्बीस भंग होते हैं यावत् अथवा स्त्री पश्चात्कृत, पुरुष पश्चात्कृत नपुंसक पश्चात्कृत बन्ध करते हैं?

गौतम! १. स्त्री पश्चात्कृत भी बन्ध करती है २. पुरुष पश्चात्कृत भी बन्ध करता है ३. नपुंसक पश्चात्कृत भी बन्ध करता है ४. स्त्री पश्चात्कृत भी बन्ध करती हैं। ५. पुरुष पश्चात्कृत भी बन्ध करते हैं। ६. नपुंसक पश्चात्कृत भी बन्ध करते हैं। ७. अथवा स्त्री

पश्चात्कृत और पुरुष पश्चात्कृत बंध करता है, इस प्रकार ये छब्बीस भंग वक्तव्य हैं यावत् २६. अथवा स्त्री पश्चात्कृत, पुरुष पश्चात्कृत और नपुंसक पश्चात्कृत बंध करते हैं।

३०६. भंते! क्या जीव ने उस ऐर्यापथिक कर्म का बंध किया, करता है और करेगा? २. क्या बंध किया, करता है और नहीं करेगा? ३. क्या बंध किया, नहीं करता है और करेगा? ४. बंध किया, नहीं करता है और नहीं करेगा? ५. बंध नहीं किया, करता है और करेगा? ६. बंध नहीं किया, करता है और नहीं करेगा? ७. बंध नहीं किया, नहीं करता है और करेगा? ८. बंध नहीं किया, नहीं करता है और नहीं करेगा?

गौतम! भवाकर्ष की अपेक्षा किसी जीव ने बंध किया, करता है और करेगा। किसी जीव ने बंध किया, करता है और नहीं करेगा, इस प्रकार सर्व वक्तव्य है यावत् किसी जीव ने बंध नहीं किया, नहीं करता है और नहीं करेगा।

ग्रहणाकर्ष की अपेक्षा किसी जीव ने बंध किया, करता है और करेगा, इस प्रकार यावत् किसी जीव ने बंध नहीं किया, करता है और करेगा, किसी जीव ने बंध नहीं किया, करता है और नहीं करेगा, किसी जीव ने बंध नहीं किया, नहीं करता है और करेगा, किसी जीव ने बंध नहीं किया, नहीं करता है और नहीं करेगा।

३०७. भंते! क्या उस ऐर्यापथिक कर्म का बंध सादि-सपर्यवसित होता है? सादि-अपर्यवसित होता है? अनादि-सपर्यवसित होता है? अनादि-अपर्यवसित होता है?

गौतम! वह सादि-सपर्यवसित होता है, सादि-अपर्यवसित नहीं होता। अनादि-सपर्यवसित नहीं होता, अनादि-अपर्यवसित नहीं होता।

३०८. भंते! क्या देश के द्वारा देश का बंध होता है? देश के द्वारा सर्व का बंध होता है? सर्व के द्वारा देश का बंध होता है? सर्व के द्वारा सर्व का बंध होता है?

गौतम! देश के द्वारा देश का बंध नहीं होता, देश के द्वारा सर्व का बंध नहीं होता, सर्व के द्वारा देश का बंध नहीं होता, सर्व के द्वारा सर्व का बंध होता है।

साम्परायिक-बंध-पद

३०९. भंते! साम्परायिक कर्म का बंध क्या नैरयिक करता है? तिर्यग्योनिक करता है? यावत् देवी करती है?

गौतम! नैरयिक भी बंध करता है, तिर्यग्योनिक भी बंध करता है, तिर्यग्योनिक स्त्री भी बंध करती है, मनुष्य भी बंध करता है, मनुष्य-स्त्री भी बंध करती है, देवता भी बंध करता है, देवी भी बंध करती है।

३१०. भंते! क्या स्त्री बंध करती है? पुरुष बंध करता है उसी प्रकार यावत् नो-स्त्री, नो-पुरुष, नो-नपुंसक बंध करता है?

गौतम! स्त्री भी बंध करती है, पुरुष भी बंध करता है, यावत् नपुंसक भी बंध करते हैं, अथवा ये स्त्री आदि और वेद-रहित (एक वचन) बंध करता है। अथवा ये स्त्री आदि और वेद-रहित बंध करते हैं।

३११. भंते! यदि वेद-रहित बंध करता है, वेद-रहित बंध करते हैं तो क्या भंते। स्त्री पश्चात्कृत बंध करती है? पुरुष पश्चात्कृत बंध करता है? इस प्रकार जैसे ऐर्यापथिक बंध की वक्तव्यता है वैसे ही निरवशेष रूप में वक्तव्य है यावत् अथवा स्त्री पश्चात्कृत, पुरुष पश्चात्कृत, नपुंसक पश्चात्कृत बंध करते हैं।

३१२. भंते! १. क्या जीव ने उस सांपरायिक कर्म का बंध किया, करता है और करेगा? २. बंध किया, करता है और नहीं करेगा? ३. बंध किया, नहीं करता है और करेगा? ४. बंध किया, नहीं करता है और नहीं करेगा?

गौतम! १. किसी जीव ने बंध किया, करता है और करेगा। २. किसी जीव ने बंध किया, करता है और नहीं करेगा ३. किसी जीव ने बंध किया, नहीं करता है और करेगा ४. किसी जीव ने बंध किया, नहीं करता है और नहीं करेगा।

३१३. भंते! क्या सांपरायिक कर्म का बंध सादि-सपर्यवसित होता है? पूर्ववत् पृच्छ।

गौतम! वह सादि-सपर्यवसित होता है, अनादि-सपर्यवसित होता है, अनादि-अपर्यवसित होता है, सादि-अपर्यवसित नहीं होता।

३१४. भंते! क्या देश के द्वारा देश का बंध होता है?

ऐर्यापथिक बंध की भांति वक्तव्यता यावत् सर्व के द्वारा सर्व का बंध होता है।

कर्म-प्रकृतियों में परीषह-समवतार-पद

३१५. भंते! कर्म-प्रकृतियां कितनी प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! कर्म-प्रकृतियां आठ प्रज्ञप्त हैं, जैसे—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र और अंतराय।

३१६. भंते! परीषह कितने प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! परीषह बाईस प्रज्ञप्त हैं, जैसे—क्षुधा-परीषह, पिपासा-परीषह, शीत-परीषह, उष्ण-परीषह, दंश-मशक-परीषह, अचेल-परीषह, अरति-परीषह, स्त्री-परीषह, चर्या-परीषह, निषद्या-परीषह, शय्या-परीषह, आक्रोश-परीषह, वध-परीषह, याचना-परीषह, अलाभ-परीषह, रोग-परीषह, तृणस्पर्श-परीषह, जल्ल-(स्वेद-जनित मैल)-परीषह, सत्कार-पुरस्कार-परीषह, प्रज्ञा-परीषह, ज्ञान-परीषह, दर्शन-परीषह।

३१७. भंते! इन बाईस परीषहों का कितनी कर्म-प्रकृतियों में समवतार होता है?

गौतम! चार कर्म-प्रकृतियों में समवतार होता है, जैसे—ज्ञानावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, अंतराय।

३१८. भंते! ज्ञानावरणीय-कर्म में कितने परीषहों का समवतार होता है?

गौतम! ज्ञानावरणीय-कर्म में दो परीषहों का समवतार होता है जैसे—प्रज्ञा-परीषह, ज्ञान-परीषह।

३१९. भंते! वेदनीय-कर्म में कितने परीषहों का समवतार होता है?

गौतम! वेदनीय कर्म में ग्यारह परीषहों का समवतार होता है, जैसे—प्रारंभ से पांच यथाक्रम—(क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, दंश-मशक), चर्या, शय्या, वध, रोग, तृण-स्पर्श, जल्ल—इन ग्यारह परीषहों का वेदनीय कर्म में समवतार होता है।

३२०. भंते! दर्शन-मोहनीय-कर्म में कितने परीषहों का समवतार होता है।

गौतम! दर्शन-मोहनीय-कर्म में एक दर्शन-परीषह का समवतार होता है।

३२१. भंते! चारित्र-मोहनीय-कर्म में कितने परीषहों का समवतार होता है?

गौतम! चारित्र-मोहनीय-कर्म में सात परीषहों का समवतार होता है, जैसे—

अरति, अचेल, स्त्री, निषद्या, याचना, आक्रोश, सत्कार-पुरस्कार—चारित्र-मोहनीय कर्म में इन सात परीषहों का समवतार होता है।

३२२. भंते! अंतराय-कर्म में कितने परीषहों का समवतार होता है?

गौतम! अंतराय कर्म में एक अलाभ-परीषह का समवतार होता है।

३२३. भंते! सात प्रकार के कर्म का बंध करने वाले पुरुष के कितने परीषह प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! सात प्रकार के कर्म का बंध करने वाले पुरुष के बाईस परीषह प्रज्ञप्त हैं। वह वेदन बीस परीषहों का करता है—जिस समय शीत-परीषह का वेदन करता है, उस समय उष्ण-परीषह का वेदन नहीं करता है। जिस समय उष्ण-परीषह का वेदन करता है, उस समय शीत-परीषह का वेदन नहीं करता। जिस समय चर्या-परीषह का वेदन करता है, उस समय निषद्या-परीषह का वेदन नहीं करता। जिस समय निषद्या-परीषह का वेदन करता है, उस समय चर्या-परीषह का वेदन नहीं करता।

३२४. इसी प्रकार आठ प्रकार के कर्म का बंध करने वाले पुरुष के परीषह की वक्तव्यता।

३२५. भंते! छह प्रकार के कर्म का बंध करने वाले सराग छद्मस्थ के कितने परीषह प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! छह प्रकार के कर्म का बंध करने वाले सराग छद्मस्थ के चौदह परीषह प्रज्ञप्त हैं। वह वेदन बारह परीषहों का करता है—जिस समय शीत-परीषह का वेदन करता है, उस समय उष्ण-परीषह का वेदन नहीं करता। जिस समय उष्ण-परीषह का वेदन करता है, उस समय शीत-परीषह का वेदन नहीं करता। जिस समय चर्या-परीषह का वेदन करता है, उस समय शय्या-परीषह का वेदन नहीं करता, जिस समय शय्या-परीषह का वेदन करता है, उस समय चर्या-परीषह का वेदन नहीं करता।

३२६. भंते! एक प्रकार के कर्म का बंध करने वाले वीतराग छद्मस्थ के कितने परीषह प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! छह प्रकार के कर्म का बंध करने वाले सराग छद्मस्थ की भांति व्यक्तव्यता।

३२७. भंते! एक प्रकार के कर्म का बंध करने वाले सयोगी भवस्थ केवली के कितने परीषह प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! एक प्रकार के कर्म का बंध करने वाले सयोगी भवस्थ केवली के ग्यारह परीषह प्रज्ञप्त

हैं। वह वेदन नौ परीषहों का करता है। शेष छह प्रकार के कर्म का बंध करने वाले सराग छद्मस्थ की भांति वक्तव्य है।

३२८. भंते! कर्म का बंध न करने वाले अयोगी भवस्थ केवली के कितने परीषह प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! कर्म का बंध न करने वाले अयोगी भवस्थ केवली के ग्यारह परीषह प्रज्ञप्त हैं। वह वेदन नौ परीषहों का करता है। जिस समय शीत-परीषह का वेदन करता है, उस समय उष्ण-परीषह का वेदन नहीं करता। जिस समय उष्ण-परीषह का वेदन करता है, उस समय शीत-परीषह का वेदन नहीं करता। जिस समय चर्या-परीषह का वेदन करता है, उस समय शय्या-परीषह का वेदन नहीं करता। जिस समय शय्या-परीषह का वेदन करता है, उस समय चर्या-परीषह का वेदन नहीं करता।

सूर्य-पद

३२९. भंते! जंबूद्वीप द्वीप में उदय के मुहूर्त्त में सूर्य दूर होने पर भी निकट दिखाई देते हैं? मध्याह्न के मुहूर्त्त में निकट होने पर भी दूर दिखाई देते हैं? अस्तमन के मुहूर्त्त में दूर होने पर भी निकट दिखाई देते हैं?

हां, गौतम! जंबूद्वीप द्वीप में उदय के मुहूर्त्त में सूर्य दूर होने पर भी निकट दिखाई देते हैं। मध्याह्न के मुहूर्त्त में निकट होने पर भी दूर दिखाई देते हैं। अस्तमन के मुहूर्त्त में दूर होने पर भी निकट दिखाई देते हैं।

३३०. भंते! जंबूद्वीप द्वीप में उदय के मुहूर्त्त में, मध्याह्न के मुहूर्त्त में और अस्तमन के मुहूर्त्त में सूर्य ऊंचाई की दृष्टि से सर्वत्र तुल्य होते हैं?

हां, गौतम! जंबूद्वीप द्वीप में उदय के मुहूर्त्त में, मध्याह्न के मुहूर्त्त में और अस्तमन के मुहूर्त्त में सूर्य ऊंचाई की दृष्टि से सर्वत्र तुल्य होते हैं।

३३१. भंते! यदि जंबूद्वीप द्वीप में उदय के मुहूर्त्त में, मध्याह्न के मुहूर्त्त में और अस्तमन के मुहूर्त्त में सूर्य ऊंचाई की दृष्टि से सर्वत्र तुल्य होते हैं तो यह कैसे कहा जाता है—जंबूद्वीप द्वीप में उदय के मुहूर्त्त में सूर्य दूर होने पर भी निकट दिखाई देते हैं, यावत् अस्तमन के मुहूर्त्त में दूर होने पर भी निकट दिखाई देते हैं?

गौतम! तेज का प्रतिघात होने के कारण उदय के मुहूर्त्त में सूर्य दूर होने पर भी निकट दिखाई देते हैं, तेज का अभिताप होने के कारण मध्याह्न के मुहूर्त्त में निकट होने पर भी दूर दिखाई देते हैं, तेज का प्रतिघात होने के कारण अस्तमन के मुहूर्त्त में दूर होने पर भी निकट दिखाई देते हैं।

गौतम! इस कारण से यह कहा जाता है—जंबूद्वीप द्वीप में सूर्य उदय के मुहूर्त्त में दूर होने पर भी निकट दिखाई देते हैं यावत् अस्तमन के मुहूर्त्त में दूर होने पर भी निकट दिखाई देते हैं।

३३२. भंते! क्या जंबूद्वीप द्वीप में सूर्य अतीत क्षेत्र में गमन करते हैं? वर्तमान क्षेत्र में गमन करते हैं? अनागत क्षेत्र में गमन करते हैं?

गौतम! जंबूद्वीप द्वीप में सूर्य अतीत क्षेत्र में गमन नहीं करते, वर्तमान क्षेत्र में गमन करते हैं, अनागत क्षेत्र में गमन नहीं करते।

३३३. भंते! क्या जंबूद्वीप द्वीप में सूर्य अतीत क्षेत्र को अवभासित करते हैं? वर्तमान क्षेत्र को अवभासित करते हैं? अनागत क्षेत्र को अवभासित करते हैं?

गौतम! जंबूद्वीप द्वीप में सूर्य अतीत क्षेत्र को अवभासित नहीं करते, वर्तमान क्षेत्र को अवभासित करते हैं, अनागत क्षेत्र को अवभासित नहीं करते।

३३४. भंते! क्या सूर्य स्पृष्ट क्षेत्र को अवभासित करते हैं? अथवा अस्पृष्ट क्षेत्र को अवभासित करते हैं?

गौतम! सूर्य स्पृष्ट क्षेत्र को अवभासित करते हैं, अस्पृष्ट क्षेत्र को अवभासित नहीं करते यावत् नियमतः छहों दिशाओं को अवभासित करते हैं।

३३५. भंते! क्या जंबूद्वीप द्वीप में सूर्य अतीत क्षेत्र को उद्योतित करते हैं?

गौतम! इसी प्रकार यावत् नियमतः छहों दिशाओं को उद्योतित करते हैं।

३३६. इसी प्रकार तप्त और प्रभासित की वक्तव्यता यावत् नियमतः छहों दिशाओं को तप्त और प्रभासित करते हैं।

३३७. भंते! क्या जंबूद्वीप द्वीप में सूर्य अतीत क्षेत्र में क्रिया करते हैं? वर्तमान क्षेत्र में क्रिया करते हैं? अनागत क्षेत्र में क्रिया करते हैं?

गौतम! जंबूद्वीप द्वीप में सूर्य अतीत क्षेत्र में क्रिया नहीं करते, वर्तमान क्षेत्र में क्रिया करते हैं, अनागत क्षेत्र में क्रिया नहीं करते।

३३८. भंते! क्या वह क्रिया स्पृष्ट होती है? अस्पृष्ट होती है?

गौतम! वह क्रिया स्पृष्ट होती है, अस्पृष्ट नहीं होती यावत् नियमतः छहों दिशाओं में स्पृष्ट होती है।

३३९. भंते! जंबूद्वीप द्वीप में सूर्य कितने ऊर्ध्व क्षेत्र में तपते हैं? कितने अधो क्षेत्र में तपते हैं? कितने तिर्यक् क्षेत्र में तपते हैं?

गौतम! जंबूद्वीप द्वीप में सूर्य ऊर्ध्व-क्षेत्र में एक सौ योजन में तपते हैं, अधो-क्षेत्र में अठारह सौ योजन में तपते हैं, तिर्यक् क्षेत्र में सैंतालीस-हजार-दो-सौ-तिरसठ-योजन-इक्कीस/साठ (४७२६३ $\frac{११}{१६}$) योजन क्षेत्र में तपते हैं।

ज्योतिष्कों का उपपत्ति-पद

३४०. भंते! मानुषोत्तर पर्वत के अंतर्वर्ती जो चंद्र-, सूर्य-, ग्रहगण-, नक्षत्र- और तारा-रूप हैं, भंते! वे देव क्या ऊर्ध्व-उपपन्नक हैं?

जीवाजीवाभिगम (तीसरी प्रतिपत्ति) की भांति निरवशेष रूप में वक्तव्य है यावत्—

३४१. भंते! इन्द्रस्थान उपपात से कितने काल तक विरहित रहता है?

गौतम! जघन्यतः एक समय, उत्कृष्टतः छह मास।

३४२. भंते! मानुषोत्तर पर्वत के बाह्यवर्ती चंद्र-, सूर्य-, ग्रहगण-, नक्षत्र- और तारा-रूप हैं। भंते! वे क्या ऊर्ध्व-उपपन्नक हैं?

जीवाजीवाभिगम (तीसरी प्रतिपत्ति) की भांति वक्तव्यता यावत्—
३४३. भंते! इन्द्रस्थान उपपात से कितने काल तक विरहित प्रज्ञप्त है?

गौतम! जघन्यतः एक समय, उत्कृष्टतः छह मास।

३४४. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

नौवां उद्देशक

बंध-पद

३४५. भंते! बंध कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?

गौतम! दो प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—प्रयोग-बंध, विस्रसा-बंध।

विस्रसा-बंध-पद

३४६. भंते! विस्रसा-बंध कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?

गौतम! दो प्रकार का प्रज्ञप्त है जैसे—सादिक विस्रसा-बंध, अनादिक विस्रसा-बंध।

३४७. भंते! अनादिक विस्रसा-बंध कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?

गौतम! तीन प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—धर्मास्तिकाय-अन्योन्य-अनादिक-विस्रसा-बंध, अधर्मास्तिकाय-अन्योन्य-अनादिक-विस्रसा-बंध, आकाशास्तिकाय-अन्योन्य-अनादिक-विस्रसा-बंध।

३४८. भंते! धर्मास्तिकाय-अन्योन्य-अनादिक-विस्रसा-बंध क्या देश-बंध है? सर्व-बंध है?

गौतम! देश-बंध है, सर्व-बंध नहीं है। इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय-अन्योन्य-अनादिक-विस्रसा-बंध की वक्तव्यता। इसी प्रकार आकाशास्तिकाय-अन्योन्य-अनादिक-विस्रसा-बंध की वक्तव्यता।

३४९. भंते! धर्मास्तिकाय-अन्योन्य-अनादिक-विस्रसा-बंध काल की अपेक्षा कितने काल तक रहता है?

गौतम! सर्व काल तक। इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय-अन्योन्य-अनादिक-विस्रसा-बंध की वक्तव्यता। इसी प्रकार आकाशास्तिकाय-अन्योन्य-अनादिक-विस्रसा-बंध की वक्तव्यता।

३५०. भंते! सादिक-विस्रसा-बंध कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?

गौतम! तीन प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—बंधन-प्रत्ययिक, भाजन-प्रत्ययिक, परिणाम-प्रत्ययिक।

३५१. वह बंधन-प्रत्ययिक क्या है?

बंधन-प्रत्ययिक—परमाणु-पुद्गल, द्विप्रदेशिक, त्रिप्रदेशिक यावत् दशप्रदेशिक, संख्येयप्रदेशिक, असंख्येयप्रदेशिक, अनंतप्रदेशिक स्कंधों की विमात्र (विषम मात्रा वाली) स्निग्धता, विमात्र रूक्षता, विमात्र स्निग्ध-रूक्षता से होने वाले बंधन-प्रत्यय के कारण जो बंध-उत्पन्न होता है, वह बंधन-प्रत्ययिक है। इसका कालमान जघन्यतः एक समय,

उत्कृष्टतः असंख्येय काल है। यह है बंधन-प्रत्ययिक।

३५२. वह भाजन-प्रत्ययिक क्या है?

भाजन-प्रत्ययिक—जीर्ण सुरा, जीर्ण गुड़, जीर्ण तंदुलों का भाजन-प्रत्यय के कारण जो बंध उत्पन्न होता है, वह भाजन-प्रत्ययिक है। इसका कालमान जघन्यतः एक समय, उत्कृष्टतः असंख्येय काल है। यह है भाजन-प्रत्ययिक।

३५३. वह परिणाम-प्रत्ययिक क्या है? परिणाम-प्रत्ययिक—अभ्र, अभ्रवृक्ष जैसे—तीसरे शतक (३/२५३) में यावत् अमोघा का परिणाम-प्रत्यय के कारण जो बंध उत्पन्न होता है, वह परिणाम-प्रत्ययिक है। इसका कालमान जघन्यतः एक समय, उत्कृष्टतः छह मास है। यह है परिणाम-प्रत्ययिक। यह है सादिक- विस्रसा-बंध! यह है विस्रसा-बंध।

३५४. वह प्रयोग-बंध क्या है?

प्रयोग-बंध तीन प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—अनादिक-अपर्यवसित, सादिक-अपर्यवसित, सादिक-सपर्यवसित।

जीव के आठ मध्य-प्रदेशों का बंध अनादिक-अपर्यवसित है, जीव के उन आठ मध्य-प्रदेशों में तीन-तीन प्रदेशों का एक-एक प्रदेश के साथ होने वाला बंध अनादिक-अपर्यवसित है। शेष प्रदेशों का बंध सादिक है। सिद्धों के जीव-प्रदेशों का बंध सादिक-अपर्यवसित है। सादिक-सपर्यवसित बंध चार प्रकार का प्रज्ञप्त है जैसे—आलापन-बंध, आलीनकरण-बंध, शरीर-बंध, शरीर-प्रयोग-बंध।

आलापन की अपेक्षा

३५५. वह आलापन-बंध क्या है?

आलापन-बंध तृण, काष्ठ, पत्र और पलाल के समूह, वेत्रलता, छाल, चर्म, रज्जु, सन आदि की रज्जु, ककड़ी आदि की बेल, कुश, डाभ और चीवर आदि से बांधना आलापन-बंध है। इसका कालमान जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टतः संख्येय काल है। यह है—आलापन-बंध।

आलीनकरण-बंध की अपेक्षा

३५६. वह आलीनकरण-बंध क्या है?

आलीनकरण-बंध चार प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—श्लेष-बंध, उच्चय-बंध, समुच्चय-बंध, संहनन-बंध।

३५७. वह श्लेष-बंध क्या है?

श्लेष-बंध—भित्ति, मणि, प्रांगण, स्तंभ, प्रासाद, काठ, चर्म, घट, पट और कट का चूना, विकनी मिट्टी, श्लेष, लाख, मोम आदि श्लेष-द्रव्यों से जो बंध होता है, वह श्लेष-बंध है। इसका कालमान जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टतः संख्येय काल है। यह है श्लेष-बंध।

३५८. वह उच्चय-बंध क्या है?

उच्चय-बंध—तृण, काठ, पत्र, तुष, भूषा, गोबर और कचरे की राशि (ढेर या पुंज) की जाती

है, वह ऊंचाई के कारण उच्चय-बंध कहलाता है। इसका कालमान जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्टतः संख्येय काल है। यह है उच्चय-बंध।

३५९. वह समुच्चय-बंध क्या है?

समुच्चय बंध—कूप, तालाब, नदी, ब्रह्म, बावड़ी, पुष्करणी, दीर्घिका, गुंजालिका, सर, सरपंक्ति, सरसर की पंक्ति, बिल की पंक्ति, देवकुल, सभा, प्रपा, स्तूप, खाई, परिघा, प्राकार, अट्टालक (बुर्ज), चरिका, द्वार, गोपुर, तोरण, प्रासाद, घर, कुटीर, पर्वतगृह, दुकान, दुराहा, तिराहा, चौक, चौराहा, चारों ओर दरवाजे वाला देवल, महापथ और पथ आदि का चूना, चिकनी मिट्टी और शिला के समुच्चय से जो बंध किया जाता है, वह समुच्चय-बंध है। इसका कालमान जघन्यतः अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्टतः संख्येय काल है। यह है समुच्चय-बंध।

३६०. वह संहनन-बंध क्या है?

संहनन-बंध दो प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—देश-संहनन-बंध, सर्व-संहनन-बंध।

३६१. वह देश-संहनन-बंध क्या है?

देश-संहनन-बंध—शकट, रथ, यान, युग्य-गिल्लि, थिल्लि, शिबिका, स्यंदमानिका, तवा, लोह-कटाह, करछी, आसन, शयन, स्तंभ, भांड, पात्र, उपकरण आदि का देश-संहनन-बंध होता है। इसका कालमान जघन्यतः अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्टतः संख्येय काल है। यह है देश-संहनन-बंध।

३६२. वह सर्व-संहनन-बंध क्या है?

सर्व-संहनन-बंध—क्षीर का उदक आदि से संबंध सर्व-संहनन-बंध है। यह है सर्व-संहनन-बंध। यह है संहनन-बंध। यह है आलीनकरण-बंध।

शरीर की अपेक्षा

३६३. वह शरीर-बंध क्या है?

शरीर बंध दो प्रकार का प्रज्ञप्त है जैसे—पूर्व-प्रयोग-प्रत्ययिक, प्रत्युत्पन्न-प्रयोग-प्रत्ययिक।

३६४. वह पूर्व-प्रयोग-प्रत्ययिक क्या है?

पूर्व-प्रयोग-प्रत्ययिक—नैरयिक आदि संसारस्थ सब जीव विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न कारणों से अपने प्रदेशों का समुद्घात (शरीर से बाहर प्रक्षेपण) करते हैं, उस समय जीव-प्रदेशों का बंध (विशेष-विन्यास) उत्पन्न होता है। यह पूर्व-प्रयोग-प्रत्ययिक है।

३६५. वह प्रत्युत्पन्न-प्रयोग-प्रत्ययिक क्या है? प्रत्युत्पन्न-प्रयोग-प्रत्ययिक—केवल-ज्ञानी अनगर जब केवलि-समुद्घात से समवहत होकर जीव-प्रदेशों का विस्तार कर, उस समुद्घात से प्रतिनिवर्तमान होता है—जीव-प्रदेशों का संकोच करता है, उस समय अंतरालवर्ती मंथ की क्रिया के क्षण में तैजस और कर्मण शरीर का बंध उत्पन्न होता है। इसका कारण क्या है? समुद्घात से निवृत्ति के समय केवली के जीव-प्रदेश एकत्र (संघात) दशा को प्राप्त होते हैं। यह है प्रत्युत्पन्न-प्रयोग-प्रत्ययिक। यह है शरीर-बंध।

शरीर-प्रयोग की अपेक्षा

३६६. वह शरीर-प्रयोग-बंध क्या है ?

शरीर-प्रयोग-बंध पांच प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध, वैक्रिय-शरीर-प्रयोग-बंध, आहारक-शरीर-प्रयोग-बंध, तैजस-शरीर-प्रयोग-बंध, कर्म-शरीर-प्रयोग-बंध।

औदारिक-शरीर-प्रयोग की अपेक्षा

३६७. भंते ! औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है ?

गौतम ! औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध पांच प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध, द्वीन्द्रिय-औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध यावत् पंचेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध।

३६८. भंते ! एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है ?

गौतम ! एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध पांच प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध-इस प्रकार इस अभिलाप के अनुसार एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध के भेद पण्णवणा के अवगाहना-संस्थान नामक पद (२१/३२०) में वर्णित औदारिक-शरीर की भांति वक्तव्य हैं यावत् पर्याप्तक-गर्भावक्रांतिक-मनुष्य-पंचेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध, अपर्याप्तक-गर्भावक्रांतिक-मनुष्य-पंचेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध।

३६९. भंते ! औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध किस कर्म के उदय से होता है ?

गौतम ! औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध के तीन हेतु हैं—

१. वीर्य-सयोग-सद्व्यवृत्ता-वीर्य-योग तथा तथाविध पुद्गल-सामग्री।

२. प्रमाद-प्रमाद-हेतुक।

३. कर्म—(एकेन्द्रिय-जाति आदि का उदयवर्ती कर्म), योग, (काय आदि योग) भव (तिर्यच आदि का अनुभूयमान जन्म) और आयुष्य(उदयवर्ती आयुष्य)-सापेक्ष औदारिक-शरीर-प्रयोग-नाम-कर्म का उदय।

३७०. भंते ! एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध किस कर्म के उदय से होता है ? औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध की भांति वक्तव्यता। इसी प्रकार पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध की वक्तव्यता यावत् वनस्पतिकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध की वक्तव्यता। इसी प्रकार द्वीन्द्रिय-, त्रीन्द्रिय- और चतुरिन्द्रिय-औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध की वक्तव्यता।

३७१. भंते ! तिर्यग्योनिक-पंचेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध किस कर्म के उदय से होता है ?

औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध की भांति वक्तव्यता।

३७२. भंते ! मनुष्य-पंचेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध किस कर्म के उदय से होता है ?

गौतम! मनुष्य-पंचेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध के तीन हेतु हैं—वीर्य-सयोग-सद्-
-द्रव्यता, प्रमाद तथा कर्म-, योग-, भव- और आयुष्य-सापेक्ष मनुष्य-पंचेन्द्रिय-औदारिक-
-शरीर-प्रयोग नाम-कर्म का उदय।

३७३. भंते! औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध क्या देश-बंध है? सर्व-बंध है?

गौतम! देश-बंध भी है, सर्व-बंध भी है।

३७४. भंते! एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध क्या देश-बंध है? सर्व-बंध है?

औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध की भांति वक्तव्यता, इसी प्रकार पृथ्वीकायिक यावत्—

३७५. भंते! मनुष्य-पंचेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध क्या देश-बंध है? सर्व-बंध है?

गौतम! देश-बंध भी है, सर्व-बंध भी है।

३७६. भंते! औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध काल की अपेक्षा कितने काल तक रहता है?

गौतम! सर्व-बंध का कालमान एक समय। देश-बंध का कालमान जघन्यतः एक समय,
उत्कृष्टतः एक-समय-न्यून-तीन-पत्योपम है।

३७७. भंते! एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध काल की अपेक्षा कितने काल तक रहता है?

गौतम! सर्व-बंध का कालमान एक समय। देश-बंध का कालमान जघन्यतः एक समय,
उत्कृष्टतः एक-समय-न्यून-बाईस-हजार-वर्ष है।

३७८. पृथ्वीकाय-एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध की पृच्छा।

गौतम! सर्व-बंध का कालमान एक समय। देश-बंध का कालमान जघन्यतः तीन-समय-
-न्यून-क्षुल्लक-भव-ग्रहण, उत्कृष्टतः एक-समय-न्यून-बाईस-हजार-वर्ष है। इसी प्रकार
सबके सर्व-बंध का कालमान एक समय। देश-बंध का नियम यह है—जिनके वैक्रिय-शरीर
नहीं है, उनके जघन्यतः तीन-समय-न्यून-क्षुल्लक-भव-ग्रहण है, उत्कृष्टतः जो स्थिति निर्दिष्ट
है, उसमें एक-समय न्यून कर देना चाहिए।

जिनके वैक्रिय-शरीर है, उनके देश-बंध का कालमान जघन्यतः एक समय, उत्कृष्टतः जिसके
जितनी स्थिति निर्दिष्ट है, उसमें एक-समय-न्यून कर देना चाहिए यावत् मनुष्यों के देश-बंध
का कालमान जघन्यतः एक समय, उत्कृष्टतः एक-समय-न्यून-तीन-पत्योपम है।

३७९. भंते! औदारिक-शरीर के बंध का अंतर काल की अपेक्षा कितने काल का है?

गौतम! औदारिक-शरीर के सर्व-बंध का अंतर जघन्यतः तीन-समय-न्यून-क्षुल्लक-भव-
-ग्रहण, उत्कृष्टतः तैतीस-सागरोपम-एक-समय-अधिक-पूर्व-कोटि है। देश-बंध का अंतर
जघन्यतः एक समय, उत्कृष्टतः तीन-समय-अधिक-तैतीस-सागरोपम है।

३८०. एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर के बंध के अंतर की पृच्छा।

गौतम! एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर के सर्व बंध का अंतर जघन्यतः तीन-समय-न्यून-
-क्षुल्लक-भव-ग्रहण, उत्कृष्टतः एक-समय-अधिक-बाईस-हजार-वर्ष है। देश-बंध का
अंतर जघन्यतः एक-समय, उत्कृष्टतः अन्तर्मुहूर्त्त है।

३८१. पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर के बंध के अन्तर की पृच्छा।

सर्व-बंध का अन्तर एकेन्द्रिय की भांति वक्तव्य है। देश-बंध का अंतर जघन्यतः एक समय, उत्कृष्टतः तीन समय है। जैसे पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय की वक्तव्यता है, वैसे वायुकाय-वर्जित यावत् चतुरिन्द्रिय की वक्तव्यता, इतना विशेष है—सर्व-बंध का अंतर उत्कृष्टतः जिसकी जितनी स्थिति निर्दिष्ट है, उसमें एक समय अधिक कर देना चाहिए। वायुकायिक के सर्व-बंध का अंतर जघन्यतः तीन-समय-न्यून-क्षुल्लक-भव-ग्रहण, उत्कृष्टतः एक-समय-अधिक-तीन-हजार-वर्ष है। देश-बंध का अंतर जघन्यतः एक समय, उत्कृष्टतः अंतर्मुहूर्त है।

३८२. पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिक-औदारिक-शरीर के बंध के अन्तर की पृच्छा।

पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिक-औदारिक-शरीर के सर्व-बंध का अंतर जघन्यतः तीन-समय-न्यून-क्षुल्लक-भव-ग्रहण, उत्कृष्टतः एक-समय-अधिक-पूर्व-कोटि है। देश-बंध का अंतर एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर की भांति पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिक-औदारिक-शरीर का वक्तव्य है। इस प्रकार मनुष्यों का भी निरवशेष रूप में वक्तव्य है यावत् उत्कृष्टतः अंतर्मुहूर्त है।

३८३. भंते! एकेन्द्रिय-जीव नोएकेन्द्रिय (द्वीन्द्रिय आदि) में जन्म लेकर पुनः एकेन्द्रिय में जन्म लेता है, उस अवस्था में एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-प्रयोग के बंध का अंतर काल की अपेक्षा कितने काल का है?

गौतम! सर्व-बंध का अंतर जघन्यतः तीन-समय-न्यून-दो-क्षुल्लक-भव-ग्रहण, उत्कृष्टतः संख्येय-वर्ष-अधिक-दो-हजार सागरोपम है। देश-बंध का अंतर जघन्यतः एक-समय-अधिक-क्षुल्लक-भव-ग्रहण, उत्कृष्टतः संख्येय-वर्ष-अधिक-दो-हजार-सागरोपम है।

३८४. भंते! पृथ्वीकायिक-जीव नो-पृथ्वीकायिक में जन्म लेकर पुनः पृथ्वीकायिक में जन्म लेता है। उस अवस्था में पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय-औदारिक-शरीर-प्रयोग के बंध का अंतर काल की अपेक्षा कितने काल का है?

गौतम! सर्व-बंध का अंतर जघन्यतः तीन-समय-न्यून-दो-क्षुल्लक-भव-ग्रहण, उत्कृष्टतः अनंत काल—अनंत उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल की अपेक्षा, क्षेत्र की अपेक्षा अनंत लोक—असंख्येय पुद्गल-परिवर्त, वे पुद्गल-परिवर्त आवलिका-के-असंख्यातर्वे-भाग जितने हैं। देश-बंध का अंतर जघन्यतः एक-समय-अधिक-क्षुल्लक-भव-ग्रहण, उत्कृष्टतः अनंत काल यावत् आवलिका-के-असंख्यातर्वे-भाग जितने हैं। जैसे—पृथ्वीकायिक-एकेन्द्रिय की वक्तव्यता है, वैसे वनस्पतिकायिक-वर्जित यावत् मनुष्य की वक्तव्यता। वनस्पतिकायिक के सर्व-बंध का अंतर जघन्यतः तीन-समय-न्यून-दो-क्षुल्लक-भव-ग्रहण पूर्ववत् है, उत्कृष्टतः असंख्येय काल—असंख्येय अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी काल की अपेक्षा, क्षेत्र की अपेक्षा—असंख्येय लोक, इसी प्रकार देश-बंध का अंतर जघन्यतः एक-समय-अधिक-क्षुल्लक-भव-ग्रहण, उत्कृष्टतः पृथ्वी-काल—असंख्येय अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी काल की अपेक्षा, क्षेत्र की अपेक्षा—असंख्येय लोक।

३८५. भंते! इन औदारिक-शरीर के देश-बंधक, सर्व-बंधक और अबंधक जीवों में कौन किनसे अल्प, बहु, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

गौतम! औदारिक-शरीर के सर्व-बंधक जीव सबसे अल्प हैं। अबंधक विशेषाधिक हैं। देश-
-बंधक असंख्येय गुण हैं।

वैक्रिय-शरीर-प्रयोग की अपेक्षा

३८६. भंते! वैक्रिय-शरीर-प्रयोग-बंध कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?

गौतम! वैक्रिय-शरीर-प्रयोग-बंध दो प्रकार का प्रज्ञप्त है—जैसे—एकेन्द्रिय-वैक्रिय-शरीर-
-प्रयोग-बंध, पंचेन्द्रिय-वैक्रिय-शरीर-प्रयोग-बंध।

३८७. यदि एकेन्द्रिय-वैक्रिय-शरीर-प्रयोग-बंध है तो क्या वह वायुकायिक-एकेन्द्रिय-शरीर-
-प्रयोग-बंध है? अवायुकायिक-एकेन्द्रिय-शरीर-प्रयोग-बंध है?

इसी प्रकार इस अभिलाष के अनुसार पणवणा के अवगाहन-संस्थान नामक पद (पद २१)
की भांति वैक्रिय-शरीर का भेद वक्तव्य है यावत् पर्याप्तक-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरोपपातिक-
-कल्पातीत-वैमानिक-देव-पंचेन्द्रिय-वैक्रिय-शरीर-प्रयोग-बंध, अपर्याप्तक-सर्वार्थसिद्ध-
-अनुत्तरोपपातिक-कल्पातीत-वैमानिक-देव-पंचेन्द्रिय-वैक्रिय-शरीर-प्रयोग-बंध।

३८८. भंते! वैक्रिय-शरीर-प्रयोग-बंध किस कर्म के उदय से होता है?

गौतम! वैक्रिय-शरीर-प्रयोग-बंध के तीन हेतु हैं—१. वीर्य-सयोग-सद्-द्रव्यता, २. प्रमाद,
३. कर्म-, योग-, भव-, आयुष्य- और लब्धि-सापेक्ष-वैक्रिय-शरीर-प्रयोग-नाम-कर्म।

३८९. वायुकायिक-एकेन्द्रिय-वैक्रिय-शरीर-प्रयोग के बंध की पृच्छा।

गौतम! वायुकायिक-एकेन्द्रिय-वैक्रिय-शरीर-प्रयोग-बंध के तीन हेतु हैं—वीर्य-सयोग-सद्-
-द्रव्यता यावत् लब्धि-सापेक्ष-वैक्रिय-शरीर-प्रयोग-नाम-कर्म।

३९०. भंते! रत्नप्रभा-पृथ्वी-नैरयिक-पंचेन्द्रिय-वैक्रिय-शरीर-प्रयोग-बंध किस कर्म के उदय से
होता है?

गौतम! रत्नप्रभा-पृथ्वी-नैरयिक-पंचेन्द्रिय-वैक्रिय-शरीर-प्रयोग-बंध के तीन हेतु हैं—वीर्य-
-सयोग-सद्-द्रव्यता यावत् आयुष्य-सापेक्ष-वैक्रिय-शरीर-प्रयोग-नाम-कर्म। इसी प्रकार
यावत् अधःसप्तमी की वक्तव्यता।

३९१. तिर्यग्योनिक-पंचेन्द्रिय-वैक्रिय-शरीर-प्रयोग-बंध की पृच्छा।

गौतम! तिर्यग्योनिक-पंचेन्द्रिय-वैक्रिय-शरीर-प्रयोग-बंध (के तीन हेतु हैं—) वीर्य-सयोग-
-सद्-द्रव्यता वायुकायिक की भांति वक्तव्य है। इसी प्रकार मनुष्य-पंचेन्द्रिय-वैक्रिय-शरीर-
-प्रयोग-बंध की वक्तव्यता। असुरकुमार-भवनवासी-देव-पंचेन्द्रिय-वैक्रिय-शरीर-प्रयोग-
-बंध रत्न-प्रभा-पृथ्वी-नैरयिक की भांति वक्तव्य है। इसी प्रकार यावत् स्तनित-कुमार,
वानव्यंतर और ज्योतिष्क की वक्तव्यता। इसी प्रकार सौधर्म-कल्पोपपन्न-वैमानिक यावत्
अच्युत-त्रैवेयक-कल्पातीत-वैमानिक और अनुत्तरोपपातिक-कल्पातीत-वैमानिक की
वक्तव्यता।

३९२. भंते! वैक्रिय-शरीर-प्रयोग-बंध क्या देश-बंध है? सर्व-बंध है?

गौतम! देश-बंध भी है, सर्व-बंध भी है। इसी प्रकार वायुकायिक-एकेन्द्रिय-वैक्रिय-शरीर--

-प्रयोग-बंध की वक्तव्यता। इसी प्रकार रत्नप्रभा-पृथ्वी-नैरयिक यावत् अनुत्तरोपपातिक-कल्पातीत-वैमानिक की वक्तव्यता।

३९३. भंते! वैक्रिय-शरीर-प्रयोग-बंध काल की अपेक्षा कितने काल का है?

गौतम! सर्व-बंध जघन्यतः एक समय, उत्कृष्टतः दो समय है। देश-बंध जघन्यतः एक समय, उत्कृष्टतः एक-समय-न्यून-तैत्तीस-सागरोपम है।

३९४. वायुकायिक-एकेन्द्रिय-वैक्रिय-शरीर-प्रयोग-बंध के कालमान की पृच्छा।

गौतम! सर्व-बंध एक समय, देश-बंध जघन्यतः एक समय, उत्कृष्टतः अंतर्मुहूर्त है।

३९५. रत्नप्रभा-पृथ्वी-नैरयिक-वैक्रिय-शरीर-प्रयोग-बंध के कालमान की पृच्छा।

गौतम! सर्व-बंध एक समय, देश-बंध जघन्यतः तीन-समय-न्यून-दस-हजार-वर्ष, उत्कृष्टतः एक-समय-न्यून-सागरोपम है। इसी प्रकार यावत् अधःसप्तमी की वक्तव्यता, इतना विशेष है—देश-बंध में जिसकी जो जघन्य स्थिति है, उसमें तीन-समय न्यून कर देना चाहिए यावत् उत्कृष्टतः उसमें एक-समय न्यून कर देना चाहिए।

पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिक और मनुष्यों की वायुकायिक की भांति वक्तव्यता। असुरकुमार, नागकुमार यावत् अनुत्तरोपपातिक-देवों की नैरयिक की भांति वक्तव्यता, इतना विशेष है—जिसकी जो स्थिति है, वह वक्तव्य है यावत् अनुत्तरोपपातिक-देवों के सर्व-बंध एक समय, देश-बंध जघन्यतः तीन-समय-न्यून-इकत्तीस-सागरोपम, उत्कृष्टतः एक-समय-न्यून-तैत्तीस-सागरोपम है।

३९६. भंते! वैक्रिय-शरीर-प्रयोग के बंध का अंतर काल की अपेक्षा कितने काल का है?

गौतम! सर्व-बंध का अंतर जघन्यतः एक समय, उत्कृष्टतः अनंतकाल—अनंत-अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी काल की अपेक्षा, क्षेत्र की अपेक्षा अनंत लोक—असंख्येय पुद्गल-परिवर्त, वे पुद्गल-परिवर्त आवलिका-के-असंख्यातर्वे-भाग जितने हैं। इसी प्रकार देश-बंध के अंतर की वक्तव्यता।

३९७. वायुकायिक-वैक्रिय-शरीर-प्रयोग-बंध के अंतर की पृच्छा।

गौतम! सर्व-बंध का अंतर जघन्यतः अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्टतः पत्योपम-का-असंख्यातर्वा-भाग है। इसी प्रकार देश-बंध के अंतर की वक्तव्यता।

३९८. तिर्यग्योनिक-पंचेन्द्रिय-वैक्रिय-शरीर-प्रयोग-बंध के अंतर की पृच्छा।

गौतम! सर्व-बंध का अंतर जघन्यतः अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्टतः पृथक्त्व-पूर्व-कोटि है। इसी प्रकार देश-बंध के अंतर की वक्तव्यता। इसी प्रकार मनुष्य-वैक्रिय-शरीर-प्रयोग-बंध के अंतर की वक्तव्यता।

३९९. भंते! वायुकायिक-जीव नो-वायुकायिक में जन्म लेकर पुनः वायुकायिक में जन्म लेता है। उस अवस्था में वायुकायिक-एकेन्द्रिय-वैक्रिय-शरीर-प्रयोग-बंध के अंतर की पृच्छा।

गौतम! सर्व-बंध का अंतर जघन्यतः अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्टतः अनंतकाल—वनस्पति-काल है। इसी प्रकार देश-बंध के अंतर की वक्तव्यता।

४००. भंते! जीव रत्नप्रभा-पृथ्वी-नैरयिक से नो-रत्नप्रभा-पृथ्वी-नैरयिक में जन्म लेकर पुनः रत्नप्रभा-पृथ्वी-नैरयिक में जन्म लेता है। उस अवस्था में रत्नप्रभा-पृथ्वी-नैरयिक-वैक्रिय-शरीर-प्रयोग-बंध के अंतर की पृच्छा।

गौतम! सर्व-बंध का अंतर जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त-अभ्यधिक-दस-हजार-वर्ष, उत्कृष्टतः वनस्पति-काल है। देश-बंध का अंतर जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टतः अनंतकाल-वनस्पति-काल है। इसी प्रकार यावत् अधःसप्तमी की वक्तव्यता, इतना विशेष है—जिसकी जो जघन्य स्थिति है, उसमें सर्व-बंध का अंतर जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त अभ्यधिक कर देना चाहिए, शेष उसी प्रकार वक्तव्य है।

पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिक और मनुष्य-वायुकायिक की भांति वक्तव्य हैं। असुरकुमार, नागकुमार यावत् सहस्रार-देव-ये रत्नप्रभा-पृथ्वी-नैरयिक की भांति वक्तव्य हैं, इतना विशेष है—सर्व-बंध के अंतर की जिसकी जो जघन्य स्थिति है, उसमें अन्तर्मुहूर्त अभ्यधिक कर देना चाहिए, शेष उसी प्रकार वक्तव्य है।

४०१. भंते! जीव आनत-देव से नो-आनत-देव में जन्म लेकर पुनः आनत-देव में जन्म लेता है। उस अवस्था में आनत-देव-वैक्रिय-शरीर-प्रयोग-बंध के अंतर की पृच्छा।

गौतम! सर्व-बंध का अंतर जघन्यतः पृथक्त्व-वर्ष-अभ्यधिक-अठारह-सागरोपम, उत्कृष्टतः अनंतकाल-वनस्पति-काल हैं। इसी प्रकार यावत् अच्युत की वक्तव्यता, इतना विशेष है—जिसकी जो स्थिति है, उसमें सर्व-बंध का अंतर जघन्यतः पृथक्त्व-वर्ष अभ्यधिक कर देना चाहिए, शेष उसी प्रकार वक्तव्य है।

४०२. ग्रैवेयक-कल्पातीत की पृच्छा।

गौतम! सर्व-बंध का अंतर जघन्यतः पृथक्त्व-वर्ष-अभ्यधिक-बाईस-सागरोपम, उत्कृष्टतः अनंतकाल-वनस्पति-काल है। देश-बंध का अंतर जघन्यतः पृथक्त्व-वर्ष, उत्कृष्टतः वनस्पति-काल है।

४०३. भंते! अनुत्तरोपपातिक-जीव की पृच्छा।

गौतम! सर्व-बंध का अंतर जघन्यतः पृथक्त्व-वर्ष-अभ्यधिक-इकतीस-सागरोपम, उत्कृष्टतः संख्येय-सागरोपम है। देशबंध का अंतर जघन्यतः पृथक्त्व-वर्ष, उत्कृष्टतः संख्येय-सागरोपम है।

४०४. भंते! इन वैक्रिय-शरीर के देश-बंधक, सर्व-बंधक और अबंधक जीवों में कौन किनसे अल्प, बहु, तुल्य अथवा विशेषाधिक है?

गौतम! वैक्रिय-शरीर के सर्व-बंधक जीव सबसे अल्प हैं, देशबंधक असंख्येय-गुण हैं, अबंधक अनंत-गुण हैं।

आहारक-शरीर-प्रयोग की अपेक्षा

४०५. भंते! आहारक-शरीर-प्रयोग-बंध कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?

गौतम! आहारक-शरीर-प्रयोग-बंध एक आकार का प्रज्ञप्त है।

४०६. यदि एक आकार का प्रज्ञप्त है तो क्या मनुष्य-आहारक-शरीर-प्रयोग-बंध है? अमनुष्य-आहारक-शरीर-प्रयोग-बंध है?

गौतम! वह मनुष्य-आहारक-शरीर-प्रयोग-बंध है, अमनुष्य-आहारक-शरीर-प्रयोग-बंध नहीं है। इस प्रकार इस अभिलाप के अनुसार अवगाहन-संस्थान नामक पणवणा (पद २१) यावत् ऋद्धि-प्राप्त-प्रमत्त-संयत-सम्यक्-दृष्टि, पर्याप्तक-संख्येय-वर्षायुष्क-कर्मभूमिक-गर्भावक्रांतिक-मनुष्य-आहारक-शरीर-प्रयोग-बंध है, ऋद्धि-रहित-प्रमत्त-संयत-पर्याप्तक-सम्यक्दृष्टि-संख्येय-वर्षायुष्क-कर्मभूमिक-गर्भावक्रांतिक-मनुष्य-आहारक-शरीर-प्रयोग-बंध नहीं है।

४०७. भंते! आहारक-शरीर-प्रयोग-बंध किस कर्म के उदय से होता है?

गौतम! आहारक-शरीर-प्रयोग-बंध के तीन हेतु हैं—१. वीर्य-सयोग-सद्-द्रव्यता, २. प्रमाद ३. कर्म-, योग-, भव-, आयुष्य- और लब्धि-सापेक्ष आहारक-शरीर-प्रयोग-नाम-कर्म का उदय।

४०८. भंते! आहारक-शरीर-प्रयोग-बंध क्या देश-बंध है? सर्व-बंध है?

गौतम! देश-बंध भी है, सर्व-बंध भी है।

४०९. भंते! आहारक-शरीर-प्रयोग-बंध काल की अपेक्षा कितने काल का है?

गौतम! सर्व-बंध एक समय, देश-बंध जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कृष्टतः भी अंतर्मुहूर्त्त है।

४१०. भंते! आहारक-शरीर-प्रयोग के बंध का अंतर काल की अपेक्षा कितने काल का है?

गौतम! सर्व-बंध का अंतर जघन्यतः अंतर्मुहूर्त्त, उत्कृष्टतः अनंतकाल—अनंत-अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी काल की अपेक्षा, क्षेत्र की अपेक्षा अनंतलोक-देशोन-अपार्थ-पुद्गल-परिवर्त। इसी प्रकार देश-बंध के अंतर की वक्तव्यता।

४११. भंते! इन आहारक-शरीर के देश-बंधक, सर्व-बंधक और अबंधक जीवों में कौन किनसे अल्प, बहु, तुल्य अथवा विशेषाधिक है?

गौतम! आहारक-शरीर के सर्व-बंधक जीव सबसे अल्प हैं, देश-बंधक संख्येय गुण हैं, अबंधक अनंतगुण हैं।

तैजस-शरीर-प्रयोग की अपेक्षा

४१२. भंते! तैजस-शरीर-प्रयोग-बंध कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?

गौतम! तैजस-शरीर-प्रयोग-बंध पांच प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—एकेन्द्रिय-तैजस-शरीर-प्रयोग-बंध, द्वीन्द्रिय-तैजस-शरीर-प्रयोग-बंध यावत् पंचेन्द्रिय-तैजस-शरीर-प्रयोग-बंध।

४१३. भंते! एकेन्द्रिय-तैजस-शरीर-प्रयोग-बंध कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?

इस प्रकार इस अभिलाप के अनुसार एकेन्द्रिय-तैजस-शरीर-प्रयोग-बंध के भेद पणवणा के अवगाहन-संस्थान-पद (पद २१) की भांति वक्तव्य है यावत् पर्याप्तक-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरोपपातिक-कल्पातीत-वैमानिक-देव-पंचेन्द्रिय-तैजस-शरीर-प्रयोग-बंध और अपर्याप्तक-सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरोपपातिक-कल्पातीत-वैमानिक-देव-पंचेन्द्रिय-तैजस-शरीर-प्रयोग-बंध।

४१४. भंते! तैजस-शरीर-प्रयोग-बंध किस कर्म के उदय से होता है?

गौतम! तैजस-शरीर-प्रयोग-बंध के तीन हेतु हैं—१. वीर्य-सयोग-सद्-द्रव्यता २. प्रमाद ३. कर्म-, योग-, भव- और आयुष्य-सापेक्ष तैजस-शरीर-प्रयोग-नाम-कर्म का उदय।

४१५. भंते! तैजस-शरीर-प्रयोग-बंध क्या देश-बंध है? सर्व-बंध है?

गौतम! देश-बंध है, सर्व-बंध नहीं है?

४१६. भंते! तैजस-शरीर-प्रयोग-बंध काल की अपेक्षा कितने काल का है?

गौतम! तैजस-शरीर-प्रयोग-बंध काल की अपेक्षा दो प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—अनादिक अपर्यवसित, अनादिक सपर्यवसित।

४१७. भंते! तैजस-शरीर-प्रयोग-बंध का अंतर काल की अपेक्षा कितने काल का है?

गौतम! अनादिक-अपर्यवसित में अंतर नहीं है, अनादिक-सपर्यवसित में अंतर नहीं है।

४१८. भंते! इन तैजस-शरीर के देश-बंधक और अबंधक जीवों में कौन किनसे अल्प, बहु, तुल्य अथवा विशेषाधिक है?

गौतम! तैजस-शरीर के अबंधक जीव सबसे अल्प हैं, देश-बंधक अनंत-गुण हैं।

कर्म-शरीर-प्रयोग की अपेक्षा

४१९. भंते! कर्म-शरीर-प्रयोग-बंध कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?

गौतम! कर्म-शरीर-प्रयोग-बंध आठ प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—ज्ञानावरणीय-कर्म-शरीर-प्रयोग-बंध यावत् आंतरायिक-कर्म-शरीर-प्रयोग-बंध।

४२०. भंते! ज्ञानावरणीय-कर्म-शरीर-प्रयोग-बंध किस कर्म के उदय से होता है?

गौतम! ज्ञानावरणीय-कर्म-शरीर-प्रयोग-बंध के सात हेतु हैं—ज्ञान का विरोध अथवा प्रतिकूल आचरण, ज्ञान का अपलाप, ज्ञान के ग्रहण में विघ्न उपस्थित करना, ज्ञान के प्रति अप्रीति रखना, ज्ञान की अवहेलना करना, ज्ञान में विसंवाद दिखलाना, ज्ञानावरणीय-कर्म-शरीर-प्रयोग-नाम-कर्म का उदय।

४२१. भंते! दर्शनावरणीय-कर्म-शरीर-प्रयोग-बंध किस कर्म के उदय से होता है?

गौतम! दर्शनावरणीय-कर्म-शरीर-प्रयोग-बंध के सात हेतु हैं—दर्शन का विरोध अथवा प्रतिकूल आचरण, दर्शन का अपलाप, दर्शन के ग्रहण में विघ्न उपस्थित करना, दर्शन के प्रति अप्रीति रखना, दर्शन में विसंवाद दिखलाना, दर्शनावरणीय-शरीर-प्रयोग-नाम-कर्म का उदय।

४२२. भंते! सात-वेदनीय-कर्म-शरीर-प्रयोग-बंध किस कर्म के उदय से होता है?

गौतम! सात-वेदनीय-कर्म-शरीर-प्रयोग-बंध के हेतु हैं—प्राणों की अनुकंपा, भूतों की अनुकंपा, जीवों की अनुकंपा, सत्त्वों की अनुकंपा अनेक प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों को दुःखित न करना, उन्हें दीन न बनाना, शरीर का अपचय करने वाला शोक पैदा न करना, अश्रुपात कराने वाला शोक पैदा न करना, लाठी आदि का प्रहार न करना, शारीरिक परिताप

न देना, सात-वेदनीय-शरीर प्रयोग-नाम-कर्म का उदय।

४२३. भंते! असात-वेदनीय-कर्म-शरीर-प्रयोग-बंध किस कर्म के उदय से होता है?

गौतम! असात-वेदनीय-कर्म-शरीर-प्रयोग-बंध के हेतु हैं—प्राणों की अनुकंपा न करना, भूतों की अनुकंपा न करना, जीवों की अनुकंपा न करना, सत्त्वों की अनुकंपा न करना, अनेक प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों को दुःखित करना, उन्हें दीन बनाना, शरीर का अपचय करने वाला शोक पैदा करना, अश्रुपात करने वाला शोक पैदा करना, लाठी आदि का प्रहार करना, शारीरिक परिताप देना, असात-वेदनीय-शरीर-प्रयोग-नाम-कर्म का उदय।

४२४. भंते! मोहनीय-कर्म-शरीर-प्रयोग-बंध किस कर्म के उदय से होता है?

गौतम! मोहनीय-कर्म-शरीर-प्रयोग-बंध के सात हेतु हैं—तीव्र क्रोध, तीव्र मान, तीव्र माया, तीव्र लोभ, तीव्र दर्शन-मोहनीय, तीव्र चारित्र-मोहनीय, मोहनीय-कर्म-शरीर-प्रयोग-नाम-कर्म का उदय।

४२५. भंते! नैरयिक-आयुष्य-कर्म-शरीर-प्रयोग-बंध किस कर्म के उदय से होता है?

गौतम! नैरयिक-आयुष्य-कर्म-शरीर-प्रयोग-बंध के पांच हेतु हैं—महारंभ, महापरिग्रह, पंचेन्द्रिय-वध, मांसाहार, नैरयिक-आयुष्य-कर्म-शरीर-प्रयोग-नाम-कर्म का उदय।

४२६. भंते! तिर्यग्योनिक-आयुष्य-कर्म-शरीर-प्रयोग-बंध किस कर्म के उदय से होता है?

गौतम! तिर्यग्योनिक-आयुष्य-कर्म-शरीर-प्रयोग-बंध के पांच हेतु हैं—माया, कूट माया, असत्य वचन, कूटतोल-कूटमाप, तिर्यग्योनिक-आयुष्य-कर्म-शरीर-प्रयोग-नाम-कर्म का उदय।

४२७. भंते! मनुष्य-आयुष्य-कर्म-शरीर-प्रयोग-बंध किस कर्म के उदय होता है?

गौतम! मनुष्य-आयुष्य-कर्म-शरीर-प्रयोग-बंध के पांच हेतु हैं—प्रकृति-भद्रता, प्रकृति-विनीतता, सानुक्रोशता, अमत्सरता, मनुष्य-आयुष्य-कर्म-शरीर-प्रयोग-नाम-कर्म का उदय।

४२८. भंते! देव-आयुष्य-कर्म-शरीर-प्रयोग-बंध किस कर्म के उदय से होता है?

गौतम! देव-आयुष्य-कर्म-शरीर-प्रयोग-बंध के पांच हेतु हैं—सराग संयम, संयमासंयम, बालतपःकर्म, अकाम निर्जरा, देवायुष्य-कर्म-शरीर-प्रयोग-नाम-कर्म का उदय।

४२९. भंते! शुभ-नाम-कर्म-शरीर-प्रयोग-बंध किस कर्म के उदय से होता है?

गौतम! शुभ-नाम-कर्म-शरीर-प्रयोग-बंध के पांच हेतु हैं—काया की ऋजुता, भाव की ऋजुता, भाषा की ऋजुता, अविस्वादन योग, शुभ-नाम-कर्म-शरीर-प्रयोग-नाम-कर्म का उदय।

४३०. भंते! अशुभ-नाम-कर्म-शरीर-प्रयोग-बंध किस कर्म के उदय से होता है?

गौतम! अशुभ-नाम-कर्म-शरीर-प्रयोग-बंध के पांच हेतु हैं—काया की अऋजुता, भाव की अऋजुता, भाषा की अऋजुता, विसंवादन योग, अशुभ-नाम-कर्म-शरीर-प्रयोग-नाम-कर्म का उदय।

४३१. भंते! उच्च-गोत्र-कर्म-शरीर-प्रयोग-बंध किस कर्म के उदय से होता है?

गौतम! उच्च-गोत्र-कर्म-शरीर-प्रयोग-बंध के नौ हेतु हैं—जाति का मद न करना, कुल का मद न करना, बल का मद न करना, रूप का मद न करना, तप का मद न करना, श्रुत का मद न करना, लाभ का मद न करना, ऐश्वर्य का मद न करना, उच्च-गोत्र-कर्म-शरीर-प्रयोग-नाम-कर्म का उदय।

४३२. भंते! नीच-गोत्र-कर्म-शरीर-प्रयोग-बंध किस कर्म के उदय से होता है?

गौतम! नीच-गोत्र-कर्म-शरीर-प्रयोग-बंध के नौ हेतु हैं—जाति का मद करना, कुल का मद करना, बल का मद करना, रूप का मद करना, तप का मद करना, श्रुत का मद करना, लाभ का मद करना, ऐश्वर्य का मद करना, नीच-गोत्र-कर्म-शरीर-प्रयोग-नाम-कर्म का उदय।

४३३. भंते! आंतरायिक-कर्म-शरीर-प्रयोग-बंध किस कर्म के उदय से होता है?

गौतम! आन्तरायिक-कर्म-शरीर-प्रयोग-बंध के छह हेतु हैं—दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, वीर्यान्तराय, आन्तरायिक-कर्म-शरीर-प्रयोग-नाम-कर्म का उदय।

४३४. भंते! ज्ञानावरणीय-कर्म-शरीर-प्रयोग-बंध क्या देश-बंध है? सर्व-बंध है?

गौतम! देश-बंध है, सर्व-बंध नहीं है। इसी प्रकार यावत् आन्तरायिक-कर्म-शरीर-प्रयोग-बंध की वक्तव्यता।

४३५. भंते! ज्ञानावरणीय-कर्म-शरीर-प्रयोग-बंध काल की अपेक्षा कितने काल का है?

गौतम! ज्ञानावरणीय-कर्म-शरीर-प्रयोग-बंध काल की अपेक्षा दो प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—अनादिक अपर्यवसित, अनादिक-सपर्यवसित। इसी प्रकार यावत् आन्तरायिक-कर्म-शरीर-प्रयोग-बंध की वक्तव्यता।

४३६. भंते! ज्ञानावरणीय-कर्म-शरीर-प्रयोग-बंध का अंतर काल की अपेक्षा कितने काल का है?

गौतम! अनादिक-अपर्यवसित में अंतर नहीं है, अनादिक सपर्यवसित में अंतर नहीं है। इसी प्रकार यावत् आन्तरायिक-कर्म-शरीर-प्रयोग-बंध के अंतर की वक्तव्यता।

४३७. भंते! इन ज्ञानावरणीय-कर्म-शरीर के देश-बंधक और अबंधक जीवों में कौन किनसे अल्प, बहु, तुल्य अथवा विशेषाधिक है?

गौतम! ज्ञानावरणीय-कर्म-शरीर के अबंधक जीव सबसे अल्प हैं, देश-बंधक अनन्त-गुण हैं। इसी प्रकार आयुष्य-वर्जित यावत् आन्तरायिक-कर्म-शरीर की वक्तव्यता।

४३८. आयुष्य-कर्म-शरीर-प्रयोग-देश-बंधक और अबंधक जीवों की पृच्छा।

गौतम! आयुष्य-कर्म-शरीर के देश-बंधक जीव सबसे अल्प हैं, अबंधक संख्येय-गुण हैं।

४३९. भंते! जिसके औदारिक-शरीर का सर्व-बंध है भंते! क्या वह वैक्रिय-शरीर का बंधक है? अबंधक है?

गौतम! बंधक नहीं है, अबंधक है।

वह आहारक-शरीर का बंधक है? अबंधक है?

गौतम! बन्धक नहीं है, अबन्धक है।

वह तैजस-शरीर का बंधक है? अबंधक है?

गौतम! बंधक है, अबन्धक नहीं है।

यदि बंधक है तो क्या देश-बन्धक है? सर्व-बंधक है?

गौतम! देश-बंधक है, सर्व-बंधक नहीं है।

वह कर्म-शरीर का बंधक है? अबंधक है?

गौतम! बंधक है अबंधक नहीं है।

यदि बंधक है तो क्या देश-बंधक है? सर्व-बंधक है?

गौतम! देश-बंधक है, सर्व बंधक नहीं है।

४४०. भंते! जिसके औदारिक-शरीर का देश-बन्ध है, भंते! क्या वह वैक्रिय-शरीर का बंधक है? अबंधक है?

गौतम! बंधक नहीं है, अबन्धक है। इस प्रकार जैसे सर्व-बंध की वक्तव्यता वैसे ही देश-बंध की वक्तव्यता यावत् कर्म-शरीर-देश-बंधक है, सर्व-बन्धक नहीं है।

४४१. भंते! जिसके वैक्रिय-शरीर का सर्व-बंध है भंते! क्या वह औदारिक-शरीर का बंधक है? अबंधक है?

गौतम! बंधक नहीं है, अबंधक है। इसी प्रकार आहारक-शरीर की वक्तव्यता। तैजस और कर्म शरीर की औदारिक-शरीर के साथ जो वक्तव्यता है, वही यहां वक्तव्य है यावत् कर्म-शरीर-देश-बंधक है, सर्व-बंधक नहीं है।

४४२. भंते! जिसके वैक्रिय-शरीर का देश-बंध है, भंते! क्या वह औदारिक-शरीर का बंधक है? अबंधक है?

गौतम! बंधक नहीं है, अबंधक है। इस प्रकार जैसे सर्व-बंध की वक्तव्यता है वही देश-बंध के विषय में वक्तव्य है, यावत् कर्म-शरीर-देश-बंधक है, सर्व-बंधक नहीं है।

४४३. भंते! जिसके आहारक-शरीर का सर्व-बंध है, भंते! क्या वह औदारिक-शरीर का बंधक है? अबंधक है?

गौतम! बंधक नहीं है, अबंधक है। इसी प्रकार वैक्रिय-शरीर की वक्तव्यता। तैजस- और कर्म-शरीर की औदारिक-शरीर के साथ जो वक्तव्यता है, वही यहां वक्तव्य है।

४४४. भंते! जिसके आहारक-शरीर का देश-बंध है, भंते! क्या वह औदारिक-शरीर का बंधक है? अबंधक है?

गौतम! बंधक नहीं है, अबंधक है। इस प्रकार जैसे सर्व-बंध की वक्तव्यता है, वही देश-बंध

के विषय में वक्तव्य है, यावत् कर्म-शरीर-देश-बंधक है, सर्व-बंधक नहीं है।

४४५. भंते! जिसके तैजस-शरीर का देश-बंध है, भंते! क्या वह औदारिक-शरीर का बंधक है? अबंधक है?

गौतम! बंधक है अथवा अबंधक है।

यदि बंधक है तो क्या देश-बंधक है? सर्व-बंधक है?

गौतम! देश-बंधक है अथवा सर्व-बंधक है।

वैक्रिय-शरीर का बंधक है? अबंधक है?

इसी प्रकार वक्तव्य है। इसी प्रकार आहारक-शरीर की वक्तव्यता।

कर्म-शरीर का बंधक है? अबंधक है?

गौतम! बन्धक है, अबंधक नहीं है।

यदि बंधक है तो क्या देश-बंधक है? सर्व-बंधक है?

गौतम! देश-बंधक है, सर्व-बंधक नहीं है।

४४६. भंते! जिसके कर्म-शरीर का देश-बंध है, भंते! क्या वह औदारिक-शरीर का बंधक है? अबंधक है?

गौतम! बंधक है अथवा अबंधक है, जैसे-तैजस-शरीर की वक्तव्यता वैसे ही कर्म-शरीर की वक्तव्यता, यावत्—

क्या तैजस-शरीर का बंधक है? अबंधक है?

गौतम! बंधक है, अबंधक नहीं है।

यदि बंधक है तो क्या देश-बंधक है? सर्व-बंधक है?

गौतम! देश-बंधक है, सर्व-बंधक नहीं है।

४४७. भंते! इन औदारिक-, वैक्रिय-, आहारक-, तैजस- और कर्म-शरीर के देश-बंधक, सर्व-बंधक और अबंधक जीवों में कौन किनसे अल्प, बहु, तुल्य अथवा विशेषाधिक है?

गौतम! १. आहारक-शरीर के सर्व-बंधक जीव सबसे अल्प हैं। २. उसके देश-बंधक उससे संख्येय-गुणा हैं। ३. वैक्रिय-शरीर के सर्व-बंधक उससे असंख्येय-गुणा हैं। ४. उसके देश-बंधक उससे असंख्येय-गुणा हैं। ५. तैजस- और कर्म-शरीर के अबंधक उससे अनंत-गुणा हैं। ६. औदारिक-शरीर के सर्व-बंधक उससे अनंत-गुणा हैं। ७. उसके अबंधक उससे विशेषाधिक हैं। ८. उसके देश-बंधक उससे असंख्येय-गुणा हैं। ९. तैजस और कर्म-शरीर के देश-बंधक उससे विशेषाधिक हैं। १०. वैक्रिय-शरीर के अबंधक उससे विशेषाधिक हैं। ११. आहारक-शरीर के अबंधक उससे विशेषाधिक हैं।

४४८. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

दसवां उद्देशक

श्रुत-शील-पद

४४९. राजगृह नगर यावत् गौतम ने इस प्रकार कहा—भंते! अन्ययूथिक इस प्रकार आख्यान करते हैं यावत् इस प्रकार प्ररूपणा करते हैं—

१. शील श्रेय है २. श्रुत श्रेय है ३. श्रुत और शील श्रेय है।

४५०. भंते! यह कैसे है?

गौतम! जो अन्ययूथिक इस प्रकार आख्यान करते हैं यावत् इस प्रकार कहते हैं, वे मिथ्या कहते हैं। गौतम! मैं इस प्रकार आख्यान करता हूँ यावत् प्ररूपणा करता हूँ—

मैंने चार प्रकार के पुरुषों का प्रज्ञापन किया जैसे—१. कोई पुरुष शील-संपन्न होता है, श्रुत-संपन्न नहीं होता २. कोई पुरुष श्रुत-संपन्न होता है, शील-संपन्न नहीं होता। ३. कोई पुरुष शील-संपन्न भी होता है, श्रुत-संपन्न भी होता है ४. कोई पुरुष न शील-संपन्न होता है और न श्रुत-संपन्न होता है।

जो प्रथम प्रकार का पुरुष है वह शीलवान है, श्रुतवान नहीं है—उपरत (अकरणीय से निवृत्त) है, धर्म का विज्ञाता नहीं है। गौतम! उस पुरुष को मैंने देशाराधक कहा है।

जो दूसरे प्रकार का पुरुष है, वह शीलवान नहीं है, श्रुतवान है—उपरत नहीं है, धर्म का विज्ञाता है। गौतम! उस पुरुष को मैंने देशविराधक कहा है।

जो तीसरे प्रकार का पुरुष है, वह शीलवान है श्रुतवान भी है—उपरत है, धर्म का विज्ञाता भी है। गौतम! उस पुरुष को मैंने सर्वाराधक कहा है।

जो चतुर्थ प्रकार का पुरुष है वह शीलवान नहीं है, श्रुतवान भी नहीं है—उपरत नहीं है, धर्म का विज्ञाता भी नहीं है।

गौतम! उस पुरुष को मैंने सर्व-विराधक कहा है।

आराधना-पद

४५१. भंते! आराधना के कितने प्रकार प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! आराधना के तीन प्रकार प्रज्ञप्त हैं, जैसे—ज्ञानाराधना, दर्शनाराधना, चरित्राराधना।

४५२. भंते! ज्ञानाराधना के कितने प्रकार प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! तीन प्रकार प्रज्ञप्त हैं, जैसे—उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य।

४५३. भंते! दर्शनाराधना के कितने प्रकार प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! तीन प्रकार प्रज्ञप्त हैं, जैसे—उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य।

४५४. भंते! चरित्राराधना के कितने प्रकार प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! तीन प्रकार प्रज्ञप्त हैं, जैसे—उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य।

४५५. भंते! जिसके उत्कृष्ट ज्ञानाराधना है क्या उसके उत्कृष्ट दर्शनाराधना है? जिसके उत्कृष्ट दर्शनाराधना है क्या उसके उत्कृष्ट ज्ञानाराधना है?

गौतम! जिसके उत्कृष्ट ज्ञानाराधना है, उसके दर्शनाराधना उत्कृष्ट अथवा अजघन्य-उत्कृष्ट होती है। जिसके उत्कृष्ट दर्शनाराधना है, उसके ज्ञानाराधना उत्कृष्ट, जघन्य अथवा अजघन्य-अनुत्कृष्ट होती है।

४५६. भंते! जिसके उत्कृष्ट ज्ञानाराधना है, क्या उसके उत्कृष्ट चरित्राराधना है, जिसके उत्कृष्ट चरित्राराधना है, क्या उसके उत्कृष्ट ज्ञानाराधना है?

गौतम! जिसके उत्कृष्ट ज्ञानाराधना है उसके चरित्राराधना उत्कृष्ट अथवा अजघन्य-उत्कृष्ट होती है। जिसके उत्कृष्ट चरित्राराधना है, उसके ज्ञानाराधना उत्कृष्ट, जघन्य अथवा अजघन्य-अनुत्कृष्ट होती है।

४५७. भंते! जिसके उत्कृष्ट दर्शनाराधना है क्या उसके उत्कृष्ट चरित्राराधना है? जिसके उत्कृष्ट चरित्राराधना है क्या उसके उत्कृष्ट दर्शनाराधना है?

गौतम! जिसके उत्कृष्ट दर्शनाराधना है, उसके चरित्राराधना उत्कृष्ट, जघन्य अथवा अजघन्य-अनुत्कृष्ट होती है। जिसके उत्कृष्ट चरित्राराधना है उसके दर्शनाराधना नियमतः उत्कृष्ट होती है।

४५८. भंते! उत्कृष्ट ज्ञानाराधना की आराधना कर जीव कितने भवों में सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अंत करता है?

गौतम! कोई जीव उसी भव में सिद्ध हो जाता है यावत् सब दुःखों का अंत कर देता है। कोई जीव कल्प-अथवा कल्पातीत-स्वर्ग में उपपन्न हो जाता है।

४५९. भंते! उत्कृष्ट दर्शनाराधना की आराधना कर जीव कितने भवों में सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अंत करता है?

गौतम! कोई जीव उसी भव में सिद्ध हो जाता है यावत् सब दुःखों का अंत कर देता है। कोई जीव कल्प-अथवा कल्पातीत-स्वर्ग में उपपन्न हो जाता है।

४६०. भंते! उत्कृष्ट चरित्राराधना की आराधना कर जीव कितने भवों में सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अंत करता है?

गौतम! कोई जीव उसी भव में सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अंत कर देता है। कोई जीव कल्पातीत-स्वर्ग में उपपन्न हो जाता है।

४६१. भंते! मध्यम ज्ञानाराधना की आराधना कर जीव कितने भवों में सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अंत करता है?

गौतम! कोई जीव दूसरे भव में सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अंत करता है, तीसरे भव का अतिक्रमण नहीं करता।

४६२. भंते! मध्यम दर्शनाराधना की आराधना कर जीव कितने भवों में सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अंत करता है?

गौतम! कोई जीव दूसरे भव में सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अंत करता है, तीसरे भव का अतिक्रमण नहीं करता।

४६३. भंते! मध्यम चरित्राराधना की आराधना कर जीव कितने भवों में सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अंत करता है ?

गौतम! कोई जीव दूसरे भव में सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अंत करता है, तीसरे भव का अतिक्रमण नहीं करता।

४६४. भंते! जघन्य ज्ञानाराधना की आराधना कर जीव कितने भवों में सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अंत करता है ?

गौतम! कोई जीव तीसरे भव में सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अंत करता है, सात-आठ भव का अतिक्रमण नहीं करता।

४६५. भंते! जघन्य दर्शनाराधना की आराधना कर जीव कितने भवों में सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अंत करता है ?

गौतम! कोई जीव तीसरे भव में सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अंत करता है, सात-आठ भव का अतिक्रमण नहीं करता।

४६६. भंते! जघन्य चरित्राराधना की आराधना कर जीव कितने भवों में सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अंत करता है ?

गौतम! कोई जीव तीसरे भव में सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अंत करता है, सात-आठ भव का अतिक्रमण नहीं करता।

पुद्गल-परिणाम-पद

४६७. भंते! पुद्गल का परिणाम कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है ?

गौतम! पुद्गल-परिणाम पांच प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे-वर्ण-परिणाम, गंध-परिणाम, रस-परिणाम, स्पर्श-परिणाम, संस्थान-परिणाम।

४६८. भंते! वर्ण-परिणाम कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है ?

गौतम! पांच प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे-काल-वर्ण-परिणाम यावत् शुक्ल-वर्ण-परिणाम। इस प्रकार इस अभिलाष के अनुसार गंध-परिणाम दो प्रकार का, रस-परिणाम पांच प्रकार का और स्पर्श-परिणाम आठ प्रकार का प्रज्ञप्त है।

४६९. भंते! संस्थान-परिणाम कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है ?

गौतम! पांच प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे-परिमंडल-संस्थान-परिणाम यावत् आयत-संस्थान-परिणाम।

पुद्गल-प्रदेश का द्रव्यादि-भंग-पद

४७०. भंते! पुद्गलास्तिकाय का एक प्रदेश क्या १. द्रव्य है? २. द्रव्य-देश है? ३. अनेक द्रव्य हैं? ४. अनेक द्रव्य-देश हैं? ५. अथवा द्रव्य और द्रव्य-देश है? ६. अथवा द्रव्य और अनेक द्रव्य-देश हैं? ७. अथवा अनेक द्रव्य और द्रव्य-देश हैं? ८. अथवा अनेक द्रव्य और अनेक द्रव्य-देश हैं ?

गौतम! १. वह स्यात् द्रव्य है। २. स्यात् द्रव्य-देश है ३. अनेक द्रव्य नहीं हैं ४. अनेक

द्रव्य-देश नहीं हैं ५. द्रव्य आर द्रव्य-देश नहीं हैं। ६. द्रव्य और अनेक द्रव्य-देश नहीं हैं।
७. अनेक द्रव्य और द्रव्य-देश नहीं हैं। ८. अनेक द्रव्य और अनेक द्रव्य-देश नहीं हैं।

४७१. भंते! पुद्गलास्तिकाय के दो प्रदेश क्या द्रव्य है? द्रव्य-देश है?—पृच्छा।

गौतम! स्यात् द्रव्य है, स्यात् द्रव्य-देश है; स्यात् अनेक द्रव्य हैं, स्यात् अनेक द्रव्य-देश हैं, स्यात् द्रव्य और द्रव्य-देश हैं। शेष भंग नहीं बनते इसलिए उनका प्रतिषेध करणीय है।

४७२. भंते! पुद्गलास्तिकाय के तीन प्रदेश क्या द्रव्य है? द्रव्य-देश है?—पृच्छा।

गौतम! वे स्यात् द्रव्य है, स्यात् द्रव्य-देश है इसी प्रकार सात भंग वक्तव्य है यावत् स्यात् अनेक द्रव्य और द्रव्य-देश हैं। अनेक द्रव्य और अनेक द्रव्य देश नहीं हैं।

४७३. भंते! पुद्गलास्तिकाय के चार प्रदेश क्या द्रव्य है?—पृच्छा।

गौतम! वे स्यात् द्रव्य हैं, स्यात् द्रव्य-देश हैं, आठों भंग वक्तव्य हैं यावत् स्यात् अनेक द्रव्य और अनेक द्रव्य-देश हैं। जैसे पुद्गलास्तिकाय के चार प्रदेशों के भंग बतलाए गए हैं वैसे ही पांच, छह, सात यावत् असंख्येय प्रदेशों के भंग वक्तव्य हैं।

४७४. भंते! पुद्गलास्तिकाय के अनंत प्रदेश क्या द्रव्य है?

इसी प्रकार स्यात् द्रव्य है यावत् अनेक द्रव्य और अनेक द्रव्य-देश हैं।

४७५. भंते! लोकाकाश के प्रदेश कितने प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! लोकाकाश के असंख्येय प्रदेश प्रज्ञप्त हैं।

४७६. भंते! एक एक जीव के जीव-प्रदेश कितने प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! जितने लोकाकाश के प्रदेश हैं, उतने ही प्रत्येक जीव के जीव-प्रदेश प्रज्ञप्त हैं।

कर्मों का अविभाग-परिच्छेद-पद

४७७. भंते! कर्म-प्रकृतियां कितनी प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! कर्म प्रकृतियां आठ प्रज्ञप्त हैं? जैसे—ज्ञानावरणीय यावत् आंतरायिक।

४७८. भंते! नैरयिकों के कर्म-प्रकृतियां कितनी प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! नैरयिकों के कर्म-प्रकृतियां आठ प्रज्ञप्त हैं। इस प्रकार वैमानिक पर्यंत सब जीवों के आठ कर्म-प्रकृतियां स्थापनीय है।

४७९. भंते! ज्ञानावरणीय-कर्म के अविभाग-परिच्छेद कितने प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! अनंत अविभाग-परिच्छेद प्रज्ञप्त हैं।

४८०. भंते! नैरयिकों के ज्ञानावरणीय-कर्म के अविभाग-परिच्छेद कितने प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! अनंत अविभाग-परिच्छेद प्रज्ञप्त हैं।

४८१. इस प्रकार वैमानिक-पर्यन्त सब जीवों की पृच्छा।

गौतम! अनंत अविभाग-परिच्छेद प्रज्ञप्त हैं।

जिस प्रकार ज्ञानावरणीय के अनंत अविभाग-परिच्छेद कहे गए हैं, उसी प्रकार आठों कर्म-

-प्रकृतियों के वक्तव्य हैं यावत् वैमानिकों के आंतरायिक-कर्म अनंत अविभाग-परिच्छेद प्रज्ञप्त हैं।

४८२. भंते! एक-एक जीव का एक-एक जीव-प्रदेश ज्ञानावरणीय-कर्म के कितने अविभाग-परिच्छेदों से आवेष्टित-परिवेष्टित है?

गौतम! स्यात् आवेष्टित-परिवेष्टित है, स्यात् आवेष्टित-परिवेष्टित नहीं है। यदि आवेष्टित-परिवेष्टित है तो वह नियमतः अनंत अविभाग-परिच्छेदों से आवेष्टित-परिवेष्टित है।

४८३. भंते! एक-एक नैरयिक का एक-एक जीव-प्रदेश ज्ञानावरणीय-कर्म के कितने अविभाग-परिच्छेदों से आवेष्टित-परिवेष्टित है?

गौतम! नियमतः अनंत अविभाग-परिच्छेदों से आवेष्टित-परिवेष्टित है। नैरयिक की भांति वैमानिक तक के दण्डकों की वक्तव्यता, इतना विशेष है—मनुष्य जीव की भांति वक्तव्य है।

४८४. भंते! एक-एक जीव का एक-एक जीव-प्रदेश दर्शनावरणीय-कर्म के कितने अविभाग-परिच्छेदों से आवेष्टित-परिवेष्टित है?

इस प्रकार जैसे ज्ञानावरणीय की वक्तव्यता वैसे ही दर्शनावरणीय के वैमानिक तक के दण्डकों की वक्तव्यता। इसी प्रकार यावत् आंतरायिक की वक्तव्यता, इतना विशेष है—वेदनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र—इन चार कर्मों के विषय में मनुष्य की नैरयिक की भांति वक्तव्यता।

कर्मों का परस्पर नियम-भजना-पद

४८५. भंते! जिसके ज्ञानावरणीय है क्या उसके दर्शनावरणीय होता है? जिसके दर्शनावरणीय है क्या उसके ज्ञानावरणीय होता है?

गौतम! जिसके ज्ञानावरणीय है उसके दर्शनावरणीय नियमतः होता है। जिसके दर्शनावरणीय है उसके ज्ञानावरणीय नियमतः होता है।

४८६. भंते! जिसके ज्ञानावरणीय है क्या उसके वेदनीय होता है? जिसके वेदनीय है क्या उसके ज्ञानावरणीय होता है?

गौतम! जिसके ज्ञानावरणीय है उसके वेदनीय नियमतः होता है। जिसके वेदनीय है उसके ज्ञानावरणीय स्यात् होता है, स्यात् नहीं होता है।

४८७. भंते! जिसके ज्ञानावरणीय है क्या उसके मोहनीय होता है? जिसके मोहनीय है क्या उसके ज्ञानावरणीय होता है?

गौतम! जिसके ज्ञानावरणीय है उसके मोहनीय स्यात् होता है, स्यात् नहीं होता। जिसके मोहनीय है उसके ज्ञानावरणीय नियमतः होता है।

४८८. भंते! जिसके ज्ञानावरणीय है क्या उसके आयुष्य होता है? जिसके आयुष्य है क्या उसके ज्ञानावरणीय होता है?

गौतम! जिसके ज्ञानावरणीय है उसके आयुष्य नियमतः होता है। जिसके आयुष्य है, उसके ज्ञानावरणीय स्यात् होता है, स्यात् नहीं होता। इसी प्रकार नाम- और गोत्र-कर्म के साथ

ज्ञानावरणीय-कर्म की वक्तव्यता। जैसे ज्ञानावरणीय के साथ दर्शनावरणीय की वक्तव्यता है, वैसे ज्ञानावरणीय और आंतरायिक परस्पर नियमतः वक्तव्य हैं।

४८९. भंते! जिसके दर्शनावरणीय है क्या उसके वेदनीय होता है? जिसके वेदनीय है क्या उसके दर्शनावरणीय होता है?

जैसे ज्ञानावरणीय की उत्तरवर्ती सात कर्मों के साथ वक्तव्यता है वैसे दर्शनावरणीय उत्तरवर्ती छह कर्मों के साथ वक्तव्य है यावत् दर्शनावरणीय और आंतरायिक परस्पर नियमतः वक्तव्य हैं।

४९०. भंते! जिसके वेदनीय है क्या उसके मोहनीय होता है? जिसके मोहनीय है क्या उसके वेदनीय होता है?

गौतम! जिसके वेदनीय है उसके मोहनीय स्यात् होता है, स्यात् नहीं होता। जिसके मोहनीय है उसके वेदनीय नियमतः होता है।

४९१. भंते! जिसके वेदनीय है क्या उसके आयुष्य होता है? जिसके आयुष्य है क्या उसके वेदनीय होता है?

ये परस्पर नियमतः होते हैं, जैसे आयुष्य के साथ वेदनीय की वक्तव्यता उसी प्रकार नाम और गोत्र के साथ भी वेदनीय वक्तव्य है।

४९२. भंते! जिसके वेदनीय है क्या उसके आंतरायिक होता है? जिसके आंतरायिक है उसके वेदनीय होता है?

गौतम! जिसके वेदनीय है उसके आंतरायिक स्यात् होता है, स्यात् नहीं होता। जिसके आंतरायिक है उसके वेदनीय नियमतः होता है।

४९३. भंते! जिसके मोहनीय है, क्या उसके आयुष्य होता है? जिसके आयुष्य है क्या उसके मोहनीय होता है?

गौतम! जिसके मोहनीय है, उसके आयुष्य नियमतः होता है। जिसके आयुष्य है उसके मोहनीय स्यात् होता है, स्यात् नहीं होता। इसी प्रकार नाम, गोत्र और आंतरायिक की वक्तव्यता।

४९४. भंते! जिसके आयुष्य है क्या उसके नाम होता है? जिसके नाम है क्या उसके आयुष्य होता है?

गौतम! ये दोनों परस्पर नियमतः होते हैं इसी प्रकार गोत्र-कर्म के साथ नाम कर्म की वक्तव्यता।

४९५. भंते! जिसके आयुष्य है क्या उसके आंतरायिक होता है? जिसके आंतरायिक है क्या उसके आयुष्य होता है?

गौतम! जिसके आयुष्य है उसके आंतरायिक स्यात् होता है, स्यात् नहीं होता। जिसके आंतरायिक है उसके आयुष्य नियमतः होता है।

४९६. भंते! जिसके नाम है क्या उसके गोत्र होता है? जिसके गोत्र है, क्या उसके नाम होता है?

गौतम! ये दोनों परस्पर नियमतः होते हैं।

४९७. भंते! जिसके नाम है क्या उसके आंतरायिक होता है? जिसके आंतरायिक है क्या उसके नाम होता है?

गौतम! जिसके नाम है उसके आंतरायिक स्यात् होता है स्यात् नहीं होता। जिसके आंतरायिक है उसके नाम नियमतः होता है।

४९८. भंते! जिसके गोत्र है क्या उसके आंतरायिक होता है? जिसके आंतरायिक है क्या उसके गोत्र होता है?

गौतम! जिसके गोत्र है उसके आंतरायिक स्यात् होता है, स्यात् नहीं होता। जिसके आंतरायिक है उसके गोत्र नियमतः होता है।

पुद्गली-पुद्गल-पद

४९९. भंते! जीव क्या पुद्गली है? पुद्गल है?

गौतम! जीव पुद्गली भी है, पुद्गल भी है।

५००. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—जीव पुद्गली भी है, पुद्गल भी है।

गौतम! जैसे छत्र के कारण छत्री, दण्ड के कारण दण्डी, घट के कारण घटी, पट के कारण पटी, कर के कारण करी कहलाता है, गौतम! इसी प्रकार जीव भी श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शनिन्द्रिय की अपेक्षा पुद्गली और अपने चैतन्यमय स्वरूप की अपेक्षा पुद्गल कहलाता है।

गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—जीव पुद्गली भी है, पुद्गल भी है।

५०१. भंते! क्या नैरयिक पुद्गली है? पुद्गल है?

नैरयिक से लेकर वैमानिक तक के सभी दण्डक जीव की भांति वक्तव्य हैं, इतना विशेष है—जिसके जितनी इन्द्रियां हैं, उसके उतनी इन्द्रियां वक्तव्य हैं।

५०२. भंते! क्या सिद्ध पुद्गली है? पुद्गल है।

गौतम! पुद्गली नहीं है, पुद्गल है।

५०३. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—सिद्ध पुद्गली नहीं है, पुद्गल है?

गौतम! जीव की अपेक्षा से। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—सिद्ध पुद्गली नहीं है, पुद्गल है।

५०४. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

• • •

नौवां शतक

पहला उद्देशक

संग्रहणी गाथा

नौवें शतक में चौतीस उद्देशक हैं।

१. जम्बूद्वीप २. ज्योतिष्क ३-३० अन्तर-द्वीप ३१. अश्रुत्वाकेवली ३२. गांगेय ३३. कुण्डग्राम ३४. पुरुष।

जम्बूद्वीप-पद

१. उस काल और उस समय में मिथिला नाम की नगरी थी—वर्णन। माणिभद्र चैत्य-वर्णन। स्वामी आए। परिषद् ने नगर से निगमन किया, यावत् भगवान् गौतम पर्युपासना करते हुए इस प्रकार बोले—भंते! जम्बूद्वीप द्वीप कहां है? भंते! जम्बूद्वीप द्वीप किस संस्थान वाला है? इस प्रकार **जम्बूद्वीपवपण्णती** (वक्षस्कार १-६) का विषय वक्तव्य है यावत् पूर्व समुद्र की ओर तथा पश्चिम समुद्र की ओर जाने वाली चौदह लाख छप्पन हजार नदियां बतलाई गई हैं।
२. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

दूसरा उद्देशक

ज्योतिष-पद

३. भगवान् राजगृह नगर में आए यावत् गौतम इस प्रकार बोले—भंते! जम्बूद्वीप द्वीप में कितने चन्द्रों ने प्रभास किया? प्रभास करते हैं? प्रभास करेंगे?
- इस प्रकार **जीवाभिगम** (३/७०३) की भांति वक्तव्यता यावत् जम्बूद्वीप द्वीप में तारागण की संख्या एक लाख तैतीस हजार नौ सौ पचास क्रोड़ाक्रोड़ है।
४. भंते! लवण समुद्र में कितने चन्द्रों ने प्रभास किया? प्रभास करते हैं? प्रभास करेंगे?
- इस प्रकार **जीवाभिगम** (३/७२२) की भांति वक्तव्यता यावत् लवण समुद्र में तारागण की संख्या दो लाख सड़सठ हजार नौ सौ क्रोड़ाक्रोड़ है। धातकीखंड, कालोदधि, पुष्करवर द्वीप, आभ्यन्तर पुष्करार्द्ध और मनुष्यक्षेत्र—इन सबमें **जीवाभिगम** (३/८३८ गाथा ३१) की भांति वक्तव्य है, यावत् एक चन्द्रमा के परिवार में तारागण की संख्या छसठ हजार नौ सौ पचहत्तर क्रोड़ाक्रोड़ है।
५. भंते! पुष्करोद समुद्र में कितने चन्द्रों ने प्रभास किया? प्रभास करते हैं? प्रभास करेंगे?

इस प्रकार सब द्वीप-समुद्रों में ज्योतिष्क की वक्तव्यता यावत् स्वयंभूरमण में यावत् शोभित हुए थे, हो रहे हैं और होंगे।

६. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

३-३०वां उद्देशक

अन्तर्द्वीप-पद

७. भगवान् राजगृह नगर में आए यावत् गौतम इस प्रकार बोले—

भंते! दक्षिण दिशा में एकोरुक मनुष्यों का एकोरुक द्वीप नामक द्वीप कहां प्रज्ञप्त है?

गौतम! जम्बूद्वीप द्वीप में मंदर पर्वत के दक्षिण दिशा में क्षुल्लहिमवंत वर्षधर पर्वत के पूर्वी चरमान्त से लवणसमुद्र के उत्तरपूर्व में तीन सौ योजन का अवगाहन करने पर वहां दक्षिण दिशा वाले एकोरुक मनुष्यों का एकोरुक नाम का द्वीप है। वह तीन सौ योजन लम्बा चौड़ा है। उसकी परिधि नौ सौ उपचास योजन से कुछ विशेष न्यून है। वह एकोरुक द्वीप एक पद्मवर-वेदिका और एक वनघण्ड से चारों तरफ घिरा हुआ है। दोनों का प्रमाण और वर्णन। इस क्रम से इस प्रकार जीवाभिगम (३/२१७) की भांति वक्तव्यता यावत् शुद्धदंत द्वीप है और उन द्वीपों के वासी मनुष्य मृत्यु के पश्चात् देवलोक में उत्पन्न होते हैं, आयुष्मन् श्रमण!

इस प्रकार अट्ठाईस अंतर्द्वीप अपनी अपनी लम्बाई और चौड़ाई के साथ वक्तव्य हैं। इतना विशेष है कि प्रत्येक द्वीप का एक उद्देशक है। इस प्रकार अट्ठाईस उद्देशक हो जाते हैं।

८. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

इकतीसवां उद्देशक

अश्रुत्वा-उपलब्धि-पद

९. भगवान् राजगृह नगर में आए, यावत् गौतम इस प्रकार बोले—भंते! क्या कोई पुरुष केवली, केवली के श्रावक, केवली की श्राविका, केवली के उपासक, केवली की उपासिका, तत्पाक्षिक (स्वयंबुद्ध), तत्पाक्षिक के श्रावक, तत्पाक्षिक की श्राविका, तत्पाक्षिक के उपासक, तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवली-प्रज्ञप्त-धर्म का ज्ञान प्राप्त कर सकता है?

गौतम! कोई पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवली-प्रज्ञप्त-धर्म का ज्ञान प्राप्त कर सकता है, कोई नहीं कर सकता।

१०. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—कोई पुरुष सुने बिना केवली-प्रज्ञप्त-धर्म का ज्ञान प्राप्त कर सकता है और कोई नहीं कर सकता?

गौतम! जिसके ज्ञानावरणीय-कर्म का क्षयोपशम होता है, वह पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवली-प्रज्ञप्त-धर्म को प्राप्त कर सकता है। जिसके ज्ञानावरणीय-कर्म का क्षयोपशम नहीं होता, वह पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवली-प्रज्ञप्त-धर्म का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता।

गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—कोई पुरुष सुने बिना केवली-प्रज्ञप्त-धर्म का ज्ञान प्राप्त कर सकता है और कोई नहीं कर सकता।

११. भंते! क्या कोई पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल बोधि को प्राप्त कर सकता है?

गौतम! कोई पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल बोधि को प्राप्त कर सकता है और कोई नहीं कर सकता।

१२. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—कोई पुरुष सुने बिना केवल बोधि को प्राप्त कर सकता है और कोई नहीं कर सकता?

गौतम! जिसके दर्शनावरणीय कर्म का क्षयोपशम होता है, वह पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल बोधि को प्राप्त कर सकता है। जिसके दर्शनावरणीय कर्म का क्षयोपशम नहीं होता, वह पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल बोधि को प्राप्त नहीं कर सकता।

गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—कोई पुरुष सुने बिना केवल बोधि को प्राप्त कर सकता है और कोई नहीं कर सकता।

१३. भंते! कोई पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना मुंड होकर अगार से केवल अनगार धर्म में प्रव्रजित हो सकता है?

गौतम! कोई पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना मुंड होकर अगार से केवल अनगार धर्म में प्रव्रजित हो सकता है और कोई नहीं हो सकता।

१४. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—कोई पुरुष सुने बिना मुंड होकर अगार से केवल अनगार धर्म में प्रव्रजित हो सकता है और कोई नहीं हो सकता?

गौतम! जिसके धर्मान्तराय कर्म का क्षयोपशम होता है, वह पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना मुंड होकर अगार से केवल अनगार धर्म में प्रव्रजित हो सकता है। जिसके धर्मान्तराय कर्म का क्षयोपशम नहीं होता, वह पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना मुंड होकर अगार से केवल अनगार धर्म में प्रव्रजित नहीं हो सकता।

गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—कोई पुरुष सुने बिना मुंड होकर अगार से केवल अनगार धर्म में प्रव्रजित हो सकता है और कोई नहीं हो सकता।

१५. भंते! कोई पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल ब्रह्मचर्यवास में रह सकता है?

गौतम! कोई पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल ब्रह्मचर्यवास में रह सकता है और कोई नहीं रह सकता।

१६. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—कोई पुरुष सुने बिना केवल ब्रह्मचर्यवास में रह सकता है और कोई नहीं रह सकता?

गौतम! जिसके चरित्रावरणीय कर्म का क्षयोपशम होता है, वह पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक

की उपासिका से सुने बिना केवल ब्रह्मचर्यवास में रह सकता है। जिसके चरित्रावरणीय कर्म का क्षयोपशम नहीं होता, वह केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल ब्रह्मचर्यवास में नहीं रह सकता। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—कोई पुरुष सुने बिना केवल ब्रह्मचर्यवास में रह सकता है और कोई नहीं रह सकता।

१७. भंते! कोई पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल संयम से संयमित हो सकता है?

गौतम! कोई पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल संयम से संयमित हो सकता है और कोई नहीं हो सकता।

१८. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—कोई पुरुष सुने बिना केवल संयम से संयमित हो सकता है और कोई नहीं हो सकता?

गौतम! जिसके यतनावरणीयकर्म का क्षयोपशम होता है, वह पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल संयम से संयमित हो सकता है। जिसके यतनावरणीय कर्म का क्षयोपशम नहीं होता, वह पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल संयम से संयमित नहीं हो सकता। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—कोई पुरुष सुने बिना केवल संयम से संयमित हो सकता है और कोई नहीं हो सकता।

१९. भंते! क्या कोई पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल संवर से संवृत हो सकता है?

गौतम! कोई पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल संवर से संवृत हो सकता है और कोई नहीं हो सकता।

२०. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—कोई पुरुष सुने बिना केवल संवर से संवृत हो सकता है और कोई नहीं हो सकता?

गौतम! जिसके अध्यवसानावरणीय कर्म का क्षयोपशम होता है वह पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल संवर से संवृत हो सकता है। जिसके अध्यवसानावरणीय कर्म का क्षयोपशम नहीं होता वह पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल संवर से संवृत नहीं हो सकता। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—कोई पुरुष सुने बिना केवल संवर से संवृत हो सकता है और कोई नहीं हो सकता।

२१. भंते! कोई पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल आभिनिबोधिक-ज्ञान उत्पन्न कर सकता है?

गौतम! कोई पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल आभिनिबोधिक-ज्ञान उत्पन्न कर सकता है और कोई नहीं कर सकता।

२२. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—कोई पुरुष सुने बिना केवल आभिनिबोधिक-ज्ञान उत्पन्न कर सकता है और कोई नहीं कर सकता?

गौतम! जिसके आभिनिबोधिक-ज्ञानावरणीय-कर्म का क्षयोपशम होता है, वह पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल- आभिनिबोधिक-ज्ञान उत्पन्न कर सकता है। जिसके आभिनिबोधिक-ज्ञानावरणीय-कर्म का क्षयोपशम नहीं होता वह पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल-आभिनिबोधिक-ज्ञान उत्पन्न नहीं कर सकता। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—कोई पुरुष सुने बिना केवल-आभिनिबोधिक-ज्ञान उत्पन्न कर सकता है और कोई नहीं कर सकता।

२३. भंते! कोई पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल श्रुत-ज्ञान उत्पन्न कर सकता है?

गौतम! कोई पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल श्रुत-ज्ञान उत्पन्न कर सकता है और कोई नहीं कर सकता।

२४. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—कोई पुरुष सुने बिना केवल श्रुत-ज्ञान उत्पन्न कर सकता है और कोई नहीं कर सकता?

गौतम ! जिसके श्रुत-ज्ञानावरणीय-कर्म का क्षयोपशम होता है वह पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल श्रुत-ज्ञान उत्पन्न कर सकता है। जिसके श्रुतज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम नहीं होता वह पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल श्रुत-ज्ञान उत्पन्न नहीं कर सकता। गौतम ! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—कोई पुरुष सुने बिना केवल श्रुत-ज्ञान उत्पन्न कर सकता है और कोई नहीं कर सकता।

२५. भंते! कोई पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल अवधि-ज्ञान उप्यन्न कर सकता है?

गौतम ! कोई पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल अवधि-ज्ञान उत्पन्न कर सकता है और कोई नहीं कर सकता ।

२६. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—कोई पुरुष सुने बिना केवल अवधि-ज्ञान उपग्रह कर सकता है और कोई नहीं कर सकता?

गौतम! जिसके अवधि-ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम होता है, वह पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल अवधिज्ञान उत्पन्न कर सकता है। जिसके अवधि-ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम नहीं होता, वह केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल अवधि-ज्ञान उत्पन्न नहीं कर सकता। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—कोई पुरुष सुने बिना केवल अवधि-ज्ञान उत्पन्न कर सकता है और कोई नहीं कर सकता।

२७. भंते! कोई पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल मनःपर्यव-
-ज्ञान उत्पन्न कर सकता है?

गौतम ! कोई पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल मनःपर्यव-ज्ञान उत्पन्न कर सकता है और कोई नहीं कर सकता ।

२८. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—कोई पुरुष सुने बिना केवल मनःपर्यव-ज्ञान उत्पन्न कर सकता है और कोई नहीं कर सकता?

गौतम! जिसके मनःपर्यव-ज्ञानावरणीय-कर्म का क्षयोपशम होता है वह पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल मनःपर्यव-ज्ञान उत्पन्न कर सकता है। जिसके मनःपर्यव-ज्ञानावरणीय-कर्म का क्षयोपशम नहीं होता, वह पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवल मनःपर्यव-ज्ञान उत्पन्न नहीं कर सकता। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—कोई पुरुष सुने बिना केवल मनःपर्यव-ज्ञान उत्पन्न कर सकता है और कोई नहीं कर सकता।

२९. भंते! कोई पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवलज्ञान उत्पन्न कर सकता है?

गौतम! कोई पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवलज्ञान उत्पन्न कर सकता है और कोई नहीं कर सकता।

३०. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—कोई पुरुष सुने बिना केवलज्ञान उत्पन्न कर सकता है और कोई नहीं कर सकता?

गौतम! जिसके केवलज्ञानावरणीय-कर्म का क्षय होता है, वह पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवलज्ञान उत्पन्न कर सकता है। जिसके केवलज्ञानावरणीय-कर्म का क्षय नहीं होता, वह पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवलज्ञान उत्पन्न नहीं कर सकता। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—कोई पुरुष सुने बिना केवलज्ञान उत्पन्न कर सकता है और कोई नहीं कर सकता।

३१. भंते! क्या कोई पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना १. केवलि-प्रज्ञप्त-धर्म का ज्ञान प्राप्त कर सकता है? २. केवल बोधि को प्राप्त कर सकता है? ३. मुंड होकर अगार से केवल अनगार-धर्म में प्रव्रजित हो सकता है? ४. केवल ब्रह्मचर्यवास में रह सकता है? ५. केवल संयम से संयमित हो सकता है? ६. केवल संवर से संवृत हो सकता है? ७. केवल आभिनिबोधिक-ज्ञान उत्पन्न कर सकता है? ८. केवल श्रुत-ज्ञान उत्पन्न कर सकता है? ९. केवल अवधि-ज्ञान उत्पन्न कर सकता है? १०. केवल मनःपर्यव-ज्ञान उत्पन्न कर सकता है? ११. केवल-ज्ञान उत्पन्न कर सकता है?

गौतम! केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना १. कोई पुरुष केवलि-प्रज्ञप्त-धर्म का ज्ञान प्राप्त कर सकता है और कोई नहीं कर सकता। २. कोई पुरुष केवल बोधि को प्राप्त कर सकता है और कोई नहीं कर सकता। ३. कोई पुरुष मुण्ड होकर अगार से केवल अनगार-धर्म में प्रव्रजित हो सकता है और कोई नहीं हो सकता। ४. कोई पुरुष केवल ब्रह्मचर्यवास में रह सकता है और कोई नहीं रह सकता। ५. कोई पुरुष केवल संयम से संयमित हो सकता है और कोई नहीं हो सकता। ६. कोई पुरुष केवल संवर से संवृत हो सकता है और कोई नहीं हो सकता। ७. कोई पुरुष केवल आभिनिबोधिक-ज्ञान उत्पन्न कर सकता है और कोई नहीं कर सकता। ८. कोई पुरुष केवल श्रुत-ज्ञान उत्पन्न कर सकता है

और कोई नहीं कर सकता। ९. कोई पुरुष केवल अवधि-ज्ञान उत्पन्न कर सकता है और कोई नहीं कर सकता। १०. कोई पुरुष केवल मनःपर्यव-ज्ञान उत्पन्न कर सकता है और कोई नहीं कर सकता। ११. कोई पुरुष केवल-ज्ञान उत्पन्न कर सकता है और कोई नहीं कर सकता।

३२. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—कोई पुरुष सुने बिना केवलि-प्रज्ञप्त धर्म को प्राप्त कर सकता है और कोई नहीं कर सकता यावत् कोई पुरुष केवल-ज्ञान उत्पन्न कर सकता है और कोई नहीं कर सकता?

गौतम! १. जिसके ज्ञानावरणीय-कर्म का क्षयोपशम नहीं होता २. जिसके दर्शनावरणीय-कर्म का क्षयोपशम नहीं होता ३. जिसके धर्मान्तराय-कर्म का क्षयोपशम नहीं होता ४. जिसके चरित्रावरणीय-कर्म का क्षयोपशम नहीं होता ५. जिसके यतनावरणीय-कर्म का क्षयोपशम नहीं होता ६. जिसके अध्यवसानावरणीय-कर्म का क्षयोपशम नहीं होता ७. जिसके आभिनिबोधिक-ज्ञानावरणीय-कर्म का क्षयोपशम नहीं होता ८. जिसके श्रुत-ज्ञानावरणीय-कर्म का क्षयोपशम नहीं होता ९. जिसके अवधि-ज्ञानावरणीय-कर्म का क्षयोपशम नहीं होता १०. जिसके मनःपर्यव-ज्ञानावरणीय-कर्म का क्षयोपशम नहीं होता ११. जिसके केवल-ज्ञानावरणीय-कर्म का क्षय नहीं होता, वह पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना केवलि-प्रज्ञप्त धर्म को प्राप्त नहीं कर सकता यावत् केवल-ज्ञान को उत्पन्न नहीं कर सकता।

१. जिसके ज्ञानावरणीय-कर्म का क्षयोपशम होता है २. जिसके दर्शनावरणीय-कर्म का क्षयोपशम होता है ३. जिसके धर्मान्तराय-कर्म का क्षयोपशम होता है इस प्रकार यावत् जिसके केवल-ज्ञानावरणीय-कर्म का क्षय होता है वह पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना १. केवलि-प्रज्ञप्त-धर्म को प्राप्त कर सकता है २. केवल बोधि को प्राप्त कर सकता है यावत् ११. केवल-ज्ञान उत्पन्न कर सकता है।

३३. जो निरन्तर बेले-बेले (दो-दो दिन का उपवास) के तप की साधना करता है, जो दोनों भुजाओं को ऊपर उठाकर सूर्य के सामने आतापन-भूमि में आतापना लेता है, उसके प्रकृति की भद्रता, प्रकृति की उपशांतता, प्रकृति में क्रोध, मान, माया और लोभ की प्रतनुता, मृदु-मार्दव सम्पन्नता, आत्मलीनता और विनीतता के द्वारा किसी समय शुभ अध्यवसाय, शुभ परिणाम और लेश्या की उत्तरोत्तर होने वाली विशुद्धि से तदावरणीय (विभंग-ज्ञानावरणीय) कर्म का क्षयोपशम होता है। उसे ईहा, अपोह, मार्गणा, गवेषणा करते हुए विभंग नामक अज्ञान उत्पन्न होता है। वह पुरुष समुत्पन्न विभंग-ज्ञान के द्वारा जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्टतः असंख्येय हजार योजन को जानता-देखता है। वह समुत्पन्न विभंग-ज्ञान के द्वारा जीव को भी जानता है, अजीव को भी जानता है। वे पाषंडस्थ (अन्य सम्प्रदाय में स्थित व्रती) आरंभ-सहित और परिग्रह-सहित होने के कारण संकलिश्यमान है, इसे जानता है तथा आरंभ और परिग्रह को छोड़कर वे विशुद्ध्यमान होते हैं, इसे भी जानता है। वह विभंग-ज्ञानी जीव-अजीव आदि के यथार्थ स्वरूप के प्रति समर्पित होकर पहले सम्यक्त्व को प्रतिपन्न होता है। सम्यक्त्व को प्रतिपन्न होकर श्रमण-धर्म में रुचि करता है। श्रमण-धर्म में रुचि कर चारित्र को प्रतिपन्न होता है। चारित्र को प्रतिपन्न होकर लिंग को

स्वीकार करता है। मिथ्यात्व-पर्यवों के उत्तरोत्तर परिहानि तथा सम्यग्-दर्शन के पर्यवों की उत्तरोत्तर परिवृद्धि होने के कारण उसे सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है और सम्यक्त्व-प्राप्ति के क्षण में ही विभंग-ज्ञान अवधि-ज्ञान में बदल जाता है।

३४. भंते! सम्यक्त्व आदि की प्रतिपत्ति के समय उस अश्रुत्वा-पुरुष में कितनी लेश्याएं होती हैं?

गौतम! तीन विशुद्ध लेश्याएं होती हैं, जैसे-तैजस-लेश्या, पद्म-लेश्या, शुक्ल-लेश्या।

३५. भंते! उसमें कितने ज्ञान होते हैं?

गौतम! तीन ज्ञान होते हैं—आभिनिबोधिक-ज्ञान, श्रुत-ज्ञान, अवधि-ज्ञान।

३६. भंते! क्या वह योग-सहित होता है? योग-रहित होता है?

गौतम! योग-सहित होता है, योग-रहित नहीं होता।

यदि वह योग-सहित होता है, तो मनो-योगी होता है? वचन-योगी होती है? काय-योगी होता है?

गौतम! मनो-योगी भी होता है, वचन-योगी भी होता है, काय-योगी भी होता है।

३७. भंते! क्या वह साकार-उपयोग से युक्त होता है? अनाकार-उपयोग से युक्त होता है?

गौतम! वह साकार-उपयोग से भी युक्त होता है, अनाकार-उपयोग से भी युक्त होता है।

३८. भंते! वह किस संहनन वाला होता है?

गौतम! वज्रऋषभनाराच-संहनन वाला होता है।

३९. भंते! वह किस संस्थान वाला होता है?

गौतम! छह संस्थानों में से किसी एक संस्थान वाला होता है।

४०. भंते! वह कितनी ऊंचाई वाला होता है?

गौतम! जघन्यतः सात रत्नी, उत्कृष्टतः पांच-सौ-धनुष्य की ऊंचाई वाला होता है।

४१. भंते! वह किस आयु वाला होता है?

गौतम! जघन्यतः कुछ-अधिक-आठ-वर्ष, उत्कृष्टतः पूर्व-कोटि-आयु वाला होता है।

४२. भंते! वह वेद-सहित होता है? वेद-रहित होता है?

गौतम! वेद-सहित होता है, वेद-रहित नहीं होता।

यदि वेद-सहित होता है तो क्या स्त्री-वेद वाला होता है? पुरुष-वेद वाला होता है? पुरुष-नपुंसक वेद वाला होता है? नपुंसक-वेद वाला होता है?

गौतम! वह स्त्री-वेद वाला नहीं होता, पुरुष-वेद वाला होता है, नपुंसक-वेद वाला नहीं होता, पुरुष-नपुंसक वेद वाला होता है।

४३. भंते! वह कषाय-सहित होता है? कषाय-रहित होता है?

गौतम! कषाय-सहित होता है, कषाय-रहित नहीं होता।

यदि कषाय-सहित होता है तो कितने कषायों वाला होता है?

गौतम! चार—क्रोध, मान, माया और लोभ वाला होता है।

४४. भंते! उसमें कितने अध्यवसान प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! असंख्येय अध्यवसान प्रज्ञप्त हैं।

४५. भंते! वे अध्यवसान प्रशस्त होते हैं या अप्रशस्त?

गौतम! प्रशस्त होते हैं, अप्रशस्त नहीं होते।

४६. भंते! वह अश्रुत्वा-अवधिज्ञानी उन वर्तमान प्रशस्त अध्यवसानों के द्वारा अनन्त नैरयिक-जन्मों (भव-ग्रहण) से अपने आपको विसंयुक्त कर लेता है। अनन्त तिर्यग्योनिक-जन्मों से अपने आपको विसंयुक्त कर लेता है, अनन्त मनुष्य-जन्मों से अपने आपको विसंयुक्त कर लेता है, अनन्त देव-जन्मों से अपने आपको विसंयुक्त कर लेता है, जो नैरयिक-, तिर्यच-, मनुष्य- और देव-गति नाम की चार उत्तर प्रकृतियां हैं, उनके औपग्रहिक (आलंबनभूत) अनन्तानुबंधी—क्रोध, मान, माया और लोभ को क्षीण करता है। उसे क्षीण कर अप्रत्याख्यानारण—क्रोध, मान, माया और लोभ को क्षीण करता है। उसे क्षीण कर प्रत्याख्यानारण—क्रोध, मान, माया और लोभ को क्षीण करता है। उसे क्षीण कर संज्वलन—क्रोध, मान, माया और लोभ को क्षीण करता है। उसे क्षीण कर पंचविध ज्ञाना-वरणीय, नवविध दर्शनावरणीय, पंचविध आंतरायिक और मोहनीय को सिर से छिन्न किए हुए ताल वृक्ष की भांति क्षीण कर, कर्मरज के विकिरणकारक अपूर्वकरण में अनुप्रविष्ट होता है। उसके अनन्त, अनुत्तर, निर्व्याघात, निरावरण, कृत्स्न, प्रतिपूर्ण, केवलज्ञान-दर्शन समुत्पन्न होता है।

४७. भंते! क्या वह अश्रुत्वा-केवलज्ञानी केवलि-प्रज्ञप्त-धर्म का आख्यान, प्रज्ञापना अथवा प्ररूपण करता है?

गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। केवल इतना अपवाद है—एक ज्ञात (दृष्टान्त) अथवा एक व्याकरण (एक प्रश्न का उत्तर) करता है।

४८. भंते! क्या वह प्रव्रज्या देता है, मुण्ड करता है?

गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। वह प्रव्रज्या और मुंडन के लिए उपदेश देता है।

४९. भंते! क्या वह सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अन्त करता है?

हां, वह सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अन्त करता है।

५०. भंते! क्या वह ऊर्ध्व देश में होता है? अधो देश में होता है? तिर्यक् देश में होता है?

गौतम! वह ऊर्ध्व देश में भी होता है, अधो देश में भी होता है, तिर्यक् देश में भी होता है। ऊर्ध्व देश में होता है—शब्दापाति, विकटापाति, गंधापाति, मालवन्त पर्वतों में और वृत्त वैताद्व्य पर्वतों में होता है। संहरण (अपहरण) की अपेक्षा सोमनस वन में भी होता है, पंडकवन में भी होता है।

अधोदेश में होता है—गड्डे में भी होता है, कंदरा में भी होता है। संहरण की अपेक्षा पाताल में भी होता है, भवन में भी होता है।

तिर्यग्-लोक में होता है—पंद्रह कर्मभूमि में होता है। संहरण की अपेक्षा अढ़ाई द्वीप-समुद्र के एक देश भाग में होता है।

५१. भंते! अश्रुत्वा-केवलज्ञानी एक समय में कितने होते हैं?

गौतम! जघन्यतः एक, दो अथवा तीन, उत्कृष्टतः दस।

गौतम! यह इस अपेक्षा से कहा जा रहा है—केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना कोई पुरुष केवलि-प्रज्ञप्त-धर्म का ज्ञान प्राप्त कर सकता है और कोई नहीं कर सकता यावत् केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुने बिना कोई पुरुष केवलज्ञान उत्पन्न कर सकता है और कोई नहीं कर सकता।

श्रुत्वा-उपलब्धि-पद

५२. भंते! कोई पुरुष केवली, केवली के श्रावक, केवली की श्राविका, केवली के उपासक, केवली की उपासिका, तत्पाक्षिक, तत्पाक्षिक के श्रावक, तत्पाक्षिक की श्राविका, तत्पाक्षिक के उपासक, तत्पाक्षिक की उपासिका से सुनकर केवलि-प्रज्ञप्त-धर्म का ज्ञान प्राप्त कर सकता है?

गौतम! कोई पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुनकर केवलि-प्रज्ञप्त-धर्म का ज्ञान प्राप्त कर सकता है और कोई नहीं कर सकता।

५३. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—कोई पुरुष सुनकर केवलि-प्रज्ञप्त-धर्म का ज्ञान प्राप्त कर सकता है और कोई नहीं कर सकता?

गौतम! जिसके ज्ञानावरणीय-कर्म का क्षयोपशम होता है, वह पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुन कर केवलि-प्रज्ञप्त-धर्म का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। जिसके ज्ञानावरणीय-कर्म का क्षयोपशम नहीं होता, वह केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुनकर केवलि-प्रज्ञप्त-धर्म का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—कोई पुरुष सुनकर केवलि-प्रज्ञप्त-धर्म का ज्ञान प्राप्त कर सकता है और कोई नहीं कर सकता।

५४. इस प्रकार जो अश्रुत्वा-पुरुष की वक्तव्यता है, वही श्रुत्वा-पुरुष की वक्तव्यता है, इतना विशेष है—असोच्चा के स्थान पर सोच्चा का अभिलाप (पाठोच्चारण) है, शेष वही पूर्णरूप से वक्तव्य है यावत् जिसके मनःपर्यव-ज्ञानावरणीय-कर्म का क्षयोपशम होता है, जिसके केवल-ज्ञानावरण का क्षय होता है, वह पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुनकर केवलि-प्रज्ञप्त-धर्म का ज्ञान प्राप्त कर सकता है, केवल बोधि को प्राप्त कर सकता है यावत् केवलज्ञान उत्पन्न कर सकता है।

५५. जो निरन्तर तेले-तेले के तप (तीन-तीन दिन के उपवास) की साधना के द्वारा आत्मा को भावित करता है, उसके प्रकृति की भद्रता, प्रकृति की उपशांतता, प्रकृति में क्रोध, मान, माया

और लोभ की प्रतनुता, मृदु-मार्दव सम्पन्नता, आत्म-लीनता और विनीतता के द्वारा किसी समय शुभ अध्यवसाय, शुभ परिणाम और लेश्या की उत्तरोत्तर होने वाली विशुद्धि से तदावरणीय (अवधि-ज्ञानावरणीय) कर्म का क्षयोपशम होता है, उसे ईहा, अपोह, मार्गणा, गवेषणा करते हुए अवधि-ज्ञान उत्पन्न होता है। वह पुरुष समुत्पन्न अवधि-ज्ञान के द्वारा जघन्यतः अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्टतः अलोक में असंख्येय लोक-प्रमाण खण्डों को जानता-देखता है।

५६. भंते! उस श्रुत्वा-अवधि-ज्ञानी में कितनी लेश्याएं होती हैं?

गौतम! छह लेश्याएं होती हैं, जैसे-कृष्ण लेश्या यावत् शुक्ल लेश्या।

५७. भंते! उसमें कितने ज्ञान होते हैं?

गौतम! तीन अथवा चार। तीन होने पर आभिनिबोधिक-ज्ञान, श्रुत-ज्ञान और अवधि-ज्ञान। चार होने पर आभिनिबोधिक-ज्ञान, श्रुत-ज्ञान, अवधि-ज्ञान और मनःपर्यव-ज्ञान।

५८. भंते! क्या वह योग-सहित होता है? योग रहित होता है?

गौतम! योग-सहित होता है, योग-रहित नहीं होता।

यदि योग-सहित होता है तो क्या मनो-योगी होता है? वचन-योगी होता है? काय-योगी होता है?

गौतम! मनो-योगी भी होता है, वचन-योगी भी होता है, काय-योगी भी होता है।

५९. भंते! क्या वह साकार-उपयोग से युक्त होता है? अनाकार-उपयोग से युक्त होता है?

गौतम! वह साकार उपयोग से भी युक्त होता है, अनाकार उपयोग से भी युक्त होता है।

६०. भंते! वह किस संहनन वाला होता है?

गौतम! वज्रत्रहृषभनाराच-संहनन वाला होता है।

६१. भंते! वह किस संस्थान वाला होता है?

गौतम! छह संस्थानों में से किसी एक संस्थान वाला होता है।

६२. भंते! वह कितनी ऊंचाई वाला होता है?

गौतम! जघन्यतः सात रत्नी, उत्कृष्टतः पांच सौ धनुष्य की ऊंचाई वाला होता है।

६३. भंते! वह किस आयु वाला होता है?

गौतम! जघन्यतः कुछ अधिक आठ वर्ष, उत्कृष्टतः पूर्व-कोटि-आयु वाला होता है।

६४. भंते! वह वेद-सहित होता है? वेद-रहित होता है?

गौतम! वेद-सहित भी होता है, वेद-रहित भी होता है।

यदि वेद-रहित होता है तो उपशान्त-वेद वाला होता है, क्षीण-वेद वाला होता है?

गौतम! उपशान्त-वेद वाला नहीं होता, क्षीण वेद वाला होता है।

यदि वेद-सहित होता है तो क्या वह स्त्री-वेद वाला होता है? पुरुष-वेद वाला होता है?

पुरुष-नपुंसक-वेद वाला होता है?

गौतम! स्त्री-वेद वाला भी होता है, पुरुष-वेद वाला भी होता है, पुरुष-नपुंसक-वेद वाला भी होता है।

६५. भंते! क्या वह कषाय-सहित होता है? कषाय-रहित होता है?

गौतम! वह कषाय-सहित भी होता है, कषाय रहित भी होता है।

यदि कषाय-रहित होता है तो क्या उपशान्त-कषाय वाला होता है, क्षीण-कषाय वाला होता है?

गौतम! उपशान्त-कषाय वाला नहीं होता। क्षीण-कषाय वाला होता है।

भंते! यदि कषाय-सहित होता है तो कितने कषायों वाला होता है?

गौतम! चार, तीन, दो अथवा एक कषाय वाला होता है। चार कषाय वाला होने पर चार संज्वलन—क्रोध, मान, माया और लोभ वाला होता है। तीन कषाय वाला होने पर तीन संज्वलन—मान, माया और लोभ वाला होता है। दो कषाय वाला होने पर दो संज्वलन—माया और लोभ वाला होता है। एक कषाय वाला होने पर एक संज्वलन—लोभ वाला होता है।

६६. भंते! उसमें कितने अध्यवसान प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! असंख्येय अध्यवसान प्रज्ञप्त हैं।

६७. भंते! वे अध्यवसान प्रशस्त होते हैं अथवा अप्रशस्त?

गौतम! प्रशस्त होते हैं, अप्रशस्त नहीं होते।

६८. भंते! वह श्रुत्वा-अवधिज्ञानी उन वर्तमान प्रशस्त अध्यवसानों के द्वारा अनन्त नैरयिक-जन्मों (भवग्रहण) से अपने आपको विसंयुक्त कर होता है, अनन्त तिर्यक्-जन्मों से अपने आपको विसंयुक्त कर लेता है, अनन्त मनुष्य-जन्मों से अपने आपको विसंयुक्त कर लेता है, अनन्त देव-जन्मों से अपने आपको विसंयुक्त कर लेता है। जो ये नैरयिक-, तिर्यग्योनिक-, -मनुष्य- और देव-गति-नाम की चार उत्तर प्रकृतियां हैं, उनके औपग्रहिक अनन्तानुबंधी—क्रोध, मान, माया और लोभ को क्षीण करता है। उसे क्षीण कर अप्रत्याख्यानवरण-कषाय—क्रोध, मान, माया और लोभ को क्षीण करता है। उसे क्षीण कर प्रत्याख्यानवरण—क्रोध, मान, माया और लोभ को क्षीण करता है। उसे क्षीण कर संज्वलन—क्रोध, मान, माया और लोभ को क्षीण करता है। उसे क्षीण कर पंचविध ज्ञानावरणीय, नवविध दर्शनावरणीय, पंचविध आंतरायिक और मोहनीय को सिर से छिन्न किए हुए तालवृक्ष की भांति क्षीण कर कर्मरज के विकिरणकारक अपूर्वकरण में अनुप्रविष्ट होता है। उसके अनन्त, अनुत्तर, निर्व्याघात, निरावरण, कृत्स्न, प्रतिपूर्ण केवलज्ञान-दर्शन समुत्पन्न होता है।

६९. भंते! क्या वह श्रुत्वा केवलज्ञानी केवलि-प्रज्ञप्त-धर्म का आख्यान, प्रज्ञापन अथवा प्ररूपण करता है?

हां, वह केवलि-प्रज्ञप्त-धर्म का आख्यान भी करता है, प्रज्ञापन भी करता है, प्ररूपण भी करता है।

७०. भंते! वह प्रव्रज्या देता है? मुंड करता है?

हां, प्रव्रज्या भी देता है, मुंड भी करता है।

७१. भंते! वह सिद्ध, बुद्ध यावत् सब दुःखों का अंत करता है?

हां, वह सिद्ध होता है, यावत् सब दुःखों का अंत करता है।

७२. भंते! क्या उसके शिष्य सिद्ध होते हैं? यावत् सब दुःखों का अंत करते हैं?

हां, सिद्ध होते हैं, यावत् सब दुःखों का अंत करते हैं।

७३. भंते! क्या उसके प्रशिष्य सिद्ध होते हैं यावत् सब दुःखों का अन्त करते हैं?

हां, सिद्ध होते हैं यावत् सब दुःखों का अन्त करते हैं।

७४. भंते! क्या वह ऊर्ध्व देश में होता है?

जैसे असोच्चा की वक्तव्यता यावत् संहरण की अपेक्षा अढ़ाई द्वीप-समुद्र के एक देश भाग में होता है।

७५. भंते! श्रुत्वा-केवलज्ञानी एक समय में कितने होते हैं?

गौतम! जघन्यतः एक, दो अथवा तीन, उत्कृष्टतः एक सौ आठ।

गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—कोई पुरुष केवली यावत् तत्पाक्षिक की उपासिका से सुनकर केवलज्ञान उत्पन्न कर सकता है और कोई नहीं कर सकता।

७६. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

बत्तीसवां उद्देशक

पार्श्वपत्तीय-गांगेय-प्रश्न-पद

७७. उस काल और उस समय में वाणिज्यग्राम नामक नगर था—वर्णक। दूतिपलाशक चैत्य। भगवान् महावीर आए। परिषद् ने नगर से निर्गमन किया। भगवान् ने धर्म कहा। परिषद् वापस नगर में चली गई।

७८. उस काल और उस समय में पार्श्वपत्तीय गांगेय नामक अनगार, जहां श्रमण भगवान् महावीर हैं, वहां आते हैं, वहां आकर श्रमण भगवान् महावीर के न अति दूर और न अति निकट स्थित होकर श्रमण भगवान् महावीर से इस प्रकार बोले—

सांतर-निरन्तर-उपपन्न-आदि-पद

७९. भंते! नैरयिक अंतर-सहित उपपन्न होते हैं? निरन्तर उपपन्न होते हैं?

गांगेय! नैरयिक अंतर-सहित भी उपपन्न होते हैं और निरन्तर भी उपपन्न होते हैं।

८०. भंते! असुरकुमार अंतर-सहित उपपन्न होते हैं? निरन्तर उपपन्न होते हैं?

गांगेय! असुरकुमार अंतर-सहित भी उपपन्न होते हैं और निरन्तर भी उपपन्न होते हैं। इस प्रकार यावत् स्तनितकुमार की वक्तव्यता।

८१. भंते! पृथ्वीकायिक अंतर-सहित उपपन्न होते हैं? निरन्तर उपपन्न होते हैं?

गांगेय! पृथ्वीकायिक अंतर-सहित उपपन्न नहीं होते, निरंतर उपपन्न होते हैं। इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक की वक्तव्यता।

द्वीन्द्रिय यावत् वैमानिक नैरयिक की भांति वक्तव्य हैं।

८२. भंते! नैरयिक अंतर-सहित उद्वर्तन करते हैं? निरंतर उद्वर्तन करते हैं?

गांगेय! नैरयिक अंतर-सहित भी उद्वर्तन करते हैं और निरंतर भी उद्वर्तन करते हैं।

इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार की वक्तव्यता।

८३. भंते! पृथ्वीकायिक अंतर-सहित उद्वर्तन करते हैं?—पृच्छा।

गांगेय! पृथ्वीकायिक अंतर-सहित उद्वर्तन नहीं करते, निरंतर उद्वर्तन करते हैं।

इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक अंतर-सहित उद्वर्तन नहीं करते, निरंतर उद्वर्तन करते हैं।

८४. भंते! द्वीन्द्रिय अंतर-सहित उद्वर्तन करते हैं? निरंतर उद्वर्तन करते हैं?

गांगेय! द्वीन्द्रिय अंतर-सहित भी उद्वर्तन करते हैं, निरंतर भी उद्वर्तन करते हैं। इसी प्रकार यावत् वाणमंतर की वक्तव्यता।

८५. भंते! ज्योतिष्क अंतर-सहित च्युत होते हैं?—पृच्छा।

गांगेय! ज्योतिष्क अंतर-सहित भी च्युत होते हैं और निरंतर भी च्युत होते हैं। इसी प्रकार वैमानिक की वक्तव्यता।

प्रवेशन-पद

८६. भंते! प्रवेशनक कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?

गांगेय! प्रवेशनक चार प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—नैरयिक-प्रवेशनक, तिर्यक्यायोनिक-प्रवेशनक, मनुष्य-प्रवेशनक और देव-प्रवेशनक।

८७. भंते! नैरयिक प्रवेशनक कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?

गांगेय! सात प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—रत्नप्रभा-पृथ्वी-नैरयिक-प्रवेशनक यावत् अधःसप्तमी-पृथ्वी-नैरयिक-प्रवेशनक।

८८. भंते! एक नैरयिक नैरयिक-प्रवेशनक में प्रवेश करता हुआ क्या रत्नप्रभा में होता है? शर्कराप्रभा में होता है? यावत् अधःसप्तमी में होता है?

गांगेय! रत्नप्रभा में होता है यावत् अधःसप्तमी में होता है।

८९. भंते! दो नैरयिक नैरयिक-प्रवेशनक में प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा में होते हैं? यावत् अधःसप्तमी में होते हैं?

गांगेय! रत्नप्रभा में होते हैं यावत् अथवा अधःसप्तमी में होते हैं।

अथवा एक रत्नप्रभा में और एक शर्कराप्रभा में होता है, अथवा एक रत्नप्रभा में और एक बालुकाप्रभा में होता है यावत् एक रत्नप्रभा में और एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक

३४९

[illegible]

१२. भंते! क्या पांच नैरयिक नैरयिक-प्रवेशनक में प्रवेश करते हुए रत्नप्रभा में होते हैं? पृच्छा।

गांगेय ! रत्नप्रभा में होते हैं यावत् अथवा अधःसप्तमी में होते हैं ।

अथवा एक रत्नप्रभा में और चार शर्कराप्रभा में होते हैं यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में और चार अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा दो रत्नप्रभा में और तीन शर्कराप्रभा में होते हैं। इस प्रकार यावत् अथवा दो रत्नप्रभा में और तीन अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा तीन रत्नप्रभा में और दो शर्कराप्रभा में होते हैं। इस प्रकार यावत् तीन रत्नप्रभा में और दो अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा चार रत्नप्रभा में और एक शर्कराप्रभा में होता है। इस प्रकार यावत् अथवा चार रत्नप्रभा में और एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक शर्कराप्रभा में और चार वालुकाप्रभा में होते हैं। इस प्रकार जैसे रत्नप्रभा से ऊर्ध्ववर्ती पृथ्वियों के साथ विकल्पना की गई है, वैसे ही शर्कराप्रभा से ऊर्ध्ववर्ती पृथ्वियों के साथ विकल्पना करनी चाहिए यावत् अथवा चार शर्कराप्रभा में और एक अधःसप्तमी में होता है। इस प्रकार प्रत्येक ऊर्ध्ववर्ती पृथ्वियों के साथ यह विकल्पना करनी चाहिए यावत् अथवा चार तमा में और एक अधःसप्तमी में होता है।

में और एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में यावत् एक तमा में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में यावत् एक धूमप्रभा में और एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में यावत् एक पंकप्रभा में, एक तमा में और एक अधःसप्तमी में होता है, अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में, एक धूमप्रभा में, यावत् एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक पंकप्रभा में यावत् एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में यावत् एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में यावत् एक अधःसप्तमी में होता है।

९४. भंते! सात नैरयिक नैरयिकप्रवेशनक में प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा में होते हैं?—पृच्छा।
गांगेय! रत्नप्रभा में होते हैं यावत् अथवा अधःसप्तमी में होते हैं।

अथवा एक रत्नप्रभा में और छह शर्करा-प्रभा में होते हैं। इस प्रकार इस क्रम से जैसे छह नैरयिकों के द्वि-संयोगज भंग किए गए हैं, वैसे ही सात नैरयिकों के द्वि-संयोगज भंग वक्तव्य हैं, इतना विशेष है—एक अभ्यधिक संचारणीय है, शेष पूर्ववत्। जैसे छह नैरयिकों के त्रि-संयोगज, चतुष्क-संयोगज, पंच-संयोगज, षट्क-संयोगज भंग किए गए हैं वैसे ही सात नैरयिकों के वक्तव्य हैं, इतना विशेष है—इन भंगों में एक-एक अभ्यधिक संचारणीय है यावत् एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में यावत् एक अधःसप्तमी में होता है।

९५. भंते! आठ नैरयिक नैरयिक-प्रवेशनक में प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा में होते हैं?—पृच्छा।

गांगेय! रत्नप्रभा में होते हैं यावत् अथवा अधःसप्तमी में होते हैं।

अथवा एक रत्नप्रभा में और सात शर्कराप्रभा में होते हैं। इस प्रकार जैसे छह नैरयिकों के द्वि-संयोगज यावत् षट्क-संयोगज भंग कहे गए हैं, वैसे ही आठ नैरयिकों के वक्तव्य हैं, इतना विशेष है—एक-एक अभ्यधिक संचारणीय है, शेष पूर्ववत् यावत् षट्क-संयोग तक। अथवा तीन शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में यावत् एक अधःसप्तमी में होता है।

अथवा एक रत्नप्रभा में यावत् एक तमा में और दो अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा एक रत्नप्रभा में यावत् दो तमा में और एक अधःसप्तमी में होता है। अथवा एक रत्नप्रभा में यावत् एक तमा में और दो अधःसप्तमी में होते हैं। इस प्रकार संचारणीय है यावत् अथवा दो रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में यावत् एक अधःसप्तमी में होता है।

९६. भंते! नौ नैरयिक नैरयिक-प्रवेशनक में प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा में होते हैं?—पृच्छा।
गांगेय! रत्नप्रभा में होते हैं यावत् अथवा अधःसप्तमी में होते हैं।

अथवा एक रत्नप्रभा में और आठ शर्कराप्रभा में होते हैं। इस प्रकार जैसे आठ नैरयिकों के द्वि-संयोगज यावत् सप्त-संयोगज भंग कहे गए हैं वैसे ही नौ नैरयिकों के वक्तव्य हैं, इतना विशेष है—एक-एक अभ्यधिक संचारणीय है, शेष पूर्ववत् पश्चिम आलापक—अथवा तीन रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में यावत् एक अधःसप्तमी में होता है।

१७. भंते! दस नैरयिक नैरयिक-प्रवेशनक में प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा में होते हैं?—पृच्छा।

गांगेय! रत्नप्रभा में होते हैं यावत् अथवा अधःसप्तमी में होते हैं।

अथवा एक रत्नप्रभा में और नौ अधःसप्तमी में होते हैं। इस प्रकार जैसे नौ नैरयिकों के द्वि-संयोगज यावत् सप्त-संयोगज भंग कहे गए हैं, वैसे ही दस नैरयिकों के वक्तव्य हैं, इतना विशेष है—एक-एक अभ्यधिक संचारणीय है, शेष पूर्ववत् पश्चिम आलापक—अथवा चार रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में यावत् एक अधःसप्तमी में होता है।

१८. भंते! संख्येय नैरयिक नैरयिक-प्रवेशनक में प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा में होते हैं?—पृच्छा।

गांगेय! रत्नप्रभा में होते हैं यावत् अथवा अधःसप्तमी में होते हैं।

अथवा एक रत्नप्रभा में और संख्येय शर्कराप्रभा में होते हैं। इस प्रकार यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में और संख्येय अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा दो रत्नप्रभा में और संख्येय शर्कराप्रभा में होते हैं। इस प्रकार यावत् अथवा दो रत्नप्रभा में और संख्येय अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा तीन रत्नप्रभा में और संख्येय अधःसप्तमी में होते हैं। इस प्रकार इस क्रम से एक-एक संचारणीय है, यावत् अथवा दस रत्नप्रभा में और संख्येय शर्कराप्रभा में होते हैं। इस प्रकार यावत् अथवा दस रत्नप्रभा में और संख्येय अधःसप्तमी में होते हैं, अथवा संख्येय रत्नप्रभा में और संख्येय शर्कराप्रभा में होते हैं यावत् अथवा संख्येय रत्नप्रभा में और संख्येय अधःसप्तमी में होते हैं, अथवा एक शर्कराप्रभा में और संख्येय वालुकाप्रभा में होते हैं। इस प्रकार जैसे रत्नप्रभा-पृथ्वी से ऊर्ध्ववर्ती पृथ्वियों के साथ विकल्पना की गई है वैसे ही शर्कराप्रभा से ऊर्ध्ववर्ती पृथ्वियों के साथ विकल्पना करनी चाहिए यावत् अथवा संख्येय तमा में और संख्येय अधःसप्तमी में होते हैं।

अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और संख्येय वालुकाप्रभा में होते हैं। अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और संख्येय पंकप्रभा में होते हैं यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में, एक शर्कराप्रभा में और संख्येय अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा एक रत्नप्रभा में, दो शर्कराप्रभा में और संख्येय वालुकाप्रभा में होते हैं, यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में, दो शर्कराप्रभा में और संख्येय अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा एक रत्नप्रभा में, तीन शर्कराप्रभा में और संख्येय वालुकाप्रभा में होते हैं। इस प्रकार इस क्रम से एक-एक शर्कराप्रभा में संचारणीय है यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में, संख्येय शर्कराप्रभा में और संख्येय वालुकाप्रभा में होते हैं यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में, संख्येय वालुकाप्रभा में और संख्येय अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा दो रत्नप्रभा में, संख्येय शर्कराप्रभा में और संख्येय वालुकाप्रभा में होते हैं यावत् अथवा दो रत्नप्रभा में, संख्येय शर्कराप्रभा में और संख्येय अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा तीन रत्नप्रभा में, संख्येय शर्कराप्रभा में और संख्येय वालुकाप्रभा में होते हैं। इस प्रकार इस क्रम से प्रत्येक रत्नप्रभा में संचारणीय है, यावत् अथवा संख्येय रत्नप्रभा में, संख्येय शर्कराप्रभा में और संख्येय वालुकाप्रभा में होते हैं यावत् अथवा संख्येय रत्नप्रभा में, संख्येय शर्कराप्रभा में और संख्येय अधःसप्तमी में होते हैं अथवा

एक रत्नप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में और संख्येय पंकप्रभा में होते हैं यावत् अथवा एक रत्नप्रभा में, एक वालुकाप्रभा में और संख्येय अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा एक रत्नप्रभा में, दो वालुकाप्रभा में और संख्येय पंकप्रभा में होते हैं। इस प्रकार इस क्रम से जैसे दस नैरयिकों के त्रि-संयोगज, चतुष्क-संयोगज यावत् सप्त-संयोगज भंग कहे गए हैं वैसे ही यहां वक्तव्य है। सप्त-संयोगज का पश्चिम आलापक—अथवा संख्येय रत्नप्रभा में, संख्येय शर्कराप्रभा में यावत् संख्येय अधःसप्तमी में होते हैं।

९९. भंते! असंख्येय नैरयिक नैरयिक-प्रवेशनक में प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा में होते हैं?—पृच्छा।

गांगेय! रत्नप्रभा में होते हैं यावत् अथवा अधःसप्तमी में होते हैं।

अथवा एक रत्नप्रभा में और असंख्येय शर्कराप्रभा में होते हैं। इस प्रकार जैसे संख्येय नैरयिकों के द्वि-संयोगज यावत् सप्त-संयोगज भंग कहे गए हैं, वैसे ही असंख्येय नैरयिकों के वक्तव्य हैं, इतना विशेष है—असंख्येय अभ्यधिक वक्तव्य है, शेष पूर्ववत्, यावत् सप्त संयोग का पश्चिम आलापक—अथवा असंख्येय रत्नप्रभा में, असंख्येय शर्कराप्रभा में यावत् असंख्येय अधःसप्तमी में होते हैं।

१००. भंते! उत्कृष्ट नैरयिक नैरयिक-प्रवेशनक में प्रवेश करते हुए क्या रत्नप्रभा में होते हैं?—पृच्छा।

गांगेय! सब रत्नप्रभा में होते हैं। अथवा रत्नप्रभा में और शर्कराप्रभा में होते हैं। अथवा रत्नप्रभा में और वालुकाप्रभा में होते हैं यावत् अथवा रत्नप्रभा में और अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा रत्नप्रभा में, शर्कराप्रभा में और वालुकाप्रभा में होते हैं। इस प्रकार यावत् अथवा रत्नप्रभा में, शर्कराप्रभा में और अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा रत्नप्रभा में, वालुकाप्रभा में और पंकप्रभा में होते हैं यावत् अथवा रत्नप्रभा में, वालुकाप्रभा में और अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा रत्नप्रभा में, पंकप्रभा में और धूमप्रभा में होते हैं। इस प्रकार जैसे रत्नप्रभा को न छोड़ते हुए तीन पृथ्वियों के त्रि-संयोगज भंग कहे गए हैं, वैसे ही वक्तव्य है यावत् अथवा रत्नप्रभा में, तमा में और अधःसप्तमी में होते हैं।

अथवा रत्नप्रभा में, शर्कराप्रभा में, वालुकाप्रभा में और पंकप्रभा में होते हैं, अथवा रत्नप्रभा में, शर्कराप्रभा में, वालुकाप्रभा में और धूमप्रभा में होते हैं यावत् अथवा रत्नप्रभा में, शर्कराप्रभा में, वालुकाप्रभा में और अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा रत्नप्रभा में, शर्कराप्रभा में, पंकप्रभा में और धूमप्रभा में होते हैं। इस प्रकार जैसे रत्नप्रभा को न छोड़ते हुए चार पृथ्वियों के चतुष्क-संयोगज भंग कहे गए हैं, वैसे ही वक्तव्य है यावत् अथवा रत्नप्रभा में, धूमप्रभा में, तमा में और अधःसप्तमी में होते हैं।

अथवा रत्नप्रभा में, शर्कराप्रभा में, वालुकाप्रभा में, पंकप्रभा में और धूमप्रभा में होते हैं। अथवा रत्नप्रभा यावत् पंकप्रभा में और तमा में होते हैं। अथवा रत्नप्रभा में यावत् पंकप्रभा में और अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा रत्नप्रभा में, शर्कराप्रभा में, वालुकाप्रभा में, धूमप्रभा में और तमा में होते हैं। इस प्रकार रत्नप्रभा को न छोड़ते हुए पांच पृथ्वियों के पंच-संयोगज भंग

वैसे ही वक्तव्य हैं, यावत् अथवा रत्नप्रभा में, पंकप्रभा में यावत् अधःसप्तमी में होते हैं अथवा रत्नप्रभा में, शर्कराप्रभा में यावत् धूमप्रभा में और तमा में होते हैं, अथवा रत्नप्रभा में यावत् धूमप्रभा में और अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा रत्नप्रभा में, शर्कराप्रभा में यावत् पंकप्रभा में, तमा में और अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा रत्नप्रभा में, शर्कराप्रभा में, वालुकाप्रभा में, धूमप्रभा में, तमा में और अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा रत्नप्रभा में, शर्कराप्रभा में, पंकप्रभा में यावत् अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा रत्नप्रभा में, वालुकाप्रभा में यावत् अधःसप्तमी में होते हैं। अथवा रत्नप्रभा में, शर्कराप्रभा में यावत् अधःसप्तमी में होते हैं।

१०१. भंते! रत्नप्रभा-पृथ्वी में प्रवेश करने वाले, शर्कराप्रभा-पृथ्वी में प्रवेश करने वाले यावत् अधःसप्तमी-पृथ्वी में प्रवेश करने वाले नैरयिकों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है?

गांगेय! अधःसप्तमी-पृथ्वी में प्रवेश करने वाले नैरयिक सबसे अल्प हैं। तमा-पृथ्वी में प्रवेश करने वाले नैरयिक उनसे असंख्येय-गुण हैं। इस प्रकार प्रतिलोमक (उल्टा चलने पर) यावत् रत्नप्रभा-पृथ्वी में प्रवेश करने वाले नैरयिक असंख्येय-गुण हैं।

१०२. भंते! तिर्यग्योनिक-प्रवेशनक कितने प्रकार का प्रज्ञप्त हैं?

गांगेय! पांच प्रकार का प्रज्ञप्त हैं, जैसे-एकेन्द्रिय-तिर्यग्योनिक-प्रवेशनक यावत् पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिक-प्रवेशनक।

१०३. भंते! एक तिर्यग्योनिक तिर्यग्योनिक-प्रवेशनक में प्रवेश करते हुए क्या एकेन्द्रिय में होता है यावत् पंचेन्द्रिय में होता है?

गांगेय! एकेन्द्रिय में होता है यावत् अथवा पंचेन्द्रिय में होता है।

१०४. भंते! दो तिर्यग्योनिक तिर्यग्योनिक-प्रवेशनक में प्रवेश करते हुए क्या एकेन्द्रिय में होते हैं यावत् पंचेन्द्रिय में होते हैं?

गांगेय! एकेन्द्रिय में होते हैं यावत् अथवा पंचेन्द्रिय में होते हैं। अथवा एक एकेन्द्रिय में और एक द्वीन्द्रिय में होता है। इस प्रकार जैसे नैरयिक-प्रवेशनक जैसे तिर्यग्योनिक-प्रवेशनक वक्तव्य है यावत् असंख्येय।

१०५. भंते! उत्कृष्ट तिर्यग्योनिक तिर्यग्योनिक-प्रवेशनक में प्रवेश करते हुए एकेन्द्रिय में होते हैं?—पृच्छा।

गांगेय! सब एकेन्द्रिय में होते हैं, अथवा एकेन्द्रिय में और द्वीन्द्रिय में होते हैं। इस प्रकार जैसे नैरयिकों की चारणा की, वैसे ही तिर्यग्योनिकों की भी चारणा करनी चाहिए। एकेन्द्रियों को न छोड़ते हुए द्विसंयोग, त्रि-संयोग, चतुष्क-संयोग, पंच-संयोग उपयुक्त योजना कर वक्तव्य हैं यावत् अथवा एकेन्द्रिय में, द्वीन्द्रिय में यावत् पंचेन्द्रिय में होते हैं।

१०६. भंते! इन एकेन्द्रिय में प्रवेश करने वाले यावत् पंचेन्द्रिय में प्रवेश करने वाले तिर्यग्योनिकों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है?

गांगेय! पञ्चेन्द्रिय में प्रवेश करने वाले तिर्यग्योनिक सबसे अधिक हैं, चतुस्त्रिन्द्रिय में प्रवेश करने वाले तिर्यग्योनिक उनसे विशेषाधिक हैं, त्रीन्द्रिय में प्रवेश करने वाले तिर्यग्योनिक उनसे विशेषाधिक हैं, द्विन्द्रिय में प्रवेश करने वाले तिर्यग्योनिक उनसे विशेषाधिक हैं, ऐकेन्द्रिय में प्रवेश करने वाले तिर्यग्योनिक उनसे विशेषाधिक हैं।

१०७. भंते! मनुष्य-प्रवेशनक कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?

गांगेय! दो प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—सम्पूर्च्छिम-मनुष्य-प्रवेशनक, गर्भावक्रांतिक-मनुष्य-प्रवेशनक।

१०८. भंते! एक मनुष्य मनुष्य-प्रवेशनक में प्रवेश करते हुए क्या सम्पूर्च्छिम-मनुष्यों में होता है? गर्भावक्रांतिक-मनुष्यों में होता है?

गांगेय! सम्पूर्च्छिम-मनुष्यों में होता है अथवा गर्भावक्रांतिक-मनुष्यों में होता है।

१०९. भंते! दो मनुष्य-मृच्छा।

गांगेय! सम्पूर्च्छिम-मनुष्यों में होते हैं अथवा गर्भावक्रांतिक-मनुष्यों में होते हैं।

अथवा एक सम्पूर्च्छिम-मनुष्यों में और एक गर्भावक्रांतिक-मनुष्यों में होता है। इस प्रकार इस क्रम से जैसे नैरयिक-प्रवेशनक वैसे ही मनुष्य-प्रवेशनक वक्तव्य है यावत् दश।

११०. भंते! संख्येय मनुष्य-मृच्छा।

गांगेय! सम्पूर्च्छिम-मनुष्यों में होते हैं अथवा गर्भावक्रांतिक मनुष्यों में होते हैं।

अथवा एक सम्पूर्च्छिम-मनुष्यों में और संख्येय गर्भावक्रांतिक-मनुष्यों में होते हैं, अथवा दो सम्पूर्च्छिम-मनुष्यों में और संख्येय गर्भावक्रांतिक-मनुष्यों में होते हैं। इस प्रकार एक-एक की वृद्धि करने पर यावत् अथवा संख्येय सम्पूर्च्छिम-मनुष्यों में और संख्येय गर्भावक्रान्तिक-मनुष्यों में होते हैं।

१११. भंते! असंख्येय मनुष्य-मृच्छा।

गांगेय! सब सम्पूर्च्छिम-मनुष्यों में होते हैं। अथवा असंख्येय सम्पूर्च्छिम-मनुष्यों में और एक गर्भावक्रांतिक-मनुष्यों में होता है। अथवा असंख्येय सम्पूर्च्छिम-मनुष्यों में और दो गर्भावक्रांतिक-मनुष्यों में होते हैं। इस प्रकार यावत् असंख्येय सम्पूर्च्छिम-मनुष्यों में और संख्येय गर्भावक्रांतिक-मनुष्यों में होते हैं।

११२. भंते! उत्कृष्ट मनुष्य-मृच्छा।

गांगेय! सब सम्पूर्च्छिम-मनुष्यों में होते हैं। अथवा सम्पूर्च्छिम-मनुष्यों में और गर्भावक्रांतिक-मनुष्यों में होते हैं।

११३. भंते! इन सम्पूर्च्छिम में प्रवेश करने वाले और गर्भावक्रांतिक में प्रवेश करने वाले मनुष्यों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

गांगेय! गर्भावक्रांतिक में प्रवेश करने वाले मनुष्य सबसे अल्प हैं। सम्पूर्च्छिम में प्रवेश करने वाले उनसे असंख्येय-गुण हैं।

११४. भंते! देव-प्रवेशनक कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?

गांगेय! चार प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—भवनवासी-देव-प्रवेशनक यावत् वैमानिक-देव-प्रवेशनक।

११५. भंते! एक देव देव-प्रवेशनक में प्रवेश करता हुआ क्या भवनवासी में होता है?

वाणमंतर, ज्योतिष्क और वैमानिक में होता है?

गांगेय! भवनवासी में होता है, वाणमंतर, ज्योतिष्क अथवा वैमानिक में होता है।

११६. भंते! दो देव देव-प्रवेशनक में प्रवेश करते हुए भवनवासी में होते हैं? पृच्छा।

गांगेय! भवनवासी में होते हैं, वाणमंतर, ज्योतिष्क अथवा वैमानिक में होते हैं। अथवा एक भवनवासी में और एक वाणमंतर में होता है। इस प्रकार जैसे तिर्यग्योनिक-प्रवेशनक वैसे देव-प्रवेशनक वक्तव्य है यावत् असंख्येय।

११७. भंते! उत्कृष्ट देव-पृच्छा।

गांगेय! सब ज्योतिष्क में होते हैं। अथवा ज्योतिष्क और भवनवासी में होते हैं। अथवा ज्योतिष्क और वाणमंतर में होते हैं। अथवा ज्योतिष्क और वैमानिक में होते हैं। अथवा ज्योतिष्क, भवनवासी और वाणमंतर में होते हैं। अथवा ज्योतिष्क, भवनवासी और वैमानिक में होते हैं। अथवा ज्योतिष्क, वाणमंतर और वैमानिक में होते हैं। अथवा ज्योतिष्क, भवनवासी, वाणमंतर और वैमानिक में होते हैं।

११८. भंते! इन भवनवासी में प्रवेश करने वाले, वाणमंतर में प्रवेश करने वाले, ज्योतिष्क में प्रवेश करने वाले और वैमानिक में प्रवेश करने वाले देवों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है?

गांगेय! वैमानिक में प्रवेश करने वाले देव सबसे अल्प हैं, भवनवासी में प्रवेश करने वाले देव उनसे असंख्येय गुण हैं, वाणमंतर में प्रवेश करने वाले देव उनसे असंख्येय-गुण हैं, ज्योतिष्क में प्रवेश करने वाले देव उनसे संख्येय गुण हैं।

११९. भंते! इन नैरयिक में प्रवेश करने वालों, तिर्यग्योनिक में प्रवेश करने वालों, मनुष्य में प्रवेश करने वालों और देव में प्रवेश करने वालों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है?

गांगेय! मनुष्य में प्रवेश करने वाले सबसे अल्प हैं, नैरयिक में प्रवेश करने वाले उनसे असंख्येय-गुण हैं, देव में प्रवेश करने वाले उनसे असंख्येय-गुण हैं, तिर्यग्योनिक में प्रवेश करने वाले उनसे असंख्येय-गुण हैं।

सांतर-निरन्तर-उपपन्न-आदि-पद

१२०. भंते! नैरयिक अंतर-सहित उपपन्न होते हैं? निरंतर उपपन्न होते हैं? असुरकुमार अंतर-सहित उपपन्न होते हैं? निरंतर उपपन्न होते हैं? यावत् वैमानिक अंतर-सहित उपपन्न होते हैं? निरंतर उपपन्न होते हैं?

नैरयिक अंतर-सहित उद्वर्तन करते हैं? निरंतर उद्वर्तन करते हैं? यावत् वाणमंतर अंतर-सहित उद्वर्तन करते हैं? निरंतर उद्वर्तन करते हैं? ज्योतिष्क अंतर-सहित च्युत होते हैं? निरंतर च्युत होते हैं? वैमानिक अंतर-सहित च्युत होते हैं? निरंतर च्युत होते हैं?

गांगेय! नैरयिक अंतर-सहित भी उपपन्न होते हैं, निरंतर भी उपपन्न होते हैं यावत् स्तनितकुमार अंतर-सहित भी उपपन्न होते हैं, निरंतर भी उपपन्न होते हैं। पृथ्वीकायिक अंतर-सहित उपपन्न नहीं होते, निरंतर उपपन्न होते हैं। इस प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक। शेष जैसे नैरयिक यावत् वैमानिक अंतर-सहित भी उपपन्न होते हैं, निरंतर भी उपपन्न होते हैं।

नैरयिक अंतर-सहित भी उद्वर्तन करते हैं, निरंतर भी उद्वर्तन करते हैं। इस प्रकार यावत् स्तनितकुमार। पृथ्वीकायिक अंतर-सहित उद्वर्तन नहीं करते, निरंतर उद्वर्तन करते हैं। इस प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक। शेष जैसे-नैरयिक, इतना विशेष है-ज्योतिष्क, वैमानिक च्युत होते हैं आलापक यावत् वैमानिक अंतर-सहित भी च्युत होते हैं, निरंतर भी च्युत होते हैं।

सद्-असद्-उपपन्न-आदि-पद

१२१. भंते! सत् नैरयिक उपपन्न होते हैं? असत् उपपन्न होते हैं? सत् असुरकुमार उपपन्न होते हैं, यावत् सत् वैमानिक उपपन्न होते हैं? असत् वैमानिक उपपन्न होते हैं? सत् नैरयिक उद्वर्तन करते हैं? असत् नैरयिक उद्वर्तन करते हैं? सत् असुरकुमार उद्वर्तन करते हैं? यावत् सत् वैमानिक च्युत होते हैं? असत् च्युत होते हैं?

गांगेय! सत् नैरयिक उपपन्न होते हैं, असत् उपपन्न नहीं होते। सत् असुरकुमार उपपन्न होते हैं, असत् उपपन्न नहीं होते यावत् सत् वैमानिक उपपन्न होते हैं, असत् उपपन्न नहीं होते। सत् नैरयिक उद्वर्तन करते हैं, असत् उद्वर्तन नहीं करते यावत् सत् वैमानिक च्युत होते हैं, असत् च्युत नहीं होते।

१२२. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है-सत् नैरयिक उपपन्न होते हैं, असत् उपपन्न नहीं होते यावत् सत् वैमानिक च्युत होते हैं, असत् च्युत नहीं होते?

हे गांगेय! आपके पूर्ववर्ती पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्व ने लोक को शाश्वत कहा है, वह अनादि अनंत, परित, अलोक से परिवृत, निम्नभाग में विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त और ऊपर विशाल है। वह निम्नभाग में पर्यंक के आकार वाला, मध्य में श्रेष्ठ वज्र के आकार वाला और ऊपर ऊर्ध्वमुख मृदंग के आकार वाला है। उस शाश्वत अनादि अनंत, परित, अलोक से परिवृत, निम्नभाग में विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त ऊपर में विशाल, निम्नभाग में पर्यंक, मध्य में श्रेष्ठ वज्र और ऊपर ऊर्ध्वमुख मृदंग के आकार वाले लोक में अनंत जीव-घन उत्पन्न होकर, उत्पन्न होकर विलीन हो जाते हैं, परित जीव-घन उत्पन्न होकर, उत्पन्न होकर विलीन हो जाते हैं।

वह लोक सद्भूत, उत्पन्न, विगत और परिणत है। अजीव-पुद्गल आदि के विविध परिणमनों के द्वारा जिसका लोकन किया जाता है, प्रलोकन किया जाता है, वह लोक है।

गांगेय! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है-यावत् सत् वैमानिक च्युत होते हैं, असत् च्युत नहीं होते।

स्वतः अथवा परतः ज्ञान-पद

१२३. भंते! आप स्वयं इस प्रकार जानते हैं अथवा किसी अन्य से प्राप्त ज्ञान के आधार पर जानते हैं? आप किसी से सुने बिना, आगम आदि का अध्ययन किए बिना जानते हैं अथवा सुनकर, आगम आदि का अध्ययन कर जानते हैं—सत् नैरयिक उपपन्न होते हैं, असत् उपपन्न नहीं होते यावत् सत् वैमानिक च्युत होते हैं, असत् च्युत नहीं होते?

गांगेय! मैं स्वयं इस प्रकार जानता हूँ, किसी अन्य से प्राप्त ज्ञान के आधार पर नहीं जानता। मैं सुने बिना, आगम आदि का अध्ययन किए बिना जानता हूँ, सुनकर, आगम आदि का अध्ययन कर नहीं जानता—सत् नैरयिक उपपन्न होते हैं, असत् उपपन्न नहीं होते, सत् वैमानिक च्युत होते हैं, असत् च्युत नहीं होते।

१२४. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—मैं स्वयं इस प्रकार जानता हूँ किसी अन्य से प्राप्त ज्ञान के आधार पर नहीं जानता? मैं सुने बिना, किसी आगम आदि का अध्ययन किए बिना जानता हूँ, सुनकर, आगम आदि का अध्ययन कर नहीं जानता—सत् नैरयिक उपपन्न होते हैं, असत् उपपन्न नहीं होते यावत् सत् वैमानिक च्युत होते हैं, असत् च्युत नहीं होते?

गांगेय! केवली पूर्व में परिमित को भी जानता है, अपरिमित को भी जानता है।

इसी प्रकार दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊर्ध्व और अधः दिशाओं में परिमित को भी जानता है, अपरिमित को भी जानता है।

केवली सबको जानता है, केवली सबको देखता है।

केवली सब ओर से जानता है, केवली सब ओर से देखता है।

केवली सब काल में जानता है, केवली सब काल में देखता है।

केवली का ज्ञान अनन्त है, केवली का दर्शन अनन्त है।

केवली का ज्ञान निरावरण है, केवली का दर्शन निरावरण है।

गांगेय! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—मैं स्वयं इस प्रकार जानता हूँ, किसी अन्य से प्राप्त ज्ञान के आधार पर नहीं जानता। मैं सुने बिना, आगम आदि का अध्ययन किए बिना जानता हूँ, सुनकर, आगम आदि का अध्ययन कर नहीं जानता। इसी प्रकार यावत् असत् वैमानिक च्युत नहीं होते।

स्वतः परतः उपपन्न-पद

१२५. भंते! नैरयिक नैरयिकों में स्वतः उपपन्न होते हैं, नैरयिक नैरयिकों में परतः उपपन्न होते हैं—किसी दूसरी शक्ति के द्वारा उपपन्न किए जाते हैं?

गांगेय! नैरयिक नैरयिकों में स्वतः उपपन्न होते हैं, नैरयिक नैरयिकों में परतः उपपन्न नहीं होते।

१२६. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—नैरयिक नैरयिकों में स्वतः उपपन्न होते हैं? नैरयिक नैरयिकों में परतः उपपन्न नहीं होते—किसी दूसरे व्यक्ति के द्वारा उपपन्न नहीं किए जाते?

गांगेय! कर्म के उदय, कर्म की गुरुता, कर्म की भारिकता, कर्म की गुरुसंभारिकता, अशुभ कर्म के उदय, अशुभ कर्म के विपाक और अशुभ कर्म के फल-विपाक से नैरयिक नैरयिकों में स्वतः उपपन्न होते हैं, नैरयिक नैरयिकों में परतः उपपन्न नहीं होते। गांगेय! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—नैरयिक नैरयिकों में स्वतः उपपन्न होते हैं, नैरयिक नैरयिकों में परतः उपपन्न नहीं होते।

१२७. भंते! असुरकुमार असुरकुमारों में स्वतः उपपन्न होते हैं? पृच्छा।

गांगेय! असुरकुमार असुरकुमारों में स्वतः उपपन्न होते हैं, असुरकुमार असुरकुमारों में परतः उपपन्न नहीं होते।

१२८. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—असुरकुमार असुरकुमारों में स्वतः उपपन्न होते हैं, असुरकुमार असुरकुमारों में परतः उपपन्न नहीं होते?

गांगेय! कर्म के उदय, कर्म के विगमन, कर्म-विशोधि, कर्म-विशुद्धि, शुभ कर्म के उदय, शुभ कर्म के विपाक और शुभ कर्म के फल-विपाक से असुरकुमार असुरकुमार के रूप में स्वतः उपपन्न होते हैं, असुरकुमार असुरकुमार के रूप में परतः उपपन्न नहीं होते। इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—असुरकुमार असुरकुमार के रूप में स्वतः उपपन्न होते हैं, असुरकुमार असुरकुमार के रूप में परतः उपपन्न नहीं होते। इस प्रकार यावत् स्तनितकुमार।

१२९. भंते! पृथ्वीकायिक पृथ्वीकायिक में स्वतः उत्पन्न होते हैं?—पृच्छा

गांगेय! पृथ्वीकायिक पृथ्वीकायिक में स्वतः उत्पन्न होते हैं, पृथ्वीकायिक पृथ्वीकायिक में परत उत्पन्न नहीं होते।

१३०. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—पृथ्वीकायिक पृथ्वीकायिक में स्वतः उत्पन्न होते हैं, पृथ्वीकायिक पृथ्वीकायिक में परतः उत्पन्न नहीं होते?

गांगेय! कर्म के उदय, कर्म की गुरुता, कर्म की भारिकता, कर्म की गुरु-संभारिकता, शुभाशुभ कर्म के उदय, शुभाशुभ कर्म के विपाक और शुभाशुभ कर्म के फल-विपाक से पृथ्वीकायिक पृथ्वीकायिक में स्वतः उत्पन्न होते हैं, पृथ्वीकायिक पृथ्वीकायिक में परतः उत्पन्न नहीं होते। इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—पृथ्वीकायिक पृथ्वीकायिक में स्वतः उत्पन्न होते हैं, पृथ्वी-कायिक पृथ्वीकायिक में परतः उत्पन्न नहीं होते।

१३१. इस प्रकार यावत् मनुष्य।

१३२. वाणमंतर, ज्योतिष्क और वैमानिक असुरकुमार की भांति वक्तव्य हैं।

गांगेय! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—वैमानिक वैमानिकों में स्वतः उपपन्न होते हैं, वैमानिक वैमानिकों में परतः उपपन्न नहीं होते।

गांगेय का संबोधि-पद

१३३. उसके पश्चात् गांगेय अनगर को यह प्रत्यभिज्ञा होती है—श्रमण भगवान् महावीर सर्वज्ञ, सर्वदर्शी हैं। अब वह गांगेय अनगर श्रमण भगवान् महावीर को दाईं ओर से तीन बार प्रदक्षिणा करता है, वंदन-नमस्कार करता है, वंदन-नमस्कार कर उसने इस प्रकार कहा—भंते!

मैं आपके पास चतुर्थांश धर्म से (मुक्त होकर) सप्रतिक्रमण पंच-महाव्रतात्मक धर्म को स्वीकार करना चाहता हूँ।

देवानुप्रिय! जैसे तुम्हें सुख हो, प्रतिबंध मत करो।

१३४. वह गांगेय अनगार श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार करता है। वंदन-नमस्कार कर चतुर्थांश धर्म से मुक्त होकर सप्रतिक्रमण पंच-महाव्रतात्मक धर्म को स्वीकार कर विहार करता है।

१३५. वह गांगेय अनगार बहुत वर्षों तक श्रामण्य-पर्याय का पालन करता है, पालन कर जिस प्रयोजन से नग्नभाव, मुण्डभाव, स्नान न करना, दतौन न करना, छत्र धारण न करना, पादुका न पहनना, भूमिशय्या, फलकशय्या, काष्ठशय्या, ब्रह्मचर्यवास, भिक्षा के लिए गृहस्थों के घर में प्रवेश करना, लाभ-अलाभ, उच्चावच-ग्रामकंटक, बाईस परीषहों और उपसर्गों को सहन किया जाता है, उस प्रयोजन की आराधना करता है। उसकी आराधना कर चरम उच्छ्वास-निःश्वास में सिद्ध, प्रशांत, मुक्त, परिनिर्वृत और सब दुःखों को क्षीण करने वाला हो जाता है।

१३६. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

तेतीसवां उद्देशक

ऋषभदत्त-देवानंदा-पद

१३७. उस काल और उस समय में ब्राह्मणकुंडग्राम नामक नगर था—वर्णक। बहुशालक चैत्य—वर्णक। उस ब्राह्मणकुंडग्राम नगर में ऋषभदत्त नामक ब्राह्मण रहता है—वह संपन्न, दीप्तिमान और विश्रुत है यावत् बहुजन के द्वारा अपरिभवनीय है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद—ये चार वेद, पांचवां इतिहास, छठा निघण्टु—इनका सांगोपांग रहस्य-सहित सारक (प्रवर्तक), धारक और पागामी है। वह छह अंगों का वेत्ता, षष्टितंत्र का विशारद, संख्यान, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द, निरुक्त, ज्योतिष-शास्त्र, अन्य अनेक ब्राह्मण और परिव्राजक संबंधी नयों में निष्णात है।

वह श्रमणोपासक जीव-अजीव को जानने वाला, पुण्य-पाप के मर्म को समझने वाला, यावत् यथा परिगृहीत तपःकर्म के द्वारा आत्मा को भावित करते हुए रह रहा है। उस ऋषभदत्त ब्राह्मण के देवानंदा नाम की ब्राह्मणी थी—सुकुमाल हाथ-पैर वाली यावत् प्रियदर्शिनी, सुरूप श्रमणोपासिका, जीव-अजीव को जानने वाली, पुण्य-पाप का मर्म समझने वाली यावत् यथा-परिगृहीत तपःकर्म के द्वारा आत्मा को भावित करते हुए रह रही है।

१३८. उस काल और उस समय में स्वामी आए। परिषद् ने पर्युपासना की।

१३९. वह ऋषभदत्त ब्राह्मण इस कथा की जानकारी प्राप्त कर हृष्ट-तुष्ट चित्त वाला, आनंदित, नंदित, प्रीतिपूर्ण मन वाला, परम सौमनस्य युक्त और हर्ष से विकस्वर हृदय वाला हो गया। जहां देवानंदा ब्राह्मणी है वहां आता है, आ कर देवानंदा ब्राह्मणी से इस प्रकार कहता है—देवानुप्रिये! श्रमण भगवान् महावीर आदिकर यावत् सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, आकाशगत

धर्मचक्र से शोभित यावत् सुखपूर्वक विहार करते हुए बहुशालक चैत्य में प्रवास-योग्य स्थान की अनुमति लेकर संयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए रह रहे हैं।

देवानुप्रिये! ऐसे अर्हत्-भगवानों के नाम-गोत्र का श्रवण भी महान् फलदायक है फिर अभिगमन, वंदन, नमस्कार, प्रतिपृच्छा और पर्युपासना का कहना ही क्या? एक भी आर्य धार्मिक वचन का श्रवण महान् फलदायक है फिर विपुल अर्थ-ग्रहण का कहना ही क्या?

इसलिए देवानुप्रिये! हम चलें, श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार करें, सत्कार-सम्मान करें, भगवान् कल्याणकारी, मंगल, देव और प्रशस्त चित्त वाले हैं। हम उनकी पर्युपासना करें। यह हमारे इहभवं और परभवं के लिए हित, शुभ, क्षम, निःश्रेयस और आनुगामिकता के लिए होगा।

१४०. देवानंदा ब्राह्मणी ऋषभदत्त ब्राह्मण के यह कहने पर हृष्ट-तुष्ट चित्त वाली, आनंदित, नंदित, प्रीतिपूर्ण मन वाली, परमसौमनस्य युक्त और हर्ष से विकस्वर हृदय वाली हो गई। वह दोनों हथेलियों से निष्पन्न सम्पुट आकार वाली दसनखात्मक अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर, मस्तक पर टिकाकर ऋषभदत्त ब्राह्मण के इस अर्थ को विनयपूर्वक स्वीकार करती है।

१४१. ऋषभदत्त ब्राह्मण ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा— देवानुप्रियो! शीघ्र गति-क्रिया की दक्षता से युक्त, समान खुर और पूंछ वाले, समान रूप से उल्लिखित सींग वाले, स्वर्णमय कलाप से युक्त, प्रतिविशिष्ट—प्रधान रजतमय घण्टा वाले, धागे की डोरी तथा प्रवर कंचनमय नथिनी की डोरी से बंधे हुए, नील उत्पल के सेहरे वाले, प्रवर तरुण बैल जिसमें जोते गए हैं, जिस पर नाना मणि, रत्न और घंटिका जाल वाली झूल डाली हुई है, श्रेष्ठ काठ की जुआ और जोत (जूए को बैल की गर्दन से जोतने वाली रस्सी) रज्जुयुग्म प्रशस्त, सुविरचित और निर्मित है, प्रवर लक्षण से उपेत है वैसे धार्मिक यानप्रवर को तैयार कर शीघ्र उपस्थित करो। उपस्थित कर मेरी इस आज्ञा को मुझे प्रत्यर्पित करो।

१४२. वे कौटुम्बिक पुरुष ऋषभदत्त ब्राह्मण के यह कहने पर हृष्ट-तुष्ट चित्त वाले, आनंदित, नंदित, प्रीतिपूर्ण मन वाले, परमसौमनस्य युक्त और हर्ष से विकस्वर हृदय वाले हो गए। दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली दसनखात्मक अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर 'स्वामी! आपकी आज्ञा के अनुसार ऐसा ही होगा', यह कहकर विनयपूर्वक वचन को स्वीकार करते हैं। स्वीकार कर शीघ्र गतिक्रिया की दक्षता से युक्त यावत् धार्मिक यानप्रवर को शीघ्र उपस्थित कर उस आज्ञा को प्रत्यर्पित करते हैं।

१४३. ऋषभदत्त ब्राह्मण ने स्नान यावत् अल्पभार और बहुमूल्य वाले आभूषणों से शरीर को अलंकृत किया। (इस प्रकार सज्जित होकर) अपने घर से निकले, घर से निकलकर जहां बाहरी उपस्थानशाला है, जहां धार्मिक यानप्रवर है वहां आए। वहां आ कर धार्मिक यानप्रवर पर आरूढ़ हो गए।

१४४. देवानंदा ब्राह्मणी ने स्नान यावत् अल्पभार और बहुमूल्य वाले आभूषणों से शरीर को अलंकृत किया। बहुत कुब्जा, किरात देशवासिनी यावत् चेटिका-समूह, वर्षधर (कृत-

-नपुंसक-पुरुष) स्थविर, कंचुकी-जनों-प्रतिहार-गण और महत्तरक-गण के वृन्द से घिरी हुई अन्तःपुर से निकली। निकलकर जहां बाहरी उपस्थानशाला है, जहां धार्मिक यानप्रवर है, वहां आई। वहां आकर धार्मिक यानप्रवर पर आरुढ़ हो गई।

१४५. ऋषभदत्त ब्राह्मण देवानंदा ब्राह्मणी के साथ अपने परिवार से परिवृत होकर ब्राह्मणकुंडग्राम नगर के बीचोंबीच निर्गमन करते हैं। निर्गमन कर जहां बहुशालक चैत्य है वहां आते हैं, वहां आकर तीर्थकर के छत्र आदि अतिशयों को देखते हैं। देखकर धार्मिक यानप्रवर को स्थापित करते हैं, स्थापित कर धार्मिक यानप्रवर से उतरते हैं। उतरकर पांच प्रकार के अभिगमों से श्रमण भगवान् महावीर के पास जाते हैं, (जैसे—१. सचित्त द्रव्यों को छोड़ना २. अचित्त द्रव्यों को छोड़ना ३. एक शाटक वाला उत्तरासंग करना ४. दृष्टिपात होते ही बद्धांजलि होना ५. मन को एकाग्र करना) जहां श्रमण भगवान् महावीर हैं, वहां आते हैं। वहां आकर दायीं ओर से प्रारंभ कर तीन बार प्रदक्षिणा करते हैं, प्रदक्षिणा कर वंदन-नमस्कार करते हैं, वंदन-नमस्कार कर तीन प्रकार की पर्युपासना के द्वारा पर्युपासना करते हैं।

१४६. देवानंदा ब्राह्मणी धार्मिक यानप्रवर से उतरती है। उतरकर बहुत कुब्जा, यावत् चेटिका-समूह, वर्षधर, स्थविर, कंचुकी-जनों और महत्तरक-गण के वृन्द से घिरी हुई पांच प्रकार के अभिगमों से श्रमण भगवान् महावीर के पास जाती है। (जैसे—१. सचित्त द्रव्यों को छोड़ना २. अचित्त द्रव्यों को छोड़ना ३. शरीरयष्टि को विनयावनत करना ४. दृष्टिपात होते ही बद्धांजलि होना ५. मन को एकाग्र करना) जहां श्रमण भगवान् महावीर हैं, वहां आती है। आकर श्रमण भगवान् महावीर को दायीं ओर से प्रारंभ कर तीन बार प्रदक्षिणा करती है। प्रदक्षिणा कर वंदन-नमस्कार करती है, वंदन-नमस्कार कर ऋषभदत्त ब्राह्मण को आगे कर, स्थित हो परिवार-सहित शुश्रूषा और नमस्कार करती हुई सम्मुख रहकर विनयपूर्वक बद्धांजलि पर्युपासना कर रही है।

१४७. उस समय देवानंदा ब्राह्मणी के स्तनों से दूध की धार बह चली और नेत्र जल से भीग गए। हर्षातिरेक से स्थूल होती हुई भुजा के लिए बाजूबंद अवरोध बन गए, कंचुकी विस्तृत हो गई, मेघ की धारा से आहत कदम्बपुष्प की भांति रोमकूप समुच्छ्वसित हो गए। वह श्रमण भगवान् महावीर को अनिमेष दृष्टि से देख रही है।

१४८. भंते! यह कहकर भगवान् गौतम ने श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर वे इस प्रकार बोले—भंते! क्या देवानंदा ब्राह्मणी के स्तनों से दूध की धार बह चली? नेत्र जल से भीग गए? हर्षातिरेक से स्थूल होती हुई भुजा के लिए बाजूबंद अवरोध बन गए? कंचुकी विस्तृत हो गई? मेघ की धारा से आहत कदम्बपुष्प की भांति रोमकूप उच्छ्वसित हो गए? वह देवानुप्रिय को अनिमेष दृष्टि से देख रही है?

हे गौतम! श्रमण भगवान् महावीर ने भगवान् गौतम से इस प्रकार कहा— गौतम! देवानंदा ब्राह्मणी मेरी माता है, मैं देवानंदा ब्राह्मणी का आत्मज हूँ। इसलिए उस पूर्व पुत्र-स्नेह राग के कारण देवानंदा ब्राह्मणी के स्तनों से दूध की धार बह चली। नेत्र जल से भीग गए। हर्षातिरेक से स्थूल होती हुई भुजा के लिए बाजूबंद अवरोध बन गए, कंचुकी विस्तृत हो गई। मेघ की

धारा से आहत कदाब पुष्प की भांति रोमकूप उच्छ्वसित हो गए। वह मुझे अनिमेष दृष्टि से देख रही है।

१४९. श्रमण भगवान महावीर ने ऋषभदत्त ब्राह्मण और देवानंदा ब्राह्मणी को उस विशाल परिषद् में धर्म का प्रतिबोध दिया, जिस परिषद् में ऋषि-परिषद्, मुनि-परिषद्, यति-परिषद् और देव-परिषद् का समावेश है। उन परिषदों में सैकड़ों-सैकड़ों मनुष्यों के समूह बैठे हुए थे। भगवान महावीर का बल ओघबल, अतिबल और महाबल—इन तीन रूपों में प्रकट हो रहा था। वे अपरिमित बल, वीर्य, तेज, माहात्म्य और कांति से युक्त थे। उनका स्वर शरद ऋतु के मेघ के नव गर्जन, क्रोंच के निर्घोष तथा दुंदुभि की ध्वनि के समान मधुर और गंभीर था। धर्म-कथन के समय भगवान की वाणी वक्ष में विस्तृत, कंठ में वर्तुल और सिर में संकीर्ण होती थी। वह गुणगुनाहट और अस्पष्टता से रहित थी। उसमें अक्षर का सन्निपात स्पष्ट था। वह स्वर-कला से पूर्ण और ज्ञेय राग से अनुरक्त थी। वह सर्व भाषानुगामिनी—स्वतः ही सब भाषाओं में अनुदित हो जाती थी। भगवान एक योजन तक सुनाई देने वाले स्वर में अर्द्धमागधी भाषा में बोले। प्रवचन के पश्चात् परिषद् लौट गई।

१५०. ऋषभदत्त ब्राह्मण श्रमण भगवान महावीर के पास धर्म सुनकर, अवधारण कर दृष्ट-तुष्ट होकर उठने की मुद्रा में उठता है, उठकर श्रमण भगवान महावीर को दायीं ओर से प्रारंभ कर तीन बार प्रदक्षिणा करता है, प्रदक्षिणा कर वंदन-नमस्कार करता है, वंदन-नमस्कार कर वह इस प्रकार बोला—भंते! यह ऐसा ही है, भंते! यह तथा (संवादितापूर्ण) है, भंते! यह अवितथ है, भंते! यह असंदिग्ध है, भंते! यह इष्ट है, भंते! यह प्रतीप्सित (प्राप्त करने के लिए इष्ट) है और भंते! यह इष्टप्रतीप्सित है—

जैसा आप कह रहे हैं—ऐसा भाव प्रदर्शित कर वह उत्तर-पूर्व दिशा भाग (ईशान कोण) की ओर जाता है, जाकर स्वयं ही आभरण अलंकार उतारता है, उतार कर स्वयं ही पंचमुष्टि लोच करता है, लोच कर जहां श्रमण भगवान महावीर हैं, वहां आता है, आकर श्रमण भगवान महावीर को दायीं ओर से प्रारंभ कर तीन बार प्रदक्षिणा करता है, प्रदक्षिणा कर वंदन-नमस्कार करता है, वंदन-नमस्कार कर वह इस प्रकार बोला—भंते! यह लोक बुढ़ापे और मौत से आदीप्त हो रहा है (जल रहा है)। भंते! यह लोक बुढ़ापे और मौत से प्रदीप्त हो रहा है। भंते! यह लोक बुढ़ापे और मौत से आदीप्त-प्रदीप्त हो रहा है।

जैसे किसी गृहपति के घर में आग लग जाने पर वह वहां जो अल्पभार वाला और बहुमूल्य आभरण होता है, उसे लेकर स्वयं एकान्त स्थान में चला जाता है। (और सोचता है)—अग्नि से निकाला हुआ यह आभरण पहले अथवा पीछे मेरे लिए हित, सुख, क्षम, निःश्रेयस और आनुगामिकता के लिए होगा।

देवानुप्रिय! इसी प्रकार मेरा शरीर भी एक उपकरण है। वह इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ, मनहर, स्थिरतर, विश्वसनीय, सम्मत, बहुमत, अनुमत और आभरण-करण्डक के समान है। इसे सदी-गर्मी न लगे, भूख-प्यास न सताए, चोर पीड़ा न पहुंचाए, हिंस पशु इस पर आक्रमण न करे, दंश और मशक इसे न काटे, वात, पित्त, श्लेष्म और सन्निपात-जनित विविध प्रकार

के रोग और आतंक, परीषह और उपसर्ग इसका स्पर्श न करे, इस अभिसंधि से मैंने इसे पाला है। मेरे द्वारा इसका निस्तार होने पर यह परलोक में मेरे लिए हित, सुख, क्षम, निःश्रेयस और आनुगामिकता के लिए होगा, इसलिए देवानुप्रिय! मैं आपके द्वारा ही प्रव्रजित होना चाहता हूँ, मैं आपके द्वारा ही मुण्डित होना चाहता हूँ, मैं आपके द्वारा ही शैक्ष बनना चाहता हूँ, मैं आपके द्वारा ही शिक्षा प्राप्त करना चाहता हूँ तथा आपके द्वारा ही आचार, गोचर, विनय-वैनयिक-चरण-करण-यात्रा-मात्रा-मूलक धर्म का आख्यान चाहता हूँ।

१५१. श्रमण भगवान् महावीर ऋषभदत्त ब्राह्मण को स्वयं ही प्रव्रजित करते हैं, स्वयं ही मुंडित करते हैं, स्वयं ही शैक्ष बनाते हैं, स्वयं ही शिक्षित करते हैं और स्वयं ही आचार-गोचर, विनय-वैनयिक-चरण-करण-यात्रा-मात्रा-मूलक धर्म का आख्यान करते हैं—देवानुप्रिय! इस प्रकार चलना चाहिए, इस प्रकार ठहरना चाहिए, इस प्रकार बैठना चाहिए, इस प्रकार करवट लेनी चाहिए, इस प्रकार भोजन करना चाहिए, इस प्रकार बोलना चाहिए, इस प्रकार पूर्ण जागरूकता से प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों के प्रति संयम से रहना चाहिए। इस अर्थ में किंचित् भी प्रमाद नहीं करना चाहिए।

वह ऋषभदत्त ब्राह्मण श्रमण भगवान् महावीर के इस प्रकार के धार्मिक उपदेश को सम्यक् प्रकार के स्वीकार करता है यावत् सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन करता है। अध्ययन कर अनेक चतुर्थ-भक्त, षष्ठ-भक्त, अष्टम-भक्त, दशम-भक्त, द्वादश-भक्त, अर्धमास और मासक्षपण—इस प्रकार विचित्र तपःकर्म के द्वारा आत्मा को भावित करता हुआ बहुत वर्षों तक श्रामण्य-पर्याय का पालन करता है। पालन कर एक मास की संलेखना से अपने शरीर को कृश बना, अनशन के द्वारा साठभक्त (भोजन के समय) का छेदन करता है, छेदन कर जिस प्रयोजन से नग्नभाव यावत् उस प्रयोजन की आराधना करता है। उसकी आराधना कर चरम उच्छ्वास-निःश्वास में सिद्ध, प्रशान्त, मुक्त, परिनिर्वृत और सब दुःखों को क्षीण करने वाला हो जाता है।

१५२. देवानंदा ब्राह्मणी श्रमण भगवान् महावीर के पास धर्म सुनकर, अवधारण कर, हृष्ट-तुष्ट होकर श्रमण भगवान् महावीर को दायीं ओर से प्रारंभ कर तीन बार प्रदक्षिणा करती है, प्रदक्षिणा कर वंदन-नमस्कार करती है, वंदन-नमस्कार कर वह इस प्रकार बोली—भंते! यह ऐसा ही है, भंते! यह तथा (संवादित पूर्ण)—इस प्रकार जैसे ऋषभदत्त ने कहा वैसे ही यावत् धर्म का आख्यान चाहती हूँ।

१५३. श्रमण भगवान् महावीर देवानंदा ब्राह्मणी को स्वयं ही प्रव्रजित करते हैं, प्रव्रजित कर स्वयं ही आर्या चंदना की आर्या शिष्या के रूप में सौंप देते हैं।

१५४. आर्या चंदना आर्या देवानंदा ब्राह्मणी को स्वयं ही मुंडित करती हैं, स्वयं ही शैक्ष बनाती हैं। इस प्रकार ऋषभदत्त की भांति देवानंदा ब्राह्मणी आर्या चंदना के इस प्रकार के धार्मिक उपदेश को सम्यक् प्रकार से स्वीकार करती है, उसे भली-भांति जानकर वैसे ही संयमपूर्वक चलती है यावत् संयम से संयत रहती है।

१५५. आर्या देवानंदा आर्या चंदना के पास सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन करती है। अध्ययन कर अनेक चतुर्थ-भक्त, षष्ठ-भक्त, अष्टम भक्त, दशम-भक्त, अर्धमास और

मासक्षण—इस प्रकार विचित्र तपःकर्म के द्वारा आत्मा को भावित करती हुई बहुत वर्षों तक श्रामण्य-पर्याय का पालन करती है। पालन कर एक मास की संलेखना से अपने शरीर को कृश बना, अनशन के द्वारा साठ भक्त का छेदन करती है। छेदन कर चरम उच्छ्वास-निःश्वास में सिद्ध, प्रशान्त, मुक्त, परिनिर्वृत और सब दुःखों को क्षीण करने वाली हो जाती है।

जमालि-पद

१५६. ब्राह्मणकुण्डग्राम नगर के पश्चिम भाग में क्षत्रियकुण्डग्राम नामक नगर था—वर्णक। उस क्षत्रियकुण्डग्राम नगर में जमालि नामक क्षत्रियकुमार रहता है—वह सम्पन्न, दीप्तिमान यावत् बहुजन के द्वारा अपरिभवनीय है। वह अपने प्रवर प्रासाद के उपरिभाग में स्थित है। उसके सामने मृदंग-मस्तकों की प्रबल होती हुई ध्वनि के साथ वर तरुणियों द्वारा संप्रयुक्त बत्तीस प्रकार के नाटक किए जा रहे हैं। उसके लिए नृत्य किया जा रहा है, इसलिए वह उपनृत्यमान है। उसके गुणगान किए जा रहे हैं, उपलालन किया जा रहा है। प्रावृद्ध, वर्षा-रात्र, शीत, हेमन्त, बसन्त और ग्रीष्म पर्यंत छहों ऋतुओं के विविध अनुभाव का अनुभव करता हुआ, उनका अंतिम संवरण करता हुआ, इष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध—इस पंचविध मनुष्य संबंधी काम-भोग को भोगता हुआ विहार कर रहा है।

१५७. क्षत्रियकुण्डग्राम नगर के शृंगाटकों, तिराहों, चौराहों, चौहटों, चार द्वार वाले स्थानों, राजमार्गों और मार्गों पर महान् जन-शब्द, जन-व्यूह, जन-बोल, जन-कलकल, जन-उर्मि, जन-उत्कलिका, जन-सन्निपात, बहुजन परस्पर इस प्रकार आख्यान, भाषण, प्रज्ञापन और प्ररूपण करते हैं—देवानुप्रियो! श्रमण भगवान् महावीर धर्मतीर्थ के आदिकर्ता यावत् सर्वज्ञ, सर्वदर्शी ब्राह्मणकुण्डग्राम नगर के बाहर बहुशालक चैत्य में प्रवास-योग्य स्थान की अनुमति लेकर संयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए रह रहे हैं।

देवानुप्रियो! ऐसे अर्हत् भगवानों के नाम-गोत्र का श्रवण भी महान् फलदायक है, (उववाई, सूत्र ५२) की भांति वक्तव्य है, यावत् एक दिशा के अभिमुख क्षत्रियकुण्डग्राम नगर के ठीक मध्य से निकलते हैं, निकलकर जहां ब्राह्मणकुण्डग्राम नगर है, जहां बहुशालक चैत्य है, वहां आते हैं। इस प्रकार उववाई की भांति वक्तव्य है यावत् तीन प्रकार की पर्युपासना से पर्युपासना कर रहे हैं।

१५८. क्षत्रियकुमार जमालि उस महान् जन-शब्द यावत् जन-सन्निपात को सुन रहा है, देख रहा है। उसके इस प्रकार का आध्यात्मिक, स्मृत्यात्मक, अभिलाषात्मक, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—क्या आज क्षत्रियकुण्डग्राम नगर में इन्द्र-महोत्सव है? स्कंद-महोत्सव है? मुकुन्द-महोत्सव है? नाग-महोत्सव है? यक्ष-महोत्सव है? भूत-महोत्सव है? कूप-महोत्सव है? तालाब-महोत्सव है? नदी-महोत्सव है? द्रह-महोत्सव है? पर्वत-महोत्सव है? वृक्ष-महोत्सव है? चैत्य-महोत्सव है? स्तूप-महोत्सव है? जिससे कि ये बहुत उग्र, भोज, राजन्य, इक्ष्वाकु, नाग, कौरव, क्षत्रिय, क्षत्रियपुत्र, भट, भटपुत्र, योद्धा, प्रशासक, मल्लवी, लिच्छवी, लिच्छविपुत्र तथा अन्य अनेक राजे, युवराज, कोटवाल, मंडबपति, कुटुम्बपति, इभ्य, सेठ, सेनापति, सार्थवाह आदि स्नात होकर, बलिकर्म कर (उववाई, सूत्र ५२) की

भांति वक्तव्य है, यावत् क्षत्रियकुंडग्राम नगर के ठीक मध्य से निकल रहे हैं? उसने इस प्रकार देखा, देखकर कंचुकीपुरुष को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार बोला—देवानुप्रियो! क्या आज क्षत्रियकुंडग्राम नगर में इन्द्र-महोत्सव है यावत् सार्थवाह आदि निर्गमन कर रहे हैं?

१५९. क्षत्रिय कुमार जमालि के यह कहने पर वह कंचुकी-पुरुष हृष्ट-तुष्ट हो गया। उसने श्रमण भगवान महावीर के आगमन का निश्चय होने पर दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली दसनखात्मक अंजली को सिर के सम्मुख घुमा कर, मस्तक पर टिका कर क्षत्रियकुमार जमालि को जय-विजय के द्वारा वर्धापित किया, वर्धापित कर इस प्रकार बोला—देवानुप्रिय! आज क्षत्रियकुंडग्राम नगर में न इन्द्र-महोत्सव है यावत् सार्थवाह आदि निर्गमन कर रहे हैं। देवानुप्रिय! आज श्रमण भगवान महावीर आदिकर यावत् सर्वज्ञ, सर्वदर्शी ब्राह्मणकुंडग्राम नगर के बाहर बहुशालक चैत्य में प्रवास-योग्य स्थान की अनुमति लेकर संयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए रह रहे हैं। इसलिए ये बहुत उग्र, भोज यावत् सार्थवाह आदि निर्गमन कर रहे हैं।

१६०. क्षत्रियकुमार जमालि कंचुकी-पुरुष के पास इस अर्थ को सुनकर, अवधारण कर हृष्ट-तुष्ट हो गया। उसने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो! शीघ्र ही चार घण्टाओं वाले अश्व-रथ को जोत कर उपस्थित करो, उपस्थित कर मेरी आज्ञा को मुझे प्रत्यर्पित करो।

१६१. कौटुम्बिक पुरुषों ने क्षत्रियकुमार जमालि के यह कहने पर चार घण्टाओं वाले अश्व-रथ को जोतकर उपस्थित किया। उपस्थित कर उस आज्ञा का प्रत्यर्पण किया।

१६२. क्षत्रियकुमार जमालि जहां मर्दन-घर है, वहां आता है। वहां आकर स्नान तथा बलिकर्म कर यावत् शरीर के अवयवों पर चंदन का लेप कर, सर्व अलंकारों से विभूषित होकर मर्दन-घर से निकलता है, निकल कर जहां बाहर उपस्थानशाला है जहां चार घण्टाओं वाला अश्व-रथ है, वहां आता है, आकर चार घण्टाओं वाले अश्वरथ पर आरूढ़ होता है। आरूढ़ होकर कटसरैया के फूलों से बनी मालाओं से युक्त छत्र को धारण करता है, महान् सुभटों के सुविस्तृत संधातवृन्द से परिशिष्ट होकर क्षत्रिय कुण्डग्राम नगर के ठीक मध्य से निर्गमन करता है, निर्गमन कर जहां ब्राह्मणकुंडग्राम नगर है, जहां बहुशालक चैत्य है, वहां आता है, आकर घोड़ों की लगाम को खींचता है, खींचकर रथ को ठहराता है, ठहरा कर रथ से उतरता है, उतर कर पुष्प, तंबोल, आयुध आदि तथा उपानत् को विसर्जित करता है, विसर्जित कर एक शाटक वाला उत्तरासंग करता है। उत्तरासंग कर आचमन करता है, अशुचि द्रव्य का अपनयन करता है, परम शुचीभूत होकर अंजलियों को मुकुलित कर सिर पर रखता है, जहां श्रमण भगवान महावीर है वहां आता है, आकर श्रमण भगवान को दायीं ओर से प्रारंभ कर तीन बार प्रदक्षिणा करता है, प्रदक्षिणा कर वंदन-नमस्कार करता है, वंदन-नमस्कार कर तीन प्रकार की पर्युपासना से पर्युपासना करता है।

१६३. श्रमण भगवान महावीर ने क्षत्रिय-कुमार जमालि को उस विशाल-परिषद् में धर्म का प्रतिबोध दिया, जिस परिषद् में ऋषि-परिषद्, मुनि-परिषद्, यति-परिषद् और देव-परिषद् का समावेश है। उन परिषदों में सैकड़ों-सैकड़ों व्यक्ति और सैकड़ों-सैकड़ों मनुष्यों के समूह बैठे

हुए थे। भगवान महावीर का बल ओघबल, अतिबल और महाबल—इन तीन रूपों में प्रकट हो रहा था। वे अपरिमित बल, वीर्य, तेज, माहात्म्य और कांति से युक्त थे। उनका स्वर शरद ऋतु के मेघ के नवगर्जन, क्रोच्च के निर्घोष तथा दुन्दुभिः की ध्वनि के समान मधुर और गंभीर था। धर्म-कथन के समय महावीर की वाणी वक्ष में विस्तृत, कंठ में वर्तुल और सिर में संकीर्ण होती थी। वह गुणगुणाहट और अस्पष्टता से रहित थी। उसमें अक्षर का सन्निपात स्पष्ट था। वह स्वरकला से पूर्ण और गेय राग से अनुरक्त थी। वह सर्वभाषानुगामिनी—स्वतः ही सब भाषाओं में अनूदित हो जाती थी। भगवान एक योजन तक सुनाई देने वाले स्वर में अर्द्धमागधी भाषा में बोले। प्रवचन के पश्चात् परिषद् लौट गई।

१६४. वह क्षत्रियकुमार जमालि श्रमण भगवान महावीर के पास धर्म सुनकर, अवधारण कर हृष्ट-तुष्ट चित्तवाला, आनंदित, नंदित, प्रीतिपूर्ण मनवाला, परम सौमनस्ययुक्त और हर्ष से विकस्वर हृदय वाला हो गया। वह उठने की मुद्रा में उठता है। उठ कर श्रमण भगवान महावीर को दायीं ओर से प्रारंभ कर तीन बार प्रदक्षिणा करता है, प्रदक्षिणा कर वंदन-नमस्कार करता है, वंदन-नमस्कार कर वह इस प्रकार बोला—भंते! मैं निर्ग्रन्थ-प्रवचन में श्रद्धा करता हूं। भंते! मैं निर्ग्रन्थ-प्रवचन में प्रतीति करता हूं, भंते! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन में रुचि करता हूं, भंते! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन में अभ्युत्थान करता हूं। भंते! यह ऐसा ही है! भंते! यह तथा (संवादिता-पूर्ण) है। भंते! यह अवितथ है। भंते! यह असंदिग्ध है। भंते! यह इष्ट है। भंते! यह प्रतीप्सित (प्राप्त करने के लिए इष्ट) है। भंते! यह इष्ट-प्रतीप्सित है। जैसे आप कह रहे हैं, इतना विशेष है—देवानुप्रिय! मैं माता-पिता से पूछ लेता हूं, तत्पश्चात् मैं देवानुप्रिय के पास मुंड होकर अगर से अनगारिता में प्रव्रजित होऊंगा।

देवानुप्रिय! जैसे सुख हो, प्रतिबंध मत करो।

१६५. क्षत्रियकुमार जमालि श्रमण भगवान महावीर के इस प्रकार कहने पर हृष्ट-तुष्ट हो गया। वह श्रमण भगवान् महावीर को दायीं ओर से प्रारंभ कर तीन बार प्रदक्षिणा करता है, प्रदक्षिणा कर वंदन-नमस्कार करता है, वंदन-नमस्कार कर वह उसी चार घण्टाओं वाले अश्व-रथ पर आरूढ़ होता है। आरूढ़ होकर श्रमण भगवान महावीर के पास से बहुशालक चैत्य से निर्गमन करता है। निर्गमन कर कटसरैया के फूलों से बनी मालाओं से युक्त छत्र को धारण करता है। महान् सुभटों के सुविस्तृत संघात वृन्द से परिक्षिप्त होकर जहां क्षत्रियकुण्डग्राम नगर है, वहां आता है। वहां आकर क्षत्रियकुण्डग्राम नगर के बीचो-बीच जहां अपना घर है, जहां बाहर उपस्थानशाला है, वहां आता है, वहां आकर घोड़ों की लगाम को खींचता है, खींचकर रथ को ठहराता है, ठहराकर रथ से उतरता है, उतरकर जहां आभ्यंतर उपस्थानशाला है, जहां माता-पिता हैं, वहां आता है, वहां आकर जय हो-विजय हो, इस प्रकार (माता पिता का) वर्धापन करता है, वर्धापन कर इस प्रकार बोला—माता-पिता! मैंने श्रमण भगवान महावीर के पास धर्म सुना है। वही धर्म मुझे इष्ट, प्रतीप्सित और अभिरुचित है।

१६६. माता-पिता ने क्षत्रियकुमार जमालि को इस प्रकार कहा—पुत्र! तुम धन्य हो, पुत्र! तुम कृतार्थ हो, पुत्र! तुम कृतपुण्य (भाग्यशाली) हो, पुत्र! तुम कृतलक्षण (लक्षण-सम्पन्न) हो।

जो कि तुमने श्रमण भगवान् महावीर के पास धर्म को सुना है, वह धर्म तुम्हें इष्ट, प्रतीप्सित और अभिरुचित है।

१६७. वह क्षत्रियकुमार जमालि माता-पिता से दूसरी बार इस प्रकार बोला—माता-पिता! मैंने श्रमण भगवान् महावीर के पास धर्म सुना है, वह धर्म मुझे इष्ट, प्रतीप्सित और अभिरुचित है। माता-पिता! मैं संसार के भय से उद्विग्न और जन्म-मरण से भीत हूँ। माता-पिता! मैं चाहता हूँ—आपसे अनुज्ञा प्राप्त कर श्रमण भगवान् महावीर के पास मुण्ड होकर अगार से अनगारिता में प्रव्रजित होऊँ।

१६८. क्षत्रियकुमार जमालि की उस अनिष्ट, अकांत, अग्रिय, अमनोज्ञ, अमनोहर और अश्रुतपूर्व वाणी को सुनकर, अवधारण कर माता के रोमकूपों में स्वेद आ गया, उसके सवण से शरीर गीला हो गया। शोक के आघात से उसके अंग कांपने लगे। वह निस्तेज हो गई। उसका मुख दीन और विमनस्क हो गया। वह हाथ से मली हुई कमलमाला की भांति हो गई। उसका शरीर उसी क्षण म्लान, दुर्बल, लावण्य-शून्य, आभा-शून्य और श्री-विहीन हो गया। गहने शिथिल हो गए। धवल-कंगन धरती पर गिरकर मोच खाकर खण्ड-खण्ड हो गए। उत्तरीय खिसक गया। मूर्च्छाविश चेतना के नष्ट होने पर शरीर भारी हो गया। सुकोमल केशराशि बिखर गई। परशु से छिन्न चंपकलता की भांति और उत्सव से निवृत्त होने पर इन्द्र-यष्टि की भांति उसके संधि-बंधन शिथिल हो गए, वह अपने सम्पूर्ण शरीर के साथ रत्नजटित आंगन में धम से गिर पड़ी।

१६९. संभ्रम और त्वरा के साथ चेटिका द्वारा डाली गई सोने की झारी के मुंह से निकली शीतल जल की निर्मल धारा के परिसिंचन से क्षत्रियकुमार जमालि की माता की गात्र-यष्टि में शीतलता व्याप गई। उत्क्षेपक और तालवृत्त के पंखों से उठने वाली जलमिश्रित हवा के संस्पर्श से तथा अंतःपुर के परिजनों द्वारा वह आश्वस्त हुई। वह रोती, कलपती, आंसू बहाती, शोक करती और विलपती हुई क्षत्रियकुमार जमालि से इस प्रकार बोली—जात! तुम हमारे एकमात्र पुत्र इष्ट, कमनीय, प्रिय, मनोज्ञ, मनोहर, स्थिरतर, विश्वसनीय, सम्मत, बहुमत, अनुमत और आभरण-करण्डक के समान हो। तुम रत्न, रत्नभूत (चिन्तामणि आदि रत्न के समान) जीवन-उत्सव और हृदय को आनंदित करने वाले हो। तुम उदुम्बुर पुष्प के समान श्रवण-दुर्लभ हो फिर दर्शन का तो प्रश्न ही क्या?

जात! हम क्षणभर भी तुम्हारा वियोग सहना नहीं चाहते, इसलिए जात! तुम तब तक रहो, जब तक हम जीवित हैं। उसके पश्चात् जब हम कालगत हो जाएँ, तुम्हारी वय परिपक्व हो जाए, तुम संतान रूपी तंतु को बढ़ाने के कार्य से निरपेक्ष हो जाओ, तब श्रमण भगवान् महावीर के पास मुण्ड हो अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हो जाना।

१७०. क्षत्रियकुमार जमालि माता-पिता से इस प्रकार बोला—माता-पिता! यह वैसा ही है जो तुम मुझे यह कह रहे हो—जात! तुम हमारे एक पुत्र, इष्ट, कांत यावत् प्रव्रजित हो जाना। माता-पिता! यह मनुष्य का भव अनेक जन्म, जरा, मरण, रोग, शारीरिक और मानसिक प्रकाम दुःखों के वेदन, सैकड़ों कष्टों और उपद्रवों से अभिभूत, अध्रुव, अनियत, अशाश्वत,

संध्या के अग्रराग के समान, जल-बुदबुद के समान, कुश की नोक पर टिकी हुई जलबिंदु के समान, स्वप्न-दर्शन के समान और विद्युल्लता की भांति चंचल और अनित्य है, सड़न, पतन और विध्वंसधर्मा है। पहले या पीछे अवश्य छोड़ना है। माता-पिता! कौन जानता है—कौन पहले जाएगा? कौन पश्चात् जाएगा? माता-पिता! इसलिए मैं चाहता हूँ—तुम्हारे द्वारा अनुज्ञात होकर मैं श्रमण भगवान् महावीर के पास मुंड हो अगर से अनगारिता में प्रव्रजित हो जाऊँ।

१७१. माता-पिता ने क्षत्रियकुमार जमालि से इस प्रकार कहा—जात! तुम्हारा यह शरीर प्रविशिष्ट रूप, लक्षण, व्यंजन और गुण से उपेत, उत्तम बल, वीर्य और सत्त्व से युक्त, विज्ञान से विचक्षण, सौभाग्य-सहित गुण से उन्नत, अभिजात और महान् क्षमता वाला, विविध व्याधि और रोग से रहित, उपपात-रहित, उदात्त, मनोहर और पटु पांच इन्द्रियों से युक्त, प्रथम यौवन में स्थित और अनेक गुणों से संयुक्त है, इसलिए हे जात! तुम अपने शरीर के रूप, सौभाग्य और यौवन-गुणों का अनुभव करो। उसके पश्चात्—अपने शरीर के रूप, सौभाग्य और यौवन गुणों का अनुभव करने के पश्चात् हम कालगत हो जाएं, तुम्हारी अवस्था परिपक्व हो जाए, कुलवंश के तंतु से निरपेक्ष हो जाओ तब तुम श्रमण भगवान् महावीर के पास मुंड हो अगर से अनगारिता में प्रव्रजित हो जाना।

१७२. क्षत्रियकुमार जमालि माता-पिता से इस प्रकार बोला—माता-पिता! यह वैसा ही है, जो तुम मुझे कह रहे हो—जात! तुम्हारा यह शरीर प्रविशिष्ट रूप वाला है यावत् अगर से अनगारिता में प्रव्रजित हो जाना। माता-पिता! यह मनुष्य का शरीर दुःख का आयतन है, विविध प्रकार की सैकड़ों व्याधियों का संनिकेत (घर) है। अस्थिरूपी काठ के ढांचे पर खड़ा हुआ है, शिरा और स्नायुओं के जाल से अतिवेष्टित है, मिट्टी के पात्र के समान दुर्बल है, अशुचि से संक्लिष्ट है, जिसका कृत्यकार्य सर्वकाल चलता है, कभी पूरा नहीं होता, बुढ़ापे से निष्प्राण बना हुआ जर्जर घर सड़न, पतन और विध्वंसधर्मा है, पहले या पीछे अवश्य छोड़ना है। माता-पिता! कौन पहले जाएगा? कौन पश्चात् जाएगा? माता-पिता! इसलिए मैं चाहता हूँ—तुम्हारे द्वारा अनुज्ञात हो कर मैं श्रमण भगवान् महावीर के पास मुण्ड हो अगर से अनगारिता में प्रव्रजित हो जाऊँ।

१७३. क्षत्रियकुमार जमालि के माता-पिता ने इस प्रकार कहा—जात! ये तुम्हारी आठ गुणवत्त्व पत्नियां, जो विशाल कुल की बालिकाएं, कलाकुशल, सर्वकाल-लालित, सुख भोगने योग्य, मार्दव-गुण से युक्त, निपुण, विनय के उपचार में पण्डित और विचक्षण, मनोरम, मित और मधुर बोलने वाली, विहसन, विप्रेक्षण (कटाक्ष), गति, विलास और चेष्टा में विशारद, समृद्ध कुल वाली और शीलशालिनी, विशुद्ध, कुलवंश की संतान रूपी तंतु की वृद्धि के लिए गर्भ के उद्भव में समर्थ, मनोनुकूल और हृदय से इष्ट, उत्तम और नित्य भाव से अनुरक्त सर्वांग सुंदरियां हैं, इसलिए जात! तुम इनके साथ विपुल मनुष्य-संबंधी काम-भोगों का भोग करो। उसके पश्चात् भुक्तभोगी तथा विषयों के प्रति तुम्हारा कौतुहल विगत और व्युच्छिन्न हो जाए, हम कालगत हो जाएं, तुम्हारी अवस्था परिपक्व हो जाए, तुम कुलवंश के तंतु-कार्य से निरपेक्ष हो जाओ तब तुम श्रमण भगवान् महावीर के पास मुण्ड हो

अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हो जाना।

१७४. क्षत्रियकुमार जमालि ने माता-पिता से इस प्रकार कहा—माता-पिता! यह वैसा ही है, जैसा आप कह रहे हैं—जात! ये तुम्हारी आठ पत्नियां विशाल कुल की बालिकाएं हैं यावत् तुम अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हो जाना। माता-पिता! ये मनुष्य संबंधी कामभोग, मल, मूत्र, कफ, नाक के मैल, वमन, पित्त, मवाद, शुक्र और शोणित से समुत्पन्न होते हैं। अमनोज्ञ, विकृत और कुथित मल-मूत्र से परिपूर्ण हैं। मृतक की गंध जैसे उच्छ्वास और अशुभ निःश्वास से उद्वेग पैदा करने वाले, बीभत्स, अल्पकालिक, स्वल्पसार-सहित (तुच्छ), जठर में होने वाले मल की अवस्थिति से दुःखद, बहुजनसाधारण—सर्वसुलभ, महान् मानसिक और शारीरिक कष्ट साध्य, अबुधजनों के द्वारा आसेवित, साधु-जनों के द्वारा सदैव गर्हणीय, अनन्त संसार को बढ़ाने वाले, कटु फल-विपाक वाले, इन्हें न छोड़ने पर ये प्रदीप्त तृण-पूलिका के समान दुःखानुबंधी और सिद्धि-गमन के विघ्न हैं। माता-पिता! यह कौन जानता है—कौन पहले जाएगा? कौन पीछे जाएगा? माता-पिता! इसलिए मैं चाहता हूं—तुम्हारे द्वारा अनुज्ञात होकर मैं श्रमण भगवान महावीर के पास मुण्ड हो अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हो जाऊं।

१७५. माता-पिता ने क्षत्रियकुमार जमालि से इस प्रकार कहा—जात! तुम्हारे पितामह (दादा) प्रपितामह (परदादा) और प्रप्रपितामह (परदादा के पिता) से प्राप्त यह बहुत सारा हिरण्य, सुवर्ण, कांस्य, दूष्य (बहुमूल्य वस्त्र) विपुल वैभव—कनक, रत्न, मणि, मौक्तिक, शंख, मेनसिल, प्रवाल, लालरत्न और श्रेष्ठसार—इन वैभवशाली द्रव्यों से, जो सातवीं पीढ़ी तक प्रकाम देने के लिए, प्रकाम भोगने और बांटने के लिए समर्थ हैं इसलिए जात! तुम मनुष्य-संबंधी विपुल ऋद्धि, सत्कार और समुदय का अनुभव करो। कुलवंश के तंतु-कार्य से निरपेक्ष हो जाओ, उसके पश्चात् कल्याण का अनुभव कर श्रमण भगवान महावीर के पास मुंड हो अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हो जाना।

१७६. क्षत्रियकुमार जमालि ने माता-पिता से इस प्रकार कहा—यह वैसा ही है, जैसा आप कह रहे हैं—जात! पितामह, प्रपितामह, प्रप्रपितामह से प्राप्त हिरण्य यावत् अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हो जाना। माता-पिता! यह हिरण्य, सुवर्ण यावत् वैभवशाली द्रव्य अग्नि-साधित है—अग्नि जला सकती है, चोर-साधित हैं—चोर चुरा सकते हैं, राज-साधित हैं—राजा अधिकृत कर सकता है, मृत्यु-साधित हैं—मृत्यु उससे वंचित कर सकती है। दाय्याद-साधित हैं—भागीदार विभाजित कर सकते हैं। अग्नि-सामान्य—अग्नि का स्वामित्व है, चोर-सामान्य—चोर का स्वामित्व है, राज-सामान्य—राजा का स्वामित्व है, मृत्यु-सामान्य—मृत्यु का स्वामित्व है और दाय्याद-सामान्य—भागीदार का स्वामित्व है, अध्रुव, अनियत और अशाश्वत हैं। पहले या पीछे अवश्य छोड़ना है। माता-पिता! कौन जानता है—पहले कौन जाएगा? पीछे कौन जाएगा? इसलिए माता-पिता! मैं चाहता हूं—तुम्हारे द्वारा अनुज्ञात होकर मैं श्रमण भगवान महावीर के पास मुण्ड हो अगार से अनगारिता में प्रव्रजित हो जाऊं।

१७७. माता-पिता क्षत्रियकुमार जमालि को विषय के प्रति अनुरक्त बनाने वाले बहुत आख्यान, प्रज्ञापन, संज्ञापन और विज्ञापन के द्वारा उसे आख्यात, प्रज्ञप्त, संज्ञप्त और विज्ञप्त

करने में समर्थ नहीं हुए तब विषय से विरक्त किन्तु संयम के विषय में भय दिखाकर उद्वेग पैदा करने वाले प्रज्ञापन के द्वारा प्रज्ञापना करते हुए इस प्रकार बोले—जात! यह निर्ग्रन्थ-प्रवचन सत्य, अनुत्तर, अद्वितीय, प्रतिपूर्ण, नैरात्रिक, मोक्ष तक पहुंचाने वाला, संशुद्ध, शल्य को काटने वाला, सिद्धि का मार्ग, मुक्ति का मार्ग, मोक्ष का मार्ग, शांति का मार्ग, अविनाश, अविच्छिन्न और समस्त दुःखों के क्षय का मार्ग है। इस निर्ग्रन्थ प्रवचन में स्थित जीव सिद्ध, प्रशांत, मुक्त, परिनिर्वृत और सब दुःखों का अन्त करते हैं। संयम सांप की भांति एकान्त (एकाग्र) दृष्टि द्वारा साध्य है। क्षुर की भांति एकान्त धार द्वारा साध्य है। इसमें लोह के यव बबाने होते हैं। यह बालू के कौर की तरह निःस्वाद है। यह महानदी गंगा में प्रतिस्रोत-गमन जैसा है, यह महासमुद्र को भुजाओं से तैरने जैसा दुस्तर है। यह तीक्ष्ण कांटों पर चंक्रमण करने, भारी-भरकम वस्तु को उठाने और तलवार की तीक्ष्ण धार पर चलने जैसा है। जात! श्रमण निर्ग्रन्थ आधाकर्मी, औद्देशिक, मिश्रजात, अध्यवतर, पूति, क्रीत, प्रामित्य-उधार लिया गया, आलस्य-छीना गया, भागीदार द्वारा अननुमत, सामने लाया गया, कान्तार-भक्त, दुर्भिक्ष-भक्त, ग्लान-भक्त, वार्दलिका-भक्त, प्राभृतिक-भक्त, शय्यातर-पिण्ड, राजपिंड, मूल-भोजन, कन्द-भोजन, फल-भोजन, बीज-भोजन और हरित-भोजन खा-पी नहीं सकता।

जात! तुम सुख भोगने योग्य हो, दुःख भोगने योग्य नहीं हो। तुम सदीं, गर्मी, भूख और व्यास तथा कीट, हिंस्र पशु, दंश-मशक, वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक और सान्निपातिक, विविध प्रकार के रोग और आतंक तथा उदीर्ण परीषह और उपसर्ग को सहन करने में समर्थ नहीं हो। जात! हम क्षण भर के लिए भी तुम्हारा वियोग सहना नहीं चाहते, इसलिए तुम तब तक रहो, जब तक हम जीवित हैं। उसके पश्चात् हम कालगत हो जाएं, तुम्हारी वय परिपक्व हो जाए, तुम कुल-वंश के तंतु-कार्य से निरपेक्ष होकर श्रमण भगवान महावीर के पास मुण्ड हो, अगर से अनगारिता में प्रव्रजित हो जाना।

१७८. क्षत्रियकुमार जमालि ने माता-पिता से इस प्रकार कहा—माता-पिता! यह वैसा ही है, जैसा आप कह रहे हैं—जात! यह निर्ग्रन्थ-प्रवचन सत्य, अनुत्तर, अद्वितीय यावत् अगर से अनगारिता में प्रव्रजित हो जाना।

माता-पिता! क्लीब, कायर, कापुरुष, इहलोक से प्रतिबद्ध, परलोक से पराङ्मुख, विषय की तृष्णा रखने वाले और प्राकृतजन-साधारण मनुष्य के लिए निर्ग्रन्थ-प्रवचन आचरण करना दुष्कर है। धीर, कृतनिश्चय और व्यवसाय-सम्पन्न (उपाय-प्रवृत्त) के लिए उसका आचरण किंचित् भी दुष्कर नहीं है। इसलिए माता-पिता! मैं चाहता हूं—तुम्हारे द्वारा अनुज्ञात होकर मैं श्रमण भगवान महावीर के पास मुण्ड हो अगर से अनगारिता में प्रव्रजित हो जाऊं।

१७९. क्षत्रियकुमार जमालि के माता-पिता विषय के प्रति अनुरक्त बनाने वाले और विषय से विरक्त किन्तु संयम के विषय में भय दिखाकर उद्वेग पैदा करने वाले बहुत आख्यान, प्रज्ञापन, संज्ञापन और विज्ञापन के द्वारा उसे आख्यात, प्रज्ञप्त-संज्ञप्त और विज्ञप्त करने में समर्थ नहीं हुए तब क्षत्रियकुमार जमालि को अनिच्छापूर्वक निष्क्रमण की अनुज्ञा दे दी।

१८०. क्षत्रियकुमार जमालि के पिता ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुला कर इस प्रकार कहा—देवानुप्रिय! क्षत्रियकुंडग्राम नगर के भीतर और बाहर पानी का छिड़काव करो, झाड़,

बुहार जमीन की सफाई करो, गोबर की लिपाई करो, जैसे (उववाई, सूत्र ५५) की वक्तव्यता यावत् प्रवर सुरभि वाले गंध-चूर्णों से सुगंधित गंधवर्ती तुल्य करो, कराओ। ऐसा कर और करा कर इस आज्ञा को मुझे प्रत्यर्पित करो। उन्होंने वैसा कर आज्ञा का प्रत्यर्पण किया।

१८१. क्षत्रियकुमार जमालि के पिता ने पुनः कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुला कर इस प्रकार कहा—देवानुप्रिय! क्षत्रियकुमार जमालि का महान् अर्थ वाला, महान् मूल्य वाला, महान् अर्हता वाला और विपुल निष्क्रमण-अभिषेक उपस्थित करो। कौटुम्बिक पुरुषों ने वैसा ही निष्क्रमण-अभिषेक उपस्थित किया।

१८२. माता-पिता क्षत्रियकुमार जमालि को पूर्वाभिमुख कर प्रवर सिंहासन पर बिठाते हैं, बिठाकर एक सौ आठ स्वर्ण-कलश, एक सौ आठ रजत-कलश, एक सौ आठ मणिमय-कलश, एक सौ आठ स्वर्ण-रजतमय कलश, एक सौ आठ स्वर्ण-मणिमय कलश, एक सौ आठ रजत-मणिमय कलश, एक सौ आठ स्वर्ण-रजत-मणिमय कलश और एक सौ आठ भौमेय (मिट्टी के) कलश के द्वारा उसका निष्क्रमण-अभिषेक करते हैं। संपूर्ण ऋद्धि, द्युति, बल, समुदय, आदर, विभूति, विभूषा, ऐश्वर्य, पुष्प, गंध, माल्यांकार और सब वाद्यों के शब्द निनाद के द्वारा तथा महान् ऋद्धि, महान् द्युति, महान् बल, महान् समुदय, महान् वर वाद्यों का एक साथ प्रवादन, शंख, प्रणव, पटह, भेरी, झालर, खरमुही-काहला, हुडुक्क-डमरु के आकार का वाद्य, मुरज-ढोलक, मृदंग और दुन्दुभि के निर्घोष से नादित शब्द के द्वारा महान् निष्क्रमण-अभिषेक से अभिषिक्त करते हैं। अभिषिक्त कर दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली दस-नखात्मक अंजलि को सिर के सम्मुख घुमा कर 'जय हो-विजय हो' के द्वारा वर्धापित करते हैं। वर्धापित कर इस प्रकार बोले—जात! बताओ हम क्या दें? क्या वितरण करें? तुम्हें किस वस्तु का प्रयोजन है?

१८३. क्षत्रियकुमार जमालि ने माता-पिता से इस प्रकार कहा—माता-पिता! मैं कुत्रिकापण से रजोहरण और पात्र को लाना तथा नापित को बुलाना चाहता हूं।

१८४. क्षत्रियकुमार जमालि के पिता ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुला कर इस प्रकार कहा—देवानुप्रिय! शीघ्र ही श्रीगृह से तीन लाख मुद्रा लेकर दो लाख मुद्रा के द्वारा कुत्रिकापण से रजोहरण और पात्र लाओ। एक लाख मुद्रा से नापित को बुलाओ।

१८५. कौटुम्बिक पुरुष क्षत्रियकुमार जमालि के पिता के इस प्रकार कहने पर हृष्ट-तुष्ट हो गए। दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली दसनखात्मक अंजलि को सिर के सम्मुख घुमा कर—'स्वामी! आपकी आज्ञा के अनुसार ऐसा ही होगा', यह कहकर विनयपूर्वक वचन को स्वीकार करते हैं। स्वीकार कर शीघ्र ही श्रीगृह से तीन लाख मुद्राएं ग्रहण करते हैं। ग्रहण कर दो लाख मुद्राओं के द्वारा कुत्रिकापण से रजोहरण और पात्र लाते हैं, एक लाख मुद्रा के द्वारा नापित को बुलाते हैं।

१८६. वह नापित क्षत्रियकुमार जमालि के पिता के निर्देशानुसार कौटुम्बिक पुरुषों द्वारा बुलाए जाने पर हृष्ट-तुष्ट हो गया। उसने बलि-कर्म किया, कौतुक, मंगल और प्रायश्चित्त किया, शुद्धप्रवेश्य (सभा में प्रवेशोचित), मांगलिक वस्त्रों को विधिवत् पहना, अल्पभार और

बहुमूल्य वाले वस्त्रों से शरीर को अलंकृत किया। जहां क्षत्रियकुमार जमालि के पिता हैं, वहां आया, वहां आकर दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली दसनखात्मक अंजलि को सिर के सम्मुख घुमा कर क्षत्रियकुमार जमालि के पिता को 'जय हो-विजय हो' के द्वारा वर्धापित किया। वर्धापित कर इस प्रकार बोला—देवानुप्रिय! मुझे जो करणीय है, उसका संदेश दे।

१८७. क्षत्रियकुमार जमालि के पिता नापित को इस प्रकार बोले—देवानुप्रिय! तुम परम यत्न से क्षत्रियकुमार जमालि के चार अंगुल छोड़कर निष्क्रमण-प्रायोग्य अग्र केशों को काटो।

१८८. क्षत्रियकुमार जमालि के पिता के इस प्रकार कहने पर नापित हृष्ट-तुष्ट हो गया। दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली दसनखात्मक अंजलि को सिर के सम्मुख घुमा कर 'स्वामी! आपकी आज्ञा के अनुसार ऐसा ही होगा।' यह कह कर विनयपूर्वक वचन को स्वीकार किया। स्वीकार कर सुरभित गंधोदक से हाथ पैर का प्रक्षालन किया। प्रक्षालन कर आठ पट वाले शुद्ध वस्त्र से मुख को बांधा, बांधकर परम यत्न से क्षत्रियकुमार जमालि के चार अंगुल छोड़कर निष्क्रमण-प्रायोग्य अग्रकेशों को काटा।

१८९. क्षत्रियकुमार जमालि की माता ने हंस लक्षण वाला पटशाटक में अग्रकेशों को ग्रहण किया। ग्रहण कर सुरभित गंधोदक से प्रक्षालन किया। प्रक्षालन कर प्रधान और प्रवर गंध माल्य से अर्चा की, अर्चित कर शुद्ध वस्त्र में बांधा। बांधकर रत्न-करंडक में रखा। रख कर हार, जल-धारा, सिंदुवार (निर्गुण्डी) के फूल और टूटी हुई मोतियों की लड़ी के समान दुःस्सह पुत्र-वियोग के कारण बार-बार आंसू बहाती हुई इस प्रकार बोली—बहुत तिथि, पर्वणी (पूर्णिमा आदि) उत्सव, नाग-पूजा, यज्ञ, इन्द्रोत्सव आदि के अवसर पर क्षत्रियकुमार जमालि का यह अंतिम दर्शन होगा। यह चिन्तन कर उस रत्नकरंडक को अपने सिरहाने के नीचे रखा।

१९०. क्षत्रियकुमार जमालि के माता-पिता ने दूसरी बार उत्तराभिमुख सिंहासन की रचना कराई। करा कर क्षत्रियकुमार जमालि को श्वेत-पीत कलशों से स्नान कराया। स्नान करा कर रोएंदार, सुकुमाल सुरभित गंध-वस्त्र से गात्र को पौंछा। पौंछकर सरस गोशीर्षचंदन का गात्र पर अनुलेप किया। अनुलेप कर नासिका की निःश्वास वायु से उड़ने वाला, चक्षुहर वर्ण और स्पर्श से युक्त, अश्व की लाल से भी अधिक प्रतनु, धवल किनार पर सोने के तार से जड़ा हुआ बहुमूल्य अथवा महापुरुष योग्य हंस लक्षण वाला पटशाटक पहनाया। पहना कर हार पहनाया। हार पहना कर अर्द्धहार पहनाया। अर्द्धहार पहना कर एकावली पहनाई। एकावली पहना कर मुक्तावली पहनायी। मुक्तावली पहना कर रत्नावली पहनायी। रत्नावली पहना कर इसी प्रकार—अंगद, केयूर, कड़े, बाजूबंद, करधनी, दसों अंगुलियों में मुद्रिकाएं, विकक्षसूत्र (उत्तरासंग पर पहना जाने वाला आभरण) सूरज के आकार का आभरण, कण्ठ-मुरवि, मुक्तामाला, कुण्डल, चूड़ामणि, रत्नों की प्रचुरता से उत्कृष्ट बना हुआ विचित्र मुकुट पहनाया। और अधिक क्या? गूंथी हुई, वेष्टित, पूरित और संहत की हुई—इन चार प्रकार की मालाओं से क्षत्रियकुमार जमालि को कल्पवृक्ष की भांति अलंकृत, विभूषित कर दिया।

१९१. क्षत्रियकुमार जमालि के पिता ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुला कर इस प्रकार

कहा—देवानुप्रिय! शीघ्र ही अनेक सैकड़ों खंभों से युक्त, नृत्य करती हुई पुतलियों से उत्कीर्ण, जैसे (राघवसेणीय, सूत्र १७) के विमान-वर्णक में वक्तव्य है यावत् मणिरत्न-जटित घंटिका-जाल से घिरी हुई हजार पुरुषों द्वारा वहन की जाने वाली शिविका उपस्थित करो। उपस्थित कर मेरी इस आज्ञा को मुझे प्रत्यर्पित करो। तब कौटुम्बिक पुरुषों ने वैसा कर यावत् आज्ञा का प्रत्यर्पण किया।

१९२. क्षत्रियकुमार जमालि को केशालंकार, वस्त्रालंकार, माल्यालंकार, आभरणालंकार—इस चतुर्विध अलंकार से अलंकृत किया गया। वह प्रतिपूर्ण अलंकृत होकर सिंहासन से उठा। उठकर शिविका की अनुप्रदक्षिणा कर शिविका पर आरूढ़ हो गया। आरूढ़ होकर प्रवर सिंहासन पर पूर्वाभिमुख आसीन हुआ।

१९३. क्षत्रियकुमार जमालि की माता ने स्नान किया, बलिकर्म किया, अल्पभार और बहुमूल्य वाले आभरणों से शरीर को अलंकृत किया। वह हंसलक्षण वाला पटशाटक ग्रहण कर शिविका की अनुप्रदक्षिणा करती हुई शिविका पर आरूढ़ हो गई। आरूढ़ होकर वह क्षत्रियकुमार जमालि के दक्षिण पार्श्व में प्रवर भद्रासन पर आसीन हुई।

१९४. क्षत्रियकुमार जमालि की धायमाता ने स्नान किया, बलिकर्म किया यावत् अल्पभार और बहुमूल्य वाले आभरणों से शरीर को अलंकृत किया। वह रजोहरण और पात्र को लेकर शिविका की अनुप्रदक्षिणा करती हुई शिविका पर आरूढ़ होकर क्षत्रियकुमार जमालि के वाम पार्श्व में प्रवर भद्रासन पर आसीन हुई।

१९५. क्षत्रियकुमार जमालि के पीछे एक प्रवर तरुणी मूर्तिमान शृंगार और सुन्दर वेशवाली, चलने, हंसने, बोलने और चेष्टा करने में निपुण तथा विलास और लालित्यपूर्ण संलाप में निपुण, समुचित उपचार में कुशल, सुन्दर स्तन, कटि, मुख, हाथ, पैर, नयन, लावण्य, रूप, यौवन और विलास से कलित, शारद मेष, हिम, रजत, कुमुद, कुन्द और चन्द्रमा के समान कटसरैया की माला और दाम तथा धवल छत्र को लेकर लीला-सहित धारण करती हुई, धारण करती हुई खड़ी हो गई।

१९६. क्षत्रियकुमार जमालि के दोनों ओर दो प्रवर तरुणियाँ मूर्तिमान शृंगार और सुन्दर वेशवाली, चलने, हंसने, बोलने, और चेष्टा करने में निपुण, विलास और लालित्यपूर्ण संलाप में निपुण, समुचित उपचार में कुशल, सुन्दर स्तन, कटि, मुख, हाथ, पैर, नयन-लावण्य, रूप, यौवन और विलास से कलित, नाना मणिरत्न (कनक) विमल और महामूल्य तपनीय (रक्तस्वर्ण) से निर्मित, उज्ज्वल और विचित्र दण्ड वाले दीप्तिमान शंख, अंकरत्न, कुन्द, जलकण, अमृत और मथित फेनपुञ्ज जैसे चामरों को लेकर लीला के साथ वीजन करती हुई, वीजन करती हुई खड़ी हो गई।

१९७. क्षत्रियकुमार जमालि के उत्तर-पश्चिम में एक प्रवर तरुणी मूर्तिमान शृंगार और सुन्दर वेश वाली, चलने, हंसने, बोलने और चेष्टा करने में निपुण, विलास और लालित्यपूर्ण संलाप में निपुण, समुचित उपचार में कुशल, सुन्दर स्तन, कटि, मुख, हाथ, पैर, नयन, लावण्य, रूप, यौवन और विलास से कलित, श्वेत, रजतमय विमल सलिल से परिपूर्ण, मत्त हाथी के विशाल मुख की आकृति के समान झारी लेकर खड़ी हो गई।

१९८. क्षत्रियकुमार जमालि के दक्षिण पश्चिम में एक प्रवर तरुणी मूर्तिमान शृंगार और सुन्दर वेश वाली, चलने, हंसने, बोलने और चेष्टा करने में निपुण, विलास और लालित्यपूर्ण संलाप में निपुण, समुचित उपचार में कुशल, सुन्दर स्तन, कटि, मुख, हाथ, पैर, नयन, लावण्य, रूप, यौवन और विलास से कलित, विचित्र स्वर्णदण्ड वाले तालवृत्त (बीजन) लेकर खड़ी हो गई।

१९९. क्षत्रियकुमार जमालि के पिता ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुला कर इस प्रकार कहा—देवानुप्रिय! शीघ्र ही सदृश, समान त्वचा वाले, समान वय वाले, सदृश लावण्य रूप और यौवन गुणों से उपेत, एक जैसे आभरण, वेश और कमर-बंध धारण किए हुए एक हजार प्रवर तरुण कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाओ।

२००. कौटुम्बिक पुरुषों ने यावत् विनय-पूर्वक वचन को स्वीकार कर शीघ्र ही सदृश, समान त्वचा वाले, समान वय वाले, समान लावण्य, रूप और यौवन गुणों से उपेत, एक जैसे आभरण, वेश और कमरबंध धारण किए हुए एक हजार प्रवर तरुण कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया।

२०१. वे प्रवर तरुण कौटुम्बिक पुरुष क्षत्रियकुमार जमालि के पिता के निर्देशानुसार कौटुम्बिक पुरुषों द्वारा बुलाये जाने पर हृष्ट-तुष्ट हो गए। उन्होंने स्नान और बलिकर्म किया, कौतुक, मंगल और प्रायश्चित्त किया। एक जैसे आभरण, वेश और कमरबंध धारण कर जहां क्षत्रियकुमार जमालि के पिता हैं, वहां आए, आकर दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली दसनखात्मक अंजलि को सिर के सम्मुख धुमा कर 'जय हो-विजय हो' के द्वारा वर्धापित किया। वर्धापित कर इस प्रकार बोले—देवानुप्रिय! हमें जो करणीय है, उसका संदेश दें।

२०२. क्षत्रियकुमार जमालि के पिता ने उन एक हजार प्रवर तरुण कौटुम्बिक पुरुषों से इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो! तुम स्नान और बलिकर्म कर, कौतुक, मंगल और प्रायश्चित्त कर, एक जैसे आभरण, वेश और कमरबंध धारण कर क्षत्रियकुमार जमालि की शिविका को वहन करो।

२०३. एक हजार प्रवर तरुण कौटुम्बिक पुरुषों ने क्षत्रियकुमार जमालि के पिता के इस प्रकार कहने पर यावत् विनयपूर्वक वचन को स्वीकार कर स्नान किया यावत् एक जैसे आभरण, वेश और कमरबंध धारण कर क्षत्रियकुमार जमालि की शिविका को वहन किया।

२०४. हजार पुरुषों द्वारा वहन की जाने वाली शिविका पर आरूढ़ क्षत्रियकुमार जमालि के आगे-आगे सबसे पहले ये आठ-आठ मंगल प्रस्थान कर रहे थे, जैसे—स्वस्तिक, श्रीवत्स, नंदावर्त, वर्धमानक, भद्रासन, कलश, मत्स्य और दर्पण। उसके बाद पूर्ण कलश, झारी, दिव्य छत्र, पताका, चामर तथा जमालि के दृष्टिपथ में आए, उस प्रकार आलोक में दर्शनीय, वायु से प्रकंपित विजय-वैजयंती ऊंची और तल का स्पर्श करती हुई आगे-आगे यथानुपूर्वी प्रस्थान कर रही थी।

उसके पश्चात् वैडूर्य से दीप्यमान विमल दंड वाला, लटकती हुई कटसरैया की माला और दाम से शोभित, चन्द्रमंडल को आभा वाला ऊंचा विमल छत्र तथा प्रवर मणिरत्न जटित

पादपीठ और अपनी दोनों पादुकाओं से समायुक्त प्रवर सिंहासन, बहुत किंकर, कर्मकर, पुरुष पदाति से परिक्षिप्त होकर आगे-आगे यथानुपूर्वी प्रस्थान कर रहे थे।

उसके पश्चात् बहुत यष्टि, माला, चामर (बंधन-रज्जु अथवा चाबुक), धनुष्य, पुस्तक, फलक, पीठ, वीणा, स्नेह-पात्र और सिक्कों का पात्र लिए हुए आगे-आगे यथानुपूर्वी प्रस्थान कर रहे थे।

उसके बाद बहुत दंडी, मुंडी, शिखंडी, जटी, पिच्छी, हास्यकर, शोर करने वाले, परिहास करने वाले, चाटुकर, काम-प्रधान क्रीड़ा करने वाले, भांड, खेल तमाशा करने वाले—ये वाद्य बजाते हुए, गाते, हंसते, नाचते, बोलते, सिखाते और भविष्य में होने वाली घटना को सुनाते हुए, रक्षा करते हुए, पृष्ठगामी राजा की ओर निहारते हुए, 'जय-जय' शब्द का प्रयोग करते हुए यथानुपूर्वी आगे-आगे प्रस्थान कर रहे थे।

उसके पश्चात् बहुत उग्र, भोज, क्षत्रिय, इक्ष्वाकु, नाग, कौरव, (उववाई, सूत्र ५२) की भांति वक्तव्य है यावत् महान् पुरुष-वर्ग से परिक्षिप्त क्षत्रियकुमार जमालि के आगे, पीछे और पार्श्व में यथानुपूर्वी प्रस्थान कर रहे थे।

२०५. क्षत्रियकुमार जमालि के पिता ने स्नान किया, बलिकर्म किया, कौतुक, मंगल और प्रायश्चित्त किया। सर्व अलंकारों से विभूषित होकर हाथी के स्कंध पर आरूढ़ हुए। कटसरैया की माला, दाम तथा छत्र को धारण करते हुए, प्रवर श्वेत चामरों का वीजन लेते हुए, हय, गज, रथ और पदातिक—प्रवर यौद्धा से कलित चातुरंगिणी सेना संपरिवृत, महान् सुभटों के विस्तृत वृंद से परिक्षिप्त होकर क्षत्रियकुमार जमालि के पृष्ठभाग में रहकर अनुगमन कर रहे थे।

२०६. उस क्षत्रिय कुमार जमालि के आगे महान् घोड़े और घुड़सवार, दोनों पार्श्व में हाथी और महावत, पीछे रथ और रथ-समूह चल रहे थे।

२०७. क्षत्रियकुमार जमालि के आगे जल से भरी झारी लिए हुए, तालवृंत लिए हुए, श्वेत छत्र तानते हुए, श्वेत चामर और बाल वीजनी को डुलाते हुए, सर्व ऋद्धि यावत् दुन्दुभि के निर्घोष से नादित शब्द करते हुए क्षत्रियकुंडग्राम नगर के बीचों-बीच जहां ब्राह्मणकुण्डग्राम नगर है, जहां बहुशालक चैत्य है, जहां श्रमण भगवान् महावीर हैं वहां जाने के लिए उद्यत हुए।

२०८. क्षत्रियकुमार जमालि का क्षत्रिय-कुण्डग्राम नगर के बीचोबीच निष्क्रमण करते हुए शृंगाकों, तिराहों, चौराहों, चौहटों, चार द्वार वाले स्थानों, राजमार्गों और मार्गों पर बहुत धनार्थी, कामार्थी, भोगार्थी, लाभार्थी, किल्बिषिक (विदूषक), कापालिक, कर-पीड़ित अथवा सेवा में व्याप्त, शंख बजाने वाले, चक्रधारी, कृषक, मंगल-पाठक, विशिष्ट प्रकार का नृत्य करने वाले, घोषणा करने वाले, छात्रगण, उन इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ, मनोहर, मनोभिराम, हृदय का स्पर्श करने वाली वाणी और जय-विजय-सूचक मंगल शब्दों के द्वारा अनवरत अभिनंदन और अभिस्तवन करते हुए इस प्रकार बोले—

हे नंद-समृद्ध पुरुष! तुम्हारी जय हो, विजय हो धर्म के द्वारा।

हे नंद पुरुष! तुम्हारी जय हो, विजय हो तप के द्वारा।

हे नंद पुरुष! तुम्हारी जय हो, विजय हो, भद्र हो अभ्यन्त उत्तम ज्ञान-दर्शन-चारित्र के द्वारा। इन्द्रियां अजित हैं, उन्हें जीतो। श्रमण-धर्म जित है, उसकी पालना करो। हे देव! विघ्नों को जीतकर सिद्धि-मध्य में निवास करो। धृति का सुदृढ़ कच्छा बांधकर तप के द्वारा राग-द्वेष रूपी मल्लों को निहत करो। उत्तम शुक्लध्यान के द्वारा अष्टकर्म रूपी शत्रुओं का मर्दन करो। हे धीर! इस त्रिलोकी के रंग मध्य में अप्रमत्त होकर आराधना-पताका को हाथ में धामो। तम-रहित अनुत्तर केवलज्ञान को प्राप्त करो।

जिनवर उपदिष्ट ऋजु सिद्धिमार्ग के द्वारा, परीषह-सेना को हत-प्रहत कर, इन्द्रिय-समूह के कंटक बने हुए उपसर्गों को अभिभूत कर परम मोक्ष-पद को प्राप्त करो। तुम्हारी धर्म की आराधना विघ्न-रहित हो। इस प्रकार जन-समूह क्षत्रियकुमार जमालि का अभिनंदन और अभिस्तवन कर रहा था।

२०९. क्षत्रियकुमार जमालि हजारों नयन-मालाओं से देखा जाता हुआ, देखा जाता हुआ, हजारों हृदय-मालाओं से अभिनंदित होता हुआ, अभिनंदित होता हुआ, हजारों मनोरथ-मालाओं से स्पृष्ट होता हुआ, स्पृष्ट होता हुआ, हजारों वचन-मालाओं से अभिस्तवन लेता हुआ, अभिस्तवन लेता हुआ, बहुत हजारों नर-नारियों की हजारों अंजलि-मालाओं को दाएं हाथ से स्वीकार करता हुआ, स्वीकार करता हुआ, मंजु-मंजु घोष से नमस्कार करने वाले जनों की स्थिति को पूछते हुए, पूछते हुए, हजारों गृहपंक्तियों को अतिक्रान्त करता हुआ, अतिक्रान्त करता हुआ, क्षत्रियकुंडग्राम नगर के बीचोंबीच निर्गमन कर रहा था। निर्गमन कर जहां ब्राह्मणकुण्डग्राम नामक नगर है, जहां बहुशालक चैत्य है, वहां आया। वहां आकर छत्र आदि तीर्थकर के अतिशयों को देखा। देखकर हजारों पुरुषों द्वारा वहन की जाने वाली शिविका को ठहराया। हजार पुरुष द्वारा वहन की जाने वाली शिविका से उतरा।

२१०. माता-पिता क्षत्रियकुमार जमालि को आगे कर जहां श्रमण भगवान महावीर हैं, वहां आए। वहां आकर श्रमण भगवान महावीर को दायीं ओर से प्रारंभ कर तीन बार प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा कर वंदन-नमस्कार किया। वंदन-नमस्कार कर इस प्रकार बोले—भंते! क्षत्रियकुमार जमालि हमारा एक पुत्र है, इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मनोहर, स्थिरतर, विश्वसनीय, सम्मत, बहुमत, अनुमत और आभरण-करण्डक समान है। रत्न, रत्नभूत (चिन्तामणि आदि रत्न के समान), जीवन-उत्सव और हृदय को आनंदित करने वाला है। वह उदुम्बर पुष्प के समान श्रवण-दुर्लभ है फिर दर्शन का तो कहना ही क्या? जैसे उत्पल, पद्म यावत् सहस्रपत्र-कमल पंक में उत्पन्न और जल में संवर्द्धित होता है किन्तु वह पंक-रज और जल-रज से उपलिप्त नहीं होता वैसे ही क्षत्रियकुमार जमालि कामों से उत्पन्न हुआ है, भोगों में संवर्द्धित हुआ है किन्तु वह काम-रज और भोग-रज से उपलिप्त नहीं है। मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन-संबन्धी और परिजन से उपलिप्त नहीं है। देवानुप्रिय! यह संसार भय से उद्ध्विग्न है, जन्म-मरण से भीत है, देवानुप्रिय के पास मुण्ड होकर अगार से अनगारिता में प्रव्रजित होना चाहता है, इसलिए हम इसे देवानुप्रिय को शिष्य की भिक्षा के रूप में देना चाहते हैं। देवानुप्रिय! शिष्य की भिक्षा को स्वीकार करो।

२११. श्रमण भगवान महावीर ने क्षत्रियकुमार जमालि से इस प्रकार कहा—देवानुप्रिय! जैसा सुख हो, प्रतिबंध मत करो।

२१२. श्रमण भगवान महावीर के इस प्रकार कहने पर क्षत्रियकुमार जमालि हष्ट-तुष्ट हो गया। श्रमण भगवान महावीर को दायीं ओर से प्रारंभ कर तीन बार प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा कर वंदन-नमस्कार किया। वंदन-नमस्कार कर उत्तर-पूर्व दिशा (ईशान कोण) में गया। जाकर स्वयं आभरण, माल्य और अलंकार उतारे।

२१३. क्षत्रियकुमार जमालि की माता ने हंसलक्षण-युक्त पटशाटक में आभरण, माल्य और अलंकार स्वीकार किए। स्वीकार कर हार, जल-धारा, सिन्दुवार (निर्गुण्डी) के फूल और टूटी हुई मोतियों की लड़ी के समान बार-बार आंसू बहाती हुई इस प्रकार बोली—

जात! संयम में प्रयत्न करना।

जात! संयम में चेष्टा करना।

जात! संयम में पराक्रम करना।

जात! इस अर्थ में प्रमाद मत करना—यह कह कर क्षत्रियकुमार जमालि के माता-पिता ने श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार किया। वंदन-नमस्कार कर जिस दिशा से आए थे उसी दिशा में लौट गए।

२१४. क्षत्रियकुमार जमालि ने स्वयं ही पंचमुष्टि लोच किया। लोच कर जहां श्रमण भगवान महावीर हैं, वहां आया। वहां आकर श्रमण भगवान महावीर को दायीं ओर से प्रारंभ कर तीन बार प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा कर वंदन-नमस्कार किया। वंदन-नमस्कार कर इस प्रकार बोला—भंते! यह लोक बुढ़ापे और मौत से आदीप्त हो रहा है (जल रहा है)। भंते! यह लोक बुढ़ापे और मौत से प्रदीप्त हो रहा है (प्रज्वलित हो रहा है)। भंते! यह लोक बुढ़ापे और मौत से आदीप्त-प्रदीप्त हो रहा है।

जैसे किसी गृहपति के घर में आग लग जाने पर वहां जो अल्प भार वाला और बहुमूल्य आभरण होता है, उसे लेकर स्वयं एकांत स्थान में चला जाता है। (और सोचता है—) अग्नि से निकाला हुआ यह आभरण पहले अथवा पीछे मेरे लिए हित, सुख, क्षम, निःश्रेयस और आनुगामिकता के लिए होगा।

देवानुप्रिय! इसी प्रकार मेरा शरीर भी एक उपकरण है। वह इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ, मनोहर, स्थिरतर, विश्वसनीय, सम्मत, बहुमत, अनुमत और आभरण-करण्डक के समान है। इसे सर्दी-गर्मी न लगे, भूख-प्यास न सताए, चोर पीड़ा न पहुंचाए, हिंस्र पशु इस पर आक्रमण न करे, दंश और मशक इसे न काटे, वात, पित्त, श्लेष्म और सन्निपात-जनित विविध प्रकार के रोग और आतंक तथा परीषह और उपसर्ग इसका स्पर्श न करे, इस अभिसंधि से मैंने इसे पाला है। मेरे द्वारा इसका निस्तार होने पर यह परलोक में मेरे लिए हित, सुख, क्षम, निःश्रेयस और आनुगामिकता के लिए होगा। इसलिए देवानुप्रिय! मैं आपके द्वारा प्रव्रजित होना चाहता हूं, मैं आपके द्वारा ही मुण्डित होना चाहता हूं, मैं आपके द्वारा ही शैक्ष बनना चाहता हूं, मैं आपके द्वारा ही शिक्षा प्राप्त करना चाहता हूं तथा आपके द्वारा ही आचार, गोचर, विनय-वैनयिक, चरण-करण-यात्रा-मात्रा-मूलक धर्म का आख्यान चाहता हूं।

२१५. श्रमण भगवान महावीर ने क्षत्रियकुमार जमालि को पांच सौ पुरुषों के साथ स्वयं ही

प्रव्रजित किया यावत् क्षत्रियकुमार जमालि ने सामायिक, आचारांग आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया, अध्ययन कर अनेक चतुर्थ-भक्त, षष्ठ-भक्त, अष्टम-भक्त, दशम-भक्त, द्वादश-भक्त, अर्धमास और मास-खमण—इस प्रकार विचित्र तपःकर्म के द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विहरण किया।

२१६. जमालि अनगार किसी समय जहां श्रमण भगवान महावीर थे, वहां आया। वहां आकर श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर इस प्रकार बोला—भंते! तुम्हारी अनुज्ञा से मैं पांच सौ अनगारों के साथ बाहर जनपद विहार करना चाहता हूं।

२१७. श्रमण भगवान महावीर ने जमालि अनगार के इस अर्थ को आदर नहीं दिया, स्वीकार नहीं किया, मौन रहे।

२१८. जमालि अनगार ने श्रमण भगवान महावीर को दूसरी और तीसरी बार भी इसी प्रकार कहा—भंते! मैं तुम्हारी अनुज्ञा से पांच सौ अनगारों के साथ बाहर जनपद-विहार करना चाहता हूं।

२१९. श्रमण भगवान महावीर ने जमालि अनगार के इस कथन को दूसरी और तीसरी बार भी आदर नहीं दिया, स्वीकार नहीं किया, मौन रहे।

२२०. जमालि अनगार ने श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार किया। वंदन-नमस्कार कर श्रमण भगवान महावीर के पास से बहुशालक चैत्य से प्रतिनिष्क्रमण किया। प्रतिनिष्क्रमण कर पांच सौ अनगारों के साथ बाहर जनपद-विहार करने लगा।

२२१. उस काल और उस समय में श्रावस्ती नाम की नगरी थी—वर्णक। कोष्ठक चैत्य—वर्णक यावत् वनखण्ड तक। उस काल और उस समय में चंपा नामक नगरी थी—वर्णक। पूर्णभद्र चैत्य—वर्णक यावत् पृथ्वीशिला-पट्टक।

२२२. जमालि अनगार किसी समय पांच सौ अनगारों के साथ संपरिवृत होकर क्रमानुसार विचरण, ग्रामानुग्राम में परिव्रजन करते हुए जहां श्रावस्ती नगरी थी, जहां कोष्ठक चैत्य था, वहां आया। वहां आकर प्रवास-योग्य स्थान की अनुमति ली, अनुमति लेकर संयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए रह रहा था।

२२३. श्रमण भगवान महावीर किसी समय क्रमानुसार विचरण, ग्रामानुग्राम विहरण करते हुए, सुखपूर्वक विहार करते हुए जहां चंपानगरी थी, जहां पूर्णभद्र चैत्य था, वहां आए। आकर प्रवास योग्य-स्थान की अनुमति ली, अनुमति लेकर संयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए रह रहे थे।

२२४. उस जमालि अनगार के अरस, विरस, अंत, प्रांत, रूक्ष, तुच्छ, कालातिक्रांत, प्रमाणातिक्रांत, पान-भोजन से किसी समय शरीर में विपुल रोग-आतंक प्रकट हुआ—उज्ज्वल, विपुल, प्रगाढ़, कर्कश, कटुक, चण्ड, दुःखद, कष्टसाध्य, तीव्र और दुःसह। उसका शरीर पित्तज्वर से व्याप्त हो गया और उसमें जलन पैदा हो गयी।

२२५. जमालि अनगार ने वेदना से अभिभूत होकर श्रमण-निर्ग्रथों को संबोधित किया। संबोधित कर इस प्रकार कहा—देवानुप्रिय! तुम मरे शय्या-संस्तारक बिछा दो।

२२६. श्रमण-निर्ग्रन्थों ने जमालि अनगर के इस अर्थ को विनयपूर्वक स्वीकार किया। स्वीकार कर जमालि अनगर का शय्या-संस्तारक बिछाने लगे।

२२७. प्रबलतर वेदना से अभिभूत जमालि अनगर ने दूसरी बार भी श्रमण-निर्ग्रन्थों को संबोधित कर इस प्रकार कहा—देवानुप्रिय! क्या मेरा शय्या संस्तारक बिछा दिया? अथवा बिछा रहे हैं?

वे श्रमण निर्ग्रन्थ जमालि अनगर से इस प्रकार बोले—देवानुप्रिय! शय्या-संस्तारक अभी बिछाया नहीं, बिछा रहे हैं।

२२८. जमालि अनगर के मन में इस प्रकार का आध्यात्मिक, स्मृत्यात्मक, अभिलाषात्मक मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—जो श्रमण भगवान महावीर इस प्रकार आख्यान करते हैं यावत् प्ररूपणा करते हैं—चलमान चलित, उदीर्यमाण उदीरित, वेद्यमान वेदित, प्रहीणमान प्रहीण, छिद्यमान छित्र, भिद्यमान भित्र, दह्यमान दग्ध, प्रियमाण मृत, निर्जीर्यमाण निर्जीर्ण होता है—वह मिथ्या है। यह प्रत्यक्ष ही दिखाई देता है—शय्या-संस्तारक क्रियमाण अकृत है, संस्तीर्यमाण असंस्तृत है। जिस हेतु से शय्या-संस्तारक क्रियमाण अकृत है, संस्तीर्यमाण असंस्तृत है, उसी हेतु से चलमान भी अचलित यावत् निर्जीर्यमाण भी अनिर्जीर्ण है—इस प्रकार संप्रेक्षा की, संप्रेक्षा कर श्रमण-निर्ग्रन्थों को संबोधित किया, संबोधित कर इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो! श्रमण भगवान महावीर जो इस प्रकार आख्यान करते हैं यावत् प्ररूपणा करते हैं—चलमान चलित यावत् निर्जीर्यमाण निर्जीर्ण है, वह मिथ्या है। यह प्रत्यक्ष दिखाई देता है—शय्या-संस्तारक क्रियमाण अकृत है, संस्तीर्यमाण असंस्तृत है। जिस हेतु से शय्या-संस्तारक क्रियमाण अकृत है, संस्तीर्यमाण असंस्तृत है, उसी हेतु से चलमान भी अचलित है यावत् निर्जीर्यमाण भी अनिर्जीर्ण है।

२२९. जमालि अनगर के इस प्रकार आख्यान यावत् प्ररूपणा करने पर कुछ श्रमण-निर्ग्रन्थों ने इस अर्थ पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि की, कुछ श्रमण-निर्ग्रन्थों ने इस अर्थ पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि नहीं की। जिन श्रमण-निर्ग्रन्थों ने जमालि अनगर के इस अर्थ पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि की, वे जमालि अनगर को ही उपसंपन्न कर विहार करने लगे। जिन श्रमण-निर्ग्रन्थों ने जमालि अनगर के इस अर्थ पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि नहीं की, उन्होंने जमालि अनगर के पास से कोष्ठक चैत्य से प्रतिनिष्क्रमण किया, प्रतिनिष्क्रमण कर क्रमानुसार विचरण और ग्रामानुग्राम विहरण करते हुए जहां चंपा नगरी थी, जहां पूर्णभद्र चैत्य था, जहां श्रमण भगवान महावीर थे, वहां आए। वहां आकर श्रमण भगवान महावीर को दायीं ओर से प्रारंभ कर तीन बार प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा कर वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर श्रमण भगवान् महावीर को उपसंपन्न कर विहार करने लगे।

२३०. जमालि अनगर किसी समय उस रोग आतंक से विप्रमुक्त होकर दृष्ट हो गया। नीरोग और शरीर से बलवान होकर श्रावस्ती नगरी से कोष्ठक चैत्य से प्रतिनिष्क्रमण किया, प्रतिनिष्क्रमण कर क्रमानुसार विचरण और ग्रामानुग्राम विहरण करते हुए जहां चंपा नगरी थी, जहां पूर्णभद्र चैत्य था, जहां श्रमण भगवान महावीर थे, वहां आया। वहां आकर श्रमण भगवान महावीर के न अति दूर न अति निकट स्थित होकर श्रमण भगवान महावीर से इस

प्रकार कहा—देवानुप्रिय! जैसे बहुत अंतेवासी श्रमण-निर्ग्रन्थ छद्मस्थ-अपक्रमण से अपक्रांत-पृथक् हुए हैं, वैसे मैं छद्मस्थ-अपक्रमण से अपक्रांत नहीं हुआ हूँ, मैं उत्पन्न ज्ञान-दर्शनधर, अर्हत्, जिन, केवली होकर केवलि-अपक्रमण से अपक्रांत हुआ हूँ।

२३१. भगवान गौतम ने जमालि अनगार से इस प्रकार कहा—जमालि! केवली का ज्ञान और दर्शन पर्वत, स्तम्भ अथवा स्तूप से आवृत नहीं होता, निवारित नहीं होता। जमालि! यदि तुम उत्पन्न ज्ञान-दर्शनधर, अर्हत्, जिन, केवली होकर केवलि-अपक्रमण से अपक्रांत हुए हो तो इन दो प्रश्नों का व्याकरण करो—जमालि! लोक शाश्वत है? जमालि! लोक अशाश्वत है? जमालि! जीव शाश्वत है? जमालि! जीव अशाश्वत है?

२३२. जमालि अनगार भगवान गौतम के इस प्रकार कहने पर शंकित, कांक्षित, विचिकित्सित, भेद-समापन्न और क्लृप्त-समापन्न हो गया। उसने भगवान गौतम को कुछ भी उत्तर देने में अपने आपको समर्थ नहीं पाया। वह मौन हो गया।

२३३. जमालि! श्रमण भगवान महावीर ने जमालि अनगार से इस प्रकार कहा—जमालि! मेरे बहुत अंतेवासी श्रमण-निर्ग्रन्थ छद्मस्थ हैं, वे इन प्रश्नों का व्याकरण करने में समर्थ हैं, जैसे मैं। वे इस प्रकार की भाषा नहीं बोलते, जैसे तुम।

जमालि! लोक शाश्वत है। वह कभी नहीं था, कभी नहीं है और कभी नहीं होगा, ऐसा नहीं है—वह था, है और होगा—वह ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है।

जमालि! लोक अशाश्वत है। वह अवसर्पिणी होकर उत्सर्पिणी होता है, उत्सर्पिणी होकर अवसर्पिणी होता है।

जमालि! जीव शाश्वत है। वह कभी नहीं था, कभी नहीं है और कभी नहीं होगा, ऐसा नहीं है—वह था, है और होगा—वह ध्रुव, नित्य, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है।

जमालि! जीव अशाश्वत है। वह नैरयिक होकर तिर्यग्योनिक होता है, तिर्यग्योनिक होकर मनुष्य होता है, मनुष्य होकर देव होता है।

२३४. जमालि अनगार ने श्रमण भगवान महावीर के इस प्रकार आख्यान यावत् प्ररूपणा करने पर इस अर्थ पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि नहीं की। इस अर्थ पर अश्रद्धा, अप्रतीति और अरुचि करते हुए दूसरी बार भी श्रमण भगवान महावीर के पास से स्वयं अपक्रमण किया। अपक्रमण कर बहुत असद्भाव की उद्भावना की और मिथ्यात्व के अभिनिवेश के द्वारा स्व, पर और दोनों को भ्रांत करता हुआ, मिथ्या धारणा में व्युत्पन्न करता हुआ बहुत वर्ष तक श्रामण्य-पर्याय का पालन किया। पालन कर अर्द्धमासिकी संलेखना के द्वारा शरीर को कृश बना लिया। शरीर को कृश बना अनशन के द्वारा तीस भक्त (भोजन के समय) का छेदन किया। उस स्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण किए बिना कालमास में काल (मृत्यु) को प्राप्त कर लांतक-कल्प में तेरह सागरोपम स्थिति वाले किल्बिषिक देवों में किल्बिषिक देव के रूप में उपपन्न हुआ।

२३५. भगवान् गौतम जमालि अनगार को दिवंगत जानकर जहां श्रमण भगवान् महावीर थे, वहां आए। आकर श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार किया। वंदन-नमस्कार कर इस प्रकार कहा—देवानुप्रिय का अंतेवासी कुशिष्य जमालि नामक अनगार था। भंते! वह जमालि अनगार कालमास में काल (मृत्यु) को प्राप्त कर कहा गया है? कहां उपपन्न हुआ है?

अयि गौतम! इस संबोधन से संबोधित कर श्रमण भगवान् महावीर ने भगवान् गौतम से इस प्रकार कहा—गौतम! मेरा अंतेवासी कुशिष्य जमालि नामक अनगार था। उसने तब मेरे इस प्रकार के आख्यान, भाषण, प्रज्ञापन और प्ररूपण करने पर, इस अर्थ पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि नहीं की। इस अर्थ पर अश्रद्धा, अप्रतीति और अरुचि करते हुए उसने दूसरी बार भी मेरे पास से स्वयं अपक्रमण किया। अपक्रमण कर बहुत असद्भाव की उद्भावना और मिथ्यात्व के अभिनिवेश के द्वारा स्व, पर तथा दोनों को भ्रांत करता हुआ, मिथ्या-धारणा से व्युत्पन्न करता हुआ बहुत वर्ष तक श्रामण्य-पर्याय का पालन कर, अर्द्धमासिकी संलेखना से शरीर को कृश बना, अनशन के द्वारा तीसभक्त का छेदन कर, उस स्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण किए बिना ही कालमास में काल को प्राप्त कर, लांतक-कल्प में तेरह सागर की स्थिति वाले किल्बिषिक-देवों में किल्बिषिक-देव के रूप में उपपन्न हुआ है।

२३६. भंते! किल्बिषिक-देव कितने प्रकार के प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! किल्बिषिक-देव तीन प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—तीन पल्योपम स्थिति वाले, तीन सागरोपम स्थिति वाले, तेरह सागरोपम स्थिति वाले।

२३७. भंते! तीन पल्योपम स्थिति वाले किल्बिषिक-देव कहां रहते हैं?

गौतम! ज्योतिष्क-देवों के ऊपर सौधर्म-ईशान-कल्प-देवों के नीचे—इनमें तीन पल्योपम स्थिति वाले किल्बिषिक देव रहते हैं।

२३८. भंते! तीन सागरोपम स्थिति वाले किल्बिषिक-देव कहां रहते हैं?

गौतम! सौधर्म-ईशान-कल्प के ऊपर सनत्कुमार-माहेन्द्र-कल्प से नीचे—इनमें तीन सागरोपम स्थिति वाले किल्बिषिक-देव रहते हैं।

२३९. भंते! तेरह सागरोपम स्थिति वाले किल्बिषिक-देव कहां रहते हैं?

गौतम! ब्रह्मलोक-कल्प से ऊपर, लांतक-कल्प से नीचे—इनमें तेरह सागरोपम स्थिति वाले किल्बिषिक-देव रहते हैं।

२४०. भंते! किल्बिषिक-देव किन कर्मादान-कर्मबंध के हेतुओं के कारण किल्बिषिक-देव के रूप में उपपन्न होते हैं?

गौतम! जो ये जीव आचार्य-प्रत्यनीक, उपाध्याय-प्रत्यनीक, कुल-प्रत्यनीक, गण-प्रत्यनीक, संध-प्रत्यनीक, आचार्य-उपाध्याय का अयश, अवर्ण और अकीर्ति करने वाले, बहुत असद्भाव की उद्भावना और मिथ्यात्व के अभिनिवेश के द्वारा स्व, पर तथा दोनों को भ्रांत करते हुए, मिथ्या धारणा से व्युत्पन्न करते हुए बहुत वर्ष तक श्रामण्य-पर्याय का पालन करते हैं। पालन कर उस स्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण किए बिना ही कालमास में काल (मृत्यु) को प्राप्त कर किल्बिषिक-देवों में किल्बिषिक-देव के रूप में उपपन्न होते हैं,

जैसे—तीन पल्योपम की स्थिति वालों में, तीन सागरोपम की स्थिति वालों में अथवा तेरह सागरोपम की स्थिति वालों में।

२४१. भंते! किल्बिषिक देव आयु-क्षय, भव-क्षय और स्थिति-क्षय के अनन्तर उन देवलोकों से च्यवन कर कहां जाते हैं? कहां उपपन्न होते हैं?

गौतम! यावत् चार-पांच नैरयिक-, तिर्यग्योनिक-, मनुष्य- और देव-भव ग्रहण कर संसार में अनुपर्यटन कर उसके पश्चात् सिद्ध, प्रशान्त, मुक्त और परिनिर्वृत होते हैं, सब दुःखों का अंत करते हैं। कुछ देव आदि-अंतहीन, दीर्घ पथ वाले चतुर्गत्यात्मक संसार-कांतार में अनुपर्यटन करते हैं।

२४२. भंते! जमालि अनगर ने अरस-आहार, विरस-आहार, प्रांत-आहार, रूक्ष-आहार और तुच्छ-आहार किया। वह अरसजीवी, विरसजीवी, अंतजीवी, प्रांतजीवी, रूक्षजीवी, तुच्छजीवी, उपशांतजीवी, प्रशांतजीवी और विविक्तजीवी था।

हां, गौतम! जमालि अनगर ने अरस-आहार, विरस-आहार किया यावत् वह विविक्तजीवी था।

२४३. भंते! यदि जमालि अनगर ने अरस-आहार, विरस-आहार किया यावत् वह विविक्तजीवी था तो भंते! जमालि अनगर कालमास में काल (मृत्यु) को प्राप्त कर लांतककल्प में तेरह सागरोपम स्थिति वाले किल्बिषिक देवलोक में किल्बिषिक देव के रूप में उपपन्न हुआ?

गौतम! जमालि अनगर आचार्य का प्रत्यनीक, उपाध्याय का प्रत्यनीक, आचार्य-उपाध्याय का अयश, अवर्ण और अकीर्ति करने वाला था। वह बहुत असद्भाव की उद्भावना और मिथ्यात्व-अभिनिवेश के द्वारा स्व, पर तथा दोनों को भ्रांत करता हुआ, मिथ्याधारणा में व्युत्पन्न करता हुआ, वर्षों तक श्रामण्य-पर्याय का पालन कर, अर्द्धमासिकी संलेखना में अनशन के द्वारा तीस-भक्त का छेदन कर, उस स्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण किए बिना कालमास में काल को प्राप्त कर लांतक कल्प में तेरह सागरोपम की स्थिति वाले किल्बिषिक-देवों में किल्बिषिक-देव के रूप में उपपन्न हुआ है।

२४४. भंते! जमालि अनगर आयु-क्षय, भव-क्षय और स्थिति-क्षय के अनन्तर उस देवलोक से च्यवन कर कहां जाएगा? कहां उपपन्न होगा?

गौतम! चार-पांच तिर्यग्योनिक-, मनुष्य-, देव-भव ग्रहण कर, संसार का अनुपर्यटन कर उसके पश्चात् सिद्ध, प्रशांत, मुक्त, परिनिर्वृत और सब दुःखों का अंत करेगा।

२४५. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

चौत्तीसवां उद्देशक

एक के वध में अनेक-वध-पद

२४६. उस काल और उस समय में राजगृह नगर यावत् गौतम इस प्रकार बोले—

भंते! पुरुष पुरुष का हनन करता हुआ क्या पुरुष का हनन करता है? नो-पुरुष का हनन करता है?

गौतम! पुरुष का भी हनन करता है, नो-पुरुष का भी हनन करता है।

२४७. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—पुरुष का भी हनन करता है? नो-पुरुष का भी हनन करता है?

गौतम! वह इस प्रकार सोचता है—मैं एक पुरुष का हनन करता हूँ किन्तु वह एक पुरुष का हनन करता हुआ अनेक जीवों का हनन करता है। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—वह पुरुष का भी हनन करता है, नो-पुरुष का भी हनन करता है।

ऋषि के वध में अनंत-वध-पद

२४८. भंते! पुरुष अश्व का हनन करता हुआ क्या अश्व का हनन करता है, नो-अश्व का हनन करता है?

गौतम! वह अश्व का भी हनन करता है, नो-अश्व का भी हनन करता है।

भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है?—इसका अर्थ उक्त अर्थ की भांति वक्तव्य है। इसी प्रकार हाथी, सिंह, व्याघ्र यावत् चित्रल की वक्तव्यता।

२४९. भंते! पुरुष ऋषि का हनन करता हुआ क्या ऋषि का हनन करता है? नो-ऋषि का हनन करता है?

गौतम! वह ऋषि का भी हनन करता है, नो-ऋषि का भी हनन करता है।

२५०. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—ऋषि का भी हनन करता है, नो-ऋषि का भी हनन करता है?

गौतम! वह इस प्रकार सोचता है—मैं एक ऋषि का हनन करता हूँ किन्तु वह एक ऋषि का हनन करता हुआ अनंत जीवों का हनन करता है। गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—ऋषि का भी हनन करता है, नो-ऋषि का भी हनन करता है।

वैर-बंध-पद

२५१. भंते! पुरुष पुरुष का हनन करता हुआ क्या पुरुष के वैर से स्पृष्ट होता है? नो-पुरुष के वैर से स्पृष्ट होता है?

गौतम! नियमतः उस पुरुष के वैर से स्पृष्ट होता है, अथवा पुरुष के वैर से और नो-पुरुष के वैर से स्पृष्ट होता है, अथवा पुरुष के वैर से और नो-पुरुषों के वैर से स्पृष्ट होता है।

इसी प्रकार अश्व यावत् चित्रल यावत् अथवा चित्रल के वैर से और नो-चित्रलों के वैर से स्पृष्ट होता है।

२५२. भंते! पुरुष ऋषि का हनन करता हुआ क्या ऋषि के वैर से स्पृष्ट होता है, नो-ऋषि के वैर से स्पृष्ट होता है?

गौतम! नियमतः ऋषि के वैर से और नो-ऋषियों के वैर से स्पृष्ट होता है।

पृथ्वीकायिक आदि का आन-पान-पद

२५३. भंते! क्या पृथ्वीकायिक पृथ्वीकायिक का ही आन और अपान तथा उच्छ्वास और निःश्वास लते हैं?

हां, गौतम! पृथ्वीकायिक पृथ्वीकायिक का आन यावत् निःश्वास लेते हैं।

२५४. भंते! पृथ्वीकायिक अप्कायिक का आन यावत् निःश्वास लेते हैं?

हां, गौतम! पृथ्वीकायिक अप्कायिक का आन यावत् निःश्वास लेते हैं। इसी प्रकार तैजसकायिक, वायुकायिक, इसी प्रकार वनस्पतिकायिक की वक्तव्यता।

२५५. भंते! अप्कायिक पृथ्वीकायिक का आन यावत् निःश्वास लेते हैं?

हां, गौतम! अप्कायिक पृथ्वीकायिक का आन यावत् निःश्वास लेते हैं।

२५६. भंते! अप्कायिक अप्कायिक का आन यावत् निःश्वास लेते हैं?

अप्कायिक अप्कायिक का आन यावत् निःश्वास लेते हैं। इसी प्रकार तैजसकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक की वक्तव्यता।

२५७. भंते! क्या तैजसकायिक पृथ्वीकायिक का आन यावत् निःश्वास लेते हैं? भंते! यावत् वनस्पतिकायिक वनस्पतिकायिक का आन यावत् निःश्वास लेते हैं?

पूर्ववत् वक्तव्यता।

क्रिया-पद

२५८. भंते! पृथ्वीकायिक पृथ्वीकायिक का आन अथवा अपान अथवा उच्छ्वास अथवा निःश्वास लेता हुआ कितनी क्रिया वाला होता है?

गौतम! स्यात् तीन क्रिया वाला, स्यात् चार क्रिया वाला, स्यात् पांच क्रिया वाला होता है।

२५९. भंते! पृथ्वीकायिक अप्कायिक का आन यावत् निःश्वास लेता हुआ कितनी क्रिया वाला होता है?

पूर्ववत् वक्तव्यता। इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक की वक्तव्यता। इसी प्रकार यावत् अप्कायिक के सर्व विकल्प वक्तव्य हैं। इसी प्रकार तैजसकायिक और वायुकायिक की वक्तव्यता यावत्—

२६०. भंते! वनस्पतिकायिक वनस्पतिकायिक का आन यावत् निःश्वास लेता हुआ कितनी क्रिया वाला होता है? पृच्छा।

गौतम! स्यात् तीन क्रिया वाला, स्यात् चार क्रिया वाला, स्यात् पांच क्रिया वाला।

२६१. भंते! वायुकायिक (-जीव) वृक्ष के मूल को प्रकंपित करता हुआ, गिराता हुआ कितनी क्रिया वाला होता है?

गौतम! स्यात् तीन क्रिया वाला, स्यात् चार क्रिया वाला, स्यात् पांच क्रिया वाला होता है। इसी प्रकार कंद यावत्—

२६२. वायुकायिक (-जीव) बीज को प्रकंपित करता हुआ कितनी क्रिया वाला होता है? पृच्छा।

गौतम! स्यात् तीन क्रिया वाला, स्यात् चार क्रिया वाला, स्यात् पांच क्रिया वाला होता है।

२६३. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

• • •

दसवां शतक

पहला उद्देशक

संग्रहणी गाथा

दशवें शतक में चौतीस उद्देशक हैं—

१. दिशा २. संवृत-अनगार ३. आत्म-ऋद्धि ४. श्यामहस्ती ५. देवी ६. सभा ७-३४. उत्तरवर्ती अन्तर्द्वीप।

दिशा-पद

१. राजगृह नगर यावत् गौतम इस प्रकार बोले—भंते! इस पूर्व दिशा को क्या कहा जाता है?
गौतम! वह जीव है और अजीव है।

२. भंते! इस पश्चिम दिशा को क्या कहा जाता है?
गौतम! जीव है और अजीव है। इसी प्रकार दक्षिण, उत्तर, ऊर्ध्व और अधो दिशा जीव है और अजीव है।

३. भंते! दिशाएं कितनी प्रज्ञप्त हैं?
गौतम! दश दिशाएं प्रज्ञप्त हैं, जैसे—१. पूर्व दिशा २. पूर्व-दक्षिण ३. दक्षिण ४. दक्षिण-पश्चिम ५. पश्चिम ६. पश्चिम-उत्तर ७. उत्तर ८. उत्तर-पूर्व ९. ऊर्ध्व १०. अधः।

४. भंते! इन दश दिशाओं के कितने नाम प्रज्ञप्त हैं?
गौतम! दश नाम प्रज्ञप्त हैं, जैसे—ऐन्द्री (पूर्व) आग्नेयी (पूर्व-दक्षिण का कोण) याम्या (दक्षिण) नैऋती (दक्षिण-पश्चिम का कोण) वारुणी (पश्चिम) वायव्य (पश्चिम-उत्तर का कोण) सौम्य (उत्तर) ईशान (उत्तर-पूर्व का कोण) विमला (ऊर्ध्व) और तमा (अधो दिशा) ज्ञातव्य हैं।

५. भंते! ऐन्द्री दिशा क्या १. जीव है? २. जीव-देश है? ३. जीव-प्रदेश है? ४. अजीव है? ५. अजीव-देश है? ६. अजीव-प्रदेश है?

गौतम! ऐन्द्री दिशा जीव भी है, जीव-देश भी है, जीव-प्रदेश भी है, अजीव भी है, अजीव-देश भी है, अजीव-प्रदेश भी है।

जो जीव है, वे नियमतः एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय और अनिन्द्रिय हैं।

जो जीव-देश हैं, वे नियमतः एकेन्द्रिय-देश यावत् अनिन्द्रिय-देश हैं।

जो जीव-प्रदेश हैं, वे नियमतः एकेन्द्रिय-प्रदेश, द्वीन्द्रिय-प्रदेश यावत् अनिन्द्रिय-प्रदेश हैं।

जो अजीव हैं वे दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—रूपि-अजीव, अरूपि-अजीव। जो रूपि-अजीव हैं, वे चार प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—स्कन्ध, स्कन्ध-देश, स्कन्ध-प्रदेश, परमाणु-पुद्गल।

जो अरूपि-अजीव हैं, वे सात प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—

१. धर्मास्तिकाय नहीं हैं, धर्मास्तिकाय का देश है, २. धर्मास्तिकाय के प्रदेश हैं ३. अधर्मास्तिकाय नहीं हैं, अधर्मास्तिकाय का देश है ४. अधर्मास्तिकाय के प्रदेश हैं ५. आकाशास्तिकाय नहीं है, आकाशास्तिकाय का देश है ६. आकाशास्तिकाय के प्रदेश हैं ७. अध्वा समय है,

६. भंते! आग्नेयी दिशा क्या जीव है? जीव-देश है? जीव-प्रदेश है? पृच्छा।

गौतम! जीव नहीं है, जीव-देश भी है, जीव-प्रदेश भी है, अजीव भी है, अजीव-देश भी है, अजीव-प्रदेश भी है।

जो जीव-देश हैं, वे नियमतः एकेन्द्रिय के देश हैं; अथवा एकेन्द्रिय के देश हैं और द्वीन्द्रिय का देश है; अथवा एकेन्द्रिय के देश हैं और द्वीन्द्रिय के देश हैं अथवा एकेन्द्रिय के देश हैं और त्रीन्द्रिय का देश है। इसी प्रकार तीन विकल्प वक्तव्य हैं। इसी प्रकार यावत् अनिन्द्रिय के तीन भंग वक्तव्य हैं। जो जीव के प्रदेश हैं, वे नियमतः एकेन्द्रिय के प्रदेश हैं; अथवा एकेन्द्रिय के प्रदेश हैं और द्वीन्द्रिय का प्रदेश है; अथवा एकेन्द्रिय के प्रदेश हैं और द्वीन्द्रियों के प्रदेश हैं। इसी प्रकार प्रथम-विकल्प-विरहित यावत् अनिन्द्रिय की वक्तव्यता।

जो अजीव हैं, वे दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—रूपि-अजीव, अरूपि-अजीव।

जो रूपि-अजीव हैं, वे चार प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—स्कन्ध यावत् परमाणु-पुद्गल।

जो अरूपि-अजीव हैं—वे सात प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—नोधर्मास्तिकाय—धर्मास्तिकाय नहीं है; धर्मास्तिकाय का देश है; धर्मास्तिकाय के प्रदेश हैं। इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय की वक्तव्यता यावत् आकाशास्तिकाय के प्रदेश है। अध्वा समय है।

७. भंते! क्या याम्या दिशा जीव है?

जैसे ऐन्द्री वैसे ही याम्या की निरवशेष वक्तव्यता। नैऋती आग्नेयी की भांति, वारुणी ऐन्द्री की भांति, वायव्या आग्नेयी की भांति, सौम्या ऐन्द्री की भांति, ऐशानी आग्नेयी की भांति, विमला के जीव आग्नेयी की भांति और अजीव ऐन्द्री की भांति वक्तव्य है। इसी प्रकार तमा की वक्तव्यता, इतना विशेष है—अरूपि-अजीव के छह प्रकार हैं, अध्वा समय वक्तव्य नहीं है।

शरीर-पद

८. भंते! शरीर कितने प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! शरीर पांच प्रज्ञप्त हैं, जैसे—औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण।

९. भंते! औदारिक शरीर कितने प्रकार के प्रज्ञप्त हैं?

इस प्रकार अवगाहन-संस्थान पद (पण्णवणा, २१) निरवशेष वक्तव्य है यावत् अल्पबहुत्व तक।

१०. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

दूसरा उद्देशक

संवृत का क्रिया-पद

११. राजगृह नगर यावत् गौतम ने इस प्रकार कहा—भंते! कषाय की तरंग में स्थित संवृत अनगर पुरोवर्ती रूपों को देखता है, पृष्ठवर्ती रूपों को देखता है, पार्श्ववर्ती रूपों को देखता है, ऊर्ध्ववर्ती रूपों को देखता है, अधोवर्ती रूपों को देखता है। भंते! क्या उसके ऐर्यापथिकी क्रिया होती है? सांपरायिकी क्रिया होती है?

गौतम! कषाय की तरंग में स्थित संवृत अनगर पुरोवर्ती रूपों को देखता है, पृष्ठवर्ती रूपों को देखता है, पार्श्ववर्ती रूपों को देखता है, ऊर्ध्ववर्ती रूपों को देखता है, अधोवर्ती रूपों को देखता है, उसके ऐर्यापथिकी क्रिया नहीं होती, सांपरायिकी क्रिया होती है।

१२. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—कषाय की तरंग में स्थित संवृत अनगर के यावत् सांपरायिकी क्रिया होती है?

गौतम! जिसके क्रोध, मान, माया और लोभ व्युच्छिन्न हो जाते हैं, उसके ऐर्यापथिकी क्रिया होती है, जिसके क्रोध, मान, माया और लोभ व्युच्छिन्न नहीं होते, उसके सांपरायिकी क्रिया होती है। यथासूत्र—सूत्र के अनुसार चलने वाले के ऐर्यापथिकी क्रिया होती है। उत्सूत्र—सूत्र के विपरीत चलने वाले के सांपरायिकी क्रिया होती है। वह (जिसके क्रोध, मान, माया और लोभ व्युच्छिन्न नहीं होते) उत्सूत्र ही चलता है। इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—कषाय की तरंग में स्थित संवृत अनगर के सांपरायिकी क्रिया होती है।

१३. भंते! जो कषाय की तरंग में स्थित नहीं है, वह संवृत अनगर पुरोवर्ती रूपों को देखता है यावत् भंते! क्या उसके ऐर्यापथिकी क्रिया होती है? पृच्छा।

गौतम! जो कषाय की तरंग में स्थित नहीं है, वह संवृत अनगर पुरोवर्ती रूपों को देखता है यावत् उसके ऐर्यापथिकी क्रिया होती है, सांपरायिकी क्रिया नहीं होती।

१४. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—जो कषाय की तरंग में स्थित नहीं है, उस संवृत अनगर के ऐर्यापथिकी क्रिया होती है, साम्परायिकी क्रिया नहीं होती?

गौतम! जिसके क्रोध, मान, माया और लोभ व्युच्छिन्न हो जाते हैं उसके ऐर्यापथिकी क्रिया होती है। जिसके क्रोध, मान, माया और लोभ व्युच्छिन्न नहीं होते, उसके सांपरायिकी क्रिया होती है। यथासूत्र—सूत्र के अनुसार चलने वाले के ऐर्यापथिकी क्रिया होती है, उत्सूत्र—सूत्र के विपरीत चलने वाले के सांपरायिकी क्रिया होती है। वह (जिसके क्रोध, मान, माया और लोभ व्युच्छिन्न होते हैं) यथासूत्र ही चलता है। इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—जो कषाय

की तरंग में स्थित नहीं है, उस संवृत अनगार के ऐर्यापथिकी क्रिया होती है, सांपरायिकी क्रिया नहीं होती।

योनि-पद

१५. भंते! योनि के कितने प्रकार प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! योनि के तीन प्रकार प्रज्ञप्त हैं, जैसे—शीत, उष्ण और शीतोष्ण। इस प्रकार योनि-पद (पण्णवणा पद ९) निरवशेष वक्तव्य है।

वेदना-पद

१६. भंते! वेदना के कितने प्रकार प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! वेदना के तीन प्रकार प्रज्ञप्त हैं, जैसे—शीत, उष्ण, शीतोष्ण। इसी प्रकार वेदना-पद (पण्णवणा पद ३५) वक्तव्य है यावत्—

१७. भंते! क्या नैरयिक दुःख का वेदन करते हैं? सुख का वेदन करते हैं? अदुःख-असुख का वेदन करते हैं?

गौतम! दुःख का वेदन भी करते हैं, सुख का वेदन भी करते हैं, अदुःख-असुख का वेदन भी करते हैं।

१८. मासिकी भिक्षु-प्रतिमा-प्रतिपन्न अनगार, जो नित्य व्युत्सृष्ट-काय और त्यक्त-देह है, के अनेक परीषह-उपसर्ग उत्पन्न होते हैं, जैसे—दिव्य, मानुषिक अथवा तिर्यग्योनिक। वह इन उत्पन्न परीषहों को सम्यक् सहन करता है, उनकी क्षमा, तितिक्षा और अधिसहन करता है। इस प्रकार मासिकी भिक्षुप्रतिमा निरवशेष वक्तव्य है, जैसे—दसाओ (७/४-२५) में यावत् आराधित होती है।

अकृत्य-स्थान-प्रतिसेवन-पद

१९. भिक्षु किसी अकृत्य स्थान का सेवन कर उस स्थान की आलोचना-प्रतिक्रमण किए बिना काल (मृत्यु) को प्राप्त करता है, उसके आराधना नहीं होती। जो उस स्थान की आलोचना-प्रतिक्रमण कर काल को प्राप्त होता है, उसके आराधना होती है।

२०. भिक्षु किसी अकृत्य स्थान का प्रतिसेवन कर इस प्रकार सोचता है—मैं पश्चात् चरमकाल के समय में इस स्थान की आलोचना करूंगा, प्रतिक्रमण करूंगा, निंदा करूंगा, गर्हा करूंगा, विवर्तन करूंगा, विशोधन करूंगा, पुनः न करने के लिए अभ्युत्थान करूंगा। जो उस स्थान की आलोचना-प्रतिक्रमण किए बिना काल को प्राप्त करता है, उसके आराधना नहीं होती। जो उस स्थान की आलोचना-प्रतिक्रमण कर काल को प्राप्त करता है, उसके आराधना होती है।

२१. भिक्षु किसी अकृत्य स्थान का प्रतिसेवन कर इस प्रकार सोचता है—यदि श्रमणोपासक कालमास में काल को प्राप्त कर किसी देवलोक में देवरूप में उपपन्न होते हैं तो क्या मैं अणपन्निक (व्यन्तर) देवत्व को भी प्राप्त नहीं होऊंगा? ऐसा सोचकर जो उस स्थान की आलोचना-प्रतिक्रमण किए बिना काल को प्राप्त करता है, उसके आराधना नहीं होती। जो

उस स्थान की आलोचना-प्रतिक्रमण कर काल को प्राप्त करता है, उसके आराधना होती है।

२२. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

तीसरा उद्देशक

आत्मर्थिक-परर्थिक-व्यतिव्रजन-पद

२३. राजगृह नगर यावत् गौतम ने इस प्रकार कहा—भंते! देव आत्म-ऋद्धि के द्वारा यावत् चार-पांच देव-आवासांतरों को व्यतिक्रांत करता है, उसके पश्चात् पर-ऋद्धि के द्वारा व्यतिक्रांत करता है?

हां गौतम! देव आत्म-ऋद्धि के द्वारा यावत् चार-पांच देव-आवासांतरों को व्यतिक्रांत करता है, उसके पश्चात् पर-ऋद्धि के द्वारा व्यतिक्रांत करता है। इसी प्रकार असुरकुमार की वक्तव्यता, इतना विशेष है—असुरकुमार-आवासांतरों को व्यतिक्रांत करता है शेष पूर्ववत्। इसी प्रकार इस क्रम से यावत् स्तनितकुमार की वक्तव्यता। इसी प्रकार वाणमंतर, ज्योतिष्क, वैमानिक यावत् उसके पश्चात् पर-ऋद्धि के द्वारा व्यतिक्रांत करता है।

देवों का विनयविधि-पद

२४. भंते! क्या अल्पऋद्धि वाला देव महान् ऋद्धि वाले देव के बीच से होकर व्यतिक्रमण करता है?

यह अर्थ संगत नहीं है।

२५. भंते! सम-ऋद्धि वाला देव सम-ऋद्धि वाले देव के बीच से होकर व्यतिक्रमण करता है?

यह अर्थ संगत नहीं है। वह सम-ऋद्धि वाले प्रमत्त देव का व्यतिक्रमण कर सकता है

२६. भंते! क्या वह सम-ऋद्धि वाले देव को विमोहित कर जाने में समर्थ है? विमोहित किए बिना जाने में समर्थ है?

गौतम! वह सम-ऋद्धि वाले देव को विमोहित कर जाने में समर्थ है, विमोहित किए बिना जाने में समर्थ नहीं है।

२७. भंते! क्या वह पहले विमोहित कर पश्चात् व्यतिक्रमण करता है? पहले व्यतिक्रमण कर पश्चात् विमोहित करता है?

गौतम! पहले विमोहित कर पश्चात् व्यतिक्रमण करता है, पहले व्यतिक्रमण कर पश्चात् विमोहित नहीं करता।

२८. भंते! महान्-ऋद्धि वाला देव अल्प-ऋद्धि वाले देव के बीच से होकर व्यतिक्रमण करता है?

हां, व्यतिक्रमण करता है।

२९. भंते! क्या वह विमोहित कर व्यतिक्रमण करने में समर्थ है? विमोहित किए बिना व्यतिक्रमण करने में समर्थ है?

गौतम! वह विमोहित कर व्यतिक्रमण करने में समर्थ है। विमोहित किए बिना भी व्यतिक्रमण करने में समर्थ है।

३०. भंते! क्या वह पहले विमोहित कर पश्चात् व्यतिक्रमण करता है? पहले व्यतिक्रमण कर पश्चात् विमोहित करता है?

गौतम! पहले विमोहित कर पश्चात् व्यतिक्रमण करता है अथवा पहले व्यतिक्रमण कर पश्चात् विमोहित करता है।

३१. भंते! अल्प-ऋद्धि वाला असुरकुमार महान्-ऋद्धि वाले असुरकुमार के बीच से होकर व्यतिक्रमण करता है?

यह अर्थ संगत नहीं है। इस प्रकार असुरकुमार के तीन आलापक वक्तव्य हैं, जैसे सामान्य देव के कहे गए हैं। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार की वक्तव्यता। इसी प्रकार वानमंतर, ज्योतिष्क और वैमानिक की वक्तव्यता।

३२. भंते! अल्प-ऋद्धि वाला देव महान्-ऋद्धि वाली देवी के बीच से होकर व्यतिक्रमण करता है?

यह अर्थ संगत नहीं है।

३३. सम-ऋद्धि वाला देव सम-ऋद्धि वाली देवी के बीच से होकर व्यतिक्रमण करता है?

इसी प्रकार देव और देवी का दंडक (पाठ-पद्धति) वक्तव्य है यावत् वैमानिक।

३४. भंते! अल्प-ऋद्धि वाली देवी महान्-ऋद्धि वाले देवों के बीच से होकर व्यतिक्रमण करती है?

इस प्रकार यहां भी तृतीय दण्डक वक्तव्य है यावत्—

३५. भंते! क्या महान्-ऋद्धि वाली वैमानिक देवी अल्प-ऋद्धि वैमानिक देव के बीच से होकर व्यतिक्रमण करती है?

हां, व्यतिक्रमण करती है।

३६. भंते! क्या अल्प-ऋद्धि वाली देवी महान्-ऋद्धिवाली देवी के बीच से होकर व्यतिक्रमण करती है?

यह अर्थ संगत नहीं है। सम-ऋद्धि वाली देवी की सम-ऋद्धि वाली देवी के संदर्भ में पूर्ववत् वक्तव्यता (१०/२५-२७) महान्-ऋद्धि वाली देवी की अल्प-ऋद्धि वाली देवी के संदर्भ में पूर्ववत् वक्तव्यता (१०/२८-३०)। इस प्रकार प्रत्येक के तीन-तीन आलापक वक्तव्य हैं यावत्—

३७. भंते! महान्-ऋद्धि वाली वैमानिक देवी अल्प-ऋद्धि वाली देवी के बीच से होकर व्यतिक्रमण करती है?

हां, व्यतिक्रमण करती है।

३८. भंते! क्या वह विमोहित कर व्यतिक्रमण करने में समर्थ है? विमोहित किए बिना व्यतिक्रमण करने में समर्थ है?

गौतम! विमोहित कर व्यतिक्रमण करने में भी समर्थ है, विमोहित किए बिना भी व्यतिक्रमण

करने में समर्थ है। इसी प्रकार यावत् पहले व्यतिक्रमण कर पश्चात् विमोहित करती है। ये चार दण्डक वक्तव्य हैं।

अश्व का 'खु-खु' करण-पद

३९. भंते! दौड़ते हुए अश्व के क्या 'खु-खु' यह शब्द होता है?

गौतम! दौड़ते हुए अश्व के हृदय और यकृत के बीच कर्कटक वायु समुत्पन्न होती है, इस कारण दौड़ते हुए अश्व के 'खु-खु'—शब्द होता है।

प्रज्ञापनी भाषा-पद

४०. भंते! मैं ठहरूंगा, सोऊंगा, खड़ा रहूंगा, बैटूंगा, लेटूंगा—क्या यह प्रज्ञापनी भाषा है? क्या यह मृषा भाषा नहीं है?

हां, गौतम! ठहरूंगा, सोऊंगा, खड़ा रहूंगा, बैटूंगा, लेटूंगा—यह प्रज्ञापनी भाषा है, मृषा भाषा नहीं है।

४१. भंते! वह ऐसा ही है। भंत! वह ऐसा ही है।

चौथा उद्देशक

तावत्त्रिंशक-देव-पद

४२. उस काल और उस समय में वाणिज्यग्राम नामक नगर था—वर्णक। दूतिपलाशक चैत्य। वहां भगवान् महावीर आए यावत् परिषद् वापिस नगर में चली गई।

४३. उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के ज्येष्ठ अन्तेवासी इन्द्रभूति नामक अनगार यावत् ऊर्ध्वजानु अधःसिर (उकडू-आसन की मुद्रा में) और ध्यान-कोष्ठ में लीन होकर संयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए रह रहे थे।

४४. उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर का अन्तेवासी श्याम-हस्ती नामक अनगार था। वह प्रकृति से भद्र और उपशांत था। उसके क्रोध, मान, माया और लोभ प्रतनु थे। वह मृदु-मार्दव-संपन्न, आलीन (संयतेंद्रिय) और विनीत था। वह श्रमण भगवान् महावीर के न अति दूर और न अति निकट ऊर्ध्वजानु अधःसिर—इस मुद्रा में और ध्यान-कोष्ठ में लीन होकर संयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए रह रहा था।

४५. उस समय श्यामहस्ती अनगार के मन में एक श्रद्धा (इच्छा) यावत् उठने की मुद्रा में उठा, उठकर जहां श्रमण भगवान् महावीर थे, वहां आया, वहां आकर भगवान् गौतम को दायीं ओर से प्रारंभ कर तीन बार प्रदक्षिणा की यावत् पर्युपासना करते हुए इस प्रकार बोला—

४६. भंते! असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर के त्रायस्त्रिंशक-देव त्रायस्त्रिंशक-देव हैं?

हां, हैं।

४७. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर के त्रायस्त्रिंशक-देव त्रायस्त्रिंशक-देव हैं?

श्यामहस्ती! उस काल और उस समय में इसी जम्बूद्वीप द्वीप में भारतवर्ष में काकंदी नामक नगरी थी—वर्णक। उस काकंदी नगरी में त्रायस्त्रिंशक—तैतीस परस्पर सहाय्य करने वाले गृहपति श्रमणोपासक रहते थे—सम्पन्न यावत् बहुजन के द्वारा अपरिभवनीय, जीव-अजीव को जानने वाले, पुण्य-पाप के मर्म को समझने वाले यावत् यथा-परिगृहीत तपःकर्म के द्वारा अपने आपको भावित करते हुए रह रहे थे।

४८. वे तैतीस परस्पर सहाय्य करने वाले गृहपति श्रमणोपासक पहले उग्र, उग्रविहारी, संविम, संविमविहारी हुए उसके पश्चात् पार्श्वस्थ, पार्श्वस्थ-विहारी, अवसन्न, अवसन्नविहारी, कुशील, कुशीलविहारी, यथाछंद, यथाछंदविहारी हो गए। वे बहुत वर्षों तक श्रामण्य-पर्याय का पालन कर, अर्धमासिकी संलेखना से शरीर को कृश बना, अनशन के द्वारा तीस-भक्त (चौदह दिन) का छेदन कर उस स्थान की आलोचना-प्रतिक्रमण किए बिना कालमास में काल (मृत्यु) को प्राप्त कर असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर के त्रायस्त्रिंशक-देव के रूप में उपपन्न हुए।

४९. भंते! जिस समय वे काकंदक त्रायस्त्रिंशक परस्पर सहाय्य करने वाले गृहपति श्रमणोपासक असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर के त्रायस्त्रिंशक देव के रूप में उपपन्न हुए। भंते! क्या उस समय से इस प्रकार कहा जाता है—असुर-कुमारराज असुरेन्द्र चमर के त्रायस्त्रिंशक-देव त्रायस्त्रिंशक-देव हैं?

श्यामहस्ती अनगर के इस प्रकार कहने पर भगवान् गौतम शंकित, कांक्षित और विचिकित्सित हो गए। वे उठने की मुद्रा में उठे, उठकर श्यामहस्ती अनगर के साथ जहां श्रमण भगवान् महावीर थे, वहां आए, वहां आकर श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर इस प्रकार बोले—

५०. भंते! क्या असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर के त्रायस्त्रिंशक-देव त्रायस्त्रिंशक-देव हैं? हां, है।

५१. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—इसी प्रकार सर्व वक्तव्य है यावत् भंते! जिस समय से वे काकंदक त्रायस्त्रिंशक—तैतीस परस्पर सहाय्य करने वाले गृहपति श्रमणोपासक असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर के त्रायस्त्रिंशक देव के रूप में उपपन्न हुए, भंते! उस समय से क्या इस प्रकार कहा जा रहा है—असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर के त्रायस्त्रिंशक-देव त्रायस्त्रिंशक-देव हैं?

यह अर्थ संगत नहीं है।

गौतम! असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर के त्रायस्त्रिंशक-देवों का शाश्वत नामधेय प्रज्ञप्त है—वह कभी नहीं था, कभी नहीं है और कभी नहीं होगा, ऐसा नहीं है—वह था, है और होगा—वह ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है। अव्युच्छित्ति-नय की दृष्टि से कुछ च्यवन करते हैं, कुछ उपपन्न हो जाते हैं।

५२. भंते! वैरोचनराज वैरोचनेन्द्र बलि के त्रायस्त्रिंशक-देव त्रायस्त्रिंशक-देव हैं? हां, है।

५३. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—वैरोचनराज वैरोचनेन्द्र बलि के त्रायस्त्रिंशक-
-देव त्रायस्त्रिंशक-देव हैं?

गौतम! उस काल और उस समय में इसी जम्बूद्वीप द्वीप में भारतवर्ष में बेभेल नाम का सन्निवेश था—वर्णक! उस बेभेल सन्निवेश में त्रायस्त्रिंशक—तैतीस परस्पर सहाय्य करने वाले गृहपति श्रमणोपासक रहते थे—जैसे चमर की वक्तव्यता यावत् त्रायस्त्रिंशक-देव के रूप में उपपन्न हुए।

५४. भंते! जिस समय से वे बेभेलक त्रायस्त्रिंशक—तैतीस परस्पर सहाय्य करने वाले गृहपति श्रमणोपासक वैरोचनराज, वैरोचनेन्द्र बलि के त्रायस्त्रिंशक-देव के रूप में उपपन्न हुए। शेष पूर्ववत् वक्तव्य है यावत् नित्य है, अव्युच्छित्ति नय की दृष्टि से कुछ च्यवन करते हैं, कुछ उपपन्न हो जाते हैं।

५५. भंते! नागकुमारराज नागकुमारेन्द्र धरण के त्रायस्त्रिंशक-देव त्रायस्त्रिंशक-देव हैं?
हां, हैं।

५६. यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—नागकुमारराज नागकुमारेन्द्र धरण के त्रायस्त्रिंशक-
-देव त्रायस्त्रिंशक-देव हैं?

गौतम! नागकुमारराज नागकुमारेन्द्र धरण के त्रायस्त्रिंशक-देवों का शाश्वत नामधेय प्रज्ञप्त है—वह कभी नहीं था यावत् कुछ च्यवन करते हैं, कुछ उपपन्न हो जाते हैं। इसी प्रकार भूतानन्द की वक्तव्यता। इसी प्रकार यावत् महाघोष की वक्तव्यता।

५७. भंते! देवराज देवेन्द्र शक्र के त्रायस्त्रिंशक-देव त्रायस्त्रिंशक-देव हैं?
हां, हैं।

५८. यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—देवराज देवेन्द्र शक्र के त्रायस्त्रिंशक-देव
त्रायस्त्रिंशक-देव हैं?

गौतम! उस काल और उस समय में जम्बूद्वीप द्वीप के भारतवर्ष में पालक नाम का सन्निवेश था—वर्णक! उस पालक सन्निवेश में तैतीस परस्पर सहाय्य करने वाले गृहपति श्रमणोपासक रहते थे। चमर की भांति वक्तव्यता यावत् अपने आपको भावित करते हुए रह रहे थे।

५९. वे तैतीस परस्पर सहाय्य करने वाले गृहपति श्रमणोपासक पहले और पश्चात् उग्र, उग्रविहारी, संविम्न, संविम्नविहारी थे। वे बहुत वर्षों तक श्रमणोपासक पर्याय का पालन कर मासिकी संलेखना से शरीर को कृश बना, अनशन के द्वारा साठभक्त (भोजन के समय) का छेदन कर, आलोचना प्रतिक्रमण कर, समाधि को प्राप्त कर, कालमास में काल (मृत्यु) प्राप्त कर देवराज देवेन्द्र शक्र के त्रायस्त्रिंशक-देव के रूप में उपपन्न हुए। भंते! जिस समय से वे पालक तैतीस परस्पर सहाय्य करने वाले गृहपति श्रमणोपासक देवराज देवेन्द्र शक्र के त्रायस्त्रिंशक-देव के रूप में उपपन्न हुए, शेष चमर की भांति वक्तव्य है यावत् कुछ च्यवन करते हैं, कुछ उपपन्न हो जाते हैं।

६०. भंते! देवराज देवेन्द्र ईशान के त्रायस्त्रिंशक-देव त्रायस्त्रिंशक-देव हैं?

शक्र की भांति वक्तव्यता, इतना विशेष है—चंपानगरी में यावत् देवराज देवेन्द्र ईशान के त्रायस्त्रिंशक देव के रूप में उपपन्न हुए। भंते! जिस समय से वे चंपानगरी में तैतीस परस्पर सहाय्य करने वाले गृहपति रहते थे, शेष पूर्ववत् यावत् कुछ च्यवन करते हैं, कुछ उपपन्न हो जाते हैं।

६१. भंते! देवराज देवेन्द्र सनत्कुमार के त्रायस्त्रिंशक-देव त्रायस्त्रिंशक-देव हैं?

हां, हैं।

६२. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है?

धरण की भांति वक्तव्यता। इसी प्रकार यावत् प्राणत की वक्तव्यता। इसी प्रकार अच्युत की वक्तव्यता यावत् कुछ च्यवन करते हैं, कुछ उपपन्न हो जाते हैं।

६३. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

पाचवां उद्देशक

देवी का अंतःपुर के साथ दिव्य-भोग-पद

६४. उस काल और उस समय में राजगृह नाम का नगर था। गुणशीलक चैत्य यावत् भगवान् ने धर्म कहा। परिषद वापस नगर में चली गई। उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के बहुत अंतेवासी स्थविर भगवान् जाति-संपन्न जैसे आठवें शतक के सातवें उद्देशक (सूत्र २७२) की वक्तव्यता यावत् संयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए रह रहे थे। उन स्थविर भगवान् के मन में एक श्रद्धा (इच्छा) एक संशय (जिज्ञासा) जैसे गौतम स्वामी की वक्तव्यता यावत् पर्युपासना करते हुए इस प्रकार बोले—

६५. भंते! असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर के कितनी अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं?

आर्य! पांच अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं, जैसे— काली, राजी, रजनी, विद्युत्, मेघा। उनमें से प्रत्येक देवी के आठ-आठ हजार देवी का परिवार प्रज्ञप्त हैं।

६६. भंते! क्या एक एक देवी अन्य आठ-आठ हजार देवी-परिवार की विक्रिया (रूप-निर्माण) करने में समर्थ है?

हां, है। इसी प्रकार पूर्व-अपर-सहित चालीस हजार देवी-परिवार विक्रिया करने में समर्थ है। यह है तुडिय (अंतःपुर) की वक्तव्यता।

६७. भंते! असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर चमरचंचा राजधानी की सुधर्मा सभा में चमर सिंहासन पर अंतःपुर के साथ दिव्य भोग भोगता हुआ विहरण करने में समर्थ है?

यह अर्थ संगत नहीं है।

६८. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—असुरकुमारराज असुरेन्द्रचमर चमरचंचा राजधानी में यावत् दिव्य भोग भोगता हुआ विहरण करने में समर्थ नहीं है?

आर्यों! असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर चमरचंचा राजधानी की सुधर्मा सभा में माणवक चैत्य स्तंभ में वज्रमय गोलवृत्त-वर्तुलाकार पेटियों में जिनेश्वर-देव की अनेक अस्थियां रखी हुई हैं,

जो असुरकुमारराज असुरेन्द्रचमर तथा अन्य बहुत असुरकुमार देव-देवियों के लिए अर्चनीय, वंदनीय, नमस्करणीय, पूजनीय, सत्कारणीय, सम्माननीय, कल्याणकारी, मंगल, दैवत, चैत्य और पर्युपासनीय होती है। आर्यों! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—असुरकुमारराज असुरेन्द्रचमर चमरचंचा राजधानी की सुधर्मा सभा में, चमर सिंहासन पर अंतःपुर के साथ दिव्य भोगार्ह भोगों को भोगते हुए विहरण करने में समर्थ नहीं है।

६९. आर्यों! असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर चमरचंचा राजधानी की सभा सुधर्मा में चमर सिंहासन पर चौसठ हजार सामानिक, तैतीस त्रायस्त्रिंशक, चार लोकपाल, पांच अग्रमहिषियां, सपरिवार चौसठ हजार आत्मरक्षक-देव, अन्य बहुत असुरकुमार-देव और देवियों के साथ संपरिवृत है। वह आहत नाट्यों, गीतों तथा कुशल वादक के द्वारा बजाए गए वादित्र, तंत्री, तल, ताल, त्रुटित घन और मृदंग की महान् ध्वनि से युक्त दिव्य भोगार्ह भोगों को भोगता हुआ रहता है।

केवल परिचारणा (शब्द-श्रवण, रूप-दर्शन)-ऋद्धि का उपभोग करते हैं, मैथुन-रूप भोग का नहीं।

७०. भंते! असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर के लोकपाल महाराज सोम के कितनी अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं?

आर्य! चार अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं, जैसे—कनका, कनकलता, चित्रगुप्ता, वसुंधरा। उनमें से प्रत्येक देवी के एक-एक हजार देवी परिवार प्रज्ञप्त है। यह है अंतःपुर की वक्तव्यता।

७१. क्या एक देवी अन्य एक हजार देवी-परिवार की विक्रिया करने में समर्थ है?

हां, है। इसी प्रकार पूर्व-अपर-सहित चार हजार देवी-परिवार विक्रिया करने में समर्थ है।

७२. भंते! असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर के लोकपाल महाराज सोम सोम राजधानी की सुधर्मा सभा में सोम सिंहासन पर अंतःपुर के साथ दिव्य भोगार्ह भोगों को भोगते हुए विहरण करने में समर्थ हैं?

अवशेष चमर की भांति वक्तव्य है, इतना विशेष है—परिवार सूर्याभदेव की भांति (रायपसेणइय ७) वक्तव्य है। शेष पूर्ववत् यावत् मैथुन-रूप भोग का नहीं।

७३. भंते! असुरकुमारराज असुरेन्द्र चमर के लोकपाल महाराज यम के कितनी अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं?

पूर्ववत्, इतना विशेष है—यम राजधानी में शेष सोम की भांति वक्तव्यता। इसी प्रकार वरुण की वक्तव्यता, इतना विशेष है—वरुण राजधानी में। इसी प्रकार वैश्रमण की वक्तव्यता, इतना विशेष है—वैश्रमण राजधानी में। शेष पूर्ववत् यावत् मैथुन-रूप भोग का नहीं।

७४. भंते! वैरोचनेन्द्र बलि की पृच्छा।

आर्यों! पांच अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं, जैसे—शुंभा, निशुंभा, रंभा, निरंभा, मदना। उनमें से प्रत्येक देवी के आठ-आठ हजार देवी का परिवार प्रज्ञप्त है। शेष चमर की भांति वक्तव्य है, इतना विशेष है—बलिचंचा राजधानी में, परिवार की मोक-उद्देशक (भगवई ३/४) की भांति वक्तव्यता। शेष पूर्ववत् यावत् मैथुन-रूप भोग का नहीं।

७५. भंते! वैरोचनराज वैरोचनेन्द्र बलि के लोकपाल महाराज सोम के कितनी अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं?

आर्यों! चार अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं, जैसे—मीनका, सुभद्रा, विद्युत्, असनी। उनमें से प्रत्येक देवी के एक-एक हजार देवी का परिवार है। शेष सोम चमर की भांति वक्तव्यता। इसी प्रकार यावत् वरुण की वक्तव्यता।

७६. भंते! नागकुमारराज नागकुमारेन्द्र धरण के कितनी अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं?

आर्यों! छह अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं, जैसे—अला, शक्रा, सतेरा, सौदामिनी, इन्द्रा, धन-विद्युत्। उनमें प्रत्येक देवी के छह-छह हजार देवी का परिवार प्रज्ञप्त है।

७७. क्या एक देवी अन्य छह-छह हजार देवी परिवार की विक्रिया करने में समर्थ है?

हां, है। इसी प्रकार पूर्व अपर सहित छत्तीस हजार देवी-परिवार विक्रिया करने में समर्थ है। यह है अंतःपुर की वक्तव्यता।

७८. भंते! नागकुमारराज नागकुमारेन्द्र धरण धरण सिंहासन पर दिव्य भोगार्ह भोगों को भोगते हुए विहरण करने में समर्थ हैं?

शेष पूर्ववत्, इतना विशेष है—धरण राजधानी में, धरण सिंहासन पर, स्व-परिवार के साथ। शेष रायपसेणइय (सूत्र ७) की भांति वक्तव्य है।

७९. भंते! नागकुमारराज नागकुमारेन्द्र धरण के लोकपाल महाराज कालवास के कितनी अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं?

आर्यों! चार अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं, जैसे—अशोका, विमला, सुप्रभा, सुदर्शना। उनमें प्रत्येक देवी के एक-एक हजार देवी का परिवार है। शेष चमर लोकपाल की भांति वक्तव्यता। इसी प्रकार धरण के शेष तीन लोकपालों की वक्तव्यता।

८०. भंते! भूतानंद की पृच्छा।

आर्यों! छह अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं, जैसे—रूपा, रूपांशा, सुरूपा, रूपकावती, रूपकांता, रूपप्रभा। उनमें प्रत्येक देवी के छह-छह हजार देवी का परिवार है। अवशेष धरण की भांति वक्तव्य है।

८१. भंते! नागकुमारराज नागकुमारेन्द्र भूतानंद के लोकपाल नागचित्त की पृच्छा।

आर्यों! चार अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं, जैसे—सुनंदा, सुभद्रा, सुजाता, सुमना। उनमें प्रत्येक देवी के एक-एक हजार देवी का परिवार है। शेष चमर लोकपाल की भांति वक्तव्य है। इसी प्रकार भूतानंद के शेष तीन लोकपालों की वक्तव्यता।

जो दक्षिण दिशा के इन्द्र हैं, उनकी धरणेन्द्र की भांति वक्तव्यता। उनके लोकपालों की भी धरणेन्द्र के लोकपालों की भांति वक्तव्यता। इतना विशेष है—सब इन्द्रों की राजधानी और सिंहासन सदृश नाम वाले हैं। परिवार मोक-उद्देशक (भगवई ३/४) की भांति वक्तव्य है। सब लोकपालों की राजधानी और सिंहासन भी सदृश नाम वाले हैं, उनका परिवार चमर लोकपाल की भांति वक्तव्य है।

८२. भंते! पिशाचराज पिशाचेन्द्र काल के कितनी अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं?

आर्यो! चार अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं, जैसे—कमला, कमलप्रभा, उत्पला, सुदर्शना। उनमें प्रत्येक देवी के एक-एक हजार देवी का परिवार है। शेष चमर लोकपाल की भांति वक्तव्य है। उसी प्रकार परिवार की वक्तव्यता, इतना विशेष है—काल राजधानी में काल सिंहासन पर, शेष पूर्ववत्। इसी प्रकार महाकाल की वक्तव्यता।

८३. भंते! भूतराज भूतेन्द्र सुरूप की पृच्छा।

आर्य! चार अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं, जैसे—रूपवती, बहुरूपा, सुरूपा, सुभगा। उनमें प्रत्येक देवी के एक-एक हजार देवी का परिवार है, शेष काल की भांति वक्तव्यता। इसी प्रकार प्रतिरूप की वक्तव्यता।

८४. भंते! यक्षेन्द्र पुण्यभद्र की पृच्छा।

आर्य! चार अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं, जैसे—पुण्या, बहुपुत्रिका, उत्तमा, तारका। उनमें प्रत्येक देवी के एक-एक हजार देवी का परिवार है, शेष काल की भांति वक्तव्यता। इसी प्रकार मणिभद्र की वक्तव्यता।

८५. भंते! राक्षसेन्द्र भीम की पृच्छा।

आर्य! चार अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं, जैसे—पद्मा, वसुमती, कनका, रत्नप्रभा। उनमें प्रत्येक देवी के एक-एक हजार देवी का परिवार है, शेष काल की भांति वक्तव्यता। इसी प्रकार महाभीम की वक्तव्यता।

८६. किन्नर की पृच्छा।

आर्य! चार अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं, जैसे—अवतंसा, केतुमती, रतिसेना, रतिप्रिया। उनमें प्रत्येक देवी के एक-एक हजार देवी का परिवार है, शेष पूर्ववत्। इसी प्रकार किंपुरुष की वक्तव्यता।

८७. सत्पुरुष की पृच्छा।

आर्य! चार अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं, जैसे—रोहिणी, नवमिका, ह्री, पुष्पवती। उनमें प्रत्येक देवी के एक-एक हजार देवी का परिवार है, शेष पूर्ववत्। इसी प्रकार महापुरुष की वक्तव्यता।

८८. अतिकाय की पृच्छा।

आर्य! चार अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं, जैसे—भुजगा, भुजगवती, महाकक्षा, स्फुटा। उनमें प्रत्येक देवी के एक-एक हजार देवी का परिवार है, शेष पूर्ववत्। इसी प्रकार महाकाय की वक्तव्यता।

८९. गीतरति की पृच्छा।

आर्य! चार अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं, जैसे—सुघोषा, विमला, सुस्वरा, सरस्वती। उनमें प्रत्येक देवी के एक-एक हजार देवी का परिवार है, शेष पूर्ववत्। इसी प्रकार गीतयश की वक्तव्यता। इन सबकी काल की भांति वक्तव्यता, इतना विशेष है—राजधानी और सिंहासन सदृश नाम वाले हैं, शेष पूर्ववत्।

१०. भते! ज्योतिषराज ज्योतिषेन्द्र चन्द्र की पृच्छा।

आर्य! चार अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं, जैसे—चन्द्रप्रभा, ज्योत्स्नाभा, अर्चिमाली प्रभंकरा। इस प्रकार जैसे जीवाजीवाभिगम (३/१९८-१०३६) में ज्योतिष्क-उद्देशक की वक्तव्यता। इसी प्रकार सूर्य की चार अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं—सूर्यप्रभा, आतपा, अर्चिमाली, प्रभंकरा। शेष पूर्ववत् यावत् परिवार की ऋद्धि का उपभोग करते हैं, मैथुन-रूप भोग का नहीं।

११. भते! महाग्रह इंगाल के कितनी अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं—पृच्छा।

आर्य! चार अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं, जैसे—विजया, वैजयंती, जयंती, अपराजिता। उनमें प्रत्येक देवी के एक-एक हजार देवी का परिवार है। शेष चन्द्र की भांति वक्तव्यता, इतना विशेष है—अंगारावतंसक विमान, अंगारक सिंहासन पर, शेष पूर्ववत्। इसी प्रकार विकालक की वक्तव्यता। इसी प्रकार अठासी महाग्रहों की वक्तव्यता यावत् भावकेतु की वक्तव्यता, इतना विशेष है—अवतंसक और सिंहासन सदृश नाम वाले हैं, शेष पूर्ववत्।

१२. भते! देवराज देवेन्द्र शक्र की पृच्छा।

आर्य! आठ अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं, जैसे—यद्या, शिवा, शची, अंजू, अमला, अप्सरा, नवमिका, रोहिणी। उनमें प्रत्येक देवी के सोलह-सोलह हजार देवी का परिवार प्रज्ञप्त है।

१३. क्या एक देवी अन्य सोलह हजार देवी-परिवार की विक्रिया करने में समर्थ है?

हां, है। इसी प्रकार पूर्व-अपर-सहित एक लाख अट्ठाइस हजार देवियों की वक्तव्यता। यह है अंतःपुर की वक्तव्यता।

१४. भते! देवराज देवेन्द्र शक्र सौधर्म-कल्प में, सौधर्मावतंसक विमान में, सुधर्मा सभा में शक्र सिंहासन पर अंतःपुर के साथ दिव्य भोगार्ह भोगों को भोगते हुए विहरण करने में समर्थ हैं? चमर की भांति वक्तव्यता, इतना विशेष है—परिवार की भोक-उद्देशक (भ. ३/४) की भांति वक्तव्यता।

१५. देवराज देवेन्द्र शक्र के लोकपाल महाराज सोम के कितनी अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं—पृच्छा।

आर्य! चार अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं, जैसे—रोहिणी, मदना, चित्रा, सोमा। उनमें प्रत्येक देवी के एक-एक हजार देवी का परिवार है। शेष चमर-लोकपाल की भांति वक्तव्यता, इतना विशेष है—स्वयंप्रभ विमान, सभा सुधर्मा, सोम सिंहासन। शेष पूर्ववत्। इसी प्रकार यावत् वैश्रमण की वक्तव्यता, इतना विशेष है—विमान तृतीय शतक (३/२५०-५१) की भांति वक्तव्य है।

१६. भते! ईशान की पृच्छा।

आर्यो! आठ अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं, जैसे—कृष्णा, कृष्णरात्रि, रामा, राम-रक्षिता, वसु, वसुगुप्ता, वसुमित्रा, वसुंधरा। उनमें प्रत्येक देवी के सोलह-सोलह हजार देवी का परिवार है, शेष शक्र की भांति वक्तव्यता।

१७. भते! देवराज देवेन्द्र ईशान के लोकपाल महाराजा सोम के कितनी अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं—पृच्छा।

आर्य! चार अग्रमहिषियां प्रज्ञप्त हैं, जैसे—पृथ्वी, रात्रि, रतनी, विद्युत्। उनमें प्रत्येक देवी के एक-एक हजार देवी का परिवार है, शेष शक्र के लोकपाल की भांति वक्तव्यता। इसी प्रकार

यावत् वरुण की वक्तव्यता, इतना विशेष है—विमान चतुर्थ शतक (४/२-४) की भांति वक्तव्य है, शेष पूर्ववत् यावत् मैथुन-रूप भोग का नहीं।

९८. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

छठा उद्देशक

सुधर्मा सभा-पद

९९. भंते! देवराज देवेन्द्र शक्र की सुधर्मा सभा कहां प्रज्ञप्त है?

गौतम! जम्बूद्वीप द्वीप में मंदर पर्वत के दक्षिण भाग में इस रत्नप्रभा पृथ्वी के बहुत सम और रमणीय भूभाग से ऊर्ध्व में स्थित है, इस प्रकार रायपसेणइय (सू. १२४-१२५) की भांति वक्तव्यता यावत् पांच अवतंसक प्रज्ञप्त हैं, जैसे—अशोकावतंसक, सप्त-पर्णावतंसक, चंपकावतंसक, चूतावतंसक, मध्य में सौधर्मावतंसक है। वह सौधर्मावतंसक महाविमान साढ़े बारह लाख योजन लंबा चौड़ा है, इस प्रकार जैसे सूर्याभ की वक्तव्यता वैसे ही उसके मान और उपपात की वक्तव्यता।

शक्र का अभिषेक सूर्याभ (रायपसेणइय सूत्र १२५) की भांति वक्तव्य है।

अलंकार अर्चनिका यावत् आत्मरक्षक सूर्याभ की भांति वक्तव्य हैं। शक्र की स्थिति दो सागरोपम प्रमाण है।

शक्र-पद

१००. भंते! देवराज देवेन्द्र शक्र कितनी महान् ऋद्धि वाला यावत् कितने महान् सुख वाला है?

गौतम! वह महान् ऋद्धि वाला यावत् महान् सुख वाला है। वह बत्तीस लाख विमानावास यावत् दिव्य भोगार्ह भोगों को भोगता हुआ विहरण करता है। वह देवराज देवेन्द्र शक्र इतनी महान् ऋद्धि वाला यावत् इतने महान् सुख वाला है।

१०१. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

७-३४वां उद्देशक

अन्तरद्वीप-पद

१०२. भंते! उत्तर दिशा में एक पैर वाले मनुष्यों का एकोरूक द्वीप कहां प्रज्ञप्त है?

इस प्रकार जैसे जीवाजीवाभिगम की वक्तव्यता वैसे ही निरवशेष वक्तव्य है यावत् शुद्धदंत द्वीप की वक्तव्यता। ये अट्टाईस उद्देशक वक्तव्य हैं।

१०३. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है, यावत् भगवान् गौतम संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विहरण कर रहे हैं।

• • •

ग्यारहवां शतक

पहला उद्देशक

संग्रहणी गाथा

१. उत्पल २. शालु ३. पलाश ४. कुंभी ५. नाड़ीक ६. पद्म ७. कर्णिका ८. नलिन
९. शिव १०. लोक—ये दस तथा काल ग्यारहवां और आलभिका बारहवां उद्देशक है।

उत्पल-जीवों का उपपात-आदि-पद

१. उस काल और उस समय में राजगृह नगर यावत् पर्युपासना करते हुए गौतम ने इस प्रकार कहा—भंते! एकपत्रक उत्पल एक जीव वाला है? अनेक जीव वाला है?

गौतम! एक जीव वाला है, अनेक जीव वाला नहीं है। प्रथम पत्र के पश्चात् जो अन्य जीव-पत्र उत्पन्न होते हैं, वे एक जीव वाले नहीं हैं, अनेक जीव वाले हैं।

२. भंते! वे जीव कहां से उपपन्न होते हैं—क्या नैरयिक से उपपन्न होते हैं? तिर्यग्योनिक से उपपन्न होते हैं? मनुष्य से उपपन्न होते हैं? देव से उपपन्न होते हैं?

गौतम! वे जीव नैरयिक से उपपन्न नहीं होते, तिर्यग्योनिक से उपपन्न होते हैं, मनुष्य से उपपन्न होते हैं, देव से भी उपपन्न होते हैं। इस प्रकार वनस्पतिकायिक का उपपात अवक्रान्ति पद (पण्णवणा ६/८६) की भांति वक्तव्य है यावत् ईशान तक।

३. भंते! वे जीव एक समय में कितने उपपन्न होते हैं?

गौतम! जघन्यतः एक, दो अथवा तीन, उत्कृष्टतः संख्येय अथवा असंख्येय उपपन्न होते हैं।

४. भंते! वे जीव प्रति समय अपहृत करने पर कितने काल में अपहृत होते हैं?

गौतम! वे असंख्येय जीव प्रति समय अपहृत करने पर असंख्येय अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी काल में अपहृत होते हैं। (यह असत् कल्पना है) उनका अपहार किया नहीं जाता।

५. भंते! उन जीवों के शरीर की अवगाहना कितनी है?

गौतम! जघन्यतः अंगुल-का-असंख्यातवां-भाग, उत्कृष्टतः कुछ-अधिक-हजार-योजन।

६. भंते! वे जीव ज्ञानावरणीय-कर्म के बंधक हैं? अबंधक हैं?

गौतम! अबंधक नहीं हैं, बंधक है (एकवचन) अथवा बंधक हैं (बहुवचन)।

७. इस प्रकार यावत् आंतरायिक-कर्म की वक्तव्यता, इतना विशेष है—आयुष्य-कर्म की पृच्छा।

गौतम ! १. बंधक भी है २. अबंधक भी है ३. बंधक भी हैं ४. अबंधक भी हैं ५. अथवा बंधक है और अबंधक है ६. अथवा बंधक है और अबंधक हैं ७. अथवा बंधक हैं और अबंधक है ८. अथवा बंधक हैं और अबंधक हैं—आयुष्य-कर्म के ये आठ भंग हैं।

८. भंते ! वे जीव ज्ञानावरणीय-कर्म के वेदक हैं ? अवेदक हैं ?

गौतम ! वे अवेदक नहीं हैं, वेदक है अथवा वेदक हैं। इस प्रकार यावत् आन्तरायिक की वक्तव्यता।

९. भंते ! वे जीव सातावेदक हैं ? असातावेदक हैं !

गौतम ! सातावेदक है, अथवा असातावेदक है—आठ भंग वक्तव्य हैं।

१०. भंते ! वे जीव ज्ञानावरणीय-कर्म के उदय वाले हैं ? अनुदय वाले हैं ?

गौतम ! वे अनुदय वाले नहीं हैं, उदय वाला है अथवा उदय वाले हैं। इस प्रकार यावत् आन्तरायिक की वक्तव्यता।

११. भंते ! वे जीव ज्ञानावरणीय-कर्म के उदीरक-उदीरणा करने वाले हैं ? अनुदीरक हैं ?

गौतम ! अनुदीरक नहीं हैं, उदीरक है अथवा उदीरक हैं। इस प्रकार यावत् आन्तरायिक की वक्तव्यता, इतना विशेष है—वेदनीय और आयुष्य के आठ विकल्प वक्तव्य हैं।

१२. भंते ! वे जीव कृष्ण-लेश्या वाले हैं ? नील-लेश्या वाले हैं ? कापोत-लेश्या वाले हैं ? तैजस-लेश्या वाले हैं ?

गौतम ! १. कृष्ण-लेश्या वाला है अथवा नील-लेश्या वाला है अथवा कापोत-लेश्या वाला है अथवा तैजस-लेश्या वाला है, २. कृष्ण-लेश्या वाले हैं अथवा नील-लेश्या वाले हैं अथवा कापोत-लेश्या वाले हैं अथवा तैजस-लेश्या वाले हैं ३. अथवा कृष्ण-लेश्या वाला और नील-लेश्या वाला है। इस प्रकार ये द्वि-संयोग, त्रि-संयोग और चतुष्क-संयोग से अस्सी भंग होते हैं।

१३. भंते ! वे जीव सम्यग्-दृष्टि हैं ? मिथ्या-दृष्टि हैं ? सम्यक्-मिथ्या-दृष्टि हैं ?

गौतम ! सम्यग्-दृष्टि नहीं हैं, सम्यक्-मिथ्या-दृष्टि नहीं हैं, मिथ्या-दृष्टि है अथवा मिथ्या-दृष्टि हैं।

१४. भंते ! वे जीव ज्ञानी हैं ? अज्ञानी हैं ?

गौतम ! ज्ञानी नहीं हैं, अज्ञानी है अथवा अज्ञानी हैं।

१५. भंते ! वे जीव मनो-योग वाले हैं ? वचन-योग वाले हैं ? काय-योग वाले हैं ?

गौतम ! मनो-योग वाले नहीं हैं, वचन-योग वाले नहीं हैं, काय-योग वाला है अथवा काययोग वाले हैं।

१६. भंते ! वे जीव साकार-उपयोग-सहित हैं ? अनाकार-उपयोग-सहित हैं ?

गौतम ! साकार-उपयोग-सहित है, अनाकार-उपयोग-सहित है—इस प्रकार आठ भंग होते हैं।

१७ भंते ! उन जीवों के शरीर कितने वर्ण कितने गंध, कितने रस और कितने स्पर्श वाले प्रज्ञप्त हैं ?

गौतम! उन जीवों के शरीर पांच वर्ण, पांच रस, दो गन्ध और आठ स्पर्श वाले प्रज्ञप्त हैं। वे जीव अपने स्वरूप से वर्ण-, गंध-, रस- और स्पर्श-रहित प्रज्ञप्त हैं।

१८. भंते! वे जीव उच्छ्वास लेने वाले हैं? निःश्वास लेने वाले हैं? उच्छ्वास-निःश्वास नहीं लेने वाले हैं?

गौतम! १. उच्छ्वास लेने वाला भी है २. निःश्वास लेने वाला भी है ३. उच्छ्वास-निःश्वास नहीं लेने वाला भी है ४. उच्छ्वास लेने वाले भी हैं ५. निःश्वास लेने वाले भी हैं ६. उच्छ्वास-निःश्वास नहीं लेने वाले भी हैं १-४. अथवा उच्छ्वास लेने वाला है और निःश्वास लेने वाला है १-४. अथवा उच्छ्वास लेने वाला है और उच्छ्वास-निःश्वास नहीं लेने वाला है १-४. निःश्वास लेने वाला है और उच्छ्वास-निःश्वास नहीं लेने वाला है १-८. अथवा उच्छ्वास लेने वाला है, निःश्वास लेने वाला है और उच्छ्वास-निःश्वास नहीं लेने वाला है—ये आठ भंग हैं। इस प्रकार छब्बीस भंग होते हैं।

१९. भंते! वे जीव आहारक हैं? अनाहारक हैं?

गौतम! आहारक भी है, अनाहारक भी है—इस प्रकार आठ भंग होते हैं।

२०. भंते! वे जीव विरत हैं? अविरत हैं? विरताविरत हैं?

गौतम! विरत नहीं हैं, विरताविरत नहीं हैं, अविरत है अथवा अविरत हैं।

२१. भंते! वे जीव क्रिया-सहित हैं? क्रिया-रहित हैं?

गौतम! क्रिया-रहित नहीं हैं, क्रिया-सहित है अथवा क्रिया-सहित हैं।

२२. भंते वे जीव सप्तविध-बंधक हैं? अष्टविध-बंधक हैं?

गौतम! सप्तविध-बंधक भी है, अष्टविध-बंधक भी है—इस प्रकार आठ भंग होते हैं।

२३. भंते! वे जीव आहार-संज्ञा से उपयुक्त हैं? भय-संज्ञा से उपयुक्त हैं? मैथुन-संज्ञा से उपयुक्त हैं? परिग्रह-संज्ञा से उपयुक्त हैं?

गौतम! आहार-संज्ञा से उपयुक्त हैं—अस्सी भंग होते हैं।

२४. भंते! क्या वे जीव क्रोध-कषाय वाले हैं? मान-कषाय वाले हैं? माया-कषाय वाले हैं? लोभ-कषाय वाले हैं?

अस्सी भंग होते हैं।

२५. भंते! वे जीव क्या स्त्री-वेद वाले हैं? पुरुष-वेद वाले हैं? नपुंसक-वेद वाले हैं?

गौतम! स्त्री-वेद वाले नहीं हैं, पुरुष-वेद वाले नहीं हैं, नपुंसक-वेद वाला है अथवा नपुंसकवेद वाले हैं।

२६. भंते! क्या वे जीव स्त्री-वेद-बंधक हैं? पुरुष-वेद-बंधक हैं? नपुंसक-वेद-बंधक हैं?

गौतम! स्त्री-वेद-बंधक भी है, पुरुष-वेद-बंधक भी है, नपुंसक-वेद-बंधक भी है—छब्बीस भंग होते हैं।

२७. भंते! वे जीव संज्ञी (समनस्क) हैं? असंज्ञी (अमनस्क) हैं?

गौतम! संज्ञी नहीं हैं, असंज्ञी है अथवा असंज्ञी हैं।

२८. भंते! क्या वे जीव इन्द्रिय-सहित हैं? इन्द्रिय-रहित हैं?

गौतम! इन्द्रिय-रहित नहीं है। इन्द्रिय-सहित है अथवा इन्द्रिय-सहित हैं।

२९. भंते! वह उत्पल-जीव उत्पल-जीव के रूप में कितने काल तक रहता है?

गौतम! जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टतः असंख्येय काल।

३०. भंते! वह उत्पल-जीव पृथ्वीकायिक-जीव के रूप में उत्पन्न होता है, पुनः उत्पल-जीव के रूप में उत्पन्न होकर कितने काल तक रहता है? कितने काल तक गति-आगति करता है?

गौतम! भव की अपेक्षा जघन्यतः दो भव-ग्रहण (जन्म) करता है, उत्कृष्टतः असंख्येय भव-ग्रहण करता है। काल की अपेक्षा जघन्यतः दो अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टतः असंख्येय काल। इतने काल तक रहता है, इतने काल तक गति-आगति करता है।

३१. भंते! वह उत्पल-जीव अपृथ्वीकायिक जीव के रूप में उत्पन्न होता है, पुनः उत्पल-जीव के रूप में उत्पन्न होकर कितने काल तक रहता है? कितने काल तक गति-आगति करता है?

पूर्ववत् वक्तव्यता। इस प्रकार जैसे पृथ्वीकायिक-जीव की वक्तव्यता, वैसे यावत् वायुकायिक-जीव की वक्तव्यता।

३२. भंते! वह उत्पल-जीव शेष वनस्पतिकायिक-जीव के रूप में उत्पन्न होता है, वह पुनः उत्पल-जीव के रूप में उत्पन्न होकर कितने काल तक रहता है? कितने काल तक गति-आगति करता है?

गौतम! भव की अपेक्षा जघन्यतः दो भव-ग्रहण (जन्म) करता है, उत्कृष्टतः अनंत भव-ग्रहण करता है काल की अपेक्षा जघन्यतः दो अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टतः अनंत काल—वनस्पति काल। इतने काल तक रहता है, इतने काल तक गति-आगति करता है।

३३. भंते! वह उत्पल-जीव द्वीन्द्रिय-जीव के रूप में उत्पन्न होता है, पुनः उत्पल-जीव के रूप में उत्पन्न होकर कितने काल तक रहता है? कितने काल तक गति-आगति करता है?

गौतम! भव की अपेक्षा जघन्यतः दो भव-ग्रहण करता है, उत्कृष्टतः संख्येय भव-ग्रहण करता है। काल की अपेक्षा जघन्यतः दो अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टतः संख्येय काल। इतने काल तक रहता है, इतने काल तक गति-आगति करता है। इसी प्रकार त्रीन्द्रिय-जीव की वक्तव्यता। इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय-जीव की वक्तव्यता।

३४. भंते! वह उत्पल-जीव पंचेन्द्रिय-तिर्यग्योनिक-जीव के रूप में उत्पन्न होकर कितने काल तक रहता है—पृच्छा।

गौतम! भव की अपेक्षा जघन्यतः दो भव-ग्रहण करता है, उत्कृष्टतः आठ भव-ग्रहण करता है। काल की अपेक्षा जघन्यतः दो अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टतः पृथक्त्व-पूर्वकोटि। इतने काल तक रहता है, इतने काल तक गति-आगति करता है। इसी प्रकार मनुष्य के साथ उत्पल-जीव की वक्तव्यता, यावत् इतने काल तक गति-आगति करता है?

३५. भंते! वे जीव क्या आहार करते हैं?

गौतम! द्रव्य की अपेक्षा अनन्त-प्रदेशी द्रव्य, क्षेत्र की अपेक्षा असंख्येय-प्रदेशावगाढ, काल की अपेक्षा किसी भी स्थिति वाले और भाव की अपेक्षा वर्ण-, गन्ध-, रस- तथा स्पर्श-युक्त। इस प्रकार जैसे आहार-उद्देशक (पण्णवणा २८/३६) में वनस्पतिकायिक-जीवों के आहार की वक्तव्यता, वैसे ही यावत् सर्व-आत्म-प्रदेशों से आहार करता है। इतना विशेष है—नियमतः छहों दिशाओं से आहार करता है। शेष पण्णवणा की भांति वक्तव्यता है।

३६. भंते! उन जीवों की स्थिति कितने काल की प्रज्ञप्त है?

गौतम! जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कृष्टतः दस हजार वर्ष।

३७. भंते! उन जीवों के कितने समुद्घात प्रज्ञप्त हैं?

गौतम! तीन समुद्घात प्रज्ञप्त हैं, जैसे—वेदना-समुद्घात, कषाय-समुद्घात, मारणान्तिक-समुद्घात।

३८. भंते! वे जीव मारणान्तिक-समुद्घात से समवहत होकर मरते हैं? असमवहत रहकर मरते हैं?

गौतम! समवहत होकर भी मरते हैं, असमवहत रहकर भी मरते हैं।

३९. भंते! वे अनन्तर उद्वर्तन कर कहां जाते हैं? कहां उत्पन्न होते हैं—क्या नैरयिक में उपपन्न होते हैं? तिर्यग्योनिक में उपपन्न होते हैं? इस प्रकार जैसे अवक्रान्ति-पद (पण्णवणा ६/१०४) में वनस्पतिकायिक-जीवों की उद्वर्तना वैसे ही उत्पल-जीवों की वक्तव्यता।

४०. भंते! सर्व प्राण, सर्व भूत, सर्व जीव, सर्व सत्त्व, उत्पल-मूल के रूप में, उत्पल-कंद के रूप में, उत्पल-नाल के रूप में, उत्पल-पत्र के रूप में, उत्पल-केसर के रूप में, उत्पल-कर्णिका के रूप में और उत्पल-स्तबक (शाखा का वह भाग, जहां से पत्र निकलते हैं) के रूप में पहले उपपन्न हुए हैं?

हां गौतम! अनेक बार अथवा अनन्त बार।

४१. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

दूसरा उद्देशक

शालु आदि जीवों का उपपात-आदि-पद

४२. भंते! एकपत्रक-शालु क्या एक जीव वाला है? अनेक जीव वाला है?

गौतम! एक जीव वाला है। इस प्रकार उत्पल-उद्देशक की वक्तव्यता सम्पूर्ण रूप से वक्तव्य है यावत् अनन्त बार, इतना विशेष है—शरीर की अवगाहना जघन्यतः अंगुल-का-असंख्यातवां-भाग, उत्कृष्टतः पृथक्त्व-धनुष, शेष पूर्ववत्।

४३. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

तीसरा उद्देशक

४४. भंते! एकपत्रक पलाश क्या एक जीव वाला है? अनेक जीव वाला है?

इस प्रकार उत्पल-उद्देशक की वक्तव्यता सम्पूर्ण रूप से वक्तव्य है, इतना विशेष है—शरीर की अवगाहना जघन्यतः अंगुल-का-असंख्यातवां-भाग, उत्कृष्टतः पृथक्त्व-गव्यूत। देव गति से उपपन्न नहीं होते हैं।

४५. भंते! वे जीव कृष्ण-लेश्या वाले हैं? नील-लेश्या वाले हैं? कापोत-लेश्या वाले हैं?

गौतम! कृष्ण-लेश्या वाले भी हैं, नील-लेश्या वाले भी हैं, कापोत-लेश्या वाले भी हैं—छब्बीस भंग होते हैं, शेष पूर्ववत्।

४६. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

चौथा उद्देशक

४७. भंते! एकपत्रक कुंभी क्या एक जीव वाला है? अनेक जीव वाला है?

इस प्रकार जैसे पलाश-उद्देशक की भांति वक्तव्यता, इतना विशेष है—स्थिति जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्टतः पृथक्त्व-वर्ष, शेष पूर्ववत्।

४८. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

पांचवां उद्देशक

४९. भंते! एकपत्रक नाड़ीक क्या एक जीव वाला है? अनेक जीव वाला है?

इस प्रकार कुंभी-उद्देशक की वक्तव्यता सम्पूर्ण रूप से कथनीय है।

५०. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

छठा उद्देशक

५१. भंते! एकपत्रक-पद्म क्या एक जीव वाला है? अनेक जीव वाला है?

इस प्रकार उत्पल-उद्देशक की वक्तव्यता सम्पूर्ण रूप से कथनीय है।

५२. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

सातवां उद्देशक

५३. भंते! एकपत्रक-कर्णिका क्या एक जीव वाली है? अनेक जीव वाली है?

इस प्रकार पूर्ववत् सम्पूर्ण रूप से वक्तव्य है।

५४. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

आठवां उद्देशक

५५. भंते! एकपत्रक-नलिन क्या एक जीव वाला है? अनेक जीव वाला है?

इस प्रकार पूर्ववत् सम्पूर्ण रूप से वक्तव्य है यावत् अनन्त बार उपपन्न हुए हैं।

५६. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

नौवां उद्देशक

शिवराजर्षि-पद

५७. उस काल और उस समय में हस्तिनापुर नाम का नगर था—वर्णक। उस हस्तिनापुर नगर के बाहर उत्तर-पूर्व-दिशि-भाग में सहस्राग्रवन नाम का उद्यान था—सर्व ऋतु में पुष्प, फल से समृद्ध, रम्य, नन्दनवन के समान प्रकाशक, सुखद शीतल छाया वाला, मनोरम, स्वादिष्ट-फल-युक्त, कंठकरहित, द्रष्टा के चित्त को प्रसन्न करने वाला, दर्शनीय, कमनीय और रमणीय।

५८. उस हस्तिनापुर नगर में शिव नाम का राजा था—वह महान हिमालय, महान मलय, मेरु और महेन्द्र की भांति—वर्णक। उस शिवराजा के धारिणी नाम की देवी थी—सुकुमाल हाथ पैर वाली—वर्णक। उस शिवराजा का पुत्र और धारिणी का आत्मज शिवभद्र नाम का कुमार था—सुकुमार हाथ पैर वाला, सूर्यकांत (रायपसेणइयं, ६७३-६७४) की भांति वक्तव्यता यावत् राज्य, राष्ट्र, बल, वाहन, कोश, कोष्ठागार, पुर और अंतःपुर की स्वयं प्रत्युपेक्षणा (निरीक्षण) करता हुआ, प्रत्युपेक्षणा करता हुआ विहरण कर रहा था।

५९. उस शिव राजा के एक बार किसी मध्य-रात्रि में राज्य-धुरा का चिन्तन करते हुए इस प्रकार का आध्यात्मिक, स्मृत्यात्मक, अभिलाषात्मक, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—इस समय मेरे पूर्वकृत, पुरातन, सु-आचरित, सु-पराक्रांत, शुभ और क्रांत, शुभ कल्याणकारी कर्मों का कल्याणदायी फल मिल रहा है, जिससे मैं चांदी, सोना, धन, धान्य, पुत्र, पशु तथा राज्य से बढ़ रहा हूं। इसी प्रकार राष्ट्र, बल, वाहन, कोष, कोष्ठागार, पुर और अंतःपुर से बढ़ रहा हूं। विपुल वैभव धन, सोना, रत्न, मणि मोती, शंख, शिला, प्रवाल, लालरत्न (पद्म-राग मणि) और श्रेष्ठसार—इन वैभवशाली द्रव्यों से अतीव-अतीव वृद्धि कर रहा हूं, तो क्या मैं पूर्वकृत पुरातन सु-आचरित, सु-पराक्रान्त, शुभ और कल्याणकारी कर्मों का केवल क्षय करता हुआ विहरण कर रहा हूं? इसलिए जब तक मैं चांदी से वृद्धि कर रहा हूं यावत् इन वैभवशाली द्रव्यों से अतीव-अतीव वृद्धि कर रहा हूं और जब तक सामंत राजा वश में रहते हैं तब तक मेरे लिए श्रेय है—दूसरे दिन उषाकाल में पौ फटने पर यावत् सहस्र-रश्मि दिनकर सूर्य के उदित और तेज से देदीप्यमान होने पर बहुत सारे तवा, लोह-कड़ाह, कडछी, ताम्रपात्र आदि तापस-भंड बनवा कर, कुमार शिवभद्र को राज्य में स्थापित कर, उन बहुत तवा, लोह-कड़ाह, कडछी, ताम्रपात्र आदि तापस-भंड को लेकर जो इस गंगा के किनारे वानप्रस्थ तापस रहते हैं (जैसे—अग्निहोत्रिक, वस्त्रधारी, भूमि पर सोने वाले जैसे उववाई में वक्तव्यता है यावत् पंचाम्नि तप के द्वारा अंगारों से पक्व, लोह की कड़ाही में पक्व, काष्ठ से

पक्व, श्याम वर्ण की भांति अपने आपको बनाते हुए विहार कर रहे हैं।)

उनमें जो दिशाप्रोक्षिक (दिशा का प्रक्षालन करने वाले) तापस हैं उनके पास मुंड होकर दिशाप्रोक्षिक तापस के रूप में प्रव्रजित होकर मैं इस प्रकार का अभिग्रह स्वीकार करूंगा—मैं जीवन भर निरन्तर बेले-बेले (दो दिन के उपवास) द्वारा दिशाचक्रवाल-तप की साधना करूंगा। मैं आतापन-भूमि में दोनों भुजाएं ऊपर उठाकर सूर्य के सामने आतापना लेता हुआ विहार करूंगा। ऐसी संप्रेक्षा करता है। संप्रेक्षा कर दूसरे दिन उषाकाल में पौ फटने पर यावत् सहस्रशमि दिनकर सूर्य के उदित और तेज से देदीप्यमान होने पर बहुत सारे तवा, कडाह, कड़छी, ताम्र-पात्र आदि तापस-भंड बनवाकर, कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा—देवानुप्रिय! हस्तिनापुर नगर के भीतर और बाहर पानी का छिड़काव करो, झाड़-बुहार जमीन की सफाई करो, गोबर की लिपाई करो यावत् प्रवर सुरभि वाले गंध-चूर्णों से सुगंधित गंधवर्ती तुल्य करो, कराओ। ऐसा कर और करवा कर इस आज्ञा को मुझे प्रत्यर्पित करो।

६०. उस शिव राजा ने दूसरी बार कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा—देवानुप्रिय! कुमार शिवभद्र के लिए शीघ्र ही महान् अर्थ वाला, महान् मूल्य वाला, महान् अर्हता वाला विपुल राज्याभिषेक उपस्थित करो। उन कौटुम्बिक पुरुषों ने वैसा ही राज्याभिषेक उपस्थित किया।

६१. अनेक गणनायक, दण्डनायक, राजे, युवराज, कोटवाल, मडम्ब-पति, कुटुम्ब-पति, इभ्य, सेठ, सेनापति, सार्थवाह, दूत, संधिपाल के साथ संपरिवृत होकर उस शिवराजा ने कुमार शिवभद्र को पूर्वाभिमुख कर, प्रवर सिंहासन पर बिठाया, बिठाकर एक सौ आठ स्वर्ण-कलशों यावत् एक सौ आठ भौमेय (मिट्टी के) कलशों के द्वारा संपूर्ण ऋद्धि यावत् दुन्दुभि के निर्घोष से नादित शब्द के द्वारा महान् राज्याभिषेक से अभिषिक्त किया। अभिषिक्त कर रोएंदार सुकुमार सुरभि गंध-वस्त्र से गात्र को पौंछा, पौंछ कर सरस गोशीर्ष चन्दन का गात्र पर अनुलेप किया, इस प्रकार जैसे जमालि के अलंकारों की वक्तव्यता उसी प्रकार यावत् कल्पवृक्ष की भांति अलंकृत-विभूषित कर दिया। दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली दसनखात्मक अंजलि को सिर के सम्मुख धुमाकर कुमार शिवभद्र की 'जय हो विजय हो' के द्वारा वर्धापित किया। वर्धापित कर उन इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ, मनोहर, मनोभिराम, हृदय का स्पर्श करने वाली वाणी और जय-विजय-सूचक मंगल शब्दों के द्वारा अनवरत अभिनन्दन और अभिस्तवन करते हुए इस प्रकार बोले—हे नंद! समृद्धपुरुष! तुम्हारी जय हो, जय हो।

हे भद्रपुरुष! तुम्हारी जय हो, जय हो। भद्र हो। अजित को जीतो, जित की पालना करो, जीते हुए लोगों के मध्य निवास करो। देवों में इन्द्र, असुरों में चमरेन्द्र, नागों में धरणेन्द्र, तारागण में चन्द्र और मनुष्यों में भरत की भांति अनेक वर्षों तक, सैकड़ों, हजारों लाखों वर्षों तक परमपवित्र, हृष्ट-तुष्ट होकर परम आयुष्य का पालन करो। इष्टजनों से संपरिवृत होकर हस्तिनापुर नगर के अन्य अनेक ग्राम, आकर, नगर, खेट, कर्बट, द्रोणमुख, मण्डव, पत्तन, आश्रम, निगम, संभाग और सन्निवेश का आधिपत्य, पौरपत्य, भर्तृत्व, महत्तरत्व,

आज्ञा, ऐश्वर्य, सेनापतित्व करते हुए, उनका पालन करते हुए आहत नाट्यों, गीतों तथा कुशल वादक के द्वारा बजाए गए वादित, तंत्री, तल, ताल, त्रुटित, धन और मृदंग की महान ध्वनि से युक्त विपुल भोगार्ह भोगों को भोगते हुए विहार करो, इस प्रकार जय-जय शब्द का प्रयोग किया।

६२. वह कुमार शिवभद्र राजा हो गया—महान हिमालय, महान मलय, मेरु और महेन्द्र की भांति—वर्णक यावत् राज्य का प्रशासन करता हुआ विहार करने लगा।

६३. उस शिवराजा ने किसी समय शोभन तिथि, करण, दिवस, मुहूर्त, और नक्षत्र में विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य पकवाया। पकवाने के बाद मित्र, ज्ञाति, कुटुम्बी, स्वजन संबंधी, परिजन, राजा और क्षत्रियों को आमंत्रित किया। आमंत्रित करने के पश्चात् स्नान, बलिकर्म (पूजा) कौतुक (तिलक) आदि इष्ट नमस्कार-रूप मंगल और प्रायश्चित्त करके शुद्ध-प्रवेश्य (सभा में प्रवेशोचित) प्रवर मांगलिक वस्त्र पहनकर, अल्पभार और बहुमूल्य वाले आभरणों से शरीर को अलंकृत कर भोजन की वेला में भोजन-मण्डप में सुखासन की मुद्रा में बैठा हुआ वह उन मित्र, ज्ञाति, कुटुम्बी, स्वजन, संबंधी, परिजन, राजा और क्षत्रियों के साथ उस विपुल भोजन, पेय, खाद्य और स्वाद्य का आस्वाद लेता हुआ विशिष्ट स्वाद लेता हुआ, बांटता हुआ और परिभोग करता हुआ रह रहा था।

उसने भोजन कर आचमन किया, आचमन कर वह स्वच्छ और परम शुचीभूत बैठने के स्थान पर आया। वहां उसने उन मित्र, ज्ञातियों, कुटुम्बीजनों, स्वजनों, संबंधियों और परिजनों को विपुल, भोजन, पेय, खाद्य, स्वाद्य पदार्थों से तथा वस्त्र, सुगंधित द्रव्य, माला और अलंकारों से सत्कृत-सम्मानित किया। सत्कृत-सम्मानित कर उन मित्रों, ज्ञातिजनों, कुटुम्बियों, स्वजनों, संबंधियों, परिजनों, राजाओं, क्षत्रियों और राजा शिवभद्र की अनुमति ली। अनुमति लेकर वह बहुत सारे तवा, लोहकड़ा, कड़छी, ताम्र-पात्र आदि तापस-भंड लेकर जो गंगा किनारे वानप्रस्थ तापस रहते थे, पूर्ववत् यावत् उनके पास मुंड होकर दिशाप्रोक्षिक तापस के रूप में प्रव्रजित हुआ। प्रव्रजित होकर उसने इस आकार वाला यह अभिग्रह स्वीकार किया—मैं जीवन भर निरन्तर बेले-बेले (दो-दो दिन के उपवास) द्वारा दिशा चक्रवाल-तपःकर्म की साधना करूंगा, मैं आतापन-भूमि में दोनों भुजाएं ऊपर उठाकर सूर्य के सामने आतापन लेता हुआ विहार करूंगा—इस आकार वाला अभिग्रह अभिगृहीत कर प्रथम बेले का तप स्वीकार कर विहार करने लगा।

६४. शिव राजर्षि प्रथम बेले के पारणे में आतापन-भूमि से नीचे उतरा, उतर कर वल्कल-वस्त्र पहन कर जहां अपना उटज (पर्णशाला) था, वहां आया। वहां आकर वंशमय पात्र और कावड़ को ग्रहण किया। ग्रहण कर पूर्व दिशा में जल छिड़का। जल छिड़क कर कहा—पूर्व दिशा के लोकपाल महाराज सोम प्रस्थान के लिए प्रस्थित शिवराजर्षि की अभिरक्षा करें, शिवराजर्षि की अभिरक्षा करें। उस दिशा में जो कंद, मूल, त्वचा, पत्र, पुष्प, फल, बीज, हरित हैं, उनकी अनुज्ञा दें—यह कहकर पूर्व दिशा में गया। जाकर जो वहां कंद यावत् हरित थी उसे ग्रहण किया, ग्रहण कर वंशमय-पात्र भरा, भर कर दर्भ, कुश, समिधा (ईधन) और पत्र-चूर्ण ग्रहण किया। ग्रहण कर जहां अपना उटज था वहां आया। वहां आकर वंशमय पात्र

और कावड़ को रखा। रख कर वेदी का प्रमार्जन किया, प्रमार्जन कर उपलेपन और सम्मार्जन किया। सम्मार्जन कर हाथ में दर्भ कलश लेकर जहां गंगा नदी थी, वहां गया। वहां जाकर महानदी गंगा में अवगाहन किया। अवगाहन कर जल में मज्जन किया, देह-शुद्धि की। देह-शुद्धि कर जल-क्रीड़ा की, जल-क्रीड़ा कर जलाभिषेक किया, जलाभिषेक कर, जल का स्पर्श कर वह स्वच्छ और परम शुचीभूत (साफ-सुथरा) हो गया। देव-पितरों का कृतकार्य जलांजलि अर्पित कर, दर्भ-कलश हाथ में लेकर महानदी गंगा से नीचे उतरा, उतरकर जहां अपना उटज था वहां आया, वहां आकर दर्भ, कुश और बालुका से वेदी की रचना की, रचनाकर शरकण्डों से अरणि का मंथन किया, मंथन कर अग्नि को उत्पन्न किया, उत्पन्न कर अग्नि को सुलगाया, सुलगा कर उसमें समिधा-काष्ठ डाला, डाल कर अग्नि को प्रदीप्त किया, प्रदीप्त कर अग्नि के दक्षिण पार्श्व में सात अंगों को स्थापित किया, जैसे—

अस्थि, वल्कल, ज्योति-स्थान, शय्या, भाण्ड, कमण्डलु, दण्ड-दारु और स्व-शरीर।

मधु, घृत और चावल का अग्नि में हवन किया, हवन कर चरु-बलि-पात्र में बलि-योग्य द्रव्य को पकाया, पका कर वैश्रमण देव की पूजा की, अतिथियों-आगन्तुकों का पूजन किया। पूजन करने के पश्चात् स्वयं आहार किया।

६५. वह शिव राजर्षि दूसरे बेले का तप स्वीकार कर विहार करने लगा।

६६. वह शिवराजर्षि दूसरे बेले के पारणे में आतापन-भूमि से नीचे उतरा, उतरकर वल्कल-वस्त्र पहनकर जहां अपना उटज था, वहां आया। वहां आकर वंशमय पात्र और कावड़ को ग्रहण किया, ग्रहण कर दक्षिण दिशा में जल को छिड़का। जल छिड़ककर कहा—दक्षिण दिशा के लोकपाल महाराज यम प्रस्थान के लिए प्रस्थित शिवराजर्षि की अभिरक्षा करें, शेष पूर्ववत् यावत् पूजन करने के पश्चात् स्वयं आहार किया।

६७. वह शिव राजर्षि तीसरे बेले का तप स्वीकार कर विहार करने लगा।

६८. वह शिव राजर्षि तीसरे बेले के पारणे में आतापन-भूमि से नीचे उतरा, उतरकर वल्कल वस्त्र पहनकर जहां अपना उटज था, वहां आया, वहां आकर वंशमय पात्र और कावड़ को ग्रहण किया, ग्रहण कर पश्चिम दिशा में जल को छिड़का, जल छिड़क कर कहा—पश्चिम दिशा के लोकपाल महाराज वरुण प्रस्थान के लिए प्रस्थित शिवराजर्षि की अभिरक्षा करें, शेष पूर्ववत् यावत् पूजन करने के पश्चात् स्वयं आहार किया।

६९. वह शिव राजर्षि चतुर्थ बेले का तप स्वीकार कर विहार करने लगा।

७०. वह शिव राजर्षि चतुर्थ बेले के पारणे में आतापन-भूमि से नीचे उतरा, उतरकर वल्कल वस्त्र पहनकर जहां अपना उटज था वहां आया, वहां आकर वंशमय पात्र और कावड़ को ग्रहण किया, ग्रहण कर उत्तर दिशा में जल को छिड़का, जल छिड़क कर कहा—उत्तर दिशा के लोकपाल महाराज वैश्रमण प्रस्थान के लिए प्रस्थित शिव राजर्षि की अभिरक्षा करें शेष पूर्ववत् यावत् पूजन करने के पश्चात् स्वयं आहार किया।

७१. निरन्तर बेले-बेले (दो-दो दिन का उपवास) से दिशा-चक्रवाल तप के द्वारा आतापन-भूमि में दोनों भुजाएं ऊपर उठाकर सूर्य के सामने आतापना लेते हुए प्रकृति की भद्रता,

प्रकृति की उपशांतता, प्रकृति में क्राध, मान, माया और लोभ की प्रतनुता, मृदु-मार्दव-संपन्नता, आत्म-लीनता और विनीतता के द्वारा किसी समय तदावरणीय कर्म का क्षयोपशम कर ईहा, अपोह, मार्गणा, गवेषणा करते हुए उस शिवराजर्षि के विभंग नामक ज्ञान समुत्पन्न हुआ। वह उस समुत्पन्न विभंग ज्ञान के द्वारा उस लोक में सात द्वीप और सात समुद्र को देखने लगा। उससे आगे न जानता है और न देखता है।

७२. उस शिव राजर्षि के इस आकार वाला आध्यात्मिक, स्मृत्यात्मक, अभिलाषात्मक, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—मुझे अतिशायी ज्ञान-दर्शन उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार इस लोक में सात द्वीप और सात समुद्र हैं। इससे आगे द्वीप और समुद्र व्युच्छिन्न हैं—इस प्रकार संप्रेक्षा की, संप्रेक्षा कर आतापन-भूमि से नीचे उतरा, उतर कर वल्कल-वस्त्र पहनकर जहां अपना उटज था, वहां आया, वहां आकर बहुत सारे तवा, लोह-कड़ाह, कड़छी, ताम्र-पात्र, तापस-भाण्ड, वंश-मय पात्र और कावड़ को ग्रहण किया, ग्रहण कर जहां हस्तिनापुर नगर था, जहां तापस रहते थे वहां आया, वहां आकर भांड को स्थापित किया, स्थापित कर हस्तिनापुर नगर के शृंगाटकों, तिराहों, चौराहों, चौहटों, चार द्वार वाले स्थानों, राजमार्गों और मार्गों पर बहुजनों के सामने इस प्रकार आख्यान यावत् प्ररूपण करता है—देवानुप्रिय! मुझे अतिशायी ज्ञान-दर्शन समुत्पन्न हुआ है, इस प्रकार लोक में सात द्वीप और सात समुद्र हैं, उससे आगे द्वीप और समुद्र व्युच्छिन्न हैं।

७३. उस शिव राजर्षि के पास इस अर्थ को सुनकर अवधारण कर हस्तिनापुर नगर के शृंगाटकों, तिराहों, चौराहों, चौहटों, चार द्वार वाले स्थानों, राजमार्गों और मार्गों पर बहुजन परस्पर इस प्रकार आख्यान यावत् प्ररूपणा करते हैं—देवानुप्रिय! शिव राजर्षि इस प्रकार का आख्यान यावत् प्ररूपणा करता है—देवानुप्रिय! मुझे अतिशायी ज्ञान-दर्शन समुत्पन्न हुआ है। इस प्रकार इस लोक में सात द्वीप और सात समुद्र हैं। उससे आगे द्वीप और समुद्र व्युच्छिन्न हैं, यह कैसे है?

७४. उस काल और उस समय में भगवान महावीर आए। परिषद् ने नगर से निर्गमन किया। भगवान ने धर्म कहा। परिषद् वापस नगर में चली गई।

७५. उस काल और उस समय में भगवान महावीर के ज्येष्ठ अंतेवासी इंद्रभूति नामक अनगार जैसे द्वितीय शतक में निर्ग्रंथ उद्देशक (२/१०६-१०९) की वक्तव्यता यावत् सामुदानिक भिक्षा के लिए घूमते हुए अनेक व्यक्तियों से ये शब्द सुने, बहुजन परस्पर इस प्रकार आख्यान यावत् इस प्रकार प्ररूपणा करते हैं—देवानुप्रिय! शिव राजर्षि इस प्रकार आख्यान यावत् इस प्रकार प्ररूपणा करते हैं—देवानुप्रिय! मुझे अतिशायी ज्ञान-दर्शन समुत्पन्न हुआ है। इस प्रकार इस लोक में सात द्वीप और सात समुद्र हैं। उससे आगे द्वीप और समुद्र व्युच्छिन्न हैं। यह कैसे है?

७६. बहुजनों के पास इस अर्थ को सुनकर, अवधारण कर भगवान गौतम के मन में श्रद्धा उत्पन्न हुई यावत् भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर इस प्रकार बोले—भते! मैंने आपकी अनुज्ञा पाकर हस्तिनापुर नगर के उच्च, नीच और मध्यम कुलों में सामुदानिक भिक्षा के लिए घूमते हुए अनेक व्यक्तियों से ये शब्द सुने—देवानुप्रिय! शिव राजर्षि इस प्रकार आख्यान यावत् प्ररूपणा करते हैं—देवानुप्रिय! मुझे अतिशायी ज्ञान-दर्शन

उत्पन्न हुआ है, इस प्रकार इस लोक में सात द्वीप और सात समुद्र हैं, उससे आगे द्वीप और समुद्र व्युच्छिन्न हैं।

७७. भंते! वह इस प्रकार कैसे है?

अथि गौतम! श्रमण भगवान महावीर ने भगवान गौतम से इस प्रकार कहा— गौतम! निरन्तर बेल-बेल (दो-दो दिन के उपवास) से दिशा-चक्रवाल तपःकर्म के द्वारा, आतापन-भूमि में दोनों भुजाएं ऊपर उठा कर सूर्य के सामने आतापना लेते हुए प्रकृति की भद्रता, प्रकृति की उपशान्तता, प्रकृति में क्रोध, मान, माया और लोभ की प्रतनुता, मृदु-मार्दव संपन्नता, आत्म-लीनता और विनीतता के द्वारा किसी समय तदावरणीय कर्म का क्षयोपशम कर ईहा, अपोह, मार्गणा, गवेषणा करते हुए उस शिव राजर्षि के विभंग नामक ज्ञान समुत्पन्न हुआ। पूर्ववत् सर्व वक्तव्य है। यावत् भण्ड को स्थापित किया, स्थापित कर हस्तिनापुर नगर के शृंगाटकों, तिराहों, चौराहों, चौहटों, चार द्वार वाले स्थानों, राजमार्गों और मार्गों पर अनेक व्यक्तियों के सामने इस प्रकार आख्यान यावत् प्ररूपणा करता है—देवानुप्रिय! मुझे अतिशायी ज्ञान-दर्शन समुत्पन्न हुआ है, इस प्रकार इस लोक में सात द्वीप और सात समुद्र हैं, उससे आगे द्वीप और समुद्र व्युच्छिन्न हैं।

उस शिव राजर्षि के पास यह अर्थ सुनकर अवधारण कर हस्तिनापुर नगर के शृंगाटकों, तिराहों, चौराहों, चौहटों, चार द्वार वाले स्थानों, राजमार्गों और मार्गों पर अनेक व्यक्ति इस प्रकार आख्यान यावत् प्ररूपणा करते हैं—देवानुप्रियो! शिव राजर्षि इस प्रकार आख्यान यावत् प्ररूपणा करते हैं—देवानुप्रिय! मुझे अतिशायी ज्ञान-दर्शन समुत्पन्न हुआ है, इस प्रकार इस लोक में सात द्वीप और सात समुद्र हैं, उससे आगे द्वीप और समुद्र व्युच्छिन्न हैं—वह मिथ्या है। गौतम! मैं इस प्रकार आख्यान यावत् प्ररूपणा करता हूँ—इस प्रकार जम्बूद्वीप आदि द्वीप, लवण आदि समुद्र संस्थान से एक विधि-विधान-गोलवृत्त वाले हैं, विस्तार से अनेक विधिविधान-क्रमशः द्विगुण-द्विगुण विस्तार वाले हैं। इस प्रकार जैसे जीवाजीवाभिगम (३/२५९) की वक्तव्यता है, यावत् आयुष्मन् श्रमण! इस तिर्यक्-लोक में स्वयंभूरमण तक असंख्येय द्वीप-समुद्र प्रज्ञप्त हैं।

७८. भंते! जम्बूद्वीप द्वीप में द्रव्य-वर्ण-सहित भी हैं? वर्ण-रहित भी हैं? गंध-सहित भी हैं? गंध-रहित भी हैं? रस-सहित भी हैं? रस-रहित भी हैं? स्पर्श-सहित भी हैं? स्पर्श-रहित भी हैं? अन्योन्य-बद्ध, अन्योन्य-स्पृष्ट, अन्योन्य-बद्धस्पृष्ट और अन्योन्य-एकीभूत बने हुए हैं?

हां, है।

७९. भंते! लवण समुद्र में द्रव्य-वर्ण-सहित भी हैं? वर्ण-रहित भी हैं? गंध-सहित भी हैं? गंध-रहित भी हैं? रस-सहित भी हैं? रस-रहित भी हैं? स्पर्श-सहित भी हैं? स्पर्श-रहित भी हैं? अन्योन्य-बद्ध, अन्योन्य-स्पृष्ट, अन्योन्य-बद्धस्पृष्ट और अन्योन्य-एकीभूत बने हुए हैं?

हां, है।

८०. भंते! धातकी खण्ड द्वीप में द्रव्य-वर्ण-सहित भी हैं? वर्ण-रहित भी हैं? गन्ध-सहित भी हैं? गन्ध-रहित भी हैं? रस-सहित भी हैं? रस-रहित भी हैं? स्पर्श-सहित भी हैं? स्पर्श-रहित भी हैं? अन्योन्य-बद्ध, अन्योन्य-स्पृष्ट, अन्योन्य-बद्धस्पृष्ट और अन्योन्य-एकीभूत बने हुए हैं?

हां हैं। इस प्रकार यावत्—

८१. भंते! स्वयंभूरमण समुद्र में द्रव्य वर्ण-सहित भी हैं? वर्ण-रहित भी हैं? गन्ध-सहित भी हैं? गन्ध-रहित भी हैं? रस-सहित भी हैं? रस-रहित भी हैं? स्पर्श-सहित भी हैं? स्पर्श-रहित भी हैं? अन्योन्य-बद्ध, अन्योन्य-स्पृष्ट अन्योन्य-बद्धस्पृष्ट और अन्योन्य-एकीभूत बने हुए हैं?

हां हैं।

८२. वह विशालतम ऐश्वर्यशाली परिषद् श्रमण भगवान् महावीर के पास इस अर्थ को सुनकर अवधारण कर हृष्ट-तुष्ट हो गई। उसने श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार किया। वंदन-नमस्कार कर जिस दिशा से आई थी, उसी दिशा में लौट गई।

८३. हस्तिनापुर नगर के शृंगाटकों, तिराहों, चौराहों, चौहटों, चार द्वार वाले स्थानों, राजमार्गों और मार्गों पर बहुजन परस्पर इस प्रकार आख्यान यावत् प्ररूपणा करते हैं—देवानुप्रिय! शिव राजर्षि जो यह आख्यान यावत् प्ररूपणा करते हैं—देवानुप्रिय! मुझे अतिशायी ज्ञान-दर्शन समुत्पन्न हुआ है, इस प्रकार इस लोक में सात द्वीप और सात समुद्र हैं, उससे आगे द्वीप और समुद्र व्युच्छिन्न हैं—यह अर्थ संगत नहीं है। श्रमण भगवान् महावीर इस प्रकार आख्यान यावत् प्ररूपणा करते हैं—इस शिव राजर्षि के बेले-बेले तप द्वारा शेष पूर्ववत् यावत् भाण्ड को स्थापित किया, स्थापित कर हस्तिनापुर नगर के शृंगाटकों, तिराहों, चौराहों, चौहटों, चार द्वार वाले स्थानों, राज-मार्गों और मार्गों पर बहुजनों के सामने इस प्रकार आख्यान यावत् प्ररूपणा करते हैं—देवानुप्रिय! मुझे अतिशायी ज्ञान-दर्शन समुत्पन्न हुआ है। इस प्रकार इस लोक में सात द्वीप और सात समुद्र हैं उससे आगे द्वीप और समुद्र व्युच्छिन्न हैं। उस शिवराजर्षि के पास इस अर्थ को सुनकर, अवधारण कर यावत् उससे आगे द्वीप और समुद्र व्युच्छिन्न हैं—वह मिथ्या है। श्रमण भगवान् महावीर इस प्रकार आख्यान करते हैं—आयुष्मन् श्रमण! इस जंबूद्वीप आदि द्वीप, लवण आदि समुद्र पूर्ववत् यावत् असंख्येय द्वीप और समुद्र प्रज्ञप्त हैं।

८४. शिवराजर्षि बहुजनों के पास इस अर्थ को सुनकर, अवधारण कर, शंकित, कांक्षित, विचिकित्सित, भेद-समापन्न और कलुष-समापन्न हो गया। शंकित, कांक्षित, विचिकित्सित, भेद-समापन्न और कलुष-समापन्न उस शिवराजर्षि के वह विभंग-ज्ञान शीघ्र ही प्रतिपतित हो गया।

८५. शिव राजर्षि के इस आकार वाला आध्यात्मिक, स्मृत्यात्मक, अभिलाषात्मक, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—श्रमण भगवान् महावीर तीर्थकर, आदिकर यावत् सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, आकाशगत धर्मचक्र से शोभित यावत् सहस्राप्त्रवन् उद्यान में प्रवास-योग्य स्थान की अनुमति

लेकर संयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए रह रहे हैं। देवानुप्रिय! ऐसे अर्हत् भगवानों के नाम-गोत्र का श्रवण भी महान फलदायक है फिर अभिगमन, वंदन, नमस्कार, प्रतिपृच्छा और पर्युपासना का कहना ही क्या? एक भी आर्य धार्मिक वचन का श्रवण महान फलदायक है फिर विपुल अर्थ-ग्रहण का कहना ही क्या? इसलिए मैं जाऊँ, श्रमण भगवान महावीर की वंदना करूँ यावत् पर्युपासना करूँ। यह मेरे इस भव और पर भव के लिए हित, शुभ, क्षम, निःश्रेयस और आनुगामिकता के लिए होगा—इस प्रकार संप्रेक्षा करता है, संप्रेक्षा कर जहां तापस गृह था, वहां आया, वहां आकर, तापसगृह में अनुप्रवेश करता है, अनुप्रवेश कर बहुत सारे तवा, लोह-कड़ाह, कड़छी, ताम्र-पात्र, तापस-भाण्ड, वंशमय पात्र और कावड़ को ग्रहण किया, ग्रहण कर तापस-आवास से प्रतिनिष्क्रमण किया, प्रतिनिष्क्रमण कर विभंग ज्ञान से प्रतिपतित वह हस्तिनापुर नगर के बीचोंबीच निर्गमन करता है, निर्गमन कर जहां सहस्राश्र्वन उद्यान है, जहां भगवान महावीर हैं, वहां आया, वहां आकर श्रमण भगवान महावीर को तीन बार वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर न अति निकट और न अति दूर शुश्रूषा और नमस्कार की मुद्रा में उनके सम्मुख सविनय बद्धांजलि होकर पर्युपासना करता है।

८६. श्रमण भगवान महावीर शिवराजर्षि को उस विशालतम धर्म-परिषद् में धर्म कहते हैं यावत् आज्ञा की आराधना होती है।

८७. शिवराजर्षि भगवान महावीर के पास धर्म को सुनकर, अवधारण कर स्कंदक की भांति यावत् उत्तर-पूर्व दिशा में जाता है, जाकर तवा, लोह-कड़ाह, कड़छी, ताम्र-पात्र, तापस-भाण्ड, वंशमय-पात्र और कावड़ को एकांत में डाल देता है, डालकर स्वयं ही पंचमुष्टिक लोच करता है, लोच कर श्रमण भगवान महावीर को दांयी ओर से प्रारंभ कर तीन बार प्रदक्षिणा करता है, प्रदक्षिणा कर वंदन-नमस्कार करता है वंदन-नमस्कार कर इस प्रकार जैसे ऋषभदत्त प्रव्रजित हुआ वैसे ही शिवराजर्षि प्रव्रजित हो गया। उसी प्रकार ग्यारह अंगों का अध्ययन किया, उसी प्रकार सर्व यावत् सर्व दुःखों को क्षीण करने वाला हो जाता है।

८८. भंते! भगवान गौतम ने श्रमण भगवान महावीर को इस संबोधन से संबोधित कर वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर इस प्रकार कहा—भंते! सिद्ध होने वाले जीव किस संहनन में सिद्ध होते हैं?

गौतम! वज्रऋषभनाराच-संहनन में सिद्ध होते हैं। इस प्रकार जैसे उववाई की वक्तव्यता है वैसे ही संहनन, संस्थान, उच्चत्व, आयुष्य और परिवसन। इस प्रकार सिद्धिगंडिका (उववाई सू. १८५-१९५) तक निरवशेष वक्तव्य है यावत् सिद्ध अव्याबाध शाश्वत सुख का अनुभव करते हैं।

८९. भंते! वह ऐसा ही है। भंत! वह ऐसा ही है।

दसवां उद्देशक

क्षेत्रलोक-पद

१०. राजगृह नगर यावत् गौतम ने इस प्रकार कहा—भंते! लोक कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?

गौतम! लोक चार प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—द्रव्य-लोक, क्षेत्र-लोक, काल-लोक, भाव-लोक।

११. भंते! क्षेत्र-लोक कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?

गौतम! तीन प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—अधो-लोक क्षेत्र-लोक, तिर्यक्-लोक क्षेत्र-लोक, ऊर्ध्व-लोक क्षेत्र-लोक।

१२. भंते! अधो-लोक क्षेत्र-लोक कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?

गौतम! सात प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—रत्नप्रभा-पृथ्वी-अधो-लोक क्षेत्र-लोक यावत् अधःसप्तमा-पृथ्वी-अधो-लोक क्षेत्र-लोक।

१३. भंते! तिर्यक्-लोक क्षेत्र-लोक कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?

गौतम! असंख्येय प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—जम्बूद्वीप द्वीप तिर्यक्-लोक-क्षेत्र-लोक यावत् स्वयंभूरमणसमुद्र-तिर्यक्-लोक क्षेत्र-लोक।

१४. भंते! ऊर्ध्व-लोक-क्षेत्र-लोक कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?

गौतम! पंद्रह प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—सौधर्मकल्प-ऊर्ध्व-लोक-क्षेत्र-लोक, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युतकल्प-ऊर्ध्व-लोक-क्षेत्र-लोक, प्रैवेयक-विमान-ऊर्ध्व-लोक-क्षेत्र-लोक, अनुत्तर-विमान-ऊर्ध्व-लोक-क्षेत्र-लोक, ईषत्-प्राग्भार-पृथ्वी-ऊर्ध्व-लोक-क्षेत्र-लोक।

१५. भंते! अधो-लोक-क्षेत्र-लोक किस संस्थान वाला प्रज्ञप्त है?

गौतम! डोंगी (छोटी नौका) के संस्थान वाला प्रज्ञप्त है।

१६. भंते! तिर्यक्-लोक-क्षेत्र-लोक किस संस्थान वाला प्रज्ञप्त है?

गौतम! झल्लरी-संस्थान वाला प्रज्ञप्त है।

१७. भंते! ऊर्ध्व-लोक-क्षेत्र-लोक किस संस्थान वाला प्रज्ञप्त है?

गौतम! ऊर्ध्वमृदंगाकार-संस्थान वाला प्रज्ञप्त है।

लोक-संस्थान-पद

१८. भंते! लोक किस संस्थान वाला प्रज्ञप्त है?

गौतम! सुप्रतिष्ठिक-संस्थान वाला प्रज्ञप्त है, जैसे—निम्नभाग में विस्तीर्ण, मध्य में संक्षिप्त और ऊपर विशाल है। वह निम्नभाग में पर्यक के आकार वाला, मध्य में श्रेष्ठ वज्र के आकार वाला और ऊपर ऊर्ध्वमुख मृदंग के आकार वाला है।

उस शाश्वत निम्न भाग में विस्तीर्ण यावत् ऊपर ऊर्ध्वमुख मृदंग के आकार वाले लोक में

उत्पन्न ज्ञान-दर्शन का धारक, अर्हत्, जिन, केवली जीवों को भी जानता-देखता है, अजीवों को भी जानता-देखता है, उसके पश्चात् वह सिद्ध, प्रशान्त, मुक्त, परिनिर्वृत और सब दुःखों का अन्त करता है।

अलोक-संस्थान-पद

१९. भंते! अलोक किस संस्थान वाला प्रज्ञप्त है?

गौतम! शुषिरगोलक-संस्थान वाला प्रज्ञप्त है।

१००. भंते! अधोलोक-क्षेत्रलोक क्या १. जीव हैं २. जीव के देश हैं ३. जीव के प्रदेश हैं ४. अजीव हैं ५. अजीव के देश हैं ६. अजीव के प्रदेश हैं?

गौतम! जीव भी हैं, जीव के देश भी हैं, जीव के प्रदेश भी हैं। अजीव भी हैं, अजीव के देश भी हैं, अजीव के प्रदेश भी हैं।

जो जीव हैं वे नियमतः एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय और अनिन्द्रिय हैं।

जो जीव के देश हैं वे नियमतः एकेन्द्रिय-देश यावत् अनिन्द्रिय के देश हैं।

जो जीव-प्रदेश हैं वे नियमतः एकेन्द्रिय-प्रदेश, द्वीन्द्रिय-प्रदेश यावत् अनिन्द्रिय-प्रदेश हैं।

जो अजीव हैं, वे दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—रूपि-अजीव, अरूपि-अजीव।

जो रूपि-अजीव हैं वे चार प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—स्कन्ध, स्कन्ध-देश, स्कन्ध-प्रदेश, परमाणु-पुद्गल।

जो अरूपि-अजीव हैं, वे सात प्रकार के प्रज्ञप्त हैं जैसे—१. धर्मास्तिकाय नहीं है, धर्मास्तिकाय का देश है २. धर्मास्तिकाय का प्रदेश है ३. अधर्मास्तिकाय नहीं है, अधर्मास्तिकाय का देश है ४. अधर्मास्तिकाय का प्रदेश है ५. आकाशास्तिकाय नहीं है, आकाशास्तिकाय का देश है ६. आकाशास्तिकाय का प्रदेश है। ७. अध्वा-समय है।

१०१. भंते! तिर्यक्-लोक-क्षेत्र-लोक क्या जीव हैं? जीव-देश हैं? जीव-प्रदेश हैं?

पूर्ववत् वक्तव्यता, इतना विशेष है—अरूपि-अजीव के छह प्रकार हैं, अध्वा-समय वक्तव्य नहीं है।

१०२. भंते! लोक क्या जीव है? जीव-देश हैं? जीव-प्रदेश हैं?

द्वितीय शतक के अस्तिकाय-उद्देशक (भ. २/१३९) में लोकाकाश की भांति वक्तव्यता, इतना विशेष है—अरूपि-अजीव सात प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे—१. धर्मास्तिकाय है, धर्मास्तिकाय का देश नहीं है २. धर्मास्तिकाय का प्रदेश है ३. अधर्मास्तिकाय है, अधर्मास्तिकाय का देश नहीं है ४. अधर्मास्तिकाय का प्रदेश है ५. आकाशास्तिकाय नहीं है, आकाशास्तिकाय का देश है। ६. आकाशास्तिकाय का प्रदेश है ७. अध्वा-समय है। शेष पूर्ववत्।

१०३. भंते! अलोक क्या जीव है? जीव-देश हैं? जीव-प्रदेश हैं?

इस प्रकार जैसे अस्तिकाय उद्देशक की वक्तव्यता वसे ही निरवशेष वक्तव्य है यावत् अनन्त भाग से न्यून परिपूर्ण आकाश है।

१०४. भंते! अधो-लोक-क्षेत्र-लाक के एक आकाश-प्रदेश में क्या १. जीव हैं? २. जीव-देश हैं? ३. जीव-प्रदेश हैं? ४. अजीव हैं? ५. अजीव-देश हैं? ६. अजीव-प्रदेश हैं? गौतम! जीव नहीं हैं, जीव-देश भी हैं, जीव-प्रदेश भी हैं, अजीव भी हैं, अजीव-देश भी हैं, अजीव-प्रदेश भी हैं।

जो जीव-देश हैं वे नियमतः १. एकेन्द्रिय के देश हैं २. अथवा एकेन्द्रिय के देश हैं और द्वीन्द्रिय का देश है ३. अथवा एकेन्द्रिय के देश हैं और द्वीन्द्रिय के देश हैं। इस प्रकार मध्य-विकल्प-विरहित यावत् एकेन्द्रिय के देश हैं और अनिन्द्रिय के देश हैं। जो जीव-प्रदेश हैं, वे नियमतः १. एकेन्द्रिय के प्रदेश हैं २. अथवा एकेन्द्रिय के प्रदेश हैं और द्वीन्द्रिय के प्रदेश हैं ३. अथवा एकेन्द्रिय के प्रदेश हैं और द्वीन्द्रिय के प्रदेश हैं। इस प्रकार प्रथम-विकल्प-विरहित यावत् पञ्चेन्द्रिय और अनिन्द्रिय के तीन भंग वक्तव्य हैं।

जो अजीव हैं, वे दो प्रकार के प्रज्ञप्त हैं, जैसे-रूपि-अजीव और अरूपि-अजीव। रूपी पूर्ववत् वक्तव्य है। जो अरूपि-अजीव हैं, वे पांच प्रकार के प्रज्ञप्त हैं जैसे-धर्मास्तिकाय नहीं है, धर्मास्तिकाय का देश है। धर्मास्तिकाय का प्रदेश है। अधर्मास्तिकाय नहीं है, अधर्मास्तिकाय का देश है। अधर्मास्तिकाय का प्रदेश है। अध्वा-समय है।

१०५. भंते! क्या तिर्यक्-लोक-क्षेत्र-लोक के एक आकाश-प्रदेश में जीव हैं?

इस प्रकार अधो-लोक-क्षेत्र-लोक की वक्तव्यता, इसी प्रकार ऊर्ध्व-लोक-क्षेत्र-लोक की वक्तव्यता, इतना विशेष है-अध्वा-समय वक्तव्य नहीं है। अरूपी के चार प्रकार हैं।

१०६. भंते! क्या लोक के एक आकाश-प्रदेश में जीव हैं?

अधो-लोक-क्षेत्र-लोक के एक आकाश-प्रदेश की भांति वक्तव्यता।

१०७. भंते! अलोक के एक आकाश-प्रदेश में जीव हैं-पृच्छा।

गौतम! जीव नहीं हैं, जीव के देश नहीं हैं, जीव के प्रदेश नहीं हैं, अजीव नहीं हैं, अजीव के देश नहीं हैं, अजीव के प्रदेश नहीं हैं। एक अजीव-द्रव्य का देश है, अगुरुलघु है, अनन्त अगुरुलघु, गुणों से संयुक्त है और सर्वाकाश का अनन्त-भाग-न्यून है।

१०८. अधो-लोक-क्षेत्र-लोक में द्रव्यतः अनन्त जीव-द्रव्य, अनन्त अजीव-द्रव्य, अनन्त जीव-अजीव-द्रव्य हैं। इसी प्रकार तिर्यग्-लोक-क्षेत्र-लोक में भी, इसी प्रकार ऊर्ध्व-लोक-क्षेत्र-लोक में भी। (इसी प्रकार लोक में भी) द्रव्यतः अलोक में जीव-द्रव्य नहीं हैं, अजीव-द्रव्य नहीं हैं। जीव-अजीव-द्रव्य नहीं हैं। वह एक अजीव-द्रव्य का देश है। अगुरुलघु है, अनन्त अगुरुलघु-गुणों से संयुक्त है और सर्वाकाश का अनन्त-भाग-न्यून है।

कालतः अधो-लोक-क्षेत्र-लोक कभी नहीं था, कभी नहीं है और कभी नहीं होगा, ऐसा नहीं है-वह था, है, और होगा-वह ध्रुव नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित, नित्य है। इसी प्रकार तिर्यग्-लोक-क्षेत्र-लोक में, इसी प्रकार ऊर्ध्व-लोक-क्षेत्र-लोक में, इसी प्रकार अलोक में।

भावतः अधो-लोक-क्षेत्र-लोक म अनन्त वर्ण-पर्यव, अनन्त गंध-पर्यव, अनन्त रस-पर्यव,

अनंत स्पर्श-पर्यव, अनंत संस्थान-पर्यव, अनंत गुरुलघु-पर्यव, अनंत अगुरुलघु-पर्यव हैं। इसी प्रकार तिर्यग्-लोक-क्षेत्र-लोक में, इसी प्रकार ऊर्ध्व-लोक-क्षेत्र-लोक में, इसी प्रकार लोक में।

भावतः अलोक में वर्ण-पर्यव नहीं हैं, गंध-पर्यव नहीं हैं, रस-पर्यव नहीं हैं, स्पर्श-पर्यव नहीं हैं, संस्थान-पर्यव नहीं हैं, गुरुलघु-पर्यव नहीं हैं। एक अजीव-द्रव्य का देश है, अगुरुलघु है, अनन्त अगुरुलघु गुणों से संयुक्त है और सर्वाकाश का अनन्त-भाग-न्यून है।

लोक का परिमाण-पद

१०९. भंते! लोक कितना बड़ा प्रज्ञप्त है?

गौतम! यह जम्बूद्वीप द्वीप सब द्वीप-समुद्रों के मध्य अवस्थित है यावत् एक लाख योजन लम्बा चौड़ा है। उसकी परिधि तीन लाख, सोलह हजार, दो सौ सत्ताईस योजन, तीन कोस, अट्ठाईस धनुष साढे-तेरह-अंगुल-से-कुछ-अधिक है।

उस काल और उस समय में छह देव महान ऋद्धि वाले यावत् महासुख वाले जम्बूद्वीप द्वीप में मंदर पर्वत पर मंदर चूलिका को चारों ओर से घेरे हुए खड़े हैं। नीचे चार दिशाकुमारी महत्तरिकाओं ने चार बलिपिण्डों को ग्रहण कर जंबूद्वीप की चारों दिशाओं में बाह्याभिमुख स्थित होकर उन चारों बलिपिण्डों को एक साथ बाहर फेंका।

गौतम! प्रत्येक देव उन चार बलिपिण्डों का भूमि के तल पर गिरने से पूर्व शीघ्र ही प्रतिसंहरण करने में समर्थ है।

गौतम! उन देवों ने उत्कृष्ट, त्वरित, चपल, चण्ड, जविनी, छेक, सैंही, शीघ्र, उद्धत और दिव्य देव-गति से प्रस्थान किया। एक देव ने पूर्व दिशा की ओर प्रयाण किया, एक देव ने दक्षिण की ओर प्रयाण किया, एक देव ने पश्चिम की ओर प्रयाण किया, एक देव ने उत्तर की ओर प्रयाण किया। एक देव ने ऊर्ध्व दिशा की ओर प्रयाण किया। एक देव ने अधो दिशा की ओर प्रयाण किया।

उस काल और उस समय में एक हजार वर्ष की आयु वाले शिशु का जन्म हुआ। उस शिशु के माता-पिता प्रक्षीण-मृत्यु को प्राप्त हुए, फिर भी वे देव लोक का अंत नहीं पा सके। उस शिशु का आयुष्य भी प्रक्षीण हो गया, फिर भी वे देव लोक का अंत नहीं पा सके। उस शिशु की अस्थि-मज्जा प्रक्षीण हो गई। फिर भी वे देव लोक का अंत नहीं पा सके। उस शिशु के सात कुल-वंश (पीढ़ियां) प्रक्षीण हो गए फिर भी वे देव लोक का अंत नहीं पा सके। उस शिशु का नाम-गोत्र प्रक्षीण हो गया फिर भी वे देव लोक का अंत नहीं पा सके।

भंते! उन देवों का गत-क्षेत्र बहुत है? अगत-क्षेत्र बहुत है?

गौतम! गत-क्षेत्र बहुत है, अगत-क्षेत्र बहुत नहीं है। गत-क्षेत्र से अगत-क्षेत्र असंख्येय भाग है और अगत-क्षेत्र से गत-क्षेत्र असंख्येय-गुणा है। गौतम! लोक इतना बड़ा प्रज्ञप्त है।

अलोक का परिमाण-पद

११०. भंते! अलोक कितना बड़ा प्रज्ञप्त है?

गौतम! इस समय-क्षेत्र में पैतालीस लाख योजन लम्बा-चौड़ा है। उसकी परिधि एक करोड़ बयालीस लाख तीस हजार दो सौ उनपचास (१,४२,३०,२४९) योजन से कुछ अधिक है। उस काल और उस समय में दस देव महान ऋद्धि वाले यावत् महासुख वाले जम्बूद्वीप द्वीप में मंदर पर्वत पर मंदर चूलिका को चारों ओर से घेरे हुए खड़े हैं। नीचे आठ दिशाकुमारी महत्तरिकाओं ने आठ बलिपिण्डों को ग्रहण कर मानुषोत्तर पर्वत की चारों दिशाओं और चारों विदिशाओं में बाह्याभिमुख स्थित होकर उन आठ बलिपिण्डों को एक साथ बाहर फेंका।

गौतम! प्रत्येक देव उन आठ बलिपिण्डों का भूमि के तल पर गिरने से पूर्व शीघ्र ही प्रतिसंहरण करने में समर्थ है।

गौतम! उन देवों ने उत्कृष्ट, त्वरित, चपल, चण्ड, ज्विनी, छेक, सैंही, शीघ्र, उद्धत और दिव्य देव गति के द्वारा लोकांत में स्थित होकर असदभाव प्रस्थापन के अनुसार प्रस्थान किया। एक देव ने पूर्व दिशा की ओर प्रयाण किया, एक देव ने दक्षिण-पूर्व की ओर प्रयाण किया, एक देव ने दक्षिण की ओर प्रयाण किया, एक देव ने दक्षिण-पश्चिम की ओर प्रयाण किया, एक देव ने पश्चिम की ओर प्रयाण किया, एक देव ने पश्चिम-उत्तर की ओर प्रयाण किया, एक देव ने उत्तर की ओर प्रयाण किया। एक देव ने उत्तर-पूर्व की ओर प्रयाण किया। एक देव ने ऊर्ध्व दिशा की ओर प्रयाण किया। एक देव ने अधो दिशा की ओर प्रयाण किया।

उस काल और उस समय में एक लाख वर्ष की आयु वाले शिशु का जन्म हुआ। उस शिशु के माता-पिता प्रक्षीण हुए, फिर भी वे देव अलोक का अंत नहीं पा सके। उस शिशु का आयुष्य भी प्रक्षीण हो गया, फिर भी वे देव अलोक का अंत नहीं पा सके। उस शिशु की अस्थि-मज्जा प्रक्षीण हो गई, फिर भी वे देव अलोक का अंत नहीं पा सके। उस शिशु के सात कुल वंश (पीढ़ियां) प्रक्षीण हो गए फिर भी वे देव अलोक का अंत नहीं पा सके। उस शिशु का नाम-गोत्र प्रक्षीण हो गया। फिर भी वे देव अलोक का अंत नहीं पा सके।

भंते! उन देवों का गत-क्षेत्र बहुत है? अगत-क्षेत्र बहुत है?

गौतम! गत-क्षेत्र बहुत नहीं है, अगत-क्षेत्र बहुत है। गत-क्षेत्र से अगत-क्षेत्र अनंत-गुण है। और अगत क्षेत्र से गत-क्षेत्र अनंत-भाग है। गौतम! अलोक इतना बड़ा प्रज्ञप्त है।

लोकाकाश में जीव-प्रदेश-पद

१११. भंते! लोक के एक आकाश-प्रदेश में जो एकेन्द्रिय-प्रदेश यावत् पंचेन्द्रिय प्रदेश, अनिन्द्रिय-प्रदेश, अन्योन्य-बद्ध, अन्योन्य-स्पृष्ट, अन्योन्य-बद्ध-स्पृष्ट और अन्योन्य-एकीभूत बने हुए हैं। भंते! क्या वे परस्पर किञ्चित् आबाध अथवा व्याबाध उत्पन्न करते हैं? छविच्छेद करते हैं?

यह अर्थ संगत नहीं है।

११२. भंते! यह किस अपेक्षा से कहा जा रहा है—लोक के एक आकाश-प्रदेश में जो एकेन्द्रिय-प्रदेश यावत् अन्योन्य-एकीभूत बने हुए हैं, भंते! वे परस्पर किञ्चित् आबाध अथवा व्याबाध उत्पन्न नहीं करते? छविच्छेद नहीं करते?

गौतम! जैसे कोई नर्तिका है—मूर्तिमान, शृंगार और सुन्दर वेशवाली, चलने, हंसने, बोलने और चेष्टा करने में निपुण, तथा विलास और लालित्यपूर्ण संलाप में निपुण, समुचित उपचार में कुशल, सुन्दर स्तन, कटि, मुख, हाथ, पैर, नयन, लावण्य, रूप, यौवन और विलास से कलित। वह नर्तिका सैकड़ों (हजारों?) लाखों लोगों से आकुल नाट्यशाला में बत्तीस प्रकार की नाट्यविधियों में से किसी एक नाट्यविधि का उपदर्शन करती है। गौतम! वे प्रेक्षक अनिमेष दृष्टि से चारों ओर से उस नर्तिका को देखते हैं?

हां, देखते हैं।

गौतम! वे दृष्टियां उस नर्तकी की ओर चारों ओर से गिर रही हैं?

हां, गिर रही हैं।

गौतम! वे दृष्टियां उस नर्तकी को किञ्चित् आबाध अथवा व्याबाध उत्पन्न करती हैं? छविच्छेद करती हैं?

यह अर्थ संगत नहीं है।

वह नर्तकी उन दृष्टियों में किञ्चित् आबाध अथवा व्याबाध उत्पन्न करती है?

छविच्छेद करती है?

यह अर्थ संगत नहीं है।

वे दृष्टियां परस्पर—एक दूसरे की दृष्टि में किञ्चित् आबाध अथवा व्याबाध उत्पन्न करती हैं? छविच्छेद करती हैं?

यह अर्थ संगत नहीं है।

गौतम! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—लोक के एक आकाश-प्रदेश में जो एकेन्द्रिय-प्रदेश हैं यावत् अन्योन्य-एकीभूत बने हुए हैं, वे परस्पर आबाध अथवा व्याबाध उत्पन्न नहीं करते, छविच्छेद नहीं करते।

११३. भंते! लोक के एक आकाश-प्रदेश में जघन्य-पद में अवस्थित जीव-प्रदेश, उत्कृष्ट-पद में अवस्थित जीव-प्रदेश और सर्व जीव—इनमें कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है?

गौतम! सबसे अल्प लोक के एक आकाश-प्रदेश में जघन्य-पद में अवस्थित जीव-प्रदेश सबसे अल्प है, सर्व जीव उनसे असंख्येय-गुण हैं, उत्कृष्ट पद में अवस्थित जीव-प्रदेश उनसे विशेषाधिक हैं।

११४. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

ग्यारहवां उद्देशक

सुदर्शन-श्रेष्ठी-पद

११५. उस काल और उस समय में वाणिज्यग्राम नामक नगर था—वर्णक। दूति-पलाश चैत्य—वर्णक यावत् पृथ्वी-शिलापट्टक। उस वाणिज्यग्राम नगर में सुदर्शन नाम का श्रेष्ठी रहता था—संपन्न यावत् बहुत जन के द्वारा अपरिभवनीय। श्रमणोपासक, जीव-अजीव को जानने वाला यावत् यथापरिगृहीत तपःकर्म के द्वारा आत्मा को भावित करता हुआ रह रहा था। भगवान् महावीर आए यावत् परिषद् पर्युपासना करने लगी।

११६. सुदर्शन श्रेष्ठी इस कथा को सुनकर हृष्ट-तुष्ट हो गया। उसने स्नान किया, बलिकर्म किया, कौतुक, मंगल और प्रायश्चित्त किया, सर्व अलंकार से विभूषित होकर अपने घर से प्रतिनिष्क्रमण किया, प्रतिनिष्क्रमण कर कटसरैया की माला और दाम तथा छत्र को धारण कर, विशाल पुरुष-वर्ग से घिरा हुआ वह वाणिज्यग्राम नगर के बीचोंबीच पैदल चलते हुए निकला, निकलकर जहां दूतिपलाश चैत्य था, जहां श्रमण भगवान् महावीर थे, वहां आया, वहां आकर पांच प्रकार के अभिगमों के साथ श्रमण भगवान् महावीर के पास गया। (जैसे सचित्त द्रव्यों को छोड़ना, भ. ९/१४५) ऋषभदत्त की भांति वक्तव्यता यावत् तीन प्रकार की पर्युपासना के द्वारा पर्युपासना की।

११७. श्रमण भगवान् महावीर ने उस विशालतम परिषद् में सुदर्शन श्रेष्ठी को धर्म कहा यावत् आज्ञा की आराधना की।

११८. वह सुदर्शन श्रेष्ठी श्रमण भगवान् महावीर के पास धर्म सुनकर, अवधारण कर हृष्ट-तुष्ट होकर उठने की मुद्रा में उठा। उठकर श्रमण भगवान् महावीर को दायीं ओर से प्रारंभ कर तीन बार प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा कर वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर इस प्रकार कहा—

११९. भंते! काल कितने प्रकार का प्रज्ञप्त है?

सुदर्शन! काल चार प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे—प्रमाण-काल, यथायुर्निवृत्ति-काल, मरण-काल, अध्वा-काल।

१२०. वह प्रमाण-काल क्या है?

प्रमाण-काल दो प्रकार का प्रज्ञप्त है, जैसे दिवस-प्रमाण-काल, रात्रि-प्रमाण-काल। चार प्रहर का दिवस और चार प्रहर की रात्रि होती है। दिन अथवा रात्रि का प्रहर उत्कृष्टतः साढ़े चार मुहूर्त का होता है। दिवस अथवा रात्रि का प्रहर जघन्यतः तीन मुहूर्त का होता है।

१२१. भंते! जब दिवस अथवा रात्रि का उत्कृष्टतः साढ़े चार मुहूर्त का प्रहर होता है तब दिवस अथवा रात्रि के मुहूर्त भाग का कितना भाग कम होते-होते जघन्यतः तीन मुहूर्त का प्रहर होता है? जब दिवस अथवा रात्रि का जघन्यतः तीन मुहूर्त का प्रहर होता है तब दिवस अथवा रात्रि के मुहूर्त भाग का कितना भाग बढ़ते बढ़ते उत्कृष्टतः साढ़े-चार मुहूर्त का प्रहर होता है?

सुदर्शन! जब दिवस अथवा रात्रि का उत्कृष्टतः साढ़े-चार मुहूर्त का प्रहर होता है तब दिवस

अथवा रात्रि के मुहूर्त भाग का एक सौ बाईसवां भाग कम होते होते जघन्यतः तीन मुहूर्त का प्रहर होता है। जब दिवस अथवा रात्रि का जघन्यतः तीन मुहूर्त का प्रहर होता है तब दिवस अथवा रात्रि के मुहूर्त भाग का एक सौ बाईसवां भाग बढ़ते-बढ़ते उत्कृष्टतः साढे-चार मुहूर्त का प्रहर होता है।

१२२. भंते! दिवस अथवा रात्रि का उत्कृष्टतः साढे-चार मुहूर्त का प्रहर कब होता है? दिवस अथवा रात्रि का जघन्यतः तीन मुहूर्त का प्रहर कब होता है?

सुदर्शन! जब उत्कृष्टतः अठारह मुहूर्त का दिन होता है, जघन्यतः बारह मुहूर्त की रात्रि होती है तब दिवस का उत्कृष्टतः साढे-चार मुहूर्त का प्रहर होता है और रात्रि का जघन्यतः तीन मुहूर्त का प्रहर होता है। जब उत्कृष्टतः अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है, जघन्यतः बारह मुहूर्त का दिन होता है तब रात्रि का उत्कृष्टतः साढे-चार मुहूर्त का प्रहर होता है और दिवस का जघन्यतः तीन मुहूर्त का प्रहर होता है।

१२३. भंते! उत्कृष्टतः अठारह मुहूर्त का दिवस कब होता है? जघन्यतः बारह मुहूर्त की रात्रि कब होती है? उत्कृष्टतः अठारह मुहूर्त की रात्रि कब होती है? जघन्यतः बारह मुहूर्त का दिवस कब होता है?

सुदर्शन! आषाढ-पूर्णिमा के दिन उत्कृष्टतः अठारह मुहूर्त का दिवस होता है और जघन्यतः बारह मुहूर्त की रात्रि होती है। पौष पूर्णिमा के दिन उत्कृष्टतः अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है और बारह मुहूर्त का दिवस होता है।

१२४. भंते क्या दिन और रात्रि समान होते हैं?

हां, होते हैं।

१२५. भंते! दिवस और रात्रि समान कब होते हैं?

सुदर्शन! चैत्र और आश्विन की पूर्णिमा में दिवस और रात्रि समान होते हैं—पंद्रह मुहूर्त का दिन और पंद्रह मुहूर्त की रात्रि होती है। दिन अथवा रात्रि के मुहूर्त भाग का चौथा भाग—पौने-चार मुहूर्त का प्रहर होता है। वह है प्रमाण-काल।

१२६. वह यथायुर्निवृत्ति-काल क्या है?

नैरयिक, तिर्यग्योनिक, मनुष्य अथवा देवों ने जितना और जैसा आयुष्य बांधा है, यथायुर्निवृत्ति-काल है। यह है यथायुर्निवृत्ति-काल।

१२७. वह मरण-काल क्या है?

जीव का शरीर से अथवा शरीर का जीव से पृथक् होने का क्षण मरण-काल है। यह है मरण-काल।

१२८. वह अध्वा-काल क्या है?

वह अध्वा-काल है—उसका अर्थ है समय, उसका अर्थ है आवलिका यावत् उसका अर्थ है उत्सर्पिणी।

द्विभाग छेद से छेदन करते करते जिसका विभाग न किया जा सके, वह समय है, उसका अर्थ

है समय। असंख्येय समया का समुदय, समिति और समागम से एक आवलिका होती है। संख्येय आवलिका का एक उच्छ्वास होता है। शालि-उद्देशक (भ. ६/१३२-१३४) की भांति वक्तव्य है यावत्—

इन दस क्रोड़ाक्रोड़ पल्यों से एक सागरोपम-परिमाण होता है।

१२९. भंते! इन पल्योपम और सागरोपम से क्या प्रयोजन है?

सुदर्शन! इन पल्योपम सागरोपम के द्वारा नैरयिक, तिर्यग्योनिक, मनुष्य और देवों के आयुष्य का मापन होता है।

१३०. भंते! नैरयिकों की कितने काल की स्थिति प्रज्ञप्त है?

इस प्रकार स्थिति-पद (पण्णवणा-पद ४) वक्तव्य है यावत् अजघन्य-अनुत्कृष्ट-उत्कृष्ट स्थिति तैत्तीस सागरोपम प्रज्ञप्त है।

१३१. भंते! इन पल्योपम-सागरोपम का क्षय अथवा अपचय होता है?

हां, होता है।

१३२. भंते! यह किस अपेक्षा कहा जा रहा है—इन पल्योपम-सागरोपम का क्षय अथवा अपचय होता है?

सुदर्शन! उस काल उस समय में हस्तिनापुर नाम नगर था—वर्णक। सहस्राप्रवन उद्यान—वर्णक। उस हस्तिनापुर नगर में बल नाम का राजा था—वर्णक। उस बल राजा के प्रभावती नाम की देवी थी—सुकुमाल हाथ-पैर वाली—वर्णक यावत् मनुष्य-संबंधी पंचविध काम-भोगों का प्रत्यनुभव करती हुई विहरण कर रही थी।

१३३. एक दिन प्रभावती देवी उस अनुपम वासगृह, जो भीतर से चित्र-कर्म से युक्त और बाहर से धवलित था, कोमल पाषाण से घिसा होने के कारण चिकना था। उसका ऊपरी भाग विविध चित्रों से युक्त तथा अधोभाग प्रकाश से दीप्तिमान था। मणि और रत्न की प्रभा से अंधकार प्रणष्ट हो चुका था। उसका देश-भाग बहुत सम और सुविभक्त था। पांच वर्ण के सरस और सुरभित मुक्त पुष्प, पुञ्ज के उपचार से कलित, कृष्ण अगर, प्रवर कुन्दुरु और जलते हुए लोबान की धूप से उठती हुई सुगंध से अभिराम, प्रवर सुरभि वाले गंध-चूर्णों से सुगंधित गंध-वर्तिका के समान उस प्रासाद में एक विशिष्ट शयनीय था—उस पर शरीर-प्रमाण उपधान (मसनद) रखा हुआ था, शिर और पांवों की ओर शरीर-प्रमाण उपधान रखे हुए थे इसलिए वह दोनों ओर से उभरा हुआ तथा मध्य में नत और गंभीर था। गंगा-तट की बालुका की भांति पांव रखते ही नीचे धंस जाता था। वह परिकर्मित क्षौम दुकूल-पट्ट से ढका हुआ था। उसका रजस्त्राण (चादरा) सुनिर्मित था, वह लाल रंग की मसहरी से सुरम्य था, उसका स्पर्श चर्म-वस्त्र, कपास, बूर वनस्पति और नवनीत के समान (मृदु) था। प्रवर सुगंधित कुसुम-चूर्ण के शयन-उपचार से कलित था। उस शयनीय पर अर्द्ध रात्रि के समय सुप्त-जाग्रत (अर्धनिद्रा) अवस्था में बार बार झपकी लेती हुई प्रभावती देवी इस प्रकार का उदार, कल्याण, शिव, धन्य, मंगल और श्री संपन्न महास्वप्न देखकर जागृत हो गई।

वह हार रजत, क्षीर-सागर, चंद्र-किरण, जल-कण, रजत-महाशैल (वैताढ्य) के समान अतिशुक्ल, रमणीय और दर्शनीय था। उसका प्रकोष्ठ अप्रकंप और मनोज्ञ था। वह गोल,

पुष्ट, सुश्लिष्ट, विशिष्ट और तीक्ष्ण दाढा से मुक्त मुंह को खोले हुए था। उसके ओष्ठ परिकर्मित, जातिवान्, कमल के समान कोमल, प्रमाण-युक्त और अत्यंत शोभनीय थे। उसकी जिह्वा और तालु रक्त-कमल-पत्र के समान मृदु और सुकुमाल थे। उसके नयन मूसा (स्वर्ण आदि को गलाने का पात्र) में रहे हुए, अग्नि में तपाये हुए, आवर्त करते हुए उत्तम स्वर्ण के सदृश रंग वाले और विद्युत् के समान विमल थे। उसकी जंघा विशाल और पुष्ट थी। उसके स्कंध प्रतिपूर्ण और विपुल थे। वह मृदु, विशद, सूक्ष्म, विस्तीर्ण और प्रशस्त लक्षण-युक्त अयाल की सटा से सुशोभित था। वह ऊपर की ओर उठी हुई सुनिर्मित पृष्ठ से भूमि को आस्फालित कर रहा था। सौम्य, सौम्य आकार वाले, लीला करते हुए, जंभाई लेते हुए, आकाश-पथ से उतर कर अपने मुख में प्रविष्ट होते हुए सिंह के स्वप्न को देखकर जागृत हो गई। जागृत होकर वह हृष्ट-तुष्ट चित्त वाली, आनंदित, नंदित, प्रीतिपूर्ण मन वाली, परम सौमनस्य युक्त और हर्ष से विकस्वर हृदय वाली हो गई। मेघ की धारा से आहत कदंब पुष्प की भांति रोम-कूप उच्छ्वसित हो गए। उसने उस स्वप्न का अवग्रहण किया, अवग्रहण कर शयनीय से उठी। उठकर वह अत्वरित, अचपल, असंभ्रांत, अविलंबित राजहंसिनी जैसी गति से जहां बल राजा का शयनीय था, वहां आई, वहां आकर इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मनोहर, उदार, कल्याण, शिव, धन्य, मंगलमय श्री-संपन्न, मृदु, मधुर और मंजुल भाषा में पुनः-पुनः संलाप करती हुई राजा बल को जगाया, जगाकर बल राजा की अनुज्ञा से नाना मणि रत्न की भांतों से चित्रित भद्रासन पर बैठ गई। आश्वस्त, विश्वस्त हो, प्रवर सुखासन पर बैठकर राजा बल को इष्ट, कान्त यावत् मृदु-मधुर और मंजुल भाषा में पुनः-पुनः संलाप करती हुई इस प्रकार बोली—देवानुप्रिय! मैं आज शरीर-प्रमाण उपधान वाले विशिष्ट शयनीय पर पूर्ववत् यावत् अपने मुख में प्रविष्ट होते हुए सिंह के स्वप्न को देखकर जागृत हो गई। देवानुप्रिय! क्या मैं मानूं? इस उदार यावत् महास्वप्न का कल्याणकारी विशिष्ट फल होगा?

१३४. देवी प्रभावती के पास इस अर्थ को सुनकर, अवधारण कर राजा बल हृष्ट-तुष्ट चित्त वाला, आनंदित, नंदित, प्रीतिपूर्ण मन वाला, परम सौमनस्य युक्त और हर्ष से विकस्वर हृदय वाला हो गया। उसका शरीर मेघधारा से आहत कदंब के सुरभिकुसुम की भांति पुलकित एवं उच्छ्वसित रोमकूप वाला हो गया। उसने स्वप्न को अवग्रहण किया। अवग्रहण कर ईहा में प्रवेश किया। ईहा में प्रवेश कर अपने स्वाभाविक मतिपूर्वक बुद्धि-विज्ञान के द्वारा उस स्वप्न के अर्थ का अवग्रहण किया। अर्थ का अवग्रहण कर प्रभावती देवी से इष्ट, कान्त यावत् मंगल, मृदु, मधुर, श्री संपन्न शब्दों के द्वारा पुनः पुनः संलाप करता हुआ इस प्रकार बोला—देवी! तुमने उदार स्वप्न देखा है। देवी! तुमने कल्याणकारी स्वप्न देखा है। यावत् देवी! तुमने श्री संपन्न स्वप्न देखा है। देवी! तुमने आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायु, कल्याण और मंगलकारी स्वप्न देखा है। देवानुप्रिये! तुम्हें अर्थ-लाभ होगा। देवानुप्रिये! तुम्हें भोग-लाभ होगा। देवानुप्रिये! तुम्हें पुत्र-लाभ होगा। देवानुप्रिये! तुम्हें राज्य-लाभ होगा। इस प्रकार देवानुप्रिये! तुम बहु प्रतिपूर्ण नौ मास और साढ़े सात दिन-रात व्यतिक्रांत होने पर एक बालक को जन्म दोगी। वह बालक हमारे कुल की पताका, कुल-दीप, कुल-पर्वत, कुल-अवतंस, कुल-तिलक, कुल-कीर्तिकर, कुल को आनंदित करने वाला, कुल के यश को बढ़ाने वाला, कुल का आधार, कुल-पादप, कुल को बढ़ाने वाला, सुकुमाल हाथ-पैर वाला, अक्षीण और

प्रतिपूर्ण पंचेन्द्रिय-शरीर वाला, लक्षण और व्यंजन गुणों से उपेत, मान, उन्मान और प्रमाण से प्रतिपूर्ण, सुजात, सर्वांग सुन्दर, चंद्रमा के समान सौम्य आकार वाला, कांत, प्रियदर्शन, सूरूप और देव कुमार के समान प्रभा वाला होगा।

वह बालक बाल-अवस्था को पार कर विज्ञ और कला का पारगामी बनकर, यौवन को प्राप्त कर, शूर, वीर, विक्रांत, विपुल और विस्तीर्ण सेना-वाहन युक्त, राज्य का अधिपति राजा होगा। इसलिए देवी! तुमने उदार स्वप्न देखा है यावत् आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायु, कल्याण और मंगलकारी स्वप्न देखा है। ऐसा कह कर उन इष्ट यावत् मंजुल शब्दों के द्वारा दूसरी तीसरी बार भी प्रभावती देवी के उल्लास को बढ़ाया।

१३५. राजा बल के पास इस अर्थ को सुनकर, अवधारण कर प्रभावती देवी हृष्ट-तुष्ट हो गई। दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली दसनखात्मक अंजलि को सिर के सम्मुख धुमाकर मस्तक पर टिकाकर इस प्रकार कहा—देवानुप्रिय! यह ऐसा ही है। देवानुप्रिय! यह तथा (संवादिता पूर्ण) है। देवानुप्रिय! यह अवितथ है। देवानुप्रिय! यह असंदिग्ध है। देवानुप्रिय! यह इष्ट है। देवानुप्रिय! यह प्रतीप्सित (प्राप्त करने के लिए इष्ट) है। देवानुप्रिय! यह इष्ट-प्रतीप्सित है।

जैसा आप कह रहे हैं वह अर्थ सत्य है—ऐसा भाव प्रदर्शित कर उस स्वप्न के फल को सम्यक् स्वीकार किया। स्वीकार कर बल राजा की अभ्यनुज्ञा प्राप्त कर नाना मणिरत्न की भांतों से चित्रित भद्रासन से उठी। उठकर अत्वरित, अचपल, असंभ्रांत, अविलंबित राजहंसिनी के सदृश गति द्वारा जहां अपना शयनीय था, वहां आई, वहां आकर शयनीय पर बैठ गई। बैठकर इस प्रकार बोली—मेरा वह उत्तम, प्रधान और मंगल स्वप्न किन्हीं अन्य पाप स्वप्नों के द्वारा प्रतिहत न हो जाए। ऐसा कहकर वह देव तथा गुरुजनों से संबद्ध प्रशस्त मंगल धार्मिक कथाओं के द्वारा स्वप्न-जागरिका के प्रति सतत प्रतिजगृत रहती हुई विहार करने लगी।

१३६. उस बल राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिय! आज शीघ्र ही बाहरी उपस्थानशाला (सभामंडप) को विशेष रूप से सुगंधित जल से सींच, झाड़-बुहार कर, गोबर का लेप कर, प्रवर सुगंधित पंच वर्ण के पुष्पों के उपचार से युक्त, काली अगर, प्रवर कुन्दुरु, जलते हुए लोबान की धूप से उद्धत गंध से अभिराम, प्रवर सुरभि वाले गंध-चूर्णों से सुगंधित गंध-वर्तिका के समान करो, कराओ। कर तथा करा कर सिंहासन की रचना करो। रचना कर मेरी आज्ञा मुझे प्रत्यर्पित करो।

१३७. उन कौटुम्बिक पुरुषों ने यावत् स्वीकार कर शीघ्र ही बाहरी उपस्थान-शाला को विशेष रूप से सुगंधित जल से सींचा, झाड़-बुहार कर गोबर का लेप किया। प्रवर सुगंधित पंच वर्ण पुष्प के उपचार से युक्त, काली अगर, प्रवर कुन्दुरु और जलती हुई लोबान की धूप से उद्धत सुगंध से अभिराम, प्रवर सुरभि वाले गंध चूर्णों से सुगंधित गंधवर्तिका के समान कर, कराकर सिंहासन की रचना की। रचना कर उस आज्ञा को प्रत्यर्पित किया।

१३८. वह बल राजा प्रत्यूष काल समय में शयनीय से उठा, उठकर पादपीठ से उतरा, उतरकर जहां व्यायामशाला थी, वहां आया, व्यायामशाला में अनुप्रवेश किया, जैसे उववाई

(सू. ६३) की वक्तव्यता वैसे ही व्यायामशाला और स्नानघर की वक्तव्यता यावत् चंद्रमा की भांति प्रियदर्शन नरपति जहां बाहरी उपस्थान-शाला थी, वहां आया, वहां आकर प्रवर सिंहासन पर पूर्वाभिमुख होकर बैठा। बैठकर स्वयं ईशान कोण में आठ भद्रासन स्थापित कराए। उन पर श्वेत-वस्त्र बिछाए तथा सरसों डालकर मंगल उपचार और शांति कर्म किए। भद्रासन स्थापित कराकर अपने से न अति दूर न अति निकट, नाना मणिरत्नों से मंडित, अति प्रेक्षणीय बहुमूल्य प्रवर पत्तन में बनी हुई सूक्ष्म सैकड़ों भांतों से चित्रित भेड़िया, वृषभ, घोड़ा, मनुष्य, मगरमच्छ, पक्षी, सर्प, किन्नर, काला हिरण, अष्टापद, याक (चमरी गाय), हाथी, अशोकलता, पद्मलता आदि की भांतों से चित्रित भीतरी यवनिका लगाई। लगवा कर नाना मणिरत्न की भांतों से चित्रित, बिछौने और कोमल उपधानों से युक्त, धवल वस्त्र से आच्छादित, शरीर के लिए सुखद स्पर्श वाला और अतीव सुकोमल भद्रासन प्रभावती देवी के लिए स्थापित करवाया। स्थापित करवा कर कौटुंबिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार बोला—हे देवानुप्रिय! तुम शीघ्र ही अष्टांग महानिमित्त के सूत्र और अर्थ के धारक, विविध शास्त्रों में कुशल, स्वप्न लक्षण पाठक को बुलाओ।

१३९. उन कौटुंबिक पुरुषों ने यावत् आज्ञा को स्वीकार कर बल राजा के पास से प्रतिनिष्क्रमण किया। प्रतिनिष्क्रमण कर शीघ्र, त्वरित, चपल, चंड और बेग युक्त गति के द्वारा हस्तिनापुर नगर के बीचोंबीच जहां उन स्वप्न-लक्षण-पाठकों के घर थे, वहां आए, वहां आकर स्वप्न-लक्षण पाठकों को बुलाया।

१४०. राजा बल के कौटुंबिक पुरुषों द्वारा बुलाये जाने पर वे स्वप्न-पाठक हृष्ट-तुष्ट हो गए। उन्होंने स्नान किया, बलिकर्म किया, कौतुक, मंगल और प्रायश्चित्त किया। सभा में प्रवेशोचित मांगलिक वस्त्रों को विधिवत् पहना। अल्पभार और बहुमूल्य वाले आभरणों से शरीर को अलंकृत किया। मस्तक पर दूब और श्वेत सर्षप रख अपने-अपने घर से निकले, निकल कर हस्तिनापुर नगर के बीचोंबीच, जहां बल राजा का प्रवर भवन-अवतंसक था, वहां आए, वहां आकर प्रवर भवन-अवतंसक के मुख्य-द्वार पर एक साथ मिले। मिलकर जहां बाहरी उपस्थानशाला थी, जहां बल राजा था, वहां आए, वहां आकर दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली दस-नखात्मक अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर, मस्तक पर टिकाकर, बल राजा का जय विजय की ध्वनि से वर्धापन किया।

वे स्वप्न-लक्षण-पाठक बल राजा के द्वारा वंदित, पूजित, सत्कारित और सम्मानित होकर अपने-अपने लिए पूर्व स्थापित भद्रासन पर बैठ गए।

१४१. बल राजा ने प्रभावती देवी को यवनिका के भीतर बिठाया। बिठाकर फूलों और फलों से भरे हुए हाथों वाले राजा बल ने परम विनयपूर्वक उन स्वप्न-लक्षण-पाठकों से इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो! प्रभावती देवी आज उस विशिष्ट वासघर में यावत् सिंह का स्वप्न देखकर जागृत हो गई। देवानुप्रियो! इस उदार यावत् महास्वप्न का क्या कल्याणकारी विशिष्ट फल होगा?

१४२. वे स्वप्न-लक्षण-पाठक राजा बल के पास इस अर्थ को सुनकर, अवधारण कर हृष्टतुष्ट हो गए, उस स्वप्न का अवग्रहण किया। अवग्रहण कर ईहा में अनुप्रवेश किया। अनुप्रवेश कर

उस स्वप्न के अर्थ का अवग्रहण किया। अवग्रहण कर एक दूसरे के साथ संचालना की। संचालना कर स्वप्न के अर्थ को स्वयं जाना, अर्थ का ग्रहण किया, उस विषय में प्रश्न किया, विनिश्चय किया, अर्थ को हृदयंगम किया। राजा बल के सामने स्वप्न-शास्त्रों का पुनः पुनः उच्चारण करते हुए इस प्रकार कहा—देवानुप्रिय! हमारे स्वप्न-शास्त्रों में बयांलीस स्वप्न और तीस महास्वप्न हैं—सर्व बहत्तर स्वप्न दृष्ट हैं। देवानुप्रिय! तीर्थंकर अथवा चक्रवर्ती की माता तीर्थंकर अथवा चक्रवर्ती के गर्भावक्रांति के समय इन तीस महास्वप्नों में से ये चौदह महास्वप्न देखकर जागृत होती हैं, जैसे—

हाथी, वृषभ, सिंह, अभिषेक, माला, चंद्रमा, दिनकर, ध्वज, कलश, पद्म-सरोवर, सागर, विमान-भवन, रत्न-राशि, अग्नि।

वासुदेव की माता वासुदेव के गर्भावक्रांति के समय इन चौदह महा स्वप्नों में से कोई सात महास्वप्न देखकर जागृत होती है। बलदेव की माता बलदेव के गर्भावक्रांति के समय इन चौदह महास्वप्नों में से कोई चार महास्वप्न देखकर जागृत होती है। मांडलिक राजा की माता मांडलिक के गर्भावक्रांति के समय इन चौदह महास्वप्नों में से कोई एक महास्वप्न देखकर जागृत होती है। देवानुप्रिय! प्रभावती देवी ने इन स्वप्नों में से एक महास्वप्न देखा है, इसलिए देवानुप्रिय! प्रभावती देवी ने उदार स्वप्न देखा है यावत् देवानुप्रिय! प्रभावती देवी ने आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायु, कल्याण तथा मंगलकारी स्वप्न देखा है।

देवानुप्रिय! अर्थ-लाभ होगा। देवानुप्रिय! भोग-लाभ होगा। देवानुप्रिय! पुत्र-लाभ होगा। देवानुप्रिय! राज्य-लाभ होगा।

इस प्रकार देवानुप्रिय! प्रभावती देवी बहु प्रतिपूर्ण नौ मास और साढ़े सात दिन-रात व्यतिक्रांत होने पर तुम्हारे कुलकेतु यावत् देवकुमार के समान प्रभा वाले पुत्र को जन्म देगी।

वह बालक बाल्य-अवस्था को पार कर, विज्ञ और कला का पारगामी बनकर, यौवन को प्राप्त कर शूर, वीर, विक्रांत, विपुल और विस्तीर्ण सेना-वाहन युक्त, राज्य का अधिपति राजा होगा अथवा भावितात्मा अनगर होगा। इसलिए देवानुप्रिय! (हमारा मत प्रामाणिक है) प्रभावती देवी ने उदार स्वप्न देखा है यावत् प्रभावती देवी ने आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायु, कल्याण और मंगलकारक स्वप्न देखा है।

१४३. वह बल राजा स्वप्न-लक्षण-पाठकों से इस अर्थ को सुनकर, अवधारण कर हृष्ट-तुष्ट हुआ। दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली दसनखात्मक अंजलि को सिर के सम्मुख घुमा कर मस्तक पर टिकाकर इस प्रकार बोला—देवानुप्रियो! यह ऐसा ही है। देवानुप्रियो! यह तथा (संवादितापूर्ण) है। देवानुप्रियो! यह अवितथ है। देवानुप्रियो! यह असंदिग्ध है। देवानुप्रियो! यह इष्ट है। देवानुप्रियो! यह प्रतीप्सित है। देवानुप्रियो! यह इष्ट-प्रतीप्सित है। जैसा आप कर रहे हैं, ऐसा भाव प्रदर्शित कर उस स्वप्न के फल को सम्यक् स्वीकार किया। स्वीकार कर स्वप्न-लक्षण-पाठकों का विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, पुष्प, वस्त्र, गंध और माल्यालंकारों से सत्कार किया, सम्मान किया। सत्कार-सम्मान कर जीवन-निर्वाह के योग्य विपुल प्रीतिदान दिया। प्रीतिदान देकर प्रतिविसर्जित किया। प्रतिविसर्जित कर सिंहासन से उठा। उठकर जहां प्रभावती देवी थी वहां आया। वहां आकर

प्रभावती देवी को इष्ट यावत् मधु-मधुर और श्री-संपन्न शब्दों के द्वारा पुनः-पुनः संलाप करता हुआ इस प्रकार बोला—देवानुप्रिये! स्वप्न-शास्त्र में बयालीस स्वप्न और तीस महास्वप्न—सर्व बहत्तर स्वप्न निर्दिष्ट हैं। देवानुप्रिये! तीर्थकर अथवा चक्रवर्ती की माता तीर्थकर अथवा चक्रवर्ती के गर्भावक्रांति के समय इन तीस महास्वप्नों में से ये चौदह महास्वप्न देखकर जागृत होती है। पूर्ववत् यावत् मांडलिक राजा की माता मांडलिक राजा के गर्भावक्रांति के समय इन चौदह महास्वप्नों में से कोई एक महास्वप्न देखकर जागृत होती है। देवानुप्रिये! तुमने एक महास्वप्न देखा है इसलिए देवी! तुमने उदार स्वप्न देखा है यावत् राज्य का अधिपति राजा अथवा भावितात्मा अनगर होगा। देवी! तुमने उदार स्वप्न देखा है यावत् आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायु, कल्याण और मंगलकारक स्वप्न देखा है। इस प्रकार उन इष्ट यावत् मधु-मधुर, श्री-संपन्न शब्दों के द्वारा दूसरी और तीसरी बार प्रभावती देवी के उल्लास का संवर्द्धन करता है।

१४४. वह प्रभावती देवी बल राजा के पास इस अर्थ को सुनकर, अवधारण कर हृष्ट-तुष्ट हुई। दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली दसनखात्मक अंजलि को मस्तक के सम्मुख घुमाकर, मस्तक पर टिकाकर इस प्रकार कहा—देवानुप्रिय! यह ऐसा ही है यावत् उस स्वप्न को सम्यक् स्वीकार किया। स्वीकार कर राजा बल की अनुज्ञा प्राप्त कर नाना मणि-रत्नों की भांतों से चित्रित भद्रासन से उठी। अत्वारित, अचपल, असंप्रांत, अविलंबित राजहंसिनी जैसी गति के द्वारा जहां अपना भवन था, वहां आई। वहां आकर अपने भवन में अनुप्रवेश किया।

१४५. प्रभावती देवी ने स्नान किया, बलि-कर्म किया यावत् शरीर को सर्व-अलंकार से विभूषित किया। वह उस गर्भ के लिए न अति शीत, न अति उष्ण, न अति तिक्त, न अति कटुक, न अति कषैला, न अति खट्टा, न अति मधुर, प्रत्येक ऋतु में सुखकर भोजन, आच्छादन और गंध, माल्य का सेवन करती। जो आहार हित, मित, पथ्य और गर्भ का पोषण करने वाला था उस देश और काल में वही आहार करती। दोष-रहित कोमल शय्या पर सोती। एकांत सुखकर मनोनुकूल विहार-भूमि में रहती। इस प्रकार अपने दोहद को प्रशस्त किया, अपने दोहद को संपूर्ण किया, अपने दोहद का सम्मान किया, अपने दोहद का लेश मात्र मनोरथ भी अधूरा नहीं छोड़ा, दोहद में उत्पन्न इच्छाओं को पूरा किया, दोहद पूर्ण किया। उसने रोग, शोक, मोह, भय और परित्रास से मुक्त होकर उस गर्भ का सुखपूर्वक वहन किया।

१४६. प्रभावती देवी ने बहु प्रतिपूर्ण नौ मास और साढे सात रात दिन के व्यतिक्रांत होने पर सुकुमाल हाथ पैर वाले, अहीन पंचेन्द्रिय शरीर, लक्षण-व्यंजन-गुणों से युक्त, मान, उन्मान और प्रमाण से प्रतिपूर्ण, सुजात, सर्वांग-सुन्दर, चंद्रमा के समान सौम्य आकार वाले, कांत, प्रियदर्शन और सूरूप पुत्र को जन्म दिया।

१४७. प्रभावती देवी ने पुत्र को जन्म दिया है—यह जानकर प्रभावती देवी की अंग-प्रतिचारिका जहां राजा बल था, वहां आई। वहां आकर दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली दस-नखात्मक अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर, मस्तक पर टिकाकर राजा बल को जय विजय के द्वारा वर्धापित किया। वर्धापित कर इस प्रकार बोली—देवानुप्रिय! प्रभावती देवी ने

बहु प्रतिपूर्ण नव मास साढ़े सात रात-दिन के व्यतिक्रांत होन पर यावत् सुरूप पुत्र को जन्म दिया है। इसलिए हम देवानुप्रिय को प्रिय निवेदन करती हैं। आपका प्रिय हो।

१४८ अंग-प्रतिचारिका से इस अर्थ को सुनकर, अवधारण कर, राजा बल हृष्ट-तुष्ट चित्त वाला, आनंदित, नंदित, प्रीतिपूर्ण मन वाला, परम सौमनस्य युक्त और हर्ष से विकस्वर हृदय वाला हो गया। उसका शरीर धारा से आहत कदंब के सुरभि कुसुम की भांति पुलकित शरीर एवं उच्छ्वसित रोम-कूप वाला हो गया। उसने उन अंग-प्रतिचारिकाओं को मुकुट को छोड़ कर धारण किये हुए शेष सभी आभूषण दे दिए। देकर श्वेत-रजतमय विमल जल से भरी हुई झारी को ग्रहण किया। ग्रहण कर अंग प्रतिचारिकाओं के मस्तक को प्रक्षालित किया। प्रक्षालित कर दासत्व से मुक्त कर जीवन-निर्वाह के योग्य विपुल प्रीतिदान दिया। प्रीतिदान देकर सत्कार-सम्मान किया। सत्कार-सम्मान कर प्रतिविसर्जित किया।

१४९. बल राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिय! हस्तिनापुर नगर में शीघ्र ही चारक-शोधन-बंदियों का विमोचन करो, विमोचन कर मान-उन्मान (तौल-माप) में वृद्धि करो, वृद्धि कर हस्तिनापुर नगर के भीतरी और बाहरी क्षेत्र को सुगंधित जल से सींचो, झाड़-बुहार कर गोबर का लेप करो यावत् प्रवर सुरभि वाले गंध चूर्णों से सुगंधित गंधवर्तिका के समान करो, कराओ, कर और कराकर यूष-सहस और चक्र-सहस की पूजा और महामहिमा युक्त उत्सव करो। उत्सव कर मेरी आज्ञा मुझे प्रत्यर्पित करो।

१५०. वे कौटुम्बिक पुरुष बल राजा के इस प्रकार कहने पर हृष्ट-तुष्ट हो गए यावत् बल राजा की आज्ञा बल राजा को प्रत्यर्पित की।

१५१. वह बल राजा जहां व्यायाम-शाला थी, वहां आया, वहां आकर पूर्ववत् यावत् स्नानघर से प्रतिनिष्क्रमण किया। प्रतिनिष्क्रमण कर राजा बल ने निर्देश दिया—दस दिवस के लिए कुल मर्यादा के अनुरूप पुत्र जन्म महोत्सव मनाया जाए—प्रजा से शुल्क और भूमि का कर्षण न करें, क्रय-विक्रय का निषेध करने के कारण देने और भापने की प्रणाली स्थगित हो गई है। सुभट प्रजा के घर में प्रवेश न करें। राज दण्ड से प्राप्त द्रव्य और कुदंड—अपराधी आदि से प्राप्त दंड द्रव्य न लें। ऋण धारण करने वालों को ऋण मुक्त करें। गणिका आदि के द्वारा प्रवर नाटक किए जाएं, वहां अनेक ताल बजाने वालों का अनुचरण होता रहे, नगर में सतत मृदंग बजते रहें, अम्लान पुष्प मालाएं (तोरण-द्वारों आदि पर) बांधी जाएं। इस प्रकार प्रमुदित और खुशियों से झूमते हुए नागरिक और जनपद वासी पुत्र जन्म उत्सव में सहभागी बनें।

१५२. कुल मर्यादा के अनुरूप चल रहे दसाहिक महोत्सव में बल राजा बल ने सैकड़ों, हजारों, लाखों द्रव्यों से याग कार्य कराए।

दान और भाग (विवक्षित द्रव्य का अंश) दिया, दिलवाया। सैकड़ों, हजारों, लाखों लोगों से उपहार को ग्रहण करता हुआ, स्वीकार करता हुआ, स्वीकार करवाता हुआ विहरण कर रहा था।

१५३. बालक के माता-पिता ने प्रथम दिन कुल मर्यादा के अनुरूप महोत्सव मनाया। तीसरे दिन चंद्र-सूर्य के दर्शन कराए। छठे दिन जागरण किया। इस प्रकार ग्यारह दिन व्यतिक्रांत होने

पर अशुचिजात-कर्म से निवृत्त होकर बारहवें दिन के आने पर विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य तैयार कराए, करा कर मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, संबंधी, परिजन, राजा और क्षत्रियों को आमंत्रित किया, आमंत्रित करने के पश्चात् स्नान किया, पूर्ववत् यावत् सत्कार-सम्मान किया, सत्कार-सम्मान कर उन मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, संबंधी, परिजन, राजा और क्षत्रियों के सामने पितामह, प्रपितामह, प्रप्रपितामह आदि बहुपुरुष की परंपरा से रुढ, कुलानुरूप, कुल-सदृश, कुल संतान के तंतु का संवर्द्धन करने वाला, इस प्रकार का गुण-युक्त गुण-निष्पन्न नामकरण किया—क्योंकि यह बालक राजा बल का पुत्र और प्रभावती देवी का आत्मज है, इसलिए इसका नाम होना चाहिए—‘महाबल-महाबल।’ तब उसके माता-पिता ने उस बालक का नाम महाबल किया।

१५४. बालक महाबल पांच धार्यों के द्वारा परिगृहीत (जैसे क्षीर-धातु) इस प्रकार दृढ-प्रतिज्ञ की भांति वक्तव्यता (रायपसेणीय, सूत्र ८०५) यावत् निर्वर्तित और व्याघात रहित स्थान में सुखपूर्वक बढ़ने लगा।

१५५. उस बालक महाबल के माता-पिता ने अनुक्रम से कुल-मर्यादा के अनुरूप चंद्र-सूर्य के दर्शन कराए, जागरण, नामकरण, भूमि पर रेंगना, पैरों से चलना, भोजन प्रारंभ करना, ग्रास को बढ़ाना, संभाषण सिखाना, कर्ण-वेधन, संवत्सर-प्रतिलेखन (वर्षगांठ-मनाना) चूड़ा धारण करना, उपनयन-संस्कार (कलादि ग्रहण) और अन्य अनेक गर्भाधान, जन्म-महोत्सव आदि कौतुक किए।

१५६. माता-पिता ने महाबल कुमार को सातिरेक आठ वर्ष का जानकर शोभन तिथि, करण, नक्षत्र और मूहूर्त में कलाचार्य के पास भेजा। इस प्रकार दृढप्रतिज्ञ की भांति वक्तव्यता यावत् भोग का उपभोग करने में समर्थ हुआ।

१५७. महाबल कुमार बाल्यावस्था को पार कर यावत् भोग के उपभोग में समर्थ है, यह जान कर माता-पिता ने आठ प्रासाद-अवतंसक बनवाए—अत्यंत ऊंचे, हंसते हुए श्वेतप्रभा पटल की भांति श्वेत वेदिका-संयुक्त—रायपसेणइय (सू. १३७) की भांति वक्तव्यता यावत् प्रतिरूप थे। उन आठ प्रासाद-अवतंसक के बहु-मध्य-भाग में एक महान् भवन बनवाया—अनेक सैकड़ों स्तंभों पर अवस्थित था, (रायपसेणइय, सूत्र ३२) की भांति वर्णक-प्रेक्षाघर मंडप यावत् प्रतिरूप था।

१५८. उस महाबल कुमार ने किसी समय शोभन तिथि, करण, दिवस, नक्षत्र और मुहूर्त में स्नान किया, बलि-कर्म किया, कौतुक, मंगल और प्रायश्चित्त किया, सर्व अलंकारों से विभूषित हुआ। सौभाग्यवती स्त्रियों ने अभ्यंगन, स्नान, गीत, वादित आदि से प्रसाधन तथा आठ अंगों पर तिलक किए, कंकण के रूप में लाल डोरे को हाथ में बांधा, दधि, अक्षत आदि मंगल एवं मंगल गीत आशीर्वाद के रूप में गाए, प्रवर कौतुक एवं मंगल-उपचार के रूप में शांति कर्म आदि उपनय किए। माता-पिता ने एक दिन समान जोड़ी वाली, समान त्वचा वाली, समान वय वाली, समान लावण्य, रूप, यौवन-गुणों से उपेत, विनीत, कौतुक, मंगल एवं प्रायश्चित्त की हुई, सदृश राजकुलों से आई हुई आठ प्रवर राजकन्याओं के साथ महाबल कुमार का पाणिग्रहण करवाया।

१५९. महाबल कुमार के माता-पिता ने इस आकार वाला प्रीतिदान किया, जैसे—आठ करोड़ हिरण्य, आठ करोड़ स्वर्ण, मुकुटों में प्रवर आठ मुकुट, कुंडल युगलों में प्रवर आठ कुंडल-युगल, हारों में प्रवर आठ हार, अर्द्धहारों में प्रवर आठ अर्द्धहार, एकावलियों में प्रवर आठ एकावली, इसी प्रकार आठ मुक्तावली, इसी प्रकार आठ कनकावली, इसी प्रकार आठ रत्नावली, कड़ों की जोड़ी में प्रवर आठ कड़ों की जोड़ी, इसी प्रकार आठ बाजूबंध की जोड़ी, क्षौम-युगल में आठ प्रवर क्षौम-युगल वस्त्र, आठ टसर-युगल (एक तरह का कड़ा, मोटा रेशम या उसका बना कपड़ा) इसी प्रकार आठ पट्ट-युगल, इस प्रकार आठ वृक्ष-छाल से निष्पन्न वस्त्र-युगल, आठ श्री, आठ ह्री, इस प्रकार आठ धृति, कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी, रत्नमय आठ नंद-मंगल वस्तुएं, आठ भद्र-मूढ आसन और ताल में प्रवर आठ तालवृक्ष, निज घर के लिए केतु रूप ध्वजों में प्रवर आठ ध्वज, दस-दस हजार गायों वाले गोकुलों में प्रवर आठ गोकुल, बत्तीस व्यक्तियों द्वारा किए जाने वाले नृत्य में प्रवर आठ नृत्य, अश्वों में प्रवर श्रीगृह-रूप आठ रत्नमय अश्व, हस्तियों में प्रवर श्रीगृह-रूप आठ रत्नमय हस्ती, यानों में प्रवर आठ यान, युग्मों में प्रवर आठ युग्म-वाहन, इस प्रकार शिविका, इस प्रकार स्यंदमानिका, इसी प्रकार डोली, दो खच्चरों वाली बग्घी, विकट यान में आठ प्रवर विकट (खुले) यान, आठ पारियानिक रथ, आठ सांग्रामिक रथ, अश्वों में प्रवर आठ अश्व, हस्तियों में प्रवर आठ हस्ति, दस हजार कुलों (परिवारों) से युक्त एक ग्राम होता है ऐसे ग्रामों में प्रवर आठ ग्राम, दासों में प्रवर आठ दास, इसी प्रकार दासी, किंकर, कंचुकी-पुरुष, वर्षधर (अंतःपुर रक्षक) और महत्तरक, आठ सोने के अवलंबक दीपक, आठ चांदी के अवलंबक दीपक, आठ स्वर्ण-रजत के अवलंबक दीपक, आठ स्वर्ण के उत्कंचक (ऊर्ध्व-दंड-युक्त) दीपक, इसी प्रकार रजत और स्वर्ण-रजत के उत्कंचक दीपक, आठ स्वर्ण के पंजर (अभ्र-पटल-युक्त) दीपक, इसी प्रकार रजत और स्वर्ण-रजत के आठ पंजर दीपक, आठ स्वर्ण की थाली, आठ रजत की थाली, आठ स्वर्ण-रजत की थाली, आठ स्वर्ण-परात, आठ रजत-परात, आठ स्वर्ण-रजत-परात, आठ स्वर्ण-स्थासक, आठ रजत-स्थासक, आठ स्वर्ण-रजत-स्थासक, आठ स्वर्ण-मल्लक (कटोरे); आठ रजत-मल्लक, आठ स्वर्ण-रजत-मल्लक, आठ स्वर्ण-तलिका (पात्र-विशेष) आठ रजत-तलिका, आठ स्वर्ण-रजत-तलिका, आठ स्वर्ण-कलाचिका, आठ रजत-कलाचिका, आठ स्वर्ण-रजत-कलाचिका, आठ स्वर्ण-तापिकाहस्तक (संडासी), आठ रजत-तापिकाहस्तक, आठ स्वर्ण-रजत-तापिकाहस्तक, आठ स्वर्ण-तवे, आठ रजत-तवे, आठ स्वर्ण-रजत-तवे, आठ स्वर्ण-पादपीठ, आठ रजत-पादपीठ, आठ स्वर्ण-रजत-पादपीठ, आठ स्वर्ण-भीषिका (आसन-विशेष), आठ रजत-भीषिका, आठ स्वर्ण-रजत-भीषिका, आठ स्वर्ण-करोटिका (लोटा), आठ रजत-करोटिका, आठ स्वर्ण-रजत-करोटिका, आठ स्वर्ण-पर्यंक, आठ रजत-पर्यंक, आठ स्वर्ण-रजत-पर्यंक, आठ स्वर्ण-प्रतिशय्या, आठ रजत-प्रतिशय्या, आठ स्वर्ण-रजत-प्रतिशय्या, आठ स्वर्ण-हंसासन, आठ रजत-हंसासन, आठ स्वर्ण-रजत-हंसासन, आठ स्वर्ण-क्रौंचासन, आठ रजत-क्रौंचासन, आठ स्वर्ण-रजत-क्रौंचासन, इसी प्रकार आठ गरुडासन, -उन्नत-आसन, प्रणत-आसन, दीर्घ-आसन, भद्रासन, पक्षासन, मकरासन, आठ पद्मासन, आठ दिक्-स्वस्तिक-आसन, आठ तेल के डिब्बे, आठ सुगंधित चूर्ण के डिब्बे, इसी प्रकार

आठ नागर, धूमवास, तगर, इलायची, हरताल, हिंगुर, मनःशिल और अंजन के डिब्बे, आठ सर्षप के डिब्बे, आठ कुब्जा दासियां (उववाई, सूत्र ७०) की भांति वक्तव्यता यावत् आठ पारसी दासियां, आठ छत्र, आठ छत्रधारिणी दासियां, आठ चामर, आठ चामरधारिणी दासियां, आठ तालवृंत (बीजन), आठ तालवृंतधारिणी दासियां, आठ करोटिका, आठ करोटिकाधारिणी दासियां, आठ क्षीर-धात्रियां, आठ मज्जन-धात्रियां, आठ मंडन-धात्रियां, आठ खेलनक-धात्रियां, आठ अंक-धात्रियां, आठ अंग-मर्दिका, आठ उन्मर्दिका, आठ स्नान कराने वाली, आठ मंडन (प्रवर पोशाक पहनाने वाली) करने वाली, आठ चन्दन आदि घिसने वाली, आठ चूर्णक (तांबूल, गंधद्रव्य आदि) पीसने वाली, आठ क्रीड़ा करने वाली, आठ परिहास करने वाली, आठ आसन के समीप रहने वाली, आठ नाटक करने वाली, आठ कौटुम्बिक आज्ञाकारिणी दासियां, आठ रसोई बनाने वाली, आठ भंडार की रक्षा करने वाली, आठ बालक का लालन-पालन करने वाली दासियां, आठ पुष्प-धारिणी (पुष्प की रक्षा करने वाली), आठ पानी भरने वाली, आठ बलि करने वाली, आठ शय्या करने वाली, आठ आभ्यंतर प्रातिहारियां, आठ बाह्य प्रातिहारियां, आठ माला बनाने वाली, आठ आटा आदि पीसने वाली, इसके अतिरिक्त बहुत सारा हिरण्य, सुवर्ण, कांस्य, दूष्य (वस्त्र), विपुल वैभव, कनक, रत्न, मणि, मौक्तिक, शंख, मनःशिल, प्रवाल, लालरत्न और श्रेष्ठसार—इन वैभवशाली द्रव्यों का प्रीतिदान किया, जो सातवीं पीढ़ी तक प्रकाम देने के लिए, प्रकाम भोगने और बांटने के लिए समर्थ था।

१६०. महाबल कुमार ने प्रत्येक पत्नी को एक-एक कोटि हिरण्य दिया, एक-एक कोटि सुवर्ण दिया, एक-एक मुकुटों में प्रवर मुकुट दिया, इसी प्रकार संपूर्ण वर्णन पूर्ववत् यावत् एक-एक आटा आदि पीसने वाली दासी दी। इसके अतिरिक्त बहुत सारा हिरण्य, सुवर्ण, कांस्य, दूष्य (वस्त्र) विपुल वैभव, कनक, रत्न, मणि, मौक्तिक, शंख, मनःशिल, प्रवाल, लालरत्न और श्रेष्ठसार—इन वैभवशाली द्रव्यों का प्रीतिदान किया, जो सातवीं पीढ़ी तक प्रकाम देने के लिए, प्रकाम भोगने और बांटने के लिए समर्थ था।

१६१. महाबल कुमार अपने प्रवर प्रासाद के उपरिभाग में जैसे जमाली की यावत् पंचविध मनुष्य-संबन्धी काम-भोग को भोगता हुआ विहार करने लगा।

१६२. उस काल और उस समय में अर्हत् विमल (तेरहवें तीर्थंकर) के प्रपौत्र (प्रशिष्य) जाति-संपन्न वर्णक केशीस्वामी (राघवसेणइय, ६८७) की भांति वक्तव्यता यावत् धर्मघोष नामक अणगार पांच सौ अणगारों के साथ संपरिवृत होकर क्रमानुसार विचरण, ग्रामानुग्राम परिव्रजन करते हुए जहां हस्तिनापुर नगर था जहां सहस्राश्रवण उद्यान था, वहां आए। वहां आकर प्रवास-योग्य स्थान की अनुमति ली, अनुमति लेकर संयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए विहार कर रहे थे।

१६३. हस्तिनापुर नगर के शृंगाटकों, तिराहों, चौराहों, चौहटों, चार द्वार वाले स्थानों, राजमार्गों और मार्गों पर महान् जन सम्मर्द यावत् परिषद् पर्युपासना करने लगी।

१६४. महाबल कुमार उस महान् जन-सम्मर्द, जन-व्यूह यावत् जन-सन्निपात सुन कर, देख कर इस प्रकार जैसे जमाली की वैसे ही सोचा, कंचुकी पुरुष को बुलाया, बुला कर इस

प्रकार कहा—देवानुप्रियो! क्या हस्तिनापुर नगर में इन्द्र-महोत्सव है यावत् सार्थवाह आदि निर्गमन कर रहे हैं?

१६५. महाबलकुमार के यह कहने पर वह कंचुकी-पुरुष हृष्टतुष्ट हो गया। उसने धर्मघोष अनगार के आगमन का निश्चय होने पर दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली दस-नखात्मक अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर, मस्तक पर टिका कर महाबल कुमार को 'जय-विजय' के द्वारा वर्धापित किया। वर्धापित कर वह इस प्रकार बोला—देवानुप्रिय! आज हस्तिनापुर नगर में न इन्द्र-महोत्सव है यावत् सार्थवाह आदि निर्गमन कर रहे हैं। देवानुप्रिय! आज अर्हत् विमल के प्रशिष्य, धर्मघोष नामक अनगार हस्तिनापुर नगर के बाहर सहस्राप्रवन उद्यान में प्रवास योग्यस्थान की अनुमति लेकर संयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए विहार कर रहे हैं इसलिए ये बहुत उग्र, भोज यावत् सार्थवाह आदि निर्गमन कर रहे हैं।

१६६. महाबल कुमार ने उसी प्रकार श्रेष्ठ रथ पर बैठकर निर्गमन किया। धर्म कथा केशी स्वामी की भांति वक्तव्य है। उसने उसी प्रकार माता-पिता से पूछा, इतना विशेष है—धर्मघोष अनगार के पास मुंड होकर अगार से अनगारिता में प्रव्रजित होना चाहता हूं। उसी प्रकार उत्तर-प्रत्युत्तर, इतना विशेष है—जात! ये तुम्हारी आठ गुण वल्लभ पत्नियां, जो विशाल कुल की बालिकाएं, कला कुशल, सर्वकाल लालित, सुख भोगने योग्य शेष (भ. ९/१७३) जमालि की भांति वक्तव्यता यावत् उसके माता-पिता ने अनिच्छापूर्वक महाबल कुमार को इस प्रकार कहा—जात! हम तुम्हें एक दिन के लिए राज्यश्री से संपन्न (राजा) देखना चाहते हैं।

१६७. महाबल कुमार माता-पिता के वचन का अनुवर्तन करता हुआ मौन हो गया।

१६८. बल राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, इस प्रकार शिवभद्र की भांति राज्याभिषेक वक्तव्य है, यावत् अभिसिक्त किया, दोनों हथेलियों से निष्पन्न संपुट आकार वाली दस-नखात्मक अंजलि को सिर के सम्मुख घुमाकर, मस्तक पर टिकाकर महाबल कुमार को 'जय विजय' के द्वारा वर्धापित किया। वर्धापित कर इस प्रकार कहा—जात! बताओ, हम क्या दें? क्या वितरण करें? शेष जैसे जमालि की वक्तव्यता वैसे ही यावत्—

१६९. महाबल अनगार ने धर्मघोष अनगार के पास सामायिक आदि चौदह पूर्वों का अध्ययन किया, अध्ययन कर चतुर्थ-भक्त, षष्ठ-भक्त, अष्टम-भक्त, दशम-भक्त, द्वादश-भक्त, अर्ध-मास और मास-क्षण आदि विचित्र तपःकर्म के द्वारा आत्मा को भावित करते हुए बहु प्रतिपूर्ण बारह वर्षों तक श्रामण्य-पर्याय का पालन किया। पालन कर एक महीने की संलेखना से अपने आपको कृश बनाकर, अनशन के द्वारा साठ भक्त का छेदन कर, आलोचना-प्रतिक्रमण कर समाधि-पूर्ण दशा में कालमास में काल को प्राप्त कर, चांद, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र, तारा-रूप, बहुत योजन ऊपर, बहुत सौ, हजार, लाख, करोड़ और क्रोडाक्रोड़ योजन ऊपर, सौधर्म-, ईशान-, सनत्कुमार-, माहेन्द्र-कल्प का व्यतिक्रमण कर ब्रह्मलोक-कल्प में देव रूप में उपपन्न हुआ। वहां कुछ देवों की स्थिति दस सागरोपम प्रज्ञप्त है। वहां महाबल देव की स्थिति दस सागरोपम प्रज्ञप्त है। सुदर्शन! तुम ब्रह्मलोक-कल्प में दस सागरोपम काल तक दिव्य भोगार्ह भोगों को भोगते हुए विहार कर उस देवलोक से आयु-

क्षय, भव-क्षय और स्थिति-क्षय के अनंतर उस देवलोक से च्यवन कर इसी वाणिज्यग्राम नगर में श्रेष्ठिकुल में पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए।

१७०. सुदर्शन! तुमने बाल्यावस्था को पार कर, विश और कला के पारगामी बन कर, यौवन को प्राप्त कर तथारूप स्थविरों के पास केवलप्रज्ञप्त-धर्म को सुना। वही धर्म इच्छित, प्रतीक्षित, अभिरुचित है। सुदर्शन! वह अच्छा है, जो तुम अभी कर रहे हो। सुदर्शन! इस अपेक्षा से यह कहा जा रहा है—इन पल्योपम-सागरोपम का क्षय-अपचय होता है।

१७१. श्रमण भगवान महावीर के पास इस अर्थ को सुनकर, अवधारण कर, शुभ अध्यवसाय, शुभ परिणाम, विशुद्ध लेश्या और तदावरणीय कर्मों के क्षयोपशम के द्वारा ईहा, अपोह, मार्गणा, गवेषणा करते हुए सुदर्शन श्रेष्ठी को पूर्ववर्ती संज्ञी भवों का जाति-स्मृति-ज्ञान समुत्पन्न हुआ। उसने इस अर्थ को सम्यक् साक्षात् जान लिया।

१७२. श्रमण भगवान महावीर द्वारा पूर्वभव का जाति-स्मृति ज्ञान कराने से सुदर्शन श्रेष्ठी की श्रद्धा और संवेग द्विगुणित हो गए। उसके नेत्र आनंदाश्रु से पूर्ण हो गए। उसने श्रमण भगवान महावीर को दाईं ओर से प्रारंभ कर तीन बार प्रदक्षिणा की, वंदन-नमस्कार किया। वंदन-नमस्कार कर इस प्रकार कहा—भंते! यह ऐसा ही है, भंते! यह तथा (संवादितापूर्ण) है, भंते! यह अवितथ है, भंते! यह असंदिग्ध है। भंते! यह इष्ट है, भंते! यह प्रतीप्सित है, भंते! यह इष्ट-प्रतीप्सित है। जैसा आप कह रहे हैं—ऐसा भाव प्रदर्शित कर वह उत्तर-पूर्व दिशा भाग (ईशान कोण) की ओर गया शेष जैसे ऋषभदत्त (भ.९/१५१) की वक्तव्यता वैसे ही यावत् सर्व दुःखों अंत किया, इतना विशेष है—चौदह पूर्वों का अध्ययन किया, बहुप्रतिपूर्ण बारह वर्ष तक श्रमण्य-पर्याय का पालन किया, शेष पूर्ववत्।

१७३. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

बारहवां उद्देशक

ऋषिभद्रपुत्र-पद

१७४. उस काल और उस समय में आलभिका नामक नगरी थी—वर्णक, शंखवन चैत्य—वर्णक। उस आलभिका नगरी में अनेक ऋषिभद्रपुत्र आदि श्रमणोपासक रहते थे। वे संपन्न यावत् बहुजन के द्वारा अपरिभवनीय थे। जीव-अजीव के जानने वाले यावत् यथा परिगृहीत तपःकर्म के द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विहार कर रहे थे।

१७५. किसी समय एकत्र सम्मिलित, समुपागत, सन्निविष्ट और सन्निषण्ण उन श्रमणोपासकों में परस्पर इस प्रकार का वार्तालाप हुआ—आर्यों! देवलोक में देवों की स्थिति कितने काल की प्रज्ञप्त है?

१७६. ऋषिभद्रपुत्र श्रमणोपासक को देवस्थिति का अर्थ गृहीत था। उसने श्रमणोपासकों से इस प्रकार कहा—आर्यों! देवलोक में देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष प्रज्ञप्त है, उसके बाद एक-समय-अधिक, दो-समय-अधिक, तीन-समय-अधिक यावत् दस-समय-अधिक, संख्येय-समय-अधिक, असंख्येय-समय-अधिक, उत्कृष्ट स्थिति तैतीस सागरोपम प्रज्ञप्त है,

उसके बाद देव और देवलोक व्युच्छिन्न हैं।

१७७. श्रमणोपासकों ने श्रमणोपासक ऋषिभद्रपुत्र के इस प्रकार आख्यान यावत् प्ररूपणा करने पर इस अर्थ पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि नहीं की। इस अर्थ पर अश्रद्धा, अप्रतीति, और अरुचि करते हुए जिस दिशा से आए थे उसी दिशा में लौट गए।

१७८. उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर यावत् पधारे यावत् परिषद् ने पर्युपासना की। वे श्रमणोपासक इस कथा को सुनकर हृष्टतुष्ट चित्त वाले हो गए। वे परस्पर एक-दूसरे को संबोधित कर इस प्रकार बोले—देवानुप्रियो! श्रमण भगवान महावीर यावत् आलभिका नगरी में प्रवास-योग्य स्थान की अनुमति लेकर संयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए विहार कर रहे हैं।

देवानुप्रियो! तथारूप अर्हत् भगवान के नाम-गोत्र का श्रवण भी महान् फलदायक है, फिर अभिगमन, वन्दन, नमस्कार, प्रतिपृच्छा और पर्युपासना का कहना ही क्या? एक भी आर्यधार्मिक सुवचन का श्रवण महान फलदायक है फिर विपुल अर्थ-ग्रहण का कहना ही क्या? इसलिए देवानुप्रियो! हम चलें, श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार करें, सत्कार-सम्मान करें। वे कल्याणकारी हैं, मंगल, देव और प्रशस्त चित्त वाले हैं। उनकी पर्युपासना करें।

यह हमारे परभव और इहभव के लिए हित, सुख, क्षम, निःश्रेयस और आनुगामिकता के लिए होगा। ऐसा सोच कर उन्होंने परस्पर इस अर्थ को स्वीकार किया। स्वीकार कर जहां अपना-अपना घर था वहां आए। वहां आकर उन्होंने स्नान किया, बलि-कर्म किया, कौतुक, मंगल और प्रायश्चित्त किया, शुद्ध प्रवेश्य (सभा में प्रवेशोचित) मांगलिक वस्त्रों को विधिवत् पहना। अल्पभार और बहुमूल्य वाले आभरणों से शरीर को अलंकृत किया। इस प्रकार सज्जित होकर वे अपने-अपने घरों से निकलकर एक साथ मिले, एक साथ मिलकर पैदल चलते हुए आलभिका नगरी के बीचोंबीच निर्गमन किया, निर्गमन कर जहां शंखवन चैत्य था, जहां श्रमण भगवान महावीर थे, वहां आए। वहां आकर श्रमण भगवान महावीर को यावत् तीन प्रकार की पर्युपासना के द्वारा पर्युपासना की। श्रमण भगवान महावीर ने उन श्रमणोपासकों को उस विशालतम परिषद् में धर्म का उपदेश दिया यावत् आज्ञा की आराधक होता है।

१७९. वे श्रमणोपासक श्रमण भगवान महावीर से धर्म को सुनकर, अवधारण कर, हृष्टतुष्ट हो गए। वे उठकर खड़े हुए—खड़े होकर श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार कर इस प्रकार कहा—भंते! श्रमणोपासक ऋषिभद्रपुत्र ने इस प्रकार आख्यान यावत् प्ररूपणा की—आर्यों! देवलोक में देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष प्रज्ञप्त है। इसके बाद एक-समय-अधिक यावत् उसके बाद देव और देवलोक व्युच्छिन्न है।

१८०. भंते! यह इस प्रकार कैसे है?

आर्यों! श्रमण भगवान महावीर ने उन श्रमणोपासकों को इस प्रकार कहा—आर्यों! श्रमणोपासक ऋषिभद्रपुत्र ने इस प्रकार आख्यान यावत् प्ररूपणा की—देवलोक में देवों की

जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की प्रज्ञप्त है, उसके बाद एक-समय-अधिक यावत् उसके बाद देव और देवलोक व्युच्छिन्न है—यह अर्थ सत्य है। आर्यों! मैं भी इस प्रकार का आख्यान यावत् प्ररूपणा करता हूँ—आर्यों! देवलोक में देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष प्रज्ञप्त है, उसके बाद एक-समय-अधिक, दो-समय-अधिक, तीन-समय-अधिक यावत् दस-समय-अधिक, संख्येय-समय-अधिक, असंख्येय-समय-अधिक, उत्कृष्ट स्थिति तैतीस सागरोपम प्रज्ञप्त है। इसके बाद देव और देवलोक व्युच्छिन्न हैं—यह अर्थ सत्य है।

१८१. उन श्रमणोपासकों ने श्रमण भगवान् महावीर से इस अर्थ को सुनकर, अवधारण कर, श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार कर जहां श्रमणोपासक ऋषिभद्रपुत्र थे वहां आए, वहां आकर श्रमणोपासक ऋषिभद्रपुत्र को वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार कर बोले—‘तुमने जो कहा, वह अर्थ सम्यक् है’ विनयपूर्वक बार-बार क्षमायाचना की। उन श्रमणोपासकों ने श्रमण भगवान् महावीर से अन्य प्रश्न पूछे, पूछकर अर्थ को हृदय में धारण किया, हृदय में धारण कर श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार कर जिस दिशा से आए थे, उसी दिशा में लौट गए।

१८२. भगवान् गौतम ने श्रमण भगवान् महावीर को ‘भंते!’ ऐसा कहकर वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार कर इस प्रकार कहा—भंते! श्रमणोपासक ऋषिभद्रपुत्र देवानुप्रिय के समीप मुंड होकर अगर से अनगारिता में प्रव्रजित होगा?

गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। श्रमणोपासक ऋषिभद्रपुत्र बहुत शीलव्रत, गुण, विरमण, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास से यथा-परिगृहीत तपःकर्म के द्वारा आत्मा को भावित करता हुआ बहुत वर्षों तक श्रमणोपासक-पर्याय का पालन करेगा, पालन कर एक महीने की संलेखना से अपने शरीर को कृश बना कर, अनशन के द्वारा साठ-भक्त का छेदन कर, आलोचना-प्रतिक्रमण कर समाधि-पूर्ण दशा में कालमास में काल को प्राप्त कर सौधर्म-कल्प के अरुणाभ-विमान में देव-रूप में उत्पन्न होगा। वहां कुछ देवों की स्थिति चार पल्योपम की प्रज्ञप्त है। वहां ऋषिभद्रपुत्र देव की भी स्थिति चार पल्योपम होगी।

१८३. भंते! ऋषिभद्रपुत्र देव आयु-क्षय, भव-क्षय और स्थिति-क्षय के अनंतर उस देवलोक से च्यवन कर कहां जाएगा? कहां उपपन्न होगा?

गौतम! महाविदेह वास में सिद्ध, प्रशांत, मुक्त, परिनिर्वृत और सब दुःखों का अंत करेगा।

१८४. भंते! वह ऐसा ही है, वह ऐसा ही है—इस प्रकार भगवान् गौतम यावत् आत्मा को भावित करते हुए विहार करने लगे।

१८५. श्रमण भगवान् महावीर ने कभी किसी दिन आलभिका नगरी से शंखवन चैत्य से प्रतिनिष्क्रमण किया, प्रतिनिष्क्रमण कर बाहर जनपद-विहार करने लगे।

पुद्गल-परिव्राजक-पद

१८६. उस काल और उस समय में आलभिका नाम की नगरी थी—वर्णक। वहां शंखवन नाम का चैत्य था—वर्णक। उस शंखवन चैत्य से कुछ दूरी पर पुद्गल नाम का परिव्राजक था—वह ऋग्वेद, यजुर्वेद, यावत् अन्य अनेक ब्राह्मण और परिव्राजक संबंधी नयों में निष्णात, निरंतर

बेले-बेले (दो दिन का उपवास) के तप की साधना के द्वारा दोनों भुजाओं को ऊपर उठाकर सूर्य के सामने आतापन-भूमि में आतापना लेता हुआ विहरण कर रहा है।

१८७. उस पुद्गल परिव्राजक का निरंतर बेले-बेले तपःकर्म के द्वारा, दोनों भुजाओं को ऊपर उठाकर सूर्य के सामने आतापन-भूमि में आतापना लेते हुए, प्रकृति की भद्रता, प्रकृति की उपशांतता, प्रकृति में क्रोध, मान, माया और लोभ की प्रतनुता, मृदुमार्दव संपन्नता, आत्मलीनता और विनीतता के द्वारा किसी समय तदावरणीय कर्मों के क्षयोपशम के द्वारा ईहा, अपोह, मार्गणा-गवेषणा करते हुए विभंग नाम का ज्ञान समुत्पन्न हुआ। वह उस समुत्पन्न विभंग ज्ञान के द्वारा ब्रह्मलोक कल्प तक के देवों की स्थिति को जानता-देखता है।

१८८. उस पुद्गल परिव्राजक के इस आकार वाला आध्यात्मिक, स्मृत्यात्मक, अभिलाषात्मक, मनोगत संकल्प समुत्पन्न हुआ—मुझे अतिशायी ज्ञान-दर्शन समुत्पन्न हुआ है। देवलोक में देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष प्रज्ञप्त है। उसके बाद एक-समय-अधिक, दो-समय-अधिक यावत् असंख्येय-समय-अधिक, उत्कृष्ट स्थिति दस सागरोपम प्रज्ञप्त है। उसके बाद देव और देवलोक व्युच्छिन्न हैं—इस प्रकार संप्रेक्षा की, संप्रेक्षा कर आतापन-भूमि से नीचे उतरा, उतर कर त्रिदंड, कमंडलु यावत् गैरिक वस्त्रों को ग्रहण किया, ग्रहण कर जहां आलभिका नगरी थी, जहां परिव्राजक रहते थे, वहां आया, आकर भंड को स्थापित किया, स्थापित कर आलभिका नगरी के शृंगाटकों, तिराहों, चौराहों, चौहटों, चार द्वार वाले स्थानों, राजमार्गों और मार्गों पर परस्पर इस प्रकार आख्यान यावत् प्ररूपणा करने लगा—देवानुप्रिय! मुझे अतिशायी ज्ञान-दर्शन समुत्पन्न हुआ है, देवलोक में देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष प्रज्ञप्त है, उसके बाद एक-समय-अधिक, दो-समय-अधिक, यावत् असंख्येय-समय-अधिक, उत्कृष्ट स्थिति दस सागरोपम प्रज्ञप्त है। उसके बाद देव और देवलोक व्युच्छिन्न हैं।

१८९. पुद्गल परिव्राजक के समीप इस अर्थ को सुनकर अवधारण कर आलभिका नगरी के शृंगाटकों, तिराहों, चौराहों, चौहटों, चार-द्वार वाले स्थानों राजमार्गों और मार्गों पर बहुजन परस्पर इस प्रकार का आख्यान यावत् प्ररूपणा करने लगे—देवानुप्रिय! पुद्गल परिव्राजक ने इस प्रकार का आख्यान यावत् प्ररूपणा की है—देवानुप्रिय! मुझे अतिशायी ज्ञान-दर्शन समुत्पन्न हुआ है। इस प्रकार निश्चित ही देवलोक में देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष प्रज्ञप्त है, उसके बाद एक समय अधिक, दो समय अधिक यावत् असंख्येय समय अधिक, उत्कृष्ट स्थिति दस सागरोपम प्रज्ञप्त है। उसके बाद देव और देवलोक व्युच्छिन्न हैं। इस प्रकार यह कैसे है?

१९०. भगवान महावीर पधारे, परिषद् ने नगर से निर्गमन किया। भगवान ने धर्म कहा। परिषद् वापिस नगर में चली गई। सामुदायिक भिक्षा के लिए घूमते हुए भगवान गौतम ने अनेक व्यक्तियों से ये शब्द सुने, सुनकर पूर्वोक्त सम्पूर्ण वृत्तांत भगवान महावीर से निवेदित किया यावत् गौतम! मैं इस प्रकार आख्यान, इस प्रकार कथन यावत् प्ररूपणा करता हूं—देवलोक में देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष प्रज्ञप्त है, उसके बाद एक-समय-अधिक, दो-समय-अधिक यावत् असंख्येय-समय-अधिक, उत्कृष्ट स्थिति तैत्तिरीय सागरोपम प्रज्ञप्त है। उसके बाद देव और देवलोक व्युच्छिन्न हैं।

१९१. भंते! सौधर्मकल्प में द्रव्य वर्ण-सहित, वर्ण-रहित, गंध-सहित, गंध रहित, रस-सहित, रस-रहित, स्पर्श-सहित, स्पर्श-रहित, अन्योन्य-बद्ध, अन्योन्य-स्मृष्ट, अन्योन्य-बद्ध-स्मृष्ट और अन्योन्य-एकीभूत बने हुए हैं ?

हां, हैं।

इसी प्रकार ईशान में भी, इसी प्रकार यावत् अच्युत में, इसी प्रकार त्रैवेयक-विमानों में भी, अनुत्तर-विमानों में भी, ईषत्प्राग्भारा-पृथ्वी में भी यावत् अन्योन्य-एकीभूत बने हुए हैं ?

हां, हैं।

१९२. वह विशालतम परिषद् यावत् जिस दिशा से आई, उसी दिशा में लौट गई।

१९३. आलभिका नगरी के शृंगाटकों, तिराहों, चौराहों, चौहटों, चार द्वार वाले स्थानों, राजमार्गों और मार्गों पर बहुजन परस्पर इस प्रकार आख्यान यावत् प्ररूपणा करने लगे-देवानुप्रिय! पुद्गल परिव्राजक ने इस प्रकार आख्यान यावत् प्ररूपणा की है-देवानुप्रिय! मुझे अतिशायी ज्ञान-दर्शन समुत्पन्न हुआ है, इस प्रकार निश्चित ही देवलोक में देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष प्रज्ञप्त है, उसके बाद एक-समय-अधिक, दो-समय-अधिक यावत् असंख्येय-समय-अधिक, उत्कृष्ट स्थिति दस सागरोपम प्रज्ञप्त है। उसके बाद देव और देवलोक व्युच्छिन्न हैं। यह अर्थ संगत नहीं है। श्रमण भगवान महावीर इस प्रकार आख्यान यावत् प्ररूपणा करते हैं-देवलोक में देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष प्रज्ञप्त है, उसके बाद एक-समय-अधिक, दो-समय-अधिक यावत् असंख्येय-समय-अधिक, उत्कृष्ट स्थिति तैतीस सागरोपम प्रज्ञप्त है। उसके बाद देव और देवलोक व्युच्छिन्न हैं।

१९४. पुद्गल परिव्राजक बहुजन से इस अर्थ को सुनकर, अवधारण कर, शंकित, कांक्षित, विचिकित्सित, भेद-समापन्न और कलुष-समापन्न भी हो गया। शंकित, कांक्षित, विचिकित्सित, भेद-समापन्न, कलुष-समापन्न पुद्गल परिव्राजक के वह विभंग-ज्ञान शीघ्र ही प्रतिपतित हो गया।

१९५. पुद्गल परिव्राजक के इस आकार वाला आध्यात्मिक, स्मृत्यात्मक, अभिलाषात्मक मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ-श्रमण भगवान महावीर आदिकर तीर्थकर यावत् सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, आकाशगत धर्मचक्र से शोभित यावत् शंखवन चैत्य में प्रवास-योग्य स्थान की अनुमति लेकर संयम और तप से अपने आपको भावित करते हुए विहार कर रहे हैं। ऐसे अर्हत् भगवानों के नाम-गोत्र का श्रवण भी महान फलदायक होता है फिर अभिगमन, वंदन, नमस्कार, प्रतिपृच्छा और पर्युपासना का कहना ही क्या? एक भी आर्य धार्मिक वचन का श्रवण महान फलदायक होता है फिर विपुल अर्थ-ग्रहण का कहना ही क्या? इसलिए मैं जाऊं, श्रमण भगवान महावीर को वंदन करूं यावत् पर्युपासना करूं-यह मेरे इहभव और परभव के लिए हित, शुभ, क्षम, निःश्रेयस और आनुगामिकता के लिए होगा-इस प्रकार संप्रेक्षा की, संप्रेक्षा कर जहां परिव्राजक रहते थे, वहां आया, आकर परिव्राजक गृह में अनुप्रवेश किया, अनुप्रवेश कर त्रिदंड, कमंडलु यावत् गैरिक वस्त्रों को ग्रहण किया, ग्रहण कर परिव्राजक आवास से प्रतिनिष्क्रमण किया, प्रतिनिष्क्रमण कर विभंग-ज्ञान से प्रतिपतित

उस पुद्गल परिव्राजक ने आलभिका नगरी के बीचोंबीच निर्गमन किया, निर्गमन कर जहां शंखवन चैत्य था, जहां भगवान महावीर थे, वहां आया, आकर श्रमण भगवान महावीर को तीन बार वन्दन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर न अति निकट और न अति दूर शुश्रूषा और नमस्कार की मुद्रा में उनके सम्मुख सविनय बद्धांजलि होकर पर्युपासना करने लगा।

१९६. श्रमण भगवान महावीर ने पुद्गल परिव्राजक को उस विशालतम परिषद् में धर्म कहा यावत् आज्ञा का आराधक होता है।

१९७. पुद्गल परिव्राजक श्रमण भगवान महावीर के पास धर्म सुनकर, अवधारण कर स्कंदक की भांति यावत् उत्तर पूर्व दिशा में गया, जाकर त्रिदण्ड, कर्मंडलु यावत् गैरिक वस्त्रों को एकांत में डाल दिया, डाल कर स्वयं ही पंचमुष्टिक लोच किया, लोच कर श्रमण भगवान महावीर को दायीं ओर से प्रारम्भ कर तीन बार प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा कर वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर इस प्रकार जैसे ऋषभदत्त प्रव्रजित हुआ, वैसे ही पुद्गल परिव्राजक प्रव्रजित हो गया, उसी प्रकार ग्यारह अंगों का अध्ययन किया, उसी प्रकार सर्व यावत् सब दुःखों को प्रक्षीण कर दिया।

१९८. भगवान गौतम ने श्रमण भगवान महावीर को 'भंते!' ऐसा कहकर वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर इस प्रकार कहा—भंते! सिद्ध होने वाले जीव किस संहनन में सिद्ध होते हैं?

गौतम! वज्रऋषभ-नाराच-संहनन में सिद्ध होते हैं। इसी प्रकार उववाई (सू. १८५-१९५) की भांति वक्तव्यता। इसी प्रकार संहनन, संस्थान, उच्चत्त्व, आयुष्य और परिवसन, इसी प्रकार सिद्धिकंडिका तक निरवशेष वक्तव्य है, यावत् सिद्ध अव्याबाध शाश्वत सुख का अनुभव करते हैं।

१९९. भंते! वह ऐसा ही है। भंते! वह ऐसा ही है।

• • •

भगवती सूत्र : खण्ड १-शुद्धि पत्र
सभी शतकों में निम्नांकित शुद्धि सभी जगह पढ़ें—

[illegible]

निम्नांकित स्थानों पर इसी प्रकार (अशुद्ध) की जगह इस प्रकार (शुद्ध) पढ़ें—

[illegible]

निम्नांकित स्थानों पर वक्तव्य है (अशुद्ध) की जगह (शुद्ध) पढ़ें—

[illegible]

निम्नांकित स्थानों पर वक्तव्य है (अशुद्ध) की जगह वक्तव्य है (शुद्ध) पढ़ें---

[illegible]

निम्नांकित स्थानों पर वक्राव्य है (अशुद्ध) की जगह वक्राव्य है (शुद्ध) पढ़ें-

राष्ट्रक	राष्ट्रक	राष्ट्रक	राष्ट्रक	राष्ट्रक
१०-४०८	२-२०८	५-३४/६	६-३४/६	७-३४/६
१२/३३	१३/३३	१४/३३	१५/३३	१६/३३

निर्नाकिता स्थानों पर वक्तव्य है (अशुद्ध) की जगह वक्तव्य है (शुद्ध) पढ़ें—

शायक ७-३१/७६/६; शासक ६-२०२/३३/३८

मनांकित स्थानों पर रह रहे/विहार करते (अशुद्ध) की जगह रहते (शुद्ध) पढ़ें-

[illegible]

निर्माकित स्थानों पर विहार कर रहा/विहरण कर रहा (अशुद्ध) की जगह रहता (शुद्ध) पढ़ें—

१-२६/१०८/२; शासक ५-१८२/२०१/५-६; शासक ७-२५७/२२०/६; शासक ८-३६२/१३४/२-३; शासक १०-४०३/१००/४; शासक ११-४०६/५८/६; ४३१/११२/४; ४३६/१८६/५।

निम्नांकित स्थानों पर अथवा (अशुद्ध) की जगह [अथवा] (शुद्ध) पढ़ें -

[illegible]

निर्माफ़ि़त स्थानों पर / ह? / ह? (अशुद्ध) की जगह / ह? (अथवा) (शुद्ध) पढ़ें-

[illegible]

निम्नांकित स्थानों पर **वह** (अशुद्ध) की जगह **यह** (शुद्ध) पढ़े—

[illegible]

निम्नांकित स्थानों पर वे (अशुद्ध) की जगह (शुद्ध) पढ़ें—

शाक १-३२/३४९/३: ४४/४०६-४०८/३: शाक २-६४/४/१: शाक ४-१६६/९९०/३: १८४/२१३/३: १८४/२१९/२२०/१: शाक ६-२०९/१०२/३: शाक ८-२२१/१४९/१४८/३: २८२/१५०-१५७/३: ३३०/४०२/४०३/२: ३३०/४०२/४०३/२:

निम्नांकित स्थानों पर जो (अशुद्ध) की जगह उनमें जो (शुद्ध) पढ़ें--

शतक १-५/३४/सर्वत्र; १३/६७/५,७; १४/६७/८,६; २५/१६०/४ (दोनों बार); ३१/२२६/३,४।

निम्नांकित स्यानों पर इनमें (अशुद्ध) की जगह उनमें (शुद्ध) पढ़ें—

शतक १-६-१३/६१-६७/सर्वत्र: ५१/३७६/३-५: ५३/३६१/४: शतक ५-१६५/१०२/५, ६, ११: १६६/१०२/१२-१४, १५।

निम्नांकित स्थानों पर जीय (जीव) (अशुद्ध) की जगह (शुद्ध) पढ़ें—

[illegible]

निम्नांकित स्यानों पर पुठय (अशुख) की जगह पुठय (शुद्ध) पढ़े —

पानक ६--३३५/६/६; ३३५/१०/१, ३, ५; ३३६-३४०/१०-३२/सर्वत्र; ३४३/५२-५४/सर्वत्र; ३४४/५५/६; ३४६/१७५/३।

निर्नांकित स्थानों में की वक्तव्यता (अर्थ) की जगह वक्तव्य है (शब्द) यहाँ—

$\frac{1}{\sqrt{2}} \left(\frac{\partial}{\partial x} + i \frac{\partial}{\partial y} \right) = \frac{1}{\sqrt{2}} \left(\frac{\partial}{\partial x'} + i \frac{\partial}{\partial y'} \right)$

निर्मांकित स्थानों में वसन्व्यता (अथवा) की जगह (वर्तव्य है) (शुद्ध) पढ़े—

[illegible]

निम्नांकित स्थानों में की वक्तव्यता (अशुद्ध) की जगह वक्तव्य है (शुद्ध) पढ़ें

[illegible]

निम्नांकित स्थानों में वक्तव्यता (अशुद्ध) की जगह वक्तव्य (शुद्ध) पढ़ें—

२७८/११३/३; २७८/११४ ११६, ११७/२; २७८/११६-१२३/२; २७८/१३०-१३८/सर्वत्र; २८५/१७७-१७८/२; २८६/१८१, १८२/२; ३१५/३७०/४, ५; ३६७/६४/४।

पृष्ठ	सूच	पंक्ति	अधुसू	शुल
१०३	१६६	"	कीर्ति-मृत का बहुजन के बीच प्रकाशन पूर्ववत् (१४२) की भाँति	यह कीर्ति-मृत का बहुजन के बीच प्रकाशन भी पूर्ववत् (पृ. ६/१४६ की भाँति) यावत् राज-विषय (का बहुजन के बीच प्रकाशन)
१८०	१८८	३	नैरयिक जीवों की भाँति पंचविध्य-विषय-नैरयिक-जीवों के यावत्	(नैरयिक-जीवों (पृ. ६/१८८) की भाँति पंचविध्य-विषय-नैरयिक-जीवों के) वही वक्तव्यत यावत्
२१०	१९३	३-४	शतक ६ उसको सहायता नैरयिक की भाँति (सू. १२२) साव्य है। अमुकपुर से सतिनकुमार तक वही वक्तव्यत।	यह नैरयिक (पृ. ६/१९२) की भाँति सव्य है। पूर्ति-पञ्चसूत्र, एवं भोजपुर सतिनकुमार (सव्य है)।
२१३	१९४	१९	होता है।	होता है। (यहाँ अंगुलिपि पाग २ के पाठविषय में साव्य है कि अणुलोकपाठ (सू. ३८६) के 'पूर्व-विदेह-अपर-विदेह' के मनुष्यों के आठ बालों का भरत-देवका के मनुष्यों का एक मन्त्राष्ट होता है तथा भरत-देवका के मनुष्यों के आठ बालों की एक लिखा होती है—यस पाठ है।)

निम्नांकित स्थानों पर पुर्नगलों का प्रकरण (अधुसू) की जगह पुर्नगलों को प्रकरण (शुल) पड़ें—

२१८-२१८/१६३-१६७/सर्वत्र।

२३१	५३	२३	प्रथम दण्डक की भाँति लेती है। (सू. ४०-४२) यवत् मनुष्यो तक शतक ७	तीनों का अल्प-बहुत्व भी प्रथम दण्डक (सू. ७/१४०-४२) की भाँति (काव्य है) यवत् मनुष्यो का अल्प-बहुत्व।
२३७	१०१-१०३	सर्वत्र	भोते जो भक्षिक जीव नैपथिक-रूप में उपपन्न	भोते जो भव्य (नैपथिक के रूप उपपन्न होने की योग्यता-प्राप्त जीव) नैपथिकों में उपपन्न
"	१०४	१	भोते जो भक्षिक जीव अनुसुक्तगरी में उपपन्न	भोते जो भव्य (अनुसुक्तगरी के रूप में उपपन्न होने की योग्यता-प्राप्त जीव) अनुसुक्तगरी में उपपन्न
"	१०५	१	भोते जो भक्षिक जीव पृथ्वीकायिकों में उपपन्न	भोते जो भव्य (पृथ्वीकायिक के रूप में उपपन्न होने की योग्यता-प्राप्त जीव) पृथ्वीकायिकों में उपपन्न
२४२	१३४, १३६	"	है, अवस्था	है? (अवस्था) योग
२४३	१४२	१-५	भोते! पृथ्वीकायिक-जीव किन्तु अनेक से भोगी है? गीतापः स्वर्गान-इन्द्रिय की अपेक्षा से। उनके स्वर्गान-इन्द्रिय है, इसलिए वे भोगी है। अपकायिक- देवदेवकायिक- शशुकायिक- और वायुसत्तिकायिक-जीवों की वक्ष्यवता पृथ्वीकायिक-जीवों के समान है। इन्द्रिय जीवों के विषय में यही वक्तव्यता है, केवल ज्ञान	(भोते) वह किन्तु अनेक से (सू. ७/१३६) (सिद्धा कहा जा रहा है) यवत् भोगी है? (—पृथ्वीकायिक-जीव भोगी नहीं है, भोगी है?) गीतापः स्वर्गान-इन्द्रिय की अपेक्षा से। (उनके स्वर्गान-इन्द्रिय है) इस अपेक्षा से (कहा जा रहा है) यवत् भोगी है। इस प्रकार यवत् (अपकायिक- देवदेवकायिक- वायुसत्तिकायिक- और) वायुसत्तिकायिक-जीव (वक्ष्यव्य है) इन्द्रिय जीव इसी प्रकार (वक्ष्यव्य है) इतना है? (अवस्था) योग
२४४	१३२, १३४, १३६	१	है, अवस्था	है? (अवस्था) योग
२५७	२२०	६-८	हूँ! मासवी ने धर्म उपदेश दिया और यह धर्मज्ञ हो गया। दण्डक (सू. २/५०-६३) की भाँति पूरी वक्तव्यवता। स्वर्गोत्पत्ती ने ग्यारह	हूँ! इस प्रकार दण्डक (सू. २/५०-६३) की भाँति (पूरी वक्तव्यता-मासवी ने धर्म का उपदेश दिया और यह) धर्मज्ञित हो गया, उसी प्रकार (स्वर्गोत्पत्ती ने) ग्यारह

निम्नांकित स्थानों पर	पुरुरालों का ग्रहण (अशुद्ध) की अवधि	पुरुरालों को ग्रहण (शुद्ध) पर्य-
२६२	३	इसी प्रकार गणितशास्त्रिक-जलवायु विषय की दस्तावेज़। इसी प्रकार यावत् समुद्रविज्ञ- (वस्तुतः है)। इस प्रकार गणितशास्त्रिक (वस्तुतः-जलवायु) की (वस्तुतः है)। इस प्रकार यावत् समुद्रविज्ञ- -परिणत (पुरुराल) की (वस्तुतः है)। इसी प्रकार अर्थात्क-गणितशास्त्रिक (जलवायु-परिणत पुरुराल) (वस्तुतः है)। इसी
२६३	३	-परिणत की दस्तावेज़। इसी

[illegible]

संक्षिप्त रूप :

- सं. गा. - संश्रवणी गाय
 बा. - बाणवती
 राय. - रायसेविण
 ओवा. - जीवाइय
 सू. - सूत्र
 ठा. - ठाणं
 जं. - जंबाडीवरणजती

शतक १				
पृष्ठ	सूत्र	अनुच्छेद	अनुच्छेद	शुद्ध
१	सं. गा. १	प्रथम	सामान्य जीव की भांति वस्तव्य है।	सामान्य जीवों की भांति (वस्तव्य है),
२	सं. गा. २	उद्देशक है—	मान्य आदि	मान्य-आदि
३	सं. गा. ३	प्रतीति—	आ रहा है—	आ रहा है—असंख्य
४	सं. गा. ४	६. गुणक १०	असंख्य	असंख्य-कर्म
५	सं. गा. ५	वस्तुमान वस्तु ११११	देवता	देव-रक्षा
६	सं. गा. ६	नगर का	रक्षणगुण नगर में पशुमान का	रक्षणगुण नगर में (पशुमान का)
७	सं. गा. ७	वर्षा	विज्ञा। पशुमान ने	विज्ञा (ब. १/८-१०) यद्यपि
८	सं. गा. ८	वा	मान्य स्वामी जोते—	(मान्य) ने
९	सं. गा. ९	मी	(नैतिक से लेकर) वैधानिक	मान्य स्वामी इस प्रकार जोते—
१०	सं. गा. १०	अप्रातिष्ठत प्रकर मान्य-वर्णन	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	इस प्रकार (पूर्ति-पण्यवशा, पर २)
११	सं. गा. ११	रह रहे हैं।	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	(नैतिक से लेकर) यद्यपि वैधानिक
१२	सं. गा. १२	नगर से	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक वैधानिक दण्डक (वस्तव्य है)।
१३	सं. गा. १३	नगर में	(नैतिक से लेकर) वैधानिक	इस प्रकार (पूर्ति-पण्यवशा, पर २)
१४	सं. गा. १४	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	(नैतिक से लेकर) यद्यपि वैधानिक
१५	सं. गा. १५	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
१६	सं. गा. १६	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
१७	सं. गा. १७	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
१८	सं. गा. १८	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
१९	सं. गा. १९	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
२०	सं. गा. २०	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
२१	सं. गा. २१	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
२२	सं. गा. २२	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
२३	सं. गा. २३	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
२४	सं. गा. २४	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
२५	सं. गा. २५	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
२६	सं. गा. २६	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
२७	सं. गा. २७	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
२८	सं. गा. २८	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
२९	सं. गा. २९	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
३०	सं. गा. ३०	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
३१	सं. गा. ३१	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
३२	सं. गा. ३२	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
३३	सं. गा. ३३	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
३४	सं. गा. ३४	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
३५	सं. गा. ३५	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
३६	सं. गा. ३६	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
३७	सं. गा. ३७	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
३८	सं. गा. ३८	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
३९	सं. गा. ३९	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
४०	सं. गा. ४०	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
४१	सं. गा. ४१	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
४२	सं. गा. ४२	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
४३	सं. गा. ४३	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
४४	सं. गा. ४४	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
४५	सं. गा. ४५	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
४६	सं. गा. ४६	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
४७	सं. गा. ४७	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
४८	सं. गा. ४८	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
४९	सं. गा. ४९	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
५०	सं. गा. ५०	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
५१	सं. गा. ५१	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
५२	सं. गा. ५२	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
५३	सं. गा. ५३	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
५४	सं. गा. ५४	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
५५	सं. गा. ५५	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
५६	सं. गा. ५६	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
५७	सं. गा. ५७	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
५८	सं. गा. ५८	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
५९	सं. गा. ५९	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
६०	सं. गा. ६०	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
६१	सं. गा. ६१	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
६२	सं. गा. ६२	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
६३	सं. गा. ६३	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
६४	सं. गा. ६४	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
६५	सं. गा. ६५	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
६६	सं. गा. ६६	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
६७	सं. गा. ६७	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
६८	सं. गा. ६८	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
६९	सं. गा. ६९	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
७०	सं. गा. ७०	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
७१	सं. गा. ७१	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
७२	सं. गा. ७२	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
७३	सं. गा. ७३	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
७४	सं. गा. ७४	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
७५	सं. गा. ७५	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
७६	सं. गा. ७६	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
७७	सं. गा. ७७	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
७८	सं. गा. ७८	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
७९	सं. गा. ७९	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
८०	सं. गा. ८०	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
८१	सं. गा. ८१	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
८२	सं. गा. ८२	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
८३	सं. गा. ८३	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
८४	सं. गा. ८४	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
८५	सं. गा. ८५	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
८६	सं. गा. ८६	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
८७	सं. गा. ८७	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
८८	सं. गा. ८८	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
८९	सं. गा. ८९	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
९०	सं. गा. ९०	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
९१	सं. गा. ९१	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
९२	सं. गा. ९२	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
९३	सं. गा. ९३	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
९४	सं. गा. ९४	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
९५	सं. गा. ९५	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
९६	सं. गा. ९६	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
९७	सं. गा. ९७	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
९८	सं. गा. ९८	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
९९	सं. गा. ९९	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।
१००	सं. गा. १००	नगर में	तक इसी प्रकार वस्तव्य है।	तक (वस्तव्य है)।

पृष्ठ	सूत्र	पंक्ति	अधुख	शुद्ध	अधुख	शुद्ध	पृष्ठ	सूत्र	पंक्ति	अधुख	शुद्ध
२८	सं. गा.	१	रत्नमण आदि	(रत्नमण-आदि)	होते हैं?	(होते हैं?)	३४	२६७	१, २	पूर्ण अलापक वाक्य है।	शुद्ध
"	"	२	इस उद्देशक में शक्ति है।	(इस उद्देशक में शक्ति है)। ॥३॥	वर्तमान नैतिकों के	(वर्तमान नैतिकों के)	"	२६८	१	कोई स्वयं	(कोई स्वयं)
"	२१६	३	उन्को	(उन्को)	केवल	(केवल)	"	२६८	२	कोई स्वयं	(कोई स्वयं)
"	"	४	समय अधिक	(समय-अधिक)	प्रथम और द्वितीय पृथ्वी	प्रथम और द्वितीय (-) (दो पृथ्वियों)	"	२६९	१	कोई स्वयं	(कोई स्वयं)
"	२१७	१	नरका-वास	(नरका-वास)	पृथ्वी	(पृथ्वी)	"	२६९	२	नहीं करता यावत्	नहीं करता (ब. १/२६८-२६९)
"	२१८	१, २	एक समय अधिक	(एक-समय-अधिक)	१, २	१, २	"	२६९	३	यवत्	यवत्
३०	"	४	एक तोषोपुस्त	(एक तोषोपुस्त)	२, ३	२, ३	"	२७०	१	वस्तव्य है यावत्	वस्तव्य है (ब. १/२७०, २७०)
"	"	५	क्रोशोपुस्त, यातोपुस्त, मायोपुस्त	(क्रोशोपुस्त, यातोपुस्त, मायोपुस्त)	३	३	"	"	"	यवत्	यवत्
"	"	"	अवदा तोषोपुस्त	(अवदा तोषोपुस्त)	३	३	"	"	"	यवत्	यवत्
"	"	६	मायोपुस्त होते हैं।	(मायोपुस्त होते हैं)	३	३	"	२७१	१	यवत्	यवत्
"	"	७	संक्षेप समय अधिक	(संक्षेप-समय-अधिक)	३	३	"	"	"	यवत्	यवत्
"	"	८	असंक्षेप समय अधिक	(असंक्षेप-समय-अधिक)	३	३	"	"	"	यवत्	यवत्
"	"	९	मां वस्तव्य है।	(मां वस्तव्य है)	३	३	"	"	"	यवत्	यवत्
२१६	संज्ञ	३	प्रदेश अधिक	(प्रदेश-अधिक)	३	३	"	"	"	यवत्	यवत्
२२०	"	३	इन्को अस्ती बना वस्तव्य है	(इन्को अस्ती बना वस्तव्य है)	३	३	"	"	"	यवत्	यवत्
"	"	"	संक्षेप प्रदेश अधिक अथवा	(संक्षेप-प्रदेश-अधिक अथवा)	३	३	"	"	"	यवत्	यवत्
"	"	४	वर्तमान नैतिकों	(वर्तमान नैतिकों)	३	३	"	"	"	यवत्	यवत्
"	"	५	असंक्षेप प्रदेश अधिक	(असंक्षेप-प्रदेश-अधिक)	३	३	"	"	"	यवत्	यवत्
२२०	"	६	नैतिकों	(नैतिकों)	३	३	"	"	"	यवत्	यवत्
२२२, १	"	१	पृथ्वी यावत्	(पृथ्वी में (ब. १/२२१) यावत्)	३	३	"	"	"	यवत्	यवत्
२२४	"	१	(भिक्षु, कैतव और कामन)	(भिक्षु, कैतव, कैतव और कामन)	३	३	"	"	"	यवत्	यवत्
२२४	"	१	पृथ्वी यावत्	(पृथ्वी में (ब. १/२२४) यावत्)	३	३	"	"	"	यवत्	यवत्
२२६	"	२	उन्को	(उन्को)	३	३	"	"	"	यवत्	यवत्
"	"	३	उन्को	(उन्को)	३	३	"	"	"	यवत्	यवत्
२३२-३३	"	३	वर्तमान नैतिकों के	(वर्तमान नैतिकों के)	३	३	"	"	"	यवत्	यवत्
"	"	४	होते हैं। सप्य-दृष्टि में	(होते हैं। सप्य-दृष्टि में)	३	३	"	"	"	यवत्	यवत्
"	"	५	निष्ठा-दृष्टि में	(निष्ठा-दृष्टि में)	३	३	"	"	"	यवत्	यवत्
२३४	"	१	पृथ्वी	(पृथ्वी में (ब. १/२३४) यावत्)	३	३	"	"	"	यवत्	यवत्
२३६	"	१	वर्तमान-नैतिकों के भी सत्ताईस-	(वर्तमान-नैतिकों के भी सत्ताईस-)	३	३	"	"	"	यवत्	यवत्
"	"	२	सत्ताईस बना	(सत्ताईस बना)	३	३	"	"	"	यवत्	यवत्
"	"	३	यवत्	(यवत्)	३	३	"	"	"	यवत्	यवत्
२३८	"	१	प्रयोग	(प्रयोग)	३	३	"	"	"	यवत्	यवत्
२३८-४७	"	१	वर्तमान-नैतिकों के भी सत्ताईस	(वर्तमान-नैतिकों के भी सत्ताईस)	३	३	"	"	"	यवत्	यवत्
"	"	२	यवत्	(यवत्)	३	३	"	"	"	यवत्	यवत्
२४१	"	१	नैतिक सत्ताईसपुस्त	(नैतिक सत्ताईसपुस्त)	३	३	"	"	"	यवत्	यवत्
"	"	१, २	होते हैं?	(होते हैं?)	३	३	"	"	"	यवत्	यवत्
२४२	"	१	पृथ्वी में यावत्	(पृथ्वी में (ब. १/२४२) यावत्)	३	३	"	"	"	यवत्	यवत्

पृष्ठ	सूत्र	पंक्ति	अंशुक	शुद्ध
६६	१७०	३, ४	का देव है	के देव है
"	"	"	का प्रदेव है	के प्रदेव है
"	"	४	अनीय द्रव्य	अनीय-द्रव्य
"	"	५	अनन्त भाग से न्यून	अनन्त-भाग-से-न्यून
६७	१८०	४	रत्नभा पुष्पी	रत्नभा-पुष्पी
"	"	५	सर्वां करते हैं।	(सर्वां करते हैं।)
"	१८२	१	कैसे ही यावत्	कैसे ही (य. २/१४८-१५१, २/७४८)
"	"	२	वसन्तदा भावव्य है।	वायव्य (वसन्तदा भावव्य है।)
"	"	३	सीधर्ष-कल्प यावत्	सीधर्ष-कल्प (अनुश्रुतिपाराई सू. २-७) यावत्
"	१८२	४	किन्त्ये	(किन्त्ये)
"	१८३	१	का सर्वां	का भी सर्वां
"	"	१ और २	X	संशङ्गणी याया
"	"	३	काट कल्प नै शैत्यक, पांव	(काट) कल्प, (नै) शैत्यक, (पांव)
"	"	३	सिद्धिवा-इन	सिद्धिवा-इन
"	"	४	अनुसन्धिमान के	अनुसन्धिमान के
"	"	४	सर्वां करते हैं	(सर्वां करते हैं।)
"	"	"	सब (पुष्पी	(सब पुष्पी
"	"	५	सर्वां करते हैं।	(सर्वां करते हैं।) ॥१॥
शतक ३				
६८	१	१	नगर का	(नगर का)
"	२	"	हैल का	(हैल का)
"	३	"	नगर से	(नगर से)
"	"	"	नगर मे	(नगर मे)
"	४	२	ही यावत्	ही (य. १/६, १०) यावत्
६९	३१	३१	दूसरी बान	दूसरी बार
"	५	१५	"	"
१००	८	१	प्रकार भावव्य	प्रकार कककर भावव्य
"	"	५	दाहा तक का समय	दाहा तक (य. ३/४, ७) का समय
"	"	"	विषय	विषय
"	६	४	दाहा जाते हैं, यावत्	दाहा जाते हैं (य. १/१०) यावत्
"	१०	१	भस्ते। यह कैसे है?	भस्ते। यह इस प्रकार कैसे है?
१०१	११, १३	"	ही है।" इस प्रकार पुनीय	ही है।" इस प्रकार कककर पुनीय
"	१४	११	है, यावत्	है यावत्
"	१७	"	सीधर्ष कल्प	सीधर्ष-कल्प
१०२	"	८	अंशुल के अस्तंश्रतवे पाग	अंशुल-के-अस्तंश्रतवे-पाग
१०३	"	२७	शक की	शक (य. ३/१६) की
"	२६	"	है, तिष्यक	है, तिष्यक
"	१८	१	तिष्यक-देव	तिष्यक देव

पृष्ठ	सूच	पंक्ति	अधिसूच	सूच
८४	८६	३	है। गीतवा!	है, गीतवा!
८५	८७	५	गुणवित्त क्षेत्र	गुणवित्त क्षेत्र
"	"	२	कर रहे हैं।	करते हैं।
८२	८२	१	सदय सुनिष्ठा	सदय में सुनिष्ठा
"	८३	२	द्वैत-	(द्वैत-)
"	८४	११	आयुधवादां।	आयुधवादां!
८५	८६	२	पर	पर (परमार्थसंगति, सू. ६८०-६८६)
"	८७	३	है	है (परमार्थसंगति, सू. ६८६)
"	"	१५	प्रवेक्ष्य	प्रवेक्ष्य
"	"	२०	शास्त्र-वाला	शास्त्र वाला
८६	"	२३	है। प्रसिद्धि	है, प्रसिद्धि
"	"	"	है। स्वतन्त्र	है, स्वतन्त्र
"	८८	५	चातुर्य	चातुर्य
"	८८	५	कर, हृद-मुष्ट	कर हृद-मुष्ट
८७	९०	७	उत्थ, नीच और मध्यम कुलो	उत्थ, नीच, और मध्यम-कुलो
"	९०	६	प्रकार मनुष्य	प्रकार (म. २/१०१, १०२) मनुष्य
"	९१	६	उत्थ,	उत्थ-
८८	"	८	नीच और मध्यम कुलो	नीच- और मध्यम-कुलो
"	९३	१३	इस प्रकार मनुष्य	इस प्रकार (म. २/६६-१२२) मनुष्य
८८	सं. भा.	१३	सिद्धि।	सिद्धि ॥१॥
९१	९१	१	उत्थ-वाल्स-कुष्ठ-यव	उत्थ-वाल्स-कुष्ठ-यव
९०	९२	२	दीर्घ-मुष्टो	दीर्घ-मुष्टो
"	९३	४	तिगिच्छिद	तिगिच्छिद
"	९३	४	X	११८. उस तिगिच्छिद उत्थापयन्त के ऊपर सुषुप्त-रमणीय भूतान प्रकाश है-भूतान-वर्णन।
९१	९३	५	तिगिच्छिद	तिगिच्छिद
"	९३	३	रत्नगन्ध-पुष्पी	रत्नगन्ध-पुष्पी
"	"	८	चाहिण	चाहिण (रामार्थसंगति, पृ. २०४-२०८)
"	९३	२	जीवजोवापिण	जीवजोवापिण (३/२६०-८३३)
"	९३	२	न्येतिच्छ-देवो	न्येतिच्छ-देवो
९३	९३	१३	प्रहणुण-समुत्ति	प्रहणुण-पारम्या या जीव आरा औदार्यिक प्रकार से समुत्ति कलता है?
९४	९३	१३	कलता है।	असंगतिस्वयं भी कल्य (कल्य है)। शेष पूर्ववत्
"	९४	१	असंगतिस्वयं कल्य	के देश भी है
"	"	३	है। शेष पूर्ववत्	के प्रदेश भी है
९४	९४	३, ४	का देश भी है	जीवो के
"	"	७-१०	का प्रदेश भी है	जीवो के
"	"	७-१२	जीवो का	जीवो के

सूच	सूत्र	वर्ष	अनुवाद	मूल
७५	"	६-१०	करता हूँ। भर्त्सने.....	शुद्ध
"	५२	१२, १३	-प्रतीकित है- जैसा आय	करता हूँ, भर्त्सने..... -प्रतीकित है-जैसा आय
"	"	"	(ईमान कोण)	(ईमान-कोण)
"	"	"	यजमाना-मूलक	यजमाना-मूलक
"	५३	३	"	"
"	५६	६	करते । एक	करते । पूर्ववत् (म. २/५६, ५६) (एक करता है।)
"	"	१०	करता है।	करता है।
"	६०	१	इसी प्रकार वैमानिकी	वैमानिकी
"	६१	"	यावत्तु यावत्	यावत्तु (म. २/५८, ५८)
"	६२	२	हुआ यावत्	हुआ (म. २/५२) यावत्
"	"	६, ६	विरासन	विरासन
"	६२	२१	ताप कर्म	ताप-कर्म
"	"	२२	विरासन	विरासन
"	६३	२	यथाकल्प यावत्	यथाकल्प (म. २/५६) यावत्
"	६५	१	समस्तस्य या	समस्तस्य या (अथवास्य सू. ६-८०)
"	६६	२२	कृतयोग्य स्वधितो	कृतयोग्य (अनुसूचना अति प्रसिद्धि में निपुण तथा अस्मान्निधि संग्रह करने में कुशल) आदि स्वधितो
"	६७	१	स्फुरकः	'स्फुरकः'
"	"	४	गया हूँ यावत्	गया हूँ (म. २/६६) यावत्
"	"	५	पर यावत्	पर (म. २/६६) यावत्
"	६८	१	विना,	विना
"	"	६	कृतयोग	कृतयोग आदि
"	"	२२	यावत्	(म. २/५२) यावत्
८०	"	७४	छोड़कर पणवर्ग का समुद्रमाल-पद (३७)	छोड़कर समुद्रमाल-पद (पणवर्ग पद ३६)
८१	"	७५	जीवनीवर्णन में	जीवनीवर्णन (३/७६-७७)
"	७६	३	(पणवर्ग का इन्द्रिय पद (१८) का	(पणवर्ग, १५/१-५७) प्रथम अक्षर)
८२	७७	"	शास्त्र है, यावत्-	शास्त्र है, यावत्-
"	"	७८/२	एक जीव एक	एक जीव की एक
"	"	७९	सम्पन्न यावत्	सम्पन्न (दा. ८/१०) यावत्
"	"	८०	यावत् जीव एक साथ स्त्री-देव और	यावत् एक जीव की एक समय में दो स्त्री का सेवन करते हैं जैसे
"	"	"	देव दोनों	स्त्री-देव का और
"	"	८३	अन्यमूर्त, उत्कर्षतः	अन्यमूर्त, उत्कर्षतः
"	८४-८५	३	"	"
८४	८६	१	मैथुन सेवन	मैथुन-सेवन

पृष्ठ	सूत्र	पंक्ति	अधुख	शुख
१०३	१८	२	है। वह	है? वह
"	"	३	पूर्ववत् सत्य है	पूर्ववत् (पृ. ३/१७) (सत्य है)
"	"	७, ८	सकती है। शेष	है। शेष
"	१८	१	है। भन्तो	है। भन्तो
"	"	२	प्रकार द्वितीय	प्रकार कवकर द्वितीय
"	२०	"	है। यावत्	है (पृ. ३/१८) यावत्
"	"	४-५	पूर्ववत् सत्य है	पूर्ववत् (पृ. ३/१८) (सत्य है)
"	"	६	है। शेष वास्तव्य	है। शेष (वास्तव्य)
१०४	२१	२	यद् यावत्	यद् (पृ. ३/१८) यावत्
"	"	"	ईशान-कल्प	ईशान-कल्प
"	"	८	अणु के असंख्यते भाग	अणु के असंख्यते भाग
"	"	१०	सिक्क के	सिक्क (पृ. ३/१८) के
"	"	११	में श्रान्त्य है, केवल इतना	में भी (श्रान्त्य है), इतना
"	"	१२	है। शेष वास्तव्य	है। शेष (वास्तव्य)
"	"	१३	परमाणु के	परमाणु (पृ. ३/१८-१९) के
"	"	"	स्राव्य है	(स्राव्य है)
"	"	१५	है। किसी	है। किसी
"	"	२२	में श्रान्त्य है,	में भी (पृ. ३/१८) (सत्य है),
"	"	२	सकती है और	सकती है और
"	"	"	दीप	दीप
"	"	३	समुद्रों	-समुद्रों
"	"	४	इसी प्रकार सामयिक	इस प्रकार (पृ. ३/१८-१९) सामयिक
"	"	"	ये सब श्रान्त्य है।	(ये सब श्रान्त्य है)।
"	"	५, ६	दीप-समुद्रों	दीप-समुद्रों
"	२३	२	में श्रान्त्य है,	में भी (श्रान्त्य है),
"	"	५	साम्य-कुछ	साम्य की, इतना अन्तर है-कुछ
"	"	७	प्राप्त-नवीन	प्राप्त की, इतना अन्तर है-नवीन
"	"	८	अच्छ-कुछ	अच्छ की, इतना अन्तर है-कुछ
"	"	"	है। शेष सब	है। शेष सब
"	"	६	उसी प्रकार है।	उसी प्रकार (सत्य है)।
"	"	१	है। भन्तो	है। भन्तो
"	२४	१	प्रकार द्वितीय	प्रकार कवकर द्वितीय
"	"	२	करते तो	करते हैं।
१०५	२५	२	(अव्य-म. १/	(अव्य-म. १/
"	२६	१	ईशान कल्प	ईशान-कल्प
"	२७	२	रूप-साम्य के	रूप (पृ. ७-१२०) के
"	३०	४	नगर यावत्	नगर यावत्
"	३२	१	तेजस्वी	तेजस्वी (पृ. २/६४)
१०६	३३	१	पर यावत् (पृ. २/६६) सत्य	पर यावत् (पृ. २/६६) सत्य
"	"	२४, २५	के उभ नील और मध्य कुले	के उभ नील और मध्य कुले
"	"	२८	उत्तम, नील और मध्य कुले	उत्तम, नील, और मध्य कुले
१०७	"	१	बालन-पः	बालन-पः

पृष्ठ	सूत्र	पंक्ति	अधुख	शुख
१०७	३६	५	सत्ता यावत्	सत्ता (पृ. ३/३३) यावत्
"	३७	"	समय बलित्व	समय में बलित्व
"	३८	११	ही कर	ही कर (परस्परार्थ, सू. ५०) यावत्
"	३८	१३	और द्रव्य देवगति	और द्रव्य देव-गति
१०८-१०९	३९	सर्वत्र	बालन-पस्वी	बालन-पस्वी
१०८-११	४०	सर्वत्र	अणु-कुमार देव और देविका	अणु-कुमार-देव और -देविका
"	४२, ४३	१, ३	ईशान-कल्प	ईशान-कल्प
"	"	४	अणु के असंख्य भाग	अणु के असंख्य भाग
"	४५	२	देवदत्त रूप	देवदत्त-रूप
१०८	"	५	देवगति	देव-गति
"	"	८	स्तर पर	स्तर से
११०	सर्वत्र	सर्वत्र	और देवियों	और -देवियों
"	"	६	देव रूप	देव-रूप
"	५२	१	प्रकृत है।	प्रकृत है?
"	६२	३	X	अं. (क) सत्य है।
"	६६	"	सकती है? गीतना	सकती है?
११४	७६	३	या।	गीतना!
"	"	"	सं. गा.	या ॥१॥
"	"	४	इन्द्रों का	(इन्द्रों का)
"	४, ५	४	दर्शन बलित्व करने विद्योत्पत्ति	दर्शन, बलित्व करने विद्योत्पत्ति
"	"	५	समकुमार की भवता आदि	समकुमार की भवता (आदि
"	"	५	है।	है) ॥२॥
"	७७	१	या, यावत्	या यावत्
"	७८	२	(पिहित या) यावत्	(पिहित या) सत्यसोपपत्ति, (पृ. ७-१२०) यावत्
"	७९	"	रत्नपत्रा पृथ्वी	रत्नपत्रा-पृथ्वी
"	"	४	यद् बाल सत्ता	यद् अर्थ सत्ता
"	८०	१	प्रकार यावत्	प्रकार (अणु-कुमार) सू. २८७
"	"	"	सौम्य कल्प के नीचे यावत्	सौम्य कल्प के नीचे (अणु-कुमार-पराह, सू. २८७) यावत्
"	"	"	यद् बाल सत्ता	यद् अर्थ सत्ता
"	८१	३	रत्नपत्रा पृथ्वी में अणु-कुमार देव	रत्नपत्रा-पृथ्वी में अणु-कुमार-देव
"	"	३	यद् बलित्व है, यावत्	यद् बलित्व है (पञ्चपत्रा, २/३१)
११४	८१	४	भाग करते	भाग करते
११५	८३	२	उन्हीं गति सब सिद्ध	(उन्हीं गति का विवर)
"	८६	"	"	"
"	८६	"	अणु-कुमार-देवों	(अणु-कुमार-देवों
"	"	२	सिद्ध अणु कल्प	सिद्ध अणु-कल्प
"	"	२, ३	सौम्य कल्प	सौम्य-कल्प

पृष्ठ	सूत्र	पंक्ति	अधुख	शुख
११५	८०	२	अणु-कुमार-देव का	अणु-कुमार-देवों का
"	"	३	अणु-कुमार-देव	(अणु-कुमार-देव)
"	"	"	सौम्य कल्पवासी	(सौम्य-कल्पवासी
"	"	५	छोटे, लगे	छोटे, लगे
"	६२	१	अणु-कुमार-देव	(अणु-कुमार-देव
"	"	"	है। तब वैमानिक देव	है। तब वैमानिक-देव
"	"	३	वैमानिक-देव	वैमानिक-देव
"	"	"	यद् बाल सत्ता	यद् अर्थ सत्ता
"	६३	"	लोक में, यावत् सौम्य कल्प	लोक में, यावत् सौम्य-कल्प
"	६५	१	अर्थ, अर्थात्	अर्थ, अर्थात्
"	६६	२	यद् बाल सत्ता	यद् अर्थ सत्ता
"	६७	३	सौम्य कल्प	सौम्य-कल्प
"	६८	"	है यावत्	है (पृ. ३/४५) यावत्
"	१००	४	पृथ्वी कल्प	पृथ्वी (पृ. ३/२६) सत्य
"	१०१	१	सत्य उसी	सत्य में उसी
"	१०२	"	तत्त्वही यावत्	तत्त्वही (पृ. २/६४) यावत्
११७	"	६	कुटुम्ब-गणिका	कुटुम्ब-गणिका
"	"	"	द्रव्य से	द्रव्य से
"	"	८	विकार कर रहा है?	विकार कर रहा है?
"	"	१३	पर यावत्	पर (पृ. २/६६) यावत्
"	"	१८, १९	कुटुम्ब-लोक	कुटुम्बी-लोक
"	"	२५	उत्तम, नील और मध्य कुले	उत्तम, नील-और मध्य कुले
"	"	१०३	बालन-पस्वी	बालन-पस्वी
"	"	"	बालन-पः	बालन-पः
"	११८	५	सत्ता, यावत्	सत्ता (पृ. ३/३३) यावत्
"	"	६	ताप जीवन	ताप-जीवन
"	"	१२, २०	अर्थ विद्वत्	अर्थ-विद्वत्
"	"	१५	पर यावत्	पर (पृ. २/६६) यावत्
"	१०५	३	विकार मध्यम	विकार कला हुआ, मध्यम
"	१०७	१	बालन-पस्वी	बालन-पस्वी
"	"	३	उत्तम सत्ता में यावत् इन्द्र रूप	उत्तम-सत्ता में (पृ. ३/४३)
"	"	"	यावत् इन्द्र-रूप	यावत् इन्द्र-रूप
"	१०८	२	से यावत्	से (पृ. ३/१७) यावत्
"	१०६	"	कल्प तथा क्षान	-कल्प तक क्षान
"	"	३	देवता है-देव	देवता है-देव
"	"	"	देवदत्त	देवदत्त
"	१०६	३	यद् को	यद् को ॥
"	"	५	के सामने निर्गत	के सामने निर्गत
"	"	६	से सत्य	से सत्य
"	"	८	यद् यद् शीतल	यद् यद् शीतल
"	"	"	सौम्य कल्प	सौम्य-कल्प

पृष्ठ	सूत्र	पंक्ति	अधुसूत्र	सूत्र	सूत्र
१४०	२४३	१	इसी प्रकार संविधान एवं तक प्रत्येक -सूत्र की भांति संकल्प है।	इस प्रकार (च. १/१६) यद्यपि (विषय-सूत्र की भांति संकल्प है) है (पूर्व-परमाणुवा. पर २)	सूत्र
"	२४४	"	"	"	"
"	२४७	"	"	"	"
"	"	"	"	"	"
"	"	"	"	"	"
"	२४८	२	"	"	"
"	"	"	"	"	"
१४१	२४९	२	"	"	"
"	"	४	"	"	"
"	२४२	२	"	"	"
"	"	३	"	"	"
"	२४३	"	"	"	"
"	"	"	"	"	"
१४२	२४४	१	"	"	"
"	२४६	३	"	"	"
"	२४८	३	"	"	"
१४३	२४६	१	"	"	"
"	"	"	"	"	"
"	२४९	"	"	"	"
"	२६३	३	"	"	"
"	२६७	४	"	"	"
१४४	२६७	४	"	"	"
"	२६८	१२	"	"	"
"	२७०	३	"	"	"
१४५	२७२	१	"	"	"
"	२७३	"	"	"	"
"	"	४	"	"	"
"	२७४	११	"	"	"
१४६	२७४	१२	"	"	"
"	"	१८	"	"	"
१४६	२७५	१	"	"	"
"	"	"	"	"	"

पृष्ठ	सूत्र	पंक्ति	अधुसूत्र	सूत्र	सूत्र
१४१	१६३	"	"	"	"
१४३	१८०	३	"	"	"
"	"	"	"	"	"
"	१८२	१	"	"	"
"	"	"	"	"	"
"	१८३-८५	३	"	"	"
"	१८४	४-५	"	"	"
१४३	१८४	२, ४	"	"	"
"	१८५	१	"	"	"
"	१८६	१	"	"	"
१४४	१८६	२	"	"	"
१४५	१८६	४	"	"	"
"	"	६	"	"	"
"	"	३	"	"	"
"	१८८	३	"	"	"
"	२००	"	"	"	"
"	२०१	१	"	"	"
"	२०३	३	"	"	"
"	"	"	"	"	"
"	"	"	"	"	"
१४६	२०४	१	"	"	"
१४६	२०५	२	"	"	"
१४६	२०५-०७	४	"	"	"
"	"	"	"	"	"
"	२०६	१	"	"	"
"	२०७	३	"	"	"
"	२०८	१	"	"	"
१४७	२१७	१	"	"	"
"	२१६	३	"	"	"
"	२२०-२१	३	"	"	"
१४७	सं. गा.	सं. गा.	"	"	"
"	"	"	"	"	"
"	"	"	"	"	"
१४८	२४०	२	"	"	"
"	२४२	"	"	"	"

पृष्ठ	सूत्र	पंक्ति	अधुसूत्र	सूत्र	सूत्र
१४६	१०६	६	"	"	"
"	११०	३	"	"	"
"	"	६	"	"	"
"	१११	४	"	"	"
१२०	११२	१२	"	"	"
"	"	२१	"	"	"
"	"	"	"	"	"
"	"	२२	"	"	"
१२१	११२	३६	"	"	"
१२२	११६	६	"	"	"
१२३	११६	४	"	"	"
१२४	१२०-२१	१	"	"	"
"	१२२	३	"	"	"
"	१२३	४	"	"	"
१२४	१२६	५	"	"	"
१२५	१२६	८	"	"	"
"	"	१७	"	"	"
१२६	१३१	१२	"	"	"
"	१३३	४-२	"	"	"
"	१३४	२	"	"	"
१२७	१४२	३	"	"	"
१३०	१४२	४	"	"	"
१३०	१४३	५-६	"	"	"
१३०-३१	१४३	सं. गा.	"	"	"
१३१	१४०	१	"	"	"
"	१६०-६१	१, २	"	"	"

पृष्ठ	सूत्र	संक्ति	अशुद्ध	अशुद्ध	शुद्ध
१५५	४८	१	अस्पृष्ट होकर	अस्पृष्ट रहकर	(वह)
"	"	२	मीमांसा यह स्पष्ट करता है।	मीमांसा (वह) स्पष्ट करता है?	
"	४९	२	श्रीलोक	जोदन आदि	जोदन-आदि
१५६	५४	३	है। यद्यत्		है (यत् २/१३६) यद्यत्
"	५५	२	यद्यत् जीवाजीवाधिपानम् (३/१०६-७६-७६५)	जीवाजीवाधिपानम् (३/१०६-७६५) यद्यत्	जीवाजीवाधिपानम् (३/१०६-७६५) यद्यत्
"	"	३	को लोक-स्थिति लोकपुण्य	लोकस्थिति, लोकपुण्य	लोकस्थिति, लोकपुण्य
१५७	५८	१	यह किस प्रकार	यह इस प्रकार	यह इस प्रकार
१५८	५९	"	भन्ती जो जीव	भन्ती जो जीव	भन्ती जो भव्य (नैतिकता है) उपनय
"	६०	"	उत्तरे आणुय	उत्तरे आणुय	(उत्तरे) वह आणुय
"	६१	"	इस प्रकार यद्यत्	इस प्रकार यद्यत्	इस प्रकार (पूर्ति-पुण्यकथा, यत् २) यद्यत्
"	६१	"	देवी को दण्डक एक श्राव्य है	देवी को दण्डक श्राव्य है	देवी को दण्डक श्राव्य है
"	६२	१, ४	जो जीव	जो जीव	जो भव्य (जिस योनि में उत्पन्न होने की योग्यता प्राप्त) (जीव)
"	६२	२	मनुष्य का आणुय	मनुष्य का आणुय	मनुष्य का आणुय
"	"	४	जिस योनि से	जिस योनि में	जिस योनि में
१५९	६४	श्रीलोक	शब्द शरण	शब्द-बरण	शब्द-बरण
"	६५	सर्वत्र	सुनता है अथवा	सुनता है? (अथवा)	सुनता है? (अथवा)
"	"	६	शब्द-शब्द, यद्यत्	शब्द-शब्द यद्यत्	शब्द-शब्द यद्यत्
"	"	८	क्या उन	क्या (वह) उन	क्या (वह) उन
"	"	१२	सुनता है?	सुनता है।	सुनता है।
"	"	१६	को समता	को भी सुनता	को भी सुनता
"	"	२०	है, अथवा	है? अथवा	है? अथवा
"	"	२०, २५	सुनता है,	को भी सुनता	को भी सुनता
१६०	२२	गीतावां ऊर्ध्व-	गीतावां ऊर्ध्व-	गीतावां (वह) ऊर्ध्व-	गीतावां (वह) ऊर्ध्व-
"	"	"	में विद्यमान शब्दों को सुनता	(में विद्यमान शब्दों) को भी सुनता	(में विद्यमान शब्दों) को भी सुनता
"	"	२४, २५	"	"	"
"	"	२६	है, यद्य	है? यद्य	है? यद्य
"	"	२६	नहीं सुनता है।	नहीं सुनता।	नहीं सुनता।
"	"	३५	सुनता है।	सुनता है?	सुनता है?
"	६५	२	है या	है? (अथवा)	है? (अथवा)
"	६६	"	है अथवा	है? (अथवा)	है? (अथवा)
१६६	७०	१	हंसता है, उस	हंसता है और उत्पन्न होता है, उस	हंसता है और उत्पन्न होता है, उस
"	"	२	उत्पन्न केवली	केवली	केवली
१६७	"	"	है न	है और न	है और न
१६९	"	३	जीव साहित	जीव जो साहित	जीव जो साहित
"	"	"	है। वह	है, वह	है, वह
"	"	४	अपेक्षा से कहा	अपेक्षा से यह कहा	अपेक्षा से यह कहा

पृष्ठ	सूत्र	परिक	अध्याय	शुद्ध
"	३	"	अनगर यावत्	अनगर (ब. १/८, १०) यावत्
"	४	४, ५	उस समय	(उस समय)
"	५	४	होता है, यावत् उस समय	होता है यावत् (उस समय)
१५०	६	६	उस समय	(उस समय)
"	"	"	क्या में	क्या में
"	७, ८	६, ७	गौतमा यह सब ऐसा ही है।	गौतमा यावत् होती है। (यस सब ऐसा ही है।)
१५१	११, १२	५	अनगर मुहूर्त का जल्द	(अनगर मुहूर्त का जल्द)
"	१३	७	वर्ष का प्रथम समय	(वर्ष का प्रथम समय)
"	१४	८	प्रथम सप्ताह	(प्रथम सप्ताह)
"	१५	३	वर्ष का	(वर्ष का)
"	१६	२	प्रथम यावत्	प्रथम (ब. ५/१३-१५) यावत्
१५२	"	३	साथ है। इसके	(साथ है। इसके
"	"	४	होते हैं।	सकते हैं।
"	१७	६	यावत्	है (ब. ५/१३, १५) यावत्
"	१८	३	अभिषेक	(अभिषेक)
"	१९	५	आयुष्मन् कर्मा	आयुष्मन् कर्मा
"	"	"	गौतमा पूर्ण पाठ प्रत्यक्ष	गौतमा पूर्ण पाठ प्रत्यक्ष
"	२०	१	उसी प्रकार	उस प्रकार
"	"	"	आलापक	(आलापक)
"	२१	२	अधिकृत रूप से	निराधिकृत
"	२२	३	वक्तव्य है। विशेषतः	वक्तव्य है (ब. ५/२३), इत्यादि
"	"	"	वक्तव्य यावत्	वक्तव्य है—
१५३	२३	"	आलापक है यावत्	(वक्तव्य) (ब. ५/१५) यावत्
"	२४	३	वक्तव्य है।	आलापक है (ब. ५/५-७) यावत्
"	२५	१	आलापक है यावत्	वक्तव्य है (ब. ५/३)
"	२६	४	नहीं होती यावत्	आलापक है (ब. ५/१५-१८) यावत्
"	२७	१	वक्तव्य है, विशेषतः	नहीं होती (ब. ५/१८) यावत्
"	२८	२	वक्तव्य है उसी	वक्तव्य है (ब. ५/२३-२४)
"	"	५	है, आयुष्मन् कर्मा	वक्तव्य है (ब. ५/२४-२७) उसी
"	२९	१	नगर में यावत्	है, आयुष्मन् कर्मा
"	"	"	करो हुए इस प्रकार	नगर में (ब. १/४-१०) यावत्
१५४	३५	१	नगर कहते हैं।	(नगर)
१५४	३६-३८	सर्वत्र	है? (५/२१ की तरह)	है (पूर्ति ब. ५/२१)?
"	४१-४२	१	है? (५/४० की तरह)	है (पूर्ति ब. ५/४०)?
१५५	४३	"	यावत् महाकात कहते हैं।	है (ब. ५/४०) यावत् महाकात
"	४३, ४५	सर्वत्र	है? (५/४० की तरह)	कहते हैं।
"	४४, ४५	१	है? (५/४० की तरह)	है (पूर्ति ब. ५/४०)?

पृष्ठ	सूत्र	वर्षिक	अनुसूच	अनुसूच
१४६	२०५ सं. गा.	२	महावीरा किन्तु	महावीर ॥१॥
"	"	३	गीतरथा	किन्तु ॥२॥
"	२०७	६	है अथ	है अथ
"	२०८	९	खण्डन नगर में भगवान् गौतम भगवान् महावीर की पुष्टि करना करते हुए इस	खण्डन नगर (ब. १/४-१०) बल्लभ (भवान् गौतम भगवान् महावीर की पुष्टि करने वाले हुए)
"	"	५	उद्देशक यहां	उद्देशक (३/६८८-१०३७) यहां
"	२८०	९	खण्डन नगर में भगवान् गौतम भगवान् महावीर से	खण्डन (नगर में) (ब. १/४-१०) यहां
"	"	३	कमलाः अनुसू-	कमलाः (डा. ३/१४३-१६०) जीवा
"	"	४	करन	३/२३४-२६८, १०४८-१०५६) यद्यत् अनुसू-
"	"	"	"	-कन्य
१४७	सं. गा.	९	उद्देशक है।	उद्देशक है ॥१॥
"	"	९	नगर में भगवान्... करते हुए	(नगर में) (ब. १/४-१०) यद्यत् (भवान् ... करते हुए)
"	२	२	इन्के	(इन्के)
"	३	४	ऊपर यावत् ईशाननाम	ऊपर (भवान्, २/१५३) यद्यत् ईशान नाम
"	"	"	यहां पाव	यहां (पञ्चविधा, २/१५३) यद्यत् पाव
"	"	३	तीनों शक्त में शुद्ध	तीनों शक्त (ब. ३/२५०-२७९) में शुद्ध
"	५	१, २	अधिकृत रूप से ज्ञात है, केवल	निर्लेख (ज्ञात है), इतना अन्तर है—
"	६	९	स्थिति एक विवाद भाग कम दो	(स्थिति) एक-विवाद-भाग-कम-दो-पक्षोंपक्ष (२ ^१ / _३ पक्षोंपक्ष)
"	सं. गा.	"	स्थिति दो	(स्थिति) दो
"	२-३	२-३	स्थिति एक विवाद भाग अधिक दो	स्थिति एक-विवाद-भाग-अधिक-दो-पक्षोंपक्ष (२ ^१ / _३ पक्षोंपक्ष) की है।
"	"	"	पक्षोंपक्ष (२ ^१ / _३) की है।	-पक्षोंपक्ष (२ ^१ / _३ पक्षोंपक्ष) की है।
"	"	"	स्थिति एक	(स्थिति) एक
"	"	४	की है।	की है ॥१॥
"	६	९	ज्ञात है	ज्ञात है (ब. ३/२५०-२७९)
१४८	७	२	उद्देशक जान	उद्देशक (१७/६८८-११३) जान
"	८	४	उद्देशक	उद्देशक (१७/११४-११६)
"	८	२	अल्पप्रमाण	अल्पप्रमाण ॥२॥
१४९	सं. गा.	२	फारें यद्यत्	फारें (ब. १/७९, ८) यद्यत्

पृष्ठ	सूत्र	पंक्ति	अधुसू	शुसू
१६१	७१	३	इस प्रकार यावत् वैधानिक-देवो तक वही दण्डवत् है।	इस प्रकार (पूर्ति-परंपरा, पद २) यावत् वैधानिक-देव (साम्य है)।
"	"	४	एवंदिय को	(समी)
"	७४	३	जीव दर्शनपरणीय है, वह	देवता-वस्तु है।
"	७५	४	इस प्रकार यावत् वैधानिक-देवो तक प्रत्यक्ष है।	इस प्रकार (पूर्ति-परंपरा, पद २) यावत् वैधानिक-देव (साम्य है)।
"	"	५	एवंदिय को	(समी)
"	"	६	एवंदिय को	(समी)
१६२	७७	३	ऐसा करते समय वह	(समी)
१६३	७८	३	यह संगत है	(समी)
१६३	८३	३	यह संगत से	(समी)
"	"	४	महेश्वर से सम्बन्धित वेतो के प्रमाण का यह	(समी)
"	"	५	महेश्वर यावत्	(समी)
१६४	८४	३	अथवा यावत्	(समी)
"	"	४	आते हैं, यावत्	(समी)
"	"	५	करते हैं।	(समी)
"	८५	३	यवन	(समी)
"	८६	३	भाषा को	(समी)
१६६	८७	३	अनुपेक्षाओं की भाँति	(समी)
"	"	४	आसक्त है	(समी)
"	"	५	अधिकृत रूप से ज्ञात है।	(समी)
"	१०१	३	देव	(समी)
"	१०२	३	वैधानिक देव	(समी)
"	"	४	सम्बन्धित-अपान्तक	(समी)
१६६	"	५	देव	(समी)
"	१०३	३	अनुपेक्षाओं की भाँति	(समी)
"	१०४	३	साम्य	(समी)
"	"	४	उपान्तक	(समी)
"	"	५	नहीं है।	(समी)
१६७	१०५	३	जीव-योग	(समी)
१६८	१०६	३	उपान्तक में	(समी)
१६९	१०७	३	यह देव	(समी)
"	"	४	यह सम्बन्धित है?	(समी)
"	"	५	यह सम्बन्धित है?	(समी)
१७०	१०८	३	अनुपेक्षाओं की भाँति	(समी)
१७०	१०९	३	वैधानिक	(समी)

पृष्ठ	सूत्र	पंक्ति	अधुसू	शुसू
१६६	१११	३	इसी प्रकार वैधानिक तक	इस प्रकार (पूर्ति-परंपरा, पद २) यावत् वैधानिक तक
"	"	४	समी	(समी)
"	"	५	देवता-वस्तु है।	(समी)
"	११२	३	सम्बन्धित है।	(समी)
१७०	११३	३	उपान्तक	(समी)
"	११४	३	महेश्वर-वस्तु	(समी)
१७२	११५	३	देवता-वस्तु	(समी)
१७३	११६	३	जीव-वस्तु	(समी)
१७४	११७	३	आसक्त है।	(समी)
"	११८	३	उपान्तक	(समी)
"	११९	३	उपान्तक	(समी)
"	१२०	३	उपान्तक	(समी)
"	१२१	३	उपान्तक	(समी)
"	१२२	३	उपान्तक	(समी)
"	१२३	३	उपान्तक	(समी)
"	१२४	३	उपान्तक	(समी)
"	१२५	३	उपान्तक	(समी)
"	१२६	३	उपान्तक	(समी)
"	१२७	३	उपान्तक	(समी)
"	१२८	३	उपान्तक	(समी)
"	१२९	३	उपान्तक	(समी)
"	१३०	३	उपान्तक	(समी)
"	१३१	३	उपान्तक	(समी)
"	१३२	३	उपान्तक	(समी)
"	१३३	३	उपान्तक	(समी)
"	१३४	३	उपान्तक	(समी)
"	१३५	३	उपान्तक	(समी)
"	१३६	३	उपान्तक	(समी)
"	१३७	३	उपान्तक	(समी)
"	१३८	३	उपान्तक	(समी)
"	१३९	३	उपान्तक	(समी)
"	१४०	३	उपान्तक	(समी)
"	१४१	३	उपान्तक	(समी)
"	१४२	३	उपान्तक	(समी)
"	१४३	३	उपान्तक	(समी)
"	१४४	३	उपान्तक	(समी)
"	१४५	३	उपान्तक	(समी)
"	१४६	३	उपान्तक	(समी)
"	१४७	३	उपान्तक	(समी)
"	१४८	३	उपान्तक	(समी)
"	१४९	३	उपान्तक	(समी)
"	१५०	३	उपान्तक	(समी)
"	१५१	३	उपान्तक	(समी)
"	१५२	३	उपान्तक	(समी)
"	१५३	३	उपान्तक	(समी)
"	१५४	३	उपान्तक	(समी)
"	१५५	३	उपान्तक	(समी)
"	१५६	३	उपान्तक	(समी)
"	१५७	३	उपान्तक	(समी)
"	१५८	३	उपान्तक	(समी)
"	१५९	३	उपान्तक	(समी)
"	१६०	३	उपान्तक	(समी)
"	१६१	३	उपान्तक	(समी)
"	१६२	३	उपान्तक	(समी)
"	१६३	३	उपान्तक	(समी)
"	१६४	३	उपान्तक	(समी)
"	१६५	३	उपान्तक	(समी)
"	१६६	३	उपान्तक	(समी)
"	१६७	३	उपान्तक	(समी)
"	१६८	३	उपान्तक	(समी)
"	१६९	३	उपान्तक	(समी)
"	१७०	३	उपान्तक	(समी)
"	१७१	३	उपान्तक	(समी)
"	१७२	३	उपान्तक	(समी)
"	१७३	३	उपान्तक	(समी)
"	१७४	३	उपान्तक	(समी)
"	१७५	३	उपान्तक	(समी)
"	१७६	३	उपान्तक	(समी)
"	१७७	३	उपान्तक	(समी)
"	१७८	३	उपान्तक	(समी)
"	१७९	३	उपान्तक	(समी)
"	१८०	३	उपान्तक	(समी)
"	१८१	३	उपान्तक	(समी)
"	१८२	३	उपान्तक	(समी)
"	१८३	३	उपान्तक	(समी)
"	१८४	३	उपान्तक	(समी)
"	१८५	३	उपान्तक	(समी)
"	१८६	३	उपान्तक	(समी)
"	१८७	३	उपान्तक	(समी)
"	१८८	३	उपान्तक	(समी)
"	१८९	३	उपान्तक	(समी)
"	१९०	३	उपान्तक	(समी)
"	१९१	३	उपान्तक	(समी)
"	१९२	३	उपान्तक	(समी)
"	१९३	३	उपान्तक	(समी)
"	१९४	३	उपान्तक	(समी)
"	१९५	३	उपान्तक	(समी)
"	१९६	३	उपान्तक	(समी)
"	१९७	३	उपान्तक	(समी)
"	१९८	३	उपान्तक	(समी)
"	१९९	३	उपान्तक	(समी)
"	२००	३	उपान्तक	(समी)

पृष्ठ	सूत्र	अधुख	शुख
२०१	१२	नीय वाते	नीयो वाते,
२०२	१५	(नारक, ठेको, बापु, किलोन्विय, और सिख को हल कर)	(नारको, सेको, बापु, किलोन्वियो और सिख को हल कर)
"	१६	पुण्यविक्रिक, अपुकाविक और वनसविकविक	पुण्यविक्रिक, अपुकाविक- और वनसविकविक-
"	१७	नीयो	नीयो
"	१८	-रहित नीय	-रहित नीयो
"	१९	मनुष्य	मनुष्यो
"	२०-२२	मुष्टि-नीयो के	मुष्टि-नीयो के
"	२०	किलोन्विय नीयो	किलोन्विय-नीयो
"	२२	संयत नीयो	संयत-नीयो
"	"	असंयत नीयो	असंयत-नीयो
"	२३, २६	एकेन्द्रियो	एकेन्द्रियो
"	२४	संयतारस नीयो	संयतारस-नीयो
"	२४	नेसपयारसत नीय	नेसपयारसत-नीयो
"	२६	नीय और एकेन्द्रिय	नीयो और एकेन्द्रियो
"	२७	नीय तथा एकेन्द्रिय	नीयो तथा एकेन्द्रियो
"	२८	मनुष्यो	मनुष्यो
"	२८, २९	नीय	नीयो
"	२९	और	नीयो,
"	३२	अपुकाविकी, मन-पुण्यविकानी	अपुकाविकी, मन-पुण्य-विकानी
"	३७	पदो के नीय	पदो के नीय
"	३८	एकेन्द्रिय नीयो	एकेन्द्रिय-नीयो
"	३८	नेरय-रहित-नीयो	नेरय-रहित-नीयो
२०२-०१	संज्ञ	नीयो में नीय और एकेन्द्रिय	नीयो में नीयो और एकेन्द्रियो
२०२	४०	मनो होते हैं। संवेदक सकलाय-नीयो	मनो होते हैं। संवेदक सकलाय-नीयो
"	४१	मुण्डक-वेदक-नीयो	मुण्डक सकलाय-नीयो
"	४४	नीय और मनुष्य	मुण्डक-वेदक-नीयो
"	४५	औषिक नीय	नीयो और मनुष्यो
"	"	अपारी-नीय	औषिक-नीय
२०३	४८	अपुकाविक नीय	अपारी-नीयो
"	५०, ५१	होते हैं। नैयिक, देव	अपुकाविक नीयो
"	५०	धाम-	होते हैं। नैयिक, देव
"	२	-उक्त दत्त सूत्रों (५४, ६३)	धाम-अपुकाविक
सं. गा.	२	हैं।	(-उक्त दत्त सूत्रों (५४, ६३-६३)
२०३	६३	हैं।	हैं। ॥१॥
"	६५	नहीं हैं।	हैं। यद्यपु
"	"	सुखी नीय	नहीं हैं।
"	५		(सर्व नीयो)

पृष्ठ	सूत्र	अधुख	शुख
२०३	६७	करने की	करने के
"	६८	सूत्र (६४, ६५)	सूत्र (६४, ६५)
"	६८	वैयक्तिक देव	वैयक्तिक-देव
सं. गा.	६८	हैं।	हैं ॥१॥
२०४	७१	विद्विषित क्षेत्र के	(विद्विषित क्षेत्र के)
"	"	पुण्यविकार विवर्तित क्षेत्र के	(पुण्यविकार विवर्तित क्षेत्र के)
"	७२	जला है। यहाँ	(-पुण्यविकार तमस्काय नहीं है।)
"	७४	तमस्काय	जला है-यहाँ
"	७५	है यद्यपु	(तमस्काय)
"	"	हजार-दो-	है (मं. १/२२८) यद्यपु
"	"	काला यद्यपु	हजार-दो-
"	७	ललित यद्यपु	काला (मं. ३/४) यद्यपु
२०५	७७	मय है? यद्यपु	ललित (मं. ३/३८) यद्यपु
२०६	८७	तमस्काय	मय है? (मं. १/४८) यद्यपु
"	८८	पुण्यविकार रूप में	(तमस्काय)
"	९०	की बाहरी कुम्भारविकार	पुण्यविकार-रूप में (मं. १/४३७)
सं. गा.	९०	है।	असकाम-रूप में उपपन्न-पूर्व
"	"	कुम्भारविकार	(की बाहरी कुम्भारविकार)
"	"	है।	(कुम्भारविकार)
"	६१	उत्तक	है ॥१॥
"	६२	हीय यद्यपु	(उत्तक)
"	"	काला यद्यपु	हीय (मं. ६/७५) यद्यपु
२०७	"	ललित	काला (मं. ३/४) यद्यपु
"	५	यद्यपु देवगति	ललित (मं. ३/३८)
"	६४	है यद्यपु	यद्यपु देव-गति
२०८	१०३	कुम्भारविकार के	है (मं. १/४८) यद्यपु
"	१०४	कुम्भारविकार	(कुम्भारविकार के)
"	१०५	है यद्यपु	(कुम्भारविकार)
"	१	है पर	है (मं. १/४३७) यद्यपु
"	१०६	जैसे-१, ओले	है पर
"	१०८	है यद्यपु	जैसे-१, ओले
२०९	११०	कुम्भारविकार के	है यद्यपु
सं. गा.	११०	देव।	कुम्भारविकार के
२०६	११४	देवो का परिवार है।	देवो का परिवार है। ॥१॥

पृष्ठ	सूत्र	पंक्ति	अधुख	शुख
२०८	११५	४	ज्ञातव्य है, यद्यपु-	ज्ञातव्य है (नीमा. २) यद्यपु-वार.
"	११६	"	बार।	वार.
"	११७	२	उपनी	(उपनी)
"	११८	"	सोचनिक-विमानो से	(सोचनिक-विमानो से)
"	१२०	२	रत्नप्रका यद्यपु	रत्नप्रका (मं. १/२११) यद्यपु
"	"	३	तत्पन्न-पृथ्वी यद्यपु	तत्पन्न-पृथ्वी (मं. १/२१२-२१५) यद्यपु
"	"	४	यद्यपु	यद्यपु है, (मं. १/२१३-२१५) यद्यपु
२१०	१२२-२५	१	होता है।	होता है, (मं. १/२१३-२१५) यद्यपु
"	१२२	६	है। कोई नीय	है। कोई (नीय)
"	"	६, ७-८	है।	है।
"	१२२	१०	इस प्रकार	इस प्रकार (मं. १/२११) यद्यपु
"	"	११	अप्राप्तनी पृथ्वी तक ज्ञातव्य है।	अप्राप्तनी-पृथ्वी (के विषय में) (ज्ञातव्य है।)
"	१२५	४	है। कोई नीय	है। कोई (नीय)
"	"	५	आ कर	आकर
"	"	६	है।	है।
"	"	६-७	अनुक्त के असेखतवै भग्न मात्र,	अनुक्त के-असेखतवै-भग्न मात्र,
"	"	"	संख्यातवै भग्न	संख्यातवै-भग्न
"	"	"	अनुक्त	अनुक्त (अनुक्तप्रकार, पृ. ४००)
२११	१२६-२७	१	पुण्यविकार नीयो	पुण्यविकार-नीयो
"	१२६	५	होता है।	होता है।
"	"	"	नैयिक नीयो	नैयिक-नीयो (मं. ६/१२२)
"	"	"	इस प्रकार यद्यपु अनुसरोपगतिक	इस प्रकार (मं. ६/२१५, २१६)
"	१२७	"	की सत्यता।	यद्यपु अनुसरोपगतिक (सत्यव्य है।)
"	"	"	पूर्ववत् ज्ञातव्य है	पूर्ववत् (मं. ६/१२२) (ज्ञातव्य है।)
"	"	५	वाह पुण्यतो का	वाह पुण्यतो का
"	"	"	उपनि	(उपनि)
२११-१२	१३०-३१	६	अपुण्यमन्	अपुण्यमन्
"	१३२	२	है ॥१॥	है ॥१॥
"	माया	"	है, सत ग्राम	सत ग्राम
"	"	३	है। तीन हजार	है ॥२॥
"	"	"	है।	तीन-हजार
"	"	४	दृष्ट है।	दृष्ट है ॥३॥
"	१३४	२	है।	है ॥३॥
२१३	माया	१०	बालाव हरिवर्ण	बालाव का हरिवर्ण
"	"	१२	पूर्व विदेह	पूर्व-विदेह
"	"	१३	(और अपर-विदेह)	(और अपर-विदेह)
२१३	१३२-१४	"	मनुष्यो का आठ	मनुष्यो के आठ
"	"	१	बलातो से पूर	बलातो से पूर
"	"	"	हुआ है।	हुआ है ॥२॥
"	"	२	होता है।	होता है ॥३॥

पृष्ठ	सूच	पंक्ति	अनुसूच	शुद्ध
२३४	५३५	४	उत्तरकुन्त-बैव है यावत्	उत्तरकुन्त-बैव है (विभा. ३/५०८, ५०९, जं. २/७३) यावत्
"	"	"	कोशल यावत्	कोशल (विभा. ३/१८०-१८५, जं. २/८-१३३) यावत्
"	"	"	है यावत्	है (विभा. ३/१८६-६३९, जं. २/१४५-१४७) यावत्
२३७	५३७	२	रत्नप्रभा यावत्	रत्नप्रभा (वि. ८/१०८) यावत्
२३८	५३८	१	है यावत्	है (वि. १/४८) यावत्
२३९	५३९	४	शब्द की वलज्जला	है (पूर्ति-पद ६/७८८) यावत्
"	५४०	१	है यावत्	है (वि. १/४८) यावत्
२४०	५४०	५	बादर अकाय	बादर-अकाय
"	५४०	१	-सीधर्म	(-सीधर्म)
"	"	"	प्रस में बादर-	प्रस में (बादर-)
२४६	२२२	२	बादर पुर्वीकाय का सूत्र विवक्षित है। रत्नप्रभा आदि पुर्वीको में बादर- -अनिकय का सूत्र विवक्षित है।	(बादर) पुर्वीकाय (का सूत्र विवक्षित) है। (रत्नप्रभा-आदि) पुर्वीको में (बादर)-अनिकय (का सूत्र विवक्षित) है।
"	५४०	३-४	बादर-अकाय, बादर तेजस्काय और बादर वनस्पतिकय का सूत्र विवक्षित नहीं है।	(बादर-)-अकाय, (बादर-)-तेज- काय और (बादर-)-वनस्पतिकय का सूत्र विवक्षित नहीं है।
"	५४०-५४४	सर्वत्र	नरक से लेकर वैश्वानर तक सभी देवता हैं।	(नरक से लेकर) (पूर्ति-रत्नप्रभा, पद २) यावत् वैश्वानर तक (सभी) देवता हैं।
"	५४१	५	देवता है।	देवता है।
"	५४२	७	होता है।	होता है।
"	५४३	४	है यावत्	है (वि. ६/१८८) यावत्
"	५४४	४	है।	है।
"	५४४	१३	होते हैं।	होते हैं।
२५०	५४५	श्रीर्षक	लवणादि-समुद्र	लवणादि-समुद्र
"	५४८	३	बराबतों है?	बराबतों है?
"	५४८	१	है यावत्	है (वि. ६/१४६) यावत्
"	"	३	उत्कलीक-जीव	उत्कलीक-जीव
"	"	८	है। यावत्	है (विभा. ३/२४६) यावत्
"	"	८-६	दीर्घ तप स्वभूत-रूप अस्तान वाते समुद्र	दीर्घ तप स्वभूत-रूप अस्तान वाते समुद्र
२५०	५६०	३	गुप्त नामों	गुप्त नामों
"	"	"	(दीर्घ-समुद्रों में)	(दीर्घ-समुद्रों में)
"	"	"	उत्पन्न भ्रातृत्व है।	(उत्पन्न?) (रत्नप्रभा-विभा. ३/६७२- ६७६) यावत्

पृष्ठ	सूच	पंक्ति	अनुसूच	शुद्ध
२५८	५६२	३, ४	है। अलवा	है। अलवा
"	"	४	यहां	(यहां)
"	५६५	१, २	एक वर्ण और एक रूप का	(एक वर्ण और एक रूप का)
"	"	४-७	अन्य विकल्प की श्राव्य है	(अन्य विकल्प की श्राव्य है) (वि. ६/१६३, १६४)
"	"	६	निर्माण	(निर्माण)
"	"	१० सर्वत्र	वह अधिकारी पुद्गल को ग्रहण करता करने में	(वह अधिकारी पुद्गल को) ग्रहण करता करने में
"	५६६	५	पुद्गल के परिणमन	(पुद्गल के परिणमन)
२५८	५६७	सर्वत्र	वाते पुद्गल से	वाते (पुद्गल) से
"	"	"	पुद्गल तक के परिणमन	(पुद्गल तक के परिणमन)
"	"	१२	गन्ध, रस और स्वादों को परिणमन	गन्ध, रस और स्वादों को परिणमन
२५८	५६८	श्रीर्षक	अतिपुद्गल सेवता-आदि	अतिपुद्गल-सेवता-आदि
२६०	५७२	१	इस प्रकार का कल्याण कैसे है?	इस प्रकार का कल्याण कैसे है?
"	५७३	२	तत्त्वा, चौड़ा यावत्	तत्त्वा-चौड़ा (वि. ६/७५८) यावत्
"	५७४	१	है? वस्तु	है? (अवस्था)
"	५७५	२	है। जीव	है। जीव
"	५७५	२	है। जीव	है। जीव
"	५७६	२	है। जीव	है। जीव
"	५७७	१	अपुद्गल-कुमार	अपुद्गल-कुमार
"	५७७	१	प्रकार वैश्वानर-देवों	प्रकार (पूर्ति-रत्नप्रभा, पद २)
२६१	५८०-८२	"	इस प्रकार वैश्वानर	इस प्रकार वैश्वानर-देवों
"	५८१	३	है।	है और
"	५८२	"	इसी प्रकार	इस प्रकार
"	५८३	"	वस्तु इस प्रकार का कल्याण कैसे है?	वस्तु इस प्रकार का कल्याण कैसे है?
"	५८४	२	व्यवस्था, वायुमन्तर, व्योमन्तर, ज्योतिष्मन्- और	व्यवस्था, वायुमन्तर, व्योमन्तर, ज्योतिष्मन्- और
"	५८६	श्रीर्षक	नैतिक आदि	नैतिक-आदि
२६२	"	"	नैतिक जीवों	नैतिक-जीवों
"	"	"	वैश्वानर	वैश्वानर-देवों
"	५८८	२	है यावत्	है (वि. ६/१०८) यावत्
"	५८८	"	ग्रहण कर विषय	ग्रहण का विषय
२६२	५८८	३	जातना-देवता-दसवे	जातना-देवता-दसवे
"	"	३	ये हैं।	ये हैं।

पृष्ठ	सूच	पंक्ति	अनुसूच	शुद्ध
२६३	५८९	१	उद्देश्य	(उद्देश्य)
"	"	६	वस्तुत्वता	वस्तुत्वता (१११)
"	"	१	मे प्रसार गैलन ने अणुण प्रकाश	मे प्रसार गैलन ने अणुण प्रकाश
"	"	"	महावीर से	महावीर से
"	"	५-६	है। जीव और ज्योतिष्मन् ने दोनो	है। जीव और ज्योतिष्मन् ने दोनो
"	"	"	शेष सब तीसरे	शेष सब तीसरे
"	"	६	निष्पन्न-आधारक होते हैं।	निष्पन्न-आधारक होते हैं।
"	"	३	करता है। वैश्वानर तक सभी	करता है। वैश्वानर तक सभी
"	"	२	दण्डको मे यह वस्तुत्वता	दण्डको मे यह वस्तुत्वता
२६४	५	५	कला जाता है।	कला जाता है।
"	६	२	हुआ है।	हुआ है।
"	"	२	है।	है।
"	"	७	यह का काट दे, मन्ते	यह का काट दे, मन्ते
"	"	४	है। कर्त्तिक	है। कर्त्तिक
"	"	८	करता है? गैलन	करता है? गैलन
"	"	"	मैलन	मैलन
२६६	५	५	है यावत्	है (वि. ७/३) यावत्
२६६	५६	श्रीर्षक	इन्द्रावर्त आदि	इन्द्रावर्त-आदि
"	५८	१	वैश्वानर तक सभी दण्डक इसी	इस प्रकार (नैतिकों से लेकर)
"	"	"	प्रकार	(पूर्ति-रत्नप्रभा, पद २) यावत्
"	"	"	वैश्वानरों तक (सभी) दण्डक	वैश्वानरों तक (सभी) दण्डक
"	"	"	स-अणुण-आदि-यौग	स-अणुण-आदि-यौग
"	"	"	निष्पन्नी	निष्पन्नी
२६७	२४	२	है।	है? वस्तु
२६८	२७	"	है।	है? वस्तु
२६८	२८-३४	१	प्रकाशमान के किन्ते प्रकार प्रकाश	प्रकाशमान के किन्ते प्रकार प्रकाश
"	"	"	है?	है?
"	"	२	प्रकाशमान के दो प्रकार प्रकाश है,	प्रकाशमान के दो प्रकार प्रकाश है,
"	"	३	प्रकार प्रकाश है,	प्रकार प्रकाश है,
"	"	३	गन्धा-अणुण, अतिशय	गन्धा-अणुण, अतिशय
"	"	"	है।	है।
"	"	४	अणुण, अतिशय	अणुण, अतिशय
२७०	३४	१	प्रकाशमान के किन्ते प्रकार प्रकाश	प्रकाशमान के किन्ते प्रकार प्रकाश
"	"	"	है?	है?
"	"	२	प्रकार प्रकाश है,	प्रकार प्रकाश है,

पृष्ठ	सूत्र	पंक्ति	अधुन	शुद्ध
२३०	३६	"	जैव क्या	जैव (बहुवचन) क्या
	३७	२	जैव मूल	जैव (बहुवचन) मूल
	३७	१	है? पूछा।	है? (-) पूछा।
	"	२	है उत्तर-गुण	है उत्तर-गुण
	"	३	है।	है।
	३८	१	इस प्रकार (पूर्ति-पण्यवणा, एर २) यत्न है।	इस प्रकार (पूर्ति-पण्यवणा, एर २) यत्न है।
	३८	"	विशेषणिक और मुख्य जैव	विशेषणिक (बहुवचन) और मुख्य (बहुवचन) जैव
	"	२	नैतिक	नैतिक
	४०	१	इन मूल-गुण-प्रत्याख्या, उत्तर-गुण-प्रत्याख्या और अप्रत्याख्या	इन मूल-गुण-प्रत्याख्या, उत्तर-गुण-प्रत्याख्या और अप्रत्याख्या
	४२	१	जैवों में	जैवों में
	४३	१	कहते। इन मनुष्यों में मूल-गुण-प्रत्याख्याओं में पूछा।	कहते। इन मनुष्यों में मूल-गुण-प्रत्याख्याओं में पूछा।
	"	३	जैव क्या	जैव (बहुवचन) क्या
	४४	२	जैव सर्व	जैव (बहुवचन) सर्व
	४५	१	नैतिक सर्व	नैतिक (बहुवचन) सर्व
२३१	४५	१	इस प्रकार (नैतिक से लेकर) (पूर्ति-पण्यवणा, एर २) यत्न	इस प्रकार (नैतिक से लेकर) (पूर्ति-पण्यवणा, एर २) यत्न
	४६	४	गुण अधिक है	गुण अधिक है
	"	"	है।	है।
	५०	१	जैवों की पूछा	जैवों में (-) पूछा
	५१	१	इन सर्व-मूल-गुण-प्रत्याख्या मनुष्यों की पूछा।	इन मनुष्यों में सर्व-मूल-गुण-प्रत्याख्याओं में (-) पूछा।
	५२	३	प्रत्याख्या प्रत्याख्या की	प्रत्याख्या प्रत्याख्या की
	"	५	विशेषणिक-जैव और मुख्य	विशेषणिक-जैव और मुख्य
	"	"	मनुष्य	मनुष्य (बहुवचन)
	"	"	केमालिक देवों तक शेष सभी जैव	केमालिक देव (सभी जैव) पूर्ति-पण्यवणा, एर २) अप्रत्याख्या है।
	५३	१, २	इन सर्वोत्तर-गुण-प्रत्याख्या, देशो-त्तर-गुण-प्रत्याख्या और अप्रत्याख्या जैवों में	इन जैवों में सर्वोत्तर-गुण-प्रत्याख्या, देशो-त्तर-गुण-प्रत्याख्या और अप्रत्याख्या जैवों में
	"	२	विशेषणिक है? प्रपम	विशेषणिक है? प्रपम
	५४	२	प्रकार केमालिक जैवों तक	प्रकार केमालिक जैवों तक
२३१	५४	३	की भाँति (नैतिक से लेकर) (पूर्ति-पण्यवणा, एर २) यत्न	की भाँति (नैतिक से लेकर) (पूर्ति-पण्यवणा, एर २) यत्न
	"	"	जैवों का ही	जैवों का ही

पृष्ठ	सूत्र	पंक्ति	अधुन	शुद्ध
२३१	५४	३	बहुवचन की प्रपम	बहुवचन की उत्ती प्रकार प्रपम (म. ७/४०-४२)
२३२	५५	३-४	जैव क्या	जैव (बहुवचन) क्या
"	"	२	जैव जैव प्रत्याख्या	जैव प्रत्याख्या
"	५६	१	वक्तव्य	वक्तव्य
"	"	२	जैव प्रत्याख्या	जैव (बहुवचन) प्रत्याख्या
"	"	३	केमालिक देवों तक शेष सभी जैव	शेष सभी जैव (पूर्ति-पण्यवणा, एर २) अप्रत्याख्या है यत्न केमालिक
"	५७	२	कितने	कितने
"	"	७	मनुष्य	मनुष्यों
"	५८	३-४	जैव अप्रत्याख्या है।	जैव अप्रत्याख्या है। गीत!
"	६०	१	शायद है?	शायद है?
"	"	२	जैव जैव जैव की वक्तव्य, जैवों की भाँति नैतिक की	जैवों की भाँति नैतिक की
"	"	२-३	उत्ती प्रकार नैतिक	उत्ती प्रकार नैतिक
२३३	६३	५	श्रीमत्तु	श्रीमत्तु
"	६४	५	जैव सुष्ट	जैव से सुष्ट
"	६५	२	है? गीत!	है? गीत!
२३४	७०	२	मूल, यत्न	मूल यत्न
"	७१	१	अनुसुमार की वक्तव्य की इसी प्रकार है। विशेष यह है कि	अनुसुमार की वक्तव्य की इसी प्रकार है। विशेष यह है कि
"	"	२	प्रकार यत्न केमालिक	प्रकार (पूर्ति-पण्यवणा, एर २) यत्न केमालिक
"	"	४	नहीं है। यत्न	नहीं है यत्न
"	७३	२	है। यत्न	है यत्न
"	७४	१	है, जो	है, जो
२३५	७८	१	इसी प्रकार यत्न केमालिक की वक्तव्य	इसी प्रकार (पूर्ति-पण्यवणा, एर २) यत्न केमालिक (की वक्तव्य)
"	८१	"	इसी प्रकार नैतिक यत्न केमालिक	इसी प्रकार नैतिक की, इस प्रकार यत्न केमालिक
"	८२	"	है, जिसकी	है, जिसकी
"	८३	४	है-यत्न	है यत्न
२३६	८४	१	इसी प्रकार नैतिक यत्न केमालिक	इसी प्रकार नैतिक की यत्न केमालिक
"	८६	"	कौनों जितकी	कौनों? जितकी
२३६	८६	६	है, जो	है, जो

पृष्ठ	सूत्र	पंक्ति	अधुन	शुद्ध
२३६	८०	१	है, जो	है? जो
"	"	२	समय है।	समय है?
"	८२	१	प्रकार यत्न केमालिक की वक्तव्य	प्रकार (पूर्ति-पण्यवणा, एर २) यत्न केमालिक की (वक्तव्य)
"	८४	"	है, स्पष्ट	है? स्पष्ट
"	"	३	अप्रत्याख्या है।	अप्रत्याख्या है।
"	८५	१	प्रकार यत्न केमालिक यत्न	प्रकार (पूर्ति-पण्यवणा, एर २) यत्न केमालिक (म. ७/६३, ६४) की भाँति वक्तव्य है। यत्न
"	८७	१	ये महावीर का समयसमय यत्न	ये महावीर का समयसमय यत्न
२३७	८६	"	गीतन में कहा-	इस प्रकार कहा-
"	"	"	नगर में महावीर का समयसमय	(गीतन) में (म. १/४-१०) यत्न
"	"	"	यत्न गीतन ने	(गीतन) में इस प्रकार कहा-
"	१०३	"	नगर में महावीर का समयसमय	नगर में महावीर का समयसमय
"	"	"	यत्न गीतन ने इस	यत्न गीतन ने इस
"	"	७	प्रकार यत्न केमालिक	प्रकार (पूर्ति-पण्यवणा, एर २) यत्न केमालिक
२३७	१०५-१०६	"	भी यही	भी (यही)
"	१०५-१०६	सर्व	के लिए	में (यत्न होने वाले जैव के लिए)
"	१०५-१०६	सर्व	यही नियम है।	(यही नियम है)।
२३७	१०२	६	प्रकार यत्न	प्रकार (पूर्ति-पण्यवणा, एर २) यत्न
२३८	१०५-१०६	५	"	"
"	१०५	सर्व	उपम	उपम
"	"	४	जैवों सेत वाला है	जैवों सेत वाला होता है,
"	"	५	मानव, जैविक	मानव, जैविक
"	१०६	६	अनुसुमार के समय वक्तव्य	अनुसुमार के समय वक्तव्य
"	१०८	४	नैतिक यत्न	नैतिक की, इस प्रकार यत्न
"	१०८	२	प्रमाणित यत्न	प्रमाणित (म. १/३८६) यत्न
"	१०८	"	है, होते हैं।	हैं, होते हैं।
"	१०८	"	प्रकार यत्न	प्रकार (पूर्ति-पण्यवणा, एर २) यत्न
"	१०८	"	कर्म होते हैं।	कर्म की (वक्तव्य)।
"	१११	"	विषय यत्न	विषय (म. १/३८६) यत्न
"	११२	२, ३	वक्तव्य यत्न	वक्तव्य (म. १/११२-११३) यत्न
"	११२	३	यही नियम है। विशेष यह है-	यही नियम है। विशेष यह है-
२३८	११३	६	नैतिक	नैतिक
२३८	"	"	सात केन्द्रीय-कर्म का इन्व होता है।	(सात केन्द्रीय-कर्म का इन्व होता है। वक्तव्य)।

पृष्ठ	सूत्र	पंक्ति	अधुबुद्ध	शुद्ध
२३६	११६	६	नैरपिक	नैरपिको के भी, इस प्रकार
"	"	६	अपान-देवीय-कर्म का कथ होता है।	(अपान-देवीय-कर्म कथ की वस्तुव्याप)।
"	११८	१	भरत क्षेत्र	भारतक्षेत्र
२४०	११८	"	"	"
"	"	१०	वर्ण वाले,	वर्ण वाले,
"	"	"	क्षेत्र वाले	क्षेत्र वाले,
"	१३	"	वाले, विषम	वाले, विषम
२४०	१२०	२	समय गण और सिंधु-दे	समय में गण और सिंधु-दे
२४१	"	३	इक्ष्वर्य इमार दर	इक्ष्वर्य इमार-वर्ग
"	१२२	"	कक्षापास में काल कर	(कक्षापास में काल कर)
"	१२३	"	यावत् कहां	यावत् (म. ७/१२१) कहां
२४२	१२०-२६	१	है अथवा	है? (अथवा) कथ
"	१२०-२६	"	?	है?
"	"	२	है, अल्पी	है, कम अल्पी
"	१२२-२६	"	और	और कम
"	१३०	२	है, अजीबो	है, कम अजीबो
"	"	२	है, अल्पी	है, योग अल्पी
"	१३३	१	भी है और अचित्त भी है?	है? (अथवा) योग अचित्त है?
"	१३३-३६	२	और	और योग
"	"	२	है,	है, योग
"	१३८-३६	१	है,	है?
"	१३८	२	है।	है,
२४२	१३८	४	है,	है,
२४३	१४०	१	नैरपिक खमी है अथवा योगी?	नैरपिक क्या खमी है? (अथवा) योगी है?
"	"	२	नैरपिक से लेकर तन्त्रिकभुगार तक	इसी प्रकार (पूर्ति-धनकभुगार, पद मे-)
"	"	२	जैव की भांति बसता है।	यावत् तन्त्रिकभुगार (जैव) (म. ७/-१३८-१३८) की भांति बसता है।
"	१४१	१	विषय में पूछा।	(विषय में)-पूछा।
"	१-६	१	-जैवों के विषय में भी यही वस्तुव्या	-जैव भी इसी प्रकार (वस्तुव्य है),
"	"	१७	है, केवल इतना	इतना
"	"	१७	योगी है।	(योगी) है।
"	१४३	१	जैवों के विषय में पूछा।	जैवों की-पूछा।
"	१४३	२	बुधुर्द्विज-जैव	बुधुर्द्विज-जैव
"	१४४	१	बर्तते बुधुर्द्विज-जैव किस ओर	यह किस ओर है (ऐसा कहा था)
"	"	१	से कमी भी है, योगी	रहा है-बुधुर्द्विज-जैव कमी भी है), यावत् योगी
२४३	१४४	३	योगमं इस ओर है ने कमी भी	योगमं इस ओर है (ऐसा कहा)
"	"	३	है, योगी भी है।	आ रहा है-), यावत् योगी भी है।
"	"	३-४	भौतिक तक सभी दृष्टकों की	(सभी दृष्टकों के जैव) जैवों की
"	"	३-४	वस्तुव्या जैव के समान है।	भांति (वस्तुव्य है) यावत् भौतिक है।

पृष्ठ	सूत्र	पंक्ति	अनुवाद	शुद्ध
२४३	१४९	१	भी। स्वभोगी, तो कामी-नो भोगी और भोगी-इन जीवों में कौन किससे अन्य,	भोगी-इन जीवों में स्वभोगियों, स्वभोगीभोगियों और भोगियों में कौन किससे अन्य,
"	"	२	अनन्त-गुण अधिक सब दुखों को करने के योग्य	अनन्त-गुण (सब दुखों को) करने के योग्य
२४४	१४८	१	मोक्षाल में आकाशित सनस्कृ मी नहीं है,	मोक्षाल से आकाशित सनस्कृ प्रणी भी नहीं है,
"	"	२	यह प्रपु भेदना करता है।	ये प्रपु भेदना करते हैं।
"	"	३	नहीं है,	नहीं हैं,
"	"	४	यह प्रपु करता है।	ये प्रपु करते हैं।
"	"	५	मनो क्या	मनो (क्यों)
"	१४६, १४७	१	निस्कार मतिशील अनन्त अतीत सत्त्व में	अनन्त अतीत शाश्वत कस्त में
"	१४६	१	सत्त्व में	सत्त्वकायस और केवल प्राक्कथ्यता के
"	"	२	प्राक्कथ्यता, केवल प्राक्कथ्यता के आराधना के	प्राक्कथ्यतास और केवल प्राक्कथ्यता के
"	"	३	हुर? सब दुखों का अन्त किया?	हुआ था? उसने सब दुखों का अन्त किया था?
"	"	४	सांगत नहीं है।	सांगत नहीं है (य. १/२०१-२०८) अक्षुण्—
"	१४७	१, ३	अर्धु, निन	अर्धु, निन
२४६	१५८	३	वाली) शाला	वाली) शाला
"	"	सर्वत्र	कूटकार शाला	कूटकार-शाला
"	"	४	निवात-मभीर	निवात-मभीर
"	"	५	शाला के चारों ओर	शाला के भीतर-भीतर प्रदेश करता है। उस कूटकार-शाला के चारों ओर प्रदेशों से संवित
"	"	२३	प्रदेशों में संवित	प्रदेशों से संवित
"	२४७	२-४	शय कर्म	पाठकर्म
"	"	१६०	शय कर्म	पाठकर्म
२४७	१६१	१	सुख है। इसी प्रकार वैभक्तिक तक के सभी रण्डुखों की वस्तुव्यता	सुख है। इस प्रकार (पुन-पण्यपणा, पद २) यक्षु वैभक्तिक की (वस्तुव्यता) वस्तु वैभक्तिक की (वस्तुव्यता)।
"	"	२	हम? संज्ञा के कितने प्रकार प्रकल है?	हम? कितनी संज्ञाएं प्रकल हैं?
"	"	३	संज्ञा के दया प्रका प्रकल है,	दया संज्ञाएं प्रकल हैं,
"	"	४	मिधुन-संज्ञा	मिधुन-संज्ञा
"	"	५	वैभक्तिक तक के सभी रण्डुखों में द्यो संज्ञाएं होती हैं।	इस प्रकार (पुन-पण्यपणा, पद २) यक्षु वैभक्तिक की (वस्तुव्यता)।
२४७	१६५	१, ३	अपण निर्धन	अपण निर्धन
"	"	४, ५	यक्षु (यु. क. १/४३६-४४०) यक्षु (कृषिक) नहीं	(अपण-निर्धन) (यु. क. १/४३६-४४०) यक्षु (कृषिक या कृषिक) नहीं,
"	१७३	४	गणपुत्रा हरि	गणपुत्रा हरि

पृष्ठ	सूत्र	पंक्ति	अनुच्छेद	शुद्ध
२४६	१७२	२	हुए यावत्	हुए (ब. ३/१७०) यावत्
"	"	५	सुखय यावत्	सुखय (ओयावत्, सू. ५७) यावत्
"	१७६	७	करते लगे।	करते लगे (ओयावत्, सू. ६३)
"	१७७	१	वा यावत्	वा (ओयावत्, सू. ६५) यावत् एक-
"	६	६	एकवचनिक से भी	वचनिक (एक उपकरण विनाके द्वारा
"	१७८	१	-कटन-संगम	कटन और लैके जाते हैं) से भी
२५०	१८२	१	X	-कटन-संगम
"	"	३	(इन्द्र) विदेमुत्र	(इन्द्र), विदेमुत्र
"	"	३	औरी मौ	औरी, मौ
"	१८३	२	मुलाया मुला	मुलाया, मुला
"	१८४	२	हुए यावत्	हुए (ब. ३/१७०) यावत्
"	१८५	५	सुखय यावत्	सुखय (ओयावत्, सू. ५७) यावत्
"	१८६	७	लगे यावत्	लगे (ओयावत्, सू. ६३) यावत्
"	१८६	१	वा यावत्	वा (ओयावत्, सू. ६५) यावत्
२५१	१८८	१	रघुसाल संगम	रघुसाल-संगम
"	१८८	३	हुए।	हुए।
"	१८८-१८९	१, २	हैं यावत्	हैं (ब. १/४२०) यावत्
२५२	"	५	हूँ यावत्	हूँ (ब. १/४२०) यावत्
"	"	७	सम्पन्न यावत्	सम्पन्न (ब. २/६४३) यावत्
"	"	८	दाता, यावत्	दाता (ब. २/६४३) यावत्
"	"	१०	बैले-बैले के लगे कर्म द्वारा अपने	बैले-बैले (बैले-बैले दिनों के उपलान-
"	१६६	१	ने यावत्	-कर्म) तत्कर्म के साथ अपने
"	"	"	प्रजापुत्र	ने (ब. ७/१७५) यावत्
"	"	४	अकर यावत्	अकरावत (रघुसालिष, सू. ६८५)
"	१६६	"	किया, कलसैया	अकर (ब. ७/१७५) यावत्
२५३	२०३	"	वीव कर	किया (पूर्ति-म. ७/१७५),
"	"	६, १०	को कवत्	वीवकर
"	"	१४	प्राणवितान यावत्	को (ओयावत्, सू. २३) यावत्
"	"	१५	"	प्राणवितान (ब. ७/३३) यावत्
"	"	१६	जीवन - घर	" (ब. १/३८४) यावत्
"	"	१६	प्रिय यावत्	जीवन-घर
२५४	२०४	५	भक्ति यावत्	प्रिय (ब. २/१२) यावत्
"	"	"	जा कर पूर्व	भक्ति (ब. ७/२०३) यावत्
"	२०६	१	देव-सामर्थ्य	यावत् पूर्व
"	"	२	गुल कर देख कर	देवसुभाषा
"	"	"	किया यावत्	सुकर और देखकर
२५५	२१०	२	होगा यावत्	किया (ब. १/४२०) यावत्
"	२१२	१	नगर का	होगा (ब. ७/२०८) यावत्
"	"	२	कर्त्तव्य यावत्	(नगर को)
"	२१३	४	अजीबकाय	वर्णन (ओयावत्, सू. २-१३) यावत्

पृष्ठ	सूत्र	पंक्ति	अधुद	शुद्ध
२१४	२१३	६	जो अस्पीकय को	जो अस्पी-कय को
"	"	७	"	"
"	"	"	जैसे- क्वालिक्कय, स्पी-कय	जैसे-क्वालिक्कय, स्पी-कय
२१४	"	९	महवीर (म. १/७) यावत्	महवीर (म. १/७) यावत्
२१६	"	२	दुर (म. १/८) यावत्	दुर (म. १/८) यावत्
"	"	३	कुलाका	कुलाका
"	"	८	(कलकत्ता) (म. ७/१३) यावत्	(कलकत्ता) (म. ७/१३) यावत्
२१६	"	६	की कलकत्ता कैसे सलत है?	(की कलकत्ता) कैसे (सलत है)?
"	"	७	है यावत्	है (म. २/१७) यावत्
२१८	"	७	दुर (म. ३/१३) यावत्	दुर (म. ३/१३) यावत्
"	"	८	कलकत्ता (म. ७/१३) यावत्	कलकत्ता (म. ७/१३) यावत्
"	"	१०	अस्पीकय	अस्पी-कय
"	"	११	अस्पीकय जीवकय	अस्पी-कय जीव-कय
"	"	१३	अस्पीकय	अस्पी-कय
"	"	१४	पुद्गलतिक्कय को मैं स्पीकय	पुद्गलतिक्कय को मैं स्पी-कय
२१८	"	२	अस्पीकय अजीवकय	अस्पी-कय अजीव-कय
"	"	४	स्पीकय	स्पी-कय
"	"	५	अजीवकय	अजीव-कय
२२०	"	१	स्पीकय अजीवकय	स्पी-कय अजीव-कय
"	"	३	अस्पीकय	अस्पी-कय
२२७	"	७	स्मदक (म. २/१०-६३ को)	स्मदक (म. २/१०-६३ को)
"	"	८	किया यावत्	किया (म. २/१०-६३) यावत्
२२२	"	२	समय का समयतुल	समय (म. १/७) यावत् समयतुल
"	"	"	परिचय आई, वन हुन और वरिस	परिचय (म. १/८) यावत् वरिस
२२३	"	१	आ कर	आकर
२२४	"	३	विप-मिन्न	विप-मिन्न
"	"	५	दुर्गम यावत्	दुर्गम (म. ६/२०) यावत्
"	"	६	प्रणतिपल यावत्	प्रणतिपल (म. १/३८४) यावत्
२२६	"	३	ओपिमेकिन्न	ओपिमे-मिन्न
"	"	४	दुर्गम यावत्	दुर्गम (म. ६/२२) यावत्
"	"	६	विरामण यावत्	विरामण (म. १/३८८) यावत्
"	"	"	विदेक यावत्	विदेक (म. १/११८-१२४) यावत्
२२८	"	६	है जो	है, जो
"	"	१४	जिनिक्कय का प्रवर्तित है?	जिनिक्कय का प्रवर्तित है?
२३०	"	२	अनगार श्रमण	अनगार श्रमण
२३१	"	१	अनगार यावत्	अनगार (म. १/४३३) यावत्

पृष्ठ	सूत्र	पंक्ति	अधुद	शुद्ध
२६०	सं. गा.	२	आरामणा	आरामणा (१११)
"	"	१	रामगुह वार में भगवान का	रामगुह (म. १/४.१०) यावत् (गीतम ने)
"	"	२	समवसरण यावत् गौतम ने	गौतमा (प्रयोग-परिचय पुद्गल) पांव
"	"	३	"	गौतमा (एकत्रिंश-प्रयोग-परिचय पुद्गल) पांव
"	"	४	गौतमा दो	गौतमा (पृथ्वीकाधिक-एकत्रिंश-प्रयोग-परिचय पुद्गल) दो
"	"	५	दर दो को	ये दो भेद
"	"	६	दीन्द्रिय-	दीन्द्रिय-
२६१	"	६	गौतमा पक्षेन्द्रिय-	गौतमा (पक्षेन्द्रिय-गौतमा)
"	"	७	यावत्	मी (म. २/७७) यावत्
"	"	४	"	मी
"	"	६	जलवार-	(जलवार-
"	"	१०	स्वतवार-	(स्वतवार-
"	"	११	सुसुप-	(सुसुप-
"	"	१२	-परिसर्प	-परिसर्प
"	"	"	खेवर	खेवर मी
"	"	१३	मुन्य-	(मुन्य-
"	"	१४	देव-	(देव-
"	"	१५	प्रकार यावत्	प्रकार (म. २/११६) यावत्
२६२	"	३	भक्कासी-	(भक्कासी-
"	"	३	-परिचय	-परिचय (पुद्गि-पण्यवणा, पर २)
"	"	१६	-विशेष यावत्	-विशेष (म. ८/११६) यावत्
"	"	२	-चन्द्रशियान- स्वीतिक यावत्	-चन्द्रशियान-स्वीतिक (म. ६/१२३) यावत्
"	"	"	यावत्	यावत् (अनुसुत्तुमार सू. २८७)
"	"	५	भैरानिक यावत्	भैरानिक (म. ६/१८) यावत्
"	"	८	विजय अनुसुत्तुमारतिक्क-	विजय-अनुसुत्तुमारतिक्क-
"	"	१७	यावत्	(म. ६/१२३) यावत्
"	"	१८	गौतमा दो	गौतमा (सूत्र-पृथ्वीकाधिक-एकत्रिंश-प्रयोग-परिचय पुद्गल दो
"	"	"	यावत् दासस्वी-कापिक-	(कापिक है), इस प्रकार यावत् का-
"	"	४	स्वीतिक-	स्वीतिक-
"	"	५	बादर, सूत्र	बादर, (सूत्र
"	"	६	प्रकार है-	प्रकार) कापिक है-
"	"	१६	दीन्द्रिय	(दीन्द्रिय
"	"	३, ४	इसी प्रकार दीन्द्रिय और चतुर्दिग	इस प्रकार दीन्द्रिय मी, इस प्रकार चतुर्दिग मी (कलकत्ता है)।
"	"	२०	रत्ताप्रभा-	(रत्ताप्रभा-

पृष्ठ	सूत्र	पंक्ति	अधुद	शुद्ध
२६२-२६३	२६२-२६४	१	की	(-प्रयोग-परिचय पुद्गल) की
"	"	"	संयुक्तिम-जलवार-तिर्यक	(संयुक्तिम-जलवार-तिर्यक)
२६३	"	४	-खेवर	(-खेवर)
"	"	२२	संयुक्तिम-मुन्य-पक्षेन्द्रिय	(संयुक्तिम-मुन्य-पक्षेन्द्रिय)
"	"	२३	गर्भकातिक-मुन्य-पक्षेन्द्रिय	(गर्भकातिक-मुन्य-पक्षेन्द्रिय)
"	"	३	और अपर्याप्त-गर्भकातिक मी	मी, अपर्याप्त-गर्भकातिक मी
"	"	२४	अनुसुत्तुमार-भक्कासी दो	(अनुसुत्तुमार-भक्कासी-देव) दो
"	"	३	इसी प्रकार यावत्	इस प्रकार (पुद्गि-पण्यवणा २/३०-४०) यावत्
"	"	"	के पर्वलक-अपर्वलक की	(दो प्रकार के प्रकार है-) पर्वलक और अपर्वलक
"	"	२६	वक्तावता	वक्तावता
"	"	२७	पर्वलक और अपर्वलक	(पर्वलक और अपर्वलक)
"	"	३	-कल्याणीता, विजय	-कल्याणीता, विजय
"	"	४	अपर्याप्ता	अपर्याप्ता
"	"	२६	-अन्यातीता	-अन्यातीता-देव
"	"	२	सर्वोपसिद्ध-कल्याणीता	(सर्वोपसिद्ध-कल्याणीता-देव)
"	"	४	-प्रयोग	(-प्रयोग
"	"	६	है-शेष जो	है। शेष पूर्ववत् (जो
"	"	७	है।	है)।
"	"	२८	-रत्ताप्रभा	(-रत्ताप्रभा
"	"	३	अन्यतानी-पृथ्वी-	अन्यतानी (पृथ्वी-
२६४	"	५	है कि बादर	है-बादर
"	"	६	है। जैसे	है। इस प्रकार जैसे
"	"	३०	गर्भकातिक-मुन्य	गर्भकातिक-मुन्य
"	"	३	की कलकत्ता	मी (कलकत्ता है)
"	"	३०	है कि पाव	है-पाव
२६५	"	३१	परवत्त-अनुसुत्तुमार	परवत्त-अनुसुत्तुमार
"	"	४	तातिमिन	तातिमिन
"	"	३२	पृथ्वीकाधिक-एकत्रिंश-प्रयोग-परिचय	पृथ्वीकाधिक (-एकत्रिंश-प्रयोग-परिचय)
"	"	४	परवत्त पृथ्वीकाधिक-एकत्रिंश-प्रयोग-	परवत्त पृथ्वीकाधिक-एकत्रिंश-प्रयोग-
"	"	"	-परिचय	(-परिचय
२६६	"	२, ३	-प्रयोग-	(-प्रयोग-
"	"	२	प्रकार परवत्त सूत्र-पृथ्वीकाधिक-	प्रकार जो परवत्त सूत्र (पृथ्वीकाधिक-
"	"	४	-पृथ्वीकाधिक	(-पृथ्वीकाधिक
"	"	५-६	वक्तावता	(वक्तावता है), इस प्रकार
"	"	"	इसी प्रकार	इसी प्रकार
"	"	६	बादर-परवत्त-पृथ्वीकाधिक	(बादर-) पर्वलक (पृथ्वीकाधिक
"	"	७	-परिचय	-परिचय पुद्गल) मी
"	"	"	की कलकत्ता। इसी प्रकार	(कलकत्ता है)।

पृष्ठ	सूत्र	पंक्ति	अधुनिक	शुद्ध	अधुनिक	पंक्ति	सूत्र	पंक्ति	शुद्ध	अधुनिक	पंक्ति	सूत्र	पंक्ति	शुद्ध
२०४-४७	६३-६५	१	गौतम।	गौतम। (रु)	२	१७७	२	१७७	२	१७७	२	१७७	२	१७७
२०४	६३	४	है। वेदिक	है। वेदिक	३	१७८	३	१७८	३	१७८	३	१७८	३	१७८
		७	इस प्रकार जैसा	इस प्रकार जैसा										
		७-८	के भेद की सम्ख्या है। वेदों की	का भेद (उक्त है)। वेदों की (यहां)										
२०५	६४	४	यहां सम्ख्या है। यव	जैसा (यव)। यव (२१/४४) से	१	१७८	१	१७८	१	१७८	१	१७८	१	१७८
			जैसा (यव)। यव (२१/४४) से	(यव)। यव (२१/४४) से	२	१७८	२	१७८	२	१७८	२	१७८	२	१७८
		५	मनुष्य-वेदिक-वेदिक-शरीर की	मनुष्य-वेदिक-वेदिक-शरीर (यव)	३	१७८	३	१७८	३	१७८	३	१७८	३	१७८
		५	सम्ख्या है।	है।										
		५	वेदों की यहाँ सम्ख्या है।	वेदों की (यहाँ सम्ख्या है)।	४	१७८	४	१७८	४	१७८	४	१७८	४	१७८
		५	है। यव	है। यव	५	१७८	५	१७८	५	१७८	५	१७८	५	१७८
		५	सहितकुमार	सहितकुमार	६	१७८	६	१७८	६	१७८	६	१७८	६	१७८
		५	अधुनिक है?	अधुनिक है? (.....)	७	१७८	७	१७८	७	१७८	७	१७८	७	१७८
		५	है। यव	है। यव	८	१७८	८	१७८	८	१७८	८	१७८	८	१७८
२०६	६५	५	पदार्थ	पदार्थ	९	१७८	९	१७८	९	१७८	९	१७८	९	१७८
		५	जानते-वेदों है।	जानते-वेदों है।	१०	१७८	१०	१७८	१०	१७८	१०	१७८	१०	१७८
		५	जानते-वेदों है।	जानते-वेदों है।	११	१७८	११	१७८	११	१७८	११	१७८	११	१७८
		५	के भेद की सम्ख्या है।	के भेद (उक्त है)।	१२	१७८	१२	१७८	१२	१७८	१२	१७८	१२	१७८
		५	गौतम। तीन	गौतम। (आन) तीन	१३	१७८	१३	१७८	१३	१७८	१३	१७८	१३	१७८
		५	जैसे	जैसा	१४	१७८	१४	१७८	१४	१७८	१४	१७८	१४	१७८
		५	की सम्ख्या है। वेदों की यहाँ-	(यहाँ-यहाँ सम्ख्या है)।	१५	१७८	१५	१७८	१५	१७८	१५	१७८	१५	१७८
		५	अज्ञान की सम्ख्या।	अज्ञान की सम्ख्या।	१६	१७८	१६	१७८	१६	१७८	१६	१७८	१६	१७८
२०७	६६	५	है। यव	है। यव	१७	१७८	१७	१७८	१७	१७८	१७	१७८	१७	१७८
		५	सहित कुम	सहित कुम	१८	१७८	१८	१७८	१८	१७८	१८	१७८	१८	१७८
		५	सहित कुम	सहित कुम	१९	१७८	१९	१७८	१९	१७८	१९	१७८	१९	१७८
		५	गौतम। हानी	गौतम। (नैतिक) हानी	२०	१७८	२०	१७८	२०	१७८	२०	१७८	२०	१७८
		५	जैसे नैतिकों की सम्ख्या है।	जैसे नैतिक (उक्त है)। वेदों की										
		५	यहाँ सम्ख्या है-	(अधुनिक सम्ख्या है)-										
		५	प्रकार यव	प्रकार (पूर्ति-वर्णवर्ण, एर २)										
		५	गौतम।	गौतम। (पूर्ववर्णिक)										
		५	गौतम।	गौतम। (नैतिक)										
		५	गौतम।	गौतम। (वेदिक-विश्ववर्णिक)										
		५	गौतम।	गौतम। (नैतिक)										
		५	गौतम।	गौतम। (नैतिक)										
		५	गौतम।	गौतम। (नैतिक)										
		५	गौतम।	गौतम। (नैतिक)										
		५	गौतम।	गौतम। (नैतिक)										
		५	गौतम।	गौतम। (नैतिक)										
		५	गौतम।	गौतम। (नैतिक)										
		५	गौतम।	गौतम। (नैतिक)										
		५	गौतम।	गौतम। (नैतिक)										
		५	गौतम।	गौतम। (नैतिक)										
		५	गौतम।	गौतम। (नैतिक)										
		५	गौतम।	गौतम। (नैतिक)										
		५	गौतम।	गौतम। (नैतिक)										
		५	गौतम।	गौतम। (नैतिक)										
		५	गौतम।	गौतम। (नैतिक)										
		५	गौतम।	गौतम। (नैतिक)										
		५	गौतम।	गौतम। (नैतिक)										
		५	गौतम।	गौतम। (नैतिक)										
		५	गौतम।	गौतम। (नैतिक)										
		५	गौतम।	गौतम। (नैतिक)										
		५	गौतम।	गौतम। (नैतिक)										
		५	गौतम।	गौतम। (नैतिक)										
		५	गौतम।	गौतम। (नैतिक)										
		५	गौतम।	गौतम। (नैतिक)										
		५	गौतम।	गौतम। (नैतिक)										
		५	गौतम।	गौतम। (नैतिक)										
		५	गौतम।	गौतम। (नैतिक)										
		५	गौतम।	गौतम। (नैतिक)										
		५	गौतम।	गौतम। (नैतिक)										
		५	गौतम।	गौतम। (नैतिक)										
		५	गौतम।	गौतम। (नैतिक)										
		५	गौतम।	गौतम। (नैतिक)										
		५	गौतम।	गौतम। (नैतिक)										
		५	गौतम।	गौतम। (नैतिक)										
		५	गौतम।	गौतम। (नैतिक)										
		५	गौतम।	गौतम। (नैतिक)										
		५	गौतम।	गौतम। (नैतिक)										
		५	गौतम।	गौतम। (नैतिक)										

पृष्ठ	सूत्र	पंक्ति	अध्याय	शुद्ध
३१२	३०८-५६	३, ४	-बय	-बय भी
"	३१६	३	सर्व काल	सर्वकाल
"	३१३	२	(३/२५३)	(य. ३/२५३)
३१४	३१३	४	सादिक-विशाला	शरीर-विशाला
३१४	३६३	४	शरीर-बय	शरीर-बय
३१४	३६५	३	देवस और कल्पन शरीर	देवस-और कल्पन-शरीर
३१५	३६८	५	(२१/३२०)	(२१/३२०)
"	३६६	२	तीन	(तीन)
"	३७०	१	कने। एकद्वय	कने। एकद्वय
"	"	१	है। औदारिक-	है?
"	"	२	को भाति	इसी प्रकार (औदारिक-
"	"	३	-बय की दत्तव्या यावत् दत्तव्य-	की भाति)
"	"	४	कालिक-	-बय, इस प्रकार यावत् दत्तव्य-
"	"	४	-बय	कालिक (-
"	"	५	नैद्वय-और क्युरिद्वय-	-बय)
"	"	५	प्रयोग-बय	इस प्रकार औद्वय-और इस प्रकार
"	३७१	३	औदारिक-	क्युरिद्वय (-
"	"	"	को भाति	प्रयोग-बय)
"	३७२	२	तीन	इसी प्रकार (औदारिक-
३१६	३७४	२	औदारिक-	को भाति)
"	"	२	को भाति	(तीन)
"	"	"	दत्तव्या, इसी	इसी प्रकार (औदारिक-
"	"	"	पृथीकालिक यावत्-	की भाति)
"	"	"	-औदारिक-शरीर-प्रयोग-बय की	दत्तव्या। इस
"	३७८	१	वापिस।	पृथीकालिक (-औदारिक-शरीर-
"	६-७	"	सितके	-प्रयोग-बय) (कल्पय है), इस
"	३७६	२	औदारिक-शरीर के	प्रकार प्रयोग
"	३८०	१	-शरीर के बय के अंतर की	(-औदारिक-शरीर-प्रयोग-बय की)।
"	"	२	एकद्वय-	वापिस। सितके
"	"	३	शरीर के	(औदारिक-शरीर के)
३१७	३८१	१	-औदारिक-	(-शरीर के बय के अंतर की)
"	"	२	अंतर की	(एकद्वय-
"	"	२	अंतर एकद्वय की भाति दत्तव्य	शरीर के)
"	"	३	एकद्वय की दत्तव्या है,	अंतर की)
"	"	४	क्युरिद्वय की दत्तव्या,	अंतर मैला एकद्वय का (उत्त है)
"	३८२	१	-शरीर के बय के अंतर की	मैला की दत्तव्य
"	"	४	एकद्वय-	(एकद्वय) की (दत्तव्या है),
"	"	४	की भाति एकद्वय	क्युरिद्वय की दत्तव्या,
३१७	३८२	४	कल्पय है	(-शरीर के बय के अंतर की)
"	"	५	का कि निरासेय सय मे दत्तव्य है,	मैला एकद्वय-
"	"	५	का कि निरासेय सय मे दत्तव्य है,	का (उत्त है) मैला

पृष्ठ	सूत्र	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३१७	३८३	५	-इवार सारोमस	-इवार-सारोमस
"	३८४	१	नो-पुन्यकायिक	नोपुन्यकायिक
३१७	३८४	८, ९	अने-पुन्यकायिक एकेद्वय-की वाक्यवाता है,	अने पुन्यकायिक-एकेद्वयो की (वाक्यवाता है)
"	"	६	-नरिदा पयस पुन्य की वाक्यवाता है,	-नरिदा पयस पुन्य की (वाक्यवाता)
"	"	६-१०	वनस्पतिकयिक के सह-बच आ अंतर	वनस्पतिकयिकों के (सह-बच आ अंतर)
३१८	३८५	३	है। अचक विशेषाधिक है।	है, अचक उनसे विशेषाधिक है,
"	३८६	३	-बचक	-बचक उनसे
"	३८६	२	भिक्षु-शरीर-प्रयोग-बच	भिक्षु-शरीर-प्रयोग-बच
"	३८७	४	है ययस	है (ययसभाषा, २१/५०-६८) ययस
"	३८८	२	भिक्षु-शरीर-प्रयोग-बच के तीन	(भिक्षु-शरीर-प्रयोग-बच के तीन)
"	३८९	"	वायुकायिक-	(वायुकायिक-
"	"	"	तीन	तीन)
"	३९०	३	रत्नप्रभा-	(रत्नप्रभा-
"	"	"	तीन	तीन)
"	३९१	२	तिपत्योनिक-	(तिपत्योनिक-
"	"	"	-बच	-बच)
"	३९१	३	वायुकायिक	वायुकायिकसे
"	"	५	नैयिक	नैयिकसे
"	"	"	स्तरितकुमार	स्तरितकुमार (वक्तव्य है)
"	"	६	यानवावर और ज्योतिक	इस प्रकार यानवावर (वक्तव्य है)। इस प्रकार ज्योतिक
"	"	"	धैर्यानिक	धैर्यानिक (वक्तव्य है)। इस प्रकार ययस
"	"	७	धैर्यानिक और	धैर्यानिक (वक्तव्य है)। इसी प्रकार
"	३९२	२	शरीर -	शरीर-
३१८	३९२	३	-बच	-बच की
"	"	"	नैयिक ययस	नैयिक की (वक्तव्य है) इसी प्रकार ययस
"	"	"	भिक्षु-शरीर-	भिक्षु-शरीर-
"	३९४	१	कालमान	कालमान की
"	३९५	३	अब सलमी	अब सलमी (-पुन्यी.....बच का वक्तमान)
"	"	"	चाहिए।	चाहिए। वेवेदिय-
"	"	५-६	वेवेदिय-	वेवेदिय-
"	"	"	तिर्यग्योनिक	तिर्यग्योनिकसे
"	"	६	वायुकायिक की भाति वाक्यवाता।	वायुकायिकों की भाति (वाक्यवाता)।
"	"	"	अयुरकुमार,	अयुरकुमार,
"	"	७	नैयिक की भाति वाक्यवाता,	नैयिकसे की भाति (वाक्यवाता),
"	"	"	-बच के अंतर की वाक्यवाता।	-बच का अंतर की (वक्तव्य है)।
"	३९६-६६८	सर्वत्र	नैयिक से नो-रत्नप्रभा	नैयिक के रूप से नो-रत्नप्रभा
"	३९७	१	है जय लेता है। उस	के रूप से जय लेता है। (उस अंतर की-पुन्य)
३२०	४००	"	अंतर की पुन्य।	

पृष्ठ	सूत्र	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३२०	"	६	वक्तव्यता, वक्तव्य है।	(वक्तव्यता), (वक्तव्य है)।
"	"	८-९	पबोदिय-दियवोनिक मनुष्य-वायुनायिक की भाँति वक्तव्य है। अमुकुमार	मनुष्यों की वायुनायिकों की भाँति (वक्तव्यता)। अमुकुमारों
"	"	९	नागकुमार	नागकुमारों
"	"	१०	देव—	देवों—देवकी (वक्तव्यता)
"	"	"	नैरिषिक की भाँति वक्तव्य है,	नैरिषिकों की भाँति है,
"	"	१	देव	देव के रूप
३०१	तीनोंवा	१	है। उस	है (। उस
"	"	२	अंतर की पुष्पा	अंतर की)—पुष्पा
"	"	४	है।	है।
"	"	"	वक्तव्यता	(वक्तव्यता)
"	"	१	कल्पपीत	कल्पपीतों
"	"	४०२	जीव	जीवों
"	"	४०३	देशबन्धक	देशबन्धक उनसे
"	"	४०४	अबन्धक	अबन्धक उनसे
"	"	४	आहारक-शरीर-प्रयोग-बन्ध	(आहारक-शरीर-प्रयोग-बन्ध)
३०५	"	२	यही	(यही) आहारक-शरीर-प्रयोग-बन्ध
३०६	"	१	यही	यही
"	"	४	अवगाहन-संस्थान नामक एणवका (पद २१)	पणवका के अवगाहन संस्थान नामक पद (२१/७२) में देखा
"	"	"	सम्पद-मुष्टि, पपीताक-	(उक्त है क्या वक्तव्य है)
"	"	१	सम्पदमुष्टि-	सम्पद-मुष्टि-पपीताक-
"	"	७	तीन	(तीन)
"	"	२	के अंतर	का अंतर भी
"	"	४०७	देवक	देवक उनसे
"	"	४१०	अबन्धक	अबन्धक उनसे
"	"	४११	तेजस-शरीर-प्रयोग-बन्ध	(तेजस-शरीर-प्रयोग-बन्ध)
"	"	४१२	के भेद	का भेद
"	"	४१३	(पद २१)	(२१/७६, ७७)
"	"	४१४	तीन	(तीन)
३२२	"	२	है?	है।
"	"	४१५	तेजस-	(तेजस-
"	"	४१६	अपेक्षा	अपेक्षा)
३२२	"	२	है?	है?
"	"	४१८	बन्धक	बन्धक उनसे
"	"	४१९	कर्म-शरीर-प्रयोग-बन्ध	(कर्म-शरीर-प्रयोग-बन्ध)
"	"	२	सात	(सात)
३२३	"	२	है—	है—
"	"	४२२	अमुकना अनेक	अमुकना, अनेक
"	"	"	सात	(सात)
"	"	४२४	पाव	(पाव)
४२५-३६	"	"	"	"

[illegible]

पृष्ठ	सू.	पंक्ति	अधुख	मुख
३३०	४७४	१	है?	है?
"	"	२	द्रव्य है	द्रव्य है
"	४७६	"	एक एक जीव	एक-एक जीव
"	४७७	२	है? जैसे	है, जैसे
"	४७८	"	नैतिकों के कर्म-प्रवृत्तियों	(नैतिकों के कर्म-प्रवृत्तियों)
"	"	३	इस प्रकार वैयक्तिक परीत सब	इस प्रकार सब
"	"	"	है।	वैयक्तिकों के
"	४८१	१	वैयक्तिक-पर्यंत	वैयक्तिकों पर्यंत
"	"	"	की पुष्का।	की-पुष्का।
"	"	४	कर्म अन्त	कर्म के अन्त
३३१	"	"	जोत की	जोत की
"	४८३	३	वस्तुवत्ता	(वस्तुवत्ता)
"	४८४	"	के वैयक्तिक	के वैयक्तिक
"	"	६	वस्तुवत्ता।	वस्तुवत्ता।
"	४८७	३	होता।	होता।
"	४८८	"	है, उसके	है, उसके
"	"	"	वर्तमानपर्यंत	वर्तमानपर्यंत
३३२	४८९	"	वेदधीन की वस्तुवत्ता उसी प्रकार	(वेदधीन उसी है) उसी प्रकार नाम
"	४९१	"	नाम	के साथ भी
"	४९४	"	है इसी	है, इसी
"	"	"	साथ नाम कर्म	साथ भी नाम-कर्म
३३३	४९७	"	है, स्वात	है, स्वात
"	४९८	"	होता।	होता।
"	५००	"	है।	है?
"	"	३	कथवत्ता है गौतम।	(कथवत्ता है), गौतम।
"	"	५-६	कथवत्ता है।	(" ")
"	"	"	गौतम।	"
"	५०१	२	नैयतिक से लेकर	इसी प्रकार इस प्रकार पर्यंत
"	"	"	(नैयतिक से लेकर)	
"	"	"	वैयक्तिक लक्ष	वैयक्तिक (लक्ष
३३३	५०१	२	है, भाति कथवत्ता है।	की भाति कथवत्ता है,
"	"	"	शतक ८	
३३४	सं. गा.	३	पुष्पा।	पुष्प ॥१॥
"	"	१	वैयक्तिक-वर्णा	वैयक्तिक-वर्णा
"	"	२	किन्ना, यक्ष	किन्ना (म. १/८-१०) यक्ष
३३४	"	१	जन्म-वैयक्तिक	जन्म-वैयक्तिक
"	३	१	भगवान् रत्नगुप्त नाम मे आप	राजगुप्त मे (म. १/४-१०) यक्ष
"	"	"	यक्ष गौतम इस	इस
"	"	३	प्रकार जीवविषय	प्रकार जीवविषयविषय
"	"	"	कथवत्ता यक्ष जन्म-वैयक्तिक	(कथवत्ता) यक्ष-
"	"	"	है।	जन्म-वैयक्तिक
"	"	४	"	है ॥१॥
"	"	४	प्रकार जीवविषय	प्रकार जीवविषयविषय
"	"	२	कथवत्ता यक्ष जन्म	(कथवत्ता) यक्ष (जन्म सगुप्त मे
"	"	"	तारापन की	तारापन (की

पृष्ठ	सूच	पंक्ति	अधुव	शुध
३२३	४२८	३	मल तरा कम,	मल-तरा कम,
३२४	४२९-४३०	२	नौ	(नौ)
"	"	"	छर	(छर)
"	"	"	४३३	(कम-शरीर-प्रयोग-बंघ)
"	"	"	४३४	(कम-)
"	"	"	४३५	(बंघ की वलव्यता)
"	"	"	"	(कम-)
"	"	"	४३६	(अंतर की वलव्यता)
३२४	४३७	२	है?	है?
"	"	"	बघक	बघक उत्ते
"	"	"	४ वलव्यता	(वलव्यता)
"	"	"	अवधक	अवधक उत्ते
"	"	"	है भोती	है, भोती
३२५	४३८	११	है अवधक	है, अवधक
"	"	"	सर्त वधक	सर्त-वधक
"	"	"	शैक्य-शरीर	शैक्य-शरीर
"	"	"	की वलव्यता	की भी वलव्यता
"	"	"	है भोती	है, भोती
"	"	"	हिनस और	हिनस-और
"	"	"	कम शरीर	कम-शरीर
"	"	"	है पावत	है (प. ८/४३८) पावत
"	"	"	मे माव्य है,	मे भी वलव्य है
"	"	"	की वलव्यता	की भी (वलव्यता)
"	"	"	है, घरी	है (प. ८/४३८), घरी
"	"	"	मे वलव्य है,	मे भी वलव्य है
"	"	"	वलव्यता भोती	वलव्यता उत्ते है भोती-
३२६	४४४	३	वलव्यता, पावत-	वलव्यता वलव्य है पावत-
"	"	"	है?	है?
"	"	"	उत्ते	उत्ते
३२७	४४८	१	मलर वलव्य मौम ने	मलर मे (प. १/४-१०) वलव्य
"	"	"	है शुलकन	(मौम ने)
३२७	४५० ४५१	१२	है।	है, शुलकन
"	"	"	मौम	है, मौम!
"	"	"	१	विज्ञाने प्रकर की प्रकल है?
"	"	"	२	तीन प्रकर की प्रकल है,
"	"	"	३	है, क्या
"	"	"	४	है, उत्ते
३२८	४५६	३	है, क्या	है, क्या
३२८	४५७	१, २	है उत्ते	है, उत्ते
"	"	"	है, क्या	है, क्या
"	"	"	है उत्ते	है, उत्ते
"	"	"	कलर-अपवा	कलर-अपवा
३२८	४६८	१	कम-परिमाण	कम-परिमाण
३३०	४७२	२	वलव्य है	वलव्य है
"	"	"	द्रव्य देमा	द्रव्य-देमा

पृष्ठ	सूत्र	पंक्ति	अध्याय	शुद्ध
२७५	२८८	४	सर्व पर	सर्व-पर
"	२८९	१	किंवा जलप्रसार	किंवा (म. ३/३३) यावत् जलप्रसार
"	२९४	"	किंवा यावत्	किंवा (म. ३/३३) यावत्
"	२९६	७	तर्हि	तर्हि
३७७	२००	२	ने	ने (म. ६/१७२) यावत्
"	२०३	२	पर यावत्	पर (म. ६/१८५) यावत्
"	"	"	किंवा यावत्	किंवा (म. ६/२०५) यावत्
३७८	२०६	१	अद्विष्ट कुमार	अद्विष्टकुमार
"	"	"	अधि यावत्	अधि (म. ६/१८२) यावत्
३७९	२१०	८	कथि	कथि (अथोक्तार्थ, सू. १/१०) यावत्
३८०	२१३	४-५	प्रत्यक्ष कला	प्रत्यक्ष कला जाता समय
"	"	"	जाता समय	सेवा कला जाता समय
"	"	५-६	सेवा कला	सेवा कला जाता समय
"	"	६-७	परिक्रम कला	परिक्रम कला जाता इस अर्थ
३८१	२१५	२	जाता इस अर्थ	किंवा (म. २/६३-५७) यावत्
"	"	"	किंवा यावत्	सामयिक अति
३८१	२२१	"	सामयिक, अत्रागत अति	सामयिक अति
"	२२२	"	अत्रागत तत्का उस	अत्रागत उस
"	"	"	विहरण, प्रामाण्य	विहरण एवं प्रामाण्य
"	"	४	रह रहा	रहना
"	२२३	"	विहरण करते हुए	विहरण एवं
"	"	४	रह रहे	रहने
३८५	२४६	१	रत्नगुह गगर यावत् गौतम इस	रत्नगुह (म. १/४-१०) यावत् इस
"	२४६-५५	सर्व	ने-मुष	ने-मुष
"	२४८	१, १	ने-अप	ने-अप
"	"	५	य्यम् यावत्	य्यम् (रत्नगुह, १/६६) यावत्
३८५	२४८-२५२	सर्व	ने-अधि	ने-अधि
"	२५०	१, ५	१-अपि	१-२५० अपि
३८६	२५१	५	ने-पिक्वो	ने-पिक्वो
३८७	२५४	३	तैत्तसामयिक, युक्तयौगिक,	तैत्तसामयिक क, युक्तयौगिक क,
३८७	२५४, २	३	की कथयता	क (आत यावत् निश्चय लेते है);
३८७	२५६	२	तैत्तसामयिक, युक्तयौगिक	तैत्तसामयिक क, युक्तयौगिक क
३८७	२५७	२-३	मोनें यावत्	इस प्रकार यावत् मोनें क्या
३८७	२५७	२-३	है?	है? उत प्रकर (कथ्य है)
३८७	२५८	३	पूर्ववत् कथयता।	इसी प्रकार (कथ्य है)।
३८७	२५८	३	की कथयता।	क (आत यावत् निश्चय लेता हुआ)
"	"	"	के सर्व विस्मय	स्मृत तीन यावत् स्मृत पांव किया
"	"	"	और युक्तयौगिक की कथयता	दस्ता होता है।
३८७	२५८	४	के साथ भी सर्व (विस्मय)	के साथ भी सर्व (विस्मय)
"	"	४-५	अत यावत्	के साथ भी, इस प्रकार युक्तयौगिक
"	२६०	१	अत यावत्	अत (यावत्
"	"	२	है? पुष्क।	है?) पुष्क।

पुंछ	सूत्र	पंक्ति	अध्याय	श्लोक
३६१	१२६	३	पतत	पततः
"	१३०	७	पुण्य-कर्मिक	पुण्यकर्मिक
"	१३१	१	पुण्य	पुण्य (पुण्य है)
"	१३२	१	अनुकुमार	अनुकुमारो
"	"	१-२	है।	है। मनेया
"	"	"	है।	है।
"	१३७	३	है यावत्	है (प. २/१८४) यावत्
"	"	६	यावत् यथाविहित	(प. २/१८४) यावत् यथाविहित
"	"	१०	सुमुत्तम-शय	सुमुत्तम-शय
"	१३८	१	वर्ती	वर्ती (ओषधयं, सू. १८) यावत्
"	१३८	१	स्वामी आद्य	स्वामी स्वयम्भुव आद्य
"	१३८	३	आ कर	आकर
३६३	१३८	५	रौपित यावत्	रौपित (ओषधयं, सू. १८) यावत्
"	१३८	५	स्वप्न यावत्	स्वप्न (प. ३/१३३) यावत्
३६४	१३८	"	कुमा, यावत्	कुमा (प. ६/१४४) यावत्
"	१३८	६	कम-नौतम	कम-नौतम
३६५	१३८	११	कोरो प्रवचन के पक्ष	कोरो-यम का निरण करतो है (ओषधयं, सू. ७१-७६) यावत्
"	१४०	६, ७	यह इष्टयतिष्ठित है—	यह इष्टयतिष्ठित है—जैसा आप कह
"	"	"	जैसा आप कह	
३६६	"	२७	मान-युक्त	मान-युक्त
३६६	१४१	८	है यावत्	है (प. ३/१३३) यावत्
"	१४१	१४	नयनायक यावत्	नयनायक (प. १/१३३) यावत्
"	१४१	४	है यावत्	है (प. २/१४) यावत्
३६७	१४६	४	दीपितान यावत्	दीपितान (प. २/६४) यावत्
"	१४७	४	अदिशतौ यावत्	अदिशतौ (ओषधयं, सू. १८) यावत्
"	"	१०	ओषधयं की	ओषधयं (सू. १२, ६६) की
"	"	"	है, यावत्	है यावत्
३६८	१४८	"	सविष्णु कुमार	सविष्णुकुमार
३६८	१४८	१	है यावत्	है (प. ६/१४८) यावत्
३६८	१४८	१	पेज यावत्	पेज (ओषधयं, सू. १२) यावत्
"	१४८	८	कविष्य कुण्डयाम	कविष्यकुण्डयाम
"	१४८	९	सविष्णु-कुमार	सविष्णुकुमार
३६८	"	११	नौता। प्रवचन के पक्ष	नौता। प्रवचन के पक्ष
"	"	"	है। जैसे आप	है। जैसे आप
"	१४८	८	संता यावत्	संता (प. ६/१४८) यावत्
३७०	१५०	२	है यावत्	है (प. ६/१४८) यावत्
३७१	१५२	१	सिद्धि-मान	सिद्धि-मान
३७२	१५४	१०	है इतिहास	है इतिहास
"	१५५	५	रिपय यावत्	रिपय (प. ६/१५५) यावत्
"	१५६	२	यवसाय-सम्पन्न	यवसाय-सम्पन्न
३७३	१५८	६	आइ, -	आइ, -
३७४	१६०	३	सुहार	सुहार
३७४	१६०	४	सम्पत्तया	(सम्पत्तयो)

पृष्ठ	सूत्र	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३४७	८६	१	है? यावत्	है यावत्
३४८	८७	"	है? पुच्छा	है?—पुच्छा
३४९	८८	"	"	"
३४९	८९	४	कैसे ही दस नैमित्तिकों के बतलवा है	(कैसे ही दस नैमित्तिकों के बतलवा है)
३४९	९०	२	कितने	कितने
३४९	९०	३	है?	है?
"	९०	१, २	प्रकट है	प्रकट है
"	९०	२	कितने	कितने
"	९०	३	है?	है?
३४९	९१	"	कितने	कितने
३५०	९२	सर्वत्र	भवनवासियों	भवनवासियों
"	"	"	वागमन्तर	वागमन्तर
"	"	"	ज्योतिष्क	ज्योतिष्क
"	"	"	धैमानिक	धैमानिक
३५०	९३	१-२	है?	है? (अथवा) वागमन्तर (अथवा) ज्योतिष्क (अथवा) धैमानिकों से
"	९३	१	वागमन्तर, ज्योतिष्क अथवा धैमानिक में	(प्रवेश)
"	९३	१	प्रवेश	है?—पुच्छा
"	९३	२	है, वागमन्तर, है, अथवा	है अथवा वागमन्तरों अथवा है अथवा
"	९४	सर्वत्र	देव-प्रवेशनक	देव-प्रवेशनक भी
"	९४	२	कितने	कितने
"	९५	३	है?	है?
३५०	९६	२	है? यावत्	है यावत्
३५०	९६	३	है, यावत्	है यावत्
"	९६	३-४	है? यावत्	है यावत्
३५०	९७	६	अनदि अनंत	अनदि, अनंत
"	"	"	संक्षिप्त ऊपर	संक्षिप्त, ऊपर
"	"	१३	है-यावत्	है यावत्
३५०	९८	६-७	है। इसी प्रकार	है। (इस प्रकार)
३५०	९८	१६	आगम	(आगम)
"	"	"	जागता। इसी प्रकार	जागता—पूर्ववत्
"	९८	१	है,	है? (अथवा)
"	९८	२	है—	है?—
३५०	९९	१	है?	है,
३५०	९९	"	असुरकुमारों	(असुरकुमारों)
"	९९	"	है? पुच्छा	है?—पुच्छा
"	९९	"	है—असुरकुमार	है (—असुरकुमार)
"	९९	२	परतः	परतः
"	"	"	संक्षिप्तकुमार	संक्षिप्तकुमार (कालव्य है)।
"	९९	७	संक्षिप्तकुमार	संक्षिप्तकुमार (कालव्य है)
३५०	९९	सर्वत्र	पृथ्वीकाधिक में	पृथ्वीकाधिक में
"	"	"	उत्तरव	उत्तरव

पृष्ठ	सूत्र	पंक्ति	अनुसूच	शुद्ध
३८७	२६०	३	वाता ।	वाता शिला है।
"	२६१	४	कर यण्ड-	कर इत प्रकार (ब. ८/२५८) यण्ड-
शतक १०				
३८८	सं. गा.	३	अनन्दीय	अनन्दीय ॥१॥
"	१	१	राजगुह नगर शयव गौतम इस	राजगुह (ब. १/४-१०) यण्ड इस
"	२	२	गौतमों जीव	गौतमों (क) जीव
३८८	३	२	पूर्व दिशा	पूर्व
३८८	४	२	जैसे - ऐन्द्री	जैसे-
३८८	४	२	ऐन्द्री	ऐन्द्री
३८८	४	२	कोण । सौम्य (उत्तर)	कोण । सौम्य (उत्तर)
३८८	४	४	का कोण)	का कोण)
३८८	४	४	का कोण)	का कोण)
३८८	४	४	है ॥११॥	है ॥११॥
३८८	४	४	ऐन्द्री दिशा	(ऐन्द्री दिशा)
३८८	४	४	है, वे	है, वे
३८८	४	४	है? पुच्छा	है? पुच्छा
"	४	४	द्वितीय के देश है अपना एकेन्द्रिय	द्वितीय के देश है अपना एकेन्द्रिय
३८८	४	४	के देश है और द्वितीय के देश है,	के देश है और द्वितीय के देश है,
३८८	४	४	अपना एकेन्द्रिय	अपना एकेन्द्रिय
३८८	४	४	(कतव्यता)	(कतव्यता)
३८८	४	४	परमाणु-पुद्गल	परमाणु-पुद्गल
३८८	४	४	यण्य	यण्य
३८८	४	४	की भी (कतव्यता)	की भी (कतव्यता)
३८८	४	४	जैसे-औरतिक	जैसे-औरतिक
३८८	४	४	का प्रत्यक्ष है?	का प्रत्यक्ष है?
३८८	४	४	पर (कतव्यता, २५)	पर (कतव्यता, २५)
३८८	४	४	राजगुह नगर शयव गौतम इस	राजगुह (ब. १/४-१०) यण्ड इस
"	४	४	देखता है	देखता है (ब. १०/१५)
३८८	४	४	है? पुच्छा	है? पुच्छा
३८८	४	४	चिन्तने प्रकार का प्रत्यक्ष है?	चिन्तने प्रकार का प्रत्यक्ष है?
३८८	४	४	के तीन प्रकार प्रत्यक्ष है,	के तीन प्रकार प्रत्यक्ष है,
३८८	४	४	का कोण भी	का कोण भी
३८८	४	४	से यण्ड	से (उत्तर) है यण्ड
३८८	४	४	होती । जो	होती, जो
३८८	४	४	कतव्यता । जो	कतव्यता, जो
३८८	४	४	राजगुह नगर शयव गौतम ने इस	राजगुह (ब. १/४-१०) यण्ड इस
३८८	४	४	अनुसुम्भार	अनुसुम्भार भी
३८८	४	४	है, शेष	है, शेष
३८८	४	४	का कोण	(कतव्यता)
३८८	४	४	भते! (कतव्यता)	भते! (कतव्यता)
३८८	४	४	है, यह सप्त-अक्षि वाले	है, यह सप्त-अक्षि वाले
३८८	४	४	प्रगत (रस)	प्रगत (रस)
३८८	४	४	यह सप्त-अक्षि वाले देव को	(यह सप्त-अक्षि वाले देव को)

पृष्ठ	सूत्र	पंक्ति	अनुसूच	शुद्ध
३८८	२७	३	गौतम !	गौतम ! यह
३८८	२८	३	हैं, (क)	हैं, (क)
३८८	२८	३	हैं, विपरीत	हैं, विपरीत
३८८	३०	३	गौतम !	गौतम ! (क)
३८८	३१, ३२, ३४/१	३	भते!	भते! (क)
३८८	३१	३	के तीन	के भी तीन
३८८	३१	३	कतव्यता ।	(कतव्यता) ।
३८८	३१	३	सप्त-अक्षि	भते! (क) सप्त-अक्षि
३८८	३१	३	भते! (क)	(भते! (क))
३८८	३१	३	अक्षि वैयक्तिक	अक्षि वाले वैयक्तिक
३८८	३१	३	क्या	(क्या)
३८८	३१	३	है । सप्त-अक्षि	है । इस प्रकार सप्त-अक्षि
३८८	३१	३	पूर्ववत् कतव्यता (१०/२५-२०)	उत्ती प्रकार (ब. १०/२५-२०)
३८८	३१	३	देवी की	देवी की भी
३८८	३१	३	पूर्ववत् कतव्यता (१०/२५-३०)	उत्ती प्रकार (ब. १०/२५-३०)
३८८	३१	३	भते!	(भते! (क))
३८८	३१	३	गौतम !	गौतम ! (क)
३८८	३१	३	इसी प्रकार	उत्ती प्रकार
३८८	३१	३	प्रमाणपत्री भाषा-पर	प्रमाणपत्री भाषा-पर
३८८	३१	३	है	है
३८८	३१	३	उत्तरा, सोपे, छडे रहने, केने, सेने	उत्तरा, सोपे, छडे रहने, केने, सेने
३८८	३१	३	गौतम ! हम	गौतम ! हम
३८८	३१	३	पराधीन सप्तवर्तुत हूँ (ब. १/१०, ८)	पराधीन सप्तवर्तुत हूँ (ब. १/१०, ८)
३८८	३१	३	अन्यार (ब. १/८) यण्ड	अन्यार (ब. १/८) यण्ड
३८८	३१	३	रहता था	रहता था
३८८	३१	३	(कतव्यता) (ब. १/१०) यण्ड	(कतव्यता) (ब. १/१०) यण्ड
३८८	३१	३	सप्तवत् (ब. २/६४) यण्ड	सप्तवत् (ब. २/६४) यण्ड
३८८	३१	३	अनुसुम्भार	अनुसुम्भार
३८८	३१	३	कतव्यता (ब. १०/४०-४८) यण्ड	कतव्यता (ब. १०/४०-४८) यण्ड
३८८	३१	३	यण्ड	(ब. १०/४८-५१) यण्ड
३८८	३१	३	की भी (कतव्यता) । इस	की भी (कतव्यता) । इस
३८८	३१	३	प्रकार (ब. २/१०४) यण्ड	प्रकार (ब. २/१०४) यण्ड
३८८	३१	३	की कतव्यता । इसी	की कतव्यता । इसी
३८८	३१	३	प्रकार यण्ड	प्रकार यण्ड
३८८	३१	३	की कतव्यता	की कतव्यता
३८८	३१	३	कतव्यता यण्ड	कतव्यता यण्ड
३८८	३१	३	अतोक्ता प्रतिक्रमण	अतोक्ता प्रतिक्रमण
३८८	३१	३	की प्रति कतव्यता	की प्रति कतव्यता
३८८	३१	३	मे यण्ड	मे (ब. १०/१५-१८) यण्ड
३८८	३१	३	गण की	गण (ब. १०/१५-१८) की
३८८	३१	३	कतव्यता	(कतव्यता)
३८८	३१	३	देव यण्ड	देव (ब. १/४-८) यण्ड
३८८	३१	३	(पूर्व २७२) की	(ब. ८/२७२ की

पृष्ठ	सूत्र	पंक्ति	अनुसूच	शुद्ध
३८७	६४	५	(रक्ता) एक	(रक्ता), एक
३८७	६४	५	अप!	अप!
३८७	६४	५	सर्वत्र	सर्वत्र
३८७	६४	५	जैसे-काली,	जैसे-काली
३८७	६४	५	है।	है।
३८७	६४	५	क्या	(क्या)
३८७	६४	५	एक एक	एक एक
३८७	६४	५	हो, है।	(हो, है)
३८७	६४	५	पवित्रा विक्रिया करने में	(पवित्रा की विक्रिया करने में
३८७	६४	५	समर्थ है।	समर्थ है।
३८७	६४	५	की कतव्यता	(की कतव्यता)
३८७	६४	५	सुपनी तथा में	सुपनी तथा में,
३८७	६४	५	रहने	रहने
३८७	६४	५	मे यण्ड	मे (ब. १०/६७) यण्ड
३८७	६४	५	हैय	हैय-
३८७	६४	५	सप्त	सप्त-
३८७	६४	५	सप्त सुपनी में	सप्त सुपनी में,
३८७	६४	५	देवी पवित्रा	देवी का पवित्रा
३८७	६४	५	प्रगत है। यह है अतपु की	प्रगत है। यह है अतपु की
३८७	६४	५	कतव्यता	कतव्यता
३८७	६४	५	देवी-पवित्रा विक्रिया	देवी-पवित्रा की विक्रिया करने में
३८७	६४	५	करने में समर्थ है।	समर्थ है। यह है अतपु (की कतव्यता)
३८७	६४	५	समर्थ है? अतोक्ता	समर्थ है? अतोक्ता
३८७	६४	५	अतोक्ता	(अतोक्ता) (ब. १०/६७-६८) यण्ड
३८७	६४	५	पूर्ववत् यण्ड	पूर्ववत् (ब. १०/६७-६८) यण्ड
३८७	६४	५	पूर्ववत्, इस	पूर्ववत् (ब. १०/६७-६८) यण्ड
३८७	६४	५	मे देव सेम की प्रति कतव्यता	मे, देव सेम की प्रति (कतव्यता)
३८७	६४	५	की भी (कतव्यता)	की भी (कतव्यता)
३८७	६४	५	है, शेष सप्त (ब. १०/६५-६७)	है, शेष सप्त (ब. १०/६५-६७)
३८७	६४	५	पवित्रा मोक्ष-प्रेषक	पवित्रा मोक्ष-प्रेषक
३८७	६४	५	है, शेष सप्त-सप्त	है, शेष सप्त-सप्त
३८७	६४	५	कतव्यता ।	(कतव्यता) ।
३८७	६४	५	उत्तरे प्रत्येक	उत्तरे प्रत्येक
३८७	६४	५	देवी पवित्रा	देवी-पवित्रा
३८७	६४	५	पूर्व अपर सप्त	पूर्व-अपर-सप्त
३८७	६४	५	पवित्रा विक्रिया	पवित्रा की विक्रिया

पृष्ठ	सूत्र	पंक्ति	अधुनक	शुद्ध
३६७	७७	३	की वस्तुता ।	(की वस्तुता) ।
"	७८	१	माधुसूदारल माधुसूमादि	(माधुसूदारल माधुसूमादि)
"	७८	२-३	है ? शेष	है ? शेष
३६८	७८	३	पूर्ववत्, इत्या	पूर्ववत् (१०/६७-६८), इत्या
"	"	४	शेष एकरस्यपर (सूत्र ७) की	शेष पूर्ववत्
"	७८-८१	सर्वत्र	वर्तित है, शेष लोकपाल की	है, अल्लेख कार-लोकपालो
३६९	७९	५	शेष तीन	(१०/७०-७३) की
"	८०, ८१	१	की पुष्पा ।	शेष तीनो की
३६९	८०	३	है। अवलोक बाण	है, अवलोक बाण (१०/७६-७८)
३६९	८१	४	माधुनद के शेष तीन	(माधुनद के) शेष तीनो की
३६९	८१	५	बाणलक्ष	बाणलक्ष (१०/७६-७८)
"	"	५	वस्तुता : उनके	(वस्तुता), उनके
३६९	८१	६	लोकपालो	लोकपालो (१०/७६)
३६९	८१	७	है । परिवार	है, परिवार
३६९	८१	७	बाणवर्ध, ३/४	(बा. ३/४/४१)
३६९	८१	८	राजधानी और सिंहासन भी	राजधानी और सिंहासन
३६९	८१	८	बनार लोकपाल की	बनार के लोकपालो (१०/७०-७३)
४००	८२	३	है। शेष कार लोकपाल की	है, शेष कार के लोकपालो (१०/७०-७३) की
४००	८२-८६	सर्वत्र	की वस्तुता	१०/७०-७३) की
४००	८२-८६	१	की पुष्पा	की भी (वस्तुता)
४००	८३-८५	सर्वत्र	काल की भाँति वस्तुता	काल (१०/८२) की भाँति
४००	८६	८६	—राजधानी	(वस्तुता) है।
४००	८६	४	अधिपति प्रपंकर।	—राजधानी
४०१	८०	२	अधिपति प्रपंकर।	अधिपति, प्रपंकर।
४०१	८०	३-४	—अधिपति की वस्तुता। इसी प्रकार	—अधिपति (अतः है), केते की
४०१	८०	४	की वार	(वस्तुता है),
४०१	८०	४	है—	की भी (वार
"	"	४	है—	है—)
"	"	५	पूर्ववत् यावत् परिवार की अधिक	पूर्ववत् (१०/६७-६८) यावत्
४०१	८१-८५	सर्वत्र	है। अतः उपयोग करते हैं, भैरुन-	भैरुन-
४०१	८१-८५	३	है। शेष	है, शेष
४०१	८१-८५	३	वस्तुता,	(वस्तुता),
"	८१	५	की वस्तुता ।	की भी (वस्तुता) ।
४०१	८१	५	अतः	अतः की
४०१	८१	५	वस्तुता यावत्	वस्तुता (अ. २/३२५) यावत्
४०१	८३	२	वस्तुता,	(वस्तुता),
४०१	८३	३	की वस्तुता	की वस्तुता) ।
४०१	८४	१	भाँते !	भाँते ! (का)
४०१	८४	२-३	है ?	है ? शेष वनार
४०१	८४	२-३	बनार	

पृष्ठ	सूच	पंक्ति	अधुन	शुद्ध
४०१	३	३	परिवार की	परिवार
"	४	३	(क. ३/४)	(क. ३/४)
"	४	३	लोकपाल की	लोकपाली (क. १०/७०-७२) की
४०१	३.२	३.२	कमजवा	(कमजवा),
४०१	४	४	सिंहसन	सिंहसन पर,
"	४	४	(३/३१०-३१)	(क. ३/२४०-२४१ २४६, २४७, २४८)
४०१	४	४	शुद्ध की	शुद्ध (क. १०/६२-६४) की
४०१	४	४	लोकपाल	लोकपाली (क. १०/६२)
४०१	४	४	कमजवा	(कमजवा),
४०२	४	४	शुद्ध (४/२-४)	शुद्ध (क. ४/२-४)
"	४	४	पुर्ववर्त कर्तव्य	पुर्ववर्त (क. १०/६७-६८) यावत्
४०२	४	४	जौड़ा है, इस प्रकार	जौड़ा है, इस प्रकार
४०२	४	४	अर्धकार अर्धविषय	अर्धकार अर्धविषय
४०२	४	४	आचार्यक	आचार्यक तक
४०२	४	४	कमज है। कक	(कमज है) ॥१॥
४०२	४	४	कला यावत्	कला (क. ३/४) यावत्
"	४	४	यावत् दिवा	(क. ३/४६) यावत्
४०२	४	४	शिवजीवाभिषय की कमजवा	शिवजीवाभिषय (३/२४०) में उक्त
"	४	४	धैरी	है, धैरी
"	४	४	की कमजवा	तक
शतक ११				
४०३	सं. पा.	२	बाहरी उदेशक है।	बाहरी—यावत् शतक के ये बाहरी
"	१	१	रजगुरु मार यावत्	उदेशक है ॥१॥
"	१	१	इस भीम ने इस	रजगुरु (क. १/४-१०) यावत्
४०३	२	२	नैतिक	इस पर
"	"	"	विश्वानिक	नैतिक
"	२.३	२.३	मनुष्य	मनुष्य
"	२.४	२.४	देव	देव
"	२	२	ये जीव	(ये जीव)
"	२	२	वैश्वानिक	वैश्वानिक
"	"	"	अकांक्षि पर	अकांक्षि-पर
४०३	४	४	खोते हैं।	खोते हैं
"	४	४	किन्ती है?	किन्ती बड़ी कमज है?
"	४	४	कर्म की कमजवा	(कर्म) की (कमजवा)
"	४	४	पुच्छ ।	—पुच्छ ।
४०४	४	४	भी है	है अथवा
"	४	४	भी है	है अथवा
४०४	४	४	कर्म का	—अधुन कर्म के
"	४	४	कर्म का	—अधुन कर्म के

पृष्ठ	सूत्र	पंक्ति	अनुश्रुत	श्रुत
४०४	८, ११	२-३	आन्तरिक की वस्तुवत्ता	आन्तरिक (कर्म) की (वस्तुवत्ता)
"	१०	३	आन्तरिक की वस्तुवत्ता	आन्तरिक (कर्म) की (वस्तुवत्ता)
"	११	३	केन्द्रिय और आधुन्य के आठ	केन्द्रिय (कर्म) और आधुन्य (कर्म) के आठ भाग
४०४-०५	१२-२३	१	जीव	जीव क्या
४०४	१२	५	तैलस-तेय्या	तैलस-तेय्या
"	१३	१, २	सम्पद्-मिथ्या	सम्पद्-मिथ्या
"	"	३	दृष्टि	दृष्टि
"	१४	"	है, अगानी	है? (अपनी) अगानी
"	१७	"	वर्ण कितने	वर्ण, कितने
४०५	२३	३	उन जीवों के शरीर	(उन जीवों के शरीर)
"	१७	३	उन जीवों के शरीर	है-अस्सी
"	२४, २६	१	क्या वे जीव	वे जीव क्या
४०५	२६	१	है	है (घ. ११/१८)
"	२७	१	जीव	जीव क्या
४०६	२८	१	क्या वे जीव	वे जीव क्या
"	३०	२	है	है,
"	३०, ३१	१	के रूप में उत्पन्न होता है	(के रूप में उत्पन्न होता है),
"	३२-३४	४	असंख्य कल	असंख्य कल-
"	३०	४	जीव के रूप में उत्पन्न होता है,	जीव (के रूप में उत्पन्न होता है)
"	३१	१	वस्तुवत्ता ।	(वस्तुवत्ता)।
"	"	३	की वस्तुवत्ता,	उक्त है,
"	"	४	की वस्तुवत्ता,	वस्तुवत्ता है,
४०७	३२	५	करना है कल	करता है, कल
"	५-६	५	कल-अनसृष्टि कल	कल-अनसृष्टि-कल
"	३३	५	कल-इतने	कल-इतने
"	३४	५	वस्तुवत्ता । इसी	(वस्तुवत्ता), इस
"	"	"	की वस्तुवत्ता ।	की भी (वस्तुवत्ता)।
"	३४	१	के रूप में उत्पन्न होकर	(के रूप में उत्पन्न होता है), पुनः
"	"	"	के रूप में उत्पन्न होकर	उत्पन्न-जीव के रूप में उत्पन्न हो कर
"	"	"	साथ उत्पन्न-	साथ ही (उत्पन्न-
"	"	५	वस्तुवत्ता, यावत्	वस्तुवत्ता) यावत्
"	"	६	करता है?	करता है,
"	३५	१	वे जीव	वे (उत्पन्न-) जीव
४०७	३५	२	इतना,	इतने,
"	"	४	सर्ग-मुक्त	सर्ग-मुक्त (इतने) का अधिकार करता
४०८	"	५	के अन्तर की वस्तुवत्ता,	का अन्तर (उत्पन्न है),
"	"	६	है, इतना	है, इतना
४०९	"	६, ७	है, शेष पण्यवत्ता की भाँति	है, शेष पूर्ववत् (पण्यवत्ता की भाँति)
"	३६-३७	१	वस्तुवत्ता है,	(वस्तुवत्ता) है,
"	३८	"	जीवों	(उत्पन्न-) जीवों
"	३८	"	वे जीव	वे (उत्पन्न-) जीव

पृष्ठ	सूत्र	पंक्ति	अधुख	शुख
४२३	२२१	४	बहने बहने	बहने बहने
४२४	२२१	७	होते होते	होते होते
४२५	२२२	६	है।	है।
"	२२०	६-७	-१३४) की भाँति वक्तव्य है (पन्नासहान-पट ५) वक्तव्य है	-१३४) में (उक्त है जैसे वक्तव्य है)
"	२२०	१		है।
"	२२२	६	सुखमल हाव-	सुखमल हाव-
"	"	६	विहरण कर रही	रहती
"	"	७	यह	(म. ११/१३३) यावत्
४२६	१३४	७	सुखमल हाव-	सुखमल हाव-
४२७	"	२२	दूसरी तीसरी	दूसरी बार भी, तीसरी
"	१३५	६, ७	है। ऐसा आप	है। ऐसा आप
"	"	१४	जैसा आप	रहते
"	१३७	१	विहार करते	ने (म. ६/१४२) यावत्
"	१३८	२	उपबाई	जोषायावत्
४२८	"	३	सू. ६३ की वक्तव्य जैसे	में (उक्त है) जैसे
४२९	"	"	और स्तानवार	और कैसे की स्तानवार
४३०	"	"	यावत्	(जोषायावत्, सू. ६३) यावत्
"	१३६	४	स्वल्प स्तान पाठक	स्वल्प-स्वल्प-पाठक
"	१३७	४	यावत्	(म. ११/१३३) यावत्
४३८	१३८	१०	या- सरोवर,	या- सरोवर,
"	"	११	जिना	जिना (१११)
"	१३९	२२	यावत्	(म. ११/१३३) यावत्
४३०	१३९	१८	हट यावत्	हट (म. ११/१३३) यावत्
"	"	१९	यावत्	(म. ११/१३३) यावत्
"	१४४	३	है यावत्	है (म. ११/१३३) यावत्
"	१४५	२	किया यावत्	किया (म. ७/१०६) यावत्
"	१४६	२	सुखमल हाव में वाले, अर्धन-	सुखमल हाव में वाले, अर्धन-
"	"	"	वर्द्धित शरीर,	-वर्द्धित-वर्द्धित-शरीर वाले,
४३१	१४७	५	पर यावत्	पर (म. ११/१३३) यावत्
"	१४६	४	करी यावत्	करी (जोषायावत्, सू. १५) यावत्
"	१५०	१	पर यावत्	पर (म. ११/१३३) यावत्
४३१	१५१	१	पुर्ववत् यावत्	पुर्ववत् (जोषायावत्, सू. ६३) यावत्
४३१	१५३	सर्वत्र	कुल मर्णा	कुल-मर्णा
४३१	१५१	३, ६	पुन जन्म	पुन-जन्म-
"	"	५	रत्न दण्ड	रत्न-दण्ड
"	"	६	जग मुल	जग-मुल-
"	"	८	पुण्य माना	पुण्य-माना-
"	"	"	अनपद वाली	अनपद-वाली
४३१	१५२	१	रहे दशाधिक महत्त्व	रहे दशाधिक महत्त्व
"	"	"	राज सब ने	राजा ने

पृष्ठ	सूत्र	पंक्ति	अधुख	शुख
४३१	१५२	२	यान कार्य कारर ।	यान-कार्य कारर, यान
"	"	३	दिवसया ।	दिवसया,
४३२	१५३	५	पुर्ववत् यावत्	पुर्ववत् (म. ११/१३३) यावत्
"	"	८	कुल सन	कुल-सन
"	१५४	२	यापत रलित	यापत-रलित
"	१५५	४	कलादि ग्रहण	कलादि-ग्रहण
"	१५६	२	दृष्टकीला	दृष्टकीला (जोषायावत्, सू. १४६-१४८)
"	१५७	२	कर यावत्	कर (रत्न सू. २३०) यावत्
"	"	३	जो- सौकर-सुसुल-	जो- सौकर-सुसुल-वर्णक जैसा
"	"	३, ५	की भाँति वक्तव्य है	में (उक्त है) जैसा वक्तव्य है)
"	"	५	या, (	या, वर्णक जैसा
"	१५६	५-६	सूत्र ३२) की भाँति	(सूत्र ३२) में (उक्त है) जैसा
"	१५६	३८	वर्णक	वक्तव्य है)
४३४	१५६	३८	(उपबाई, सूत्र ७०) की	जोषायावत् (सूत्र ७०) में जैसा
"	"	"	भाँति वक्तव्य है	(उक्त है) जैसा वक्तव्य है)
४३४	१५६	३८	यावत्	(म. ६/१४३) यावत्
"	१५६	१	अपली की यावत्	अपली (म. ६/१५६) की भाँति
"	"	"		(वक्तव्य है) यावत्
"	१५६	२	६८७)	६८६)
"	"	६	विहार कर रहे थे	रहते थे।
"	१५६	१	सम्पद यावत्	सम्पद (रत्न, सू. ६८७) यावत्
"	१५६	१	युक्त यावत्	-युक्त (म. ६/१५६) यावत्
४३६	"	३	है यावत्	है (म. ६/१५६) यावत्
"	१५६	१	महालकुमार	महाल कुमार
"	१५६	८	जोय यावत्	जोय (म. ६/१५६) यावत्
"	१५६	१	प्रकार जेठ	प्रकार (म. ६/१६०-१६२) जेठ
"	"	"	वर्ण कया	वर्ण कया
"	"	२	की भाँति वक्तव्य है।	(राष्ट्रसौम्य, सू. ६६३) की भाँति
"	"	"		(वक्तव्य है)।
"	१५६	५-६	योग योग (म. ६/१६३)	योग, योग पुर्ववत् (म. ६/१६४-१६५) वक्तव्य है
"	"	"	जमल की भाँति वक्तव्य है	रत्नाभिषेक (म. ११/१६६-६७)
४३६	१५६	१	है, यावत् अभिषिक्त	है, यावत् अभिषिक्त
"	"	५	वक्तव्य है	है (वक्तव्य है)
"	"	५	जैसा आप कह रहे हैं-ऐसा	जैसा आप कह रहे हैं-ऐसा
४३६	१५७	६	की वक्तव्य है	की (वक्तव्य है)
"	"	७	यावत्	(म. २/६४) यावत्
"	१५८	३	यथा परिगृहीत	यथापरिगृहीत
४३६	१५८	"	विहार कर रहे थे	रहते थे।
४३७	१५८	१	महावीर यावत्	महावीर (म. १/१०) यावत्
"	"	"	प्यारे (जोषायावत्, सू. २२-५२)	प्यारे (जोषायावत्, सू. २२-५२)

पृष्ठ	सूत्र	पंक्ति	अधुख	शुख
४३७	१५८	३	महावीर यावत्	महावीर (जोषायावत्, सू. ५२) यावत्
"	"	२१	को यावत्	को (म. २/६७) यावत्
"	"	२२	उपदेश दिया	निरूपण किया (जोषायावत्, सू. ७१-७७)
"	१५८	५	अधिक यावत्	अधिक (म. ११/१०६) यावत्
४३८	१५८	३	महावीर वक्त में	महावीर वक्त में
"	१५८	३	काने लगे	करा रहे हैं।
"	१५८	३	सुपुंर, यावत्	सुपुंर (म. २/२२) यावत्
"	"	३	ब्राह्मण और परिक्रमक	ब्राह्मण-और परिक्रमक-
"	१५८	४	के तप की सन्या के द्वारा दोनों	-तप तप कर के सन्या दोनों
"	१५८	१	परिक्रमक का निहार केने केने	परिक्रमक को निहार केने केने-कम
"	"	१	तपः कर के बाग	तपः-कर के बाग
"	"	३	सुपुंरव संपन्ना,	सुपुंरव-संपन्ना
"	"	६	विभंग ज्ञान	विभंग-ज्ञान
"	"	"	ब्रह्मलोक कल	ब्रह्मलोक-कल
"	१५८	"	कमंडलु यावत्	कमंडलु (म. २/३१) यावत्
"	१५८	१	नगर से	(नगर से)
"	"	२	वर्ण कया परिबद्ध	वर्ण का निरूपण किया, परिबद्ध
"	१५८	२	साधुकि	साधुकि
"	"	४	यावत् जैसा	(म. ११/१५६-१५७) यावत् जैसा
४४०	१५९	१	सौम्य-कल	सौम्य-कल
"	"	२	अन्योन्य-कल	अन्योन्य - कल
"	१५९	३	गोपित यावत्	गोपित (जोषायावत्, सू. १६)
"	१५९	"	परिक्रमक अवस	परिक्रमक-अवस
४४१	१५९	२	भाँति यावत्	भाँति (म. २/५२) यावत्
"	"	"	कमंडलु यावत्	कमंडलु (म. २/३१) यावत्
"	"	५	हुआ, जैसे	हुआ (म. ६/१५०, १५१), जैसे
"	१५९	६	सर्व यावत्	सर्व (म. ६/१५६) यावत्
"	१५९	५	है, यावत्	है यावत्
४४१	१५९	४, ५	इस प्रकार जैसे जोषायावत् में उक्त	इस प्रकार जैसे जोषायावत् में उक्त
"	"	"	है) जैसे ही (वक्तव्य है)	है) जैसे ही (वक्तव्य है)
"	"	"	प्रकार सन्या,	सन्या,
४४१	१५९	५	परिलक्ष्ण, इसी	परिलक्ष्ण,
"	१५९	६	निदिष्टकीला तक	इस
४४१	१५९	६	यावत् निदि	निदिष्टकीला (जोषायावत्, सू. १५-१६)

आपकी औदार्यपूर्ण वृत्ति एवं असाम्प्रदायिक चिंतन-शैली ने धर्म के सम्प्रदाय से पृथक् अस्तित्व को प्रकट किया। नैतिक क्रांति, मानसिक शांति और शिक्षा-पद्धति में परिष्कार और जीवन-विज्ञान का त्रि-आयामी कार्यक्रम प्रस्तुत किया। युगप्रधान आचार्य, भारत-ज्योति, वाक्पति जैसे गरिमापूर्ण अलंकरण, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय एकता पुरस्कार (१९९३) जैसे सम्मान आपको प्राप्त हुए। साधु और श्रावक के बीच की कड़ी के रूप में आपने सन् १९८० में समणश्रेणी का प्रारंभ किया, जिसके माध्यम से देश-विदेश में अनाबाधरूपेण धर्मप्रसार किया जा रहा है। आपने ६० हजार किमी. की भारत की पदयात्रा कर जन-जन में नैतिकता का भाव जगाने का प्रयास किया था।

हिन्दी, संस्कृत एवं राजस्थानी भाषा में अनेक विषयों पर ६० से अधिक ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। १८ फरवरी १९९४ को अपने आचार्यपद का विसर्जन कर उसे अपने उत्तराधिकारी युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ में प्रतिष्ठित कर दिया। २३ जून सन् १९९७ को आपका महाप्रयाण हुआ। सन् १९९८ में भारत सरकार ने आपकी स्मृति में डाक-टिकट जारी किया।

दशमाचार्य श्री महाप्रज्ञ दस वर्ष की अवस्था में मुनि बने, सूक्ष्म चिंतन, मौलिक लेखन एवं प्रखर वक्तृत्व आपके व्यक्तित्व के आकर्षक आयाम हैं। जैन दर्शन, योग, ध्यान, काव्य आदि विषयों पर आपके २०० से अधिक ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। प्रस्तुत आगम-वाचना के आप कुशल संपादक एवं भाष्यकार हैं।

जैन विश्व भारती द्वारा प्रकाशित आगम साहित्य

वाचना प्रमुख : आचार्य तुलसी • संपादक विवेचक : आचार्य महाप्रज्ञ

(मूल पाठ पाठान्तर शब्द सूची सहित)	
ग्रंथ का नाम	मूल्य
● अंगसुत्ताणि भाग-1 (दूसरा संस्करण)	700
(आचारो, सूयगडो, ठाणं, समवाओ)	
● अंगसुत्ताणि भाग-2 (दूसरा संस्करण)	700
(भगवई-विआहपण्णत्ती)	
● अंगसुत्ताणि भाग-3 (दूसरा संस्करण)	500
(नायाधम्मकहाओ, उवासगदसाओ, अंतगड-दसाओ, अणुत्तरोववाइयदसाओ, पण्णावागरणाइ, विवागसुयं)	
● उवंगसुत्ताणि खंड-1	500
(ओवाइयं, रायपसेणइयं, जीवाजीवाभिगम)	
● उवंगसुत्ताणि खंड-2	600
(पण्णावण, जंबूदीवपण्णत्ती, चंद्रपण्णत्ती, कप्पवडिसियाओ, निरयावलियाओ, पुप्फियाओ, पुप्फचूलियाओ, वणिहदसाओ)	
● नवसुत्ताणि (द्वितीय संस्करण)	695
(आवस्सयं, दसवेआलियं, उत्तरज्झयणाणि नंदी, अणुओगदाराइं)	

कोश

● आगम शब्दकोष	300
(अंगसुत्ताणि तीनों भागों की समग्र शब्द सूची)	
● श्री भिक्षु आगम विषय कोश, भाग-1	500
● श्री भिक्षु आगम विषय कोश, भाग-2	700
● देशी शब्दकोश	100
● निरुक्त कोश	60
● एकार्थक कोश	100
● जैनागम वनस्पति कोश (सचित्र)	300
● जैनागम प्राणी कोश (सचित्र)	250
● जैनागम वाद्य कोश (सचित्र)	100

अन्य भाषा में आगम साहित्य

● भगवती जोड़ खंड-1 से 7	2900
श्रीमज्जयाचार्य सेट का मूल्य	
● आचारो (अंग्रेजी)	250
● आचारांगभाष्यम् (अंग्रेजी)	400
● भगवई खंड-1 (अंग्रेजी)	595
● उत्तरज्झयणाणि भाग-1,2 (गुजराती)	1000
● सूयगडो (गुजराती)	1500

(मूल, छाया, अनुवाद, टिप्पण, परिशिष्ट-सहित)	
ग्रंथ का नाम	मूल्य
● आचारो	200
● आचारांगभाष्यम्	600
● सूयगडो भाग-1 (दूसरा संस्करण)	300
● सूयगडो भाग-2 (दूसरा संस्करण)	350
● ठाणं	700
● समवाओ (दूसरा संस्करण)	प्रेस में
● भगवई (खंड-1)	595
● भगवई (खंड-2)	695
● भगवई (खंड-3)	500
● भगवई (खंड-4)	500
● नंदी	400
● अणुओगदाराइं	400
● दसवेआलियं (दूसरा संस्करण)	600
● उत्तरज्झयणाणि (तीसरा संस्करण)	600
● नायाधम्मकहाओ	500
● दसवेआलियं (गुटका)	7
● उत्तरज्झयणाणि (गुटका)	25

अन्य आगम साहित्य

● निर्युक्तिपंचक (मूल, पाठान्तर)	500
● सानुवाद व्यवहार भाष्य (हिन्दी अनुवाद)	500
● व्यवहार भाष्य	700
(मूल, पाठान्तर, भूमिका, परिशिष्ट)	
● गाथा	350
(आगमों के आधार पर भगवान महावीर का जीवन दर्शन रोचक शैली में)	
● आत्मा का दर्शन	600
(जैन धर्म : तत्त्व और आचार)	
● इसिभासियाइं	350



प्राप्ति स्थान :

जैन विश्व भारती प्रकाशन
लाइन - 341306 (राज.)

ISBN 81-7195-237-2



₹ 450.00